ॐ अर्ह

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २५

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति में आयोजित]

पंचम गणधर भगवत्सुधर्मस्वामि-प्रणीत पञ्चम अंग

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र

[भगवतीसूत्र-चतुर्थखण्ड, शतक २०-४१]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

प्रेरणा □
उपप्रवर्तक शासनसेवी स्व. स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

आद्यसंयोजक तथा प्रधान सम्पादक □
(स्व०) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—विवेचक—सम्पादक □
श्री अमरमुनि,
[भण्डारी श्री पद्मचन्दजी महाराज के सुशिष्य]
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

प्रकाशक □
श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्थाङ्क २५

☐ निर्देशन
अध्यात्मयोगिनी महासती श्री उमरावकुंवरजी 'अर्चना'

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
आचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'

☐ द्वितीय सस्करण
वीरनिर्वाण सवत् २५२०
विक्रम सवत् २०५१
अगस्त, १९९४

☐ प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन समिति,
श्री ब्रज-मधुकर स्मृति भवन
पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१
फोन : ५००८७

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य : १३०) रुपये

Published on the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

Compiled by Fifth Ganadhara Sudharma Swami
Fifth Anga

VYĀKHYĀ PRAJNAPTI

[Bhagawati Sutra Part IV, Shatak 20-41]
[Original Text, with Variant Readings, Hindi Version, Notes etc]

□
Inspiring Soul
Up-pravartaka Shasansevi (Late) Swami Shri Brijlalji Maharaj

□
Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Shri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

□
Translator & Annotator
Shri Amar Muni
Srichand Surana 'Saras'

□
Publishers

Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No. 25

Direction
Sadhvi Shri Umravkunwarji 'Archana'

Board of Editors
Anuyogapravartaka Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal'
Acharya Shri Devendra Muni Shastri
Shri Ratan Muni

Promotor
Munishri Vinayakumar 'Bhima'

Second Edition
Vir-Nirvana Samvat 2520
Vikram Samvat 2051,
August, 1994

Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti,
Shri Brij-Madhukar Smriti Bhawan
Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.) [India]
Pin—305 901
Phone 50087

Printer
Satish Chandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer

Price : Rs. 130/-

समर्पण

विद्वद्वर्ग में जो अपने विशिष्ट वैदुष्य
के लिए विख्यात थे,
जिन्होंने श्रुत का तलस्पर्शी गहन
अध्ययन-अध्यापन किया,
अनेक आगमों पर विशद और विस्तृत
विवेचन करके जनसाधारण के लिए
सुबोध बनाया,
उन मधुरभाषी, गरिमामय एवं भव्य
व्यक्तित्व से मण्डित, आचार्यवर्य श्री आत्मा
रामजी म. के प्रमुख अन्तेवासी

पं. र. मुनिश्री हेमचन्द्रजी म.

के कर-कमलों में.

[प्रथम संस्करण से]

प्रकाशकीय

समिति की ओर से प्रकाशित आगमबत्तीसी के अनुपलब्ध ग्रन्थो के द्वितीय सस्करण प्रकाशित करने के क्रम मे व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का यह अन्तिम—चतुर्थखण्ड प्रस्तुत कर रहे हैं। भगवतीसूत्र उपलब्ध समस्त आगमो मे सबसे विराट्काय आगम है और विविध विषयो की चर्चा से परिव्याप्त है। इसके द्वितीय सस्करण के मुद्रण की सम्पूर्ति अतीव प्रमोद का विषय है। उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक पद पर प्रतिष्ठित विद्वद्वर मुनिश्री भण्डारी पद्मचन्द्रजी म० के विद्वान् अन्तेवासी श्री अमर-मुनिजी म० ने इसका अनुवाद करके आगमप्रकाशन समिति को जो महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है, उसके लिए समिति अत्यन्त आभारी है।

साहित्यवाचस्पति प्रतिभामूर्ति श्री देवेन्द्रमुनिजी महाराज के अनुपम सहयोग को समिति कदापि विस्मृत नही कर सकती। अद्यावधि प्रकाशित सभी आगमो पर आपने विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। यदि यथासमय आपने प्रस्तावनाएँ लिखकर उपकृत न किया होता तो प्रस्तुत प्रकाशन अति विलम्बित हो जाता। मगर अस्वस्थता, व्यस्तता एव विहार आदि के व्यवधानो के होते हुए भी आपने प्रस्तावनाएँ लिखकर प्रकाशन के कार्य को द्रुत गति प्रदान की। एतदर्थ आपके प्रति भी हम हृदय से आभारी हैं।

इस विराट् आयोजन के पुरस्कर्त्ता श्रद्धेय युवाचार्यश्रीजी के आकस्मिक और असामयिक स्वर्गवास के पश्चात् अध्यात्मयोगिनी महाविदुषी श्री उमरावकु वर महासतीजी का पथप्रदर्शन हमारे लिए अत्यन्त प्रशस्त सिद्ध हो रहा है। किन शब्दो मे उनके सहयोग के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाए?

प्रस्तुत आगम के प्रथम सस्करण के प्रकाशन मे समिति के भूतपूर्व अध्यक्ष, समाज के लिए महान् गौरवस्वरूप, धर्मनिष्ठ समाजनेता पद्मश्री स्व सेठ मोहनलालजी सा चोरडिया का विशिष्ट आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ। आपके आदर्श व्यक्तित्व मे समाज भलीभाति परिचित है। आपके जीवन की सक्षिप्त रूपरेखा पृथक् दी जा रही है, जो हमे मद्रास के क्रियाशील उत्साही सामाजिक कार्यकर्त्ता श्रीमान भवरलालजी सा गोठी के माध्यम से प्राप्त हुई है।

समिति उन समस्त महानुभावो की भी हृदय से आभारी है, जिन्होने इस बृहद् ग्रन्थ के सम्पादन मे अपना सहयोग प्रदान किया है।

अन्त मे आगमप्रेमी सज्जनो के प्रति निवेदन है कि प्रकाशित आगमो के प्रचार-प्रसार मे अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करें, जिससे स्व परमपूज्य युवाचार्यश्रीजी की आगमज्ञान-प्रचार की उदात्त पावन भावना साकार हो सके।

भवदीय

रतनचंद मोदी — कार्यवाहक अध्यक्ष

सायरमल चोरड़िया — महामन्त्री

अमरचन्द मोदी — मंत्री

श्री आगम प्रकाशन-समिति ब्यावर

प्रस्तुत आगम के प्रथमसंस्करण-प्रकाशन के विशिष्ट अर्थसहयोगी

श्रेष्ठिप्रवर, श्रावकवर्य

पद्मश्री मोहनलालजी सा. चोरड़िया

'मानव जन्म से नही अपितु अपने कर्म से महान् बनता है।' यह उक्ति स्व. महामना सेठ श्रीमान् मोहनमलजी सा चोरडिया के सम्बन्ध मे एकदम खरी उतरती है। आपने तन, मन और धन से देश, समाज व धर्म की सेवा मे जो महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, वह जैन समाज के ही नही, बल्कि मानव-समाज के इतिहास में एक स्वर्ण-पृष्ठ के रूप मे अमर रहेगा। मद्रास शहर की प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक एव शैक्षणिक गतिविधि से आप गहराई से जुडे हुए थे और प्रत्येक क्षेत्र मे आप हर सम्भव सहयोग देते थे। आपका मार्गदर्शन एव सहयोग प्राप्त करने के लिए आपके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति सतुष्ट होकर ही लौटता था।

आपका जन्म २८ अगस्त, १९०२ मे नोखा ग्राम (राजस्थान) मे सेठ श्रीमान् सिरेमलजी चोरडिया के पुत्र रूप मे हुआ। सन् १९१७ मे आप श्रीमान् सोहनलालजी के गोद आये और उसी वर्ष आपका विवाह हरसेलाव निवासी श्रीमान् बादलचन्दजी बाफणा की सुपुत्री सद्‌गुणसम्पन्ना श्रीमती नैनीकँवरबाई के साथ हुआ। तदनन्तर आप मद्रास पधारे।

श्रीमान् रतनचन्दजी, पारसमलजी, सरदारमलजी, रणजीतमलजी एव सम्पतमलजी आपके सुपुत्र हैं। अनेक पौत्र-पौत्री एव प्रपौत्र-प्रपौत्रियो से भरे-पूरे सुखी परिवार से आप सम्पन्न थे।

बचपन मे ही आपके माता-पिता द्वारा प्रदत्त धार्मिक सस्कारो के फलस्वरूप आपमे सरलता, सहजता, सौम्यता, उदारता, सहिष्णुता, नम्रता, विनयशीलता आदि अनेक मानवोचित सद्‌गुण स्वाभाविक रूप से विद्यमान थे। आपका हृदय सागर-सा विशाल था, जिसमे मानवमात्र के लिये ही नही, अपितु प्राणीमात्र के कल्याण की भावना निहित थी। आपकी प्रेरणा, मार्गदर्शन एव सुयोग्य नेतृत्व मे जनकल्याण एव समाजकल्याण के अनेको कार्य सम्पन्न हुए, जिनमे आपने तन, मन, धन से पूर्ण सहयोग दिया। उनकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत है।

१. योगदान : शिक्षा के क्षेत्र मे

समाज मे व्याप्त शैक्षणिक अभाव को दूर करने एव समाज के धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षण का प्रचार-प्रसार करने की आपकी तीव्र अभिलाषा थी। परिणामस्वरूप सन् १९२६ मे श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन पाठशाला का शुभारम्भ हुआ। तदुपरान्त व्यावहारिक शिक्षण के प्रचार हेतु जहाँ श्री जैन हिन्दी प्राईमरी स्कूल, अमोलकचन्द गेलडा जैन हाई स्कूल, ताराचन्द गेलडा जैन हाई स्कूल, श्री गणेशीबाई गेलडा जैन गर्ल्स हाई स्कूल, मागीचन्द भडारी जैन हाई स्कूल, बोर्डिंग होम एव जैन महिला विद्यालय आदि शिक्षण सस्थाओ की स्थापना हुई, वहाँ आध्यात्मिक एव धार्मिक ज्ञान के प्रसार हेतु श्री दक्षिण भारत जैन स्वाध्याय सघ का शुभारम्भ हुआ।

अगरचन्द मानमल जैन कॉलेज की स्थापना द्वारा शिक्षाक्षेत्र मे आपने जो अनुपम एव महान् योगदान दिया है, वह सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। इसके अलावा कुछ ही वर्ष पूर्व मद्रास विश्वविद्यालय मे जैन सिद्धातो पर विशेष शोध हेतु स्वतन्त्र विभाग की स्थापना कराने मे भी आपने अपना सक्रिय योगदान दिया।

इस तरह आपने व्यावहारिक एव आध्यात्मिक ज्ञान-ज्योति जलाकर, शिक्षा के अभाव को दूर करने की अपनी भावना को साकार/मूर्त्त रूप दिया।

२. योगदान : चिकित्सा के क्षेत्र मे

चिकित्सा क्षेत्र मे भी आप अपनी अमूल्य सेवाएँ अर्पित करने मे कभी पीछे नही रहे। सन् १९२७ मे आपने नोखा एव कुचेरा मे नि शुल्क आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना की। सन् १९४० मे कुचेरा औषधालय को विशाल धनराशि के साथ राजस्थान सरकार को समर्पित कर दिया, जो वर्तमान मे **'सेठ सोहनलाल चोरडिया सरकारी औषधालय'** के नाम से जनसेवा का उल्लेखनीय कार्य कर रहा है। इस सेवाकार्य के उपलक्ष मे राजस्थान सरकार ने आपको 'पालकी शिरोमोर' की पदवी से अलकृत किया।

अल्प व्यय मे चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध कराने हेतु मद्रास मे **श्री जैन मेडिकल रिलीफ सोसायटी** की स्थापना मे सक्रिय योगदान दिया। इसके तत्त्वावधान मे सम्प्रति १८ औषधालय, प्रसूतिगृह आदि सुचारु रूप से कार्य कर रहे हैं।

कुछ समय पूर्व ही आपने अपनी धर्मपत्नी के नाम प्रसूतिगृह एव शिशुकल्याणगृह की स्थापना हेतु पाँच लाख रुपये की राशि दान की। समय-समय पर आपने नेत्रचिकित्सा-शिविर आदि आयोजित करवाकर सराहनीय कार्य किया।

इस तरह चिकित्साक्षेत्र मे और भी अनेक कार्य करके आपने जनता की दु खमुक्ति हेतु यथाशक्ति प्रयास किया।

३. योगदान : जीवदया के क्षेत्र मे

आपके हृदय मे मानवजगत् के साथ ही पशुजगत् के प्रति भी करुणा का अजस्र स्रोत बहता रहता था। पशुओ के दु'ख को भी आपने सदैव अपना दु ख समझा। अत उनके दु ख और उन पर होने वाले अत्याचार निवारण मे सहयोग देने हेतु **'भगवान् महावीर अहिंसा प्रचार सघ'** की स्थापना कर एक व्यवस्थित कार्य शुरू किया। इस सस्था के माध्यम से जीवो को अभयदान देने एव अहिसा-प्रचार का कार्य बडे सुन्दर ढग से चल रहा है। आपकी उल्लिखित सेवाओ को देखते हुए यदि आपको 'प्राणीमात्र के हितचिन्तक' कहे तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

४. योगदान : धार्मिक क्षेत्र मे

आपके रोम-रोम मे धार्मिकता व्याप्त थी। आप प्रत्येक धार्मिक एव सामाजिक गतिविधि मे अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करते थे। जीवन के अन्तिम समय तक आपने जैन श्रीसघ मद्रास के सघपति के रूप मे अविस्मरणीय सेवाएँ दी। कई वर्षो तक अ भा श्वे स्था जैन कॉन्फ्रेस के अध्यक्ष पद पर रहकर उसके कार्यभार को बडी दक्षता के साथ सभाला।

आप अखिल भारतीय जैन समाज के सुप्रतिष्ठित अग्रगण्य नेताओ मे से एक थे। आप निष्पक्ष एव

सम्प्रदायवाद से परे एक निराले व्यक्तित्व के धनी थे। इसीलिए समग्र सन्त एव श्रावकसमाज आपको एक दृढ-धर्मी श्रावक के रूप मे जानता व ग्रादर देता था।

ग्राप जैन शास्त्रो एव तत्त्वो/सिद्धातो के ज्ञाता थे। ग्राप सन्त-सतियो के चातुर्मास कराने मे सदैव ग्रग्रणी रहते थे ग्रौर उनकी सेवा का लाभ बराबर लेते रहते थे। इस तरह धार्मिक क्षेत्र मे ग्रापका ग्रपूर्व योगदान रहा है।

इसी तरह नेत्रहीन, ग्रपग, रोगग्रस्त, क्षुधापीडित, ग्रार्थिक स्थिति से कमजोर बन्धुग्रो को समय-समय पर जाति-पाँति के भेदभाव से रहित होकर ग्रर्थ-सहयोग प्रदान किया।

इस प्रकार शिक्षणक्षेत्र मे, चिकित्साक्षेत्र मे, जीवदया के क्षेत्र मे, धार्मिक क्षेत्र मे एव मानव-सहायता ग्रादि हर सेवा के कार्य मे तन-मन-धन से ग्रापने यथासम्भव सहयोग दिया।

ऐसे महान् समाजसेवी, मानवता के प्रतीक को खोकर भारत का सम्पूर्ण मानवसमाज दुःख की ग्रनुभूति कर रहा है।

ग्राप चिरस्मरणीय बने, जन-जन ग्रापके ग्रादर्श जीवन से प्रेरणा प्राप्त करें, ग्रापकी ग्रात्मा चिरशांति को प्राप्त करे, हम यही कामना करते है।[1]

—मन्त्री

---

१ श्रीमान् भँवरलालजी सा. गोठी, मद्रास के सौजन्य से।

भगवतीसूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

धर्म और संस्कृति का जो विराट् वृक्ष लहलहाता दृग्गोचर हो रहा है, जिसकी जीवनदायिनी छाया और अमृतोपम फलों से जनजीवन अनुप्राणित हो रहा है, उसका मूल क्या है ?

उसका मूल है उन तत्त्वद्रष्टा ऋषि-मुनियों का स्वानुभव, चिन्तन, वाणी और उपदेश। वस्तुत उन तत्त्वद्रष्टा सत्य के साक्षात्कर्ता ऋषि-महर्षि, अरिहन्त, तीर्थंकर, बुद्धों द्वारा लोककल्याण हेतु व्यक्त कल्याणी वाणी ही इस संस्कृतिरूपी महावृक्ष का सिंचन संवर्धन करती आई है। उन महापुरुषों की वह वाणी ही उस-उस परम्परा के आधारभूत मूलग्रन्थों के रूप में प्रतिष्ठित हुई है, जैसे वैदिक ऋषियों की वाणी वेद, बुद्ध की वाणी त्रिपिटक और तीर्थंकरों की वाणी आगम रूप में विश्रुत हुई। महात्मा ईसा के उपदेश बाईबिल के रूप में आज विद्यमान है तो मुहम्मद साहब की वाणी कुरान के रूप में समादृत है। जरथुस्त्र के उपदेश अवेस्ता में प्रतिष्ठित हैं तो नानकदेव की वाणी गुरुग्रन्थ साहब के रूप में। निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक धर्म-परम्परा एवं संस्कृति का मूलाधार उसके श्रद्धेय ऋषि-महर्षियों की वाणी ही है।

तीर्थंकर, श्रमणसंस्कृति के परम श्रद्धेय, सत्य के साक्षात् द्रष्टा महापुरुष है। उनकी वाणी 'आगम' गणिपिटक के रूप में जैन धर्म एवं संस्कृति का मूल आधार है। इन्हीं आगमवचनों के दिव्य प्रकाश में युग-युग से मानव अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहा है। आगमवाणी साधकों के लिए प्रकाशस्तम्भ की भांति सदा-सर्वदा मार्गदर्शक रही है।

आगम-परिभाषा

आगम शब्द का प्रयोग जैन परम्परा के आदरणीय ग्रन्थों के लिए हुआ है। आगम शब्द का अर्थ ज्ञान है। आचारांग में **'आगमेत्ता आणवेज्जा'**[1] वाक्य का प्रयोग है, जिसका संस्कृत रूपान्तर है **'ज्ञात्वा आज्ञापयेत'**— जान कर के आज्ञा करे। **'लाघवं आगममाणे'**[2] का संस्कृत रूपान्तर है **'लाघवम् आगमयन्-अवबुध्यमानः'** लघुता को जानता हुआ।

व्यवहारभाष्य[3] में आगम-व्यवहार पर चिन्तन करते हुए आगम के प्रत्यक्ष और परोक्ष, ये दो भेद किए हैं। प्रत्यक्ष में केवलज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, अवधिज्ञान और इन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान को लिया गया है तथा परोक्ष ज्ञान में चतुर्दश पूर्व और उससे न्यून श्रुतज्ञान को लिया है। इससे यह स्पष्ट है कि आगम साक्षात् ज्ञान (प्रत्यक्ष

१ आचारांग १।५।४
२ आचारांग १।६।३
३ व्यवहारभाष्य, गाथा २०१

आगम) है। साक्षात् ज्ञान के आधार से जो उपदेश प्रदान किया जाता है और उससे श्रोताओ को जो ज्ञान होता है -वह परोक्ष आगम है। यहाँ पर यह स्मरण रखना होगा कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहन्त के उपदेश को परोक्ष आगम माना गया है। परोक्ष आगम भी दो प्रकार का है—(१) अलौकिक आगम और (२) लौकिक आगम। केवलज्ञानी या श्रुतज्ञानी के उपदेशो का जिसमे सकलन हो, वह शास्त्र भी आगम की अभिधा से अभिहित किया जाता है।

आर्यरक्षित ने अनुयोगद्वार मे आगम शब्द का प्रयोग शास्त्र के अर्थ मे किया है। उन्होने जीव के ज्ञान-गुणरूप प्रमाण के प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य और आगम ये चार प्रकार बताए है,[1] भगवती[2] व स्थानाङ्ग[3] मे भी ये भेद आये हैं। यहाँ पर आगम प्रमाण ज्ञान के अर्थ मे ही आया है। महाभारत, रामायण आदि ग्रन्थो को लौकिक आगम की अभिज्ञा दी गई है तो अरिहन्त द्वारा प्ररूपित द्वादशाग गणिपिटक को लोकोत्तर आगम कहा गया है। लोकोत्तर आगम को भावश्रुत भी कहा है।[4] ग्रन्थ आदि को द्रव्यश्रुत को सज्ञा दी गई है और श्रुतज्ञान को भावश्रुत कहा गया है। ग्रन्थ आदि को उपचार से श्रुत कहा है। द्वादशागी मे जिस श्रुतज्ञान का प्रतिपादन हुआ है, वही सम्यक् श्रुत है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आगम की दूसरी सज्ञा श्रुत है।

श्रुत और श्रुति

श्रुत और श्रुति ये दो शब्द है। श्रुति शब्द का प्रयोग वेदो के लिए मुख्य रूप से होता रहा है। श्रुति वेदो की पुरातन सज्ञा है और श्रुत शब्द जैन आगमो के लिए प्रयुक्त होता रहा है। श्रुति और श्रुत मे शब्द और अर्थ की दृष्टि से बहुत अधिक साम्य है। श्रुति और श्रुत दोनो का ही सम्बन्ध श्रवण से है। जो सुनने मे आता है वह श्रुत है[5] और वही भाववाचक मात्र श्रवण श्रुति है। श्रुत और श्रुति का वास्तविक अर्थ है - वह शब्द जो यथार्थ हो, प्रमाण रूप हो और जनमगलकारी हो। चाहे श्रमणपरम्परा हो, चाहे ब्राह्मणपरम्परा हो, दोनो परम्पराओ ने यथार्थ ज्ञाता, वीतराग आप्त पुरुषो के यथार्थ तत्त्ववचनो को ही श्रुत और श्रुति कहा है। प्रतीन काल म गुरु के मुखारविन्द से ही शिष्यगण ज्ञान श्रवण करते थ, इसीलिए वेद की सज्ञा श्रुति है और जैन आगमो की सज्ञा श्रुत है। जैन आगमो के प्रारम्भ म '**सुय मे आउस ! तेण भगवया एवमक्खाय**' वाक्य का प्रयोग है। लम्बे समय तक श्रुत सुन कर के ही स्मृतिपटल पर रखा जाता रहा है। जब स्मृतिया धुधली हुई, तब श्रुत लिखा गया।[6] यही बात वेद और पालीपिटको के लिए भी है। श्रुत के सम्बन्ध मे तत्त्वार्थभाष्य के सुप्रसिद्ध टीकाकार सिद्धसेन गणी ने लिखा है—इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला ग्रन्थानुसारी विज्ञान श्रुत है।[7]

आगम का पर्यायवाची सूत्र

अनुयोगद्वार सूत्र मे आगम के लिए 'सुत्तागमे' शब्द का प्रयोग हुआ है। आगम का अपर नाम सूत्र भी है। एक विशिष्ट प्रकार की शैली मे लिखे गए ग्रन्थ सूत्र के नाम से जाने जाते है। वैदिक परम्परा मे गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र आदि अनेक धर्मग्रन्थ सूत्र की विधा मे लिखे गए हैं। व्याकरण मे भी सूत्रशैली को अपनाया गया है।

---

१ अनुयोगद्वार
२ भगवती, ५।१।१९२
३ स्थानाङ्ग, ३।५०४
४ अनुयोगद्वार, सूत्र ५
५ श्रूयते आत्मना तदिति श्रुत शब्द । —विशेषावश्यकभाष्य-मलधारीया वृत्ति
६ वलीहपुरम्मि नयरे, देवड्ढिपमुहेण समणसघेण । पुत्थइ आगमु लिहियो, नवसय असीआओ वीराओ ॥
७ श्रुत इन्द्रियमनोनिमित्त ग्रन्थानुसारि विज्ञान यत् । —तत्त्वार्थभाष्य टीका १।२०

सूत्रशैली की मुख्य विशेषता यह है कि उसमे कम शब्दो मे ऐसी बात कही जाती है जो व्यापक और विराट् अर्थ को लिए हुए हो। इस प्रकार की जो विशिष्ट शब्दरचना है, वह सूत्र कहलाती है। यहाँ पर यह सहज ही जिज्ञासा हो सकती है कि सूत्र की जो परिभाषा की गई है—जो सूचना दे या सक्षेप मे व्यापक अर्थ को बताये वह सूत्र है, तो इस परिभाषा के अनुसार जैन आगमो को सूत्र की सज्ञा देना कहाँ तक उपयुक्त है? वैदिक परम्परा के गृह्य-सूत्र और धर्मसूत्र जो बहुत ही सक्षेप मे लिखे हुए है, वैसे जैन आगम नही लिखे गये हैं।

समाधान है—वैदिक परम्परा मे वैदिक आचार के सम्बन्ध मे जो नाना प्रकार के उपदेश हैं, उन उपदेशो का गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र मे सग्रह किया गया है। बिखरे हुए आचार-चिन्तन को सूत्रबद्ध कर सुरक्षित किया गया है, वैसे ही जैन धर्म और दर्शन के आचार और विचार के विभिन्न पहलुओ को ग्रन्थो मे आबद्ध कर सुरक्षित करने के कारण ये आगम, सूत्र कहे गये। आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यकनिर्युक्ति मे कहा है—तीर्थंकर अर्थ-रूप मे उपदेश देते हैं और गणधर उसे सूत्रबद्ध करते है।[1] द्वादशागी मे दूसरे अग का नाम सूत्रकृताग है और बौद्ध त्रिपिटको मे द्वितीय पिटक का नाम सुत्तपिटक है। इन दोनो ग्रन्थो मे सूत्र शब्द का प्रयोग हुआ है, ये दोनो ग्रन्थ सूत्र शैली मे नही हैं तथापि इन दोनो ग्रन्थो मे जो सूत्र शब्द आया है, वह सूत्रमनुसरन् रज अष्टप्रकार कर्म अपनयति तत सरणात् सूत्रम् (बृहत्कल्प टीका पृ ७५) जिसके अनुसरण से कर्मों का सरण अपनयन होता है वह सूत्र है, इस अर्थ मे है। जैन आगमो मे विविध प्रकार के अर्थों का बोध कराने की शक्ति रही हुई है, इसलिए भी जैन आगमो को सूत्र कहा गया है।

आगम का पर्यायवाची : प्रवचन

आगम का एक पर्यायवाची शब्द 'प्रवचन' भी है। सामान्य व्यक्ति की वाणी वचन है और विशिष्ट महापुरुषो के वचन प्रवचन हैं। आगम साहित्य मे प्रशस्त और प्रधान श्रुतज्ञान को प्रवचन की सज्ञा दी गई है। आगमो मे अनेक स्थलो पर निर्ग्रन्थ प्रवचन शब्द का प्रयोग हुआ है। भगवती मे साधको के जीवन का चित्रण करते हुए कहा है **'निग्गथे पावयणे अट्ठे, अय परमट्ठे, सेसे अणट्ठे' निग्गथे पावयणे निस्सकिया'**[2] अर्थात् निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थ वाला है, परमार्थ वाला है, शेष अनर्थकारी है निर्ग्रन्थप्रवचन मे निःशकित हो अर्थात् उसकी सम्पूर्ण आस्था निर्ग्रन्थ प्रवचन मे ही केन्द्रित हो।

गणधर गौतम ने एक बार जिज्ञासा प्रस्तुत की—"भगवन्! प्रवचन, प्रवचन कहलाता है या प्रवचनी, प्रवचन कहलाता है।"

समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—"अरिहन्त प्रवचनी है और द्वादश अग प्रवचन है।[3]

आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यकनिर्युक्ति मे लिखा है—तप-नियम-ज्ञान रूप वृक्ष पर आरूढ होकर अनन्तज्ञानी केवली भगवान् भव्यात्माओ के विबोध के लिए ज्ञानकुसुमो की वृष्टि करते हैं। गणधर अपने बुद्धिपट पर उन कुसुमो को झेलकर प्रवचनमाला गूथते है।[4] जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने निर्युक्ति मे आए हुए प्रवचन शब्द का अर्थ

१ 'अत्थ भासइ अरहा, सुत्त गन्थन्ति गणहरा निउण। —आव० निर्युक्ति गा० १९२

२ भगवती, २।५

३ भगवती, शतक २०, उद्देशक ८

४ तव नियमणाणरुक्ख आरूढो केवली अमियनाणी
तो मुयइ नाणवुट्ठि भवियजणविबोहणट्ठाए ॥
त बुद्धिमएण पडेण गणहरा गिण्हिउ निरवसेस।
तित्थयरभासियाइ गथति तओ पवयणट्ठा ॥ —आवश्यकनिर्युक्ति गा ८९-९०

करते हुए लिखा है —'**पंगयं वयणं पवयणमिह सुयनाण'.....'पवयणमहवा संघो'**[1] अर्थात् प्रकट वचन ही प्रवचन है, दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि सघ प्रवचन है। सघ को प्रवचन कहने का कारण यह है कि सघ का जो ज्ञानोपयोग है—वही प्रवचन है। इसलिए सघ और ज्ञान का अभेद मानकर सघ को प्रवचन कहा है। यहाँ पर वचन के आगे जो 'प्र' उपसर्ग लगा है, वह प्रशस्त और प्रधान इन दो अर्थों मे आया है। प्रशस्त वचन प्रवचन है अथवा प्रधान वचनरूप-श्रुतज्ञान प्रवचन है। श्रुतज्ञान मे भी द्वादशागी प्रधान है इसलिए वह द्वादशागी प्रवचन है।[2] प्रवचन के भी शब्द और अर्थ ये दो रूप है। शब्द, सूत्र के नाम से जाना जाता है और उस सूत्र क रचयिता हैं—गणधर। जिस अर्थ के आधार पर गणधरो ने सूत्र की रचना की, उस अर्थ के प्ररूपक हैं—तीर्थंकर।[3] यहाँ पर भी एक प्रश्न समुत्पन्न होता है कि तीर्थंकरो ने अर्थ का उपदेश दिया- क्या यह अर्थ का उपदेश बिना शब्द का था ? बिना शब्द के उपदेश देना सम्भव ही नही है, तो शब्दो के रचयिता गणधर क्यो माने जाते हैं ? तीर्थंकर क्यो नही ?

इस प्रश्न का समाधान जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने इस प्रकार किया है तीर्थंकर भगवान् अनुक्रम से बारह अगो का यथावत् उपदेश प्रदान नही करते किन्तु सक्षेप मे सिद्धान्त उपदेश देते है। उस सक्षिप्त उपदेश को गणधर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा से बारह अगो मे इस प्रकार सग्रथित करते है, जिससे सभी सरलता से समझ सके। इस प्रकार अर्थ के कर्त्ता तीर्थंकर हैं और सूत्र के कर्त्ता गणधर हैं। सक्षेप मे तीर्थंकरो का उपदेश किस प्रकार होता है इस प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है—'**उप्पन्ने इ वा, विगमे इ वा, धुवे इ वा**'। इस मातृकापदत्रय का ही उपदेश तीर्थंकर प्रदान करते हैं और उसी का विस्तार गणधर द्वादशागी के रूप मे करते हैं।[4]

सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, प्रवचन, आज्ञा वचन, उपदेश, प्रज्ञापन, आगम[5] आप्तवचन, ऐतिह्य, आम्नाय, जिनवचन[6] और श्रुत, ये सभी आगम के ही पर्यायवाची शब्द है। अतीत काल मे 'श्रुत' शब्द का प्रयोग आगम के अर्थ मे अधिक होता था।[7] 'श्रुतकेवली', 'श्रुतस्थविर'[8] शब्द का प्रयोग आगमो मे अनेक स्थलो पर निहारा जा सकता है पर कही पर भी 'आगमकेवली' या आगमस्थविर' शब्द का प्रयोग नही हुआ है।

अंग आगमो का मौलिक चिन्तन : परमाणु विज्ञान

आगमो का मौलिक विभाग अग है। उसमे जहा पर धर्म और दर्शन की गम्भीर चर्चाए है, आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध मे गहरा विवेचन है, वहाँ अणु के सम्बन्ध मे भी तलस्पर्शी वर्णन है। आज के वैज्ञानिक अणु के सम्बन्ध मे अन्वेपण करने मे जुटे हुए हैं, किन्तु अणु के सम्बन्ध मे जिस सूक्ष्मता से चिन्तन श्रमण भगवान् महावीर ने किया है उतनी सूक्ष्मता से आधुनिक वैज्ञानिक नही कर सके है। आज का वैज्ञानिक जिसे अणु कहता है,

१ विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११९२
२. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १०६८, १३६७
३ विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १११९-११२४।
४ देखिए विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११२२ की टीका।
५ (क) सुय-सुत्त-गन्थ-सिद्धन्त-पवयणे आण-वयण-उवएसे। पण्णवण-आगमे या एगट्ठा पज्जवा सुत्ते।
अनुयोगद्वार ४
(ख) विशेषावश्यकभाष्य, गा ८९७
६ तत्त्वार्थभाष्य, १-२०
७ नन्दीसूत्र, ४१
८ स्थानाग सूत्र १५०

महावीर उसे स्कन्ध कहते है। महावीर की दृष्टि से अणु बहुत ही सूक्ष्म है। वह स्कन्ध से पृथक् निरंश तत्त्व है। परमाणुपुद्गल[1] अविभाज्य है, अच्छेद्य है, अभेद्य है, अदाह्य है। ऐसा कोई उपाय, उपचार या उपाधि नही जिससे उसका विभाग किया जा सके। किसी भी तीक्ष्णातितीक्ष्ण शस्त्र और अस्त्र से उसका विभाग नही हो सकता। जाज्वल्यमान अग्नि उसे जला नही सकती। महामेघ उसे आर्द्र नही कर सकता। यदि वह गगा नदी के प्रतिस्रोत मे प्रविष्ट हो जाए तो वह उसे बहा नही सकता। परमाणुपुद्गल अनर्घ है, अमध्य है, अप्रदेशी है, सार्ध नही है, समध्य नही है, सप्रदेशी नही है।[2] परमाणु न लम्बा है, न चौड़ा है और न गहरा है। वह इकाई रूप है। सूक्ष्मता के कारण वह स्वय आदि है, स्वय मध्य है और स्वय अन्त है।[3] जिसका आदि-मध्य-अन्त एक ही है, जो इन्द्रियग्राह्य नही है, अविभागी है, ऐसा द्रव्य परमाणु है।[4]

जीवविज्ञान

परमाणु के सम्बन्ध मे ही नही जीवविज्ञान के सम्बन्ध मे भी भगवान् महावीर ने जो रहस्य उद्घाटित किए हैं, वे अद्भुत हैं, अपूर्व है। भगवान् महावीर ने जीवो को छह निकायो मे विभक्त किया है। त्रसनिकाय के जीव प्रत्यक्ष है। वनस्पतिनिकाय के जीव भी आधुनिक विज्ञान के द्वारा मान्य किए जा चुके हैं, किन्तु आधुनिक विज्ञान पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु—इन चार निकायो में जीव नही समझ पाया है। भगवान् महावीर ने पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु मे केवल जीव का अस्तित्व ही नही माना है अपितु उनमे आहारसज्ञा, भयसज्ञा मैथुनसज्ञा और परिग्रहसज्ञा, क्रोधसज्ञा, मानसज्ञा, मायासज्ञा, लोभसज्ञा और लोकसज्ञा का भी अस्तित्व माना है। वे जीव श्वासोच्छ्वास भी लेते हैं। मानव जैसे श्वास के समय प्राणवायु ग्रहण करता है वैसे पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय आदि के जीव श्वास काल मे केवल वायु को ही ग्रहण नही करते अपितु पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति और अग्नि, इन सभी के पुद्गल द्रव्यो को भी ग्रहण करते है।[5] पृथ्वीकाय के जीवो मे भी आहार की इच्छा होती है वे प्रतिपल, प्रतिक्षण आहार ग्रहण करते रहते हैं। उनमे एक इन्द्रिय होती है और वह है स्पर्श-इन्द्रिय। उसी से उनमे चैतन्य स्पष्ट होता है अन्य चैतन्य की धाराए उनमे अस्पष्ट होती हैं।[6] पृथ्वीकायिक जीवो का अल्पतम जीवनकाल अन्तर्मुहूर्त का है और उत्कृष्ट जीवनकाल २२,००० वर्ष का है। आधुनिक विज्ञान ने वनस्पति के जीवो के सम्बन्ध मे अध्ययन कर उसके सम्बन्ध में अनेक रहस्यो को अनावृत किया है। स्नेहपूर्ण सद्-व्यवहार से वनस्पति प्रफुल्लित होती है और घृणापूर्ण व्यवहार मे मुरझा जाती है। इस प्रकार की अनेक बाते जीव-विज्ञान के सम्बन्ध मे आगम साहित्य मे आई है, जिसे सामान्य बुद्धि ग्रहण नही कर पाती। इसी तरह भूगोल और खगोल विद्या के सम्बन्ध में भी जैन आगम साहित्य मे पर्याप्त सामग्री है। वैज्ञानिक अभी तक जितना जान पाए है, उससे अधिक सामग्री अज्ञात है। केवल पौराणिक चिन्तन कहकर उस सामग्री की उपेक्षा नही की जा सकती। अन्वेषणा करने पर अनेक नए तथ्य उजागर हो सकते है। वैज्ञानिको को चिन्तन करने के लिए नई दृष्टि प्रदान कर सकते हैं।

---

१ भगवती, ५।७
२ भगवती, ५।७
३ राजवार्तिक, ५।२५।१
४ सर्वार्थसिद्धि टीका-सूत्र ५।२५
५ भगवती, ९।३४।२५३-२५४
६ भगवती, १।१।३२

जैन आगमो मे उस युग की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियो का भी यत्र-तत्र चित्रण हुआ है। समाज और संस्कृति का अध्ययन करने वाले शोधार्थियो के लिए यह सामग्री बहुत ही दिलचस्प और ज्ञानवर्द्धक है। भाषाविज्ञान और अन्य अनेक दृष्टियो से जैन आगमो का अध्ययन चिन्तन की अभिनव सामग्री प्रदान करने मे सक्षम है।

जैन आगमों का मूल स्रोत वेद नहीं

कितने ही पाश्चात्य और पौर्वात्य विज्ञो का यह अभिमत है कि जैन आगम-साहित्य मे जो चिन्तन आया है, उसका मूल स्रोत वेद है। क्योंकि वर्तमान मे जितना भी साहित्य है, उन सबमे प्राचीनतम साहित्य वेद है। ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है किन्तु आधुनिक अन्वेषणा ने उन विज्ञो के मत को निरस्त कर दिया है। मोहनजोदडो और हडप्पा के उत्खनन मे प्राप्त ध्वसावशेषो ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्यों के भारत मे आने के पूर्व भारतीय संस्कृति और धर्म पूर्ण रूप से विकसित था।[1] शोधार्थी मनीषियो का यह मानना है कि जो आर्य भारत मे बाहर से आए थे, उन आर्यों ने वेदो की रचना की। जब वेदो मे भारतीय चिन्तन का सम्मिश्रण हुआ तो वेद जो अभारतीय थे, वे भारतीय चिन्तन के रूप मे विज्ञो के द्वारा मान्य किए गए। आर्य भ्रमणशील थे, भ्रमणशील होने के कारण उनकी संस्कृति अच्छी तरह से विकसित नही हुई थी जबकि भारत के आद्य निवासियो की संस्कृति स्थिर संस्कृति थी। वे एक स्थान पर ही अवस्थित थे, इस कारण उनकी संस्कृति आर्यों की संस्कृति से अधिक विकसित थी, वह एक प्रकार से नागरिक संस्कृति थी। बाहर से आने वाले आर्यों की अपेक्षा यहां के लोग अधिक सुसंस्कृत थे। जब हम वेदो का संहिताविभाग और ब्राह्मण ग्रन्थो का गहराई से अध्ययन करते हैं तो उन ग्रन्थो मे आर्यों के संस्कारो का प्राधान्य दृग्गोचर होता है, पर उसके पश्चात् लिखे गये आरण्यक, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, स्मृतिशास्त्र आदि जो वैदिक परम्परा का साहित्य है, उसमे काफी परिवर्तन हुआ है। बाहर से आए हुए आर्यों ने भारतीय संस्कारो को इस प्रकार से ग्रहण किया कि वे अभारतीय होने पर भी भारतीय बन गए। इन नये संस्कारो का मूल अवैदिक परम्परा मे रहा हुआ है। वह अवैदिक परम्परा जैन और बौद्ध परम्परा है। अवैदिक परम्परा के प्रभाव के कारण ही जिन विषयो की चर्चा वेदो मे नही हुई, उनकी चर्चा उपनिषद् आदि मे हुई है। वेदो मे आत्मा, पुनर्जन्म, व्रत आदि की चर्चाए नही थीं, पर उपनिषदो मे इन पर खुलकर चर्चाए हुई है और आचारसंहिता मे भी परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन का मूल आधार अवैदिक परम्परा रही है। दूसरे शब्दो मे यो कहा जा सकता है कि वेदो के पश्चात् जो ग्रन्थ निर्मित हुए उन पर श्रमणसंस्कृति की छाप स्पष्ट रूप से निहारी जा सकती है।

वेदो मे सृष्टितत्त्व के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है तो श्रमणसंस्कृति मे संसारतत्त्व पर गहराई से विचार किया गया है। वैदिक दृष्टि से सृष्टि के मूल मे एक ही तत्त्व है तो श्रमणसंस्कृति ने संसारतत्त्व के मूल मे जड और चेतन ये दो तत्त्व माने हैं। वैदिक परम्परा मे सृष्टि कब उत्पन्न हुई? इस सम्बन्ध मे विचार व्यक्त किया गया है तो श्रमणसंस्कृति की दृष्टि से संसारचक्र अनादि काल से चल रहा है। उसका न तो आदि है और न अन्त ही है। वेदो मे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन महाव्रतो की चर्चा नही हुई है। यहाँ तक कि हिंसा और परिग्रह पर बल दिया गया है। वाजसनेयीसंहिता[2] मे पुरुषमेधयज्ञ मे १८४ पुरुषो के वध

१ Indian Pattern of Life and Thought—A Glimpse of its early phases,—Indo-Asian Culture—Page 47 Publication year 1959—Dr R N Dandekar.

२ वाजसनेयीसंहिता, ३०

का संकेत किया गया है। ऋग्वेद,[1] विष्णुस्मृति,[2] मनुस्मृति[3] आदि ग्रन्थो मे भी यज्ञ-याग के लिए की गई हिंसा को हिंसा नही समझा गया है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' जैसे गर्हित सूत्र बनाए गए थे। श्रमण-संस्कृति के दिव्य प्रभाव से ही वेदो के पश्चात् निर्मित साहित्य में व्रतो की चर्चाएं हुई हैं।

डा. हरमन जैकोबी का अभिमत है कि जैनों ने अपने व्रत ब्राह्मणों से उधार लिए हैं।[4] ब्राह्मण सन्यासी अहिंसा, सत्य, अचौर्य, सन्तोष और मुक्तता उन महाव्रतो का पालन करते थे जो आगे चलकर जैन महाव्रतों का आधार बने, पर जैकोबी की इस कल्पना का कोई ऐतिहासिक आधार नही है। बौधायन में उल्लिखित व्रतो के आधार पर डॉ. जैकोबी ने जो कल्पना की है, वह सत्य तथ्य से परे है, क्योंकि व्रत का सम्बन्ध सन्यास आश्रम से है। वेदो मे संन्यास आश्रम की कोई चर्चा नही है। वैदिक युग मे ब्रह्मचर्य और गृहस्थ ये दो ही व्यवस्थाए थी। सन्यास की चर्चा उपनिषत्काल मे प्रारम्भ हुई। बृहदारण्यक मे सन्यास का उल्लेख अवश्य हुआ है।[5] जाबालोप-निषद् मे चार आश्रमो की व्यवस्था प्राप्त है।[6] उपनिषद्साहित्य के पूर्व वैदिक परम्परा में पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा की प्रधानता थी। तैत्तिरीयसहिता मे वर्णन है कि ब्राह्मण तीन ऋणो के साथ जन्म ग्रहण करता है। ऋषियो के ऋण से मुक्त होने के लिए ब्रह्मचर्य है। देवो के ऋण से मुक्त होने के लिए यज्ञ है और पितरों के ऋण से उऋण होने के लिए पुत्रवान् होना आवश्यक है।[7] एक बार वेधस राजा ने नारद ऋषि से पूछा—पुत्र से क्या लाभ ? नारद ने उत्तर प्रदान करते हुए कहा—यदि पिता अपने पुत्र का मुख देख ले तो पितृ-ऋण से मुक्त हो जाता है और अमर बन जाता है।[8] इस प्रकार वैदिक परम्परा मे पुत्र की प्रधानता रही है। उसे त्राता माना है, जबकि जैनपरम्परा मे पुत्र को त्राता नही माना है।[9] वैदिक परम्परा मे गृहस्थ-आश्रम को सबसे प्रमुख आश्रम माना है—जिस प्रकार नदी और नद सागर मे आकर स्थिर हो जाते हैं, वैसे ही सभी आश्रम गृहस्थ-आश्रम मे स्थिर होते हैं।[10] इससे यह स्पष्ट है कि सन्यास और व्रत-की परम्परा श्रमणधर्म की देन है। श्रमणधर्म से ही वैदिक परम्परा ने व्रत आदि को ग्रहण किया है। वेद, ब्राह्मण

---

१. ऋग्वेद, १०।९०, १।२४।३०, ९।३

२ सेक्रेड बुक्स आफ द ईस्ट, जिल्द ७, ५१, ६१-६३

३ मनुस्मृति ५।२२। २९।४४

४. "It is therefore probable that the Jainas have borrowed their own vows from the Brahmans, not from the Buddhists"

—The Sacred Books of the East, Vol XXII, Introduction p 24

५. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४।४।२२

६ (क) जाबालोपनिषद् ४ (ख) वशिष्ठ धर्मशास्त्र ७।१।२

७ तैत्तिरीयसहिता ६।३।१०।५

८ ऋणमस्मिन् सनयत्यमृतत्त्व च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्। —ऐतरेय ब्राह्मण, ७ वी पञ्चिका, अध्याय ३

९. जाया य पुत्ता न हवन्ति ताण। —उत्तराध्ययन अ. १४, श्लो १२

१० गृहस्थ एव यजते, गृहस्थस्तप्यते तप।
चतुर्णामिश्रमाण तु, गृहस्थश्च विशिष्यते॥
यथा नदी नदा. सर्वे, समुद्रे यान्ति सस्थितिम्।
एवामाश्रमिण सर्वे, गृहस्थे यान्ति सस्थितिम्॥ —वशिष्ठ-धर्मशास्त्र ८। १४-१५

और आरण्यक साहित्य मे महाव्रतो का उल्लेख नही है। जिन उपनिषदों, पुराणों और स्मृतिग्रन्थो मे महाव्रतों का वर्णन आया है उन पर तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ और जैनधर्म का प्रभाव है। इस सत्य को महाकवि दिनकर ने स्वीकार करते हुए लिखा है– हिन्दुत्व और जैनधर्म आपस मे घुल-मिल कर अब इतने एकाकार हो गए हैं कि आज का साधारण हिन्दू यह जानता भी नही कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैनधर्म के उपदेश थे, हिन्दुत्व के नही।[1] अन्य स्वतन्त्र चिन्तको ने भी इस सत्य को बिना सकोच स्वीकार किया है। डॉ डाडेकर आदि का भी यही अभिमत रहा है।

वेदो मे योग और ध्यान की भी प्रक्रिया नही है। ऋग्वेद मे योग शब्द मिलता है। वहाँ पर योग शब्द का अर्थ जोडना मात्र है।[2] पर आगे चलकर वही योग शब्द उपनिषदो मे पूर्ण रूप से आध्यात्मिक अर्थ मे आया है।[3] कितने ही उपनिषदो मे तो योग और योगसाधना का सविस्तृत वर्णन किया गया है।[4] योग, योगोचित स्थान, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, कुण्डलिनी आदि का विशद वर्णन है। सिन्धुसस्कृति के भग्नावशेषो मे ध्यानमुद्रा के प्रतीक प्राप्त हुये हैं, जिससे भी इस कथन को बल प्राप्त होता है। सक्षेप मे यही सार है कि जैन आगमो का मूल स्रोत वेद नही हैं। वेदो से उसने सामग्री ग्रहण नही की है। उसकी सामग्री का मूल स्रोत तीर्थंकर हैं। केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन समुत्पन्न होने पर सभी जीवो के रक्षा रूप दया के लिए तीर्थंकर पावन प्रवचन करते है और वह प्रवचन ही आगम है। इस प्रवचन का स्रोत केवल-ज्ञान, केवल-दर्शन है। इस तरह अग आगम श्रमणसस्कृति के प्रतिनिधि तथा आधारभूत ग्रन्थ हैं।

व्याख्याप्रज्ञप्ति

द्वादशागी मे व्याख्याप्रज्ञप्ति का पाचवाँ स्थान है। यह आगम प्रश्नोत्तर शैली मे लिखा हुआ है इसलिए इसका नाम **व्याख्याप्रज्ञप्ति** है। समवायाङ्ग[5] और नन्दी[6] मे लिखा है कि व्याख्याप्रज्ञप्ति मे ३६,००० प्रश्नो का

---

१ सस्कृति के चार अध्याय, पृ १२५

२ (क) स घा नो योग आ भुवत्। —ऋग्वेद, १ । ५ । ३
(ख) स धीना योगमिन्वति। —ऋग्वेद, १ । १८ । ७
(ग) कदा योगी वाजिनो रासभस्य। —ऋग्वेद १ । ३४ । ९
(घ) वाजयन्निव नू रथान् योगा अग्नेरुपस्तुहि। —ऋग्वेद २ । ८ । १

३ (क) अध्यात्मयोगाधिगमेन देव मत्वा धीरो हर्ष-शोकौ जहाति। - कठोपनिषद् १ । २ । १२
(ख) ता योगमितिमन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ - कठोपनिषद् २ । ३ । ११
(ग) तैत्तिरीयोपनिषद् २ । १४

४ योगराजोपनिषद्, अद्वयतारकोपनिषद्, अमृतनादोपनिषद्, त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, ध्यानबिन्दूपनिषद्, हस, ब्रह्मविद्या, शाण्डिल्य, वाराह, योगशिख, योगतत्त्व, योगचूडामणि, महावाक्य, योगकुण्डली, मण्डलब्राह्मण, पाशुपतब्राह्मण, नादबिन्दु, तेजोबिन्दु, अमृतबिन्दु, मुक्तिकोपनिषद्। इन सभी २१ उपनिषदो मे योग का वर्णन हुआ है।

५ समवायाङ्ग, सूत्र ९३

६ नन्दीसूत्र ८५

व्याकरण है। दिगम्बरपरम्परा के आचार्य अकलंक[1] ने, आचार्य पुष्पदंत और भूतबलि[2] ने और आचार्य गुणधर[3] ने लिखा है कि व्याख्याप्रज्ञप्ति मे ६०,००० प्रश्नो का व्याकरण है। उसका प्राकृत नाम 'विहायपण्णत्ति' है। किन्तु प्रतिलिपिकारो ने विवाहपण्णत्ति और वियाहपण्णत्ति ये दोनो नाम भी दिए हैं। नवांगी टीकाकार आचार्य अभयदेव ने वियाहपण्णत्ति का अर्थ करते हुए लिखा है—गौतम आदि शिष्यो को उनके प्रश्नों का उत्तर प्रदान करते हुए श्रमण भगवान् महावीर ने श्रेष्ठतम विधि से जो विविध विषयो का विवेचन किया है, वह गणधर आर्य सुधर्मा द्वारा अपने शिष्य जम्बू को प्ररूपित किया गया। जिसमे विशद् विवेचन किया गया हो वह व्याख्या-प्रज्ञप्ति है।[4]

अन्य आगमो की अपेक्षा व्याख्याप्रज्ञप्ति आगम अधिक विशाल है। विषयवस्तु की दृष्टि से भी इसमें विविधता है। विश्वविद्या की ऐसी कोई भी अभिधा नही है, जिसकी प्रस्तुत आगम मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में चर्चा न की गई हो। प्रश्नोत्तरो के द्वारा जैन तत्त्वज्ञान, इतिहास की अनेक घटनाए, विभिन्न व्यक्तियो का वर्णन और विवेचन इतना विस्तृत किया गया है कि प्रबुद्ध पाठक सहज ही विशाल ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस दृष्टि से इसे प्राचीन जैन ज्ञान का विश्वकोष कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। इस आगम के प्रति जनमानस मे अत्यधिक श्रद्धा रही है। इतिहास के पृष्ठ साक्षी है, श्रद्धालु श्राद्धगण भक्ति-भावना से विभोर होकर सद्गुरुओ के मुख से इस आगम को सुनते थे तो एक-एक प्रश्न पर एक-एक स्वर्ण-मुद्राए ज्ञान-वृद्धि के लिए दान के रूप मे प्रदान करते थे। इस प्रकार ३६,००० स्वर्ण-मुद्राए समर्पित कर व्याख्याप्रज्ञप्ति को श्रद्धालुओ ने सुना है। इस प्रकार इस आगम के प्रति जनमानस मे अपार श्रद्धा रही है। श्रद्धा के कारण ही व्याख्याप्रज्ञप्ति के पूर्व 'भगवती' विशेषण प्रयुक्त होने लगा और शताधिक वर्षों से तो 'भगवती' विशेषण न रहकर स्वतत्र नाम हो गया है। वर्तमान मे 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' की अपेक्षा 'भगवती' नाम अधिक प्रचलित है।[5]

समवायाङ्ग मे यह बताया गया है कि अनेक देवताओ, राजाओ व राजऋषियो ने भगवान् महावीर से विविध प्रकार के प्रश्न पूछे। भगवान् ने उन सभी प्रश्नो का विस्तार से उत्तर दिया। इस आगम मे स्वसमय, परसमय, जीव, अजीव, लोक, अलोक आदि की व्याख्या की गई है।[6] आचार्य अकलङ्क के मन्तव्यानुसार प्रस्तुत आगम मे जीव है या नही ? इस प्रकार के अनेक प्रश्नो का निरूपण किया गया है।[7] आचार्य वीरसेन ने बताया है कि

---

१ तत्त्वार्थवार्तिक १।२०

२ षट्खण्डागम, खण्ड १, पृष्ठ १०१

३ कषायपाहुड, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १२५

४ (क) 'वि-विविधा, आ-अभिविधिना, ख्या-ख्यानाति भगवतो महावीरस्य गौतमादीन् विनेयाम् प्रति प्रश्नितपदार्थप्रतिपादनानि व्याख्या, ता प्रज्ञाप्यन्ते, भगवता सुधर्मस्वामिना जम्बूनामानमभि यस्याम्।''

(ख) विवाह-प्रज्ञप्ति— अर्थात् जिसमे विविध प्रवाहो की प्रज्ञापना की गई है—यह विवाहप्रज्ञप्ति है।

(ग) इसी प्रकार 'विवाहपण्णत्ति' शब्द की व्याख्या मे लिखा है—'विबाधाप्रज्ञप्ति' अर्थात् जिसमे निर्बाध रूप से अथवा प्रमाण से अबाधित निरूपण किया गया है, वह विवाहपण्णत्ति है।

५ महायान बौद्धो मे प्रज्ञापारमिता जो ग्रन्थ है उसका अत्यधिक महत्त्व है अत अष्ट प्राहसिका प्रज्ञापारमिता का अपर नाम भगवती मिलता है। —देखिए—शिक्षा समुच्चय, पृ १०४-११२

६ समवायाङ्ग, सूत्र ९३

७ तत्त्वार्थवार्तिक, १।२०

व्याख्याप्रज्ञप्ति मे प्रश्नोत्तरों के साथ ही ९६,००० छिन्नछेदनयो[1] से ज्ञापनीय शुभ और अशुभ का वर्णन है।[2]

प्रस्तुत आगम में एक श्रुतस्कन्ध, एक सौ एक अध्ययन, दस हजार उद्देशनकाल, दस हजार समुद्देशन-काल, छत्तीस हजार प्रश्न और उनके उत्तर, २,८८,००० पद और सख्यात अक्षर हैं। व्याख्याप्रज्ञप्ति की वर्णन-परिधि मे अनत गम, अनत पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर आते हैं।

आचार्य अभयदेव ने पदो की सख्या २,८८,००० बताई है तो समवायाङ्ग मे पदों की सख्या ८४,००० बताई है। व्याख्याप्रज्ञप्ति के अध्ययन 'शतक' के नाम से विश्रुत हैं। वर्तमान मे इसके १३८ शतक और १९२३ उद्देशक प्राप्त होते हैं। प्रथम ३२ शतक पूर्ण स्वतन्त्र हैं, तेतीस से उनचालीस तक के सात शतक १२-१२ शतको के समवाय है। चालीसवाँ शतक २१ शतको का समवाय है। इकतालीसवाँ शतक स्वतन्त्र है। कुल मिलाकर १३८ शतक हैं। इनमे ४१ मुख्य और शेष अवान्तर शतक हैं।

शतको मे उद्देशक तथा अक्षर-परिमाण इस प्रकार है—

शतक	उद्देशक	अक्षर-परिमाण	शतक	उद्देशक	अक्षर-परिमाण
१	१०	३८८४१	१८	१०	२२४४३
२	१०	२३८१८	१९	१०	८०२७
३	१०	३६७०२	२०	१०	१९८७१
४	१०	७५३	२१	आठ वर्ग ८०	१६३०
५	१०	२५६९१	२२	छह वर्ग ६०	१०६८
६	१०	१८६५२	२३	पाच वर्ग ५०	७१५
७	१०	२४९३५	२४	२४	३९९०६
८	१०	४८५३४	२५	१२	४५१२३
९	३४	४५८५९	२६	११	४४५५
१०	३४	९९०७	२७	११	१९०
११	१२	३२३३८	२८	११	६९४
१२	१०	३२८०८	२९	११	१०२७
१३	१०	२१९१४	३०	११	४७६४
१४	१०	१६०३३	३१	२८	२३४४
१५	—	३९८१२	३२	२८	३६३
१६	१४	१५९३९	३३	(१२) १२४	३०८९
१७	१७	८४१२	३४	(१२) १२४	८९६४

१ वह व्याख्यापद्धति, जिसमे प्रत्येक श्लोक और सूत्र की स्वतन्त्र व्याख्या की जाती है और दूसरे श्लोको और सूत्रो से निरपेक्ष व्याख्या भी की जाती है। वह व्याख्यापद्धति छिन्नछेदनय के नाम से पहचानी जाती है।

२ कषायपाहुड भाग १, पृ. १२५

शतक	उद्देशक		अक्षर-परिमाण	शतक	उद्देशक		अक्षर-परिमाण
३५	(१२)	१३२	४१८१	४०	(२१)	२३१	२७३४
३६	(१२)	१३२	७३१	४१		१९६	३५१६
३७	(१२)	१३२	११५				
३८	(१२)	१३२	८७				
३९	(१२)	१३२	१३९	१३८		१९२३	६१८२२४

मंगल

वर्तमान मे द्वादशागी के ग्यारह अग उपलब्ध हैं । बारहवाँ अग दृष्टिवाद इस समय विच्छिन्न हो चुका है । ग्यारह अगो में से केवल भगवती सूत्र के प्रारम्भ मे ही मगलवाक्य है । अन्य किसी भी अंग सूत्र मे मगलवाक्य नहीं है । सहज ही जिज्ञासा हो सकती है कि भगवती मे ही मगलवाक्य क्यो है ? इस जिज्ञासा का समाधान दो दृष्टियो से किया जाता है—एक तर्क की दृष्टि से, दूसरा श्रद्धा की दृष्टि से । तार्किक चिन्तको का अभिमत है कि आगमयुग मे मगलवाक्य की परम्परा नही थी । मगल, अभिधेय, सम्बन्ध और प्रयोजन ये चारो अनुबन्ध दार्शनिक युग की देन हैं । आगमकार अपने अभिधेय के साथ ही आगम का प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि आगम स्वय ही मंगल हैं । इसलिए उनमे मगलवाक्य की आवश्यकता नहीं । दिगम्बर परम्परा के आचार्य वीरसेन और जिनसेन ने लिखा है कि आगम मे मगलवाक्य का नियम नही है, क्योकि परमागम मे चित्त को केन्द्रित करने मे नियमत: मगल का फल उपलब्ध हो जाता है ।[1] अत भगवती मे जो मगलवाक्य आये हैं वे प्रक्षिप्त होने चाहिए । जब यह धारणा चिन्तको के मस्तिष्क मे रूढ हो गई—ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त मे मगलवाक्य होना चाहिये, तभी से मगलवाक्य लिखे गये ।[2]

श्रद्धा की दृष्टि से जब भगवती की रचना हुई तभी से मगलवाक्य है । मगल बहुत ही प्रिय शब्द है । अनन्तकाल से प्राणी मगल की अन्वेषणा कर रहा है । मगल के लिए गगनचुम्बी पर्वतो की यात्राएँ की, विराट्काय समुद्र को लांघा, बीहड जगलो को रोद डाला, अपार कष्ट सहन किए, पर मगल नही मिला । कुछ समय के लिए किसी को मगल समझ भी लिया गया, पर वस्तुत वह मगल सिद्ध नही हुआ । मगल शब्द पर चिन्तन करते हुए आचार्य हरिभद्र ने लिखा—जिसमे हित की प्राप्ति हो, वह मगल है अथवा जो मत्पदवाच्य आत्मा को ससार से अलग करता है—वह मगल है ।[3] आचार्य मलधारी हेमचन्द का अभिमत है—जिससे आत्मा शोभायमान हो, वह मगल है या जिससे आनन्द और हर्ष प्राप्त होता है, वह मगल है । यो भी कह

---

१. एत्थ पुण णियमो णत्थि, परमागमुवजोगम्मि णियमेण मगलफलोवलभादो ।

—कषायपाहुड, भाग १. गा १, पृ. ९

२ त मगलमाइए मज्झे पज्जतए य सत्थस्स ।
पढम सत्थस्सा विग्घपारगमणाए निद्दिट्ठ ॥
तस्सेवाविग्घत्थ मज्झिमय अतिम च तस्सेव ।
अव्वोच्छित्तिनिमित्त सिस्सपसिस्साइवसस्स ॥—विशेषावश्यक भाष्य, गाथा १३-१४

३ 'मङ्ग्यतेऽधिगम्यते हितमनेनेति मगलम्' ··········'मा गालयति भवादिति मङ्गल—ससारादपनयति ।'

—दशवैकालिकटीका

सकते हैं कि जिसके द्वारा आत्मा पूज्य, विश्ववन्द्य होता है वह मगल है।[1] इस प्रकार इन व्युत्पत्तियो में लोकोत्तर मगल की अद्वितीय महिमा प्रकट की गई है।

महामन्त्र : एक अनुचिन्तन

भगवतीसूत्र के प्रारम्भ मे मगलवाक्य के रूप मे "नमो अरिहताण, नमो सिद्धाण, नमो आयरियाण, नमो उवज्झायाण, नमो लोए सव्वसाहूण" "नमो बभीए लिवीए" —का प्रयोग हुआ है। नमोकार मन्त्र जैनों का एक सार्वभौम और सम्प्रदायातीत मन्त्र है। वैदिकपरम्परा मे जो महत्त्व गायत्री मन्त्र को दिया गया है, बौद्धपरम्परा मे जो महत्त्व 'तिसरन" मन्त्र को दिया गया है, उससे भी अधिक महत्त्व जैनपरम्परा मे इस महामन्त्र का है। इसकी शक्ति अमोघ है और प्रभाव अचिन्त्य है। इसकी साधना और आराधना से लौकिक और लोकोत्तर सभी प्रकार की उपलब्धिया होती है। यह महामन्त्र अनादि और शाश्वत है। सभी तीर्थंकर इस महामन्त्र को महत्त्व देते आये हैं। यह जिनागम का सार है। जैसे तिल का सार तेल है, दूध का सार घृत है, फूल का सार इत्र है, वैसे ही द्वादशागी का सार नमोक्कार महामन्त्र है। इस महामन्त्र मे समस्त श्रुतज्ञान का सार रहा हुआ है, क्योकि परमेष्ठी के अतिरिक्त अन्य श्रुतज्ञान कुछ भी नही है। पच परमेष्ठी अनादि होने के कारण यह महामन्त्र अनादि माना गया है। यह महामन्त्र कल्पवृक्ष, चिन्तामणिरत्न या कामधेनु के समान फल दने वाला है। यह सत्य है कि जितना हम इस महामन्त्र को मानते है उतना इस महामन्त्र के सम्बन्ध मे जानते नही। मानने के साथ जानना भी आवश्यक है, जिससे इस महामन्त्र के जप मे तेजस्विता आती है।

'मननात् मन्त्र' मनन करने के कारण ही मन्त्र नाम पडा है। मन्त्र मनन करने को उत्प्रेरित करता है। वह चिन्तन को एकाग्र करता है, आध्यात्मिक ऊर्जा/शक्ति को बढाता है। चिन्तन/मनन कभी अन्धविश्वास नही होता, उसके पीछे विवेक का आलोक जगमगाता है। उसका सबसे बडा कार्य है—अनादि काल की मूर्च्छा को तोडना, मोह को भग कर मोहन के दर्शन करना। मन्त्र मूर्च्छा को नष्ट करने का सर्वोत्तम उपाय है। मूर्च्छा ऐसा आध्यात्मिक रोग है, जो सहसा नष्ट नही होता, उसके लिये निरन्तर मन्त्र जप की आवश्यकता होती है। यह महामन्त्र साधक के अन्तर्मानस मे यह भावना पैदा करता है कि मै शरीर नही हूँ, शरीर से परे हूँ। वह भेद-विज्ञान पैदा करता है। मत्र हृदय की आँख है। मत्र वह शक्ति है—जो आसक्ति को नष्ट कर अनासक्ति पैदा करती है। नमस्कार महामत्र का उपयोग जो साधक आसक्ति के लिए करते है—वे लक्ष्यभ्रष्ट हैं। लक्ष्यभ्रष्ट तीर का कोई उपयोग नही होता, वैसे ही लक्ष्यभ्रष्ट मत्र का भी कोई उपयोग नही है।

मन्त्र छोटा होता है। वह ग्रन्थ की तरह बडा नही होता। हीरा छोटा होता है, चट्टान की तरह बडा नही होता, पर बडी-बडी चट्टानो को वह काट दता है। अकुश छोटा होता है, किन्तु मदोन्मत्त गजराज को अधीन कर लेता है। बीज नन्हा होता है, पर वही बीज विराट् वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। वैसे ही नमोक्कार मत्र मे जो अक्षर है वे भी बीज की तरह हैं। नमोक्कार मत्र मे ३५ अक्षर हैं। ३ मे ५ जोडने पर ८ होते हैं। जैनदृष्टि से कर्म आठ है। इस महामत्र की साधना से आठो कर्मों की निर्जरा होती है। ५—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। ५—पचमहाव्रत और पचसमिति का प्रतीक है। जब नमोक्कार मत्र के साथ रत्नत्रय व महाव्रत का सुमेल होता है या अष्टक प्रवचनमाता की साधना भी साथ चलती है तो उस साधना मे अभिनव ज्योति पैदा हो जाती है। इस प्रकार यह महामत्र मन का त्राण करता है। अशुभ विचारो के प्रभाव से मन को मुक्त करता है।

---

१ 'मग्यतेऽलङ्क्रियतेऽनेनेति मगलम्' ... 'मोदन्तेऽनेनेति मगलम्' ... 'महान्ते-पूज्यन्तेऽनेनेति मगलम्।'
—विशेषावश्यकभाष्य

नमोक्कार महामंत्र हमारे प्रसुप्त चित्त को जागृत करता है। यह मंत्र शक्ति-जागरण का अग्रदूत है। इस मंत्र के जाप से इन्द्रियों की वल्गा हाथ में आ जाती है, जिससे सहज ही इन्द्रिय-निग्रह हो जाता है। मंत्र एक ऐसी छैनी है जो विकारों की परतों को काटती है। जब विकार पूर्णरूप से कट जाते हैं तब आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाता है। महामंत्र की जप-साधना से साधक अन्तर्मुखी बनता है, पर जप की साधना विधिपूर्वक होनी चाहिये। विधिपूर्वक किया गया कार्य ही सफल होता है। डॉक्टर रुग्ण व्यक्ति का ऑपरेशन विधिपूर्वक नहीं करता है तो रुग्ण व्यक्ति के प्राण संकट में पड़ जाते हैं। बिना विधि के जड़ मशीनें भी नहीं चलती। सारा विज्ञान विधि पर ही अवलम्बित है। अविधिपूर्वक किया गया कार्य निष्फल होता है। यही स्थिति मंत्र-जप की भी है।

नमोक्कार महामंत्र में पांच पद हैं। ३५ अक्षर हैं। इनमें ११ अक्षर लघु हैं, २४ गुरु हैं, १५ दीर्घ हैं और २० ह्रस्व हैं, ३५ स्वर हैं और ३४ व्यंजन हैं। यह एक अद्वितीय बीजसंयोजना है। 'नमो अरिहंताणं' में सात अक्षर हैं, 'नमो सिद्धाणं' में पांच अक्षर हैं, 'नमो आयरियाणं' में सात अक्षर हैं, 'नमो उवज्झायाणं' में सात अक्षर हैं और "नमो लोए सव्वसाहूणं" में नौ अक्षर है—इस प्रकार इस महामंत्र में कुल ३५ अक्षर हैं। स्वर और व्यंजन का विश्लेषण करने पर "नमो अरिहंताणं" में ७ स्वर और ६ व्यंजन हैं, "नमो सिद्धाणं" में ५ स्वर और ६ व्यंजन है, "नमो आयरियाणं" में ७ स्वर और ६ व्यंजन हैं, "नमो उवज्झायाणं" में ७ स्वर और ७ ही व्यंजन हैं तथा "नमो लोए सव्वसाहूणं" में ९ स्वर तथा ९ व्यंजन हैं- इस प्रकार नमोक्कार महामंत्र में ३५ स्वर और ३४ व्यंजन हैं। यह महामंत्र जैन आराधना और साधना का केन्द्र है, इसकी शक्ति अपरिमेय है। इस महामंत्र के वर्णों के संयोजन पर चिन्तन करें तो यह बड़ा अद्भुत और पूर्ण वैज्ञानिक है। इसके बीजाक्षरों की आधुनिक शब्दविज्ञान की कसौटी पर कसने पर यह पाते हैं कि इसमें विलक्षण ऊर्जा है और शक्ति का भण्डार छिपा हुआ है। प्रत्येक अक्षर का विशिष्ट अर्थ है, प्रयोजन है और ऊर्जा उत्पन्न करने की क्षमता है।

जैनधर्म में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांच महान् आत्मा माने गये हैं, जिन्होंने आध्यात्मिक गुणों का विकास किया। आध्यात्मिक उत्कर्ष में न वेष बाधक है और न लिंग ही। स्त्री हो या पुरुष, सभी अपना आध्यात्मिक उत्कर्ष कर सकते हैं। नमोक्कार महामंत्र में अरिहन्तों को नमस्कार किया गया है, किन्तु तीर्थंकरों को नहीं। तीर्थंकर भी अरिहन्त हैं तथापि सभी अरिहन्त तीर्थंकर नहीं होते। अरिहन्तों के नमस्कार में तीर्थंकर स्वयं आ जाते हैं। पर तीर्थंकर को नमस्कार करने में सभी अरिहन्त नहीं आते। यहाँ पर तीर्थंकरत्व मुख्य नहीं है, मुख्य है अर्हत्भाव। जैनधर्म की दृष्टि में तीर्थंकरत्व औदयिक प्रकृति है, वह एक कर्म के उदय का फल है किन्तु अरिहन्तदशा क्षायिक भाव है। वह कर्म का फल नहीं अपितु कर्मों की निर्जरा का फल है। तीर्थंकरों को भी जो नमस्कार किया जाता है, उसमें भी अर्हत्भाव ही मुख्य रहा हुआ है। इस प्रकार नमोक्कार महामंत्र में व्यक्ति-विशेष को नहीं, किन्तु गुणों को नमस्कार किया गया है। व्यक्तिपूजा नहीं किन्तु गुणपूजा को महत्त्व दिया गया है। यह कितनी विराट् और भव्य भावना है।

प्राचीन ग्रन्थों में नमोक्कार महामंत्र को पंचपरमेष्ठीमंत्र भी कहा है। 'परमे तिष्ठतीति' अर्थात् जो आत्माएं परमे—शुद्ध, पवित्र स्वरूप में, वीतराग भाव में रहती-रहते हैं- वे परमेष्ठी हैं। आध्यात्मिक उत्क्रान्ति करने के कारण अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ही पंच परमेष्ठी हैं। यही कारण है कि भौतिक दृष्टि से चरम उत्कर्ष को प्राप्त करने वाले चक्रवर्ती सम्राट् और देवेन्द्र भी इनके चरणों में झुकते हैं। त्याग के प्रतिनिधि - ये पंच परमेष्ठी हैं। पंच परमेष्ठी में सर्वप्रथम अरिहन्त हैं। जिन्होंने पूर्णरूप से सदा-सर्वदा के लिए राग-द्वेष को नष्ट कर दिया है, वे अरिहन्त हैं, जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र और अनन्त शक्ति रूप वीर्य के धारक होते हैं, सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता/दृष्टा होते हैं, जो सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण, प्रभृति

विरोधी द्वन्द्वों मे सदा रहते हैं। तीर्थंकर और दूसरे अरिहन्तों मे आत्मविकास की दृष्टि से कुछ भी अन्तर नही है।

दूसरा पद सिद्ध का है। सिद्ध का अर्थ पूर्ण है। जो द्रव्य और भाव दोनो ही प्रकार के कर्मों से अलिप्त होकर निराकुल आनन्दमय शुद्ध स्वभाव मे परिणत हो गये, वे सिद्ध हैं। यह पूर्ण मुक्त दशा है। यहाँ पर न कर्म हैं, न कर्मबन्धन के कारण ही हैं। कर्म और कर्मबन्ध के अभाव के कारण आत्मा वहाँ से पुन लौटकर नही आता। वह लोक के अग्रभाग मे ही अवस्थित रहता है। वहाँ केवल विशुद्ध आत्मा ही आत्मा हैं, परद्रव्य और पर-परिणति का पूर्ण अभाव है। यह विदेहमुक्त अवस्था है। यह आत्मविकास की अन्तिम कोटि है। दूसरे पद मे उस परमविशुद्ध आत्मा को नमस्कार किया गया है।

तृतीय पद मे आचार्य को नमस्कार किया गया है। आचार्य धर्मसघ का नायक है। वह सघ का सचालनकर्त्ता है, साधको के जीवन का निर्माणकर्त्ता है। जो साधक सयमसाधना से भटक जाते हैं, उन्हे आचार्य सही मार्गदर्शन देता है। योग्य प्रायश्चित्त देकर उनकी सशुद्धि करता है। वह दीपक की तरह स्वय ज्योतिर्मान होता है और दूसरो को ज्योति प्रदान करता है।

चतुर्थ पद में उपाध्याय को नमस्कार किया गया है। उपाध्याय ज्ञान का अधिष्ठाता होता है। वह स्वय ज्ञानाराधना करता है और साथ ही सभी को आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करता है। पापाचार से विरत होने के लिए ज्ञान की साधना अनिवार्य है। उपाध्याय ज्ञान की उपासना से सघ मे अभिनव चेतना का सचार करता है।

पाचवे पद मे साधु को नमस्कार किया गया है। जो मोक्षमार्ग की साधना करता है, वह साधु है। साधु सर्वविरति-साधना पथ का पथिक है। वह परस्वभाव का परित्याग कर आत्मस्वभाव मे रमण करता है। वह अशुभोपयोग को छोडकर शुभोपयोग और शुद्धोपयोग मे रमण करता है। उसके जीवन के कण-कण मे अहिसा का आलोक जगमगाता रहता है, सत्य की सुगन्ध महकती रहती है। अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की उदात्त भावनाएँ अगडाइयाँ लेती रहती हैं। वह मन, वचन और काय से महाव्रतो का पालन करता है।

जैनधर्म मे मूल तीन तत्त्व माने गए हैं—देव, गुरु और धर्म। तीनो ही तत्त्व नमोक्कार महामन्त्र मे देखे जा सकते हैं। अरिहन्त जीवनमुक्त परमात्मा हैं तो सिद्ध विदेहमुक्त परमात्मा हैं। ये दोनो आत्मविकास की दृष्टि से पूर्णत्व को प्राप्त किए हुए हैं। इसलिए इनकी परिगणना देवत्व की कोटि मे की जाती है। आचार्य, उपाध्याय और साधु आत्मविकास की अपूर्ण अवस्था मे हैं, पर उनका लक्ष्य निरन्तर पूर्णता की ओर बढ़ने का है। इसलिए वे गुरुतत्त्व की कोटि मे हैं। पाचो पदो मे अहिसा, सत्य, तप आदि भावो का प्राधान्य है। इसलिए वे धर्म की कोटि मे हैं। इस तरह तीनो ही तत्त्व इस महामन्त्र मे परिलक्षित होते हैं।

नमोक्कार महामन्त्र पर चिन्तन करते हुए प्राचीन आचार्यों ने एक अभिनव कल्पना की है और वह कल्पना है रग की। रग प्रकृतिनटी की रहस्यपूर्ण प्रतिध्वनियाँ हैं, जो बहुत ही सार्थक हैं। रगो की अपनी एक भाषा होती है। उसे हर व्यक्ति समझ नही सकता, किन्तु वे अपना प्रभाव दिखाते ही हैं। पाश्चात्य देशो मे रग-विज्ञान के सम्बन्ध मे गहराई से अन्वेषणा की जा रही है। आज रगचिकित्सा एक स्वतन्त्र चिकित्सा पद्धति के रूप मे विकसित हो चुकी है। रगविज्ञान का नमोक्कार मन्त्र के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। यदि हम उसे जाने तो उससे अधिक लाभान्वित हो सकते हैं। आचार्यों ने अरिहन्तो का रग श्वेत, सिद्धो का रग लाल, आचार्य का रग पीला, उपाध्याय का रग नीला तथा साधु का रग काला बताया है। हमारा सारा मूर्त्त संसार पौद्गलिक

है। पुद्गल मे वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं। वर्ण का हमारे शरीर, हमारे मन, आवेग और कषायो से अत्यधिक सम्बन्ध है। शारीरिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, मन का स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, आवेगो की वृद्धि और कमी—ये सभी इन रहस्यो पर आधृत हैं कि हमारा किन-किन रगो के प्रति रुझान है तथा हम किन-किन रगों से आकर्षित और विकर्षित होते हैं। नीला रग जब शरीर मे कम होता है तब क्रोध की मात्रा बढ जाती है। नीले रग की पूर्ति होने पर क्रोध स्वत ही कम हो जाता है। श्वेत रग की कमी होने पर स्वास्थ्य लडखडाने लगता है। लाल रग की न्यूनता से आलस्य और जडता बढने लगती है। पीले रग की कमी से ज्ञानतन्तु निष्क्रिय हो जाते हैं और जब ज्ञानतन्तु निष्क्रिय हो जाते हैं, तब समस्याओ का समाधान नहीं हो पाता। काले रग की कमी होने पर प्रतिरोध की शक्ति कम हो जाती है। रगो के साथ मानव के शरीर का कितना गहन सम्बन्ध है, यह इससे स्पष्ट है। 'नमो अरिहताण' का ध्यान श्वेत वर्ण के साथ किया जाय। श्वेत वर्ण हमारी आन्तरिक शक्तियो को जागृत करने मे सक्षम है। यह समूचे ज्ञान का सवाहक है। श्वेत वर्ण स्वास्थ्य का प्रतीक है। हमारे शरीर मे रक्त की जो कोशिकाएँ हैं, वे मुख्य रूप से दो रग की हैं—श्वेत रक्तकणिकाएँ (W B. C) और लाल रक्त-कणिकाएँ (R B. C)। जब भी हमारे शरीर मे इन रक्तकणिकाओ का सतुलन बिगडता है तो शरीर रुग्ण हो जाता है। 'नमो अरिहताण' का जाप करने से शरीर मे श्वेत रग की पूर्ति होती है। 'नमो सिद्धाण' का बाल सूर्य जैसा लाल वर्ण है। हमारी आन्तरिक दृष्टि को लाल वर्ण जाग्रत करता है। पीट्यूटरी ग्लेण्डस् के अन्त स्राव को लाल रग नियन्त्रित करता है। इस रग से शरीर मे सक्रियता आती है। 'नमो सिद्धाण' मन्त्र, लाल वर्ण और दर्शन केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करने मे स्फूर्ति का सचार होता है। 'नमो आयरियाण'—इसका रग पीला है। यह रग हमारे मन को सक्रिय बनाता है। शरीरशास्त्रियो का मानना है कि थायराइड ग्लेण्ड आवेगो पर नियन्त्रण करता है। इस ग्रन्थि का स्थान कठ है। आचार्य के पीले रग के साथ विशुद्धि केन्द्र पर 'नमो आयरियाण' का ध्यान करने से पवित्रता की सवृद्धि होती है। 'नमो उवज्झायाण' का रग नीला है। शरीर मे नीले रग की पूर्ति इस पद के जप मे होती है। यह रग शान्तिदायक है, एकाग्रता पैदा करता है और कषायो को शान्त करता है। 'नमो उवज्झायाण' के जप मे आनन्द-केन्द्र सक्रिय होता है। 'नमो लोए सव्वसाहूण' का रग काला है। काला वर्ण अवशोषक है। शक्तिकेन्द्र पर इस पद का जप करने से शरीर मे प्रतिरोध शक्ति बढती है। इस प्रकार वर्णों के साथ नमोक्कार महामन्त्र का जप करने का सकेत मन्त्रशास्त्र के ज्ञाता आचार्यों ने किया है। अन्य अनेक दृष्टियो से नमस्कार महामत्र के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है। विस्तार भय से उस सम्बन्ध मे हम उन सभी की चर्चा नही कर रहे हैं। जिज्ञासु तत्सम्बन्धी साहित्य का अवलोकन करे तो उन्हे चिन्तन की अभिनव सामग्री प्राप्त होगी और वे नमस्कार महामन्त्र के अद्भुत प्रभाव से प्रभावित होगे।

नमस्कार महामन्त्र को आचार्य अभयदेव ने भगवती सूत्र का अग मानकर व्याख्या की है। आवश्यक-निर्युक्ति मे निर्युक्तिकार ने स्पष्ट शब्दो मे लिखा है—पचपरमेष्ठियो को नमस्कार कर सामायिक करनी चाहिए। यह पच-नमस्कार सामायिक का एक अग है।[1] इसमे यह स्पष्ट है कि नमस्कार महामन्त्र उतना ही पुराना है जितना सामायिक सूत्र। सामायिक आवश्यकसूत्र का प्रथम अध्ययन है। आचार्य देववाचक ने आगमो की सूची मे आवश्यकसूत्र का उल्लेख किया है। सामायिक के प्रारम्भ मे और उसके अन्त मे नमस्कार मन्त्र का पाठ किया जाता था। कायोत्सर्ग के प्रारम्भ और अन्त मे भी पचनमस्कार का विधान है। निर्युक्ति के अभिमतानुसार नन्दी

---

१. कयपचनमोक्कारो करेइ सामाइयति सोऽभिहितो।
सामाइयगमेव य ज सो सेस अतो वोच्छ॥ —आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १०२७

ग्रौर ग्रनुयोगद्वार को जानकर तथा पचमगल को नमस्कार कर सूत्र को प्रारम्भ किया जाता है।[1] ग्राचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने पचनमस्कार महामत्र को सर्वसूत्रान्तर्गत माना है।[2] उनके ग्रभिमतानुसार पचनमस्कार करने के पश्चात् ही ग्राचार्य ग्रपने मेधावी शिष्यो को सामायिक ग्रादि श्रुत पढाते थे।[3] इस तरह नमस्कार महामत्र सर्वसूत्रान्तर्गत है। ग्रावश्यकसूत्र गणधरकृत है तो व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) भी गणधरकृत ही है। इस दृष्टि से इस महामन्त्र के प्ररूपक तीर्थंकर है ग्रौर सूत्र मे ग्राबद्ध करने वाले गणधर हैं। जिन ग्राचार्यों ने महामत्र को ग्रनादि कहा है, उसका यह ग्रर्थ है—तत्त्व या ग्रर्थ की दृष्टि से वह ग्रनादि है।

ब्राह्मीलिपि

नमस्कार महामत्र के पश्चात् भगवती मे 'नमो बभीए लिवीए' पाठ है। भारत मे जितनी लिपियाँ है, उन सब मे ब्राह्मीलिपि सबसे प्राचीन है। वैदिक दृष्टि से ब्राह्मी शब्द ब्रह्मा से निष्पन्न है। त्रिदेवो मे ब्रह्मा विश्व का स्रष्टा है। उसने सम्पूर्ण विश्व की रचना की। उसी से इस लिपि का प्रादुर्भाव हुग्रा। नारद स्मृति मे लिखा है—यदि ब्रह्मा लिखित या लेखनकला ग्रथवा लिपिरूप उत्तम नेत्र का सर्जन नही करते तो इस जगत् की शुभ गति नही होती।[4]

ललितविस्तर बौद्धपरम्परा का सस्कृत भाषा मे लिखित एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ मे ६४ लिपियो का उल्लेख है। उनमे कितनी ही लिपियो का आधार देश-विशेष, प्रदेश-विशेष या जाति-विशेष कहा है। उन ६४ लिपियो मे सर्वप्रथम ब्राह्मीलिपि का नाम ग्राता है।[5] उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे वहाँ पर चिन्तन नहीं किया गया हे।

जैन दृष्टि से ब्राह्मीलिपि के सर्जक भगवान् ऋषभदेव थे। भगवान् ऋषभदेव ने ग्रपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को ७२ कलाग्रो की शिक्षा प्रदान की। द्वितीय पुत्र बाहुबली को प्राणीलक्षण का ज्ञान कराया। ग्रपनी पुत्री ब्राह्मी को १८ लिपियो का ग्रौर द्वितीय पुत्री सुन्दरी को गणित विद्या का परिज्ञान कराया। ब्राह्मी ने उन लिपियो को प्रसारित किया। १८ लिपियो मे मुख्य लिपि ब्राह्मी के नाम से विश्रुत है।[6] समवायाङ्ग[7] मे ब्राह्मीलिपि के ४६ मातृकाक्षर यानी मूल ग्रक्षर बतलाये हैं ग्रौर १८ प्रकार की लिपियो मे प्रथम लिपि का नाम ब्राह्मीलिपि है। प्रज्ञापना[8] मे भी १८ लिपियो के नाम मिलते है पर समवायाङ्ग[9] से कुछ पृथक्ता लिए हुए हैं।

---

१ नदिमणुग्रोगदार विहिवदुवग्घाइय च नाऊण।
काऊण पचमगलमारम्भो होइ सुत्तस्स॥ —ग्रावश्यकनिर्युक्ति, गा १०२६

२ सो सव्वसुतक्खधब्भन्तरभूतो जग्रो ततो तस्स।
ग्रावासयाणुयोगादिगहणगहिताणुयोगा वि॥ —विशेषावश्यकभाष्य, गा ९

३. ग्राईए नमोक्कारो जइ पच्छाऽऽवासय तग्रो पुव्व।
तस्स भणिएऽणुग्रोगे जुत्तो ग्रावस्सयस्स तग्रो॥ —विशेषावश्यकभाष्य, गा ८

४ नाकरिष्यद्यदि ब्रह्मा लिखित चक्षुरुत्तमम्।
तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यच्छुभा गति॥

५ लेह लिवीविहाण जिणेण बभीए दाहिणकरेण। —ग्रावश्यकनिर्युक्ति, गा २१२

६ भारतीय जैनश्रमण सस्कृति ग्रने लेखनकला —ग्रा पुण्यविजयजी पृ ५

७ बभीए ण लिवीए छायालीस माउयक्खरा। —समवायाङ्ग सूत्र, ४६

८ प्रज्ञापना १।३७

९. समवायाङ्ग, समवाय १८

वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों ही परम्पराओं में ब्राह्मीलिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पृथक्-पृथक् मत हैं। डॉ अल्फ्रेड मूलर, जेम्स प्रिन्सेप तथा सेनार्ट आदि विद्वानों का अभिमत है कि ब्राह्मीलिपि का उद्गम-स्रोत यूनानी लिपि है। सेनार्ट ने इस सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए लिखा है कि सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया और यूनानियों के साथ भारतीयों का सम्पर्क हुआ। भारतीयो ने यूनानियों से लेखनकला सीखी और उसके आधार से उन्होंने ब्राह्मीलिपि की रचना की। उपर्युक्त मत का खण्डन बूलर और डिरिजर नामक विद्वानों ने किया है। उनका मन्तव्य है कि लिपिकला भारत मे पहले से ही विकसित थी। यदि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय ब्राह्मीलिपि की उत्पत्ति होती तो उसके पौत्र अशोक के समय वह लिपि इतनी अधिक कैसे विकसित हो सकती थी ?

फ्रेन्च विद्वान् कुपेटी ने ब्राह्मीलिपि के सम्बन्ध मे एक विचित्र कल्पना की है। उनका अभिमत है कि ब्राह्मीलिपि की उत्पत्ति चीनी लिपि से हुई है। पर लिपिविज्ञान के विशेषज्ञों का यह स्पष्ट अभिमत है कि चीनी और ब्राह्मी लिपि मे किसी भी प्रकार का मेल नही है। चीनी लिपि मे वर्णात्मक और अक्षरात्मक ध्वनियाँ नही है, उसमे शब्दात्मक ध्वनियों के परिचय के लिए चित्रात्मक चिह्न है और वे चिह्न अत्यधिक मात्रा मे हैं। जबकि ब्राह्मीलिपि मे चित्रात्मक चिह्न नही हैं, उसके चिह्न तो अक्षरात्मक ध्वनियो के अभिव्यजक हैं। यह सत्य है कि चीनी लिपि भी प्राचीन है। प्राचीन होने के कारण उसे ब्राह्मीलिपि के साथ जोडना सगत नही है।

बूलर का अभिमत है कि उत्तरी सेमेटिक लिपि से ब्राह्मी का उद्भव हुआ है। थोड़े बहुत मतभेद के साथ वेबर, बेनफे, वेस्टरगार्ड, ह्विटनी, जॉनसन, विलियम जॉन्स आदि ने भी यही विचार व्यक्त किए हैं। बूलर की दृष्टि से ईस्वी सन के लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व सेमेटिक अक्षरो का भारत मे प्रवेश हुआ।[1] कितने ही विद्वानों का यह भी मानना है कि भारत मे जब लेखनकला का विकास नही हुआ था तब फिनिशिया[2] मे शिक्षा और लेखन का विकास हो चुका था। भारत के व्यापारी जब व्यापार हेतु फिनिशिया जाते थे तब व्यापार की सुविधा हेतु उन्होंने फिनिशियन लिपि का अध्ययन किया और उन व्यापारियो के साथ ही फिनिशियन लिपि भारत मे आई। उस लिपि का सशोधन और परिष्कार कर ब्राह्मणो ने एक लिपि का निर्माण किया। ब्राह्मणो के द्वारा निर्मित होने के कारण उस लिपि का नाम ब्राह्मी हुआ।

डा राजबली पाण्डेय ने एक अभिनव कल्पना की है। उनका अभिमत है कि भारत से कुछ व्यक्ति फिनिशिया गये। वे ब्राह्मीलिपि के जानकार थे। वे वही पर बस गए। वहाँ पर बसने के कारण ब्राह्मीलिपि वहाँ के वातावरण से प्रभावित हुई। यही कारण है कि फिनिशियन और ब्राह्मी दोनो ही लिपियो मे डॉ. पाण्डेय ने अपने मत को प्रमाणित करने के लिए ऋग्वेद की ६-५१, १४, ६१,१ ऋचाएँ प्रस्तुत की हैं। ब्राह्मीलिपि का ही विकास फिनिशियन लिपि है।

टेलर, सेथ आदि विज्ञों का अभिमत है कि ब्राह्मी का विकास दक्षिणी सेमेटिक लिपि से हुआ है। तो कितने ही विद्वान् दक्षिणी सेमेटिक शाखा अरबी लिपि से ब्राह्मीलिपि का उद्भव मानते हैं। पर गहराई से चिन्तन करने पर दक्षिणी सेमेटिक लिपि या उसकी शाखालिपियो से ब्राह्मी का मेल नही बैठता है। यदि यह कहा जाय कि अरबवासियो के साथ भारतवर्ष का सम्पर्क अतीत काल से था, इस कारण अरबी से ब्राह्मी की उत्पत्ति हुई, इस कथन मे और तर्क मे वजन नही है।

---

१ Indian Palaeography P 17

२ प्राचीन काल मे एशिया के उत्तर-पश्चिम मे स्थित भू-भाग (सीरिया) फिनिशिया कहा जाता था।

डॉ राइस डेविड्स का अभिमत है कि एक ऐसी लिपि पहले प्रचलित थी जो सेमेटिक अक्षरो के उद्भव के पूर्व ही यूफ्रेटिस नदी की घाटी मे विकसित सभ्यता मे प्रचलित थी। उस पुरानी लिपि से ब्राह्मीलिपि का सीधा सम्बन्ध है। वह लिपि सेमेटिक लिपि को भी जन्म देने वाली है। विद्वानो का ऐसा मन्तव्य है कि इस सम्बन्ध मे गहराई से चिन्तन की आवश्यकता है।

एडवर्ड थामस, गोल्ड स्टूकर, राजेन्द्रलाल मित्र, लास्सेन, डासन, कनिंघम आदि विज्ञो का मानना है कि ब्राह्मीलिपि का उद्भवस्थल भारत ही है। पर इनका यह मानना है कि अतीत काल मे आर्यभाषी जनता द्वारा किसी चित्रलिपि का प्रयोग किया जाता होगा। सम्भव है उसी से ब्राह्मीलिपि का जन्म हुआ है। बूलर ने इस मन्तव्य का विरोध करते हुए कहा—भारत मे चित्रलिपि नही थी फिर उससे ब्राह्मी का प्रादुर्भाव कैसे हुआ?

डॉ सुनीति चटर्जी का मन्तव्य है कि भारत की जो लिपियाँ अभी तक पढी जा सकी हैं, उनमे ब्राह्मी-लिपि सबसे प्राचीन है। यही भारतीय आर्यभाषाओ से सम्बन्धित प्राचीनतम लिपि है।[1] अधुनातन अन्वेषणा से यह निष्कर्ष प्रकट हो चुका है कि ब्राह्मी भारत की लिपि है। लिपिविद्याविशारद डॉ गौरीशकर हीराचन्द ओझा के शब्दो मे—ब्राह्मीलिपि अपनी प्रौढ अवस्था मे और पूर्ण व्यवहार मे आती हुई मिलती है और उसका किसी बाहरी स्रोत और प्रभाव से निकलना सिद्ध नही होता। इस लिपि के आद्य निर्माता ऋषभदेव रहे हैं। इस कारण भगवती मे ब्राह्मीलिपि को नमस्कार कर भगवान् ऋषभदेव को और अक्षरश्रुत को नमस्कार किया गया है। अक्षरश्रुत के रूप मे ज्ञान को नमस्कार किया गया है। पञ्च ज्ञानो मे श्रुत ज्ञान ही सबसे अधिक व्यवहार-योग्य एव उपकारक है। इसीलिए 'नमो बभीए लिवीए' के द्वारा भावश्रुत को नमस्कार किया गया है।

प्रस्तुत आगम मे तीसरा नमस्कार 'नमो सुयस्स' के रूप मे श्रुत को किया गया है। मतिज्ञान के पश्चात् शब्दसस्पर्शी जो परिपक्व ज्ञान होता है, वह श्रुतज्ञान है। दूसरे शब्दो मे श्रुतज्ञान का अर्थ है—वह ज्ञान जिसका शास्त्र से सम्बन्ध हो। आप्तपुरुष द्वारा रचित आगम व अन्य शास्त्रो मे जो ज्ञान होता है—वह श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान के अगप्रविष्ट और अगबाह्य ये दो भेद है। अगबाह्य के अनेक भेद हैं और अगप्रविष्ट के १२ भेद हैं।[2] श्रुत वस्तुत ज्ञानात्मक है। ज्ञानोत्पत्ति के साधन होने के कारण उपचार से शास्त्रो को भी श्रुत कहा गया है। श्रुत ही भावतीर्थ है। द्वादशागी के सहारे ही भव्यजीव ससार-सागर से पार उतरते हैं। इसलिए श्रुत को नमस्कार किया गया है। इस नमस्कार से श्रुत की महत्ता प्रदर्शित की गई है। साधको के अन्तर्मानस मे श्रुत के प्रति गहरी निष्ठा उत्पन्न की गई है, जिससे वे श्रुत का सम्मान करें और श्रुत को एकाग्रता से श्रवण करे।

गणधर गौतम : एक परिचय

भगवतीसूत्र का प्रारम्भ गणधर गौतम की जिज्ञासा से होता है। गौतम जिज्ञासा हैं तो महावीर समाधान हैं। उपनिषत्कालीन उद्दालक के समक्ष जो स्थान श्वेतकेतु का है, गीता के उपदिष्टा श्रीकृष्ण के समक्ष जो स्थान अर्जुन का है, तथागत बुद्ध के समक्ष जो स्थान आनन्द का है, वही स्थान भगवान् महावीर के समक्ष गणधर गौतम का है।

भगवती के प्रारम्भ मे सर्वप्रथम बहुत ही सक्षेप मे भगवान् महावीर के अन्तरग जीवन का परिचय दिया

---

१ (क) भारत की भाषाएँ और भाषा सम्बन्धी समस्याएँ, पृ १७०-१७१
(ख) विशेष जिज्ञासु, 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन' भाग २ देखें।

२ श्रुत मतिपूर्व द्वयनेकद्वादशभेदम्। —तत्त्वार्थसूत्र १।२०

गया है। उसके पश्चात् गणधर गौतम की अन्तरग और बाह्य छवि चित्रित की गई है। गौतम जितने बडे तत्त्वज्ञानी थे उतने ही बडे साधक भी थे। श्रुत और शील की पवित्र धारा से उनकी आत्मा सम्पूर्ण रूप से परिप्लावित हो रही थी। एक ओर वे उग्र और घोर तपस्वी थे तो दूसरी ओर समस्त श्रुत के अधिकृत ज्ञाता भी थे।

मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि किसी भी व्यक्ति का अन्तरग दर्शन करने से पहले दर्शक पर उसके बाह्य व्यक्तित्व का प्रभाव पडता है। प्रथम दर्शन मे ही व्यक्ति उसके तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाता है। यदि व्यक्ति के चेहरे पर ओज है, आकृति से सौन्दर्य छलक रहा है, आँखो मे अद्भुत तेज चमक रहा है और मुख पर मुस्कान अठखेलियाँ कर रही है तो आन्तरिक व्यक्तित्व मे सौन्दर्य का अभाव होने पर भी बाह्य सौन्दर्य से दर्शक प्रभावित हो जाता है। यदि बाह्य सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य हो तो सोने मे सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ हो जाती है। यही कारण है कि विश्व मे जितने भी महापुरुष हुए है, उनका बाह्य व्यक्तित्व प्राय आकर्षक और लुभावना रहा है और साथ ही आन्तरिक जीवन तो बाह्य व्यक्तित्व से भी अधिक चित्ताकर्षक रहा है। औपपातिक मे भगवान् महावीर के बाह्य व्यक्तित्व का प्रभावोत्पादक चित्रण है[1] तो बुद्धचरित्र मे महाकवि अश्वघोष ने बुद्ध के लुभावने शरीर का वर्णन किया है कि उस तेजस्वी मनोहर रूप को जिसने भी देखा, उसकी ही आँखें उसी मे बध गई।[2] उसे निहार कर राजगृह की लक्ष्मी भी सक्षुब्ध हो गई।[3] जिन व्यक्तियो मे पुण्य की प्रबलता होती है, उनमे शारीरिक सुन्दरता होती है।[4] गणधर गौतम का शरीर भी बहुत सुन्दर था। जहाँ वे सात हाथ ऊँचे कद्दावर थे, वहाँ उनके शरीर का आन्तरिक गठन भी बहुत ही सुदृढ था। वे वज्र-ऋषभ-नाराच सहननी थे। सुन्दर शारीरिक गठन के साथ ही उनके मुख, नयन, ललाट आदि पर अद्भुत ओज और चमक थी। जैसे कसौटी पत्थर पर सोने की रेखा खीच देने से वह उस पर चमकती रहती है, वैसे ही सुनहरी आभा गौतम के मुख पर दमकती रहती थी। उनका वर्ण गौर था। कमल-केसर की भाति उनमे गुलाबी मोहकता भी थी। जब उनके ललाट पर सूर्य की चमचमाती किरणे गिरती तो ऐसा प्रतीत होता कि कोई शीशा या पारदर्शी पत्थर चमक रहा है। वे जब चलते तो उनकी दृष्टि सामने के मार्ग पर टिकी होती। वे स्थिर दृष्टि से भूमि को देखते हुए चलते। उनकी गति शान्त, चचलता रहित और असभ्रान्त थी जिसे निहार कर दर्शक उनकी स्थितप्रज्ञता का अनुमान लगा सकता था। वे सर्वोत्कृष्ट तपस्वी थे, पूर्ण स्वावलम्बी और ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी थे। उनके लिए घोर तपस्वी के साथ 'घोरबभचेरवासी' विशेषण भी प्रयुक्त हुआ है। साधना के चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हुए वे विशिष्ट साधक थे। उन्हे तपोजन्य अनेक लब्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी थी। वे चौदह पूर्वी व मन पर्यव ज्ञानी थे। साथ ही वे बहुत ही सरल और विनम्र थे। उनमे ज्ञान का अहकार नही था और न अपने पद और साधना के प्रति मन मे अह था। वे सच्चे जिज्ञासु थे। गौतम की मन स्थिति को जताने वाली एक शब्दावली प्रस्तुत आगम मे अनेक बार आई है—'जायसड्ढे, जायससए, जायकोउहल्ले।' उनके अन्तर्मानस मे किसी भी तथ्य को जानने की श्रद्धा, इच्छा पैदा हुई, सशय हुआ, कौतूहल हुआ और वे भगवान् की ओर आगे बढे। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि गौतम की वृत्ति मे मूल घटक वे ही तत्त्व थे, जो सम्पूर्ण दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति मे मूल घटक रहे है।

---

१. अवदालियपुडरीयणयणे · चन्दद्धसमणिडाले वरमहिस-वराह-सीह-सद्दूल-उसभ-नागवरपडिपुण्णविउल-क्खधे। —औपपातिक सूत्र १
२ यदेव यस्तस्य ददर्श तत्र तदेव तस्याथ बबन्ध चक्षु। —बुद्धचरित १०।८
३ ज्वलच्छरीर शुभजालहस्तम् सचुक्षुभे राजगृहस्य लक्ष्मी। —बुद्धचरित १०।९
४ प्रज्ञापना, २३

विश्व मे यूनानी दर्शन, पश्चिम दर्शन और भारतीय दर्शन ये तीन मुख्य दर्शन माने जाते हैं। यूनानी दर्शन का प्रवर्तक अरिस्टोटल है। उसका मन्तव्य है कि दर्शन का जन्म आश्चर्य से हुआ है।[1] यही बात प्लेटो ने भी मानी है। पश्चिम के प्रमुख दार्शनिक डेकार्ट, काण्ट, हेगल आदि ने दर्शन का उद्भावक तत्त्व सशय माना है।[2] भारतीय दर्शन का जन्म जिज्ञासा से हुआ है। यहाँ प्रत्येक दर्शन का प्रारम्भ जिज्ञासा से है,[3] चाहे वैशेषिक हो, चाहे साख्य हो, चाहे मीमासा हो। उपनिषदो मे ऐसे अनेक प्रसग हैं, जिनके मूल मे जिज्ञासा तत्त्व मुखरित हो रहा है। छान्दोग्योपनिषद्[4] मे नारद सनत्कुमार के पास जाकर यह प्रार्थना करता है कि मुझे सिखाइये—आत्मा क्या है ? कठोपनिषद् मे बालक नचिकेता यम से कहता है—जिसके विषय मे सभी मानव विचिकित्सा कर रहे हैं, वह तत्त्व क्या है ? यम भौतिक प्रलोभन देकर उसे टालने का प्रयास करते हैं पर बालक नचिकेता दृढता के साथ कहता है—मुझे धन-वैभव कुछ भी नही चाहिये। आप तो मेरे प्रश्न का समाधान कीजिए। मुझे वही इष्ट है।[5] श्रमण भगवान् महावीर ने साधना के कठोर कण्टकाकीर्ण महामार्ग पर जो मुस्तैदी मे कदम बढाए, उसमे भी आत्म-जिज्ञासा ही मुख्य थी। आचाराग के प्रारम्भ मे आत्म-जिज्ञासा का ही स्वर झकृत हो रहा है। साधक सोचता है—मै कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और यहाँ से कहाँ जाऊँगा ? तथागत बुद्ध ने तो साधनामार्ग मे प्रवेश करते ही यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि जब तक मै जन्म-मरण के किनारे का पता नही लगा लूँगा, तब तक कपिलवस्तु मे प्रवेश नही करूँगा।

इस तरह आश्चर्य, जिज्ञासा, सशय, कौतूहल ये सभी मानव को दर्शन की ओर उत्प्रेरित करते रहे हैं। सुदूर अतीत काल से लेकर वर्तमान तक 'इटलेक्चुअल क्यूरियॉसिटी' (Intellectual Curiosity), बौद्धिक कौतूहल के कारण ही मानव की ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे प्रगति हुई है।

गणधर गौतम के अन्तर्मानस मे बौद्धिक कौतूहल तीव्रतम रूप मे दिखलाई देता है। वे आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत्, कर्म प्रभृति विषयो मे ही नही, सामान्य से सामान्य विषय व प्रसग को देखकर भी उसके सम्बन्ध मे जानने के लिए ललक उठते हैं। उस विषय के तलछट तक पहुँचने के लिए उनके मन मे कौतूहल होता है। वे अनन्त-श्रद्धा, सशय और कौतूहल से प्रेरित होकर स्वस्थान से चल कर जहाँ भगवान् महावीर विराजित होते हैं, वहाँ पहुचते हैं, विनयपूर्वक जिज्ञासा प्रस्तुत करते है—'कहमेय भते' हे भगवन् ! यह बात कैसे है ? कभी-कभी तो वे विषय को और अधिक स्पष्ट कराने के लिए प्रतिप्रश्न करते हैं—'केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ' ऐसा आप किस हेतु से कहते हैं ? वे हेतु तक जाकर तर्क की दृष्टि से उसका समाधान पाना चाहते हैं। इस प्रकार प्रतिप्रश्न करते हुए तथा कुतूहल को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, वे बालक की तरह सकोच-रहित होकर प्रश्न करते है। उनकी प्रश्न-शैली तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक है। विज्ञान मे 'कथम्' (How), 'कस्मात' 'केन' (Why), इन

---

१. फिलॉसफी बिगिन्स इन वडर (Philosophy Begins in Wonders)

२. दर्शन का प्रयोजन, पृष्ठ २९ — डा भगवानदास

३ (क) अथातो धर्म जिज्ञासा —वैशेषिक दर्शन १

(ख) दु खत्रयाभिघाताज् जिज्ञासा—साख्यकारिका १ (ईश्वरकृष्ण)

(ग) अथातो धर्मजिज्ञासा —मीमासासूत्र १ (जैमिनी)

(घ) अथातो धर्मजिज्ञासा — ब्रह्मसूत्र १।१

४. अधीहि भगवन् ! छान्दोग्य उपनिषद्, अ ७

५. वरस्तु मे वरणीय एव —कठोपनिषद्

दो सूत्रो को पकडकर वस्तुस्थिति के ग्रन्तस्तल मे प्रवेश किया जाता है और निरीक्षण-परीक्षण कर रहस्यो को उद्घाटित किया जाता है। गणधर गौतम भी प्राय. इन दो वाक्यो के ग्राधार पर ग्रपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करते है पर उनकी जिज्ञासा की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे केवल प्रश्न के लिए प्रश्न नहीं करते वरन् समाधान के लिए प्रश्न करते हैं। उनकी जिज्ञासा मे सत्य की बुभुक्षा है। उनके सशय मे समाधान की गूंज है। उनके कौतूहल मे विश्व-वैचित्र्य को समझने की छटपटाहट है। उनकी सच्ची जिज्ञासु वृत्ति को देखकर ही भगवान् महावीर प्रत्येक प्रश्न का समाधान करते है और समाधान पाकर गणधर गौतम कृतकृत्य हो जाते है तथा विनयपूर्वक नम्र शब्दों मे निवेदन करते हैं—सेव भन्ते! सेव भन्ते! तहमेय भन्ते! अर्थात् हे प्रभो! जैसा आपने कहा है—वह पूर्ण सत्य है, मैं उस पर श्रद्धा करता हूँ। महावीर के उत्तर पर श्रद्धा से अभिभूत होकर उन्होने जो अनुगूंज की है, वस्तुत यह प्रश्नोत्तर की आदर्श पद्धति है। उत्तरदाता के प्रति कृतज्ञता और श्रद्धा का भाव व्यक्त किया गया है, जो बहुत ही आवश्यक है। इसमे प्रश्नकर्त्ता के समाधान की स्वीकृति भी है और हृदय की अनन्त श्रद्धा भी।

विषय वर्णन की दृष्टि से भगवतीसूत्र मे विविध विषयो का सकलन है। उन सभी विषयो पर प्रस्तावना मे लिखना सम्भव ही नही है। क्योकि भगवतीसूत्र अपने आप मे स्वय एक विराट् आगम है। इसमे गणधर गौतम के तथा अन्यान्य साधको के हजारो प्रश्न और समाधान है। तथापि विषय वर्णन की दृष्टि से सक्षेप मे निम्न खण्डो मे इसकी विषयवस्तु को विभक्त कर सकते है—

प्रथम साधना खण्ड मे हम उन सभी प्रसगो को ले सकते हैं जो साधना से सम्बन्धित है। साधना का प्रारम्भ होता है—सत्सग से। सर्वप्रथम व्यक्ति सन्त के पास पहुचता है। सन्त के पास पहुचने से उसको उपदेश सुनने को मिलता है। उपदेश सुनकर उसे सम्यग्ज्ञान समुत्पन्न होता है। सम्यग्ज्ञान समुत्पन्न होने पर वह जड और चेतन के स्वरूप को समझकर भेदविज्ञान से यह समझता है कि जड तत्त्व पृथक् है और चेतन तत्त्व पृथक् है। दोनो तत्त्व पय-पानीवत मिल चुके है। भेदविज्ञान से वह दोनो की पृथक् सत्ता को समझता है और उनको पृथक्-पृथक् करने के लिये प्रत्याख्यान स्वीकार करता है। सयम की साधना करता है, जिससे वह आने वाले आश्रव का निरुन्धन कर लेता है और जो अन्दर विजातीय तत्त्व रहा हुआ है उसे धीरे-धीरे तपश्चरण द्वारा नष्ट करने मे मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापारो का निरुन्धन कर वह आत्मसिद्धि को वरण करता है।[1] यह है सत्सग की महिमा और गरिमा। सत्, आत्मा है। उसका सग ही वस्तुत सत्सग है। अनन्त काल से आत्मा पर-सग मे उलझा रहा। जब आत्मा पर-सग से मुक्त होता है और स्व-सग करता है, तभी वह मुक्त बनता है। मुक्ति का अर्थ है पर-सग से सदा-सर्वदा के लिये मुक्त हो जाना। इस तथ्य को शास्त्रकार ने बहुत ही सरल रूप से प्रस्तुत किया है।

सत्सग करने वाला साधक ही धर्म मार्ग को स्वीकार करता है। गणधर गौतम ने भगवान् महावीर के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की कि केवलज्ञानी से या उनके उपासको से बिना सुने जीव को वास्तविक धर्म का परिज्ञान होता है? समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—गौतम! किसी जीव को होता है और किसी को नही होता। यही बात सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के सम्बन्ध मे भी कही गई है।[2] प्रश्नोत्तरो से यह स्पष्ट है कि धर्म और मुक्ति का आधार आन्तरिक विशुद्धि है। जब तक आन्तरिक विशुद्धि नही होती तब तक मुक्ति सम्भव नही है। जिनका मानस सम्प्रदायवाद से ग्रसित है उनके लिये प्रस्तुत वर्णन चिन्तन की दिव्य ज्योति प्रदान करेगा।

---

१ भगवती शतक २, उद्देशक ५

२ भगवती शतक ९, उद्देशक ३१

ज्ञान और क्रिया

जैनधर्म ने न अकेले ज्ञान को महत्त्व दिया है और न अकेली क्रिया को। साधना की परिपूर्णता के लिए ज्ञान और क्रिया दोनो का समन्वय आवश्यक है । गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि सुव्रत और कुव्रत मे क्या अन्तर है ? समाधान देते हुए भगवान् महावीर ने कहा—जो साधक व्रत ग्रहण कर रहा है उसे यदि यह परिज्ञान नही है कि यह जीव है या अजीव है ? त्रस है या स्थावर है ? उसके व्रत सुव्रत नही हैं । क्योकि जब तक परिज्ञान नही होगा तब तक वह व्रत का सम्यक् प्रकार से पालन नही कर सकेगा । परिज्ञानवान् व्यक्ति का व्रत ही सुव्रत है । वही पूर्ण रूप से व्रत का आराधन कर सकता है ।[1]

गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि कितने ही चिन्तको का यह अभिमत है कि शील श्रेष्ठ है तो किन्ही चिन्तको का कथन है कि श्रुत श्रेष्ठ है । तो तृतीय प्रकार के चिन्तक शील और श्रुत दोनो को श्रेष्ठ मानते हैं । आपका इस सम्बन्ध मे क्या अभिमत है ?

भगवान् महावीर ने समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा—इस विराट् विश्व मे चार प्रकार के पुरुष हैं—

१ जो शीलसम्पन्न हैं पर श्रुतसम्पन्न नही, वे पुरुष धर्म के मर्म को नही जानते, अत अश से आराधक हैं ।

२ श्रुतसम्पन्न हैं पर शीलसम्पन्न नही, वे पुरुष पाप से निवृत्त नही है पर धर्म को जानते है, इसीलिये वे अश से विराधक है ।

३ कितने ही शीलसम्पन्न है और श्रुतसम्पन्न भी हैं, वे पाप से पूर्ण रूप से बचते है, इसलिए वे पूर्ण रूप से राधक है ।

४ जो न शीलसम्पन्न है और न श्रुतसम्पन्न है, वे पूर्ण रूप से विराधक हैं ।

प्रस्तुत सवाद मे भी भगवान् महावीर ने उस साधक के जीवन को श्रेष्ठ बतलाया है जिसके जीवन मे ज्ञान का दिव्य आलोक जगमगा रहा हो और साथ ही ज्ञान के अनुरूप जो उत्कृष्ट चारित्र की भी आराधना करता हो । भगवान् महावीर के युग मे अनेक दार्शनिक ज्ञान को ही महत्त्व दे रहे थे । उनका यह अभिमत था कि ज्ञान से ही मुक्ति होती है । आचरण की कोई आवश्यकता नही । कुछ दार्शनिकों का यह वज्राघोष था कि मुक्ति के लिए ज्ञान की नही, चारित्रपालन की आवश्यकता है । मिश्री की मधुरता का परिज्ञान न होने पर भी उसकी मिठास का अनुभव मिश्री को मुँह मे डालने पर होता ही है । यह नही होता कि मिश्री के विशेषज्ञ को मिश्री का मिठास अधिक अनुभव होता हो । इसलिए "आचार प्रथमो धर्म " है । पर भगवान् महावीर ने कहा कि अनन्त आकाश मे उडान भरने के लिए पक्षी की दोनो पाखे सशक्त चाहिए, वैसे ही साधन की परिपूर्णता के लिए श्रुत और शील दोनों की आवश्यकता है । भगवान् महावीर ने आराधना तीन प्रकार की बताई है—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना और चारित्राराधना । जहाँ तीनो मे उत्कृष्टता आ जाती है, वह साधक उसी भव मे मुक्ति को प्राप्त होता है । एक मे भी अपूर्णता होती है तो वह मुक्ति को प्राप्त नही कर सकता । दर्शन की प्राप्ति चतुर्थ गुणस्थान मे हो जाती है । ज्ञान की परिपूर्णता तेरहवे गुणस्थान मे होती है और चारित्र की परिपूर्णता चौदहवे गुणस्थान मे । जब तीनो परिपूर्ण होते है तब आत्मा मुक्त बनता है ।[2]

कर्मबन्ध और क्रिया

भारतीय दर्शन मे बन्ध के सम्बन्ध मे गहराई से चिन्तन हुआ है । बन्धन ही दु ख है । समग्र आध्यात्मिक चिन्तन बन्धन से मुक्त होने के लिए है । बन्धन की वास्तविकता से इन्कार नही किया जा सकता । जैनदृष्टि से

---

१. भगवती शतक ७, उद्देशक २

२ भगवती शतक ८, उद्देशक १०

बन्धन विजातीय तत्त्व के सम्बन्ध से होता है। जड द्रव्यो मे एक पुद्गल नामक द्रव्य है। पुद्गल के अनेक प्रकार हैं, उनमे कर्मवर्गणा या कर्मपरमाणु एक सूक्ष्म भौतिक द्रव्य है। इस सूक्ष्म भौतिक कर्मद्रव्य से आत्मा का सम्बन्धित होना बन्धन है। बन्धन आत्मा का अनात्मा से, जड का चेतन से, देह का देही से सयोग है।

आचार्य उमास्वाति[1] के शब्दो मे कहा जाए तो कषायभाव के कारण जीव का कर्मपुद्गल से आक्रान्त हो जाना बन्ध है। आचार्य देवेन्द्रसूरि ने लिखा है कि आत्मा जिस शक्ति-विशेष से कर्मपरमाणुओ को आकर्षित कर उन्हे आठ प्रकार के कर्मों के रूप मे जीवप्रदेशो से सम्बन्धित करता है तथा कर्मपरमाणु और आत्मा परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, वह बन्धन है।[2]

जैनदृष्टि से बन्ध का कारण आश्रव है। आश्रव का अर्थ है कर्मवर्गणाओ का आत्मा मे जाना। आत्मा की विकारी मनोदशा भावाश्रव कहलाती है और कर्मवर्गणाओ के आत्मा मे आने की प्रक्रिया को द्रव्याश्रव कहा गया है। भावाश्रव कारण है और द्रव्याश्रव कार्य है। द्रव्याश्रव का कारण भावाश्रव है और द्रव्याश्रव से कर्म-बन्धन होता है। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियाँ ही आश्रव हैं।[3] मानसिक वृत्ति के साथ शारीरिक और वाचिक क्रियाए भी चलती हैं। उन क्रियाओ के कारण कर्माश्रव भी होता रहता है। जिन व्यक्तियो का अन्तर्मानस कषाय से कुलषित नही है, जिन्होने कषाय को उपशान्त या क्षीण कर दिया है, उनकी क्रिया के द्वारा जो आश्रव होता है, वह ईर्यापथिक आश्रव कहलाता है। चलते समय मार्ग की धूल के कण वस्त्र पर लगते है और दूसरे क्षण वे धूलकण विलग हो जाते हैं। वही स्थिति कषायरहित क्रियाओ से होती है। प्रथम क्षण मे आश्रव होता है तो द्वितीय क्षण मे वह निर्जीर्ण हो जाता है। भगवतीसूत्र के तृतीय शतक के तृतीय उद्देशक मे भगवान् महावीर ने अपने छठे गणधर मण्डितपुत्र की जिज्ञासा पर क्रिया के पाच प्रकार बताये और उन क्रियाओ से बचने का सन्देश भगवान् महावीर ने दिया। भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा कि सक्रिय जीव की मुक्ति नही है। मुक्ति प्राप्त करने वाले साधक को निष्क्रिय बनना होगा। जब तक शरीर है तब तक कर्मबन्धन है। अत सूक्ष्म शरीर से छूट जाना निष्क्रिय बनना है।

भगवतीसूत्र शतक सातवें उद्देशक प्रथम मे यह स्पष्ट कहा है कि जिन व्यक्तियो मे कषाय की प्रधानता है, उनको साम्परायिक क्रिया लगती है और जिनमे कषाय का अभाव है उनको ईर्यापथिक क्रिया लगती है। एक बार भगवान् महावीर गुणशीलक उद्यान मे अपने स्थविर शिष्यो के साथ अवस्थित थे। उस उद्यान के सन्निकट ही कुछ अन्यतीर्थिक रहे हुए थे। उन्होने उन स्थविरो से कहा कि तुम असयमी हो, अविरत हो, पापी हो और बाल हो, क्योकि तुम इधर-उधर परिभ्रमण करते हो, जिससे पृथ्वीकाय के जीवो की विराधना होती है। उन स्थविरो ने उनको समझाते हुए कहा कि हम बिना प्रयोजन इधर-उधर नही घूमते है और यतनापूर्वक चलने के कारण हिंसा नही करते, इसीलिए हमारी हलन-चलन आदि क्रिया कर्मबन्धन का कारण नही है। पर आप लोग बिना उपयोग के चलते हैं अत वह कर्मबन्धन का कारण है और वह असयम वृद्धि का भी कारण है।[4]

शतक अठारहवें, उद्देशक आठवे मे एक मधुर प्रसग है- गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की कि एक सयमी श्रमण अच्छी तरह से ३½ हाथ जमीन देख कर चल रहा है। उस समय एक क्षुद्र प्राणी अचानक पाँव के नीचे आ जाता है और उस श्रमण के पैर से मर जाता है। उस श्रमण को ईर्यापथिक क्रिया लगती है या साम्परायिक क्रिया ?

---

१ तत्त्वार्थसूत्र ८।२-३

२ कर्मग्रन्थ बन्धप्रकरण, १

३. तत्त्वार्थसूत्र ६।१-२

४ भगवती, शतक ८, उद्देशक ७-८, शतक १८, उद्देशक ८

भगवान् ने समाधान दिया कि उसको ईर्यापथिक क्रिया ही लगती है, साम्परायिक क्रिया नही, क्योकि उसमे कषाय का अभाव है। इस प्रकार बन्ध और कर्मबन्ध होने की कारण चेष्टा रूप जो क्रिया है, उस सम्बन्ध मे अनेक प्रश्नो के द्वारा मूल आगम मे प्रकाश डाला गया है, जो ज्ञानवर्द्धक और विवेक को उद्बुद्ध करने वाला है।

निर्जरा

भारतीय चिन्तन मे जहाँ बन्ध के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है, वहाँ आत्मा से कर्मवर्गणाओ को पृथक् करने के सम्बन्ध मे भी चिन्तन है। जैन पारिभाषिक शब्दावली मे आत्मा से कर्मवर्गणाओ का पृथक् हो जाना या उन कर्मपुद्गलो को पृथक् कर देना निर्जरा है। निर्जरा शब्द का अर्थ है—जर्जरित कर देना, झाड देना। निर्जरा के दो प्रकार हैं—१ भावनिर्जरा और २ द्रव्यनिर्जरा। आत्मा की वह विशुद्ध अवस्था जिसके कारण कर्म-परमाणु आत्मा से पृथक् हो जाते हैं, भावनिर्जरा है। यही कर्मपरमाणुओ का आत्मा से पृथक्करण द्रव्य-निर्जरा है। भावनिर्जरा कारणरूप है और द्रव्यनिर्जरा कार्यरूप है। उत्तराध्ययनसूत्र मे इसी तथ्य को रूपक की भाषा मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है—आत्मा सरोवर है, कर्म पानी है। कर्म का आश्रव पानी का आगमन है। उस पानी के आगमन के द्वारो को अवरुद्ध कर देना सवर है और पानी को उलीचना और सुखाना निर्जरा है।

प्रकारान्तर से निर्जरा के सकामनिर्जरा और अकामनिर्जरा, ये दो प्रकार हैं। जिसमे कर्म जितनी काल-मर्यादा के साथ बधा हुआ है, उसके समाप्त हो जाने पर अपना विपाक यानी फल देकर आत्मा से पृथक् हो जाता है, वह अकामनिर्जरा है। इस अकामनिर्जरा को यथाकाल निर्जरा, सविपाक निर्जरा और अनौपक्रमिक निर्जरा भी कहते हैं। विपाक-अवधि के आने पर कर्म अपना फल देकर स्वाभाविक रूप से पृथक् हो जाते हैं, इसमे कर्म को पृथक् करने के लिये प्रयास की आवश्यकता नही होती। इस निर्जरा का महत्त्व साधना की दृष्टि से नहीं है। क्योकि कर्मों का बन्ध और इस निर्जरा का क्रम प्रतिपल-प्रतिक्षण चलता रहता है। जब तक नूतन कर्मों का बन्धन अवरुद्ध नही होता तब तक सापेक्ष रूप से इस निर्जरा से लाभ नही होता। जिस प्रकार एक व्यक्ति पुराने ऋण को चुकाता तो रहता है पर नवीन ऋण भी ग्रहण करता रहता है तो वह व्यक्ति ऋण से मुक्त नही होता। अकाम-निर्जरा अनादि काल से करने के बावजूद भी आत्मा मुक्त नही हो सका। भव-परम्परा को समाप्त करने के लिये सकामनिर्जरा की आवश्यकता है।

सकामनिर्जरा वह है, जिसमे तप आदि की साधना के द्वारा कर्मों की कालस्थिति परिपक्व होने के पहले ही प्रदेशोदय के द्वारा उन्हे भोगकर बलात् पृथक् कर दिया जाता है। इसमे विपाकोदय या फलोदय नही होता। केवल प्रदेशोदय ही होता है। विपाकोदय और प्रदेशोदय के अन्तर को समझाने के लिये डॉ सागरमल जैन ने एक उदाहरण दिया है—"जब क्लोरोफार्म सु घाकर किसी व्यक्ति की चीर-फाड की जाती है तो उसमे उसे असाता-वेदनीय (दुखानुभूति) नामक कर्म का प्रदेशोदय होता है, लेकिन विपाकोदय नही होता है। उसमे दु खद वेदना के तथ्य तो उपस्थित होते हैं, लेकिन दु खद वेदना की अनुभूति नही है। इसी प्रकार प्रदेशोदय मे कर्म के फल का तथ्य तो उपस्थित हो जाता है, किन्तु उसकी फलानुभूति नही होती।"[1] इसलिये यह निर्जरा अविपाक निर्जरा या सकाम निर्जरा कहलाती है। इस निर्जरा मे कर्मपरमाणुओ को आत्मा से पृथक् करने के लिये सकल्प होता है। इसमे प्रयासपूर्वक कर्मवर्गणा के पुद्गलो को आत्मा से पृथक् किया जाता है। 'इसिभासिय' ग्रन्थ मे लिखा है कि ससारी आत्मा प्रतिपल-प्रतिक्षण अभिनव कर्मों का बन्ध और पुराने कर्मों की निर्जरा कर रहा है। पर तप के द्वारा होने वाली निर्जरा का विशेष महत्त्व है।[2]

---

१ डॉ. सागरमल जैन, जैन बौद्ध और गीता के आचारदर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन, भाग १, पृष्ठ ३९६
२ इसिभासिय ९/१०

भगवतीसूत्र (शतक १६, उद्देशक ४) में सकामनिर्जरा के महत्त्व का प्रतिपादन करने वाला एक सुन्दर प्रसग है। गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि एक नित्यभोजी श्रमण साधना के द्वारा जितने कर्मों को नष्ट करता है, उतने कर्म एक नैरयिक जीव सौ वर्ष मे अपार वेदना सहन कर नष्ट कर सकता है ?

समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—नहीं।

पुनः गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि एक उपवास करने वाला श्रमण जितने कर्मों को नष्ट करता है, उतने कर्म एक हजार वर्ष तक असह्य वेदना सहन कर नरक का जीव नष्ट कर सकता है ?

भगवान् ने समाधान दिया - नही।

गौतम ने पुन पूछा—भगवन् ! आप किस दृष्टि से ऐसा कहते है ?

भगवान् ने कहा—जैसे एक वृद्ध, जिसका शरीर जर्जरित हो चुका है, जिसके दात गिर चुके है, जो अनेक दिनो से भूखा है, वह वृद्ध परशु लेकर एक विराट् वृक्ष को काटना चाहता है और इसके लिये वह मुँह से जोर का शब्द भी करता है, तथापि वह उस वृक्ष को काट नही पाता। वैसे ही नैरयिक जीव तीव्र कर्मों को भयकर वेदना सहन करने पर भी नष्ट नहीं कर पाता। पर जैसे उस विराट् वृक्ष को एक युवक देखते-देखते काट देता है, वैसे ही श्रमण निर्ग्रन्थ सकामनिर्जरा से कर्मों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं। इसी तथ्य को भगवतीसूत्र के शतक ६, उद्देशक १ मे स्पष्ट किया है कि नैरयिक जीव महावेदना का अनुभव करने पर भी महानिर्जरा नही कर पाता जबकि श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पवेदना का अनुभव करके भी महानिर्जरा करता है। जैसे मजदूर अधिक श्रम करने पर भी कम अर्थलाभ प्राप्त करता है और कारीगर कम श्रम करके अधिक अर्थलाभ प्राप्त करता है।

सत जीवन की महिमा और प्रकार

जैन साहित्य मे सन्त की महिमा और गरिमा का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। सन्त का जीवन एक अनूठा जीवन होता है। वह ससार मे रहकर भी ससार के विषय-विकारों से अलिप्त रहता है। अलिप्त रहने से उसके जीवन मे सुख का सागर लहराता रहता है। गणधर गौतम के अन्तर्मानस मे यह जिज्ञासा उद्‌बुद्ध हुई कि श्रमण के जीवन मे सुख की मात्रा कितनी है ? देवगण परम सुखी कहलाते हैं तो क्या श्रमण का सुख देवताओं के सुख से कम है या ज्यादा ? उन्होने अपनी जिज्ञासा भगवान् महावीर के सामने प्रस्तुत की। महावीर ने गौतम की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा -तराजू के एक पलडे मे जिस श्रमण की दीक्षापर्याय एक मास की हुई हो, उसके जीवन मे जो सुख है उसको रखा जाये और दूसरे पलडे मे वाणव्यन्तर देवो के सुख को रखा जाये तो वाणव्यन्तर की अपेक्षा उस श्रमण के सुख का पलडा भारी रहेगा। इसी प्रकार दो मास के श्रमण के सुख के सामने भवनवासी देवो का सुख नगण्य है। इस तरह बारह मास की दीक्षापर्याय वाले श्रमण को जो सुख है, वह सुख अनुत्तरौपपातिक देवो को भी नही है। आध्यात्मिक सुख के सामने भौतिक सुख कितना तुच्छ है, यह स्पष्ट किया गया है। अनुत्तर विमानवासी देवो का सुख भी, जो श्रमण आत्मस्थ हैं, उनके सामने नगण्य है।[1]

भगवतीसूत्र मे श्रमण निर्ग्रन्थो के सम्बन्ध मे विविध दृष्टियों से चिन्तन किया है। गौतम ने जिज्ञासा प्रकट की कि भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितने प्रकार के हैं ?

भगवान् ने निर्ग्रन्थो के पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक—ये पाच प्रकार बताये और प्रत्येक के पाच-पाच अन्य प्रकार भी बताये है।[2] गौतम ने यह भी जिज्ञासा प्रस्तुत की कि सयमी के कितने प्रकार

१ भगवती. शतक १४, उद्देशक ९

२. भगवती. शतक २५, उद्देशक ६

है ? भगवान् ने सामायिक सयत, छेदोपस्थापनीय सयत, परिहारविशुद्ध सयत, सूक्ष्मसम्पराय सयत और यथाख्यात सयत, ये पाच प्रकार बताये और उनके भी भेदोपभेदो का कथन किया है।[1]

श्रमण केवल वेशपरिवर्तन करने से ही नही होता। उसके जीवन मे आगमोक्त सद्गुणो का प्राधान्य होना चाहिये। श्रमण के जीवन मे जिन गुणो की अपेक्षा है उसकी चर्चा भगवतीसूत्र, शतक १, उद्देशक ९ मे इस प्रकार की है—श्रमण को नम्र होना चाहिये। उसकी इच्छाये अल्प हो, पदार्थों के प्रति मूर्च्छा का अभाव हो, अनासक्त हो और अप्रतिबद्धविहारी हो। श्रमण को क्रोधादि कषायो से भी मुक्त रहना चाहिये। जो श्रमण राग-द्वेष से मुक्त होता है, वही श्रमण परिनिर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक १ मे सवृत और असवृत अनगार के चर्चा के प्रसग मे यह बताया है कि असवृत अनगार जो राग-द्वेष से ग्रस्ति है, वह तीव्र कर्म का बन्धन करता है और ससार मे परिभ्रमण करता है और सवृत अनगार जो राग-द्वेष से मुक्त है, वही सम्पूर्ण दु खो का अन्त करता है। इससे स्पष्ट है कि श्रमण-जीवन का लक्ष्य कषाय से मुक्त होना है। इस प्रकार विविध प्रसग श्रमण-जीवन की महत्ता को उजागर करते हैं।

श्रमण अनगार होता है। वह अपना जीवन निर्दोष भिक्षा ग्रहण कर यापन करता है। उसकी भिक्षा एक विशुद्ध भिक्षा है। भगवतीसूत्र मे भिक्षा के सम्बन्ध मे यत्र-तत्र चर्चा है। उस युग मे जनमानस मे यह प्रश्न उद्बुद्ध हो रहा था कि श्रमणो या ब्राह्मणो को भिक्षा देने से पाप होता है या पुण्य होता है या निर्जरा होती है ? गणधर गौतम ने जनमानस मे पनपती हुई यह शका भगवान् महावीर के सामने प्रस्तुत की कि उत्तम श्रमण या ब्राह्मण का निर्जीव और दोषरहित अन्न-पानी आदि के द्वारा एक श्रमणोपासक सत्कार करता है तो उसे क्या प्राप्त होता है ?

भगवान् महावीर ने कहा श्रमणोपासक अन्न-पानी आदि से श्रमण और ब्राह्मण को समाधि उत्पन्न करता है, इसलिये वह समाधि प्राप्त करता है। वह जीवननिर्वाह योग्य वस्तु प्रदान कर दुर्लभ सम्यक्त्वरत्न की विशुद्धि को प्राप्त करता है। वह निर्जरा करता है, पर पापकर्म नही करता।

श्रमण बहुत ही जागरूक होता है। भिक्षा ग्रहण करते समय और भिक्षा का उपयोग करते समय उसकी जागरूकता सतत बनी रहती है। आगम साहित्य मे यत्र-तत्र भिक्षा सम्बन्धी दोष बताये गये हैं और आहार ग्रहण करने के दोष भी प्रतिपादित है। भगवतीसूत्र शतक ७ के प्रथम उद्देशक मे प्रस्तुत प्रसग इस प्रकार आया है—गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि भगवन् ! अगारदोष, धूमदोष, सयोजनदोष प्रभृति से आहार किस प्रकार दूषित होता है ?

समाधान करते हुए भगवान् महावीर ने कहा - कोई श्रमण निर्ग्रन्थ निर्दोष, प्रासुक आहार को बहुत ही मूर्च्छित, लुब्ध और आसक्त बन कर खाता है, वह अगारदोष सहित आहार कहलाता है। आहार करते समय अन्तर्मानस मे क्रोध की आग सुलग रही हो तो वह आहार धूमदोष सहित कहलाता है और स्वाद उत्पन्न करने के लिए एक दूसरे पदार्थ का सयोजन किया जाये, वह सयोजनादोष है। श्रमण क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त आहार आदि ग्रहण न करे पर नवकोटि विशुद्ध आहार ग्रहण करे।[2] श्रमण का आहार सयम साधना की अभिवृद्धि के लिये होता है। आहार के सम्बन्ध में भगवती मे अनेक स्थलो पर

१. भगवती शतक २५, उद्देशक ७

२. भगवती शतक ७, उद्देशक १

चिन्तन प्रस्तुत किया है।[1] दशवैकालिक[2], पिण्डनिर्युक्ति[3] प्रभृति आगम ग्रन्थो मे भी भिक्षाचर्या पर विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

पाप : एक चिन्तन

भारतीय मनीषियो ने पाप के सम्बन्ध मे भी अपना स्पष्ट चिन्तन प्रस्तुत किया है। पाप की परिभाषा करते हुए लिखा है, जो आत्मा को बन्धन मे डाले, जिसके कारण आत्मा का पतन हो, जो आत्मा के आनन्द का शोषण करे और आत्मशक्तियो का क्षय करे, वह पाप है।[4] उत्तराध्ययनचूर्णि[5] मे लिखा है—जो आत्मा को बाधता है वह पाप है। स्थानागटीका[6] मे आचार्य अभयदेव ने लिखा है—जो नीचे गिराता है, वह पाप है, जो आत्मा के आनन्दरस का क्षय करता है, वह पाप है। जिस विचार और आचार से अपना और पर का अहित हो और जिससे अनिष्ट फल की प्राप्ति होती हो, वह पाप है। भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक ८ मे पाप के विषय मे चिन्तन करते हुए लिखा है कि एक शिकारी अपनी आजीविका चलाने के लिये हरिण का शिकार करने हेतु जगल मे खड्डे खोदता है और उसमे जाल बिछाता हो, उस शिकारी को किस प्रकार की क्रिया लगती है ?

भगवान् ने कहा कि वह शिकारी जाल को थामे हुए है पर जाल मे मृग को फँसाता नही है, बाण से उसे मारता नही है, उस शिकारी को कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी ये तीन क्रियाए लगती हैं। जब वह मृग को बाधता है पर मारता नही है तब उसे इन तीन क्रियाओ के अतिरिक्त एक परितापनिकी चतुर्थ क्रिया भी लगती है और जब वह मृग को मार देता है तो उपर्युक्त चार क्रियाओ के अतिरिक्त उसे पाचवी प्राणातिपात क्रिया भी लगती है।

भगवतीसूत्र शतक ५, उद्देशक ६ मे गणधर गौतम ने प्रश्न किया कि एक व्यक्ति आकाश मे बाण फेकता है, वह बाण आकाश मे अनेक प्राणियो के, भूतो के, जीवो के और सत्वो के प्राणो का अपहरण करता है। उस व्यक्ति को कितनी क्रियाए लगती है ?

भगवान् महावीर ने कहा—उस व्यक्ति को पाचो क्रियाए लगती है।

भगवतीसूत्र शतक ७, उद्देशक १० के कालोदायी ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की कि दो व्यक्तियो मे से एक अग्नि को जलाता है और दूसरा अग्नि को बुझाता है। दोनो मे से अधिक पाप कौन करता है ?

भगवान् ने समाधान दिया कि जो अग्नि को प्रज्वलित करता है, वह अधिक कर्मयुक्त, अधिक क्रिया-युक्त, अधिक आश्रवयुक्त और अधिक वेदनायुक्त कर्मों का बन्धन करता है। उसकी अपेक्षा बुझाने वाला व्यक्ति कम पाप करता है। अग्नि प्रज्वलित करने वाला पृथ्वीकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक सभी की हिसा करता है, जबकि बुझाने वाला उससे कम हिसा करता है।

---

१ भगवती शतक १, उद्देशक ९, शतक ५, उद्देशक ६, शतक ८, उद्देशक ६

२ दशवैकालिक, अ ३, अ ५

३ पिण्डनिर्युक्ति

४ अभिधानराजेन्द्रकोश, खण्ड ५, पृष्ठ ८७६

५ पासयति पातयति वा पापम्। —उत्तराध्ययनचूर्णि, पृ १५२

६ पाशयति—गुण्डयत्यात्मान पातयति चात्मन आनन्दरस शोषयति क्षपयतीति पापम्।

—स्थानागटीका, पृ १६

भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देशक ६ मे गणधर गौतम ने पूछा -एक श्रमण भिक्षा के लिये गृहस्थ के यहाँ गया। वहाँ पर उसे कुछ दोष लग गया। वह श्रमण सोचने लगा कि मैं स्थान पर पहुँच कर स्थविर मुनियो के पास आलोचना करूं गा और विधिवत् प्रायश्चित्त लूं गा। वह स्थविरो की सेवा मे पहुँचा। पर उसके पूर्व ही स्थविर रुग्ण हो गये तथा उनकी वाणी बन्द हो गई। वह श्रमण प्रायश्चित्त ग्रहण नही कर सका तो वह आराधक है या विराधक ?

भगवान् ने कहा—वह आराधक है, क्योंकि उसके मन मे पाप की आलोचना करने की भावना थी। यदि वह श्रमण स्वय भी मूक हो जाता, पाप को प्रकट नही कर पाता तो भी वह आराधक था, क्योकि उसके अन्तर्मानस मे आलोचना कर पाप से मुक्त होने की भावना थी। पाप का सम्बन्ध भावना पर अधिक अवलम्बित है।

इस प्रकार भगवती मे विविध प्रश्न पाप से निवृत्त होने के सम्बन्ध मे पूछे गये। उन सभी प्रश्नो का सटीक समाधान भगवान् महावीर ने प्रदान किया है। पाप की उत्पत्ति मुख्य रूप से राग-द्वेष और मोह के कारण होती है। जितनी-जितनी उनकी प्रधानता होगी, उतना-उतना पाप का अनुबन्धन तीव्र और तीव्रतर होगा। जैन-धर्म मे पाप के प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान आदि अठारह प्रकार बताये है।

बौद्धधर्म मे कायिक वाचिक और मानसिक आधार पर पाप या अकुशल कर्म के दस प्रकार प्रतिपादित हैं।[1]

(१) कायिक पाप—१ प्राणातिपात (हिंसा), २ अदत्तादान (चोरी), ३ काममुमिच्छाचार (कामभोग सम्बन्धी दुराचार)।

(२) वाचिक पाप—४ मुसावाद (असत्य भाषण), ५ पिसुना वाचा (पिशुन वचन), ६ फरुसा वाचा (कठोर वचन), ७ सम्फलाप (व्यर्थ आलाप)।

(३) मानसिक पाप—८ अभिज्जा (लोभ) ९ व्यापाद (मानसिक हिंसा या अहित चिन्तन), १० मिच्छादिट्ठी (मिथ्यादृष्टि)।

अभिधम्मत्थसगहो[2] नामक बौद्ध ग्रन्थ मे भी चौदह अकुशल चैतसिक पापो का निरूपण हुआ है। वे इस प्रकार हैं—

१ मोहमूढता, २ अहिरीक (निर्लज्जता), ३ अनोतप्प—अभीरुता (पापकर्म मे भय न मानना), ४ उद्धच्च—उद्धतपन (चचलता), ५ लोभो (तृष्णा), ६ दिट्ठी—मिथ्यादृष्टि, ७ मानो—अहकार, ८ दोसो—द्वेष, ९ इस्सा—ईर्ष्या, १० मच्छरिय—मात्सर्य (अपनी सम्पत्ति को छिपाने की प्रवृत्ति), ११ कुक्कुच्च कौकृत्य (कृत-अकृत के बारे मे पश्चात्ताप), १२ थीन, १३ मिद्ध, १४ विचिकिच्छा—विचिकित्सा (सशय)।

इसी प्रकार वैदिकपरम्परा के ग्रन्थ मनुस्मृति[3] मे भी पापाचरण के दस प्रकार प्रतिपादित हैं—

(क) कायिक—१ हिंसा, २ चोरी, ३ व्यभिचार,

---

१ बौद्धधर्मदर्शन, भाग १, पृष्ठ ४८०, ले भरतसिह उपाध्याय

२. अभिधम्मत्थसगहो पृ १९, २०

३ मनुस्मृति १२/५-७

(ख) वाचिक—४ मिथ्या (असत्य), ५ ताना मारना, ६ कटुवचन, ७ असगत वाणी,

(ग) मानसिक—८ परद्रव्य की अभिलाषा, ९. अहितचिन्तन, १० व्यर्थ आग्रह।

इस प्रकार सभी मनीषियो ने पाप से मुक्त होने का सदेश दिया है।

आध्यात्मिक शक्ति

आज का मानव भौतिक विज्ञान की शक्ति से न्यूनाधिक रूप मे भलीभाति परिचित है। विज्ञान की शक्ति से मानव आकाश मे पक्षी की भाति उड़ान भर रहा है, मछली की भाति अनन्त जलराशि पर तैर रहा है और द्रुत गति से भूमि पर दौड रहा है। टेलीफोन, टेलीविजन, रेडियो आदि के आविष्कार से विश्व सिमट गया है। अणु बम, न्यूट्रोन बम और विविध प्रकार की गैसो के आविष्कार मे विश्व को विज्ञान ने विनाश की भूमिका पर भी पहुँचा दिया है। पर अतीत काल मे भौतिक अनुसधान का अभाव था। उस समय आध्यात्मिक साधना के द्वारा उन साधको ने वह अपूर्व शक्ति अर्जित की थी जिससे वे किसी के अन्तर्मानस के विचारो को जान सकते थे, विविध रूपों का सृजन कर सकते थे। जघाचारण, विद्याचारण लब्धियो से अनन्त आकाश को कुछ ही क्षणो मे नाप लेते थे। भगवतीसूत्र मे इस प्रकार की आध्यात्मिक शक्तियो को उजागर करने वाले अनेक प्रसग आये हैं।

भगवतीसूत्र शतक ३, उद्देशक ५ मे एक प्रसग है—गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा कि एक श्रमण विराट्काय स्त्री का रूप बना सकता है ? यदि बना सकता है तो कितनी स्त्रियो का रूप बना सकता है ?

भगवान् ने कहा—वैक्रियलब्धिधारी श्रमण मे इतना अधिक सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को स्त्रियो के रूपो से भर सकता है, पर निर्माण करने की शक्ति होने पर भी वह इस प्रकार स्त्रियो का निर्माण नहीं करता।

भगवतीसूत्र शतक ३, उद्देशक ४ मे गौतम ने पूछा वैक्रियशक्ति का प्रयोग प्रमत्त श्रमण करता है या अप्रमत्त श्रमण करता है ?

भगवान् महावीर ने कहा वैक्रियलब्धि का प्रयोग प्रमत्त श्रमण करता है, अप्रमत्त श्रमण नही करता।

शतक ७, उद्देशक ९ मे यह भी बताया है कि प्रमत्त श्रमण ही विविध प्रकार के विविध रग के रूप बना सकता है। वह चाहे जिस रूप मे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श मे परिवर्तन कर सकता है।

भगवतीसूत्र शतक २०, उद्देशक ९ मे गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् ने कहा—आकाश मे गमन करने की शक्ति चारणलब्धि मे रही हुई है। वह चारणलब्धि जघाचारण और विद्याचारण के रूप मे दो प्रकार की है। विद्याचारणलब्धि निरन्तर बेले की तपस्या से और पूर्व नामक विद्या से प्राप्त होती है। इस लब्धि मे मुनि तीन बार चुटकी बजाने जितने समय मे तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन परिधि वाले जम्बूद्वीप मे तीन बार प्रदक्षिणा कर लेता है। जघाचारणलब्धि तीन-तीन उपवास की निरन्तर साधना करने पर प्राप्त होती है और इस लब्धि की शक्ति से तीन बार चुटकी बजाये इतने समय मे इक्कीस बार जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा कर लेता है। इस द्रुत गति के सामने आधुनिक युग के रॉकेट की गति भी कितनी कम है !

इसी तरह अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान के द्वारा अन्तर्मानस मे रहे हुए विचारो को साधक किस प्रकार जानता है ? शतक ३, उद्देशक ४ तथा शतक १४, उद्देशक १०, शतक ५, उद्देशक ४ आदि मे इस विषय का विस्तार से निरूपण है। आध्यात्मिक शक्ति जब जाग जाती है तब हस्तामलकवत् चाहे रूपी पदार्थ हो या अरूपी पदार्थ हो, उसे वह सहज ही जान लेता है। उससे कोई भी वस्तु छिपी नही रह पाती।

भगवतीसूत्र शतक १५ मे तेजोलब्धि का भी निरूपण है। तेजोलब्धि वह लब्धि है, जिससे साढे सोलह देश भस्म किये जा सकते थे। वह शक्ति आधुनिक उद्जन बम की तरह थी। भौतिक शक्ति की अपेक्षा आध्यात्मिक शक्ति अधिक प्रबल होती है, यह प्रस्तुत प्रसगो से स्पष्ट है। जैन परम्परा की तरह बौद्ध और वैदिक परम्परा मे भी तपोजन्य लब्धियो का उल्लेख हुआ है।

योगदर्शन मे आचार्य पतञ्जलि ने योग का प्रभाव प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि योगी को अणिमा, महिमा, लघिमा प्रभृति आठ महाविभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इससे योगी अणु को विराट् और विराट् को अणु बना सकता है। जिसे जैन परम्परा मे लब्धि कहा है उसे ही योगदर्शन मे विभूतियाँ कहा है। आगमकार ने यह सूचित किया है कि लब्धि होना अलग चीज है और उसका प्रयोग करना अलग चीज है। लब्धि सहज होती है पर लब्धि का प्रयोग प्रमत्त दशा मे ही होता है। छट्ठे गुणस्थान तक ही साधक लब्धि का प्रयोग करता है। अप्रमत्त साधक लब्धि का प्रयोग नही करता है। लब्धिप्रयोग प्रमत्त भाव है। प्रमाद कर्मबन्धन का कारण है। इसीलिए भगवती के बीसवे शतक, नौवे उद्देशक मे स्पष्ट कहा है—जो साधक लब्धि का प्रयोग कर प्रमादवेदना कर पुन उसकी आलोचना नही करता है, अनालोचना की दशा मे ही काल प्राप्त कर जाता है तो वह धर्म की आराधना मे च्युत हो जाता है। "नत्थि तस्स आराहणा" अर्थात् वह विराधक हो जाता है।

यहा यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि लब्धिप्रयोग प्रमाद क्यो है ? उत्तर है कि उसमे उत्सुकता, कुतूहल, प्रदर्शन, यश और प्रतिष्ठा की भावना रहती है। लब्धिप्रयोग करने वाले के अन्तर्मानस मे कभी यह विचार पनपता है कि जनमानस पर मेरा प्रभाव गिरे। कभी-कभी वह क्रोध के कारण दूसरे व्यक्ति का अनिष्ट करने के लिये लब्धि का प्रयोग करता है, इसलिये उसमे प्रमाद रहा हुआ है। जैनसाधना मे चमत्कार को नही सदाचार को महत्त्व दिया है। जिस प्रकार भगवान् महावीर ने लब्धिप्रयोग का निषेध किया वैसे ही तथागत बुद्ध ने चमत्कारप्रदर्शन को ठीक नही माना। । सयुक्तनिकाय मे भिक्षु मौदगल्यायन का वर्णन है जो लब्धिधारी और ऋद्धिबल सम्पन्न था।[1] समय-समय पर वह चमत्कारप्रदर्शन भी करता था। अत बुद्ध समय-समय पर चमत्कार-प्रदर्शन का निषेध करते रहे।

प्रत्याख्यान : एक चिन्तन

इच्छाओ के निरोध के लिये प्रत्याख्यान आवश्यक है। प्रत्याख्यान का अर्थ है प्रवृत्ति को मर्यादित और सीमित करना।[2] आचार्य अभयदेव ने स्थानागवृत्ति मे लिखा है कि अप्रमत्तभाव को जगाने के लिये जो मर्यादापूर्वक सकल्प किया जाता है वह प्रत्याख्यान है।[3] साधक आत्मशुद्धि हेतु यथाशक्ति प्रतिदिन कुछ न कुछ त्याग करता है। त्याग करने से उसके जीवन मे अनासक्ति की भव्य भावना अगडाइयाँ लेने लगती है और तृष्णा मद से मदतर होती चली जाती है। प्रत्याख्यान मे भी दो प्रकार हैं—१ द्रव्यप्रत्याख्यान और २ भाव-प्रत्याख्यान। द्रव्यप्रत्याख्यान मे आहार, वस्त्र प्रभृति पदार्थो को छोडना होता है और भावप्रत्याख्यान मे राग-द्वेष, कषाय प्रभृति अशुभ वृत्तियो का परित्याग करना होता है।

आवश्यकनिर्युक्ति[4] मे आचार्य भद्रबाहु ने लिखा है--प्रत्याख्यान मे आस्रव का निरुन्धन होता है

---

१ देखिए धम्मपद अट्ठकथा ४-४४ (ख) अगुत्तरनिकाय १-१४

२. योगशास्त्र, स्वोपज्ञवृत्ति, उद्धृत श्रमणसूत्र, पृ १०४

३ प्रमादप्रातिकूल्येन मर्यादया ख्यान-कथन प्रत्याख्यानम्। —स्थानाग टीका पृ ४१

४ आवश्यकनिर्युक्ति १५९४

और आस्रव-निरुन्धन से तृष्णा का क्षय होता है। जैन दृष्टि से असद्-आचरण नहीं करने वाला व्यक्ति भी जब तक प्रतिज्ञा नहीं लेता है तब तक वह उस असदाचरण से मुक्त नहीं हो पाता। परिस्थितिवश वह असदाचरण नहीं करता पर असदाचरण न करने की प्रतिज्ञा के अभाव मे वह परिस्थितिवश असदाचरण कर सकता है। जब तक प्रतिज्ञा नही करता तब तक वह असदाचरण के दोष से मुक्त नही हो सकता। प्रत्याख्यान में असदाचरण से निवृत्त होने के लिये दृढ़-संकल्प की आवश्यकता है।

भगवतीसूत्र शतक ७, उद्देशक २ मे प्रत्याख्यान के सम्बन्ध मे विस्तार से चर्चा की गई है।

प्रायश्चित्त : एक चिन्तन

साधक प्रतिपल-प्रतिक्षण जागरूक रहता है किन्तु जागरूक रहने पर भी और न चाहते हुए भी कभी-कभी प्रमाद आदि के कारण स्खलनाएँ हो जाती हैं। दोष लगना उतना बुरा नहीं है, जितना बुरा है दोष को दोष न समझना और उसकी शुद्धि के लिये प्रस्तुत न होना। जो दोष लग जाते हैं, उन दोषों की शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त का विधान है। प्रायश्चित्त मे सर्वप्रथम आलोचना है। जो भी स्खलना हो, उस स्खलना को बालक की तरह गुरु के समक्ष सरलता के साथ प्रस्तुत कर देना आलोचना है। भगवतीसूत्र शतक २५, उद्देशक ७ मे इस सम्बन्ध मे विस्तार से निरूपण किया गया है, सर्वप्रथम गणधर गौतम ने पूछा कि भगवन्! किन कारणो से साधना मे स्खलनाएँ होती हैं?

भगवान् महावीर ने समाधान देते हुए कहा कि दस कारणो से साधना मे स्खलनाएँ होती हैं। वे इस प्रकार हैं- १ दर्प (अहकार से) २ प्रमाद से ३ अनाभोग (अज्ञान से) ४ आतुरता ५ आपत्ति से ६ सकीर्णता ७ सहसाकार (आकस्मिक क्रिया से) ८ भय से ९ प्रद्वेष (क्रोध आदि कषाय से) १० विमर्श (शैक्षिक आदि की परीक्षा करने से) इन दस कारणो से स्खलना होती है। स्खलना होने पर उन स्खलनाओ के परिष्कार के लिये साधक गुरु के समक्ष पहुचता है, पर दोष को प्रकट करते समय उन दोषो को इस प्रकार प्रकट करना जिससे गुरुजन मुझे कम प्रायश्चित्त दें, यह दोष है। आलोचना के दस दोष प्रस्तुत आगम मे हैं तथा अन्य स्थलो पर भी उन दस दोषो का निरूपण हुआ है। वे दोष इस प्रकार हैं—१ गुरु को यदि मैने प्रसन्न कर लिया तो वे मुझे कम प्रायश्चित्त देंगे अत उनकी सेवा कर उनके अन्तर्मानस को प्रसन्न कर फिर आलोचना करना। २ बहुत अल्प अपराध को बताना जिससे कि कम प्रायश्चित्त मिले। ३. जो अपराध आचार्य आदि ने देखा हो उसी की आलोचना करना। ४ केवल बडे अतिचारो की ही आलोचना करना। ५ केवल सूक्ष्म दोषो की ही आलोचना करना जिससे कि आचार्य को यह आत्मविश्वास हो जाये कि यह इतनी सूक्ष्म बातो की आलोचना कर रहा है तो स्थूल दोषो की तो की ही होगी। ६ इस प्रकार आलोचना करना जिससे कि आचार्य सुन न सके। ७. दूसरो को सुनाने के लिये जोर-जोर से आलोचना करना। ८ एक ही दोष की पुन पुन आलोचना करना। ९ जिनके सामने आलोचना की जाय वह अगीतार्थ हो। १० उस दोष की आलोचना की जाय जिस दोष का सेवन उस आचार्य ने कर रखा हो—ये दस आलोचना के दोष हैं।

आलोचना करने वाले के दस गुण भी बताए गये हैं तथा जिस आचार्य या गुरु के सामने आलोचना करनी हो उनके आठ गुण भी आगम मे प्रतिपादित हैं। वर्तमान युग मे आलोचना शब्द अन्य अर्थ मे व्यवहृत है—किसी की नुक्ता-चीनी करना, टीका-टिप्पणी करना या किसी के गुण-दोष की चर्चा करना। पर प्रस्तुत आगम मे जो शब्द आया है, वह दूसरो के गुण-दोषो के सम्बन्ध मे नही है, पर आत्मनिन्दा के अर्थ मे है। आत्मनिन्दा करना सरल नहीं, कठिन और कठिनतर है। परनिन्दा करना, दूसरे के दोषो को निहारना सरल है। आत्म-

आलोचना वही व्यक्ति कर सकता है जिसमे सरलता हो, किसी भी प्रकार का छिपाव न हो, जिसका जीवन खुली पुस्तक की तरह हो। व्यक्ति पाप करके भी यह सोचता है कि मैं पाप को स्वीकार करूगा तो मेरी कीर्ति, मेरा यश, मेरी प्रतिष्ठा धूमिल हो जायेगी। वह पाप करके भी पाप को छिपाना चाहता है। जिसे स्वास्थ्य की चिन्ता है, वह पहले से ही सावधान रहता है। यदि रोग हो गया है, उसके बाद यह सोचे कि मैं डॉक्टर के पास जाऊगा और लोगो को यह पता चल जायेगा कि मै रोगी हू। इस प्रकार विचार कर वह अपना रोग छिपाता है तो वह व्यक्ति स्वस्थ नही हो सकता। इसी प्रकार जीवन मे पवित्रता तभी रहेगी जब दोष को प्रकट कर उसका यथोचित प्रायश्चित्त किया जाय। आलोचना करने से साधक माया, निदान और मिथ्यादर्शन रूप तीन शल्यो को अन्तर्मानस से निकाल दूर कर देता है। काटा निकलने से हृदय मे सुखानुभूति होती है, वैसे ही पाप को प्रकट करने से भी जीवन नि शल्य बन जाता है। जो साधक पाप करके भी आलोचना नहीं करता है, उसकी सारी आध्यात्मिक क्रियाए बेकार हो जाती हैं। कोई साधक यह सोचे कि मुझे तो सभी शास्त्रो का परिज्ञान है अत मुझे किसी के पास जाकर आलोचना करने की क्या आवश्यकता है? पर यह सोचना ठीक नहीं है। जिस प्रकार निपुण वैद्य भी अपनी चिकित्सा दूसरो से करवाता है, दूसरे वैद्य के कथनानुसार कार्य करता है, वैसे ही आचार्य को भी यदि दोष लग जाता है तो दोष की विशुद्धि दूसरो की साक्षी से ही करनी चाहिये। इस प्रकार करने से हृदय की सरलता प्रकट होती है और दूसरो को भी सरल और विशुद्ध बनाया जा सकता है।

आलोचना किसके पास करनी चाहिये? इस प्रश्न का समाधान व्यवहारसूत्र मे मिलता है। सर्वप्रथम आलोचना आचार्य और उपाध्याय के समक्ष करनी चाहिये। उनके अभाव मे साम्भोगिक बहुश्रुत श्रमण के पास करनी चाहिये। उनके अभाव मे समान रूप वाले बहुश्रुत साधु के पास। उनके अभाव मे जिसने पूर्व मे सयम पाला हो और जिसे प्रायश्चित्तविधि का ज्ञान हो, उस पडिवाई (सयमच्युत) श्रावक के पास। उसका भी अभाव होने पर जिनभक्त यक्ष आदि के पास। इनमे से सभी का अभाव हो तो ग्राम या नगर के बाहर पूर्व-उत्तर दिशा मे मुंह कर विनीत मुद्रा मे अपने अपराधो और दोषो का स्पष्ट उच्चारण करना चाहिये और अरिहन्त-सिद्ध की साक्षी से स्वत ही शुद्ध हो जाना चाहिये।[1]

तप : एक विश्लेषण

तप भारतीय साधना का प्राणतत्त्व है। जैसे शरीर मे ऊष्मा जीवन के अस्तित्व का द्योतक है वैसे ही साधना मे तप उसके दिव्य अस्तित्व को अभिव्यक्त करता है। तप के बिना न निग्रह होता है, न अभिग्रह होता है। तप दमन नही, शमन है। तप केवल आहार का ही त्याग नही, वासना का भी त्याग है। तप अन्तर्मानस मे पनपते हुए विकारो को जलाकर भस्म कर देता है और साथ ही अन्तर्मानस मे रहे हुए सघन अन्धकार को भी नष्ट कर देता है। इसलिये तप ज्वाला भी है और ज्योति भी है। तप जीवन को सौम्य, सात्विक और सर्वांगपूर्ण बनाता है। तप की साधना से आध्यात्मिक परिपूर्णता प्राप्त होती है। तप ऐसा कल्पवृक्ष है जिसकी निर्मल छत्रछाया मे साधना के अमृतफल प्राप्त होते हैं। तप से जीवन ओजस्वी, तेजस्वी और प्रभावशाली बनता है। तप के सम्बन्ध मे भगवतीसूत्र शतक १४, उद्देशक ७ मे निरूपण है। वहाँ पर तप के दो मुख्य प्रकार बताये है—१ बाह्य तप और २ आभ्यन्तर तप। बाह्य तप के छह प्रकार बताये हैं और आभ्यन्तर तप के भी छह प्रकार हैं। जो तप बाहर दिखलाई दे, वह बाह्य तप है। बाह्य तप मे देह या इन्द्रियो का निग्रह किया जाता है। बाह्य तप मे बाह्य द्रव्यो की अपेक्षा रहती है जबकि आभ्यन्तर तप मे अन्त करण के व्यापारो की प्रधानता होती है। यह जो वर्गीकरण है

---

१ व्यवहारसूत्र, उद्देशक १, बोल ३४ से ३९

वह तप की प्रक्रिया और स्थिति को समझाने के लिए किया गया है। तप का प्रारम्भ होता है बाह्य तप से और उसकी पूर्णता होती है आभ्यन्तर तप से। तप का एक छोर बाह्य है और दूसरा छोर आभ्यन्तर है। आभ्यन्तर तप के बिना बाह्य तप मे पूर्णता नही आती। बाह्य तप से जब साधक का मन और तन उत्तप्त हो जाता है तो अन्तर मे रही हुई मलीनता को नष्ट करने के लिये साधक प्रस्तुत होता है और वह अन्तर्मुखी बनकर आभ्यन्तर साधना मे लीन हो जाता है। बाह्य तप के प्रकार निम्नानुसार है—

अनशन—बाह्य तप मे इसका प्रथम स्थान है। यह तप अधिक कठोर और दुर्धर्ष है। भूख पर विजय प्राप्त करना अनशन तप का मूल उद्देश्य है। अनशन तप मे भूख को जीतना और मन को निग्रह करना आवश्यक है। अनशन से तन की ही नही मन की भी शुद्धि होती है। अनशन केवल देहदण्ड ही नही अपितु आध्यात्मिक गुणो की उपलब्धि का महान् उद्देश्य भी उसमे सन्निहित है। भगवद्गीता मे भी लिखा है कि आहार का परित्याग करने से इन्द्रियो के विषय-विकार दूर हो जाते हैं और मन भी पवित्र हो जाता है।[1] महर्षि ने मैत्रायणी आरण्यक मे लिखा है कि अनशन से बड़ा कोई तप नही है। साधारण मानव के लिये यह तप बडा ही कठिन है। उसे सहन और वहन करना कठिन ही नहीं कठिनतर है।[2]

अनशन तप के भी दो प्रकार हैं। एक इत्वरिक और दूसरा यावत्कालिक। इत्वरिक तप मे एक निश्चित समयावधि होती है। एक दिन से लगाकर छह मास तक का यह तप होता है। दूसरा प्रकार यावत्कालिक तप जीवन पर्यन्त के लिये किया जाता है। यावत्कालिक अनशन के पादपोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान— ये दो भेद हैं। भक्तप्रत्याख्यान मे आहार के परित्याग के साथ ही निरन्तर स्वाध्याय, ध्यान, आत्मचिन्तन मे समय व्यतीत किया जाता है। पादपोपगमन मे टूटे हुए वृक्ष की टहनी की भांति अचचल, चेष्टारहित एक ही स्थान पर जिस मुद्रा मे प्रारम्भ मे स्थिर हुआ, अन्तिम क्षण तक उसी मुद्रा मे अवस्थित रहना होता है। यदि नेत्र खुले हैं तो बन्द नही करना। यदि बन्द है तो खोलना नही है। जिसका वज्रऋषभनाराचसहनन हो वही पादपोपगमन सथारा कर सकता है। चौदह पूर्वों का जब विच्छेद होता है तभी पादपोपगमन अनशन का भी विच्छेद हो जाता है।[3] पादपोपगमन के निर्हारिम और अनिर्हारिम ये दो प्रकार है।

ऊनोदरी—तप का दूसरा प्रकार है। ऊनोदरी का शब्दार्थ है—ऊन कम एव उदर—पेट अर्थात् भूख से कम खाना ऊनोदरी है। कही-कही पर ऊनोदरी को अवमौदर्य भी कहा गया है। इसे अल्प-आहार या परिमित-आहार भी कह सकते है। आहार के समान कषाय, उपकरण आदि की भी ऊनोदरी की जाती है। यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि उपवास करना तो तप है क्योकि उसमे पूर्ण रूप से आहार का त्याग होता है, पर ऊनोदरी तप मे तो भोजन किया जाता है, फिर इसे तप किस प्रकार कहा जाये ? समाधान है—भोजन का पूर्ण रूप से त्याग करना तो तप होता ही है, पर भोजन के लिये प्रस्तुत होकर भूख से कम खाना, भोजन करते हुए रसना पर सयम करना, सुस्वादु भोजन को बीच मे ही छोड देना भी अत्यन्त दुष्कर है। आत्मसयम और दृढ मनोबल के बिना यह तप सम्भव नही है। निराहार रहने की अपेक्षा आहार करते हुए पेट को खाली रखना कठिन और कठिनतर है। अनशन तप स्वस्थ व्यक्ति कर सकता है पर ऊनोदरी तप रोगी और दुर्बल व्यक्ति भी कर सकता है। ऊनोदरी तप से अनेक

---

१ विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन । —भगवद्गीता, २/५९

२ मैत्रायणी आरण्यक, १०/६२

३ पढमम्मि अ सघयणे वट्टतो सेलकुट्ट समाणो
तेसिं पि अ वुच्छेओ चउद्दसपुव्वीण वुच्छेए ॥ —उववाईसूत्र, तप अधिकार

प्रकार के रोग भी मिट जाते हैं। ऊनोदरी तप के दो भेद बताये है—१ द्रव्य-ऊनोदरी और २. भाव-ऊनोदरी। उत्तराध्ययन के ऊनोदरी के पाच प्रकार भी बताये हैं। वे इस प्रकार हैं

१ द्रव्य-ऊनोदरी– आहार की मात्रा से कम खाना और आवश्यकता से कम वस्त्रादि रखना।

२. क्षेत्र-ऊनोदरी—भिक्षा के लिये किसी स्थान आदि को निश्चित कर वहाँ से भिक्षा ग्रहण करना।

३. काल-ऊनोदरी—भिक्षा के लिये काल यानी समय निश्चित कर कि अमुक समय भिक्षा मिलेगी तो ग्रहण करूंगा नही तो नही।

४. भाव-ऊनोदरी—भिक्षा के समय अभिग्रह आदि धारण करना।

५ पर्याय-ऊनोदरी—इन चारो भेदों को क्रिया रूप मे परिणत करते रहना।

द्रव्य-ऊनोदरी के अन्य अनेक अवान्तर भेद हैं। द्रव्य-ऊनोदरी से साधक का जीवन बाहर से हल्का, स्वस्थ और प्रसन्न रहता है। भाव-ऊनोदरी मे साधक क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायो को कम करता है। वह कम बोलता है, कलह आदि से बचता है। भाव-ऊनोदरी मे अन्तरग जीवन मे प्रसन्नता पैदा होती है और सद्गुणो का विकास होता है।

भिक्षाचरी– तप का तृतीय प्रकार है। विविध प्रकार के अभिग्रह को ग्रहण कर भिक्षा की अन्वेषणा करना भिक्षाचरी है। भिक्षा का सामान्य अर्थ मागना है, पर सिर्फ मागना ही तप नही है। आचार्य हरिभद्र[१] ने भिक्षा के तीन प्रकार बताये हैं– दीनवृत्ति, पौरुषघ्नी और सर्वसम्पत्करी। जो अनाथ, अपग या आपद्ग्रस्त दरिद्र व्यक्ति माग कर खाते हैं, उनकी दीनवृत्ति भिक्षा है। जो श्रम करने मे समर्थ होकर भी काम मे जी चुराकर कमाने की शक्ति होने पर भी माग कर खाते हैं, उनकी पौरुषघ्नी भिक्षा है। वह भिक्षा पुरुषार्थ का नाश करती है। जो त्यागी, अहिंसक श्रमण अपने उदरनिर्वाह के लिये माधुकरी वृत्ति से गृहस्थ के घर मे सहज भाव से निर्मित निर्दोष विधि से भिक्षा ग्रहण करते हैं, वह भिक्षा सर्वसम्पत्करी है। इस प्रकार की भिक्षा देने वाला और ग्रहण करने वाला, दोनो ही सद्गति को प्राप्त होते है। सर्वसम्पत्करी भिक्षा ही वस्तुत कल्याणकारी भिक्षा है। भिक्षाचरी के अनेक भेद-प्रभेदो का उल्लेख उत्तराध्ययन[२] स्थानाग,[३] औपपातिक[४] आदि मे हुआ है। उत्तराध्ययन, पिण्डनिर्युक्ति आदि मे भिक्षुक को अनेक दोषो से बच कर भिक्षा लेने का विधान है।[५]

रसपरित्याग—तप का चतुर्थ प्रकार है। इस का अर्थ है—प्रीति बढाने वाला "रसम् प्रीति विवर्द्धकम्", जिसके कारण भोजन मे प्रीति समुत्पन्न होती हो वह रस है। भोजन के छह रस माने गये है—कटु, मधुर, आम्ल, तिक्त, काषाय एव लवण। इन रसो के कारण भोजन स्वादिष्ट बनता है। सरस भोजन को मानव भूख से भी अधिक खा जाता है। रसयुक्त भोजन स्वादिष्ट, गरिष्ठ और पौष्टिक होता है। रस से सुपच भोजन भी दुष्पच बन जाता है। उत्तराध्ययनसूत्र[६] मे कहा है—रस प्राय दीप्ति अर्थात् उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। इसलिये

---

१ सर्वसम्पत्करी चैका पौरुषघ्नी तथापरा।
वृत्तिभिक्षा च तत्त्वज्ञैरिति भिक्षा त्रिधोदिता। —अष्टक प्रकरण ५।१

२. उत्तराध्ययन ३०/२५

३ स्थानाग ६

४. औपपातिकसूत्र, पृष्ठ ३८, २

५ (क) उत्तराध्ययन २४/११-१२ (ख) पिण्डनिर्युक्ति, ९२-९३

६ पाय रसा दित्तिकरा नराण .. —उत्तराध्ययन ३२/१०

उन रसों को विकृत कहा है। आचार्य सिद्धसेन ने विकृति की परिभाषा करते हुए लिखा है—घी आदि पदार्थ खाने से मन में विकार पैदा होते हैं। विकार उत्पन्न होने से मानव सयम से भ्रष्ट होकर दुर्गति मे जाता है। अत इन पदार्थों का सेवन करने वाले की विकृति और विगति दोनो होती हैं। इस कारण इन्हे विगयी (विकृति और विगति) कहा है।[1]

पाच इन्द्रियो मे रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। भारत के तत्त्वदर्शी मनीषियों ने कहा—"सर्वं जित जिते रसे" – जिसने रसनेन्द्रिय को जीत लिया उसने ससार के सभी रसो को जीत लिया। यही कारण है, भगवती मे साधक के लिये स्पष्ट निर्देश दिया है कि चाहे सरस आहार हो या नीरस, लोलुपता रहित होकर ऐसे खाए जैसे बिल मे साप घुसा रहा हो।[2] साधक को आहार का निषेध नही है, पर स्वाद का निषेध है। आचारांग मे उल्लेख है कि श्रमण को स्वादवृत्ति से बचने के लिए ग्रास को बायी दाढ से दाहिनी दाढ की ओर भी नही ले जाना चाहिये। वह स्वादवृत्ति रहित होकर खाए। इससे कर्मों का हल्कापन होता है। ऐसा साधक आहार करता हुआ भी तपस्या करता है।[3] इस प्रकार साधु आहार करता हुआ कर्मों के बन्धन को ढीले करता है। यहाँ तक कि केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। यदि आसक्त होकर आहार करता है तो कर्मबन्धन कर लेता है। अत रसपरित्याग को तप माना है।

कायक्लेश—तप का पाँचवा प्रकार है। कायक्लेश का अर्थ शरीर को कष्ट देना है। कष्ट, एक स्वकृत होता है और दूसरा परकृत होता है। कितने ही कष्ट न चाहने पर भी आते हैं। देव, मानव और तिर्यञ्च सम्बन्धी ऐसे कष्ट जो स्वत आ जाते है और दूसरे कष्ट उदीरणा करके बुलाये जाते हैं। जैसे आसन करना, ध्यान लगा कर स्थिर हो जाना, भयकर जगल मे कायोत्सर्ग मुद्रा मे खडा होना, केशलुञ्चन करना आदि। जैसे मेहमान को निमत्रण देकर बुलाया जाता है, वैसे ही साधक अपने धैर्य, साहस वृद्धि के हेतु कष्टो को निमत्रण देता है।

भगवतीसूत्र[4] मे जहाँ कायक्लेश तप का उल्लेख है, वहाँ पर २२ परीषहो का भी वर्णन है। कायक्लेश और परीषह मे जरा अन्तर है। कायक्लेश का अर्थ है—अपनी ओर से कष्टो को स्वीकार करना। साधक विशेष कर्मनिर्जरा के हेतु अनेक प्रकार के ध्यान, प्रतिमा, केशलुञ्चन, शरीर-मोह का त्याग आदि को भाव से स्वीकार करता है। यह विशेष तप कायक्लेश कहलाता है। कायक्लेश मे स्वेच्छा से कष्ट सहन किया जाता है, जब कि परीषह मे स्वेच्छा से कष्ट सहन नही किया जाता, अपितु श्रमण जीवन के नियमो का परिपालन करते हुए आकस्मिक रूप से यदि कोई कष्ट उपस्थित हो जाता है तो उसे सहन किया जाता है। आवश्यकचूर्णि[5] मे लिखा है, जो सहन किये जाते हैं, वे परीषह है।

कायक्लेश हमारे जीवन को निखारता है। उसकी साधना के अनेक रूप आगमसाहित्य मे प्राप्त हैं।

---

१ (क) तत्र मनसो विकृतिहेतुत्वाद् विगति हेतुत्वाद् वा विकृतयो, विगतयो।
—प्रवचनसारोद्धारवृत्ति (प्रत्या द्वार)

(ख) मनसो विकृति हेतुत्वाद् विकृतय। —योगशास्त्र, ३ प्रकाशवृत्ति

२. भगवतीसूत्र ७।१

३ प्रवचनसार ३।२७

४ भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देशक ८

५ परिसहिज्जते इति परीसहा। --आवश्यकचूर्णि २, पृ १३९

स्थानांग[1] में कायक्लेश तप के सात प्रकार बताये हैं—कायोत्सर्ग करना, उत्कुटुक आसन से ध्यान करना, प्रतिमा धारण करना, वीरासन करना, निषद्या-स्वाध्याय प्रभृति के लिये पालथी मारकर बैठना, दडायत होकर खडे रहकर ध्यान करना लगण्डशायित्व। औपपातिकसूत्र[2] मे कायक्लेश तप के चौदह प्रकार प्रतिपादित है—

१ ठाणट्ठिइए—कायोत्सर्ग करे।
२ ठाणइए—एक स्थान पर स्थित रहे।
३. उक्कुडु आसणिए—उत्कुटुक आसन से रहे।
४ पडिमट्ठाई—प्रतिमा धारण करे।
५ वीरासणिए—वीरासन करे।
६ नेसिज्जे - पालथी लगाकर स्थिर बैठे।
७ दडायए –दडे की भाँति सीधा सोया या बैठा रहे।
८ लगडसाई –(लगण्डशायी) लक्कड (वक्र काष्ठ) की तरह सोता रहे।
९ आयावए आतापना लेवे।
१० अवाउडए—वस्त्र आदि का त्याग करे।
११ अकडुयाए –शरीर पर खुजली न करे।
१२. अणिरट्ठुहए—थूक भी न थूके।
१३ सव्वगायपरिकम्मे—सर्व शरीर की देखभाल (परिकर्म) से रहित रहे।
१४. विभूसाविप्पमुक्के विभूषा से रहित रहे।

तत्त्वार्थसूत्र की श्रुतसागरीया वृत्ति[3] मूलाराधना,[4] भगवती आराधना,[5] बृहत्कल्पभाष्य[6] प्रभृति ग्रन्थो मे कायक्लेश के गमन, स्थान, आसन, शयन और अपरिकर्म आदि भेदोपभेदो का वर्णन है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार कुछ कायक्लेश तप गृहस्थ श्रावको को नही करना चाहिये।[7]

प्रतिसलीनता—तप का छठा प्रकार है। प्रतिसलीनता का अर्थ है—आत्मलीनता। पर-भाव मे लीन आत्मा को स्व-भाव मे लीन बनाने की प्रक्रिया ही वस्तुत सलीनता है। इन्द्रियो को, कषायो को, मन, वचन, काया के योगो को बाहर से हटाकर भीतर मे गुप्त करना सलीनता है। प्रतिसलीनता तप के चार प्रकार है—इन्द्रिय प्रतिसलीनता, कषायप्रतिसलीनता, योगप्रतिसलीनता, विविक्तशयनासनसेवना।[8]

तप के ये छह प्रकार बाह्य तप के अन्तर्गत हैं।

---

१ स्थानांग, ७। सूत्र ५५४
२ औपपातिक, समवसरण अधिकार
३ तत्त्वार्थसूत्र, श्रुतसागरीया वृत्ति ९।१९
४. मूलाराधना, ३।२२२-२२५
५ भगवती आराधना, २२१-२२५
६ बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति, गाथा ५९५३
७. दिणपडिम-वीरचरिया-तियाल जोगेसु णत्थि अहियारो।
सिद्धतरहसाणवि अज्झयण देशविरदाण ॥ —वसुनन्दि श्रावकाचार, ३१२
८ भगवतीसूत्र २५।७

आभ्यन्तर तप के भी छह भेद है, उनमे सर्वप्रथम **प्रायश्चित्त** है। **आचार्यभद्रबाहु**[1] ने लिखा हैं—जो पाप का छेदन करता है, वह प्रायश्चित्त है। पाप-विशुद्धि करने की क्रिया प्रायश्चित है। तत्त्वार्थराजवार्तिक[2] में लिखा है —*अपराध का नाम प्राय है और चित्त का अर्थ है शोधन। जिस क्रिया से अपराध की शुद्धि हो वह* प्रायश्चित्त है। मानव प्रमादवश कभी दोष का सेवन कर लेना है, पर जिसकी आत्मा जागरूक है, धर्म-अधर्म का विवेक रखती है, परलोक सुधार की भावना है, अनुचित आचरण के प्रति जिसके मन मे पश्चात्ताप है, दोष के प्रति ग्लानि है, वह गुरुजनों के समक्ष दोष को प्रकट कर प्रायश्चित्त की प्रार्थना करता है। गुरु दोषविशुद्धि के लिये तपश्चरण का आदेश देते हैं। यहाँ यह समझना होगा कि *प्रायश्चित्त और दण्ड मे अन्तर है।* दण्ड दिया जाता है और प्रायश्चित्त लिया जाता है। दण्ड अपराधी के मानस को झकझोरता नही। दण्ड केवल बाहर अटक कर ही रह जाता है अन्तर्मानस को स्पर्श नही करता। दण्ड पाकर भी कदाचित् अपराधी अधिक उद्दण्ड होता है, जबकि प्रायश्चित्त मे अपराधी के मानस मे पश्चात्ताप होता है।

भूल करना आत्मा का स्वभाव नही अपितु विभाव है। जैसे शरीर मे फोडे-फुन्सी हो जाते हैं, वे फोडे-फुन्सी शरीर के विकार हैं, वैसे ही अपराध मानव के अन्तर्मन के विकार हैं। जिन विकारो के कारण मानव अपराध करता है, उन्हे शास्त्रीय भाषा में प्रतिसेवन कहा है। भगवती[3] और स्थानाग[4] आदि मे प्रतिसेवन के दस प्रकार बताये हैं दर्प, प्रमाद, अनाभोग, आतुर, आपत्ति, शकित, सहसाकार, भय, प्रद्वेष और विमर्श। प्रायश्चित्त के दस प्रकार है।

आभ्यन्तर तप का दूसरा भेद विनय है। जिसका मानस सरल होता है वही गुरुजनो का विनय करता है। जहाँ अहकार का प्राधान्य है वहाँ विनय नही है। सूत्रकृताग-टीका मे विनय की परिभाषा करते हुए लिखा है जिसके द्वारा कर्मों का विनयन किया जाता है वह विनय है।[6] उत्तराध्ययन[7] शान्त्याचार्य टीका मे लिखा है—जो विशिष्ट एव विविध प्रकार का नय/नीति है, वह विनय है तथा जो विशिष्टता की ओर ले जाता है, वह विनय है। दशवैकालिक मे विनय को धर्म का मूल कहा गया है। जैन आगम साहित्य मे विनय शब्द का प्रयोग हजारो बार हुआ है। जब हम आगम साहित्य का परिशीलन करते है तो विनय शब्द तीन अर्थों मे व्यवहृत मिलता है —

१ विनय—अनुशासन,

२ विनय आत्मसयम (शील, सदाचार),

३ विनय—नम्रता एव सद्व्यवहार।

उत्तराध्ययन मे विनय का स्वरूप प्रतिपादित हुआ है। वह मुख्य रूप से अनुशासनात्मक है। गुरुजनो की आज्ञा, इच्छा आदि का ध्यान रखकर आचरण करना अनुशासनविनय है।

---

१ पाव छिंदति जम्हा, पायच्छित्त त्ति भण्णते तेण। --आवश्यकनिर्युक्ति १५०८

२ अपराधो वा प्राय चित्त—शुद्धि। प्रायस चित्त—प्रायश्चित्त—अपराधविशुद्धि।—राजवार्तिक ९।२२।१

३ भगवती २५।७

४ स्थानाग १०

५ भगवती शतक २५, उद्देशक ७

६ सूत्रकृताग टीका १, पत्र २४२

७ उत्तराध्ययन शान्त्याचार्य टीका, पत्र १९

विनीत व्यक्ति असदाचरण से सदा भयभीत रहता है। उसका मन आत्मसयम मे लीन रहता है। अविनीत व्यक्ति सड़े कानो वाली कुतिया की तरह दर-दर ठोकरे खाता है। लोग उसके व्यवहार से घृणा करते हैं। विनीत गुरुजनो के समक्ष सभ्यतापूर्वक बैठता है। वह कम बोलता है। बिना पूछे नहीं बोलता। इस प्रकार वह आत्मसयम और सदाचार का पालन करता है। विनय का तीसरा अर्थ नम्रता और सद्व्यवहार है। दशवैकालिक[1] में लिखा है—गुरुजनो के समक्ष शयन या आसन उनसे कुछ नीचा रखना चाहिये। नमस्कार करते समय उनके चरणो का स्पर्श कर वन्दना करे। उसके किसी भी व्यवहार मे अहकार न झलके। जब गुरुजन उसे बुलायें, उस समय आसन पर बैठा रहे। उस समय अजलिबद्ध होकर वन्दन की मुद्रा मे पूछे—क्या आज्ञा है? गुरुजनों की आशातना नकरे।

भगवती[2] मे विनय के सात प्रकार बताये है—१ ज्ञानविनय, २ दर्शनविनय, ३ चारित्रविनय. ४ मनोविनय, ५ वचनविनय, ६ कायविनय, ७ लोकोपचारविनय।

जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य[3] मे लिखा है कि विनय कई प्रकार से लोग करते हैं। उन्होने विनय के पाच उद्देश्य बताये हैं—

१ लोकोपचार—लोकव्यवहार के लिये माता-पिता, अध्यापक आदि का विनय करना।

२. अर्थविनय—अर्थ के लोभ से सेठ आदि की सेवा-विनय करना।

३ कामविनय—कामवासना की पूर्ति के लिये स्त्री आदि की प्रशसा करना।

४ भयविनय—अपराध होने पर न्यायाधीश, कोतवाल आदि का विनय करना।

५ मोक्षविनय—आत्मकल्याण के लिये गुरु आदि का विनय करना।

विनय के जो चार उद्देश्य हैं, वे जब तक सीमा के अन्तर्गत हैं तब तक उचित हैं। सीमा का उल्लघन करने पर वह विनय नही चापलूसी है। चापलूसी एक दोष है तो विनय एक सद्गुण है। विनय मे सद्गुणो की प्राप्ति और गुणीजनो का सम्मान मुख्य होना है, जबकि चापलूसी मे दूसरो को ठगने की भावना प्रमुख रूप से रहती है। चीता शिकार पर जब हमला करना है तो पहले झुकना है पर उसका झुकना विनय नही है। उसमे कपट की भावना रही हुई है। उसका झुकना उसके कर्मबन्धन का कारण है।

आभ्यन्तर तप का तृतीय प्रकार वैयावृत्य है। वैयावृत्य का अर्थ है—धर्मसाधना मे सहयोग करने वाली आहार आदि वस्तुओ से सेवा-शुश्रूषा करना। वैयावृत्य मे तीर्थंकरनामकर्म का उपार्जन हो सकता है।[4] तीर्थंकर आध्यात्मिक वैभव की दृष्टि से विश्व के अद्वितीय पुरुष है। वे अनन्त बली होते हैं। आत्मा की शक्तियो का पूर्ण विकास उनके जीवन मे होता है। देवेन्द्र, नरेन्द्र भी उनके चरणो मे नत होते हैं। एक जैनाचार्य ने लिखा है कि एक बार गणधर गौतम ने भगवान् महावीर के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की कि एक साधक आपकी सेवा करता है और एक साधक रोगी, वृद्ध आदि श्रमणो की सेवा करता है, उन दोनो मे श्रेष्ठ कौन है? आप किसे धन्यवाद प्रदान करेंगे?

---

१. दशवैकालिक ९।२।१७

२. भगवती २५।७

३ विशेषावश्यकभाष्य ३१०

४ उत्तराध्ययन २९।३

भगवान् महावीर ने कहा—'**जे गिलाण पडियरइ से धन्ने**' अर्थात् जो रोगी की सेवा करता है, वही वस्तुत: धन्यवाद का पात्र है। गणधर गौतम इस उत्तर को सुनकर आश्चर्यान्वित हो गये। वे सोचने लगे—कहाँ एक ओर अनन्तज्ञानी लोकोत्तम पुरुष भगवान् की सेवा और दूसरी ओर एक सामान्य श्रमण की परिचर्या! दोनो मे जमीन-आसमान की तरह अन्तर है। तथापि भगवान् अपनी भक्ति से भी बढ़कर रुग्ण श्रमण की सेवा को महत्त्व दे रहे हैं। अत गणधर गौतम ने पुन जिज्ञासा प्रकट की तो भगवान् महावीर ने कहा—मेरे शरीर की सेवा का कोई महत्त्व नही है। महत्त्व है मेरी आज्ञा की आराधना करने का। "आणाराहण खु जिणाण"—जिनेश्वरों की आज्ञा का पालन करना ही सबसे बडी सेवा है।

स्थानागसूत्र मे भगवान् महावीर प्रभु ने आठ शिक्षाएँ प्रदान की हैं। उनमे से दो शिक्षाये सेवा से सम्बन्धित हैं। जो अनाश्रित हैं, असहाय हैं, जिनका कोई आधार नही है, उनको सहायता-सहयोग एव आश्रय देने को सदा तत्पर रहना चाहिये तथा दूसरी शिक्षा है रोगी की सेवा करने के लिये अग्लान भाव मे सदा तत्पर रहना चाहिये।[1]

स्थानाग और भगवती मे वैयावृत्य के दस प्रकार बताये हैं—१ आचार्य की सेवा, २ उपाध्याय की सेवा, ३ स्थविर की सेवा, ४ तपस्वी की सेवा, ५ रोगी की सेवा, ६ नवदीक्षित मुनि की सेवा, ७. कुल की सेवा (एक आचार्य के शिष्यो का समुदाय- कुल) ८ गण की सेवा, ९ सघ की सेवा, १० सार्धमिक की सेवा।

सेवा करते समय विवेक की भी आवश्यकता है। सेवा करने वाले को यह ध्यान मे रहना चाहिये कि अवसर के अनुसार सेवा की जाए। व्यवहारभाष्य मे लिखा है कि आवश्यकता होने पर भोजन देना, पानी देना, सोने के लिये बिस्तर आदि देना, गुरुजनो के वस्त्रादि का प्रतिलेखन कर देना, पाँव पोछना, रुग्ण हो तो दवा आदि का प्रबन्ध करना, रास्ते मे डगमगा रहे हो तो सहारा देना, राजा आदि के क्रुद्ध होने पर आचार्य, सघ आदि की रक्षा करना, चोर आदि से बचना, यदि किसी ने दोष का सेवन किया है तो उसको स्नेहपूर्वक समझा कर उसकी विशुद्धि करवाना, रुग्ण हो तो उसकी दवा-पथ्यादि का ध्यान रखना, रोगो के प्रति घृणा या ग्लानि न कर अग्लान भाव से सेवा करना।

आभ्यन्तर तप का चतुर्थ प्रकार **स्वाध्याय** है। 'सुष्ठु-आ मर्यादया अधीयते इति स्वाध्याय।'[2] सत् शास्त्रो का मर्यादापूर्वक और विधिसहित अध्ययन करना स्वाध्याय है। दूसरी व्युत्पत्ति है- स्वस्य स्वस्मिन् अध्याय - अध्ययनम—स्वाध्याय। अपना अपने ही भीतर अध्ययन, आत्मचिन्तन, मनन स्वाध्याय है। जैसे शरीर के विकास के लिये व्यायाम आवश्यक है, वैसे ही बुद्धि के विकास के लिये स्वाध्याय है। स्वाध्याय से नया विचार और नया चिन्तन उद्बुद्ध होता है। गलत आहार स्वास्थ्य के लिये अहितकर है, वैसे ही विकारोत्तेजक पुस्तको का वाचन भी मन को दूषित करता है। अध्ययन वही उपयोगी है जो सद्विचारो को उद्बुद्ध करे। इसीलिये भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन मे स्पष्ट शब्दो मे कहा कि स्वाध्याय समस्त दु खो से मुक्ति दिलाता है।[3] अनेक भवो के सचित कर्म स्वाध्याय से क्षीण हो जाते हैं।[4] स्वाध्याय अपने-आप मे महान तप है। तैत्तिरीय आरण्यक मे

---

१ असगिहीय परिजणस्स सगिण्हणयाए अब्भुट्ठेयव्व भवइ,
गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणयाए अब्भुट्ठेयव्व भवइ। —स्थानांगसूत्र ८

२, स्थानाग टीका ५।३।४६५

३. उत्तराध्ययन २६।१०

४ चन्द्रप्रज्ञप्ति ९१

वैदिक ऋषि ने कहा—तपो हि स्वाध्याय [1] —स्वाध्याय स्वय एक तप है। उसकी साधना-आराधना मे कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। इसलिये तैत्तिरीय उपनिषद् मे भी कहा है—स्वाध्यायान् मा प्रमद। [2] स्वाध्याय से बुद्धि निर्मल होती है। फर्श की ज्यो-ज्यो घुटाई होती है, त्यो-त्यो वह चिकना होता है। उसमे प्रतिबिम्ब छलकने लगता है, वैसे ही स्वाध्याय से मन निर्मल और पारदर्शी बन जाता है। आगमो के गम्भीर रहस्य उसमे प्रतिबिम्बित होने लगते हैं। आचार्य पतञ्जलि ने योगदर्शन मे लिखा है कि स्वाध्याय से इष्टदेव का साक्षात्कार होने लगता है। [3] एक चिन्तक ने लिखा है कि स्वाध्याय से चार बातो की उपलब्धि होती है, स्वाध्याय से जीवन मे सद्‌विचार आते हैं, मन मे सत्संस्कार जागृत होते हैं। स्वाध्याय से अतीत के महापुरुषो की दीर्घकालीन साधना के अनुभवो की थाती प्राप्त होती है। स्वाध्याय से मनोरजन के साथ आनन्द भी प्राप्त होता है। स्वाध्याय से मन एकाग्र और स्थिर होता है। जैसे अग्निस्नान करने से स्वर्ण मैलमुक्त हो जाता है वैसे ही स्वाध्याय से मन का मैल नष्ट होता है। अत नियमित स्वाध्याय करना चाहिये।

भगवतीसूत्र, [4] स्थानाग, [5] औपपातिक [6] प्रभृति आगम साहित्य मे स्वाध्याय के पाच प्रकार बताये हैं। वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा तथा इनके भी अवान्तर भेद किये गये हैं। स्वाध्याय से ज्ञान का दिव्य आलोक जगमगाने लगता है।

अन्तरग तप का पाचवा प्रकार ध्यान है। मन की एकाग्र अवस्था ध्यान है। [7] आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधान-चिन्तामणि कोष मे लिखा है—अपने विषय मे मन का एकाग्र हो जाना ध्यान है। आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यकनिर्युक्ति मे लिखा है—चित्त को किसी भी विषय मे एकाग्र करना, स्थिर करना, ध्यान है। [8]

जिज्ञासा हो सकती है कि मन का किसी भी विषय मे स्थिर होना ही यदि ध्यान है तो लोभी व्यक्ति का ध्यान सदा धन कमाने मे लगा रहता है, चोर का ध्यान वस्तु को चुराने मे लगा रहता है, कामी का ध्यान वासना की पूर्ति मे लगा रहता है, क्या वह भी ध्यान है? समाधान है कि पापात्मक चिन्तन की एकाग्रता भी ध्यान है। भारत के तत्त्वदर्शी मनीषियो ने ध्यान को दो भागो मे विभक्त किया है- एक शुभ ध्यान है और दूसरा अशुभ ध्यान है। शुभ ध्यान मोक्ष का कारण है तो अशुभ ध्यान नरक और तिर्यञ्च का कारण है। अशुभ ध्यान अधोमुखी होता है तो शुभ ध्यान ऊर्ध्वमुखी होता है। अशुभ ध्यान अप्रशस्त है, शुभ ध्यान प्रशस्त है। इसीलिये स्थानाग आदि मे ध्यान के चार प्रकार बताये हैं—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इन चार प्रकारो मे दो प्रकार अशुभ ध्यान के हैं। वे दोनो प्रकार तप की कोटि मे नही आते। अत आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने ध्यान की परिभाषा इस प्रकार की है—शुभ और पवित्र आलम्बन पर एकाग्र होना ध्यान है। [9]

---

१ तैत्तिरीय आरण्यक २।१४

२ तैत्तिरीय उपनिषद् १।११।१

३. स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोग। —योगदर्शन २।४४

४ भगवती २५।७

५ स्थानाग ५

६ औपपातिक समवसरण, तप अधिकार।

७ ध्यान तु विषये तस्मिन्नेकप्रत्ययसतति। —अभिधान राजेन्द्र कोष १।४८

८ चित्तस्सेगग्गया हवई झाण। —आवश्यकनिर्युक्ति १४५६

९ शुभैकप्रत्ययो ध्यानम्। —द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका १८।११

मन की अन्तर्मुखता, अन्तर्लीनता शुभ ध्यान है। मन स्वभावत चचल है। वह लम्बे समय तक एक वस्तु पर स्थिर नही रह सकता। आचार्य हेमचन्द ने लिखा है कि छद्मस्थ का मन अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक यानी ४८ मिनिट तक एक आलम्बन पर स्थिर रह सकता है, इससे अधिक नही। पवित्र विचारो मे मन को स्थिर करना धर्मध्यान है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो आत्मा का आत्मा के द्वारा आत्मा के विषय मे सोचना, चिन्तन करना धर्मध्यान है।

भगवती, स्थानाग आदि मे धर्मध्यान के आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय, ये चार प्रकार कहे हैं। धर्मध्यान के आज्ञारुचि, निसर्गरुचि, सूत्ररुचि और अवगाढरुचि -- ये चार लक्षण हैं। इसी प्रकार धर्मध्यान को सुस्थिर रखने के लिये धर्मध्यान के चार आलम्बन भी बताये गये है- १ वाचना, २ पृच्छना, ३. परिवर्तना और ४ धर्मकथा। धर्मध्यान के समय जो चिन्तन तल्लीनता प्रदान करता है, उस चिन्तन को हम अनुप्रेक्षा कहते है। अनुप्रेक्षा के भी चार प्रकार हैं— १ एकत्वानुप्रेक्षा, २ अनित्यानुप्रेक्षा, ३ अशरणानुप्रेक्षा एव ४ ससारानुप्रेक्षा। इन चारो भावनाओ से मन मे वैराग्य भावना तरगित होती है। भौतिक पदार्थों के प्रति आकर्षण न्यून हो जाता है। धर्मध्यान से जीवन मे आनन्द का सागर ठाठे मारने लगता है।

धर्मध्यान मे मुख्य तीन अग हैं—ध्यान, ध्याता और ध्येय। ध्यान का अधिकारी ध्याता कहलाता है। एकाग्रता ध्यान है। जिसका ध्यान किया जाता है, वह ध्येय है। चचल मन वाला व्यक्ति ध्यान नही कर सकता। जहाँ आसन की स्थिरता ध्यान मे अपेक्षित है, वहाँ मन की स्थिरता भी बहुत अपेक्षित है। इसीलिये ज्ञानार्णव मे लिखा है, जिसका चित्त स्थिर हो गया है, वही वस्तुत ध्यान का अधिकारी है। ध्येय के सम्बन्ध मे तीन बाते है - एक परावलम्बन, जिसमे दूसरी वस्तुओ का अवलम्बन लेकर मन को स्थिर करने या प्रयास किया जाता है। श्रमण भगवान् महावीर अपने साधनाकाल मे एक पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित करके ध्यान मुद्रा मे खडे रहे थे।[1] जब एक पुद्गल पर दृष्टि केन्द्रित होती है तो मन स्थिर हो जाता है। इसे त्राटक भी कह सकते है।

ध्यान का दूसरा प्रकार स्वरूपावलम्बन है, इसमे बाहर से दृष्टि हटाकर नेत्रो को बन्द कर विविध प्रकार की कल्पनाओ से यह ध्यान किया जाता है। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र मे, आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव मे पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत जो ध्यान के प्रकार और उनकी धारणाओ के सम्बन्ध मे विस्तार से निरूपण किया है, वह सब स्वरूपावलम्बन ध्यान के अन्तर्गत ही है। मैने 'जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप' ग्रन्थ मे विस्तार से इस सम्बन्ध मे लिखा है। जिज्ञासु पाठक उसका अवलोकन करे।

तीसरा प्रकार है निरावलम्बन। इसमे किसी भी प्रकार का कोई आलम्बन नही होता। मन विचार, विकार और विकल्पो से शून्य होता है। आचार्य हेमचन्द्र ने जो रूपातीत ध्यान प्रतिपादित किया है वह यही है। इसमे निरजन, निराकार सिद्ध स्वरूप का ध्यान किया जाता है और आत्मा स्वय कर्म-मल से मुक्त होने का अभ्यास करता है।[2] इस ध्यान मे साधक यह समझता है कि मै अनग हूँ और इन्द्रिया व मन अलग है। साधक स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढता है। रूप से अरूप की ओर बढने के लिये अत्यधिक अभ्यास की आवश्यकता है। रूपातीत ध्यान जब सिद्ध हो जाता है, तब भेदरेखा स्वत ही समाप्त हो जाता है। ध्याता, ध्येय और ध्यान—तीनो एकाकार

---

१ एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठिए। —भगवतीसूत्र ३/२

२ निरजनस्य सिद्धस्य ध्यान स्याद् रूपवर्जितम्। —योगशास्त्र १०/१

हो जाते हैं, जैसे सागर मे नदिया मिलकर एकाकार हो जाती हैं। तत्त्वार्थसूत्र एव उसकी विभिन्न टीकाओ मे ध्यान का सारगर्भित प्रतिपादन किया गया है।[1]

ध्यान का चतुर्थ प्रकार शुक्लध्यान है। यह ध्यान की परम विशुद्ध अवस्था है। जब साधक के अन्तर्मानस से कषाय की मलीनता मिट जाती है, तब निर्मल मन से जो ध्यान किया जाता है, वह शुक्लध्यान है। शुक्लध्यानी का अन्तर्मानस वैराग्य से सराबोर होता है। उसके तन पर यदि कोई प्रहार करता है, उसका छेदन या भेदन करता है, तो भी उसको सक्लेश नही होता। देह मे रहकर भी वह देहातीत स्थिति में रहता है। शुक्लध्यान के शुक्ल और परमशुक्ल ये दो भेद हैं। चतुर्दशपूर्वधर तक का ध्यान शुक्लध्यान है और केवलज्ञानी का ध्यान परमशुक्लध्यान है।[2]

स्वरूप की दृष्टि से शुक्लध्यान के चार प्रकार भगवती,[3] स्थानाग,[4] समवायाग[5] आदि मे बताये हैं—

१. **पृथक्त्ववितर्कसविचार**—पृथक्त्व का अर्थ है—भेद और वितर्क का तात्पर्य है—श्रुत। प्रस्तुत ध्यान मे श्रुतज्ञान के आधार पर पदार्थ का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिन्तन किया जाता है। द्रव्य, गुण, पर्याय पर चिन्तन करते हुए द्रव्य से पर्याय पर और पर्याय से द्रव्य पर चिन्तन किया जाता है। इस ध्यान मे भेदप्रधान चिन्तन होता है।

२. **एकत्ववितर्कअविचार**—जब भेदप्रधान चिन्तन मे साधक का अन्तर्मानस स्थिर हो जाता है तब वह अभेदप्रधान चिन्तन की ओर कदम बढाता है। वह किसी एक पर्यायरूप अर्थ पर चिन्तन करता है तो उसी पर्याय पर उसका चिन्तन स्थिर रहेगा। जिस स्थान पर तेज हवा का अभाव होता है, वहाँ पर दीपक की लौ इधर-उधर डोलती नही है। उस दीपक को मद हवा मिलती रहती है, वैसे ही प्रस्तुत ध्यान मे साधक सर्वथा निर्विचार नहीं होता किन्तु एक ही वस्तु पर उसके विचार केन्द्रित होते हैं।

३. **सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति**—यह ध्यान बहुत ही सूक्ष्म क्रिया पर चलता है। इस ध्यान मे अवस्थित होने पर योगी पुन ध्यान से विचलित नही होता, इस कारण इस ध्यान को सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति कहा है। यह ध्यान केवल वीतरागी आत्मा को ही होता है। जब केवलज्ञानी का आयुष्य केवल अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहता है, उस समय योगनिरोध का क्रम प्रारम्भ होता है। मनोयोग और वचनयोग का पूर्ण निरोध हो जाने पर जब केवल सूक्ष्म काययोग मे श्वासोच्छ्वास ही अवशेष रह जाता है, उस समय का ध्यान ही सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति ध्यान है। इसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त मे ही आत्मा अयोगी बन जाता है।

४. **समुच्छिन्नक्रिय-अनिवृत्ति**—जब आत्मा सम्पूर्ण रूप से योगो का निरुन्धन कर लेता है तो समस्त यौगिक चचलता समाप्त हो जाती है। आत्मप्रदेश सम्पूर्ण रूप से निष्कम्प बन जाते हैं। सूक्ष्मक्रिय-अप्रतिपाति ध्यान मे श्वासोच्छ्वास की क्रिया जो शेष रहती है, वह भी इस भूमिका पर पहुँचने पर समाप्त हो जाती है। यह परम निष्कम्प और सम्पूर्ण क्रिया-योग से मुक्त ध्यान की अवस्था है। यह अवस्था प्राप्त होने पर पुन आत्मा पीछे

---

१. तत्त्वार्थसूत्र ९/३७-३८
२ तत्त्वार्थसूत्र ९/३९-४०
३ भगवती २५/७
४ स्थानाग ४/१०
५ समवायाग ४

नही हटता इसीलिए इसका नाम समुच्छिन्नक्रिय-अनिवृत्ति शुक्लध्यान दिया है। इस ध्यान के दिव्य प्रभाव से वेदनीयकर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म और आयुष्यकर्म नष्ट हो जाते हैं और अरिहन्त, सिद्ध बन जाते हैं। शुक्लध्यान के प्रारम्भ के दो प्रकार सातवे गुणस्थान से लेकर बारहवे गुणस्थान तक होते हैं। तीसरा प्रकार तेरहवें गुणस्थान मे होता है और चौथा प्रकार चौदहवे गुणस्थान मे। प्रथम के दो ध्यानो मे श्रुत का आलम्बन होता है। अन्तिम दो प्रकारो मे आलम्बन नही होता। ये दोनो ध्यान निरवलम्ब हैं।

शुक्लध्यानी आत्मा के चार चिह्न बताये गये हैं, जिससे शुक्लध्यानी की पहचान होती है। वे हैं—

१ अव्यथ—भयकर से भयकर उपसर्गों मे भी विचलित-व्यथित नही होता।

२ असम्मोह—सूक्ष्म तात्त्विक विषयो मे अथवा देवाधिकृत माया से सम्मोहित नही होता। उसकी श्रद्धा पूर्ण रूप से अडोल होती है।

३ विवेक—आत्मा और देह, ये दोनो पृथक् हैं—इसका सही परिज्ञान उसको होता है। वह पूर्ण रूप से जागरूक होता है।

४ व्युत्सर्ग—वह सम्पूर्ण आसक्तियो से मुक्त होता है। वह प्रतिपल प्रतिक्षण वीतरागभाव की ओर गतिशील होता है।

भगवतीसूत्र[1] और स्थानाग[2] मे शुक्लध्यान के क्षमा, मार्दव, आर्जव और मुक्ति ये चार आलम्बन बतलाए हैं। शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाए भी आगम साहित्य मे प्रतिपादित है, वे इस प्रकार हैं—

१ अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा—अनन्त भव-परम्परा के सम्बन्ध मे चिन्तन करना।

२ विपरिणामानुप्रेक्षा – वस्तु प्रतिपल-प्रतिक्षण परिवर्तनशील है, शुभ पुद्गल अशुभ मे बदल जाते हैं, इत्यादि चिन्तन।

३ अशुभानुप्रेक्षा ससार के अशुभ स्वरूप पर चिन्तन करने से उन पदार्थों के प्रति आसक्ति समाप्त होती है और मन मे निर्वेद भाव पैदा होना है।

४ अपायानुप्रेक्षा—पाप के आचरण से अशुभ कर्मों का बन्धन होता है, जिससे आत्मा को विविध गतियो मे परिभ्रमण करना पडता है, अत उनके कटु परिणाम पर चिन्तन करना।

ये चारो अनुप्रेक्षाएँ शुक्लध्यान की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे होती हैं, जब धीरे-धीरे स्थिरता आ जाती है तो स्वत ही बाह्योन्मुखता समाप्त हो जाती है।

आभ्यन्तर तप का छठा प्रकार व्युत्सर्ग है। इस तप की साधना से जीवन मे निर्ममत्व, निस्पृहता, अनासक्ति और निर्भयता की भव्य भावना लहराने लगती है। व्युत्सर्ग मे 'वि' उपसर्ग है। 'वि' का अर्थ है— विशिष्ट और उत्सर्ग का अर्थ है त्याग। आशा और ममत्व आदि का परित्याग ही व्युत्सर्ग है। दिगम्बर आचार्य अकलक ने तत्त्वार्थराजवार्तिक[3] मे व्युत्सर्ग की परिभाषा करते हुए लिखा है—निस्सगता, अनासक्ति, निर्भयता और जीवन की लालसा का त्याग उत्सर्ग है। आत्मसाधना के लिये अपने-आप का उत्सर्ग करना व्युत्सर्ग है। आचार्य भद्रबाहु[4] ने व्युत्सर्ग करने वाले साधक के अन्तर्मानस का चित्रण करते हुए लिखा है—यह शरीर अन्य है

---

१ भगवती सूत्र २५/७

२ स्थानांगसूत्र ३/१

३ नि सग—निर्भयत्व-जीविताशा-व्युदासाद्यर्थो व्युत्सर्ग । —तत्त्वार्थराजवार्तिक ९/२६/१०

४ आवश्यकनिर्युक्ति, १५५२

और मेरा आत्मा अन्य है। शरीर नाशवान् है, आत्मा शाश्वत है। व्युत्सर्ग करने वाला साधक स्व के यानी आत्मा के निकट से निकटतर होता चला जाता है और पर की ममता से मुक्त होता है।

उत्तराध्ययन[1] मे व्युत्सर्ग के अर्थ मे ही कायोत्सर्ग का प्रयोग हुआ है। कायोत्सर्ग व्युत्सर्ग है, पर भगवती[2] मे व्युत्सर्ग तप के दो भेद बताये हैं—१ द्रव्यव्युत्सर्ग और २ भावव्युत्सर्ग। द्रव्यव्युत्सर्ग के चार प्रकार हैं—१ गुणव्युत्सर्ग २ शरीरव्युत्सर्ग ३ उपधिव्युत्सर्ग ४ भक्तपाणव्युत्सर्ग। इसी प्रकार भाव व्युत्सर्ग के तीन भेद है १ कषायव्युत्सर्ग २ ससारव्युत्सर्ग और ३ कर्मव्युत्सर्ग। साधक पहले द्रव्य-व्युत्सर्ग करता है। द्रव्यव्युत्सर्ग से वह आहार, वस्त्र, पात्र और शरीर पर के ममत्व को कम करता है। व्युत्सर्ग मे सबसे प्रमुख कायोत्सर्ग है। काया को धारण करते हुए भी काया की अनुभूति व ममता से मुक्त हो जाना एक बडी साधना है। एतदर्थ ही 'वोसट्टकाए, वोसट्टचत्तदेहे' जैसे विशेषण साधक के लिये प्रयुक्त हुए है। जिसने कायोत्सर्ग सिद्ध कर लिया, वह अन्य व्युत्सर्ग भी सहज रूप से कर लेता है।

यह स्मरण रखना होगा कि जैन तप साधना का जो पवित्र पथ है, उसमे हठयोग नही है। उस तप मे किसी भी प्रकार का तन और मन के साथ बलात्कार नही होता अपितु धीरे-धीरे तन और मन को प्रबुद्ध किया जाता है और प्रसन्नता के साथ तप की आराधना की जाती है। जैनदृष्टि से तप का लक्ष्य आत्मतत्त्व की उपलब्धि है। तप मे साधक का अन्तिम लक्ष्य, जो मोक्ष है, उसकी उपलब्धि होती है।

तप के सम्बन्ध मे वैदिक-परम्परा मे भी चिन्तन किया है। वैदिक ऋषियो ने लिखा है कि तप से ही वेद उत्पन्न हुआ है।[3] तप से ही ऋत् और सत्य उत्पन्न हुए है।[4] तप से ही ब्रह्म की अन्वेषणा की जा सकती है।[5] तप से ही मृत्यु पर विजय-वैजयन्ती फहराई जा सकती है।[6] तप से ही लोक पर विजय प्राप्त की जा सकती है।[7] आचार्य मनु ने लिखा है—जो कुछ भी दुर्लभ और दुस्तर इस ससार मे है वह सब तपस्या से ही प्राप्य है। तप की शक्ति को कोई अतिक्रमण नही कर सकता।[8] इस तरह वैदिक परम्परा के ग्रन्थो मे तप की महिमा और गरिमा का उट्टकण हुआ है।

बौद्धपरम्परा मे भी तप का वर्णन है। सुत्तनिपात के महामगलसुत्त मे तथागत बुद्ध ने कहा—तप, ब्रह्मचर्य, आर्य सत्यो का दर्शन और निर्वाण का साक्षात्कार, ये उत्तम मगल है।[9] सुत्तनिपात के कासीभारद्वाज सुत्त मे तथागत बुद्ध ने कहा—मैं श्रद्धा का बीज वपन करता हूँ, उस पर तपश्चर्या की वर्षा होती है, शरीर और

---

१ उत्तराध्ययन, ३०/३६

२ भगवतीसूत्र, २५/७

३ मनुस्मृति ११ २४३

४ ऋग्वेद १०, १९०, १

५ मुण्डक १, १, ८

६ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत—वेद

७ शतपथब्राह्मण ३, ४, ४, २७

८ यद् दुस्तर यद् दुराप दुर्ग यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्य तपो हि दुरतिक्रमम्॥ —मनुस्मृति ११, २३७

९ महामगलसुत्त, सुत्तनिपात १६/१०

वाणी से सयम रखता हूँ और आहार से नियमित रहकर सत्य से मन के दोषो की गोडाई करता हूँ।[1] अगुत्तर-निकाय दिट्ठवज्जसुत्त मे तथागत ने कहा कि किसी तप या व्रत को करने से किसी के कुशल धर्म की अभिवृद्धि होती है और अकुशल धर्म नष्ट होते हैं तो उसे वह तप आदि अवश्य करना चाहिये।[2] तथागत बुद्ध ने स्वय कठिनतम तप तपा था।[3] उनका तपोमय जीवन इस बात का ज्वलन्त प्रतीक है कि बौद्धसाधना मे तप का विशिष्ट स्थान रहा है। बुद्ध मध्यममार्गी थे। इस कारण उनके द्वारा प्रतिपादित तप भी मध्यममार्गी ही रहा। उसमे उतनी कठोरता नही आ पाई। विस्तार भय से हम अन्य आजीवक प्रभृति परम्परा मे जो तप का स्वरूप रहा और विभिन्न परम्पराओ ने तप का विविध दृष्टियो से जो वर्गीकरण किया, उस पर यहाँ चिन्तन नही कर रहे हैं। किन्तु सक्षेप मे यही बताना चाहते हैं कि जैनपरम्परा ने जो तप का विश्लेषण किया है उस तप का उद्देश्य एकान्त आध्यात्मिक उत्कर्ष करना है। आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये उसने ज्ञानसमन्वित तप को महत्त्व दिया है। जिस तप के पीछे ममत्व की साधना नही है, भेद-विज्ञान का दिव्य आलोक जगमगा नही रहा है, वह तप नही ताप है/सताप है/परिताप है। श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—एक अज्ञानी साधक एक-एक महीने की तपस्या करता है और उस तप की परिसमाप्ति पर कुशाग्र जितना अन्न ग्रहण करता है। वह साधक ज्ञानी की सोलहवी कला के बराबर भी धम का आचरण नही करता।[4] तप का प्रयोजन आत्म-परिशोधन है, न कि देह-दण्डन। जब हमे घी को तपाना होता है तो उसे पात्र मे डालकर ही तपाया जा सकता है, इसीलिए घृत के साथ-साथ पात्र भी तप जाता है, जबकि हमारा हेतु तो घृत तपाना ही होता है। इसी प्रकार जब कोई तपस्वी साधक तपश्चर्या मे तल्लीन होता है तो उसकी तपस्या का हेतु होता है– आत्मा को शोधना, किन्तु आत्मा को तपाने/शोधने की इस प्रक्रिया मे शरीर स्वत ही तप जाता है। चेष्टा आत्मशोधन की है किन्तु शरीर आत्मा का भाजन/पात्र होने से तपता है। जिस तप मे मानसिक सक्लेश हो, पीडा हो, वह तप नही है। तप मे आत्मा को आकुलता नही होती, क्योंकि तप तो आत्मा का आनन्द है। तप जागृत आत्मा की अनुभूति है। इससे मन की मलीनता नष्ट होती है, वासनाए शिथिल होती हैं, चेतना मे नये आनन्द का आयाम खुल जाता है और नित्य नूतन अनुभूति होने लगती है। यह है तप का जीवन्त, जागृत और शाश्वत स्वरूप। तप एक ऐसी उष्मा है, जो विकार को नष्ट कर आत्मा को वीतराग बनाती है।

परीषह · एक चिन्तन

भगवतीसूत्र शतक ८ उद्देशक ८ मे गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने परिषह के २२ प्रकार बताये हैं। परीषह का अर्थ है कष्टो को समभावपूर्वक सहन करना। परीषह मे जो कष्ट सहन किये जाते है वे स्वच्छा से नही अपितु श्रमणजीवन की आचारसहिता का पालन करते हुए आकस्मिक रूप से यदि

---

१ कासिभारद्वाजसुत्त, सुत्तनिपात ४/२

२ दिट्ठवज्जसुत्त—अगुत्तरनिकाय

३ भगवान् बुद्ध (धर्मानन्द कोसाम्बी) पृ० ६८-७०

४ मासे मासे तु जो बालो कुसग्गेण तु भु जए।
न सो सुयक्खायधम्मस्स कल अग्घइ सोलसि ॥ उत्तराध्ययन, ९/४४

तुलनेय—

मासे मासे कुसग्गेन बालो भु जेथ भोजन।
न सो सखतधम्मान कल अग्घति सोलसि ॥ —धम्मपद, ७०

किसी प्रकार का कोई सकट समुपस्थित हो जाता है तो उसे सहन किया जाता है। किन्तु तपस्या मे जो कष्ट सहन किया जाता है, वह स्वेच्छा से किया जाता है। कष्ट श्रमणजीवन को निखारने के लिये आता है। श्रमण को कष्टसहिष्णु होना चाहिए, जिससे वह साधना-पथ से विचलित न हो सके। भगवती मे जिस प्रकार परीषह के बाईस प्रकार बताये हैं वैसे ही उत्तराध्ययन[1] और समवायाङ्ग[2] सूत्र मे भी बाईस परीषह-प्रकारो को बताया है। सख्या की दृष्टि से समानता होने पर भी क्रम की दृष्टि से कुछ अन्तर है।

अगुत्तरनिकाय[3] मे तथागत बुद्ध ने कहा है—भिक्षु को दु खपूर्ण, तीव्र, प्रखर, कटु, प्रतिकूल, बुरी, शारीरिक वेदनाए हो, उन्हे सहन करने का प्रयास करना चाहिए। भिक्षुओ को समभावपूर्वक कष्ट सहन करने का सन्देश देते हुए सुत्तनिपात[4] मे भी बुद्ध ने कहा है—धीर, स्मृतिमान् सयत आचरण वाला भिक्षु डसने वाली मक्खियो से, सर्पो से, पापियो द्वारा दी जाने वाली पीडा से और पशुओ से भयभीत न हो, सभी कष्टो का सामना करे। बीमारी के कष्ट को, क्षुधा की वेदना को, शीत और उष्ण को सहन करे। सुत्तनिपात[5] मे कष्टसहिष्णुता के लिए परिषह शब्द का प्रयोग हुआ है, पर जैनपरम्परा मे और बौद्धपरम्परा में परीषह के सम्बन्ध मे कुछ पृथक्-पृथक् चिन्तन है। जैनदृष्टि मे परीषह को सहन करना मुक्ति-मार्ग के लिये साधक है, जबकि बौद्धपरम्परा मे परीषह निर्वाणमार्ग के लिये बाधक है और उस बाधक तत्त्व को दूर करने का सन्देश दिया है।[6] तथागत बुद्ध परीषह को सहन करने की अपेक्षा परीषह को दूर करना श्रेयस्कर समझते थे। दोनो परम्पराओ मे परीषह का मूल मन्तव्य एक होने पर भी दृष्टिकोण मे अन्तर है।

जैन और बौद्ध परम्परा मे जिस प्रकार परीषह का निरूपण हुआ है और मुनियो के लिये कष्ट-सहिष्णु होना आवश्यक माना है वैसे ही वैदिक परम्परा मे भी सन्यासियो के लिये कष्टसहिष्णु होना आवश्यक माना गया है। वहाँ पर यह भी प्रतिपादित किया गया है कि सन्यासियो को कष्टो को निमन्त्रित करना चाहिए। आचार्य मनु ने लिखा है—वानप्रस्थी को पचाग्नि के मध्य खडे होकर, वर्षा मे खुले मे खडे रहकर और शीत ऋतु मे गीले वस्त्र धारण करने चाहिये।[7] उसे खुले आकाश के नीचे सोना चाहिये और शरीर मे रोग पैदा होने पर भी चिन्ता नही करनी चाहिये। इस तरह कष्ट को स्वेच्छापूर्वक निमत्रण देने की प्रेरणा दी है।

किन कर्मप्रकृतियो के कारण कौन से परीषह होते हैं, उस पर भी प्रकाश डालते हुए बताया है—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय के कारण परीषह उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार साधनाखण्ड मे विविध प्रकार की जिज्ञासाए हैं और सटीक समाधान भी हैं। अत्यधिक विस्तार न हो जाये इस दृष्टि से यहाँ सक्षेप मे ही कुछ सूचन किया है। भगवती शतक २५, उद्देशक ४ मे सक्षिप्त मे द्वादशागी का भी परिचय दिया है। उसका अधिक विस्तार समवायाग और नन्दीसूत्र मे मिलता है।

---

१ उत्तराध्ययन, अध्ययन २
२ समवायाग, २२।१
३ अगुत्तरनिकाय, ३।४९
४ सुत्तनिपात ५४।१०-१२
५ सुत्तनिपात ५४।६
६ सुत्तनिपात ५४।६, १५
७ मनुस्मृति ६।२३, ३४
देखिये—जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन, खण्ड-२, पृ ३६२-३६३

भगवतीसूत्र मे जहाँ साधना के सम्बन्ध मे गम्भीर चिन्तन हुआ है, उसके विविध भेद-प्रभेद निरूपित हैं; वहाँ पर धर्मकथाओ का भी उपयोग हुआ है। विविध व्यक्तियों के पवित्र चरित्र की विभिन्न गाथाएँ उट्टंकित है। भगवान् महावीर के युग मे श्रावस्ती नगरी के सन्निकट कृतगला नामक एक नगर था, जिसे कयगला भी कहा गया है। बौद्धसाहित्य के आधार से कितने ही विज्ञ सथाल जिले मे अवस्थित ककजोल को ही कतगला (कयगला) मानते हैं। मुनिश्री इन्द्रविजयजी का मन्तव्य है कि कयगला मध्य देश की पूर्वी सीमा पर थी जिसका उल्लेख रायपालचरित मे हुआ है। यह स्थान राजमहल जिले मे है। यह कयगला श्रावस्ती की कयगला से पृथक् है।[1]

भगवान् महावीर के युग मे परिव्राजको की सख्या विपुल मात्रा मे थी। परिव्राजक ब्राह्मण धर्म के प्रतिष्ठित सन्यासी होते थे। विशिष्टसूत्र मे वर्णन है कि परिव्राजक को अपना सिर मुण्डित रखना चाहिये। एक वस्त्र या चर्मखण्ड धारण करना चाहिये। गायो द्वारा उखाडी गई घास से अपने शरीर को आच्छादित करना चाहिये और उन्हे जमीन पर ही सोना चाहिये।[2] परिव्राजक आवसथ (अवसह) मे रहते थे तथा दर्शनशास्त्र पर और वैदिक आचारसहिता पर शास्त्रार्थ करने हेतु भारत के विविध अञ्चलो मे पहुँचते थे। निशीथचूर्णि मे लिखा है—परिव्राजक लोग गेरुआ वस्त्र धारण करते थे, इसीलिये वे गेरु और गैरिक भी कहलाते थे।[3] परिव्राजक भिक्षा से आजीविका करते थे।[4] औपपातिक सूत्र,[5] सूत्रकृतागनिर्युक्ति,[6] पिण्डनिर्युक्ति,[7] बृहत्कल्पभाष्य,[8] निशीथसूत्र सभाष्य,[9] आवश्यकचूर्णि,[10] धम्मपदअट्ठकथा,[11] दीघनिकाय अट्ठकथा,[12] ललितविस्तर[13] आदि मे परिव्राजक, तापस, सन्यासी आदि अनेक प्रकार के साधको का विस्तृत वर्णन है। आर्य स्कन्दक का वर्णन भगवती के शतक २ उद्देशक १ मे विस्तार से आया है। वह एक महामनीषी परिव्राजक था। उससे पिंगल नामक निर्ग्रन्थ वैशाली श्रावक ने लोक सान्त है या अनन्त है, जीव सान्त है या अनन्त, सिद्धि सान्त है या अनन्त है, किस प्रकार का मरण पाकर जीव ससार को घटाता है और बढाता है—इन प्रश्नो का उत्तर चाहा। प्रश्न सुनकर आर्य स्कन्दक सकपका गये। वे भगवान् महावीर के चरणों मे पहुँचे। सर्वज्ञ सर्वदर्शी महावीर ने स्कन्दक को सम्बोधित कर कहा—उपर्युक्त प्रश्न पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुमसे पूछे और उनका सही समाधान पाने के लिये तुम मेरे पास उपस्थित हुए हो। उनका समाधान इस प्रकार है—

---

१. तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृ १९८
२ (क) डिक्शनरी ऑव पाली प्रोपर नेम्स, मलालसेकर, II पृ. १५९
(ख) महाभारत १२।१९०।३
३. निशीथचूर्णि १३, ४४२०
४ निरुक्त १।१४ वैदिककोष
५ औपपातिकसूत्र, ३८ पृ. १७२ से १७६
६. सूत्रकृतागनिर्युक्ति ३, ४, २, ३, ४ पृ. ९४ से ९५
७. पिण्डनिर्युक्ति गाथा ३१४
८. बृहत्कल्पभाष्य भाग ४, पृ. ११७०
९. निशीथसूत्र सभाष्य चूर्णि, भाग २
१० आवश्यकचूर्णि पृ. २७८
११. धम्मपदअट्ठकथा २, पृ. २०९
१२. दीघनिकायअट्ठकथा १, पृ, २७०
१३. ललितविस्तर, पृ. २४८

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से लोक चार प्रकार का है। द्रव्य की अपेक्षा वह एक और सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्य कोटाकोटि योजन आयाम-विष्कम्भ वाला है। इसकी परिधि असख्य कोटा-कोटि योजन है, इसका अन्त है। काल की अपेक्षा यह किसी दिन नही था ऐसा नही है, किसी दिन नही रहेगा ऐसा भी नही है। वह तीनो कालो मे रहेगा और इसका अन्त नही है। भाव की अपेक्षा यह अनन्त वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पर्यव रूप है। अनन्त सस्थान पर्यव, अनन्त गुरुलघु पर्यव और अनन्त अगुरुलघु पर्यव रूप है। द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा लोक सान्त है, काल और भाव की अपेक्षा वह अनन्त है। इस प्रकार लोक सान्त है और अनन्त भी।

जीव के सम्बन्ध मे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से चिन्तन किया जाय तो द्रव्य की दृष्टि से जीव एक और सान्त है, क्षेत्र की दृष्टि से वह असख्यात प्रदेशी और सान्त है। काल की दृष्टि से वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा अत नित्य है, उसका कभी अन्त नही। भाव की दृष्टि से वह अनन्त ज्ञान पर्यव रूप है, अनन्त दर्शन पर्यव रूप है यावत् अनन्त अगुरुलघु पर्यव रूप है। इसका अन्त नही है। इस प्रकार द्रव्य और क्षेत्र की दृष्टि से जीव अन्तयुक्त है। काल और भाव की दृष्टि से अन्तरहित है।

मोक्ष के सम्बन्ध मे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से जानना होगा। द्रव्य की दृष्टि से मोक्ष एक है और सान्त है। क्षेत्र की दृष्टि से पैंतालीस लाख योजन आयाम-विष्कम्भ वाला है और इसकी परिधि एक करोड बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक है। इसका अन्त है। काल की दृष्टि से यह नही कहा जा सकता कि किसी दिन मोक्ष नही था, नही है, नही रहेगा। भाव की अपेक्षा से यह अन्त-रहित है। द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से मोक्ष अन्तयुक्त है तथा काल और भाव की अपेक्षा से अन्तरहित है। इसी तरह सिद्ध अन्तयुक्त है या अन्तरहित है? इसके उत्तर हैं—द्रव्य की दृष्टि से सिद्ध एक है और अन्तयुक्त है। क्षेत्र की दृष्टि से सिद्ध असख्य प्रदेश-अवगाढ होने पर भी अन्तयुक्त है। काल की दृष्टि से सिद्ध की आदि तो है, पर अन्त नही है। भाव की दृष्टि से सिद्ध ज्ञानदर्शन पर्यव रूप है और उसका अन्त नही है। इसी तरह भगवान् महावीर ने मरण के भी दो प्रकार बताये—१ बालमरण और २ पण्डितमरण। बालमरण के बारह प्रकार हैं। बालमरण से मर कर जीव चतुर्गत्यात्मक ससार की अभिवृद्धि करते हैं और पण्डितमरण से मर कर जीव दीर्घ ससार को सीमित कर देते है।

इन प्रश्नो का विस्तार से उत्तर सुनकर आर्य स्कन्दक अत्यन्त आह्लादित हुए और उन्होने भगवान् महावीर के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की। जब हम महावीरयुग का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि उस युग मे इस प्रकार के प्रश्न दार्शनिको के मस्तिष्क को झकझोर रहे थे और वे यथार्थ समाधान पाने के लिये मूर्धन्य मनीषियो के पास पहुँचते थे। तथागत बुद्ध के पास भी इस प्रकार के प्रश्न लेकर अनेक जिज्ञासु पहुँचते रहे, पर तथागत बुद्ध उन प्रश्नो को अव्याकृत कहकर टालते रहते थे। मज्झिमनिकाय[1] मे जिन प्रश्नो को तथागत ने अव्याकृत कहा था, वे ये है—

१. क्या लोक शाश्वत है? २ क्या लोक अशाश्वत है? ३ क्या लोक अन्तमान है? ४ क्या लोक अनन्त है? ५ क्या जीव और शरीर एक है? ६ क्या जीव और शरीर भिन्न है? ७ क्या मरने के बाद तथागत नही होते? ८ क्या मरने के बाद तथागत होते भी है और नही भी होते? ९ क्या मरने के बाद तथागत न होते हैं और न नही होते हैं?

इन प्रश्नो के उत्तर मे विधान के रूप मे बुद्ध ने कुछ भी नही कहा है। उनके मन मे सम्भवत यह

---

१ मज्झिमनिकाय, चूलमालुक्यसुत्त, ६३

विचार रहा होगा कि यदि मैं लोक और जीव को नित्य कहता हूँ तो उपनिषद् का शाश्वतवाद मुझे मानना पड़ेगा। यदि मैं अनित्य कहता हूँ तो चार्वाक का भौतिकवाद स्वीकार करना पडेगा। उन्हे शाश्वतवाद और उच्छेदवाद दोनो पसन्द नही थे, इसीलिये ऐसे प्रश्नो को अव्याकृत, स्थापित, प्रतिक्षिप्त कह दिया कि लोक अशाश्वत हो या शाश्वत, जन्म है ही, मरण है ही। मैं तो इन्ही जन्म-मरण के विघात को बताता हूँ। यही मेरा व्याकृत है और इसी मे तुम्हारा हित है। इस तरह बुद्ध ने अशाश्वतानुच्छेदवाद स्वीकार किया है। इसका भी यह कारण था कि उस युग मे जो वाद थे उन वादो मे उनको दोष दृग्गोचर हुए, अतएव किसी वाद का अनुयायी होना उन्हे श्रेयस्कर नही लगा।[1] पर महावीर ने उन वादो के गुण और दोष दोनो देखे। जिस वाद मे जितनी सचाई थी, उतनी मात्रा मे स्वीकार कर, सभी वादो का समन्वय करने का प्रयास किया। तथागत बुद्ध जिन प्रश्नो का उत्तर विधि रूप मे देना पसन्द नही करते थे, उन सभी प्रश्नो का उत्तर भगवान् महावीर ने अनेकान्तवाद के रूप मे प्रदान किया। प्रत्येक वाद के पीछे क्या दृष्टिकोण रहा हुआ है, उस वाद की मर्यादा क्या है? इस बात को नयवाद के रूप मे दार्शनिकों के सामने प्रस्तुत किया। तथागत बुद्ध ने लोक की सान्तता और अनन्तता दोनो को अव्याकृत कोटि मे रखा है, जब कि भगवान् महावीर ने लोक को सान्त और अनन्त अपेक्षाभेद से बताया।

इसी तरह लोक शाश्वत है या अशाश्वत है? यह प्रश्न भगवतीसूत्र, शतक ९, उद्देशक ६ मे गणधर गौतम ने जमाली को पूछा। प्रश्न सुनकर जमाली सकपका गये। तब भगवान् महावीर ने कहा—लोक शाश्वत है और अशाश्वत भी है। तीनो कालो मे ऐसा एक भी समय नही जब लोक किसी न किसी रूप मे न हो। अत वह शाश्वत है। लोक हमेशा एक रूप नही रहता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के कारण अवनति और उन्नति होती रहती है। इसलिये वह अशाश्वत भी है। भगवान् महावीर ने लोक को पचास्तिकाय रूप माना। जीव और शरीर के भेदाभेद पर भी अनेकान्तवाद की दृष्टि से जो समाधान किया है, वह भी अपूर्व है। उन्होने आत्मा को शरीर स भिन्न और अभिन्न दोनो कहा है। किन्तु बुद्ध इस सम्बन्ध मे भी स्पष्ट नही हो सके। उनका अभिमत था कि यदि शरीर को आत्मा से भिन्न मानते हैं तब ब्रह्मचर्यवास सम्भव नही, यदि अभिन्न मानते है तो भी ब्रह्मचर्यवास सम्भव नही। इसलिये दोनो अन्तो को छोडकर उन्होने मध्यम मार्ग का उपदेश दिया।[2] तथागत बुद्ध का यह चिन्तन था कि यदि आत्मा शरीर से अत्यन्त भिन्न माना जाये तो फिर उसे कायकृत कर्मों का फल नही मिलना चाहिये। अत्यन्त भेद मानने पर अकृतागम दोष की आपत्ति है। यदि अत्यन्त अभिन्न माने तो जब शरीर को जला कर नष्ट कर देते है तो आत्मा भी नष्ट हो जायेगा। जब आत्मा नष्ट हो गया है तो परलोक सम्भव नही है। इस तरह कृतप्रणाश दोष की आपत्ति होगी। इन दोषो से बचने के लिये उन्होने भेद और अभेद दोनो पक्ष ठीक नही माने। पर महावीर ने इन दोनो विरोधी वादो का समन्वय किया। एकान्त भेद और एकान्त अभेद मानने पर जिन दोषो की सम्भावना थी, वे दोष उभयवाद मानने पर नही होते। जीव और शरीर का भेद मानने का कारण यही है। शरीर नष्ट होने पर भी आत्मा दूसरे जन्म मे रहती है। सिद्धावस्था मे जो आत्मा है, वह शरीरमुक्त है। आत्मा और शरीर का जो अभेद माना गया है, उसका कारण है कि ससार-अवस्था मे आत्मा नीर-क्षीर-वत् रहता है। इसलिये शरीर से किसी

---

१ आगम युग का जैनदर्शन, प. दलसुख मालवणिया, पृ ६०-६१

२. "त जीव त सरीर ति भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। अञ्ञ जीव अञ्ञ सरीर ति वा भिक्खु, दिट्ठिया सति ब्रह्मचरियवासो न होति। एते ते भिक्खु, उभो अन्ते अनुपगम्म मज्झेन यथागतो धम्म देसेति" —सयुत्त XII १३५

भी वस्तु का सस्पर्श होने पर आत्मा मे भी सवेदन होता है और कायकर्म का विपाक आत्मा मे होता है।[1] चार्वाक दर्शन शरीर को ही आत्मा मानता था तो उपनिषद् काल के ऋषिगण आत्मा को शरीर से अत्यन्त भिन्न मानते थे। पर महावीर ने उन दोनो भेद और अभेद पक्षो का अनेकान्त दृष्टि से समन्वय कर दार्शनिको के सामने समन्वय का मार्ग प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार जीव की सान्तता और अनन्तता के प्रश्न पर भी बुद्ध का मन्तव्य स्पष्ट नही था। यदि काल की दृष्टि से सान्तता और अनन्तता का प्रश्न हो तो अव्याकृत मत से समाधान हो जाता है पर द्रव्य या क्षेत्र की दृष्टि से जीव की सान्तता और निरन्तता के विषय मे उनके क्या विचार थे, इस सम्बन्ध मे त्रिपिटक साहित्य मौन है, जबकि भगवान् महावीर ने जीव की सान्तता, निरन्तता के सम्बन्ध मे अपने स्पष्ट विचार प्रस्तुत किये हैं। उनके अभिमतानुसार जीव एक स्वतन्त्र तत्त्व के रूप मे है। वह द्रव्य से सान्त है, क्षेत्र से सान्त है, काल से अनन्त है और भाव से अनन्त है। इस तरह जीव सान्त भी है, अनन्त भी है। काल की दृष्टि से और पर्यायो की अपेक्षा से उसका कोई अन्त नही पर वह द्रव्य और क्षेत्र की दृष्टि से सान्त है।

उपनिषद् का आत्मा के सम्बन्ध के 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' के मन्तव्य का भगवान् महावीर ने निराकरण किया है। क्षेत्र की दृष्टि से आत्मा की व्यापकता को भगवान् महावीर ने स्वीकार नही किया है और एक ही आत्मद्रव्य सब कुछ है, यह भी भगवान् महावीर का मन्तव्य नही है। उनका मन्तव्य है कि आत्म-द्रव्य और उसका क्षेत्र मर्यादित है। उन्होने क्षेत्र की दृष्टि से आत्मा को सान्त कहते हुए भी काल की दृष्टि से आत्मा को अनन्त कहा है। भाव की दृष्टि से भी आत्मा अनन्त है क्योकि जीव की ज्ञानपर्यायो का कोई अन्त नही है और न दर्शन और चारित्र पर्यायो का ही कोई अन्त है। प्रतिपल-प्रतिक्षण नई-नई पर्यायो का आविर्भाव होता रहता है और पूर्व पर्याय नष्ट होते रहते है। इसी प्रकार सिद्धि के सम्बन्ध मे भी भगवान महावीर ने अनेकान्त दृष्टि से उत्तर देकर एक गम्भीर दार्शनिक समस्या का सहज समाधान किया है।

मृत्यु : एक कला

मृत्यु एक कला है। इस कला के सम्बन्ध मे जैन मनीषियो ने विस्तार से विश्लेषण किया है। जैन मनीषियो ने मरण के दो प्रकार बताये—बालमरण और पण्डितमरण। दूसरे शब्दो मे उसे असमाधिमरण और समाधिमरण भी कह सकते हैं। एक ज्ञानी की मृत्यु है, दूसरी अज्ञानी की मृत्यु है। अज्ञानी विषयासक्त होता है। वह मृत्यु से कापता है। उससे बचने के लिए वह अहर्निश प्रयास करता है, पर मृत्यु उसका पीछा नही छोडती। पर ज्ञानी मृत्यु का आलिगन करने के लिये सदा तत्पर रहता है। उसकी शरीर के प्रति आसक्ति नही होती। वह समभाव से मृत्यु को वरण करता है। उस मरण मे किचिन्मात्र भी कषाय नही होता। जब साधक देखता है कि अब शरीर साधना करने मे सक्षम नही रहा है तब वह निर्भय होकर देहासक्ति का विसर्जन कर मृत्यु का स्वागत करता है। बालमरण के प्रस्तुत आगम मे जो बारह प्रकार प्रतिपादित हैं उनमे कषाय की मात्रा की प्रधानता है। क्रोध, अहकार आदि के कारण ही वह मृत्यु को स्वीकार करता है। उस मृत्यु को स्वीकार करने पर भी मृत्यु की परम्परा समाप्त नही होती प्रत्युत वह परम्परा लम्बी होती चली जाती है। पण्डितमरण मे साधक समस्त प्राणियो के साथ सर्वप्रथम क्षमायाचना करता है। ग्रहीत व्रतो में यदि असावधानी-वश स्खलनाए हुई हो तो उन दोषों की आलोचना कर प्रायश्चित ग्रहण करता है। पापस्थानको का परित्याग

---

१ आगम युग का जैनदर्शन, प दलसुख मालवणिया, पृ ६६-६७

कर प्रसन्नतापूर्वक वह मरण स्वीकार किया जाता है। मरण काल मे साधक चाहे कितने ही कष्ट आएँ, उनको समभावपूर्वक सहन करता है। यह पण्डितमरण आत्महत्या नही है पर मृत्यु को वरण करने की श्रेष्ठ कला है।

सयुत्तनिकाय मे असाध्य रोग से सत्रस्त भिक्षु वक्कलि कुलपुत्र[1] व भिक्षु छन्न[2] ने आत्महत्या की। तथागत बुद्ध ने उन दोनो भिक्षुओ को निर्दोष कहा और बताया कि दोनो भिक्षु परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं। जापान मे रहने वाले बौद्धो मे हरीकरी की प्रथा आज भी प्रचलित है। पर जैनपरम्परा और बौद्ध परम्परा के मृत्यु-वरण मे अन्तर है। बौद्धपरम्परा मे शस्त्रवध से तत्काल या उसी क्षण मृत्यु प्राप्त करना श्रेष्ठ माना है, जबकि जैनपरम्परा मे इस प्रकार मृत्यु को वरण करना उचित नही माना गया है। वैदिक-परम्परा मे भी स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण को सर्वश्रेष्ठ माना है। मनुस्मृति,[3] याज्ञवल्क्यस्मृति,[4] गौतम स्मृति,[5] वशिष्ठधर्मसूत्र,[6] और आपस्तम्बसूत्र[7] आदि के अनुसार प्रायश्चित्त के निमित्त मृत्यु को वरण करना चाहिए। महाभारत के अनुशासनपर्व,[8] वनपर्व,[9] और मत्स्यपुराण[10] आदि के अनुसार अग्निप्रवेश, जलप्रवेश, गिरिपतन, विषप्रयोग या अनशन आदि के द्वारा देहत्याग किया जाता है तो ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। वैदिक परम्परा ने जो विविध साधन मृत्युवरण के बताये हैं वहाँ पर जैन परम्परा मे उपवास आदि से ही मृत्यु को वरण करना श्रेयस्कर माना है। ब्रह्मचर्य आदि की सुरक्षा के लिये तात्कालिक मृत्यु-वरण के कुछ प्रसग जैन साहित्य मे आये हैं, पर मुख्य रूप से इस प्रकार के मरण को आत्महत्या ही माना है और उसकी आलोचना भी जैन मनीषियो ने यत्र-तत्र की है। जैन परम्परा मे जीवन की आशा और मृत्यु की आशा दोनो को ही अनुचित माना है। समाधिमरण मे न तो मरण की आकाक्षा होती है और न आत्महत्या ही होती है, आत्महत्या या तो क्रोध के कारण या सम्मान अथवा अपने हित पर गहरा आघात लगता है तब व्यक्ति निराशा के झूले मे झूलने लगता है और वह आत्महत्या के लिये प्रस्तुत होता है। समाधिमरण मे आहारादि के त्याग से देह-पोषण का त्याग किया जाता है। मृत्यु उसका परिणाम है पर उसमे मृत्यु की आकाक्षा नही है। जिस प्रकार फोडे की चीर-फाड से वेदना अवश्य होती है पर वेदना की आकाक्षा नही होती। समाधिमरण की क्रिया मरण के लिए न होकर उसके प्रतीकार के लिए है, जैसे व्रण का चीरना वेदना के लिए न होकर वेदना के प्रतीकार के लिए है। यही समाधिमरण और आत्महत्या मे अन्तर है। समाधिमरण मे भगोडे की तरह भागना नही है अपितु सयम की ओर अग्रसर होना है। आत्महत्या मे जीवन से भय होता है पर समाधिमरण मे मृत्यु से भय नही होता। आत्महत्या असमय मे मृत्यु का आमत्रण है किन्तु समाधिमरण मे मृत्यु के उपस्थित होने पर उसका सहर्ष स्वागत है। आत्महत्या के पीछे भय या कामना रही हुई होती है जबकि समाधिमरण मे भय और कामना का अभाव रहता है।

---

१ सयुत्तनिकाय, २१।२।४।५
२ सयुत्तनिकाय, ३४।२।४।४
३. मनुस्मृति, ११/९०-९१
४ याज्ञवल्यक्स्मृति ३,/२५३
५. गौतमस्मृति, २३।१
६ वशिष्ठ धर्मसूत्र २०/२२, १३/१४
७ आपस्तम्ब सूत्र, १।९।२५।१-३, ६
८ महाभारत, अनुशासनपर्व, २५।६२-६४
९ महाभारत, वनपर्व, ८५।८३
१० मत्स्यपुराण, १८६।३४।३५

कितने ही आलोचक जैनदर्शन की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि जैनदर्शन जीवन से इकरार नहीं अपितु इनकार करता है। पर उनकी यह आलोचना भ्रान्त है। जैनदर्शन ने जीवन के मिथ्यामोह से इनकार किया है। जो जीवन स्व और पर की साधना मे उपयोगी है वही जीवन सर्वतोभावेन सरक्षणीय है। क्योकि जीवन का लक्ष्य ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सिद्धि करना है। यदि मरण से भी ज्ञानादि की सिद्धि है तो वह शिरसा श्लाघनीय[1] है। इस प्रकार प्रस्तुत कथानक मे गम्भीर विषय की चर्चा प्रस्तुत की गई है। आर्य स्कन्दक जिज्ञासा का समाधान होने पर भगवान् महावीर के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण कर समाधिमरण प्राप्त कर अच्युत कल्प मे देव बने और वहाँ से वे महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मुक्त होगे।

ईशानेन्द्र

भगवतीसूत्र, शतक ३, उद्देशक १ मे देवराज ईशानेन्द्र का मधुर प्रसग आया है। ईशानेन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना कि भगवान् महावीर प्रभु राजगृह मे पधारे हैं। वह भगवान् के दर्शन के लिये पहुचा और उसने ३२ प्रकार के नाटक किये। गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि यह दिव्य देवऋद्धि ईशानेन्द्र को किस प्रकार प्राप्त हुई है? भगवान् ने समाधान किया कि यह पूर्वभव मे ताम्रलिप्ति नगर मे तामली मौर्यवशी गृहस्थ था। उसने प्राणामा नाम की दीक्षा ग्रहण की और निरन्तर छठ-छठ तप के साथ सूर्य के सामने आतापना ग्रहण करता और पारणे के दिन लकड़ी का पात्र लेकर पके हुए चावल लाता और २१ बार उन्हे धोकर ग्रहण करता। वह सभी को नमस्कार करता। उसकी चिरकाल तक यह साधना चलती रही। अन्त मे दो महीने का अनशन किया। जब उसका अनशन व्रत चल रहा था तब असुरकुमार देवो ने विविध रूप बनाकर उसे अपना इन्द्र बनने का सकल्प करने के लिये प्रेरित किया पर वह तपस्वी विचलित नहीं हुआ और वहाँ से मरकर ईशानेन्द्र हुआ है। प्राचीन ग्रन्थकारो ने लिखा है कि तामली ने तापस ने साठ हजार वर्ष तक तप की आराधना की थी। पर वह साधना विवेक के आलोक मे नहीं हुई थी। यदि उतनी साधना एक विवेकी साधक करता तो उतनी साधना से सात जीव मोक्ष मे चले जाते। पर वह ईशानेन्द्र ही हुआ।

प्रस्तुत प्रकरण मे ३२ प्रकार के नाटच बताये हैं। नाटक के सम्बन्ध मे हम राजप्रश्नीयसूत्र की प्रस्तावना मे विस्तार से लिख चुके हैं।

चमरेन्द्र

भगवतीसूत्र, शतक ३, उद्देशक २ मे असुरराज चमरेन्द्र का उल्लेख है जो भगवान महावीर की शरण लेकर प्रथम सौधर्म देवलोक मे पहुँचा और शक्रेन्द्र ने उस पर वज्र का प्रयोग किया। यह दस आश्चर्यो मे एक आश्चर्य रहा।

शिवराजर्षि

भगवतीसूत्र, शतक ११, उद्देशक ९ मे शिवराजर्षि का वर्णन है। वे जीवन के उषाकाल मे दिशाप्रोक्षक तापस बने थे। निरन्तर षष्ठ भक्त यानी बेले की तपस्या करते थे। उनके तापस जीवन की आचारसहिता का निरूपण प्रस्तुत आगम मे विस्तार के साथ हुआ है। दिक्चक्रवाल तप से शिवराजर्षि को विभगज्ञान हुआ जिससे वे सात द्वीप और सात समुद्रो को निहारने लगे। उन्होने यह उद्घोषणा की कि सात समुद्र और सात द्वीप ही इस विराट् विश्व मे हैं। उसकी यह चर्चा सर्वत्र प्रसारित हो गई। गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा

---

१. जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन II, पृ ४४०-४१

प्रस्तुत की। भगवान् महावीर ने कहा—असख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। जब भगवान् महावीर की यह बात शिवराजर्षि ने सुनी तो विस्मित हुए। उनका अज्ञान का पर्दा हट गया। उन्होने भगवान् महावीर के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को महान् बनाया।

प्रस्तुत कथानक मे सात द्वीप और सात समुद्र की मान्यता का उल्लेख हुआ है। यह मान्यता उस युग मे अनेक व्यक्तियों की थी। इस मिथ्या मान्यता का निरसन भगवान् महावीर ने किया और यह स्थापना की कि असख्यात द्वीप और असख्यात समुद्र हैं और अन्तिम समुद्र का नाम स्वयभूरमण समुद्र है। स्वयभूरमण समुद्र का अन्तिम छोर अलोक के प्रारम्भ तक है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि स्कन्दक परिव्राजक, पुद्गल परिव्राजक और शिवराजर्षि ये तीनो वैदिकपरम्परा के परिव्राजक थे उन्होने श्रमण परम्परा को ग्रहण किया। साथ ही उस युग मे जो ज्वलत प्रश्न जनमानस मे घूम रहे थे, उन प्रश्नो को सर्वज्ञ सर्वदर्शी महावीर ने स्पष्ट समाधान कर दार्शनिक जगत् को एक नई दृष्टि प्रदान की।

कालद्रव्य : एक चिन्तन

भगवतीसूत्र, शतक ११, उद्देशक ११ मे सुदर्शन सेठ का वर्णन है। वह वाणिज्यग्राम का रहने वाला था। उसने भगवान् महावीर से पूछा कि काल कितने प्रकार का है? भगवान् ने कहा कि काल के चार प्रकार हैं—प्रमाणकाल, यथायुरनिवृत्तिकाल, मरणकाल और अद्धाकाल। इन चार प्रकारो मे प्रमाण काल के दिवसप्रमाणकाल और रात्रिप्रमाणकाल ये दो प्रकार है। इस काल मे भी दक्षिणायन और उत्तरायन होने पर दिन-रात्रि का समय कम-ज्यादा होता रहता है। दूसरा काल है, यथायुरनिवृत्तिकाल अर्थात् नरक, मनुष्य, देव, और तिर्यञ्च जैसा आयुष्य बाधा है उसका पालन करना। तीसरा काल है—मरणकाल। शरीर से जीव का पृथक् होना मरणकाल है। चतुर्थ काल है—अद्धाकाल। वह एक समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक सख्यात काल है और उसके बाद जिसको बताने के लिये उपमा आदि का प्रयोग किया जाय जैसे—पल्योपम, सागरोपम आदि वह असख्यात काल है। जिसको उपमा के द्वारा भी न कहा जा सके, वह अनन्त है।

काल के सम्बन्ध मे जैनसाहित्य मे विस्तार से विवेचन है। वहाँ पर विभिन्न नयापेक्षया दो मत हैं। एक मत के अनुसार काल एक स्वतन्त्र द्रव्य नही है। काल जीव और अजीव द्रव्य का पर्याय-प्रवाह है। इस दृष्टि से जीव और अजीव द्रव्य का पर्यायपरिणमन ही उपचार से काल कहलाता है। इसलिये जीव और अजीव द्रव्य को ही काल द्रव्य जानना चाहिये। द्वितीय मतानुसार जीव और पुद्गल जिस प्रकार स्वतन्त्र द्रव्य हैं, वैसे ही काल भी एक स्वतन्त्र द्रव्य है। भगवती[1] उत्तराध्ययन,[2] जीवाजीवाभिगम,[3] प्रज्ञापना,[4] आदि मे काल सम्बन्धी दोनों मान्यताओ का उल्लेख है। उसके पश्चात् आचार्य उमास्वाति,[5] सिद्धसेन दिवाकर,[6] जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण,[7] हरिभद्रसूरि,[8] आचार्य हेमचन्द्र,[9] उपाध्याय यशोविजय जी,[10] विनय-

१ भगवती २५।४।७३४
२ उत्तराध्ययन, २८।७-८
३ जीवाभिगम
४ प्रज्ञापना पद १, सूत्र ३
५ तत्त्वार्थसूत्र ५।३८-३९ देखे भाष्य व्याख्या सिद्धसेन कृत
६. द्वात्रिंशिका
७ विशेषावश्यकभाष्य ९२६ और २०६८
८ धर्मसग्रहणी गाथा ३२, मलयगिरि टीका
९ योगशास्त्र
१० द्रव्यगुणपर्याय रास, देखे प्रकरण रत्नाकर भा. १, गा १०

विजयजी[1] देवचन्द्रजी[2] आदि श्वेताम्बर विज्ञो ने दोनों पक्षो का उल्लेख किया है किन्तु दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द,[3] पूज्यपाद,[4] भट्टारक अकलकदेव,[5] विद्यानन्द स्वामी[6] आदि ने केवल द्वितीय पक्ष को ही माना है। वे काल को एक स्वतन्त्र द्रव्य मानते हैं।

प्रथम मत यह है कि समय, आवलिका, मुहूर्त, दिन-रात आदि जो भी व्यवहार काल-साध्य हैं वे सभी पर्याय-विशेष के सकेत हैं। पर्याय, वह जीव-अजीव की क्रिया-विशेष है जो किसी भी तत्वान्तर की प्रेरणा के विना होती है, अर्थात् जीव-अजीव दोनो अपने-अपने पर्याय रूप मे स्वत ही परिणत हुआ करते हैं अत जीव-अजीव के पर्याय-पुञ्ज को ही काल कहना चाहिए। काल अपने-आप मे कोई स्वतन्त्र द्रव्य नही है।[7]

द्वितीय मत यह है कि जैसे जीव और पुद्गल स्वय ही गति करते हैं और स्वय ही स्थिर होते हैं, उनकी गति और स्थिति मे निमित्त रूप से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय को स्वतन्त्र द्रव्य मानते हैं, वैसे ही जीव और अजीव मे पर्याय-परिणमन का स्वभाव होने पर भी उसके निमित्तकारण रूप काल द्रव्य को मानना चाहिए।[8]

उक्त दोनो कथन परस्पर विरोधी नही किन्तु सापेक्ष हैं। निश्चय दृष्टि से काल जीव-अजीव की पर्याय है और व्यवहार दृष्टि मे वह द्रव्य है। उसे द्रव्य मानने का कारण उसकी उपयोगिता है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व-अपरत्व ये काल के उपकारक हैं। इन्ही के कारण वह द्रव्य माना जाता है। उसका व्यवहार पदार्थों की स्थिति आदि के लिए होता है।

निश्चय दृष्टि से काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने की आवश्यकता नही है। उसे जीव और अजीव के पर्यायरूप मानने से ही सभी कार्य व सभी व्यवहार सम्पन्न हो सकते है। व्यवहार की दृष्टि से ही उसे स्वतन्त्र द्रव्य माना है और उसे पृथक् द्रव्य गिनाया गया है[9] एव उसे जीवाजीवात्मक भी कहा है।[10]

वेद व उपनिषदो मे काल शब्द का प्रयोग अनेक स्थलो पर हुआ है, किन्तु वैदिक महर्षियो का काल के सम्बन्ध मे क्या मन्तव्य है, यह स्पष्ट नही है। वैशेषिकदर्शन का यह मन्तव्य है कि काल द्रव्य है, नित्य है, एक है और सम्पूर्ण कार्यों का निमित्त है।[11] न्यायदर्शन मे काल के सम्बन्ध मे वैशेषिकदर्शन का ही

---

१ लोकप्रकाश

२. नयचक्रसार और आगमसार ग्रन्थ देखें

३ प्रवचनसार अ २, गाथा ४६-४७

४. तत्त्वार्थ० सर्वार्थसिद्धि ५।३८-३९

५. तत्त्वार्थ० राजवार्तिक ५।३८-३९

६. तत्त्वार्थ० श्लोकवार्तिक ५।३८-३९

७. दर्शन और चिन्तन, पृ. ३३१, प सुखलालजी

८ दर्शन और चिन्तन, पृ ३३२ प सुखलालजी

९. (क) भगवती २।१०।१२०, ११।११।४२४, १३।४।४८३ इत्यादि
   (ख) प्रज्ञापनापद १
   (ग) उत्तराध्ययन २८।१०

१०. स्थानाङ्गसूत्र ९५

११. वैशेषिकदर्शन २।२।६ से ९

अनुसरण किया गया है ।[1] पूर्वमीमासा के प्रणेता जैमिनि ने काल तत्त्व के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार का उल्लेख नही किया है तथापि पूर्वमीमासा के समर्थ व्याख्याकार पार्थसारथी मिश्र की शास्त्रदीपिका पर युक्ति-स्नेहप्रपूरणी सिद्धान्तचन्द्रिका[2] मे पण्डित रामकृष्ण ने काल तत्त्व सम्बन्धी मीमासक मत का प्रतिपादन करते हुए वैशेषिकदर्शन की काल की मान्यता को स्वीकार किया है, पर अन्तर यह है कि वैशेषिकदर्शन काल को परोक्ष मानता है तो मीमासकदर्शन काल को प्रत्यक्ष मानता है। इस तरह वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमासा काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानते हैं । सांख्यदर्शन ने प्रकृति और पुरुष को ही मूल तत्त्व माना है और आकाश, दिशा, मन आदि को प्रकृति का विकार माना है।[3] साख्यदर्शन मे काल नामक कोई स्वतन्त्र तत्त्व नही है पर एक प्राकृतिक परिणमन है । प्रकृति नित्य होने पर भी परिणमनशील है, यह स्थूल और सूक्ष्म जड प्रकृति का ही विचार है ।

योगदर्शन के रचयिता महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन मे कही भी काल तत्त्व के सम्बन्ध मे सूचन नही किया है । पर योगदर्शन के भाष्यकार व्यास ने तृतीय पाद के बावनवे सूत्र पर भाष्य करते हुए काल तत्त्व का स्पष्ट उल्लेख किया है । वे लिखते हैं—मुहूर्त, प्रहर, दिवस आदि लौकिक कालव्यवहार बुद्धिकृत और काल्पनिक है। कल्पना से बुद्धिकृत छोटे और बडे विभाग किये जाते हैं । वे सभी क्षण पर अवलवित हैं । क्षण ही वास्तविक है परन्तु वह मूल तत्त्व के रूप मे नही है । किसी भी मूल तत्त्व के परिणाम रूप मे वह सत्य है । जिस परिणाम का बुद्धि से विभाग न हो सके वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिणाम क्षण है । उस क्षण का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया है कि एक परमाणु को अपना क्षेत्र छोडकर दूसरा क्षेत्र प्राप्त करने मे जितना समय व्यतीत होता है उसे क्षण कहते हैं । यह क्रिया के अविभाज्य अश का सकेत है । योगदर्शन मे साख्यदर्शनसम्मत जड प्रकृति तत्त्व को ही क्रियाशील माना है । उसकी क्रियाशीलता स्वाभाविक है, अत उसे क्रिया करने मे अन्य तत्त्व की अपेक्षा नही है । उससे योगदर्शन और साख्यदर्शन क्रिया के निमित्त कारण रूप मे वैशेपिकदर्शन के समान काल तत्त्व को प्रकृति से भिन्न या स्वतन्त्र नही मानता ।[4]

उत्तरमीमासादर्शन, वेदान्तदर्शन और औपनिषदिक दर्शन के नाम से विश्रुत है । इस दर्शन के प्रणेता वादरायण ने कही भी अपने ग्रन्थ मे कालतत्त्व के सम्बन्ध मे वर्णन नही किया है, किन्तु प्रस्तुत दर्शन के समर्थ भाष्यकार आचार्य शकर ने मात्र ब्रह्म को ही मूल और स्वतन्त्र तत्त्व स्वीकार किया है—'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या ।' इस सिद्धान्त के अनुसार तो आकाश, परमाणु आदि किसी भी तत्त्व को स्वतन्त्र स्थान नही दिया गया है । यह स्मरण रखना चाहिये कि वेदान्तदर्शन के अन्य व्याख्याकार रामानुज, निम्बार्क, मध्व और वल्लभ आदि कितने ही मुख्य विषयो मे आचार्य शकर से अलग विचारधारा रखते हैं । उनकी पृथक् विचारधारा का केन्द्र आत्मा का स्वरूप, विश्व की सत्यता और असत्यता है। पर किसी ने भी कालतत्त्व को स्वतन्त्र नही माना है । इसमे सभी वेदान्तदर्शन के व्याख्याकार एक मत है। इस प्रकार साख्य, योग और उत्तरमीमांसा ये अस्वतन्त्र कालतत्त्ववादी हैं । जैनदर्शन मे जैसे काल तत्त्व के सम्बन्ध मे दो विचारधाराए हैं वैसे ही वैदिक दर्शन मे भी एक स्वतन्त्र कालतत्त्ववादी हैं तो दूसरे अस्वतन्त्र कालतत्त्ववादी है ।

---

१ पचाध्यायी २।१।२३

२ युक्तिस्नेहप्रपूरणी सिद्धान्तचन्द्रिका १।१।५।५

३ साख्यप्रवचन २।१२

४ (क) दर्शन अने चिन्तन, भाग २, पृष्ठ १०२८, प सुखलाल सघवी
(ख) योगदर्शन पा ३, सूत्र ५२ का भाष्य

बौद्धदर्शन मे काल केवल व्यवहार के लिये कल्पित है। काल कोई स्वभावसिद्ध पदार्थ नही है, प्रज्ञप्ति मात्र है[1] किन्तु अतीत, अनागत और वर्तमान आदि व्यवहार मुख्य काल के बिना नही हो सकते। जैसे कि बालक मे शेर का उपचार मुख्य शेर के सद्भाव मे ही होता है, वैसे ही सम्पूर्ण कालिक व्यवहार मुख्य कालद्रव्य के बिना नही हो सकते।

पौषध : एक चिन्तन

भगवतीसूत्र शतक १२ उद्देशक १ मे शख श्रावक का वर्णन है। यह श्रावस्ती का रहने वाला था तथा जीव आदि तत्त्वो का गम्भीर ज्ञाता था। उत्पला उसकी धर्मपत्नी थी। उसने भगवान् महावीर से अनेक जिज्ञासाए की। समाधान पाकर वह परम सतुष्ट हुआ। अन्य प्रमुख श्रावको के साथ वह श्रावस्ती की ओर लौट रहा था। उसने अन्य श्रमणोपासको से कहा कि भोजन तैयार करे और हम भोजन करके फिर पाक्षिक पौषध आदि करेगे। उसके पश्चात् शख श्रावक ने ब्रह्मचर्यपूर्वक चन्दनविलेपन आदि को छोडकर पौषधशाला मे पौषध स्वीकार किया। पौषध का अर्थ है अपने निकट रहना। पर-स्वरूप से हटकर स्व-स्वरूप मे स्थित होना। साधक दिन भर उपासनागृह मे अवस्थित होकर धर्मसाधना करता है। यह साधना दिन-रात की होती है। उस समय सभी प्रकार के अन्न-जल-मुखवास-मेवा आदि चारो प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है, काम-भोग का त्याग तथा रजत-स्वर्ण, मणि-मुक्ता आदि बहुमूल्य आभूषणो का त्याग, माल्य-गध धारण का त्याग, हिसक उपकरणो एव समस्त दोषपूर्ण प्रवृत्तियो का त्याग किया जाता है। जैन परम्परा मे इस व्रत की आराधना व्रती श्रमणोपासक प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को करता है। बौद्ध परम्परा मे भी गृहस्थ उपासक के लिये उपोसथ व्रत आवश्यक माना गया है। सुत्तनिपात मे लिखा है कि प्रत्येक पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी और प्रतिहार्य पक्ष को इस अष्टाग उपोसथ का श्रद्धापूर्वक सम्यक् रूप से पालन करना चाहिये।[2] सुत्तनिपात मे उपोसथ के नियम बतलाये हैं, जो इस प्रकार है—१ प्राणीवध न करे, २ चोरी न करे, ३ असत्य न बोले, ४ मादक द्रव्य का सेवन न करे, ५ मैथुन से विरत रहे, ६ रात्रि मे, विकाल मे भोजन न करे, ७ माल्य एव गध का सेवन न करे, ८. उच्च शय्या का परित्याग कर जमीन पर शयन करे। ये आठ नियम उपोसथ-शील कहे जाते है।[3] तुलनात्मक दृष्टि से जब हम इन नियमो का अध्ययन करते हैं तो दोनो ही परम्पराओ मे बहुत कुछ समानता है। जैन परम्परा मे भोजन सहित जो पौषध किया जाता है, उसे देशावकाशिक व्रत कहा है। बौद्ध परम्परा मे उपोसथ मे विकाल भोजन का परित्याग है जबकि जैन परम्परा मे सभी प्रकार के आहार न करने का विधान है। अन्य जो बाते है, वे प्राय समान है। पौषध व्रत के पीछे एक विचारदृष्टि रही है, वह यह कि गृहस्थ साधक जिसका जीवन अहर्निश प्रपञ्चो से घिरा हुआ है। वह कुछ समय निकाल कर धर्म-आराधना करे। ईसा मसीह ने दस आदेशो मे एक आदेश यह दिया है कि सात दिन मे एक दिन विश्राम लेकर पवित्र आचरण करना चाहिये,[4] सम्भव है यह आदेश एक दिन उपोसथ या पौषध की तरह ही रहा हो पर आज उसमे विकृति आ गई है। तथागत बुद्ध ने उपोसथ का आदर्श अर्हत्त्व की उपलब्धि बताया है। उन्होने अगुत्तरनिकाय मे स्पष्ट शब्दो मे कहा है—क्षीण आश्रव अर्हत् का यह कथन उचित है कि जो मेरे समान बनना चाहते हैं वे पक्ष की चतुर्दशी, पूर्णिमा, अष्टमी और प्रतिहार्य पक्ष को अष्टागशील

---

१. अट्ठशालिनी १।३।१६

२ सुत्तनिपात २६।२८

३ सुत्तनिपात २६।२५-२७

४ बाइबल ओल्ड टेस्टामेंट, निगमन २०

युक्त उपोसथ व्रत का आचरण करें।[1] पण्डित सुखलालजी सघवी का यह अभिमत था कि उपोसथ व्रत आजीवक सम्प्रदाय और वेदान्त परम्परा मे प्रकारान्तर से प्रचलित रहा है।[2] प्रस्तुत प्रकरण मे पौषध के दोनो रूप उजागर हुए हैं। एक खा-पी कर पौषध करने का और दूसरा बिना खाए-पीए ब्रह्मचर्य की आराधना-साधना करते हुए पौषध करने का।

विभज्यवाद : अनेकान्तवाद

भगवतीसूत्र शतक १२ उद्देशक २ मे जयन्ती श्रमणोपासिका का वर्णन है। उसके भवनो मे सन्त-भगवन्त ठहरा करते थे। इसलिए वह शय्यातर के रूप मे विश्रुत थी। जैनदर्शन का उसे गम्भीर परिज्ञान था। उसने भगवान् महावीर से जीवन सम्बन्धी गम्भीर प्रश्न किये। भगवान् महावीर ने उन प्रश्नो के उत्तर स्याद्वाद की भाषा मे प्रदान किये। सूत्रकृताग मे यह पूछा गया कि भिक्षु किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करे? इस प्रसग मे कहा गया है कि वह विभज्यवाद का प्रयोग करे।[3] विभज्यवाद क्या है, इसका समाधान जैन टीकाकारो ने लिखा है—स्याद्वाद या अनेकान्तवाद। नयवाद, अपेक्षावाद, पृथक्करण करके या विभाजन करके किसी तत्त्व का विवेचन करना। मज्झिमनिकाय मे शुभ माणवक के प्रश्न के उत्तर मे तथागत बुद्ध ने कहा—हे माणवक! मै यहाँ विभज्यवादी हूँ, एकाशवादी नही।[4] माणवक ने तथागत से पूछा था कि गृहस्थ ही आराधक होता है, प्रव्रजित आराधक नही होता, इस पर आपकी क्या सम्मति है? इस प्रश्न का उत्तर हाँ या ना मे न देकर बुद्ध ने कहा—गृहस्थ भी यदि मिथ्यात्वी है तो निर्वाणमार्ग का आराधक नहीं हो सकता। यदि त्यागी भी मिथ्यात्वी है तो वह भी आराधक नही है। वे दोनो यदि सम्यक् प्रतिपत्तिसम्पन्न हैं, तभी आराधक होते है। इस प्रकार के उत्तर देने के कारण ही तथागत अपने-आप को विभज्यवादी कहते थे। क्योकि यदि वे ऐसा कहते कि गहस्थ आराधक नही होता केवल त्यागी ही आराधक होता है तो उनका वह उत्तर एकाशवाद होता, पर उन्होने त्यागी या गृहस्थ की आराधना और अनाराधना का उत्तर विभाग कर के दिया इसलिए तथागत बुद्ध ने अपने-आप को विभज्यवादी कहा है। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि बुद्ध ने सभी प्रश्नो के उत्तर विभज्यवाद के आधार से नही दिये हैं। कुछ ही प्रश्नो के उत्तर उन्होने विभज्यवाद को आधार बनाकर दिये हैं। तथागत बुद्ध का विभज्यवाद बहुत ही सीमित क्षेत्र में रहा पर महावीर के विभज्यवाद का क्षेत्र बहुत ही व्यापक रहा। आगे चलकर बुद्ध का विभज्यवाद एकान्तवाद मे परिणत हो गया तो महावीर का विभज्यवाद व्यापक होता चला गया और वह अनेकान्तवाद के रूप में विकसित हुआ।[5] तथागत के विभज्यवाद की तरह महावीर का विभज्यवाद भगवती मे अनेक स्थलो पर आया है। जयन्ती के प्रश्नोत्तर विभज्यवाद के रूप को स्पष्ट करते है। अत यहाँ कुछ प्रश्नोत्तर दे रहे है—

जयन्ती—भंते! सोना अच्छा है या जागना?
महावीर—कितनेक जीवो का सोना अच्छा है और कितनेक जीवो का जागना अच्छा है।

---

१ अगुत्तरनिकाय ३/३७
२. दर्शन और चिन्तन, भाग-२, पृ. १०५
३ "भिक्खू विभज्जवाय च वियागरेज्जा।" —सूत्रकृताग १/१४/२२
४. दीघनिकाय ३३, सगितिपरियायसुत्त मे चार प्रश्नव्याकरण
५ आगमयुग का जैनदर्शन, पृ ५४, प दलसुख मालवणिया

जयती—इसका क्या कारण है ?

महावीर—जो जीव अधर्मी है, अधर्मानुगामी हैं, अधर्मिष्ठ हैं, अधर्माख्यायी हैं, अधर्मप्रलोकी हैं, अधर्मप्ररञ्जन हैं, वे सोते रहे यही अच्छा है। क्योकि जब वे सोते होगे तो अनेक जीवो को पीडा नही देगे। वे स्व, पर और उभय को अधार्मिक क्रिया मे नही लगायेगे। इसलिये उनका सोना श्रेष्ठ है। पर जो जीव धार्मिक है, धर्मानुगामी हैं, यावत्धार्मिकवृत्ति वाले हैं, उनका तो जागना ही अच्छा है। क्योकि वे अनेक जीवो को सुख देते है। वे स्व, पर और उभय को धार्मिक अनुष्ठानो मे लगाते हैं। अत. उनका जागना अच्छा है।

जयती—भन्ते ! बलवान् होना अच्छा या दुर्बल होना ?

महावीर—जयती ! कुछ जीवो का बलवान् होना अच्छा है तो कुछ जीवो का दुर्बल होना अच्छा है।

जयती—इसका क्या कारण है ?

महावीर—जो अधार्मिक है या अधार्मिकवृत्ति वाले है, उनका दुर्बल होना अच्छा है। वे यदि बलवान् होगे तो अनेक जीवो को दु ख देगे। जो धार्मिक है, धार्मिकवृत्ति वाले है, उनका सबल होना अच्छा है। वे सबल होकर अनेक जीवो को सुख पहुँचायेगे।

इस प्रकार अनेक प्रश्नो के उत्तर विभाग करके भगवान् ने प्रदान किये। विभज्यवाद का मूल आधार विभाग करके उत्तर देना है। दो विरोधी बातो का स्वीकार एक सामान्य मे करके उसी एक को विभक्त करके दोनो विभागो मे दो विरोधी धर्मों को सगत बताना यह विभज्यवाद का फलितार्थ है। यहाँ यह भी स्मरण रखना है कि दो विरोधी धर्म एक काल मे किसी एक व्यक्ति के नही बल्कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के हैं। भगवान् महावीर ने विभज्यवाद का क्षेत्र बहुत ही व्यापक बनाया। उन्होने अनेक विरोधी धर्मों को एक ही काल मे और एक ही व्यक्ति मे अपेक्षाभेद से घटाया, जिससे विभज्यवाद आगे चलकर अनेकान्तवाद के रूप मे विश्रुत हुआ। अनेकान्तवाद विभज्यवाद का विकसित रूप है। विभज्यवाद का मूलाधार है, जो विशेष व्यक्ति हो उन्ही मे, तिर्यक् सामान्य की अपेक्षा से विरोधी धर्म को स्वीकार करना। अनेकान्तवाद का मूलाधार है, तिर्यक् और ऊर्ध्वता दोनो प्रकार के सामान्य पर्यायो मे विरोधी धर्मों को अपेक्षाभेद से स्वीकार करना।

उदायन राजा

भगवतीसूत्र शतक १३ उद्देशक ६ मे राजा उदायन का वर्णन है। उदायन ने भगवान् महावीर के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व उसने अपने पुत्र अभीचि कुमार को राज्य इसलिये नही दिया कि यह राज्य के मोह मे मुग्ध होकर नरक आदि गतियो मे दारुण वेदना का अनुभव करेगा। उसने अपने भाणेज केशी कुमार को राज्य दिया। अभीचि कुमार के अन्तर्मानस मे पिता के इस कृत्य पर ग्लानि हुई। उसने अपना अपमान समझा। वह राज्य छोडकर चल दिया। राजा उदायन तप की आराधना कर मोक्ष गये। पर अभीचि कुमार श्रावक बनने पर भी शल्य से मुक्त नही हो सका, जिससे वह असुरकुमार देव बना। राजा उदायन का जीवन-प्रसग आवश्यकचूर्णि आदि मे विशेष रूप से आया है। उन्होने दीक्षा ग्रहण की और उत्कृष्ट तप की आराधना करने से, रूक्ष और नीरस आहार ग्रहण करने से शरीर मे व्याधि उत्पन्न हुई। वैद्य के परामर्श से उपचार हेतु वीतभय नगर के व्रज मे रहे, जहाँ दही सहज मे उपलब्ध था। दुष्ट मन्त्री ने राजा केशी को बताया कि भिक्षुजीवन से पीडित होकर ये राज्य के लोभ से यहाँ आये हैं और आपका राज्य छीन लेंगे। राज्यलोभी केशी राजा ने एक

ग्वाले को दही मे विष मिलाकर देने हेतु कहा। उसने वैसा ही किया। नगररक्षक देवो ने कुपित होकर धूल की भयकर वर्षा की जिससे सारा नगर धूल के नीचे दब गया।[1] राजा उदायन के सम्बन्ध मे धर्मकथानुयोग की प्रस्तावना मे विस्तार से लिखा है, अत. जिज्ञासु पाठकगण उसका अवलोकन करे।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय : चिन्तन

भगवती शतक १८ उद्देशक ७ मे मद्रुक श्रमणोपासक का वर्णन है। वह राजगृह नगर का निवासी था। राजगृह के बाहर गुणशील नामक एक चैत्य था। उसके सन्निकट ही कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शखपालक और सुहस्ती, अन्यतीर्थिक सद्गृहस्थ रहते थे। वे परस्पर यह चर्चा करने लगे कि भगवान् महावीर धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय इन पचास्तिकायो मे एक को जीव और शेष को अजीव मानते हैं। पुदगलास्तिकाय को रूपी और शेष को अरूपी मानते हैं। क्या इस प्रकार का कथन उचित है? यह बात उन्होने मद्रुक से कही। मद्रुक ने कहा—जो कोई वस्तु कार्य करती है, आप उसे कार्य के द्वारा जानते हैं। यदि वह वस्तु कार्य न करे तो आप उसे नही जान सकते। ठुमक-ठुमक कर पवन चल रहा है पर आप उसके रूप को नहीं देख सकते। गन्धयुक्त पुदगल की सौरभ हमे आती है पर हम उस गन्ध को देखते कहाँ है? अरणि की लकडी मे अग्नि होने पर भी हम नही देखते। समुद्र के परले किनारे पदार्थ पडे हुए हैं पर हम उन्हे देख नही पाते। यदि उन वस्तुओ को कोई नही देखता है तो वस्तु का अभाव नही हो जाता, वैसे ही आप जिन वस्तुओ को नही देखते, उनका अस्तित्व नही है, यह कहना उचित नही है। मद्रुक के अकाट्य तर्कों मे अन्यतीर्थिक विस्मित हुए। मद्रुक ने भी भगवान् के चरणो मे पहुँचकर श्रमणधर्म को स्वीकार किया और अपने जीवन को पावन बनाया।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि का निरूपण भारत के अन्य दार्शनिक साहित्य मे नही हुआ है। यह जैनदर्शन की मौलिक देन है। जहाँ अन्य दर्शनो मे धर्म और अधर्म शब्द का प्रयोग शुभ और अशुभ प्रवृत्तियो के अर्थ मे किया गया है, वहाँ जैनदर्शन मे वह गतिसहायक तत्त्व और स्थिति सहायक तत्त्व के अर्थ मे भी व्यवहृत है। धर्म एक द्रव्य है। वह समग्र लोक मे व्याप्त है, शाश्वत है। वर्ण, गध, रस और स्पर्श से रहित है। वह जीव और पुद्गल की गति मे सहायक है। यहाँ तक कि जीवो का आगमन, गमन, वार्तालाप, उन्मेष, मानसिक, वाचिक और कायिक आदि जितनी भी स्पन्दनात्मक प्रवृत्तियाँ है, वे धर्मास्तिकाय से ही होती है। उसके असख्य प्रदेश हैं। वह नित्य व अनित्य है, अवस्थित है और अरूपी है। नित्य का अर्थ तद्भावाव्यय है, गति क्रिया मे सहायता देने रूप भाव से कदापि च्युत न होना धर्म का तद्भावाव्यय कहलाता है। अवस्थिति का अर्थ है—जितने असख्य प्रदेश हैं, उन प्रदेशो का कम और ज्यादा न होना किन्तु हमेशा असख्यात ही बने रहना। वर्ण, गध, रस आदि का अभाव होने से धर्मास्तिकाय अरूपी है। धर्मास्तिकाय पूरा एक द्रव्य है। वह जीव आदि के समान पृथक् रूप से नही रहता, अपितु अखण्ड द्रव्य के रूप मे रहता है एव सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त है। लोक मे ऐसा कोई भी स्थान नही जहाँ पर धर्म द्रव्य का अभाव हो। सम्पूर्ण लोकव्यापी होने से उसे अन्य स्थान पर जाने की आवश्यकता नही होती।

गति का तात्पर्य है—एक स्थान से दूसरे स्थान मे जाने की क्रिया। धर्मास्तिकाय गति क्रिया मे सहायक है। जिस प्रकार मछली स्वय तैरती है, पर उसकी गति मे पानी सहायक होता है। तैरने की शक्ति

---

१ आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ५३७ से ५३८

होने पर भी पानी के अभाव मे मछली तैर नही सकती। जब मछली तैरना चाहती है तभी उसे पानी की सहायता लेनी पडती है। वैसे ही जीव और पुद्गल जब गति करता है, तभी धर्मास्तिकाय या धर्म द्रव्य की सहायता ली जाती है। जीव और पुद्गल मे गति और स्थिति ये दोनो क्रियाए सहज रूप मे होती हैं। इनका स्वभाव न केवल गति करना और न केवल स्थिति करना ही है। किसी समय किसी मे गति होती है तो किसी समय किसी मे स्थिति होती है। धर्म और अधर्म को मानना इसलिये आवश्यक है कि वह गति और स्थिति मे निमित्त द्रव्य है। उसी से लोक और अलोक का विभाजन होता है। गति और स्थिति का उपादान-कारण जीव और पुद्गल स्वय है और निमित्तकारण धर्म और अधर्म द्रव्य है।

भगवतीसूत्र शतक १३ उद्देशक ४ मे गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! गतिसहायक तत्त्व से जीवो को क्या लाभ होता है? भगवान् ने समाधान दिया कि—गौतम! गति का सहायक नही होता तो कौन आता और कौन जाता? शब्द की तरगें किस प्रकार फैलती है? आंख किस प्रकार खुलती है? कौन मनन करता है? कौन बोलता है? कौन हिलता, डोलता है? यह विश्व अचल ही होता। जो चल है उन सब का आलम्बन तत्त्व गतिसहायक तत्त्व ही है। गणधर गौतम ने पुन जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! स्थिति का सहायक तत्त्व (अधर्मास्तिकाय) से जीवो को क्या लाभ होता है? भगवान् ने समाधान करते हुए कहा—गौतम! स्थिति का सहायक नही होता तो कौन खडा होता, कौन बैठता? किस प्रकार मे सो सकता? कौन मन को एकाग्र करता? कौन मौन करता? कौन निष्पद बनता? निमेष कैसे होता? यह विश्व चल ही होता। जो स्थिर है उस सबका आलम्बन स्थितिसहायक तत्त्व ही है।

अन्य भारतीय एव पाश्चात्य दर्शनो में गति को तो यथार्थ माना गया है किन्तु गति के माध्यम के रूप मे 'धर्म' जैसे किसी विशेष तत्त्व की आवश्यकता अनुभव नही की गई। आधुनिक भौतिक विज्ञान ने 'ईथर' के रूप मे गति-सहायक एक ऐसा तत्त्व माना है जिसका कार्य धर्म द्रव्य से मिलता-जुलता है। ईथर आधुनिक भौतिक विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शोध है। ईथर के सम्बन्ध मे भौतिकविज्ञानवेत्ता डा ए एस एडिग्टन लिखते हैं—आज यह स्वीकार कर लिया गया है कि ईथर भौतिक द्रव्य नही है, भौतिक की अपेक्षा उसकी प्रकृति भिन्न है, भूत मे प्राप्त पिण्डत्व और घनत्व गुणो का ईथर मे अभाव होगा परन्तु उसके अपने नये और निश्चयात्मक गुण होगे ईथर का अभौतिक सागर।

अलबर्ट आइन्सटीन के अपेक्षावाद के सिद्धान्तानुसार 'ईथर' अभौतिक, अपरिमाणविक, अविभाज्य, अखण्ड, आकाश के समान व्यापक, अरूप, गति का अनिवार्य माध्यम और अपने आप मे स्थिर है।

धर्मद्रव्य और ईथर पर तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन करते हुए प्रोफेसर जी. आर जैन लिखते हैं कि यह प्रमाणित हो गया है कि जैन दर्शनकार व आधुनिक वैज्ञानिक यहाँ तक एक है कि धर्मद्रव्य या ईथर अभौतिक, अपरिमाणविक, अविभाज्य, अखण्ड, आकाश के समान व्यापक, अरूप, गति का माध्यम और अपने-आप मे स्थिर है।

धर्म और अधर्म के विना लोक की व्यवस्था नही होती। गति-स्थिति निमित्तक द्रव्य से लोक-अलोक का विभाजन होता है। प्रत्येक कार्य के लिए उपादान और निमित्त दोनो कारणो की आवश्यकता है। जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य गतिशील हैं। गति के उपादानकारण जीव और पुद्गल स्वय हैं। धर्म, अधर्म ये दोनो गति और स्थिति मे सहायक हैं। इसलिए निमित्तकारण है। हवा स्वय गतिशील है। पृथ्वी, पानी

आदि सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त नहीं है पर गति और स्थिति सम्पूर्ण लोक मे होती है। अत. धर्म-अधर्म की सहज आवश्यकता है। यह सत्य है कि लोक है, क्योकि वह ज्ञान गोचर है। पर अलोक इन्द्रियातीत है। यह सहज जिज्ञासा हो सकती है कि अलोक है या नही ? पर जब हम लोक का अस्तित्व स्वीकार करते हैं तो सहज ही अलोक का अस्तित्व भी स्वीकार हो जाता है। जिसमे धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव, पुद्गल, आदि सभी द्रव्य होते हैं वह लोक है। इसके विपरीत अलोक मे केवल आकाश द्रव्य ही है। धम और अधर्म द्रव्य के अभाव मे अलोक मे जीव और पुद्गल भी नही हैं। काल की तो वहाँ अवस्थिति है ही नही।

प्रस्तुत प्रसग से यह सहज परिज्ञात होता है कि महावीर यग मे भगवान् महावीर के श्रमणोपासक तत्त्वविद् थे। वे अन्य तीर्थिको को जैनदर्शन के गुरु-गम्भीर रहस्यो को समझाने मे समर्थ थ। आज भी आवश्यकता है कि श्रमणोपासक श्रावक तत्त्वविद् बनें। जैनदर्शन के गम्भीर रहस्यो का अध्ययन कर स्वय के जीवन को महान् बनाएँ तथा अन्य दार्शनिको को भी जैनदर्शन का सही एव विशुद्ध रूप बतायें।

पाप और उसका फल

भगवतीसूत्र शतक ७ उद्देशक १० मे कालोदाई अन्यतीर्थिक ने गणधर गौतम से जिज्ञासा व्यक्त की थी। वही कालोदाई जब भगवान् के समोसरण मे पहुँचा तो भगवान् महावीर ने पञ्चास्तिकाय का विस्तार से निरूपण कर उसके सशय को नष्ट किया। कालोदाई, स्कन्धक की भाँति श्रमण भगवान् महावीर के पास प्रव्रजित होते है। ग्यारह अगो का अध्ययन कर जीवन की साध्यवेला मे सथारा कर मुक्त होते है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कालोदाई ने भगवान् महावीर से यह भी जिज्ञासा प्रस्तुत की थी कि पाप कम अशुभ फल वाला क्यो है ? भगवान् महावीर ने समाधान दिया था कि कोई व्यक्ति सुन्दर सुसज्जित थाली मे १८ प्रकार के शाक आदि से युक्त विष-मिश्रित भोजन करता है। वह विष-मिश्रित भोजन प्रारम्भ मे सुस्वादु होने के कारण अच्छा लगता है पर उसका परिणाम ठीक नही होता। वैसे ही पाप कर्म का प्रारम्भ अच्छा लगता है परन्तु उसका परिणाम अच्छा नही होता। दूसरा व्यक्ति विविध प्रकार की औषधियो से युक्त भोजन करता है। औषधियो के कारण वह भोजन कटु होता है पर वह भोजन स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है। वैसे ही शुभ कर्म प्रारम्भ मे कठिन होते हैं पर उसका फल श्रेयस्कर होता है। इस प्रकार इस कथानक मे जीवन के लिए चिन्तनीय सामग्री प्रस्तुत की गई है।

सोमिल ब्राह्मण के विचित्र प्रश्न

भगवतीसूत्र शतक १८ उद्देशक १० मे सोमिल ब्राह्मण का वर्णन है। वह वैदिक परम्परा का महान् ज्ञाता था। उसके अन्तर्मानस मे जिगीषु वृत्ति पनप रही थी। वह चाहता था कि मै शब्दजाल मे भगवान् महावीर को उलझा कर निरुत्तर कर दूँ। इसी भावना से उसने भगवान् महावीर के सामने अपने प्रश्न प्रस्तुत किए—"क्या आप यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार करते हैं ? आपकी यात्रा आदि क्या है ?" उत्तर मे भगवान् महावीर ने कहा—तप, यम, सयम, स्वाध्याय और ध्यान आदि मे रमण करता हूँ, यही मेरी यात्रा है। यापनीय के दो प्रकार हैं—इन्द्रिययापनीय, नोइन्द्रिययापनीय। पाचो इन्द्रियाँ मेरे आधीन है और क्रोध, मान आदि कषाय मैने विच्छिन्न कर दिए है, इसलिए वे उदय मे नही आते। इसलिए मै इन्द्रिय और नो-इन्द्रिययापनीय हूँ। वात, पित्त, कफ, ये शरीर सम्बन्धी दोष मेरे उपशान्त है, वे उदय मे नही आते। इसलिए मुझे अव्याबाध भी है। मै आराम, उद्यान, देवकुल, सभास्थल, प्रभृति स्थलो पर जहाँ स्त्री, पशु और

नपु सक का अभाव हो, ऐसे निर्दोष स्थान पर आज्ञा ग्रहण कर विहार करता हूँ, यह मेरा प्रासुक (निर्दोष) विहार है।

सोमिल ने पुन पूछा—'सरिसवया' भक्ष्य हैं या अभक्ष्य ?

भगवान् महावीर ने समाधान दिया—सरिसवया शब्द के दो अर्थ है— सदृशवयससमवयस्क तथा दूसरा सरसो। सदृशवय के तीन प्रकार हैं—एक साथ जन्मे हुए, एक साथ पालित-पोषित हुए और एक साथ क्रीडा किए हुए। ये तीनो श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य हैं और धान्य सरिसव भी दो प्रकार के हैं—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत, शस्त्रपरिणत भी दो प्रकार के हैं—एषणीय और अनेषणीय। अनेषणीय अभक्ष्य हैं। एषणीय भी याचित और अयाचित रूप से दो प्रकार के हैं। याचित भक्ष्य हैं और अयाचित अभक्ष्य हैं।

सोमिल ने पुन शब्दजाल फैलाते हुए कहा—'मास' भक्ष्य है या अभक्ष्य है ? भगवान ने समाधान की भाषा मे कहा—मास याने महीना, और माष याने सोना-चाँदी आदि तोलने का माप। ये दोनो अभक्ष्य हैं कौर माष यानी उडद, जो शस्त्रपरिणत हो, याचित हो, वे श्रमण के लिए भक्ष्य हैं।

सोमिल ने पुन पूछा—'कुलत्था' भक्ष्य है या अभक्ष्य है ? भगवान् ने फरमाया—कुलत्था शब्द के भी दो अर्थ हैं—एक कुलीन स्त्री (कुलस्था) और दूसरा अर्थ है धान्यविशेष (कुलत्थ)। जो धान्यविशेष कुलत्था है वह शस्त्रपरिणत एव याचित है तो भक्ष्य है। कुलीन स्त्री अभक्ष्य है।

सोमिल ने देखा कि महावीर शब्द-जाल मे फँस नही रहे हैं, अत उसने एकता और अनेकता का प्रश्न उपस्थित किया कि आप एक हैं या दो हैं ? अक्षय हैं, अव्यय है, अवस्थित है, अतीत, वर्तमान और भविष्य मे परिणमन के योग्य हैं ? भगवान् महावीर ने एकता और अनेकता का समन्वय करते हुए अनेकान्त दृष्टि से कहा—सोमिल ! मैं द्रव्यदृष्टि से एक हूँ। ज्ञान और दर्शन रूप दो पर्यायो के प्राधान्य से दो भी हूँ। सोमिल ! उपयोग स्वभाव की दृष्टि से मैं अनेक हूँ। इस प्रकार अपेक्षा भेद से एकत्व और अनेकत्व का समन्वय कर सोमिल को विस्मित कर दिया। वह चरणो मे झुक पडा तथा श्रावक के १२ व्रतो को ग्रहण कर भगवान् महावीर का अनुयायी बना।

इस कथाप्रसग से भगवान् महावीर की सर्वज्ञता का स्पष्ट निदर्शन होता है। आगमयुग की अनेकान्त दृष्टि भी इसमे स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। तीसरी बात इसमे 'मास' शब्द का प्रयोग हुआ है जो महीने के अर्थ मे है। वह श्रावण महीने से प्रारम्भ होकर आषाढ पूर्णिमा मे समाप्त होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि श्रावण प्रथम मास था और आषाढ वर्ष का अन्तिम मास था। प्रस्तुत प्रसग मे 'जवनिज्ज-यापनीय' शब्द का प्रयोग हुआ है। दिगम्बरपरम्परा मे यापनीय नामक एक सघ है जिसके प्रमुख आचार्य शाकटायन थे। मूर्धन्य मनीषियो को इस सम्बन्ध मे अन्वेषणा करनी चाहिए कि क्या यापनीय सघ का सम्बन्ध 'जवनिज्ज' से था ? पण्डित बेचरदासजी दोशी ने लिखा है कि "जवनिज्ज" का यमनीय रूप अधिक अर्थयुक्त एव सगत है, जिसका सम्बन्ध पाच यमो के साथ स्थापित होता है। यापनीय शब्द से इस प्रकार का अर्थ नही निकलता, यद्यपि 'जवनिज्ज' शब्द वर्तमान युग मे नया और अपरिचित-सा लग रहा है पर खारवेल के शिलालेख मे 'जवनिज्ज' शब्द का प्रयोग हुआ है जो इस शब्द की प्राचीनता और प्रचलितता को अभिव्यक्त करता है।[1]

---

१. जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग पहला, पृष्ठ २११

मुनि अतिमुक्तकुमार

भगवतीसूत्र शतक ५, उद्देशक ४ मे अतिमुक्तकुमार श्रमण का उल्लेख है । जैन साहित्य मे अतिमुक्त-कुमार नामक दो श्रमण हुए हैं—एक भगवान् अरिष्टनेमि के युग मे, जो कंस के लघुभ्राता थे, दूसरे अतिमुक्त-कुमार भगवान् महावीर के युग मे हुए हैं, जिनका उल्लेख अन्तकृद्दशाग मे है। आचार्य अभयदेव के अनुसार अतिमुक्तकुमार ने भगवान् महावीर के पास छह[1] वर्ष की उम्र मे प्रव्रज्या ग्रहण की थी। सामान्य नियम है कि आठ वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को प्रव्रज्या न दी जावे।[2]

अतिमुक्तकुमार भगवान् महावीर के शासन मे सबसे लघु श्रमण थे। भगवान् महावीर ने अतिमुक्त-कुमार के आयुष्य को नहीं पर उनमे रही हुई तेजस्विता को निहारा था, बालक मे भी सहज प्रतिभा रही हुई होती है। वह भी अपना उत्कर्ष कर सकता है यह प्रस्तुत कथानक से स्पष्ट है। प्रस्तुत आगम मे बालमुनि अतिमुक्तकुमार ने पानी मे पात्र तिराया यह भी उल्लेख है जो उनके सरल जीवन का प्रमाण है। नौका के माध्यम से वे उस समय अपनी जीवन-नौका को तिराने की कमनीय कल्पना किए हुए थे।

आत्मविकास का बाधक : मोह

भगवतीसूत्र शतक १४, उद्देशक ७ मे गणधर गौतम का एक सुनहरा प्रसग है। गणधर गौतम अपने सामने ही प्रव्रजित मुनियो को मुक्त होते और केवलज्ञान प्राप्त करते हुए देखकर विचार मे पड गए कि मैं अभी तक मुक्त क्यो नही बना हूँ ! मुझे केवलज्ञान—केवलदर्शन प्राप्त क्यो नही हुआ है ! जब उनका विचार चिन्ता मे परिवर्तित हो गया तब भगवान् महावीर ने रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा— वत्स ! तेरा जो स्नेह मेरे प्रति है वही इसमे बाधक हो रहा है। प्रसग मे यह भी बताया है कि मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध आज का नही बहुत पुराना है। प्राचीन टीकाकारो ने बताया, भगवान् महावीर का जीव जब मरीचि के रूप मे था तब गौतम का जीव उनका शिष्य कपिल था। भगवान् महावीर का जीव जब त्रिपृष्ट वासुदेव था तब गौतम का जीव उनका सारथी था। इस प्रकार भगवान् ऋषभदेव के युग से लेकर महावीर युग तक गणधर गौतम के जीवन का महावीर के साथ सम्बन्ध रहा है। प्रस्तुत प्रसग मे यह बात स्पष्ट है कि जरा-सा मोह भी मोहन (भगवान्) बनने मे अन्तरायभूत होता है।

भगवतीसूत्र शतक ७, उद्देशक ९ मे भगवान् महावीर के युग मे हुए महाशिलाकटक सग्राम का उल्लेख है। युद्ध का लोमहर्षक वर्णन पढकर लगता है कि आधुनिक वैज्ञानिक साधनो की तरह उस युग मे भी तीक्ष्ण और सहारकारी साधन थे। इस युद्ध का, जिसे जैनपरम्परा मे महाशिलाकटक युद्ध कहा है तो बौद्ध साहित्य के दीघनिकाय की महापरिनिव्वाणसुत्त तथा उसकी अट्ठकथा मे वज्जीविजय नाम से वर्णन मिलता है। यह सत्य है कि जैन और बौद्ध परम्परा मे युद्ध के कारण युद्ध की प्रक्रिया और युद्ध की निष्पत्ति आदि भिन्न-भिन्न मिलती है तथापि दोनो का सार यही है कि वैशाली, जो गणतन्त्र की राजधानी थी, उस पर राजतन्त्र की राजधानी मगध की ऐतिहासिक विजय हुई थी। जैनपरम्परा मे चेटक सम्राट् लिच्छिवियो के नायक है तो बौद्धपरम्परा

---

१ (१) छ०वरिसो पव्वइयो—भगवती टीका ५-३
(२) अन्तकृद्दशाग, ६-१४

२. "कुमारसमणे" त्ति षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात्, आह च—"छव्वरिसो पव्वइओ निग्गथ रोइऊण पावयण" त्ति, एतदेव आश्चर्यमिह अन्यथा वर्षाष्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति।

—भगवती सटीक प्र भाग, श ५, उद्दे. ४, सूत्र १८८, पत्र २१९-२

केवल वज्जीसघ (लिच्छवी सघ) को प्रस्तुत करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से राजा कूणिक की ३३ करोड सेना और सम्राट् चेटक की ५९ करोड सेना आदि का जो वर्णन है वह चिन्तनीय है। इस सख्या के सम्बन्ध मे मनीषीगण अपना मौलिक चिन्तन और समाधान प्रस्तुत करे, यह अपेक्षित है। मैंने प्रस्तुत प्रसग को बहुत ही विस्तार के साथ धर्मकथानुयोग की प्रस्तावना मे लिखा है। जिज्ञासु पाठक उसका अवलोकन करे। वैदिक परम्परा मे देवासुरसग्राम का जैसा उल्लेख और वर्णन है, वह वर्णन प्रस्तुत आगम के महाशिलाकटक और रथ-मूसल सग्राम को पढते हुए स्मरण हो आता है।

देवानन्दा ब्राह्मणी

भगवतीसूत्र शतक ५, उद्देशक ३३ मे देवानन्दा ब्राह्मणी का उल्लेख है। भगवान् महावीर एक बार ब्राह्मणकुण्ड ग्राम मे पधारे। वहाँ ऋषभदत्त अपनी पत्नी देवानन्दा के साथ दर्शन के लिए पहुँचा। देवानन्दा महावीर को देखकर रोमाञ्चित हो जाती है। उसका वक्ष उभरने लगता है एव आँखो से हर्ष के आँसू उमडने लगते हैं। उसकी कचुकी टूटने लगी और स्तनो से दूध की धारा प्रवाहित होने लगी।

गणधर गौतम ने जिज्ञासा व्यक्त की कि देवानन्दा ब्राह्मणी इतनी रोमाञ्चित क्यो हुई है ? उसके स्तनो से दूध की धारा क्यो प्रवाहित हुई है ?

भगवान् महावीर ने कहा—देवानन्दा मेरी माता है। पुत्रस्नेह के कारण ही यह रोमाञ्चित हुई है। भगवान् महावीर ने गर्भ-परिवर्तन की अज्ञात घटना बताई। ऋषभदत्त और देवानन्दा के हर्ष का पार नही रहा। उन्होने प्रव्रज्या ग्रहण की। गर्भ-परिवर्तन की घटना को जैनपरम्परा मे एक आश्चर्य के रूप मे लिया है। आचाराग,[1] समवायाग,[2] स्थानाग,[3] आवश्यकनिर्युक्ति,[4] प्रभृति मे स्पष्ट वर्णन है कि श्रमण भगवान् महावीर ८२ रात्रि दिवस व्यतीत होने पर एक गर्भ से दूसरे गर्भ मे ले जाए गए। जैनागमो की तरह वैदिकपरम्परा के ग्रन्थो में भी गर्भपरिवर्तन का वर्णन प्राप्त है। जब कस वसुदेव की सन्तानो को समाप्त कर देता था तब विश्वात्मा ने योगमाया को यह आदेश दिया कि वह देवकी का गर्भ रोहिणी के उदर मे रखे। विश्वात्मा के आदेश व निर्देश से योगमाया देवकी का गर्भ रोहिणी के उदर मे रख देती है। तब पुरवासी अत्यन्त दु ख के साथ कहने लगे—हाय ! देवकी का गर्भ नष्ट हो गया।[5] आधुनिक युग मे वैज्ञानिको ने अनेक स्थानो पर परीक्षण करके यह प्रमाणित कर दिया है कि गर्भपरिवर्तन असभव नहीं है।

जमाली

भगवतीसूत्र शतक ९, उद्देशक ३३ मे जमाली और प्रियदर्शना का वर्णन है। विशेषावश्यकभाष्य के अनुसार जमाली महावीर की बहिन सुदर्शना का पुत्र था, अत उनका भानेज था और महावीर की पुत्री प्रियदर्शना का पति था। इस कारण उनका जामाता भी था। जब भगवान् महावीर क्षत्रियकुण्ड नगर मे पधारे तब भगवान् महावीर के पावन प्रवचन को श्रवण कर जमाली अन्य ५०० क्षत्रिय कुमारो के साथ महावीर के सघ मे दीक्षित हुए

---

१ आचारांग द्वि श्रुतस्कन्ध, पन्ना ३८८-१-२

२. समवायाग ८३, पत्र ८३-२

३ स्थानागसूत्र ४११ स्था ५, पन्ना ३०९

४. आवश्यकनिर्युक्ति पृष्ठ ८० से ८३

५. गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणी योगनिद्रया ।
अहो विस्र सितो गर्भ इति पौरा विचक्रुशु ॥१५॥ श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, पृष्ठ १२२-१२३

और जमाली की पत्नी प्रियदर्शना भी एक सहस्र स्त्रियों के साथ दीक्षित हुई। जमाली के विरोधी होने का इतिहास प्रस्तुत प्रकरण मे दिया गया है।

एक बार जमाली भगवान् महावीर की बिना अनुमति प्राप्त किए ही ५०० श्रमणों के साथ पृथक् प्रस्थान कर गए। उग्र तप एव नीरस आहार से उनके शरीर में पित्तज्वर हो गया। वे पीडा से आकुल-व्याकुल हो रहे थे। उन्होने अपने सहवर्ती श्रमणो को शय्या-सस्तारक करने का आदेश दिया। पीडा के कारण एक क्षण का विलम्ब भी उन्हे सह्य नही था। उन्होने पूछा—शय्या-सस्तारक कर दिया है? साधुओ ने निवेदन किया—जी हाँ, कर दिया है। जमाली सोचने लगे कि भगवान् महावीर क्रियमाण को कृत, चलमान को चलित कहते हैं जो गलत है। जब तक शय्या-सस्तारक पूरा विछ नही जाता जब तक उसे विछा हुआ कैसे कहा जा सकता है? उन्होने अपने विचार श्रमणो के सामने प्रस्तुत किए। कुछ श्रमणो ने उनकी बात को स्वीकार किया और कुछ ने स्वीकार नही किया। जिन्होने स्वीकार किया, वे उनके साथ रहे और जिन्होने स्वीकार नही किया, वे भगवान् महावीर के पास लौट आए। जब जमाली स्वस्थ हुए तब वे भगवान् महावीर के पास पहुँचे और कहने लगे—आपके अनेक शिष्य छद्मस्थ है, केवलज्ञानी नही। पर मै तो केवलज्ञान-दर्शन से युक्त अर्हत् जिन और केवली के रूप मे विचरण कर रहा हूँ। गणधर गौतम ने जमाली का प्रतिवाद किया। उन्होने पूछा कि यदि आप केवलज्ञानी हैं तो बताएँ कि लोक शाश्वत है या अशाश्वत? जीव शाश्वत है या अशाश्वत? जमाली गौतम के प्रश्नो का उत्तर नही द सके। तब भगवान् महावीर ने कहा—जमाली! मेरे अनेक शिष्य इन प्रश्नो का समाधान कर सकते है, तथापि वे अपने-आपको जिन व केवली नही कहते हैं। जमाली के पास इसका कोई उत्तर नही था, वर्षों तक असत्य प्ररूपणा करते रहे। अन्त मे अनशन किया पर पाप की आलोचना नही की। जिससे वे लान्तक देवलोक मे किल्विषिक देव के रूप मे उत्पन्न हुए। विशेषावश्यकभाष्य[1] मे वर्णन है कि जमाली की विद्यमानता मे ही प्रियदर्शना भी जमाली की विचारधारा मे प्रवाहित हो गई थी और महावीर सघ को छोडकर जमाली के सघ मे मिल गई थी। एकदा अपने साध्वीपरिवार के साथ श्रावस्ती मे ढक कुभकार की शाला मे ठहरी। ढक महावीर का परम भक्त था। उसने प्रियदर्शना को प्रतिबोध देने के लिए उसकी साडी मे आग लगा दी। साडी जलने लगी। प्रियदर्शना के मुँह से शब्द निकले "सघाटी जल गई"। ढक ने कहा—आप मिथ्या सभाषण कर रही हैं। सघाटी जली नही जल रही है। प्रियदर्शना प्रबुद्ध हुई। उसे अपनी भूल परिज्ञात हुई। भूल का प्रायश्चित्त कर वह पुन साध्वीसमूह के साथ महावीर के साध्वी परिवार मे सम्मिलित हो गई।

भगवतीसूत्र शतक १५ मे गोशालक का ऐतिहासिक निरूपण हुआ है। गोशालक भगवान् महावीर की छद्मस्थ अवस्था मे ही भगवान् महावीर की तप पून साधना को निहारकर उनका शिष्य बनने के लिए लालायित था। उसने भगवान् महावीर से शिष्य बनाने की प्रार्थना की और चिरकाल तक भगवान् के साथ रहा भी। इसका सविस्तृत वर्णन प्रस्तुत प्रकरण मे आया है। गोशालक मख कर्म करने वाले मखली नामक व्यक्ति का पुत्र था। "गोसाले मखलीपुत्ते" शब्द का प्रयोग भगवती, उपासकदशाग आदि आगमो मे अनेक स्थलो पर हुआ है। मख का अर्थ कही पर चित्रकार[2] और कही पर चित्रविक्रेता[3] मिलता है। आचार्य अभयदेव ने अपनी टीका मे लिखा है "चित्रफलक हस्ते गत यस्य स तथा" अर्थात् जो चित्रपट्टक हाथ मे रखकर आजीविका

१. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा २३२४ से २३३२

2 Indological Studies, Vol II, Page 254

3 Dictionary of Pali Proper Names Vol. II, Page 400

करता है। मख नाम की एक जाति थी। उस जाति के लोग पट्टक हाथ मे रखकर अपनी आजीविका चलाते थे। जैसे आज डाकोत लोग शनिदेव की मूर्ति या चित्र हाथ मे रख कर अपनी जीविका चलाते हैं।

धम्मपद अट्ठकथा,[1] मज्झिमनिकाय[2] अट्ठकथा मे मखलि गोशालक के सबध मे प्रकाश डालते हुए उसका नामकरण किस तरह से हुआ, इस पर एक कथा दी है। उनके मतानुसार गोशालक दास था। एक बार वह तैल-पात्र लेकर अपने स्वामी के आगे-आगे चल रहा था - फिसलन की भूमि आई। स्वामी ने उसे कहा—'तात ! मा खलि तात ! मा खलि'—अरे स्खलित मत होना। पर गोशालक स्खलित हो गया और सारा तेल जमीन पर फैल गया। स्वामी के भय से भीत बनकर वह भागने का प्रयास करने लगा। स्वामी ने उसका वस्त्र पकड लिया। वह उस वस्त्र को छोडकर नगा ही वहाँ से चल दिया। इस प्रकार वह नग्न साधु हो गया और मखलि के नाम से विश्रुत हुआ।

प्रस्तुत कथानक एक किवदन्ती की तरह ही है और यह बहुत ही उत्तरकालिक है, इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से चिन्तनीय है।

आचार्य पाणिनि ने मस्करी शब्द का अर्थ परिव्राजक किया है।[3] आचार्य पतञ्जलि ने पातञ्जल महाभाष्य मे लिखा है- मस्करी वह साधु नही है जो अपने हाथ मे मस्कर या बास की लाठी लेकर चलता है। मस्करी वह है जो उपदेश देता है—कर्म मत करो, शान्ति का मार्ग ही श्रेयस्कर है।[4] आचार्य पाणिनि और आचार्य पतञ्जलि के अनुसार गोशालक परिव्राजक था और 'कर्म मत करो' इस मत की सस्थापना करने वाली सस्था का सस्थापक था। जैनसाहित्य की दृष्टि से वह मखली का पुत्र था और गोशाला मे उसका जन्म हुआ था। इस तथ्य की प्रामाणिकता पाणिनि[5] और आचार्य बुद्धघोष[6] के द्वारा भी होती है। जैन आगम मे गोशालक को आजीविक लिखा है तो त्रिपिटक साहित्य मे आजीवक लिखा है। आजीविक तथा आजीवक इन दोनो शब्दो का अभिप्राय है आजीविका के लिए तपश्चर्या आदि करने वाला। गोशालक मत की दृष्टि से इस शब्द का क्या अर्थ उस समय व्यवहृत था, उसको जानने के लिये हमारे पास कोई ग्रन्थ नही है। जैन और बौद्ध साहित्य की दृष्टि से गोशालक के भिक्षाचरी आदि के नियम कठोर थे।[7]

जैन और बौद्ध दोनो परम्पराओ के ग्रन्थो के आधार से यह सिद्ध है कि गोशालक नग्न रहता था तथा उसकी भिक्षाचरी कठिन थी। आजीविक परम्परा के साधु कुछ एक दो घरो के अन्तर से, कुछ एक तीन घरो के अन्तर से यावत् सात घरो के अन्तर से भिक्षा ग्रहण करते थे।[8] भगवतीसूत्र शतक ८ उद्देशक ५ मे आजीविक उपासको के आचार-विचार का वर्णन इस प्रकार प्राप्त है— वे गोशालक को अरिहन्त मानते है। माता-पिता की शुश्रूषा करते हैं। गूलर, बड, बोर, अञ्जीर, पिलखु इन पाच प्रकार के फलो का भक्षण नही करते। प्याज, लहसुन

---

१. धम्मपद अट्ठकथा, आचार्य बुद्धघोष १-१४३
२ मज्झिमनिकाय अट्ठकथा, आचार्य बुद्धघोष १-४२२
३ मस्कर मस्करिणौ वेणु परिव्राजकयो । —पाणिनिव्याकरण ६-१-१५४
४. न वै मस्करोऽस्यास्तीति मस्करी परिव्राजक । कि तर्हि । मा कृत कर्माणि मा कृत कर्माणि शान्तिर्व श्रेयसीत्याहतो मस्करी परिव्राजक । — पातञ्जलमहाभाष्य ६-१-१५४
५ गोशालाया जात गौशाल। ४-३-३५
६ सुमगल विलासनी दीघनिकाय अट्ठकथा, पृष्ठ १४३-१४४
७ महासच्चक सुत्त १-४-६
८ अभिधानराजेन्द्र कोष, भाग २, पृष्ठ ११६

आदि कन्दमूल का भक्षण नही करते। बैलो को नि लछण नही कराते। उनके नाक, कान का छेदन नही कराते। वे त्रस प्राणियो की हिंसा हो ऐसा व्यापार भी नही करते।

गोशालक के सम्बन्ध मे पाश्चात्य और पौर्वात्य विज्ञो ने शोध प्रारम्भ की है। कुछ विज्ञ शोध के नाम पर नवीन स्थापना करना चाहते हैं पर प्राचीन साक्षियो को भूलकर नूतन कल्पना करना अनुचित है। कितने ही विद्वान् गोशालक सम्बन्धी इतिहास को सर्वथा परिवर्तित करना चाहते हैं। डॉ बेणीमाधव बरुआ ने इसी प्रकार का प्रयास किया है,[1] जो उचित नही है। 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन' ग्रन्थ मे मुनि श्री नगराजजी डी लिट् ने इस सबध मे विस्तार से ऊहापोह किया है। जिज्ञासु पाठक उस ग्रन्थ का अवलोकन कर सकते हैं।[2]

यह सत्य है कि गोशालक अपने युग का एक ख्यातिप्राप्त धर्मनायक था। उसका सघ भगवान् महावीर के सघ से बडा था। भगवान् महावीर के श्रावको की सख्या १५९००० थी तो गोशालक के श्रावको की सख्या ११६१००० थी जो उसके प्रभाव को भी व्यक्त करती है। यही कारण है कि तथागत बुद्ध ने गोशालक के लिए कहा कि वह मछलियो की तरह लोगो को अपने जाल मे फंसाता है।[3] इसके तीन मूल कारण थे। १ निमित्त-भाषण, २ तप की साधना, ३ शिथिल आचारसंहिता, जबकि महावीर[4] और बुद्ध[5] के सघ मे निमित्त भाषण वर्ज्य रहा और भगवान महावीर की तो आचारसहिता भी कठोर रही।

भगवती के अतिरिक्त आवश्यकनिर्युक्ति,[6] आवश्यकचूर्णि,[7] आवश्यक मलयगिरिवृत्ति,[8] त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित,[9] महावीरचरियं[10] प्रभृति ग्रन्थो मे गोशालक के जीवन के अन्य अनेक प्रसग हैं। पर विस्तारभय से उन प्रसगो को यहाँ नही दे रहे है। दिगम्बराचार्य देवसेन ने भावसग्रह ग्रन्थ मे गोशालक का परिचय कुछ अन्य रूप से दिया है। उनके अभिमतानुसार गोशालक भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के एक श्रमण थे। व महावीर-परम्परा मे आकर गणधर पद प्राप्त करना चाहते थे पर जब उनकी गणधर पद पर नियुक्ति नही हुई तो वे श्रावस्ती मे पहुँचे और आजीवक सम्प्रदाय के नेता व अपने-आपको तीर्थङ्कर उद्घोषित करने लगे। वे इस प्रकार उपदेश देने लगे —ज्ञान से मोक्ष नही होता, अज्ञान से ही मोक्ष होता है। देव या ईश्वर कोई नही है। अत अपनी इच्छा के अनुसार शून्य का ध्यान करना चाहिए।[11] त्रिपिटक साहित्य मे भी आजीवक सघ और गोशालक का वर्णन प्राप्त है। तथागत बुद्ध के समय जितने मत और मतप्रवर्तक थे, उन सभी मतो एव मत-

---

१ The Ajivika J. D L Vol II 1920, pp 17-18

२ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, प्रकाशक जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा कलकत्ता, खण्ड १, पृष्ठ ४४

३ अगुत्तरनिकाय १-१८-४-५

४ (क) निशीथसूत्र उ १३-६६
(ख) दशवैकालिक सूत्र अ ८, गा ५

५ विनयपिटक चुल्लवग्ग ५-६-२

६ आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ४७४ से ४७८

७ आवश्यकचूर्णि प्रथम भाग, पत्र २८३ से २८७

८ आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, पत्र २७७ से २७९

९ त्रिषष्टिशलाका चरित्र, पर्व १० सर्ग ४

१० महावीरचरियं आचार्य नेमिचन्द्रसूरि

११ भावसग्रह, गाथा १७६ से १७९

प्रवर्तको मे से गोशालक को तथागत बुद्ध सबसे अधिक निकृष्ट मानते थे। तथागत बुद्ध ने सत्यपुरुष और असत्यपुरुष का वर्णन करते हुए कहा—कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो बहुत जनो के अलाभ के लिए होता है। बहुत जनो की हानि के लिए होता है। बहुत जनो के दुःख के लिए होता है। वह देवो के लिए भी अलाभकर और हानिकारक है, जैसे मखलि-गोशालक।[1] दूसरे स्थान पर उन्होने यह भी बताया कि श्रमण धर्मों मे सबसे निकृष्ट और जघन्य मान्यता गोशालक की है, जैसे कि सभी प्रकार के वस्त्रो मे 'केशकम्बल'।[2] यह कम्बल शीतकाल मे शीतल, ग्रीष्मकाल मे उष्ण तथा दुर्वर्ण, दुर्गन्ध, दुःस्पर्श वाला होता है। वैसे ही जीवनव्यवहार मे निरुपयोगी गोशालक का नियतिवाद है।[3] इन अवतरणो से यह स्पष्ट है कि गोशालक और उसके मत के प्रति बुद्ध का विद्रोह स्पष्ट था।

सूत्रकृताङ्ग मे आर्द्रकुमार का प्रकरण आया है। उस प्रकरण मे आर्द्रकुमार ने आजीवक भिक्षुओ के अब्रह्मसेवन का उल्लेख किया है। इसी प्रकार मज्झिमनिकाय[4] आदि मे भी आजीवको के अब्रह्मसेवन का वर्णन मिलता है। मज्झिमनिकाय मे निर्ग्रन्थपरम्परा को ब्रह्मचर्यवास मे और आजीवकपरम्परा को अब्रह्मचर्य-वास मे लिया है।[5] इतिहासवेत्ता डॉ सत्यकेतु[6] के अभिमतानुसार श्रमण भगवान महावीर और गोशालक मे तीन बातो का मतभेद था। उन तीनो बातो मे एक स्त्रीसहवास भी है। इन सब अवतरणो से यह स्पष्ट है कि गोशालक की मान्यता मे स्त्रीसहवास पर प्रतिबन्ध नही था। तथापि उसका मत इतना अधिक क्यो व्यापक बना, इस सम्बन्ध मे हम पूर्व ही उल्लेख कर चुके हैं। शोधार्थियो को तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करना चाहिये और प्रमाण-पुरस्सर चिन्तन देना चाहिए, जिससे सत्य तथ्य समुद्घाटित हो सके।

इस प्रकार भगवतीसूत्र मे विविध व्यक्तियो के चरित्र आए हैं जो ज्ञातव्य है और जिनसे अन्य अनेक दार्शनिक गुत्थियो को भी सुलझाया गया है।

हम अब भगवतीसूत्र मे आए हुए सैद्धान्तिक विषयो पर चिन्तन करेगे, जो जैनदर्शन का हृदय है।

भगवतीसूत्र शतक २५, उद्देशक २ मे द्रव्य-विषयक चिन्तन है। यहाँ हमे सर्वप्रथम यह चिन्तन करना है कि द्रव्य किसे कहते है? सूत्रकृताङ्ग[7] चूर्णि मे आचार्य जिनदासगणि महत्तर ने द्रव्य की परिभाषा करते हुए लिखा है—जो विशेष-पर्यायो को प्राप्त करता है वह द्रव्य है। अन्य जैनाचार्यों ने लिखा है—जो पर्यायो के लय और विलय से जाना जाता है वह द्रव्य है।[8] दूसरे आचार्य ने लिखा है जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओ को प्राप्त हुआ, हो रहा है और होगा वह द्रव्य है। यह विभिन्न अवस्थाओ का उत्पाद और विनाश होने पर भी सदा ध्रुव रहता है। क्योकि ध्रौव्य के अभाव मे पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती अवस्थाओ का सम्बन्ध नही हो सकता, अतः पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती दोनो अवस्थाओ मे जो व्याप्त रहता है वह द्रव्य है। जो द्रव्य है वह सत् है। आचार्य उमास्वाति ने सत्

---

१ अगुत्तरनिकाय १-१८-४, ५

२ यह कम्बल मानव के केशो से निर्मित होता था ऐसा टीका साहित्य मे उल्लेख है।

३ The Book of Gradual Saying, Vol. I, Page 286

४ मज्झिमनिकाय भाग १, पृष्ठ ५१४, Encyclopaedia of Religion and Ethics, Dr Hocrule P 261

५. मज्झिमनिकाय सन्दक सुत्त २-३-६

६ भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृष्ठ १६३

७. द्रवति—गच्छति तास्तान् पर्यायविशेषानितियद्रव्यम् (सू चू १, पृष्ठ ५)

८ द्रवति—स्वपर्यायान् प्राप्नोति क्षरति च, द्रूयते गम्यते तैस्तै पर्यायैरिति द्रव्यम्।

को उत्पाद, व्यय और ध्रौव्ययुक्त माना है।[1] उन्होंने द्रव्य की परिभाषा करते हुए गुण और पर्याय वाले को द्रव्य कहा है।[2]

द्रव्य मे परिणमन होता है। उत्पाद और व्यय होने पर भी उसका मूल स्वरूप नष्ट नही होता। द्रव्य के प्रत्येक अश मे प्रतिपल प्रतिक्षण जो परिवर्तन होता है वह पूर्व रूप से विलक्षण नही होता—परिवर्तन मे कुछ समानता रहती है तो कुछ असमानता भी हो जाती है। पूर्व परिणाम और उत्तर परिणाम मे जो समानता है वह द्रव्य है। इस दृष्टि से द्रव्य न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। वह अनुस्यूत रूप ही वस्तु की हर एक अवस्था को प्रभावित करता है। उदाहरण के रूप मे माला के प्रत्येक मोती मे धागा अनुस्यूत रहता है। पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती परिणमन मे जो असमानता है वह पर्याय कही जाती है। इस दृष्टि से द्रव्य की उत्पत्ति भी मानी जाती है तथा विनाश भी। इस कारण द्रव्य मे उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता - इन तीनो अवस्थाओ का उल्लेख है। द्रव्य रूप मे स्थिर है तो पर्याय रूप मे उत्पन्न एव नष्ट भी होता रहता है। साराश यह है कि कोई भी वस्तु न सर्वथा नित्य है न सर्वथा अनित्य है किन्तु वह परिणामी नित्य है।

आगम के शब्दो मे कहा जाय तो जो गुण का आश्रय या अनन्त गुणो का अखण्ड पिण्ड है वह द्रव्य है। इसमे प्रथम परिभाषा द्रव्य का स्वरूपात्मक रूप प्रस्तुत करती है तो दूसरी परिभाषा अवस्थात्मक रूप को व्यक्त करती है। दोनो मे समन्वय होने से द्रव्य गुण-पर्यायवत् कहा जाता है तथा उसका परिणामी नित्यस्वरूप बतलाता है। द्रव्य मे सहभावी (गुण) और क्रमभावी (पर्याय) ये दो प्रकार के धर्म होते है। बौद्धदर्शन ने सत्-द्रव्य को एकान्त अनित्य माना है अर्थात् निरन्वय क्षणिक, केवल उत्पाद-विनाशस्वभाव वाला माना है तो वेदान्तदर्शन ने सत् पदार्थ (ब्रह्म) को एकान्त नित्य माना है। बौद्धदर्शन परिवर्तनवादी है तो वेदान्तदर्शन नित्य सत्तावादी। पर जैनदर्शन ने इन दोनो दर्शनो की विचारधारा को समन्वय की तुला पर तोल कर परिणामीनित्यत्ववाद की स्थापना की है। इसका तात्पर्य है कि द्रव्य की सत्ता है, परिवर्तन भी है, द्रव्य उत्पन्न भी होता है और नष्ट भी और इस परिवर्तन मे उसका अस्तित्व भी सदा सुरक्षित रहता है। उत्पाद और विनाश के मध्य कोई स्थिर आधार नहीं है तो सजातीयता का अनुभव नही हो सकता। 'यह वह ही है' ऐसा नही कहा जा सकता। यदि हम द्रव्य को निर्विकार माने तो विश्व मे जो विविधता है, उसकी सगति नही हो सकती। परिणामीनित्यत्ववाद जैनदर्शन की अपनी मौलिक देन है। इसकी तुलना रासायनिक विज्ञान के द्रव्याक्षरत्ववाद से कर सकते हैं। इस वाद की सस्थापना सन् १७८९ मे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक 'लेवोसियर' ने की थी। इस वाद का सार है—इस अनन्त विश्व मे द्रव्य का परिणाम सदा सर्वदा समान रहता है। उसमे किसी प्रकार की कमी-वेशी नही होती, न किसी वर्तमान द्रव्य का पूर्ण नाश होता है और न किसी नए द्रव्य की पूर्ण रूप से उत्पत्ति होती है। हम जिसे द्रव्य का नाश समझते हैं वह उसका रूपान्तर है। जैसे एक कोयला जलकर राख बन जाता है, पर वह नष्ट नही होता। वायु-मण्डल के ऑक्सीजन अश के साथ मिलकर कार्बोनिक एसिड गैस के रूप मे परिवर्तित हो जाता है, वैसे ही शक्कर या नमक आदि पानी मे मिलकर नष्ट नही होते पर ठोस रूप को बदल कर द्रव रूप मे परिणत हो जाते है। जहाँ कही भी नूतन वस्तु उत्पन्न होती हुई दिखलाई देती है, पर सत्य तथ्य यह है कि वह किसी पूर्ववर्ती वस्तु का ही रूपान्तर है। किसी लोहे की वस्तु मे जग लग जाता है। वहाँ पर जग नामक कोई नया द्रव्य उत्पन्न नही हुआ, पर धातु की ऊपरी सतह पर पानी और वायमण्डल के ऑक्सीजन के सयोग मे लोहे के ओक्सीहाईड्रेट के रूप मे परिणत हो गई। भौतिकवाद पदार्थों के गुणात्मक अन्तर को परिमाणात्मक अन्तर मे परिवर्तित कर देता

१ तत्त्वार्थसूत्र ५।२९

२. तत्त्वार्थसूत्र ५।३७

है। शक्ति परिमाण मे परिवर्तन नही किन्तु गुण की दृष्टि से परिवर्तनशील है। प्रकाश, तापमान, चुम्बकीय आकर्षण आदि का ह्रास नही होता, अपितु वे एक-दूसरे मे परिवर्तित हो जाते है। उत्पाद, ध्रौव्य और व्यय द्रव्यो का यह त्रिविध लक्षण प्रतिक्षण घटित होता रहता है। इस शब्दावली मे और जिसे "द्रव्य का नाश होना समझा जाता है वह उसका रूपान्तर मे परिणमनमात्र है।" इन शब्दो मे कोई अन्तर नही है। वस्तु की दृष्टि से इस विश्व मे जितने द्रव्य हैं, उतने ही द्रव्य सदा अवस्थित रहते हैं। सापेक्षदृष्टि से ही जन्म और मरण है। नवीन पर्याय का उत्पाद जन्म है और पूर्व पर्याय का विनाश मृत्यु है।

साख्यदर्शन ने पुरुष को नित्य और प्रकृति को परिणामीनित्य मानकर नित्यानित्यत्ववाद की सस्थापना की है। नैयायिक और वैशेषिक परमाणु, आत्मा प्रभृति को नित्य मानते हैं और घट, पट, प्रभृति को अनित्य मानते हैं। इस तरह समूह की दृष्टि से वे परिणामित्व एव नित्यत्ववाद को स्वीकार करते है। पर जैनदर्शन की भाँति द्रव्य मात्र को परिणामी नित्य नही मानते। यह भी सत्य तथ्य है कि महर्षि पतञ्जलि और आचार्य कुमारिल भट्ट, पार्थसार प्रभृति मनीषियो ने परिणामीनित्यत्ववाद को स्पष्ट सिद्धान्त के रूप मे मान्यता नही दी है, तथापि परिणामीनित्यत्ववाद का प्रकारान्तर[1] से पूर्ण समर्थन किया है।

द्रव्य शब्द अनेकार्थक है। सत् तत्त्व और पदार्थपरक अर्थ पर हम कुछ चिन्तन कर चुके हैं। सामान्य के लिए भी द्रव्य शब्द व्यहृत हुआ है और विशेष के लिए पर्याय शब्द का प्रयोग हुआ है। सामान्य भी तिर्यक्-सामान्य और ऊर्ध्वतासामान्य के रूप मे दो प्रकार का है। एक ही काल मे स्थित अनेक देशो मे रहने वाले अनेक पदार्थों मे समानता का होना तिर्यक्सामान्य है। जब कालकृत विविध अवस्थाओ मे किसी विशेष द्रव्य का एकत्व या अन्वय (समानता) विवक्षित हो या एक विशेष पदार्थ की अनेक अवस्थाओ की एकता या ध्रौव्य अपेक्षित हो, वह एकत्वसूचक अश ऊर्ध्वतासामान्य है। जीव के ससारी और मुक्त इन दो भेदो मे रहने वाला जीवत्व या ससारी के एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक ५ भेदो मे रहा हुआ ससारी जीवत्व आदि तिर्यक् सामान्य है। द्रव्यार्थिक दृष्टि से जीव शाश्वत है, यह जीव का ऊर्ध्वतासामान्य है।

गणधर गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की —'द्रव्य कितने प्रकार का है?' समाधान की भाषा मे भगवान ने कहा—'द्रव्य के जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य ये दो प्रकार हैं। पुन जिज्ञासा प्रस्तुत की— 'अजीव द्रव्य कितने प्रकार का है?' समाधान के रूप मे कहा गया—'वह रूपी और अरूपी के भेद

---

१ द्रव्य नित्यमाकृतिरनित्या। सुवर्ण कदाचिदाकृत्या युक्त पिण्डो भवति पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुचका क्रियन्ते। रुचकाकृतिमुपमृद्य कटका क्रियन्ते, कटकाकृतिमुपमृद्य स्वस्तिका क्रियन्ते। पुनरावृत सुवर्ण-पिण्ड। आकृतिरन्या चान्या च भवति, द्रव्य पुनस्तदेव। आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेवावशिष्यते।

—पातञ्जल योगदर्शन

वर्धमानकभगे च रुचक क्रियते यदा।
तदा पूर्वार्थिन शोक प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिन ॥१॥
हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम्।
नोत्पादस्थितिभगा नामभावे स्यान्मतित्रयम् ॥२॥
न नाशेन विना शोको नोत्पादेन विना सुखम्।
स्थित्या विना न माध्यस्थ्य, तेन सामान्यनित्यता ॥३॥

—कुमारिल्ल भट्ट मीमासा श्लोकवार्तिक, पृष्ठ ६१९

से दो प्रकार का है।' पुन जिज्ञासा उभरी—'अजीव द्रव्य सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त हैं?' समाधान दिया गया—'वे अनन्त हैं, चूकि परमाणु पुद्गल अनन्त हैं, द्विप्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अनन्त हैं।' उसी तरह जीव द्रव्य के सम्बन्ध में जो गौतम ने पृच्छा की कि वह सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त हैं? समाधान दिया गया—जीव अनन्त हैं, क्योकि नैरयिक, चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, असज्ञी मनुष्य तथा देव ये सभी प्रत्येक पृथक्-पृथक् असख्यात है। सज्ञी मनुष्य सख्यात है। वनस्पतिकायिक जीव और सिद्ध अनन्त हैं। अत समस्त जीव द्रव्य की अपेक्षा से अनन्त हैं।

इसी प्रकार भगवतीसूत्र शतक १४, उद्देशक ४ मे जीवपरिणाम और अजीवपरिणाम के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला गया है। शतक १७, उद्देशक २ मे जीव और जीवात्मा ये दोनो पृथक् नही हैं, ऐसा स्पष्ट किया गया है, शतक ७, उद्देशक ८ मे हाथी और कुथुआ दोनो की काया मे अन्तर है तो क्या उनके जीव समान हैं या असमान है? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् ने फरमाया कि दोनो मे जीव समान है, जैसे दीपक का प्रकाश स्थान के अनुसार छोटा और बडा होता है वैसे ही शरीर के अनुसार आत्मप्रदेश सकुचित और विस्तृत होते हैं। शतक १, उद्देशक २ मे जीव स्वयकृत कर्म का वेदन करते है या परकृत कर्म का वेदन करते है? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने बतलाया कि जीव स्वकृत कर्म का ही वेदन करता है, परकृत कर्म का नही।

जैन आगमसाहित्य का गहराई से पर्यवेक्षण करने पर सहज परिज्ञात होता है कि उसने अद्वैतवादियो की भाँति जगत् को वस्तु अवस्तु अर्थात् माया मे विभक्त नही किया है अपितु यह प्रतिपादित किया है कि ससार की प्रत्येक वस्तु मे स्वभाव और विभाव सन्निहित है। वस्तु का स्वभाव वह है जो परनिरपेक्ष हो और विभाव वह है जो परसापेक्ष हो। आत्मा का चैतन्य, ज्ञान, सुख, प्रभृति का जो मूल रूप है वह उसका स्वभाव है और अजीव का स्वभाव है जडता। आत्मा की मनुष्य, देव आदि गति रूप जो स्थिति है वह विभाव दशा है। स्वभाव और विभाव दोनों अपने-आप मे सत्य हैं। हाँ, तद्विषयक हमारा ज्ञान मिथ्या हो सकता है, लेकिन वह भी तब जब हम स्वभाव को विभाव समझे या विभाव को स्वभाव। तत् मे अतत् का ज्ञान होने पर ही ज्ञान मे मिथ्यात्व की सभावना रहती है।[1]

विज्ञानवादी बौद्धो का यह मन्तव्य है कि प्रत्यक्ष ज्ञान ही वस्तुग्राहक और साक्षात्कारात्मक है और उसके अतिरिक्त जितना भी ज्ञान है वह अवस्तुग्राहक, भ्रामक, अस्पष्ट और असाक्षात्कारात्मक है। जबकि जैन आगम-साहित्य मे प्रत्यक्ष ज्ञान उसे कहा है जो इन्द्रियनिरपेक्ष हो और आत्मसापेक्ष हो तथा साक्षात्कारात्मक हो। परोक्ष उसे कहा है जो ज्ञान इन्द्रिय और मनसापेक्ष हो तथा असाक्षात्कारात्मक हो। प्रत्यक्षज्ञान से ही स्वभाव और विभाव का सही परिज्ञान हो सकता है। जो ज्ञान इन्द्रियसापेक्ष है उससे वस्तु के स्वभाव और विभाव का स्पष्ट और सही परिज्ञान नही होता। पर इसका यह तात्पर्य नही कि इन्द्रियसापेक्ष ज्ञान भ्रम है। विज्ञानवादी बौद्ध परोक्ष ज्ञान को अवस्तुग्राहक होने के कारण भ्रम मानते है पर जैनदर्शन ऐसा नही मानता। उसका यह अभिमत है कि विभाव वस्तु का परिणाम है। यह वस्तु का एक रूप है। अत उसके ग्राहकज्ञान को हम भ्रम नही कह सकते।

जैन आगमसाहित्य मे ज्ञान के सम्बन्ध मे यत्र-तत्र विस्तार से निरूपण किया गया है। ज्ञान के विविध भेद-प्रभेदो पर भी विस्तार से प्रकाश डाला है। आगमयुग के पश्चात् जैनदार्शनिक मनीषी भी ज्ञान के सम्बन्ध मे चिन्तन करते रहे है। विस्तारभय से उस चिन्तन को यहाँ प्रस्तुत न कर यह बताना चाहेगे कि ज्ञान आत्मा का निज स्वरूप है, ज्ञान एक ऐसा गुण है जिसके बिना आत्मा आत्मा नही रहता। निगोद अवस्था मे भी, जहाँ आत्मा

१. आगमयुग का जैनदर्शन पृ. १२७-१२८, प. दलसुख मालवणिया

के असख्यात प्रदेश ज्ञानावरणीयकर्म से आच्छन्न होते हैं, किन्तु मूल ८ रुचक प्रदेश सदा ज्ञानावरणीयकर्म से अलिप्त रहते हैं।

भगवतीसूत्र मे भी ज्ञान के सम्बन्ध मे विस्तार से विवेचन प्राप्त है। जिज्ञासु पाठक भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देशक २ का गहराई से अवलोकन करे। शतक १, उद्देशक १ मे गणधर गौतम और भगवान् महावीर का एक सुन्दर सवाद है, जिसमे यह प्रतिपादित किया गया है कि चारित्र वर्तमान भव तक सीमित रहता है परन्तु ज्ञान इस लोक, परलोक तथा तदुभयलोक मे भी रह सकता है।

जैन आगमो मे जहाँ ज्ञानचर्चा की गई है वहाँ प्रमाणचर्चा भी की गई है। ज्ञान को प्रामाणिकता देने के लिए सम्यक्त्व और मिथ्यात्व पर चिन्तन करते हुए यह प्रतिपादित किया कि सम्यग्दर्शी का ज्ञान ज्ञान है और वही ज्ञान मिथ्यादर्शी के लिए अज्ञान है। ज्ञान के ५ और अज्ञान के ३ भेद प्रतिपादित किए गए है।

आगमसाहित्य मे नैयायिकदर्शन की तरह कहीं पर चार प्रमाणो का उल्लेख है तो कही तीन प्रमाणो का उल्लेख है।

स्थानागसूत्र मे प्रमाण शब्द के स्थान पर हेतु शब्द का प्रयोग किया है। ज्ञप्ति के साधनभूत होने से प्रत्यक्ष, अनुमान आदि को हेतु शब्द से व्यवहृत किया है।[1] निक्षेप दृष्टि से स्थानाग मे द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाण ये चार भेद किये हैं।[2] स्थानाग मे प्रमाण के तीन भेद भी प्राप्त होते हैं। वहाँ पर प्रमाण के स्थान पर 'व्यवसाय' शब्द का प्रयोग हुआ। व्यवसाय का अर्थ 'निश्चय' है। व्यवसाय के प्रत्यक्ष, प्रत्ययिक और आनुगामिक ये तीन प्रकार हैं।[3] जैन आगमसाहित्य मे ही नही, अन्य दर्शनो मे भी प्रमाण के तीन और चार प्रकार प्रतिपादित किये गय हैं। साख्यदर्शन मे तीन प्रमाणो का निरूपण है, तो न्यायदर्शन मे चार प्रमाण प्रतिपादित हैं। अनुयोगद्वारसूत्र मे प्रमाण के सम्बन्ध मे बहुत ही विस्तार के साथ चर्चा है। भारतीय दार्शनिको मे प्रमाण की सख्या के सम्बन्ध मे एक मत नही रहा है। चार्वाकदर्शन केवल इन्द्रियप्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता है। वैशेषिकदर्शन प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो को प्रमाण मानता है। साख्यदर्शन मे प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ये तीन प्रमाण माने गये हैं। न्यायदर्शन ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार प्रमाण माने है। प्रभाकरमीमासक ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द और अर्थापत्ति ये पाच प्रमाण माने है। भाट्टमीमासा-दर्शन ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अभाव, ये छह प्रमाण माने हैं। बौद्धदर्शन मे प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण माने है। जैन दार्शनिक विज्ञो ने प्रमाण के तीन और भेद माने है। आचार्य सिद्धसेन ने प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण माने हैं[4] तो उमास्वाति[5] ने, वादी देवसूरि[6] ने और आचार्य हेमचन्द्र[7] ने प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो प्रमाण स्वीकार किये है। मगर यह वस्तुत विवक्षाभेद है। इसमे मौलिक अन्तर नहीं है।

---

१ स्थानाग ४/३३८
२ स्थानाग ४/३२१
३ स्थानाग ३/१८५
४ न्यायावतार २८
५ तत्त्वार्थसूत्र
६. प्रमाणनयतत्त्वालोक २/११
७. प्रमाणमीमासा १/९,१०

भगवतीसूत्र शतक ५, उद्देशक ४ मे प्रमाण के प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगमन ये चार प्रकार माने हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण के इन्द्रियप्रत्यक्ष, नोइन्द्रियप्रत्यक्ष—ये दो भेद किये है। अनुमान प्रमाण के पूर्ववत्, शेषवत्, और दृष्टसाधर्म्यवत्—ये तीन प्रकार प्रतिपादित किये हैं। उपमान प्रमाण के भेद-प्रभेद नही हैं। आगम प्रमाण के लौकिक और लोकोत्तर—ये दो भेद बनाकर लौकिक मे भारत, रामायण आदि ग्रन्थो का सूचन किया है तो लोकोत्तर आगम मे द्वादशागी का निरूपण किया है। इस प्रकार प्रस्तुत आगम मे प्रमाण के सम्बन्ध में चिन्तन है। यह चिन्तन अनुयोगद्वारसूत्र मे और अधिक विस्तार से प्रतिपादित है।

भगवतीसूत्र शतक ७, उद्देशक ४ मे जीवो के विविध भेद-प्रभेदो पर चिन्तन किया गया है। जीवविज्ञान जैनदर्शन की अपनी देन है। जितना गहराई से जैनदर्शन ने जीवो के भेद-प्रभेदो पर चिन्तन किया है, उतना सूक्ष्म चिन्तन अन्य पौर्वात्य और पाश्चात्य दार्शनिक नही कर सके है। वेदो मे पृथ्वी देवता, आपो देवता आदि के द्वारा यह कहा गया है कि वे एक-एक है, पर जैनदर्शन ने पृथ्वी आदि मे अनेक जीव माने हैं, यहाँ तक कि मिट्टी के कण, जल की बू द और अग्नि की चिनगारी मे असख्य जीव होते हैं। उनका एक शरीर दृश्य नही होता, अनेक शरीरो का पिण्ड ही हमे दिखलाई देता है।[1]

जीव का मुख्य गुण चेतना है। चेतना सभी जीवो मे उपलब्ध है। जिसमे चेतना है वह जीव है। फिर भले ही वह सिद्ध हो या सासारिक। चेतना सिद्ध मे भी है और ससारी जीव मे भी है। चेतना की दृष्टि से सिद्ध और ससारी जीव मे भेद नही है। आगमिक दृष्टि से जीव के बोधरूप व्यापार को चेतना कहा है। वह बोधरूप व्यापार सामान्य और विशेष रूप से दो प्रकार का है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्मों को गौण कर सामान्य धर्म को ग्रहण करती है तब दर्शनचेतना कहलाती है और जो चेतना सामान्य धर्मों को गौण करके वस्तु के विशेष धर्मों को मुख्य रूप से ग्रहण करती है, वह ज्ञानचेतना कहलाती है। ज्ञानचेतना ही विशेष बोधरूप व्यापार कहलाती है। एक ही चेतना कभी सामान्य तो कभी विशेषात्मक होती है।

दार्शनिको ने चेतना के ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कमफलचेतना—ये तीन प्रकार भी माने हैं। किसी भी वस्तु-तत्त्व को जानने के लिए चेतना का जो ज्ञानरूप परिणाम है, वह ज्ञानचेतना है, कषाय के उदय से क्रोध, मान, माया, लोभ रूप जो परिणाम है, वह कर्मचेतना है। शुभ और अशुभ कर्म के उदय से जो सुख और दु खरूप परिणाम होता है, वह कर्मफलचेतना है। दार्शनिको ने इन तीनो प्रकार की चेतनाओ को अन्य रूप से कहा है।

आगमकारो ने ससारी जीवो की दृष्टि से त्रस और स्थावर—ये दो भेद किये हैं। जिस जीव को त्रस नामकर्म का उदय है वह त्रस जीव है और जिस जीव को स्थावर नामकर्म का उदय है वह स्थावर जीव है। गतित्रस और लब्धित्रस ये त्रस के दो प्रकार हैं। जिनमे स्वतन्त्र रूप से गमन करने की शक्तिविशेष हो, वह गतित्रस है और जो सुख-दु ख की इच्छा से गमन करते हैं, वे लब्धित्रस है। तेजस्काय और वायुकाय को गतित्रस तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय को लब्धित्रस माना गया है। इस प्रकार जैन दार्शनिको ने त्रस और स्थावर शब्दो का अर्थ दो प्रकार से किया है। एक क्रिया की दृष्टि से तो दूसरा कर्म के उदय की दृष्टि से।

---

१ (क) दशवैकालिकसूत्र, अगस्त्यसिहचूर्णि, पृष्ठ ७४
(ख) दशवैकालिकसूत्र, जिनदासचूर्णि, पृष्ठ १३६

कर्म के उदय की दृष्टि से तेजस्काय और वायुकाय भी स्थावर ही हैं। इस दृष्टि से स्थावर के ५ भेद प्रतिपादित है। त्रस के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय—ये चार प्रकार हैं। ससार के जितने भी जीव है, वे त्रस और स्थावर मे समाविष्ट हो जाते हैं।

गति की दृष्टि से ससारी जीवो को चार भागो मे विभक्त किया गया है—नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव।

नारक गति के जीवो के परिणाम और लेश्या अशुभ और अशुभतर होती है। जब पापो का पु ज अत्यधिक मात्रा मे एकत्रित हो जाता है तब जीव नरक मे जाकर उत्पन्न होता है। नरक मे भयकर शीत, ताप, क्षुधा, तृषा प्रभृति वेदनाएँ होती है। नरकभूमियो मे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि अशुभ होते हैं। नारको के शरीर अशुचिकर और वीभत्स होते हैं। उनका शरीर वैक्रिय होता है और उसमे अशुचिता की ही प्रधानता होती है। नरक के जीव मर कर पुन नरक मे पैदा नही होते। मनुष्य और तिर्यञ्च ही मर कर नरक मे उत्पन्न होते हैं।

नारक, मनुष्य और देव को छोडकर इस विराट् विश्व मे जितने भी जीव हैं, वे सभी तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक होते हैं। तिर्यञ्चो मे पाँच स्थावर (एकेन्द्रिय), द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय सभी होते हैं। पचेन्द्रिय मे जलचर-स्थलचर-खेचर-उरचर-भुजचर जीवों का समावेश है। तिर्यञ्च जीवो का विस्तार बहुत है। वे अनन्त हैं। मूल आगमो मे एक-एक के विविध प्रकार प्रतिपादित हैं।

मनुष्यगति नामकर्म के उदय से जीव को मनुष्यशरीर प्राप्त होता है। आत्मविकास की परिपूर्णता मानव ही कर सकता है। इसीलिए शास्त्रकारो ने मानवगति की महिमा गाई है। मानवो को आर्य और अनार्य इन दो भागो मे विभक्त किया गया है। जो हिंसा आदि दुष्कृत्यो से दूर रहता है वह आर्य है और इसके विपरीत व्यक्ति अनार्य है। आर्यों के भी ऋद्धिप्राप्त आर्य और अनऋद्धिप्राप्त आर्य—ये दो प्रकार है। ऋद्धिप्राप्त आर्यों मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, विद्याधर और चारण लब्धिधारी मुनि आदि है। आर्यों के भी क्षेत्र-आर्य, जाति-आर्य, कुल-आर्य, कर्म-आर्य, शिल्प-आर्य, भाषा-आर्य, ज्ञान-आर्य, दर्शन-आर्य और चारित्र-आर्य, ये नौ प्रकार किये गये हैं। इन भेदो का मूल आधार गुण और कर्म हैं।

अन्यान्य आधारो पर भी मनुष्यों के भेदो का निरूपण किया गया है।

भौतिक सुख और समृद्धि की अपेक्षा मानवगति से देवगति श्रेष्ठ है। देवगति मे पुण्य का प्रकर्ष होता है। उसमे लेश्याए प्रशस्त होती हैं। वैक्रिय शरीर होता है, जिसके कारण वे चाहे जैसा रूप बना लेते हैं। देवों के भी चार प्रकार हैं (१) भवनपति, (२) वाणव्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

भवनों मे रहने वाले देव भवनपति कहलाते है। असुरकुमार, नागकुमार आदि भवनपति देवों के दस प्रकार हैं। इन भवनपति देवो का आवास नीचे लोक मे है। विविध प्रकार के प्रदेशों मे एव शून्य प्रान्तों मे रहने वालो को वाणव्यन्तर—देव कहते हैं। भूत, पिशाच आदि व्यन्तर देव हैं। ये देव मध्यलोक मे रहते हैं। ज्योतिष्क देवो के चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा, ये पाच भेद हैं। ये अढाई द्वीप मे चर है और अढाई द्वीप के बाहर अचर यानी स्थिर हैं। ज्योतिष्क देव मध्यलोक मे ही हैं। विमानो मे रहने वाले देव वैमानिक कहलाते हैं। वैमानिक-देव ऊँचे लोक मे रहते हैं। उनके कल्पोपपन्न और कल्पातीत, ये दो प्रकार है। कल्पोपपन्नो मे स्वामी-सेवक भाव रहता है पर कल्पातीतो मे इस प्रकार का व्यवहार नही होता। कल्पोपपन्नो के बारह प्रकार हैं और कल्पातीत के ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरविमानवासी ये दो प्रकार है। ग्रैवेयक देवो के नौ प्रकार है। अनुत्तरविमानवासी विजय, वैजयन्त आदि पाच प्रकार के हैं। बारह देवलोको मे प्रथम आठ देवलोको का आधिपत्य एक-एक इन्द्र के

हाथ में है। नवमे, दसवें, का एक इन्द्र है। ग्यारहवें, बारहवे का भी एक इन्द्र है। इस प्रकार बारह देवलोकों के दस इन्द्र हैं। देवगति का आयु पूर्ण कर कोई भी देव पुन देव नहीं बनता।

आगम मे देवो के द्रव्यदेव, नरदेव, धर्मदेव, देवाधिदेव और भावदेव आदि भेद किये हैं। भविष्य मे देवरूप में उत्पन्न होने वाला जीव द्रव्यदेव है। चक्रवर्ती नरदेव है। साधु धर्मदेव है। तीर्थंकर देवाधिदेव हैं और देवो के चार निकाय भावदेव हैं।

आत्मा के आठ प्रकार

भगवतीसूत्र शतक १२, उद्देशक १० मे आत्मा के आठ प्रकार बताये हैं। आत्मा एक चेतनावान् पदार्थ है। चेतना उसका धर्म है और उपयोग आत्मा का लक्षण है। चेतना सदा सर्वदा एक सदृश नही रहती। उसमे रूपान्तरण होता रहता है। रूपान्तरण को ही जैनदर्शन मे पर्याय परिवर्तन कहा गया है। जो भी द्रव्य होता है वह बिना गुण और पर्याय के नही होता, गुण सर्वदा साथ होता है तो पर्याय प्रतिपल प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। आत्मा एक द्रव्य है, तथापि पर्यायभेद की दृष्टि से उसके अनेक रूप दृग्गोचर होते हैं। द्रव्य-आत्मा वह है जो चेतनामय, असख्य अविभाज्य प्रदेशों—अवयवो का अखण्ड समूह है। इसमे केवल विशुद्ध आत्मद्रव्य की ही विवक्षा की गई है। पर्यायो की सत्ता होने पर भी उन्हे गौण कर दिया गया है। यह आत्मा का त्रैकालिक सत्य है, तथ्य है, जिसके कारण आत्मद्रव्य अनात्मद्रव्य नही बनता। द्रव्य-आत्मा शुद्ध चेतना है। क्रोध-मान-माया-लोभ से रजित होने पर आत्मा कषाय-आत्मा के रूप मे पहचाना जाता है। आत्मा की जितनी भी प्रवृत्तियाँ है वे योग द्वारा होती हैं। इसलिए आत्मा को भी योग-आत्मा के नाम से पहचान कराई गई है। चेतना जब व्यापृत होती है तब वह उपयोग-आत्मा है। ज्ञानात्मक और दर्शनात्मक चेतना को क्रमश ज्ञान-आत्मा और दर्शन-आत्मा कहा गया है। आत्मा की विशिष्ट सयममूलक अवस्था चरित्र-आत्मा के रूप मे विश्रुत है। आत्मा की शक्ति वीर्य-आत्मा के रूप मे जानी और पहचानी जाती है। आत्मा के ये जो आठ प्रकार बताये है वे अपेक्षा दृष्टि से बतलाये गये हैं। आत्मा का जो पर्यायान्तरण होना है, वह केवल इन आठ बिन्दुओ तक ही सीमित नही है। आत्मा के जितने पर्यायान्तरण है उतनी ही आत्माये हो सकती हैं। इस दृष्टि से आत्मा के अनन्त भेद भी हो सकते है। प्रस्तुत आगम मे इन आठो आत्माओ के प्रकारो का अल्पबहुत्व भी दिया है।

जीव के चौदह भेद

भगवतीसूत्र शतक २५, उद्देशक १ मे ससारी जीव के चौदह भेद बताये हैं। एकेन्द्रिय जीव के चार भेद, पञ्चेन्द्रिय जीव के चार भेद और विकलेन्द्रिय जीव के छ भेद है। एकेन्द्रिय जीव के सूक्ष्म और बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त, ये चार प्रकार हैं। सूक्ष्मनामकर्म के उदय से जिन जीवो का शरीर चर्मचक्षु से निहारा नही जा सकता वे सूक्ष्म-एकेन्द्रिय जीव है। ये सूक्ष्म जीव चतुर्दश रज्जुप्रमाण सम्पूर्ण लोक मे परिव्याप्त है। लोक मे ऐसा कोई भी स्थान नही जहाँ पर ये जीव न हो। ये जीव इतने सूक्ष्म है कि पर्वत की कठोर चट्टान को चीरकर भी आर-पार हो जाते हैं। किसी के मारने स नही मरते। विश्व की कोई भी वस्तु उनका घात-प्रतिघात नही कर सकती। साधारण वनस्पति के सूक्ष्म जीवो को सूक्ष्मनिगोद भी कहते है। साधारण वनस्पतिकाय का शरीर निगोद कहलाता है। इस विश्व मे असख्य गोलक है। एक-एक गोलक मे असख्यात निगोद हैं और एक-एक निगोद में अनन्त जीव हैं। इनका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त होता है।

बादरनामकर्म के उदय से जिन जीवो का शरीर चर्मचक्षु से देखा जा सके, वे बादर-एकेन्द्रिय जीव हैं। बादर-एकेन्द्रिय जीव लोक के नियत क्षेत्र मे ही प्राप्त होते है। पाच स्थावर के भेद मे बादर-एकेन्द्रिय के पाच

भेद हैं। बादरवनस्पतिकाय के प्रत्येक और साधारण ये दो भेद हैं। बादर साधारण वनस्पतिकाय निगोद के नाम से भी जानी-पहचानी जाती है। इनमे भी अनन्त जीव होते हैं। इन जीवो मे केवल एक इन्द्रिय होती है और वह स्पर्शन इन्द्रिय है। सामान्य रूप से पर्याप्त का अर्थ पूर्ण और अपर्याप्त का अर्थ अपूर्ण है। पर्याप्त और अपर्याप्त ये दोनो शब्द जैनदर्शन के पारिभाषिक शब्द है। जन्म के प्रारम्भ मे जीवनयापन के लिये आवश्यक पौद्गलिक शक्ति के निर्माण का नाम पर्याप्ति है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये छह प्रकार की शक्तियाँ हैं। इस शक्ति-विशेष को प्राणी उस समय ग्रहण करता है जब एक स्थूल शरीर को छोडकर दूसरे स्थूल शरीर को धारण करता है। पर्याप्तियो का प्रारम्भ एक साथ होता है और पूर्णता क्रमिक रूप से। आहारपर्याप्ति की पूर्णता एक समय मे हो जाती है पर शेष पर्याप्तियो के पूर्ण होने मे अन्तर्मुहूर्त का समय लगता है।

एकेन्द्रिय जीवो मे चार पर्याप्तिया होती हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास। विकलेन्द्रिय जीवो के और असज्ञी पचेन्द्रिय जीवों के पाच पर्याप्तिया होती हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा। सज्ञीपचेन्द्रिय जीवो के मन अधिक होने से छह पर्याप्तिया होती हैं। पहली तीन आहार, शरीर और इन्द्रिय को प्रत्येक जीव पूर्ण करता है। तीनो पर्याप्तिया पूर्ण करके ही जीव अगले भव का आयुष्य बाध सकता है। स्वयोग्य पर्याप्ति जो पूर्ण करे वह पर्याप्त है और जो पूर्ण न करे वह अपर्याप्त है।

एकेन्द्रिय जीव के स्वयोग्य पर्याप्तियाँ चार है। जो एकेन्द्रिय जीव चार पर्याप्तियो को पूर्ण कर लेता है, वह पर्याप्त कहलाता है और जो पूर्ण नही करता वह अपर्याप्त है। पर्याप्त के भी लब्धिपर्याप्त और करणपर्याप्त ये दो भेद है। जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूर्ण नही किया है पर जो पूर्ण अवश्य करेगा वह लब्धि की दृष्टि मे—लब्धिपर्याप्त है और जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियो का पूर्ण कर लिया है वह करण की अपेक्षा से करणपर्याप्त है। करण का अर्थ इन्द्रिय है। जिस जीव ने इन्द्रियपर्याप्त पूर्ण कर ली है वह करणपर्याप्त है। इस तरह जो लब्धिपर्याप्त है वह करणपर्याप्त होकर ही मृत्यु को प्राप्त करता है। जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूर्ण नही किया है और न करेगा वह लब्ध्यपर्याप्तक है। जिस जीव न स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूरा नही किया है पर करेगा वह करणअपर्याप्त है। यहाँ पर यह स्मरण रखना है—देव और नारक लब्ध्यपर्याप्त नही होते पर करण-अपर्याप्त होते है। मनुष्य और तिर्यञ्च जीव दोनो ही प्रकार के अपर्याप्तक होते है।

विकलेन्द्रियो के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये तीन प्रकार हैं। जिन जीवो के सम्पूर्ण इन्द्रिया नही होती हैं वे विकलेन्द्रिय कहलाते हैं। दो इन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव विकलेन्द्रिय है।

पचेन्द्रिय जीव दो प्रकार के हैं—सज्ञी और असज्ञी। समनस्क को सज्ञी कहा है। यहाँ पर यह प्रश्न सहज ही उद्बुद्ध होना है कि समनस्क और सज्ञी इन दोनो शब्दो का एक ही अर्थ है या भिन्न-भिन्न? उत्तर मे निवेदन है—सज्ञी और समनस्क ये दोनो शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। क्योकि जो जीव सज्ञी है वह मन वाला अवश्य होगा। आगम साहित्य मे सज्ञी शब्द का प्रयोग अधिक मात्रा मे हुआ है तो दार्शनिक साहित्य में समनस्क शब्द का। जब दोनो शब्दो का एक ही अर्थ है तो दार्शनिको ने समनस्क शब्द का व्यवहार क्यों किया है? हमारी दृष्टि मे सज्ञा शब्द अनेक अर्थों को व्यक्त करता है। सज्ञा का सामान्य अर्थ है—चेतना या ज्ञान। चेतना और ज्ञान ये दोनो एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवो मे भी हैं। पर वे सज्ञी नही हैं। पर यहाँ पर सज्ञी से ज्ञानसज्ञा वाले जीवो को ग्रहण नही किया है। अनुभवसज्ञा के भी आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा, परिग्रहसज्ञा ये चार प्रकार हैं। आहारसज्ञा वेदनीयकर्म का उदय है और शेष तीनो सज्ञा मोहनीयकर्म के उदय का फल हैं। अनुभव-सज्ञा भी सभी ससारी जीवो मे होती है।

आगम साहित्य मे संज्ञा के दस प्रकार भी बताये हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा, मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा, लोकसंज्ञा और ओघसंज्ञा। ये दस संज्ञायें एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक सभी जीवो मे होती हैं। ये दस संज्ञाए भी अनुभव रूप ही हैं। इस प्रकार ज्ञान रूप और अनुभवरूप संज्ञा के आधार पर संज्ञी नही कहा जा सकता।

जिस संज्ञा के आधार पर संज्ञी शब्द व्यवहृत हुआ है, वह संज्ञा तीन प्रकार की है—दीर्घकालिकी, हेतुवादिकी और दृष्टिवादिकी। जिसमे दीर्घकालिकी संज्ञा हो वह संज्ञी है। दीर्घकालिकी संज्ञा मे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनो कालों मे घटने वाली घटनाओ पर चिन्तन होता है। दीर्घकालिकी संज्ञा को सप्रधारणसंज्ञा भी कहा है। ऐसे संज्ञी को समनस्क कहा है। देव, नारक, गर्भज तिर्यञ्च और गर्भज मनुष्य ये सभी संज्ञी हैं। इस प्रकार संसारी जीव के चौदह प्रकार है।

प्रस्तुत आगम मे अनेक दृष्टियो से और अनेक प्रश्नो के माध्यम से जीव और जीव के भेद-प्रभेदो के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है।

शरीर

भगवतीसूत्र शतक १६, उद्देशक १ मे तथा अन्य स्थलो पर भी शरीर के सम्बन्ध मे जिज्ञासाए प्रस्तुत की है। भगवान् महावीर ने शरीर के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाच प्रकार बताये है। आत्मा अरूप है, अशब्द है, अगन्ध है, अरस है और अस्पर्श है। इस कारण वह अदृश्य है। पर मूर्त शरीर से बधने के कारण वह दृग्गोचर होता है। आत्मा जब तक संसार मे रहेगा वह स्थूल या सूक्ष्म शरीर के आधार से ही रहेगा। जीव की जितनी भी प्रवृत्तियाँ हैं वे प्राय सभी शरीर के द्वारा होती है। औदारिक शरीर की निष्पत्ति स्थूल पुद्गलो के द्वारा होती है। उस शरीर का छेदन-भेदन भी होता है और मोक्ष की उपलब्धि भी इसी शरीर के द्वारा होती है। वैक्रिय शरीर के द्वारा विविध रूप निर्मित किये जा सकते हैं। मृत्यु के पश्चात् इस शरीर की अवस्थिति नही रहती। वह कपूर की तरह उड जाता है। नारक और देवो मे यह शरीर सहज होता है, मनुष्य और तिर्यञ्च मे यह शरीर लब्धि से प्राप्त होता है। विशिष्ट योगशक्तिसम्पन्न चतुर्दशपूर्वी मुनि किसी विशिष्ट प्रयोजन से जिस शरीर की संरचना करते हैं वह आहारक शरीर है। जो शरीर दीप्ति का कारण है और जिसमे आहार आदि पचाने की क्षमता है वह तैजस शरीर है। इस शरीर के अगोपाग नही होते और पूर्ववर्ती तीनो शरीरो से यह शरीर सूक्ष्म होता है। जो शरीर चारो प्रकार के शरीरो का कारण है और जिस शरीर का निर्माण ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मपुद्गलो से होता है वह कार्मणशरीर है। तैजस और कार्मण शरीर प्रत्येक संसारी जीव के साथ रहते है। इन दोनो शरीरो के छूटते ही आत्मा मुक्त बन जाता है।

इन्द्रियाँ

भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशक ४ मे गणधर गौतम की जिज्ञासा पर भगवान् महावीर ने इन्द्रियो के पाच प्रकार बताये हैं। एक निश्चित विषय का ज्ञान कराने वाली आत्म-चेतना इन्द्रिय है। ज्ञान आत्मा का गुण है, वह चेतना का अभिन्न अंग है। इसलिए आत्मा और ज्ञान के बीच मे किसी प्रकार का व्यवधान नही रहता। पर जो आत्मा कर्मपुद्गलो मे आबद्ध है, उसका ज्ञान आवृत हो जाता है। उस ज्ञान को प्रकट करने का माध्यम इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियो के भी दो प्रकार हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। इन्द्रियो का आकार विशेष द्रव्येन्द्रिय है। यह आकार संरचना पौद्गलिक है, इसलिए द्रव्येन्द्रिय के भी निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय और उपकरण द्रव्येन्द्रिय ये दो प्रकार हैं। यहाँ पर निर्वृत्ति का अर्थ आकार-रचना है। यह आकार-रचना बाह्य और आभ्यन्तर रूप से दो प्रकार की है। बाह्य

आकार प्रत्येक जीव का पृथक्-पृथक् होता है, पर सभी का आभ्यन्तर आकार एक सदृश होता है। द्रव्येन्द्रिय का दूसरा प्रकार उपकरणद्रव्येन्द्रिय है। इन्द्रिय की आभ्यन्तर निर्वृत्ति मे स्व-स्व विषय को ग्रहण करने की जो शक्ति-विशेष है, वह उपकरणद्रव्येन्द्रिय है। उपकरणद्रव्येन्द्रिय के क्षतिग्रस्त हो जाने पर निर्वृत्तिद्रव्येन्द्रिय कार्य नही कर पाती। भावेन्द्रिय के भी लब्धिभावेन्द्रिय और उपयोगभावेन्द्रिय ये दो प्रकार हैं। ज्ञान करने की क्षमता लब्धि-भावेन्द्रिय है। यह शक्ति ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और वीर्यान्तिरायकर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है। शक्ति प्राप्त होने पर भी वह शक्ति तब तक कार्यकारिणी नही होती जब तक उसका उपयोग न हो। अत ज्ञान करने की शक्ति और उस शक्ति को काम मे लेने के साधन उपलब्ध करने पर भी उपयोगभावेन्द्रिय के अभाव मे सारी उपलब्धियाँ निरर्थक हो जाती है।

भाषा

भगवतीसूत्र शतक १३, उद्देशक ७ मे भाषा के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की गई है। भाषावर्गणा के पुद्गल किस प्रकार ग्रहण किये जाते हैं, आदि के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है। वैशेषिक और नैयायिक दर्शन की तरह जैनदर्शन शब्द को आकाश का गुण नही मानता, पर वह भाषावर्गणा के पुद्गलो का एक प्रकार का विशिष्ट परिणाम मानता है। जो शब्द आत्मा के प्रयास से समुत्पन्न होते है वे प्रयोगज हैं और बिना प्रयास के जो समुत्पन्न होते हैं वे वैश्रसिक हैं, जैसे बादल की गर्जना। भाषा रूपी है या अरूपी है? इसके उत्तर मे कहा गया—भाषा रूपी है, अरूपी नही। गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि जीवो की भाषा होती है या अजीवो की? भगवान् ने समाधान दिया—जीव ही भाषा बोलते है, अजीव नही और जो बोली जाती है वही भाषा है। भाषा के सम्बन्ध मे प्रज्ञापनासूत्र की प्रस्तावना मे विस्तार से लिखा है। अत जिज्ञासु उसका अवलोकन करे।

मन और उसके प्रकार

भगवतीसूत्र शतक १३, उद्देशक ७ मे गणधर गौतम ने मन के सम्बन्ध मे जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की है। आगम साहित्य मे मन के लिए 'अनिन्द्रिय' और 'नोइन्द्रिय' शब्दो का प्रयोग हुआ है। मन इन्द्रिय तो नही है पर इन्द्रिय-सदृश है। वह भी इन्द्रियो के समान विषयो को ग्रहण करता है। मन के भी द्रव्यमन और भावमन ये दो प्रकार है। द्रव्यमन पुद्गल रूप होने से जड है तो भावमन ज्ञानावरणकर्म का क्षयोपशम रूप होने से चेतन-स्वरूप है। भावमन सभी जीवो के होता है पर द्रव्यमन सभी के नही होता। प्रस्तुत आगम मे द्रव्यमन के सम्बन्ध मे ही जिज्ञासा की गयी है कि मन आत्मा है या अन्य? भगवान् महावीर ने कहा—मन आत्मा नही पर पुद्गलस्वरूप है। मन पुद्गलस्वरूप है तो वह रूपी है या अरूपी है। समाधान दिया गया—मन रूपी है। पुन जिज्ञासा प्रस्तुत की—मन जीव के होता है या अजीव के? समाधान—मन जीव के होता है अजीव के नही और उस मन के सत्यमन, असत्यमन, मिश्रमन और व्यवहारमन, ये चार प्रकार है। दिगम्बरपरम्परा के अनुसार मन का स्थान हृदय मे है, उन्होने मन का आकार आठ पखुडी वाले कमल के सदृश माना है, पर श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार मन का स्थान सम्पूर्ण शरीर है। 'यत्र पवनस्तत्र मन' शरीर मे जहाँ-जहाँ पर पवन है, वहाँ-वहाँ पर मन है। जैसे पवन सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त रहता है वैसे मन भी सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त है।

भाव और उसके प्रकार

भगवतीसूत्र शतक १७, उद्देशक १ मे गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! भाव के कितने प्रकार है? भगवान् महावीर ने समाधान दिया—भाव के पांच प्रकार हैं। भाव का अर्थ है—कर्मों के

सयोग का वियोग से होने वाली जीव की अवस्था-विशेष। ससारी जीव अपने शुद्धस्वरूप को प्राप्त नहीं है। अनादिकाल से वह कर्ममल से लिप्त है। जब तक कर्ममल नष्ट नही होता, तब तक बन्ध, उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम प्रभृति से होने वाली नाना प्रकार की परिणतियों मे वह परिणत होता रहता है। कर्मों के उदय से होने वाली आत्मा की अवस्था औदयिक भाव है। इसे अपर शब्दो मे उदयनिष्पन्न भाव भी कह सकते हैं। यह आठो कर्मों का होता है। जब मोहकर्म का उपशम होता है तब आत्मा की जो अवस्था होती है वह औपशमिक भाव है। उदय आठो कर्मों का होता है पर उपशम केवल मोहनीयकर्म का ही होता है। उपशम काल मे मोह पूर्ण रूप से प्रभावहीन हो जाता है, पर उपशम स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्तमात्र की है। अत. जीव को पुन पुन प्रयत्न करना पडता है। कर्मों के क्षय से होने वाली आत्मा की अवस्था क्षायिक या क्षयनिष्पन्न भाव है। कर्मों का क्षय हो जाने से पुन. किसी कर्म का बन्ध नही होता। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घाति कर्मों के हलकेपन से आत्मा की जो अवस्था होती है वह क्षायोपशमिक या क्षयोपशमनिष्पन्न भाव कहलाता है। जितना आत्मा पुरुषार्थ करता है उतना ही वह कर्म के भार से हलकापन अनुभव करता है। यह हलकापन ही क्षायोपशमिक भाव है। उपशम और क्षयोपशम भाव से विपाक रूप मे उदयाभाव की स्थिति एक सदृश होती है। औपशमिक भाव मे प्रदेशरूप मे उदय नही होता, पर क्षायोपशमिक भाव मे प्रतिपल प्रतिक्षण कर्म का उदय, वेदन और क्षय होता रहता है। इस कर्मक्षय के साथ ही भविष्यकाल मे उदयप्राप्त कर्मों का उपशमन होता है। इसलिए यह भाव क्षयोपशमनिष्पन्न भाव कहलाता है। कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के बिना स्वभावत जीव मे जो परिणतियाँ होती हैं, वह पारिणामिक भाव है। इस प्रकार भाव के सम्बन्ध मे अनेक जिज्ञासाएँ गणधर गौतम के द्वारा प्रस्तुत की गई और भगवान् ने उन जिज्ञासाओ का समाधान दिया।

योग और उसके प्रकार

भगवतीसूत्र शतक १६, उद्देशक ३ में गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की— योग कितने प्रकार का है? भगवान् ने योग के तीन प्रकार बतलाये—मन, वचन और काय। योग शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है, पर वर्तमान मे मुख्य रूप से योग शब्द दो अर्थ मे व्यवहृत है— मिलन और समाधि। आज साधना-पद्धति और आसन आदि के अर्थ में उसका अधिक प्रचार है। पर जैनपरिभाषा मे योग का अर्थ मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्ति है। योग एक प्रकार का स्पन्दन है जो आत्मा और पुद्गलवर्गणा के सयोग से होता है। वीर्यान्तरायकर्म के क्षय या क्षयोपशम व नामकर्म के उदय से मन, वचन और काय वर्गणा के सयोग से जो आत्मा की प्रवृत्ति होती है वह योग है। इन तीन योगो मे काययोग ससार के प्रत्येक प्राणी मे होता है। स्थावरो मे केवल काययोग होता है। विकलेन्द्रिय और असज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवो मे काययोग और वचनयोग होते हैं। सज्ञी मनुष्य और तिर्यञ्चों मे तीनो योग होते हैं। भगवतीसूत्र शतक २५, उद्देशक १ मे इन तीनो योगो के विस्तार से पन्द्रह प्रकार भी बताये है।

कषाय

भगवतीसूत्र शतक १८, उद्देशक ४ मे भगवान् ने कषाय के क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार प्रकार बताये हैं। कषाय शब्द भी जैनधर्म का पारिभाषिक शब्द है। यह शब्द कष् और आय इन दो शब्दो के मेल से बना है। कष् का अर्थ ससार, कर्म और जन्म-मरण है। जिसके द्वारा प्राणी कर्मों से बाधा जाता है या जिससे जीव जन्म-मरण के चक्र मे पडता है, वह कषाय है। कषाय ऐसी मनोवृत्तियाँ हैं जो कलुषित हैं, इसी कारण कषाय को ससार का मूल कहा है।

उपयोग और उसके प्रकार

भगवतीसूत्र शतक १६, उद्देशक ७ मे उपयोग के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की गई है। भगवान् ने उपयोग के साकार और निराकार ये दो भेद किये और साकार उपयोग में ज्ञान और निराकार उपयोग मे दर्शन को लिया है। साकार उपयोग के आठ प्रकार और निराकार उपयोग यानी दर्शन के चार प्रकार बताये हैं। ज्ञान और दर्शन-रूप चेतना का जो व्यापार यानी प्रवृत्ति है, वह उपयोग है। उपयोग को जीव का लक्षण माना है। इसलिये प्रत्येक प्राणी मे उपयोग है, पर अविकसित प्राणियो का उपयोग अव्यक्त होता है और विकसित प्राणियो का व्यक्त होता है। उपयोग की प्रबलता का कारण है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म का क्षय और क्षयोपशम। जितना अधिक क्षयोपशम होगा उतना ही अधिक उपयोग निर्मल होगा। ज्ञानोपयोग में ज्ञेय पदार्थ की भिन्न-भिन्न आकृतियो की प्रतीति होती है, तो दर्शनोपयोग मे एकाकार प्रतीति होती है। उसमें ज्ञेय पदार्थ के अस्तित्व का ही बोध होता है। इसलिए उसमे आकार नहीं बनता। ज्ञान के जो पांच और अज्ञान के जो तीन प्रकार बताये हैं, उसका कारण सम्यक्त्व और मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के कारण ज्ञान भी अज्ञान मे बदल जाता है। मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान विशिष्ट साधको को ही होते हैं इसलिए वे ज्ञान ही हैं, अज्ञान नही। यहाँ यह भी जिज्ञासा हो सकती है—ज्ञान के पांच और दर्शन के चार ही भेद क्यो बताये? मन पर्यव को दर्शन क्यो नही कहा? उत्तर है—मन पर्यवज्ञान मे मन की विविध आकृतियो को जीव ज्ञान से पकडता है, इसलिए वह ज्ञान है। दर्शन का विषय निराकार है। इसलिए मन पर्यव दर्शन नही है।

लेश्या : एक चिन्तन

भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक २ मे गणधर गौतम ने लेश्या के सम्बन्ध में भगवान् महावीर से पूछा—भगवन्! लेश्या के कितने प्रकार हैं? भगवान् महावीर ने लेश्या के छ प्रकार बताये। वे हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल। इन छ लेश्याओ मे तीन प्रशस्त और तीन अप्रशस्त हैं। लेश्या शब्द भी जैन-धर्म का एक पारिभाषिक शब्द है। उसका अर्थ है—जो आत्मा को कर्मों से लिप्त करती है, जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है या बन्धन मे आती है, वह लेश्या है। लेश्या के भी दो प्रकार हैं—द्रव्यलेश्या और भाव-लेश्या। द्रव्यलेश्या सूक्ष्म भौतिकी तत्त्वो से निर्मित वह आणिक सरचना है जो हमारे मनोभावों और तज्जनित कर्मों का सापेक्षरूप मे कारण या कार्य बनती है। उत्तराध्ययन की टीका के अनुसार लेश्याद्रव्य कर्मवर्गणा से निर्मित हैं। आचार्य वादीवैताल शान्तिसूरि के अभिमतानुसार लेश्याद्रव्य बध्यमान कर्मप्रवाहरूप है। आचार्य हरिभद्र के अनुसार लेश्या योगपरिणाम है, जो शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओ का परिणाम है।[1]

भावलेश्या आत्मा का अध्यवसाय या अन्त करण की वृत्ति है। प सुखलालजी सघवी के शब्दो मे कहा जाय तो भावलेश्या आत्मा का मनोभाव-विशेष है जो सक्लेश और योग मे अनुगत है। सक्लेश के तीव्र तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर, मन्दतम प्रभृति अनेक भेद होने से लेश्या के भी अनेक प्रकार हैं। मनोभाव या सकल्प आन्तरिक तथ्य ही नही अपितु वे क्रियाओ के रूप मे बाह्य अभिव्यक्ति भी चाहते हैं। सकल्प ही कर्म मे रूपान्तरित होता है। अत जैनमनीषियो ने जब लेश्यापरिणाम की चर्चा की तो वे केवल मनोदशाओ के चित्रण तक ही आबद्ध नही रहे अपितु उन्होने उस मनोदशा से समुत्पन्न जीवन के कर्मक्षेत्र मे होने वाले व्यवहारो की भी चर्चा की है। इस तरह लेश्या का षड्विध वर्गीकरण किया गया है और उनके द्वारा जो विचारप्रवाह प्रवाहित होता है उस सम्बन्ध मे भी आगमकारो ने प्रकाश डाला है। किन जीवों में कितनी

---

१ (क) दर्शन और चिन्तन, भाग २, पृष्ठ २९७

(ख) अभिधानराजेन्द्र कोष, खण्ड ६, पृष्ठ ६७५

लेश्याएँ होती हैं, इस पर भी चिन्तन किया है। यह वर्णन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। विस्तारभय से हम इस पर तुलनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टि से विचार नही कर पा रहे हैं।

शतक १, उद्देशक ४ मे गणधर गौतम ने मोक्ष के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की कि मोक्ष कौन प्राप्त करता है ? भगवान् ने कहा—जो चरमशरीरी है, जिसने केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त किया है वही आत्मा सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होता है। मोक्ष आत्मा की शुद्ध स्वरूपावस्था है। कर्ममल के अभाव में कर्मबन्धन भी नही रहता और बन्धन का अभाव ही मुक्ति है। साधक का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है।

इस प्रकार जीव के सम्बन्ध मे विभिन्न दृष्टियो से चिन्तन किया गया है। यह चिन्तन इतना व्यापक है कि उस सम्पूर्ण चिन्तन को यहाँ पर प्रस्तुत नही किया जा सकता। अत मैं जिज्ञासु पाठको को यह नम्र निवेदन करना चाहूँगा कि वे मूल आगम का पारायण करे, जिससे जैनदर्शन के जीवविज्ञान का सम्यक्परिज्ञान हो सकेगा।

कर्म : एक चिन्तन

जिस प्रकार जीवविज्ञान के सम्बन्ध मे विस्तृत चिन्तन है उसी तरह कर्मविज्ञान के सम्बन्ध मे भी विविध जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की गई हैं। आचार्य देवचन्द्र ने कर्म की परिभाषा करते हुए लिखा है—जीव की क्रिया का जो हेतु है, वह कर्म है। प सुखलालजी ने लिखा है—मिथ्यात्व, कषाय, प्रभृति कारणो से जीव के द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है। कर्म के भी द्रव्य और भाव ये दो प्रकार हैं। आत्मा के मानसिक विचार भावकर्म हैं और वे मनोभाव जिस निमित्त से होते है या जो उनका प्रेरक है वह द्रव्यकर्म है। आचार्य नेमिचन्द्र के शब्दो मे कहा जाय तो पुद्गलपिण्ड द्रव्यकर्म हैं और चेतना को प्रभावित करने वाले भावकर्म हैं। आचार्य विद्यानन्दि ने अष्टसहस्री मे द्रव्यकर्म को आवरण और भावकर्म को दोष के नाम से सूचित किया है। क्योकि द्रव्यकर्म आत्मशक्तियो के प्रकट होने मे बाधक है। इसलिये उसे आवरण कहा और भावकर्म स्वय आत्मा की विभाव अवस्था है, अत दोष है। भावकर्म के होने मे द्रव्यकर्म निमित्त है और द्रव्यकर्म मे भावकर्म निमित्त है। दोनो का परस्पर मे बीजाकुर की तरह कार्यकारणभाव सम्बन्ध है। जैनदृष्टि से द्रव्यकर्म पौद्गलिक होने से मूर्त्त है। कारण से कार्य का अनुमान होता है, वैसे ही कार्य से भी कारण का अनुमान होता है। इस दृष्टि से शरीर प्रभृति कार्य मूर्त्त है तो उनका कारण कर्म भी मूर्त्त होना चाहिए। कर्म की मूर्त्तता को सिद्ध करने के लिए मनीषियो ने कुछ तर्क इस प्रकार दिए है—कर्म मूर्त्त है क्योकि उनसे सुख-दुःख आदि का अनुभव होता है, जैसे आहार से। कर्म मूर्त्त है क्योकि उनसे वेदना होती है, जिस प्रकार अग्नि से। यदि कर्म अमूर्त्त होते तो उनके कारण सुख-दुःख आदि की वेदना नही हो सकती थी।

जिज्ञासा हो सकती है कि यदि कर्ममूर्त्त है तो फिर अमूर्त्त आत्मा पर कर्म का प्रभाव किस प्रकार गिरता है ? वायु और अग्नि मूर्त्त हैं तो उनका अमूर्त्त आकाश पर प्रभाव नही होता। वैसे ही अमूर्त्त आत्मा पर मूर्त्तकर्म का प्रभाव नही होना चाहिए। उत्तर मे निवेदन है कि ज्ञान गुण अमूर्त्त है, उस अमूर्त्त गुण पर मदिरा आदि मूर्त्त वस्तुओ का असर होता है। वैसे ही अमूर्त्त जीव पर मूर्त्त कर्म का प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त अनादिकालिक कर्मसयोग के कारण आत्मा कथचित् मूर्त्त है। अनादि काल से आत्मा के साथ कर्म का सम्बन्ध रहा हुआ होने से स्वरूप से अमूर्त्त होने पर भी कथचित् वह मूर्त्त है। इस दृष्टि से मूर्त्तकर्म का आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। जब तक आत्मा कार्मण शरीर से मुक्त नही होता तब तक कर्म अपना प्रभाव दिखाते ही है। जैन मनीषियो ने आत्मा और कर्म का सम्बन्ध 'नीर-क्षीरवत्' या 'अग्नि-लोहपिण्डवत्' माना है। यहाँ पर यह भी प्रश्न समुत्पन्न हो सकता है—कर्म जड है। वे चेतन को प्रभावित करते हैं तो फिर मुक्तावस्था मे भी

वे ग्रात्मा को प्रभावित करेगे। फिर मुक्ति का ग्रर्थ क्या रहा ? यदि वे एक-दूसरे को प्रभावित नही करते हैं तो फिर बन्ध की प्रक्रिया कैसे होगी ? इस प्रश्न का उत्तर 'समयसार' ग्रन्थ मे[1] ग्राचार्य कुन्दकुन्द ने इस प्रकार दिया है—सोना कीचड मे रहता है तो भी उस पर जग नही लगता, जब कि लोहे पर जग ग्रा जाता है। शुद्धात्मा कर्मपरमाणुग्रो के बीच मे रह कर भी वह विकारी नही बनता। कर्मपरमाणु उसी ग्रात्मा को प्रभावित करते हैं, जो पूर्व रागद्वेष से ग्रसित हैं।

जब रागादि भावकर्म होते है तभी द्रव्यकर्मों को ग्रात्मा ग्रहण करता है। भावकर्म के कारण ही द्रव्य-कर्म का ग्रास्रव होता है ग्रौर वही द्रव्यकर्म समय ग्राने पर भावकर्म का कारण बन जाता है। इस प्रकार का कर्मप्रवाह सतत चलता रहता है। कर्म ग्रौर ग्रात्मा का सम्बन्ध कब से हुग्रा ? इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि एक कर्म-विशेष की ग्रपेक्षा कर्म सादि है ग्रौर कर्मप्रवाह की दृष्टि से वह ग्रनादि है। यह नहीं कि ग्रात्मा पहले कर्ममुक्त था, बाद मे कर्म से ग्राबद्ध हुग्रा। कर्म ग्रनादि हैं, ग्रनादि काल से चले ग्रा रहे हैं ग्रौर जब तक रागद्वेषरूपी कर्मबीज जल नही जाता है तब तक कर्मप्रवाह-परम्परा भी समाप्त नही होती।

भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक २ मे गणधर गौतम ने यह जिज्ञासा प्रस्तुत की कि प्राणी स्वकृत सुख ग्रौर दुःख को भोगता है या परकृत सुख ग्रौर दुःख को भोगता है ? भगवान् महावीर ने यह स्पष्ट किया कि प्राणी स्वकृत सुख-दुःख को भोगता है, परकृत सुख-दुःख को नही।

भगवतीसूत्र शतक ६, उद्देशक ९ मे ग्रौर शतक ८, उद्देशक १० मे कर्म की ग्राठ प्रकृतियाँ बताई हैं ग्रौर उनके ग्रल्प-बहुत्व पर भी चिन्तन किया है ग्रौर शतक ६, उद्देशक ३ मे ग्राठो कर्मों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। शतक ६, उद्देशक ३ मे कर्म कौन बाधता है ? इसके उत्तर मे कहा है कि तीनो वेद वाले कर्म बाधते है। ग्रसयत, सयत, सयतासयत, सभी कर्म बांधते हैं किंतु नोसयत-नोग्रसयत-नोसयतासयत यानी सिद्ध कर्म नही बाँधते हैं। इसी प्रकार सज्ञी, भवसिद्धिक, चक्षुदर्शनी, पर्याप्त ग्रौर ग्रपर्याप्त, परीत, ग्रपरीत मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी, ग्राहारक, ग्रनाहारक, कौन कर्म बाँधते हैं, इस पर भी गहराई से चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। शतक १८, उद्देशक ३ मे माकन्दीपुत्र ने भगवान् से पूछा—एक जीव ने पापकर्म किया है या ग्रब करेगा, इन दोनो मे क्या ग्रन्तर है ? भगवान् ने बाण के रूपक द्वारा इस प्रश्न का समाधान दिया। शतक १, उद्देशक ३ में गणधर गौतम ने पूछा—जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार बाधता है ? इस प्रश्न के समाधान मे भगवान् ने बाधने की सारी प्रक्रिया प्रस्तुत की।

इस तरह विविध प्रश्न कर्म के सम्बन्ध मे विभिन्न जिज्ञासुग्रो ने भगवान् महावीर के सामने रखे और भगवान् ने उन प्रश्नो का सटीक समाधान प्रस्तुत किया। वस्तुत जैनदर्शन का कर्मसिद्धान्त बहुत ही ग्रनूठा और ग्रदभुत है। ग्रागमसाहित्य मे ग्राये हुए कर्मसिद्धान्त के बीजसूत्रो को परवर्ती ग्राचार्य प्रवरो ने इतना ग्रधिक विस्तृत किया कि ग्राज लगभग एक लाख श्लोकप्रमाण श्वेताम्बर कर्मसाहित्य है, तो दो लाख श्लोक-प्रमाण दिगम्बर मनीषियो द्वारा लिखा हुग्रा कर्मसाहित्य है।

पुद्गल : एक चिन्तन

पुद्गल जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द है, जिसे ग्राधुनिक विज्ञान ने मैटर (Matter) ग्रौर न्याय-वैशेषिक दर्शनो ने भौतिक तत्त्व कहा है, उसे ही जैन दार्शनिकों ने पुद्गल कहा है। बौद्धदर्शन मे पुद्गल

---

१ समयसार २१८, २१९

शब्द का व्यवहार 'आलय-विज्ञान' या 'चेतना-सतति' रहा है। पर जैनदर्शन मे पुद्गल शब्द मूर्तद्रव्य के अर्थ मे है। केवल भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देशक १० मे अभेदोपचार से पुद्गलयुक्त आत्मा को भी पुद्गल कहा है। पर शेष सभी स्थलो पर पुद्गल को पूरण-गलनधर्मी कहा है। 'तत्त्वार्थराजवार्तिक,[1] सिद्धसेनीया 'तत्त्वार्थवृत्ति',[2] धवला[3] और हरिवंशपुराण,[4] आदि अनेक ग्रन्थो मे गलन-मिलन स्वभाव वाले पदार्थ को पुद्गल कहा है। पुद्गल वह है जिसका स्पर्श किया जा सके, जिसका स्वाद लिया जा सके, जिसकी गन्ध ली जा सके और जिसे निहारा जा सके। पुद्गल मे स्पर्श, रस, गध और वर्ण ये चारो अनिवार्य रूप से पाये जाते हैं। यह बात भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशक १० मे स्पष्ट की गई है। भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशक १० मे पुद्गल के चार प्रकार बताये हैं। (१) स्कन्ध, (२) देश, (३) प्रदेश और (४) परमाणु।[5] दो से लेकर अनन्त परमाणुओ का एकीभाव स्कन्ध है। कम से कम दो परमाणु पुद्गल के मिलने से द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है। द्विप्रदेशी स्कन्ध का जब भेद होता है तो वे दोनो परमाणु बन जाते हैं। तीन परमाणुओ के मिलने से त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है और उनके पृथक् होने पर दो विकल्प हो सकते हैं—एक तीन. . परमाणु या एक परमाणु और एक द्विप्रदेशी स्कन्ध। इसी प्रकार अनन्त परमाणुओ के स्वाभाविक मिलन से एक लोकव्यापी महास्कन्ध भी बन जाता है। आचार्य उमास्वाति ने लिखा है[6] स्कन्ध का निर्माण तीन प्रकार से होता है—भेदपूर्वक, सघातपूर्वक, भेद और सघातपूर्वक। स्कन्ध एक इकाई है। उस इकाई का बुद्धिकल्पित एक विभाग स्कन्धदेश कहलाता है। हम जिसे देश कहते हैं वह स्कन्ध मे पृथक् नही है। यदि पृथक् हो जाय तो वह स्वतन्त्र स्कन्ध बन जायेगा। स्कन्धप्रदेश स्कन्ध से अपृथक्भूत अविभाज्य अश है। अर्थात् परमाणु जब तक स्कन्धगत है तब तक वह स्कन्धप्रदेश कहलाता है। वह अविभागी अश सूक्ष्मतम है, जिसका पुन अश नही बनता। जब तक वह स्कन्धगत है वह प्रदेश है और अपनी पृथक् अवस्था मे वह परमाणु है। भगवतीसूत्र शतक ५, उद्देशक ७ मे स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि परमाणुपुद्गल अविभाज्य है, अछेद्य है, अभेद्य है, अदाह्य है और अग्राह्य है। वह तलवार की तीक्ष्ण धार पर भी रह सकता है। तलवार उसका छेदन-भेदन नही कर सकती और न जाज्वल्यमान अग्नि उसको जला सकती है। प्रदेश और परमाणु मे केवल स्कन्ध से अपृथक्भाव और पृथक्भाव का अन्तर है। अनुसधान से यह निश्चित हो चुका है कि परमाणुवाद की चर्चा सर्वप्रथम भारत में हुई और उसका श्रेय जैन मनीषियो को है।[7]

भगवतीसूत्र शतक आठ उद्देशक १ मे जीव और पुद्गल की पारस्परिक परिणति को लेकर पुद्गल के तीन भेद किये हैं—१ प्रयोगपरिणत—जो पुद्गल जीव द्वारा ग्रहण किये गए है वे प्रयोगपरिणत हैं, जैसे—इन्द्रियाँ, शरीर आदि के पुद्गल। २—मिश्रपरिणत—ऐसे पुद्गल जो जीव मुक्त होकर पुन परिणत हो

---

१. तत्त्वार्थराजवार्तिक ५।१।१।२४

२ (क) तत्त्वार्थवृत्ति ५।१

(ख) न्यायकोष पृष्ठ ५२०

३ छव्विहसठाण बहुविहि देहेहि पूरदित्ति गलदित्ति पोग्गला।

४. हरिवंशपुराण ७।३६

५. (क) भगवती. २।१० (ख) उत्तराध्ययन ३६।१०

६. तत्त्वार्थसूत्र ५।२६

७. देखिए—जैनदर्शन स्वरूप और विश्लेषण मे पुद्गल का लेख —देवेन्द्रमुनि

चुके है, जैसे—मल-मूत्र, श्लेष्म-केश आदि । ३ विस्रसापरिणत—ऐसे पुद्‌गल जिनके परिणमन मे जीव की सहायता नही होती । वे स्वय ही परिणत होते है, जैसे—बादल, इन्द्रधनुष आदि ।

शतक १४, उद्देशक ४ मे यह बताया है कि पुद्‌गल शाश्वत भी है और अशाश्वत भी हैं । वे द्रव्यरूप से शाश्वत और पर्यायरूप से अशाश्वत हैं । परमाणु सघात (स्कध) रूप मे परिणत होकर पुन परमाणु हो जाता है । इस कारण से वह द्रव्य की दृष्टि से चरम नही है किन्तु क्षेत्र, काल, भाव की दृष्टि से वह चरम भी है और अचरम भी है ।

भगवतीसूत्र शतक ५, उद्देशक ८ मे बताया है कि परमाणु, परमाणु के रूप मे कम से कम रहे तो एक समय और अधिक से अधिक समय तक रहे तो असख्यात काल तक रहता है । इसी प्रकार स्कन्ध, स्कन्ध के रूप मे कम से कम एक समय और अधिक से अधिक असख्यात काल तक रहता है । इसके बाद अनिवार्य रूप से उसमे परिवर्तन होता है । एक परमाणु स्कन्धरूप मे परिणत होकर पुन परमाणु हो जाय तो कम से कम एक समय और अधिक से अधिक असख्यात काल लग सकता है । द्वयणुक-आदि व त्र्यणुक-आदि स्कन्धरूप मे परिणत होने के बाद व परमाणु पुन परमाणु रूप मे आये तो कम से कम एक समय और अधिक से अधिक अनन्त काल लग सकता है । एक परमाणु या स्कन्ध किसी आकाशप्रदेश मे अवस्थित है । वह किसी कारण-विशेष से वहाँ से चल देता है और पुन उसी आकाशप्रदेश में कम से कम एक समय मे और अधिक से अधिक अनन्तकाल के पश्चात् आता है ।

परमाणु द्रव्य और क्षेत्र की दृष्टि से अप्रदेशी है । काल की दृष्टि से एक समय की स्थिति वाला परमाणु अप्रदेशी है और उससे अधिक समय की स्थिति वाला सप्रदेशी है । भाव की दृष्टि से एक गुण वाला अप्रदेशी है और अधिक गुण वाला सप्रदेशी है । इस प्रकार अप्रदेशित्व और सप्रदेशित्व के सम्बन्ध मे भी वहाँ विस्तार से चर्चा है ।

पुद्‌गल जड होने पर भी गतिशील है । भगवतीसूत्र शतक १६, उद्देशक ८ मे कहा है पुद्‌गल का गति-परिणाम स्वाभाविक धर्म है । धर्मास्तिकाय उसका प्रेरक नही पर सहायक है । प्रश्न है—परमाणु मे गति स्वय होती है या जीव के द्वारा प्रेरणा देने पर होती है ? उत्तर है— परमाणु मे जीवनिमित्तक कोई भी क्रिया या गति नही होती, क्योकि परमाणु जीव के द्वारा ग्रहण नही किया जा सकता और पुद्‌गल को ग्रहण किये विना पुद्‌गल मे परिणमन कराने की जीव मे सामर्थ्य नही है ।

भगवतीसूत्र शतक ५, उद्देशक ७ मे कहा गया है—परमाणु सकम्प भी होता है और अकम्प भी होता है । कदाचित् वह चचल भी होता है, नही भी होता । उसमे निरन्तर कम्पनभाव रहता ही हो, यह बात भी नहीं है और निरन्तर अकम्पनभाव रहता हो, यह बात भी नही है । द्वयणुक स्कन्ध मे कदाचित् कम्पन और कदाचित् अकम्पन दोनो होते हैं । उनके द्वय श होने से उनमे देशकम्पन और देशअकम्पन दोनो प्रकार की स्थिति होती है । त्रिप्रदेशी स्कन्ध मे भी द्विप्रदेशी स्कन्ध के सदृश कम्प और अकम्प की स्थिति होती है । केवल देशकम्प में एकवचन और द्विवचन सम्बन्धी विकल्पो मे अन्तर होता है । जैसे एक देश मे कम्प होता है, देश मे कम्प नहीं होता । देश मे कम्प होता है, देशो मे कम्प नही होता । देशों मे कम्प होता है देश मे कम्प नहीं होता । इस प्रकार चतु प्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक समझना चाहिए ।

भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशक १ मे पुद्गल परमाणु की मुख्य आठ वर्गणाएँ मानी हैं—

(१) औदारिकवर्गणा—स्थूल पुद्गलमय है। इस वर्गणा से पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवो के शरीर का निर्माण होता है।

(२) वैक्रियवर्गणा—लघु, विराट्, हल्का, भारी, दृश्य, अदृश्य विभिन्न क्रियाएँ करने मे सशक्त शरीर के योग्य पुद्गलो का समूह

(३) आहारकवर्गणा—योगशक्तिजन्य शरीर के योग्य पुद्गलसमूह।

(४) तैजसवर्गणा तैजस शरीर के योग्य पुद्गलो का समूह।

(५) कार्मणवर्गणा—ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के रूप मे परिणत होने वाले पुद्गलो का समूह, जिनसे कार्मण नामक सूक्ष्म शरीर बनता है।

(६) श्वासोच्छ्वासवर्गणा—आन-प्राण के योग्य पुद्गलो का समूह।

(७) भाषावर्गणा—भाषा के योग्य पुद्गलो का समूह।

(८) मनोवर्गणा—चिन्तन मे सहायक होने वाला पुद्गल-समूह।

यहाँ पर वर्गणा से तात्पर्य है एक जाति के पुद्गलो का समूह। पुद्गलो मे इस प्रकार की अनन्त जातियाँ है, पर यहाँ पर प्रमुख रूप से आठ जातियो का ही निर्देश किया है। इन वर्गणाओ के अवयव क्रमश सूक्ष्म और अतिप्रचय वाले होते हैं। एक पौद्गलिक पदार्थ अन्य पौद्गलिक पदार्थ के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस ये चार वर्गणाएँ अष्टस्पर्शी हैं। वे हल्की, भारी, मृदु और कठोर भी होती है। कार्मण, भाषा और मन ये तीन वर्गणाएँ चतु स्पर्शी हैं। सूक्ष्मस्कन्ध हैं। इनमे शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष ये चार स्पर्श होते हैं। श्वासोच्छ्वासवर्गणा चतु स्पर्शी और अष्टस्पर्शी दोनो प्रकार की होती है।

भगवतीसूत्र शतक १८, उद्देशक १० मे गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि परमाणु पुद्गल एक समय मे लोक के पूर्व भाग से पश्चिम भाग मे या पश्चिम के अन्त भाग से पूर्व के अन्त भाग मे, दक्षिण के अन्त से उत्तर के अन्त भाग मे, उत्तर से दक्षिण के अन्त भाग मे या नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे जाने मे समर्थ है? भगवान् ने कहा - हाँ गौतम! समर्थ है और वह सारे लोक को एक समय मे लाघ सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि परमाणु पुद्गल मे कितना सामर्थ्य रहा हुआ है।

इस प्रकार भगवतीसूत्र मे अनेक प्रश्न पुद्गल के सबध मे आये हैं। जिस प्रकार पुद्गलास्तिकाय के सम्बन्ध मे जिज्ञासाएँ है, वैसे ही अन्य अस्तिकायो के सम्बन्ध मे यत्र-तत्र जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की गई हैं। वैशेषिक, न्याय, साख्य, प्रभृति दर्शनो ने जीव, आकाश और पुद्गल ये तत्त्व माने हैं। उन्होने पुद्गलास्तिकाय के स्थान पर प्रकृति, परमाणु आदि शब्दो का उपयोग किया है। सभी द्रव्यो का स्थान आकाश है किन्तु जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य ही गति और स्थितिशील है। धर्म और अधर्म ये दोनो द्रव्य सम्पूर्ण आकाश मे नही हैं, पर आकाश के कुछ ही भाग मे हैं। वे जितने भाग मे है उस भाग को लोकाकाश कहा है। लोकाकाश के चारो ओर अनन्त आकाश है। वह आकाश अलोकाकाश के नाम से विश्रुत है। भगवतीसूत्र मे विविध प्रश्नो के द्वारा इस विषय पर बहुत ही गहराई से चिन्तन किया गया है। जहाँ पर धर्म-अधर्म, जीव-पुद्गल आदि की अवस्थिति होती है, वह लोक कहलाता है। लोक और अलोक की चर्चा भी भगवती मे विस्तार से आई है। लोक और अलोक दोनो शाश्वत हैं। लोक के द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक, भावलोक आदि भेद भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशक १ मे किये गये है। भगवती शतक १२, उद्देशक ७ मे लोक कितना विराट् है, इस पर प्रकाश डाला है।

भगवती शतक ७, उद्देशक १ मे लोक के आकार पर भी चिन्तन किया गया है। शतक ११, उद्देशक ४ मे लोक के मध्य भाग के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है। शतक ११, उद्देशक १० मे अधोलोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक का विस्तार से निरूपण है। शतक ५, उद्देशक २ मे लवणसमुद्र आदि के आकार पर विचार किया गया है। इस प्रकार लोक के सम्बन्ध मे भी अनेक जिज्ञासाएं और समाधान हैं। अन्य दर्शनो के साथ लोक के स्वरूप पर और वर्णन पर तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन किया जा सकता है, पर विस्तारभय से यहाँ कुछ न लिखकर इस सम्बन्ध मे जिज्ञासु पाठको को लेखक का 'जैनदर्शन' स्वरूप और विश्लेषण' देखने की प्रेरणा देते हैं।

समवसरण

भगवान् महावीर के युग मे अनेक मत प्रचलित थे। अनेक दार्शनिक अपने-अपने चिन्तन का प्रचार कर रहे थे। आगम की भाषा मे मत या दर्शन को समवसरण कहा है। जो समवसरण उस युग मे प्रचलित थे, उन सभी को चार भागों मे विभक्त किया है—क्रियावादी अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी।

(१) क्रियावादी की विभिन्न परिभाषाएं मिलती हैं। प्रथम परिभाषा है कर्त्ता के बिना क्रिया नही होती। इसलिए क्रिया का कर्त्ता आत्मा है। आत्मा के अस्तित्व को जो स्वीकार करता है वह क्रियावादी है। दूसरी परिभाषा है—क्रिया ही प्रधान है, ज्ञान का उतना मूल्य नहीं, इस प्रकार की विचारधारा वाले क्रियावादी हैं। तृतीय परिभाषा है—जीव-अजीव, आदि पदार्थों का जो अस्तित्व मानते हैं वे क्रियावादी है। क्रियावादियो के एक सौ अस्सी प्रकार बताये हैं।

(२) अक्रियावादी का यह मन्तव्य था कि चित्तशुद्धि की ही आवश्यकता है। इस प्रकार की विचारधारा वाले अक्रियावादी हैं अथवा जीव आदि पदार्थों को जो नही मानते हैं वे अक्रियावादी हैं। अक्रियावादी के चौरासी प्रकार हैं।

(३) अज्ञानवादी—अज्ञान ही श्रेय रूप है। ज्ञान से तीव्र कर्म का बन्धन होता है। अज्ञानी व्यक्ति को कर्मबन्धन नही होता। इस प्रकार की विचारधारा वाले अज्ञानवादी हैं। उनके सडसठ प्रकार हैं।

(४) विनयवादी—स्वर्ग, मोक्ष आदि विनय मे ही प्राप्त हो सकते हैं। जिनका निश्चित कोई भी आचारशास्त्र नही, सभी को नमस्कार करना ही जिनका लक्ष्य रहा है, वे विनयवादी हैं। विनयवादी के ३२ प्रकार हैं।

ये चारो समवसरण मिथ्यावादियो के ही बताये गये हैं। तथापि जीव आदि तत्त्वो को स्वीकार करने के कारण क्रियावादी सम्यग्दृष्टि भी हैं। शतक ३०, उद्देशक १ मे इन चारो समवसरणो पर विस्तार से विवेचन किया है।

भगवती शतक ४, उद्देशक ५ मे जम्बूद्वीप के अवसर्पिणीकाल मे जो सात कुलकर हुए हैं, उनके नाम विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशोमान, अभिचन्द्र, प्रसेनजित, मरुदेव और नाभि। कुलकरो के सम्बन्ध मे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की प्रस्तावना मे हम विस्तार से लिख चुके हैं।

कालास्यवेशी

भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक ९ मे भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के कालास्यवेशी अनगार ने भगवान् महावीर के स्थविरो से पूछा—सामायिक क्या है? प्रत्याख्यान क्या है। संयम क्या है? संवर क्या है? विवेक क्या है? व्युत्सर्ग क्या है? क्या आप इनको जानते हैं? इनके अर्थ को जानते हैं? स्थविरो ने एक ही शब्द मे उत्तर दिया—आत्मा ही सामायिक, प्रत्याख्यान, संयम आदि है और आत्मा ही उसका अर्थ है। इससे स्पष्ट है कि जैनदर्शन की जो साधना है वह सब साधना आत्मा के लिए ही है।

पुन कालास्यवेशी ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—आत्मा सामायिक आदि है तो फिर आप क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की निन्दा, गर्हा क्यो करते हैं ? क्योंकि निन्दा तो असयम है। स्थविरों ने कहा—आत्मनिन्दा असयम नही है। आत्मनिन्दा करने से दोषो से बचा जा सकता है और आत्मा सयम मे सस्थापित होता है। पर-निन्दा असयम है। वह पीठ के मांस खाने के समान निन्दनीय है। पर स्व-निन्दा वही व्यक्ति कर सकता है जिसे अपने दोषो का परिज्ञान है। इसीलिए आगमसाहित्य मे साधक के लिए 'निन्दामि, गरिहामि' आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

भगवतीसूत्र शतक १, उद्देशक १० मे गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की कि अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है कि एक जीव एक समय मे दो क्रियाएँ करता है—ईर्यापथिकी और साम्परायिकी। ये दोनो क्रियाए साथ-साथ होती हैं ?

भगवान् ने समाधान दिया—प्रस्तुत कथन मिथ्या है, क्योंकि जीव एक समय मे एक ही क्रिया कर सकता है। ईर्यापथिकी क्रिया कषायमुक्त स्थिति मे होती है तो साम्परायिकी क्रिया कषाययुक्त स्थिति मे होती है। ये दोनो परस्पर विरुद्ध है।

भगवती मे विविध प्रकार की वनस्पतियो का भी उल्लेख है। वनस्पतिविज्ञान पर प्रज्ञापना मे भी विस्तार से वर्णन है। वनस्पति अन्य जीवो की तरह श्वास ग्रहण करती है, नि श्वास छोडती है। आहार आदि ग्रहण करती है। इनके शरीर मे भी चय-उपचय, हानि-वृद्धि, सुख-दु खात्मक अनुभूति होती है। सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्रजी बोस ने अपने परीक्षणो द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वनस्पति मे क्रोध भी पैदा होता है, और वह प्रेम भी प्रदर्शित करती है। प्रेम-पूर्ण सद्व्यवहार से वनस्पति पुलकित हो जाती है और घृणापूर्ण व्यवहार से मुर्झा जाती है। बोस के प्रस्तुत परीक्षण ने समस्त वैज्ञानिक जगत् को एक अभिनव प्रेरणा प्रदान की है। जिस प्रकार वनस्पति के सबध मे वैज्ञानिको ने यह सिद्ध कर दिया है कि उसमे जीवन है, इसी प्रकार सुप्रसिद्ध भूगर्भ-वैज्ञानिक फ्रान्सिस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "Ten years under earth" में लिखा—मैंने अपनी विभिन्न यात्राओ के दौरान पृथ्वी के ऐसे-ऐसे विचित्र स्वरूप देखे हैं, जो आधुनिक पदार्थविज्ञान के विपरीत हैं। उस स्वरूप को वर्तमान वैज्ञानिक अपने आधुनिक नियमो से समझा नही सकते। मुझे ऐसा लगता है, प्राचीन मनीषियो ने पृथ्वी मे जो जीवत्व शक्ति की कल्पना की है, वह अधिक यथार्थ है, सत्य है। भगवती-सूत्र मे तेजोलेश्या की अपरिमेय शक्ति प्रतिपादित की है। वह अग, बग, कलिंग आदि सोलह जनपदो को नष्ट कर सकती है। वह शक्ति अतीत काल मे साधना द्वारा उपलब्ध होती थी तो आज विज्ञान ने एटम बम आदि अणुशक्ति को विज्ञान के द्वारा सिद्ध कर दिया है कि पुद्गल की शक्ति कितनी महान् होती है।

इस प्रकार भगवतीसूत्र मे सहस्रो विषयो पर गहराई से चिन्तन हुआ है। यह चिन्तन अपने आप मे महत्त्वपूर्ण है। इस आगम में स्वय श्रमण भगवान् महावीर के जीवन के और उसके शिष्यो के एव गृहस्थ उपासकों के व अन्यतीर्थिक सन्यासियो के और उनकी मान्यताओ के विस्तृत प्रसग आये हैं। आजीवक सम्प्रदाय के अधिनायक गोशालक के सम्बन्ध मे जितनी विस्तृत सामग्री प्रस्तुत आगम मे है, उतनी अन्य आगमो मे नही है। ऐतिहासिक तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ और उनके अनुयायियो का तथा उनके चातुर्याम धर्म के सम्बन्ध मे प्रस्तुत आगम मे पर्याप्त जानकारी है। प्रस्तुत आगम से यह सिद्ध है कि भगवान् महावीर के समय मे भगवान् पार्श्वनाथ के सैकडो श्रमण थे। उन श्रमणो ने भगवान् महावीर के अनुयायियो से और उनके शिष्यो से चर्चाए की। वे भगवान् महावीर के ज्ञान से प्रभावित हुए। उन्होने चातुर्याम धर्म के स्थान पर पच महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार किया। इस आगम मे महाराजा कूणिक और महाराजा चेटक के बीच जो महाशिलाकण्टक और

रथमूसल सग्राम हुए थे, उन युद्धो का मार्मिक वर्णन विस्तार के साथ दिया गया है। इन युद्धो मे क्रमश चौरासी लाख और छियानवै लाख वीर योद्धाओ का सहार हुआ था। युद्ध कितना संहारकारी होता है, देश की सम्पत्ति भी विपत्ति के रूप मे किस प्रकार परिवर्तित हो जाती है। युद्ध मे उन शक्तियो का सहार हुआ जो देश की अनमोल निधि थी। इसलिए युद्ध की भयकरता बताकर उससे बचने का सकेत भी प्रस्तुत आगम मे है। इक्कीसवे शतक से लेकर तेईसवे शतक तक वनस्पतियो का जो वर्गीकरण किया गया है, वह बहुत ही दिलचस्प है। इस वर्णन को पढते समय ऐसा लगता है कि जैनमनीषी वनस्पति के सम्बन्ध मे व्यापक जानकारी रखते थे।

वनस्पतिकाय के जीव किस ऋतु मे अधिक आहार करते हैं और किस ऋतु में कम आहार करते हैं, इस पर भी प्रकाश डाला है। वर्तमान विज्ञान की दृष्टि से यह प्रसग चिन्तनीय है। प्रस्तुत आगम मे 'आलूअ' शब्द का प्रयोग अनन्तजीव वाली वनस्पति मे हुआ है। यह 'आलू' अथवा 'आलुक' वनस्पति वर्तमान मे प्रचलित "आलू" मे भिन्न प्रकार की थी या यही हे? भारत मे पहले आलू की खेती होती थी या नही, यह भी अन्वेषणीय है।

प्रस्तुत आगम मे इतिहास, भूगोल, खगोल, समाज और सस्कृति, धर्म और दर्शन और उस युग की राजनीति आदि पर जो विश्लेषण किया गया है, वह शोधार्थियो के लिए अद्भुत है, अनूठा है। प्रश्नोत्तरो के माध्यम से जो आध्यात्मिक गुरु गभीर तत्त्व समुद्घाटित हुए हैं, वह बोधप्रद है।

प्रस्तुत आगम मे आजीवक सघ के आचार्य मखलि गोशालक, जमाली, शिवराजर्षि, स्कन्धक सन्यासी आदि के प्रकरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उस युग मे वर्तमान युग की तरह सकीर्ण सम्प्रदायवाद नही था। उस युग के सन्यासी सत्य का प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते थे। यही कारण है कि स्कन्धक सन्यासी जिज्ञासु बनकर भगवान् महावीर के पास पहुँचे और जब उनकी जिज्ञासाओ का समाधान हो गया तो सम्प्रदायवाद सत्य को स्वीकार करने मे बाधक नही बना। तत्त्व-चर्चा की दृष्टि से जयन्ती श्रमणोपासिका, मद्दुक श्रमणोपासक, रोह अनगार, सोमिल ब्राह्मण, कालास्यवेशीपुत्त और तु गिया नगरी के श्रावको के प्रश्न मननीय हैं। प्रस्तुत आगम मे साधु, श्रावक और श्राविका के द्वारा किए गए प्रश्न आये हैं, पर किसी भी साध्वी के प्रश्न नही आय है। क्यो नही साध्वियो ने जिज्ञासाए व्यक्त की? वे समवसरण मे उपस्थित होती थी, उनके अन्तर्मानस मे भी जिज्ञासाओ का सागर उमडता होगा, पर वे मौन क्यो रही? यह विचारणीय है। प्रस्तुत आगम मे जहाँ आजीवक, वैदिक परम्परा के तापस और परिव्राजक भगवान् पार्श्वनाथ के श्रमण और भगवान् महावीर के चतुर्विध सघ का उसमे निर्देश है, तथागत बुद्ध महावीर के समकालीन थे और दोनो का विहरण-क्षेत्र भी बिहार आदि प्रदेश थ, पर न तो स्वय बुद्ध का भगवान् महावीर से साक्षात्कार हुआ और न किसी भिक्षु का ही। ऐसा क्यो? यह भी विचारणीय है। इसके अतिरिक्त पूर्णकाश्यप, अजितकेशकम्बल प्रवृद्ध कात्यायन, सजयवेलट्ठिपुत्त, आदि जो अपने आपको जिन मानते थे तथा तीर्थंकर कहते थे, वे भी भगवान् महावीर से नही मिले हैं। यह भी चिन्तनीय है। गणित की दृष्टि से पार्श्वापत्यीय गागेय अनगार के प्रश्नोत्तर अत्यन्त मूल्यवान है।

भगवतीसूत्र का पर्यवेक्षण करने मे यह भी पता चलता है कि भगवान् महावीर ने साध्वाचार के सम्बन्ध मे एक विशेष क्रान्ति की थी और उस क्रान्ति से भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमण अपरिचित थे। भगवान् महावीर ने स्त्रीत्याग और रात्रिभोजनविरमण रूप दो नियम बढाय। उत्तराध्ययन मे केशी-गौतम सवाद से

स्पष्ट है कि महावीर ने पार्श्वनाथ की परम्परा मे प्रचलित रग-बिरगे वस्त्रो के स्थान पर श्वेत वस्त्रो का उपयोग श्रमण के लिए आवश्यक माना। प्रतिक्रमण वर्षावास आदि कल्प मे भी परिष्कार किया। पार्श्वापत्य स्थविरो को यह भी पता नही था कि भगवान् महावीर तीर्थंकर है। इसीलिए वे पहले वन्दन नमस्कार नही करते और न किसी प्रकार का विनयभाव ही दिखलाते हैं। वे सहज जिज्ञासा प्रस्तुत कर देते हैं। जब वे समाधान सुनते है तो उन्हे आत्मविश्वास हो जाता है कि भगवान् महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। तीर्थंकर हैं। तभी वे नमस्कार करते हैं और चातुर्याम धर्म को छोडकर पच महाव्रत धर्म को स्वीकार करते हैं।

प्रस्तुत आगम मे देवेन्द्र शक्र से भयभीत बना हुआ असुरेन्द्र चमर भगवान् महावीर की शरण मे आकर बच जाता है। भौतिक वैभवसम्पन्न शक्ति भी जब कषाय से उत्प्रेरित होती है तो वह पागल प्राणी की तरह आचरण करने लगती है। स्वर्ग के देवो का महत्त्व भौतिक दृष्टि से भले ही रहा हो पर आध्यात्मिक दृष्टि से वे तिर्यंच से भी एक कदम पीछे हैं। स्वर्गप्राप्ति का कारण है उत्कृष्ट क्रियाकाण्ड का आचरण। यही कारण है कि जैन श्रमण वेशधारी साधक जो मिथ्यात्वी है, वह भी नवग्रैवेयक तक पहुँच जाता है, जबकि अन्य तापस आदि उस स्थान पर नही पहुँच पाते। हमारी दृष्टि मे इसका यही कारण हो सकता कि जैन श्रमणो का आचार अहिंसाप्रधान था। इसमे हिंसा आदि से पूर्ण रूप से बचा जाता है। जबकि अन्य तापस आदि उत्कृष्ट कठोर साधना तो करते थे, पर साथ ही कन्दमूल फलो का आहार भी करते, यज्ञ आदि भी करते। स्नान-आदि के द्वारा षट्काय के जीवो की विराधना भी करते। इस हिंसा आदि के कारण ही वे उतनी उत्क्रान्ति नही कर पाते थे। दोनो ही मिथ्या-दृष्टि होने पर भी हिंसा के कारण ही ऊँचे स्वर्ग को प्राप्त नही कर सकते।

भगवान् महावीर के समय यह मान्यता प्रचलित थी कि युद्ध मे मरने वाले स्वर्ग मे जाते हैं। इस मान्यता का निरसन भी प्रस्तुत आगम मे किया गया है। युद्ध से स्वर्ग प्राप्त नही होता अपितु न्यायपूर्वक युद्ध करने के पश्चात् युद्धकर्ता अपने दुष्कृत्यो पर अन्तर्हृदय से पश्चात्ताप करता है। उस पश्चात्ताप से आत्मा की शुद्धि होती है और वह स्वर्ग मे जाता है। गीता के "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्ग" के रहस्य का उद्घाटन बहुत ही आकर्षक ढग से प्रस्तुत आगम मे हुआ है।

प्रस्तुत आगम मे कितनी ही बाते पुन-पुन आई हैं। इसका कारण पिष्टपेषण नही, अपितु स्थान-भेद, पृच्छकभेद और कालभेद है। प्रश्नोत्तर शैली मे होने के कारण जिज्ञासु को समझाने के लिये उसकी पृष्ठभूमि बनाना आवश्यक ही नही अनिवार्य होता है। जैसा प्रश्नकार का प्रश्न, फिर उत्तर मे उसी प्रश्न का पुनरुच्चारण करना और उपसहार मे उस प्रश्न को पुन दोहराना। कितने ही समालोचको का यह भी कहना है कि अन्य आगमो की तरह भगवती का विवेचन विषयबद्ध, क्रमबद्ध और व्यवस्थित नही है। प्रश्नो का सकलन भी क्रमबद्ध नही हुआ है। उसके लिए मेरा नम्र निवेदन है कि यह इस आगम की अपनी महत्ता है, प्रामाणिकता है। गणधर गौतम के या अन्य जिस किसी के भी अन्तर्मानस मे जिज्ञासाएं उद्बुद्ध हुई, उन्होने भगवान् महावीर के सामने प्रस्तुत की और भगवान् ने उनका समाधान किया। सकलनकर्ता गणधर सुधर्मा स्वामी ने उस क्रम मे अपनी ओर से कोई परिवर्तन नही किया और उन प्रश्नो को उसी रूप मे रहने दिया। यह दोष नही किन्तु आगम की प्रामाणिकता को ही पुष्ट करना है।

कुछ समालोचक यह भी आक्षेप करते हैं कि प्रस्तुत आगम मे राजप्रश्नीय, औपपातिक, प्रज्ञापना, जीवाभिगम, प्रश्नव्याकरण और नन्दी सूत्र म वर्णित विषयो के अवलोकन का सूचन किया गया है। इसलिए भगवती की रचना इन आगमो की रचना के बाद मे होनी चाहिए। इस सम्बन्ध मे भी यह निवेदन है कि यह जो सूचन है वह आगम-लेखन के काल का है। आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाक्षमण ने जब आगमो का लेखन किया

तब क्रमश आगम नही लिखे। पूर्व लिखित आगमो मे जो विषयवर्णन आ चुका था, उसकी पुनरावृत्ति से बचने के लिए पूर्व लिखित आगमो का निर्देश किया है। यह सत्य है कि भगवतीसूत्र के अर्थ के प्ररूपक स्वय भगवान् महावीर हैं और सूत्र के रचयिता गणधर सुधर्मा हैं।

प्रस्तुत आगम की भाषा प्राकृत है। इसमे शौरसेनी के प्रयोग भी कहीं-कही पर प्राप्त होते हैं। किन्तु देशी शब्दो के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते है। भाषा सरल व सरस है। अनेक प्रकरण कथाशैली मे लिखे गये हैं। जीवनप्रसगो, घटनाओ और रूपको के माध्यम से कठिन विषयों को सरल करके प्रस्तुत किया गया है। मुख्य रूप से यह आगम गद्यशैली मे लिखा हुआ है। प्रतिपाद्य विषय का सकलन करने की दृष्टि से सग्रहणीय गाथाओ के रूप मे पद्य भाग भी प्राप्त होता है। कही-कही पर स्वतन्त्र रूप से प्रश्नोत्तर हैं, तो कही पर घटनाओ के पश्चात् प्रश्नोत्तर आये हैं। जैन आगमो की भाषा को कुछ मनीषी आर्ष प्राकृत कहते हैं। यह सत्य है कि जैन आगमो मे भाषा को उतना महत्त्व नहीं दिया है जितना भावो को दिया है। जैन मनीषियो का यह मानना रहा है कि भाषा आत्म-शुद्धि या आत्म-विकास का कारण नहीं है। वह केवल विचारो का वाहन है।

मगलाचरण

प्रस्तुत आगम मे प्रथम मगलाचरण नमस्कार महामन्त्र मे और उसके पश्चात् 'नमो बभीए लिवीए' 'नमो सुयस्स' के रूप मे किया है। उसके पश्चात् १५ वें, १७ वे, २३ वें और २६ वें शतक के प्रारम्भ मे भी 'नमो सुयदेवयाए भगवईए' इस पद के द्वारा मगलाचरण किया गया है। इस प्रकार ६ स्थानो पर मगलाचरण है, जबकि अन्य आगमो मे एक स्थान पर भी मगलाचरण नही मिलता है।

प्रस्तुत आगम के उपसहार मे "इक्कचत्तालीसइम रासीजुम्मसय समत्त" यह समाप्तिसूचक पद उपलब्ध है। इस पद मे यह बताया गया है कि इसमे १०१ शतक थे। पर वर्तमान मे केवल ४१ शतक ही उपलब्ध होते हैं। समाप्तिसूचक इस पद के पश्चात् यह उल्लेख मिलता है कि—"सव्वाए भगवईए अट्ठतीस सय सयाण (१३८) उद्देसगाण १९२५" इन शतको की सख्या अर्थात् अवान्तर शतको को मिलाकर कुल शतक १३८ है और उद्देशक १९२५ हैं।

प्रथम शतक से बत्तीसवे शतक तक और इकतालीसवे शतक मे कोई अवान्तर शतक नही है। तेतीसवे शतक से उनचालीसवें शतक तक जो सात शतक हैं, उनमे बारह-बारह अवान्तर शतक हैं। चालीसवे शतक मे इक्कीस अवान्तर शतक हैं। अत इन आठ शतको की परिगणना १०५ अवान्तर शतको के रूप मे की गई है। इस तरह अवान्तर शतक रहित तेतीस शतको और १०५ अवान्तर शतक वाले आठ शतको को मिलाकर १३८ शतक बताये गये हैं। किन्तु सग्रहणी पद मे जो उद्देशको की सख्या 'एक हजार नौ सौ पच्चीस' बताई गई है, उसका आधार अन्वेषणा करने पर भी प्राप्त नही होता। प्रस्तुत आगम के मूल पाठ मे इसके शतको और अवान्तर शतको की उद्देशको की सख्या दी गई है। उसमे चालीसवें शतक के इक्कीस अवान्तर शतको में से अन्तिम सोलह से इक्कीस अवान्तर शतको के उद्देशको की सख्या स्पष्ट रूप से नही दी गई है, किन्तु जैसे इस शतक से, पहले पन्द्रहवे अवान्तर शतक से पहले प्रत्येक की उद्देशक सख्या ग्यारह बताई है, उसी तरह शेष अवान्तर शतको मे से प्रत्येक की उद्देशक सख्या ग्यारह-ग्यारह मान ले तो व्याख्याप्रज्ञप्ति के कुल उद्देशको की सख्या "एक हजार आठ सौ तेरासी" होती है। कितनी प्रतियो मे "उद्देसगाण" इतना ही पाठ प्राप्त होता है। सख्या का निर्देश नही किया गया है। इसके बाद एक गाथा है, जिसमे व्याख्याप्रज्ञप्ति की पदसख्या चौरासी लाख बताई है। आचार्य अभयदेव ने इस गाथा की "विशिष्ट सम्प्रदायगम्यानि" कह कर व्याख्या की है। इसके बाद की गाथा मे सघ की समुद्र के साथ तुलना की है और गौतम प्रभृति गणधरो को व भगवती प्रभृति

द्वादशांगी रूप गणिपिटक को नमस्कार किया है। अन्त में शान्तिकर श्रुतदेवता का स्मरण किया गया है। साथ ही कुम्भधर ब्रह्मशान्ति यक्ष "वैरोटया विद्यादेवी और अन्त हुण्डी" नामक देवी को स्मरण किया है। आचार्य अभयदेव का मन्तव्य है कि जितने भी नमस्कारपरक उल्लेख हैं, वे सभी लिपिकार और प्रतिलिपिकार द्वारा किये गये हैं। मूर्धन्य मनीषियो का मानना है कि नमोक्कार महामन्त्र प्रथम बार इस अग मे लिपिबद्ध हुआ है।

यह आगम प्रश्नोत्तर शैली मे आबद्ध है। गौतम की जिज्ञासाओ का श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा सटीक समाधान दिया गया है। इस अग मे दर्शन सम्बन्धी, आचार सम्बन्धी, लोक-परलोक सम्बन्धी आदि अनेक विषयो की चर्चाए हुई हैं। प्रश्नोत्तरशैली शास्त्ररचना की प्राचीनतम शैली है। इस शैली के दर्शन वैदिक परम्परा के मान्य उपनिषद् ग्रन्थो मे भी होते हैं। यह आगम ज्ञान का महासागर है। कुछ बाते ऐसी भी हैं जो सामान्य पाठकों की समझ मे नही आती। उस सम्बन्ध में वृत्तिकार आचार्य अभयदेव भी मौन रहे हैं। मनीषियो को उस पर चिन्तन करने की आवश्यकता है।

व्याख्यासाहित्य

भगवतीसूत्र मूल मे ही इतना विस्तृत रहा कि इस पर मनीषी आचार्यों ने व्याख्याएँ कम लिखी हैं। इन पर न निर्युक्ति लिखी गयी, न भाष्य लिखा गया और न विस्तार से चूर्णि ही लिखी गयी। यो एक अतिलघु चूर्णि प्रस्तुत आगम पर है, पर वह भी अप्रकाशित है। उसके लेखक कौन रहे हैं, यह विज्ञो के लिए अन्वेषणीय है।

सर्वप्रथम भगवतीसूत्र पर नवागी टीकाकार आचार्य अभयदेव ने व्याख्याप्रज्ञप्तिवृत्ति के नाम से एक वृत्ति लिखी है जो वृत्ति मूलानुसारी है। यह वृत्ति बहुत ही सक्षिप्त और शब्दार्थप्रधान है। इस वृत्ति मे जहाँ-तहाँ अनेक उद्धरण दिये गये हैं। इन उद्धरणो से आगम के गम्भीर रहस्यो को समझने मे सहायता प्राप्त होती है। आचार्य अभयदेव ने अपनी वृत्ति मे अनेक पाठान्तर भी दिये है और व्याख्याभेद भी दिये है, जो अपने आप मे बडे महत्त्वपूर्ण हैं। व्याख्या में सर्वप्रथम आचार्य ने जिनेश्वर देव को नमस्कार किया है। उसके पश्चात् भगवान् महावीर, गणधर सुधर्मा और अनुयोगवृद्धजनो को व सर्वज्ञप्रवचन को श्रद्धास्निग्ध शब्दो मे नमस्कार किया है। उसके पश्चात् आचार्य ने व्याख्याप्रज्ञप्ति की प्राचीन टीका और चूर्णि तथा जीवाजीवाभिगम आदि की वृत्तियो की सहायता से प्रस्तुत आगम पर विवेचन करने का सकल्प किया है।[1]

वृत्तिकार ने व्याख्याप्रज्ञप्ति के विविध दृष्टियो से दस अर्थ भी बताये हैं, जो उनकी प्रखर प्रतिभा के स्पष्ट परिचायक हैं। व्याख्या मे यत्र-तत्र अर्थवैविध्य दृग्गोचर होता है। मनीषियो का यह मानना है कि आचार्य अभयदेव ने जो प्राचीन टीका का उल्लेख किया है वह टीका आचार्य शीलाक की होनी चाहिए, पर वह टीका आज अनुपलब्ध है। आचार्य अभयदेव ने कही पर भी उस प्राचीन टीकाकार का नाम निर्देश नही किया है।

अनुश्रुति है कि आचार्य शीलाक ने नौ अगो पर टीका लिखी थी। वर्तमान मे आचाराग और सूत्रकृताग पर ही उनकी टीकाए प्राप्त हैं शेष सात आगमो पर नही। आचार्य शीलाक के अतिरिक्त अन्य किसी भी

---

१. नत्वा श्री वर्धमानाय श्रीमते च सुधर्म्मणे।
सर्वानुयोगवृद्धेभ्यो वाण्यै सर्वविदस्तथा ॥
एतट्टीका चूर्णी जीवाभिगमादिवृत्तिलेशा च।
सयोज्य पञ्चमाङ्ग विवृणोमि विशेषत किञ्चित् ॥
—व्याख्याप्रज्ञप्ति टीका २, ३

आचार्य ने व्याख्या लिखी हो यह उल्लेख प्राचीन साहित्य मे नही है। स्वय आचार्य अभयदेव ने अपनी वृत्ति के प्रारम्भ मे चूर्णि का उल्लेख किया है, अत प्राचीन टीका, चूर्णि नही हो सकती। वह अन्य वृत्ति ही होगी।

प्रत्येक शतक की वृत्ति के अन्त मे आचार्य अभयदेव ने वृत्तिसमाप्तिसूचक एक-एक श्लोक दिया है। वृत्ति के अन्त मे आचार्य ने अपनी गुरुपरम्परा बताते हुए लिखा है - विक्रम सवत् ११२८ मे अणहिल पाटण नगर मे प्रस्तुत वृत्ति लिखी गई। इस वृत्ति का श्लोकप्रमाण अठारह हजार छ सौ सोलह है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति पर दूसरी वृत्ति आचार्य मलयगिरि की है। यह वृत्ति द्वितीय शतक वृत्ति के रूप में विश्रुत है, जिसका श्लोकप्रमाण तीन हजार सात सौ पचास है। विक्रम सवत् १५८३ मे हर्षकुल ने भगवती पर एक टीका लिखी। दानशेखर ने व्याख्याप्रज्ञप्ति लघुवृत्ति लिखी है। भावसागर ने और पद्मसुन्दर गणि ने भी व्याख्याएँ लिखी हैं। बीसवी सदी मे स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री घासीलालजी म ने भी भगवती पर व्याख्या लिखी है। इन सभी वृत्तियो की भाषा सस्कृत रही।

जब सस्कृत प्राकृत भाषाओ मे टीकाओ की सख्या अत्यधिक बढ गई और उन टीकाओ मे दार्शनिक चर्चाएँ चरम सीमा पर पहुँच गई, जनसाधारण के लिए उन टीकाओ को समझना जब बहुत ही कठिन हो गया तब जनहित की दृष्टि से आगमो की शब्दार्थप्रधान सक्षिप्त टीकाएँ निर्मित हुई। ये टीकाएँ बहुत सक्षिप्त लोक-भाषाओ मे सरल और सुबोध शैली मे लिखी गयी। विक्रम की अठारहवी शताब्दी मे स्थानकवासी आचार्य मुनि धर्मसिहजी ने टब्बाओ का निर्माण किया। कहा जाता है कि उन्होने सत्ताईस आगमो पर बालावबोध टब्बे लिखे थे। उसमे एक टब्बा व्याख्याप्रज्ञप्ति पर था। धर्मसिह मुनि ने भगवती का एक यन्त्र भी लिखा था।

टब्बा के पश्चात् अनुवाद प्रारम्भ हुआ। मुख्य रूप से आगम साहित्य का अनुवाद तीन भाषाओ मे उपलब्ध है—अग्रेजी, गुजराती और हिन्दी। भगवतीसूत्र के १४वे शतक का अनुवाद Hoernle Appendix ने किया और गुजराती अनुवाद प भगवानदास दोशी, प बेचरदास दोशी, गोपालदास जीवाभाई पटेल और घासीलालजी म आदि ने किया। हिन्दी अनुवाद आचार्य अमोलकऋषिजी, मदनकुमार मेहता, प घेवरचन्दजी बाठिया आदि ने किया है।

अद्यावधि मुद्रित भगवतीसूत्र

सन् १९१८-२१ मे व्याख्याप्रज्ञप्ति अभयदेव वृत्ति सहित धनपतसिंह रायबहादुर द्वारा बनारस से प्रकाशित हुई जो १४ शतक तक ही मुद्रित हुई थी। सन १९१८ से १९२१ मे अभयदेव वृत्ति सहित आगमोदय समिति बम्बई मे व्याख्याप्रज्ञप्ति प्रकाशित हुई है। सन् १९३७-४० मे ऋषभदेवजी केशरीमल जैन श्वेताम्बर सस्था रतलाम मे अभयदेववृत्ति सहित चौदह शतक प्रकाशित हुए। विक्रम सवत् १९७४-१९७९ मे छट्ठे शतक तक अभयदेववृत्ति व गुजराती अनुवाद के साथ प. बेचरदास दोशी का अनुवाद जिनागम प्रकाशन सभा, बम्बई से प्रकाशित हुआ और विक्रम सवत् १९८५ मे भगवती शतक सातवे से पन्द्रहवे शतक तक मूल व गुजराती अनुवाद के साथ भगवानदास दोशी ने गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद मे प्रकाशित किया। १९८८ मे जैन साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट अहमदाबाद मे मूल व गुजराती अनुवाद प्रकाश मे आया।

सन् १९३८ मे गोपालदास जीवाभाई पटेल ने भगवती का सक्षेप मे सार गुजराती छायानुवाद के साथ जैन साहित्य प्रकाशन समिति अहमदाबाद से प्रकाशित करवाया।

आचार्य अमोलकऋषिजी म ने बत्तीस आगमो के हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत आगम का भी हिन्दी अनुवाद हैदराबाद से प्रकाशित करवाया।

वि सं. २०११ मे मदनकुमार मेहता ने भगवतीसूत्र शतक एक से बीस तक हिन्दी मे विषयानुवाद श्रुत-प्रकाशन मन्दिर कलकत्ता से प्रकाशित करवाया।

सन् १९३५ मे भगवती विशेष पद व्याख्या दानशेखर द्वारा विरचित ऋषभदेवजी केशरीमलजी जैन श्वेताम्बर सस्था रतलाम से प्रकाशित हुई है।

सन् १९६१ मे हिन्दी और गुजराती अनुवाद के साथ पूज्य घासीलालजी म. द्वारा विरचित सस्कृत व्याख्या जैन शास्त्रोद्धार समिति राजकोट से अनेक भागो मे प्रकाशित हुई।

विक्रम सवत् १९१४ मे पडित बेचरदास जीवराज दोशी द्वारा सम्पादित "विवाहपण्णत्तिसुत्त" प्रकाशित हुआ। सन् १९७४ से "विवाहपण्णत्तिसुत्त" के तीन भाग महावीर जैन विद्यालय बम्बई से मूल रूप मे प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकाशन की अपनी मौलिक विशेषता है। इसका मूल पाठ प्राचीनतम प्रतियो के आधार से तैयार किया गया है। पाठान्तर और शोधपूर्ण परिशिष्ट भी दिये गये है। शोधार्थियो के लिए प्रस्तुत आगम अत्यन्त उपयोगी है।

विक्रम सवत २०२१ मे मुनि नथमलजी द्वारा सम्पादित भगवई सूत्र का मूल पाठ जैन विश्वभारती लाडनू मे प्रकाशित हुआ है। इस प्रति की यह विशेषता है कि इसमे जाव शब्द की पूर्ति की गई है। "सुत्तागमे" में मुनि पुप्फभिक्खुजी ने ३२ आगमो के साथ भगवती का मूल पाठ भी प्रकाशित किया है। सस्कृतिरक्षकसघ सैलाना से "अग सुत्ताणि" के भागो मे भी मूल रूप मे भगवतीसूत्र प्रकाशित है। भगवतीसूत्र का हिन्दी अनुवाद विवेचन के साथ पण्डित घेवरचन्दजी बाठिया द्वारा सम्पादित ७ भाग "साधुमार्गी सस्कृति रक्षक सघ सैलाना" से प्रकाशित हुए। विवेचन सक्षिप्त और सारपूर्ण है। भगवतीसूत्र पर आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा. और सागरानन्द सूरीश्वरजी के भी प्रवचनो के अनेक भाग प्रकाशित हुए हैं। पर वे प्रवचन सम्पूर्ण भगवतीसूत्र पर नही हैं। एक लेखक ने भगवती पर शोधप्रबन्ध भी अग्रेजी मे प्रकाशित किया है और तेरापथी आचार्य जीतमलजी ने भगवती की जोड लिखी थी, उसका भी प्रथम भाग लाडनू से प्रकाशित हो चुका था।

प्रस्तुत आगम

स्वर्गीय महामहिम युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी महाराज के कुशल नेतृत्व मे आगमबत्तीसी का कार्य प्रारम्भ हुआ। वह कार्य अनेक मूर्धन्य मनीषियो के सहयोग से शीघ्रातिशीघ्र सम्पादित कर पाठको के कर-कमलो में पहुँचाने का निर्णय लिया गया। पण्डितवर मधुरवक्ता बहुश्रुत श्री अमरमुनिजी ने यह अनुवाद किया है। श्री अमरमुनिजी महाराज एक प्रतिभासम्पन्न सतरत्न है। आप आचार्य सम्राट् आत्मारामजी महाराज के पौत्र शिष्य हैं और भण्डारी श्री पद्मचन्द्रजी महाराज के सुशिष्य है। श्री अमरमुनिजी एक सफल प्रवक्ता भी हैं। उनकी विमल वाणी मे प्रेरणा है। प्रकृति से उनकी वाणी मे सहज मधुरता है। जब वे प्रवचन करते हैं तो श्रोता आनद से झूम उठते है। जब उनकी सगीत की स्वरलहरियाँ झनझनाती है तो श्रोताओ के हृदयकमल खिल उठते हैं। यही कारण है कि आप 'वाणी के जादूगर' के रूप मे विश्रुत है। आपने लघुवय मे सयमसाधना की ओर कदम बढाये और गुरु-चरणो मे बैठकर आगमो का अध्ययन किया। आपकी प्रतिभा को निहार कर स्वर्गीय उपाध्याय श्री फूलचन्दजी महाराज ने आपको 'श्रुतवारिधि' की उपाधि से समलकृत किया। आपकी प्रबल प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर पजाब, हरियाणा और देहली आदि मे यत्र-तत्र धर्मस्थानक और विद्यालयो की सस्थापना हुई। आपके प्रवचनो में जैन और अजैन सभी विशाल सख्या मे समुपस्थित होते हैं। इसीलिए विश्वसन्त उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म. ने मेरठ मे आपको 'उतरभारत केसरी' की उपाधि प्रदान की। आपसे समाज को बहुत कुछ आशा है।

जहाँ आप प्रवचनकार हैं, कवि हैं, गायक हैं, वहाँ आप एक कुशल सम्पादक भी हैं। आपने आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी महाराज द्वारा लिखित "जैनतत्त्वकलिका" और जैनागमो में अष्टाग योग पर लिखित 'जैनयोग - साधना और सिद्धान्त' ग्रन्थो का सुन्दर सम्पादन किया है। "व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र" मे आपने बहुत सुन्दर सम्पादन कला का चमत्कार प्रदर्शित किया है। आपने प्रस्तुत आगम के प्रत्येक शतक मे सर्वप्रथम सक्षेप मे सार दिया है, जिससे पाठक उस शतक मे आए हुए विषय को सहज रूप मे समझ सकता है। भावानुवाद के साथ यत्र-तत्र विवेचन भी किया है। विवेचन विषयवस्तु को स्पष्ट करने के लिए बहुत उपयोगी है। यह विवेचन न अति सक्षिप्त है और न अधिक विस्तृत ही। इस विवेचन मे प्राचीन टीकाओ का भी यत्र-तत्र उपयोग किया गया है। इस प्रकार इस आगम का विवेचन प्रबुद्ध पाठको के लिए अतीव उपयोगी है। इसके स्वाध्याय से पाठकगण अपने जीवन को उज्ज्वल और समुज्ज्वल बनायेगे। जहाँ अमरमुनिजी की प्रतिभा ने अपना विशुद्ध रूप प्रस्तुत किया है वहाँ श्री श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' की प्रतिभा भी सर्वत्र मुखरित हुई है। सपादनकलामर्मज्ञ पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने तीक्ष्ण दृष्टि से यत्र-तत्र परिष्कार और परिमार्जन भी किया जो अपने आप मे अनूठा है। विद्वद्वर्य प मुनि श्री नेमिचन्दजी का निष्ठापूर्वक किया गया श्रम भी इनके साथ जुड़ा हुआ है।

मैं प्रस्तुत आगम पर बहुत ही विस्तार के साथ प्रस्तावना लिखना चाहता था। जब प्रस्तुत आगम का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ उस समय मैं कुछ अस्वस्थ था। इसलिए प्रथम भाग मे प्रस्तावना न जा सकी। अब अन्तिम चतुर्थ भाग मे प्रस्तावना दी जा रही है। समयाभाव, निरन्तर विहार तथा अन्य अनेक व्यवधानो के कारण मैं चाहते हुए भी प्रस्तावना को विस्तृत न लिख सका। जिस रूप मे मैंने प्रस्तावना लिखने का उपक्रम प्रारम्भ किया था अतिशीघ्रता के कारण बाद के विषयो पर जो मैं तुलनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टि से लिखना चाहता था, नही लिख पाया। इसका स्वय मेरे मन मे मलाल है। यदि कभी समय मिला तो इस विराट्काय आगम पर विस्तार के साथ लिखने का प्रयास करूँगा। यह आगम ऐसा आगम है जिस पर जितना लिखा जाय उतना ही कम है।

युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी महाराज ने जीवन की सान्ध्य वेला मे इस भागीरथ कार्य को हाथ मे लिया और अनेक प्रतिभासपन्न व्यक्तियों के द्वारा इस कार्य को शीघ्र सपादन करने के लिए उत्प्रेरित किया। पर अत्यन्त परिताप है कि क्रूर काल ने असमय मे ही उनको हमारे से छीन लिया। उनके जीवनकाल मे सम्पूर्ण आगम साहित्य का प्रकाशन नहीं हो सका। तथापि उनकी पावन पुण्यस्मृति मे सपादन का कार्य प्रगति पर रहा, जिसके फलस्वरूप यह आगममाला प्रकाशित हो रही है। महामहिम विश्वसन्त उपाध्याय अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव श्री पुष्करमुनिजी महाराज श्रमण सघ के एक ज्योतिर्धर सन्तरत्न हैं, जो युवाचार्यश्री के सहपाठी रहे हैं। श्रद्धेय सद्गुरुवर्य की असीम कृपा से ही मैं प्रस्तावना की कुछ पक्तियाँ लिख गया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अन्य आगमो की भाँति प्रस्तुत आगम का स्वाध्याय भी श्रद्धालुगण कर अपने जीवन को पावन और पवित्र बनायेगे।

—देवेन्द्र मुनि

लाल भवन
जयपुर
दि. २८-२-८६

वियाहपण्णत्तिसुत्तं (भगवईसुत्तं)

विषय-सूची

बीसवां शतक

छठा उद्देशक

सौधर्मादि कल्प से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक की दो-दो पृथ्वियों के बीच मे मरणसमुद्घात करके सौधर्मादि-कल्प से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक पृथ्वीकायिकरूप मे उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक द्वारा पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद निरूपण ४६, सौधर्मादिकल्प से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक के बीच मे मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभा से अध सप्तम पृथ्वी तक पृथ्वीकायिक रूप मे उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक की पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद-प्ररूपणा ४७, पृथ्वीकायिक विषयक सूत्रो के अतिदेशपूर्वक अप्कायिक विषयक पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद निरूपण ४९, पृथ्वी-कायिक-विषयक सूत्रो के अतिदेशपूर्वक अप्कायिक जीवविषयक (विशिष्ट परिस्थिति मे) पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद निरूपण ५०, सत्तरहवे शतक के दसवे उद्देशक के अनुसार वायुकायिक जीवो के विषय मे पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद विषयक प्ररूपणा ५१ ।

सप्तम उद्देशक

बध के तीन भेद और चौवीस दण्डको मे उनकी प्ररूपणा ५२, अष्टविध कर्मों मे त्रिविध बन्ध एव उनकी चौवीस दण्डको मे प्ररूपणा ५३, आठो कर्मों के उदयकाल मे प्राप्त होने वाले बधत्रय का चौवीस दण्डको मे निरूपण ५३, वेदत्रय तथा दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय मे त्रिविध बन्ध प्ररूपणा ५४, शरीर, सज्ञा, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान एव ज्ञानाज्ञान विषयो मे त्रिविधबध प्ररूपणा ५५ ।

आठवाँ उद्देशक

कर्मभूमियो और अकर्मभूमियो की सख्या का निरूपण ५८, अकर्मभूमि और कर्मभूमि के विविध क्षेत्रो मे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सद्भाव-अभाव का निरूपण ५९, अरहतो द्वारा महाविदेह और भरत-ऐरवत क्षेत्र मे कौन-कौन से धर्म का निरूपण ? ६०, भरतक्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकरो के नाम ६०, चौवीस तीर्थंकरो के अन्तर तथा तेईस जिनान्तरो मे कालिकश्रुत के व्यवच्छेद-अव्यवच्छेद का निरूपण ६१, भ महावीर और शेष तीर्थंकरो के समय मे पूर्वश्रुति की अविच्छिन्नता की कालावधि ६२, भगवान महावीर और भावी तीर्थंकरो मे अन्तिम तीथकर के तीर्थ की अविच्छिन्नता की कालावधि ६२, तीर्थ और प्रवचन क्या और कौन ? ६४, निर्ग्रन्थ-धर्म मे प्रविष्ट उग्रादि क्षत्रियों द्वारा रत्नत्रय साधना से सिद्धगति या देवगति मे गमन तथा चतुर्विध देवलोक-निरूपण ६४ ।

नौवाँ उद्देशक

चारणमुनि के दो प्रकार विद्याचारण और जघाचारण ६६, विद्याचारण लब्धि समुत्पन्न होने से विद्याचारण कहलाता है ६६, विद्याचारण की शीघ्र, तिर्यग् एव ऊर्ध्वगति-सामर्थ्य तथा विषय ६७, जघाचारण का स्वरूप ६९, जघाचारण की शीघ्र, तिर्यक् और ऊर्ध्वगति का सामर्थ्य और विषय ७० ।

दसवाँ उद्देशक

चौवीस दण्डको मे सोपक्रम एव निरुपक्रम आयुष्य की प्ररूपणा ७२, चौवीस दण्डको मे उत्पत्ति और उद्वर्तना की आत्मोपक्रम-परोपक्रम आदि विभिन्न पहलुओ से प्ररूपणा ७३, चौवीस दण्डको और सिद्धो मे कति-अकति-अवक्तव्य-सचित पदो का यथायोग्य निरूपण ७५, कति-अकति-अवक्तव्य-सचित यथायोग्य चौवीस दण्डको और सिद्धो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा ७८, चौवीस दण्डको और सिद्धो मे षट्क समर्जित आदि पाच विकल्पो का यथायोग्य निरूपण ७९, षट्क-समर्जित आदि से विशिष्ट चौवीस दण्डको और सिद्धो के अल्पबहुत्व

इक्कीसवाँ शतक

बाईसवाँ शतक

तेईसवाँ शतक

चौबीसवाँ शतक

बारहवाँ उद्देशक

गति की अपेक्षा से पृथ्वीकायिको की उत्पत्ति प्ररूपणा १८२, पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक सम्बन्धी उत्पत्ति-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १८३, पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले अप्कायिको मे उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १८७, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले तेजस्कायिकों में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १८९, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले वनस्पतिकायिको मे उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १९०, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रिय जीवो मे उपपातादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १९१।

पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने वाले त्रीन्द्रिय मे उपपात-परिमाण आदि बीस द्वारो की प्ररूपणा १९४, पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने वाले चतुरिन्द्रिय जीवों के उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १९५, पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक की अपेक्षा पृथ्वीकायिक-उत्पत्ति निरूपण १९६, पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने वाले असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १९७, पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होने वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १९८, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले असज्ञी-सज्ञी-सख्येय वर्षायुष्क पर्याप्तक-अपर्याप्तक मनुष्यो मे उत्पादादि बीस द्वारो की प्ररूपणा १९९।

देवो से आकर पृथ्वीकायिको मे उत्पाद का निरूपण २०२, भवनवासी देवो की अपेक्षा पृथ्वीकायिको मे उत्पत्ति-निरूपण २०२, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले असुरकुमार मे उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा २०३, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनवासी देवो मे उत्पत्ति-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा २०५, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले वाणव्यन्तर देवो मे उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा २०६, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले ज्योतिष्क देवो मे उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा २०७, वैमानिक देवो की अपेक्षा पृथ्वीकायिक-उत्पत्ति-निरूपण २०८।

तेरहवाँ उद्देशक

चौदहवाँ उद्देशक

पन्द्रहवाँ उद्देशक

सोलहवाँ उद्देशक

सत्तरहवाँ उद्देशक

चौबीसवां उद्देशक

गति को लेकर सौधर्म-देव के उपपात का निरूपण २६४, सौधर्म-देव मे उत्पन्न होने वाले असख्येय-संख्येय-वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो मे उपपातादि बीस द्वारो की प्ररूपणा २६७, ईशान से सहस्रार देव तक मे उत्पन्न होने वाले तिर्यचो व मनुष्यो के उपपातादि बीस द्वारो की प्ररूपणा २६८, आनत से सर्वार्थसिद्ध तक के देवो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो के उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा २७० ।

पच्चीसवां शतक

प्रथम उद्देशक

लेश्याओं के भेद, अल्पबहुत्व आदि का अतिदेशपूर्वक निरूपण २७९, संसारी जीवो के चौदह भेदो का निरूपण २७९, जघन्य और उत्कृष्ट योग को लेकर संसारी जीवो का अल्पबहुत्व निरूपण २८०, प्रथम समयोत्पन्नक चतुर्विंशति दण्डकवर्ती दो जीवो का समयोगित्व-विषमयोगित्व निरूपण २८२, योग के पन्द्रह भेदो का निरूपण २८४, पन्द्रह प्रकार के योगो में जघन्य-उत्कृष्ट योगो का अल्पबहुत्व २८५ ।

द्वितीय उद्देशक

द्रव्यों के भेद-प्रभेद तथा दोनों प्रकार के द्रव्यो की अनन्तता की प्ररूपणा २८७, जीव और चौबीस दण्डकवर्ती जीवो की अजीवद्रव्य परिभोगतानिरूपण २८८, असख्येय लोक मे अनन्त द्रव्यो की स्थिति २८९, लोक के एक प्रदेश मे पुद्गलो के चय-छेद-उपचय-अपचय निरूपण २९० शरीरादि के रूप मे स्थित-अस्थित द्रव्य-ग्रहण प्ररूपणा २९१ ।

तृतीय उद्देशक

संस्थान के छह भेदों का निरूपण २९४, छह संस्थानो की द्रव्यार्थ तथा प्रदेशार्थ रूप से अनन्तता प्ररूपणा २९५, छह संस्थानो का द्रव्यार्थादि रूप से अल्पबहुत्व २९६, संस्थानो के पाच भेद और उनकी अनन्तता का निरूपण २९७, यवमध्यगत परिमण्डलादि संस्थानो की परस्पर अनन्तता की प्ररूपणा २९९, सप्त नरकपृथ्वियों से लेकर ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक मे पाचो यवमध्य संस्थानो मे परस्पर अनन्तता-प्ररूपणा ३००, पांच संस्थानो मे प्रदेशतः अवगाहना-निरूपण ३०२, पंच संस्थानो मे एकत्व-बहुत्व दृष्टि से द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता की अपेक्षा कृतयुग्मादि निरूपण ३०७, पाच संस्थानो मे यथायोग्य कृतयुग्मादि प्रदेशावगाह प्ररूपणा ३०९, परिमण्डलादि संस्थानो मे कृत युग्मादि समय स्थिति की प्ररूपणा ३१२, पाच संस्थानो मे वर्ण-गध-रस-स्पर्श की अपेक्षा कृतयुग्मादि प्ररूपणा ३१२, श्रेणियो तथा लोक-अलोकाकाश श्रेणियो मे प्रदेशार्थ से यथायोग्य संख्यातादि प्ररूपणा ३१५, सामान्य श्रेणियो तथा लोक-अलोकाकाश श्रेणियो मे यथायोग्य सादि-सान्तादि प्ररूपणा ३१६, सामान्य श्रेणियो तथा लोक-अलोकाकाश श्रेणियो मे द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से कृतयुग्मादि प्ररूपणा ३१८, श्रेणी के प्रकारान्तर से सात भेद ३२०, परमाणु-पुद्गल तथा द्विप्रदशिकादि स्कन्धो की चौवीस दण्डको मे अनुश्रेणि गति प्ररूपणा ३२१, चौबीस दण्डको की आवास-संख्या प्ररूपणा ३२२, द्वादशविध गणिपिटको का अतिदेशपूर्वक निर्देश ३२२, नैरयिकादि सेन्द्रियादि सकायिकादि, आयुष्य बन्धक-अबन्धको के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा ३२२ ।

चतुर्थ उद्देशक

चार युग्म और उनके अस्तित्व का कारण ३२६, चौवीस दण्डकों और सिद्धों में युग्मभेद निरूपण ३२६, षट्द्रव्य और उनमें द्रव्यार्थ तथा प्रदेशार्थ रूप से युग्मभेद निरूपण ३२८, धर्मास्तिकायादि षट्द्रव्यों में अल्पबहुत्व का प्रज्ञापनासूत्रातिदेशपूर्वक निरूपण ३२९, धर्मास्तिकायादि में यथायोग्य अवगाढ-अनवगाढ प्ररूपणा ३२९, जीव एवं चौवीस दण्डकों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ रूप युग्मभेद निरूपण ३३१, सामान्य जीव एवं चौवीस दण्डकों में अवगाहनापेक्षया कृतयुग्मादि प्ररूपणा ३३३, जीव एवं चौवीस दण्डकों में कृतयुग्मादि समय-स्थिति की प्ररूपणा ३३४, सामान्य जीव एवं चौवीस दण्डकों में वर्णादि पर्यायापेक्षया कृतयुग्मादि प्ररूपणा ३३६, जीव, चौवीस दण्डकों और सिद्धों में ज्ञान-अज्ञान-दर्शन पर्यायों की अपेक्षा एकत्व-बहुत्व दृष्टि से कृतयुग्मादि प्ररूपणा ३३७, प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेशपूर्वक शरीर सम्बन्धी विवरण ३३९, जीव तथा चौवीस दण्डकों में सकम्प-निष्कम्प तथा देशकम्प-सर्वकम्प प्ररूपणा ३४०, परमाणु-पुद्गलों से अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक की प्ररूपणा ३४२, एक प्रदेशावगाढ से असंख्येय प्रदेशावगाढ पुद्गलों की प्ररूपणा ३४२, एक समय से लेकर असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों की अनन्तता ३४२, वर्णगन्धादि वाले पुद्गलों की अनन्तता ३४३, परमाणु-पुद्गल से अनन्त प्रदेशी स्कन्धों तक की द्रव्य-प्रदेशार्थ में यथायोग्य बहुत्व प्ररूपणा ३४३, एक गुण काले आदि वर्ण तथा गन्ध-रस-स्पर्श वाले पुद्गलों की वक्तव्यता ३४६, एकादिगुण कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलों की द्रव्यार्थ प्रदेशार्थ से विशेषाधिकतादि प्ररूपणा ३४७, एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशी पुद्गलों की अवगाहना एवं स्थिति को लेकर अल्पबहुत्व चर्चा ३४८, एक-संख्येय-असंख्येय-अनन्तगुण-वर्ण-गन्धादि वाले पुद्गलों की द्रव्यार्थ प्रदेशार्थ रूप में अल्पबहुत्व चर्चा ३५०, अवगाहना, स्थिति, वर्णगन्धादि पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्मादि प्ररूपणा ३५४, परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक यथायोग्य-सार्द्ध-अनर्द्ध प्ररूपणा ३५८, परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक सकम्पता निष्कम्पता-प्ररूपणा ३६०, परमाणु से अनन्तप्रदेशी सकम्प-निष्कम्प स्कन्ध तक के अल्पबहुत्व की चर्चा ३६४, परमाणु से अनन्तप्रदेशी सकम्प-निष्कम्प स्कन्धों की द्रव्यार्थ प्रदेशार्थ, द्रव्यप्रदेशार्थ में अल्पबहुत्व की चर्चा ३६४, परमाणु से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक देशकम्प-सर्वकम्प-निष्कम्पता की प्ररूपणा ३६६, परमाणु से अनन्तप्रदेशी देशकम्प-सर्वकम्प-निष्कम्प स्कन्धों की स्थिति एवं कालान्तर की प्ररूपणा ३६७, सर्व-देशकम्पक-निष्कम्पक परमाणु से अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का अल्पबहुत्व ३७१, सर्व-देश-निष्कम्प परमाणुओं से अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक के अल्पबहुत्व की चर्चा ३७२, धर्मास्तिकायादि के मध्यप्रदेशों की संख्या का निरूपण ३७४, जीवास्तिकाय-मध्यप्रदेश तथा आकाशास्तिकाय प्रदेशों की अवगाहना की प्ररूपणा ३७५।

पंचम उद्देशक

पर्यव-भेद एवं उसके विशिष्ट पहलुओं के विषय में पर्यवपद अतिदेश ३७६, आनप्राणादि कालों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से आवलिका संख्या-प्ररूपणा ३७८, स्तोकादि कालों में एकत्व-बहुत्व दृष्टि से आनप्राणादि में शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त संख्या निरूपण ३८०, सागरोपमादि कालों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से पल्योपम-संख्या निरूपण ३८१, उत्सर्पिणी आदि कालों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से सागरोपम-संख्या निरूपण ३८२, पुद्गल-परिवर्तनादि कालों में एकत्व बहुत्व दृष्टि से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की संख्या की प्ररूपणा ३८२, भूत-भविष्यत् तथा सर्वकाल में पुद्गलपरिवर्तन की अनन्तता ३८३, अनागत काल की अतीतकाल से समयाधिकता ३८३, सर्वाद्धा की अतीत तथा अनागत काल के समय से न्यूनाधिकता ३८४, निगोद के भेद-प्रभेदों का निरूपण ३८५, औदयिकादि छह भावों का अतिदेशपूर्वक प्ररूपण ३८६।

छठा उद्देशक

छठे उद्देशक की छत्तीस द्वार निरूपक गाथाये ३८७, प्रथम प्रज्ञापनाद्वार निर्ग्रन्थो के भेद-प्रभेद ३८७, द्वितीय क्षेत्रद्वार : पचविध निर्ग्रन्थो मे स्त्रीवेदादि प्ररूपणा ३९१, तृतीय रागद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे सरागत्व वीतरागत्व प्ररूपणा ३९३, चतुर्थ कल्पद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे स्थितिकल्पादि-जिनकल्पादि-प्ररूपणा ३९४, पचम चारित्रद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे चारित्र प्ररूपणा ३९६, छठा प्रतिसेवनाद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे मूल-उत्तरगुण प्रतिसेवन-अप्रतिसेवन-प्ररूपणा ३९७, सप्तम ज्ञानद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे ज्ञान और श्रुताध्ययन की प्ररूपणा ३९८, आठवां तीर्थद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे तीर्थ-अतीर्थ प्ररूपणा ४००,

नौवां लिगद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे स्वलिग-अन्यलिग-गृहीलिग-प्ररूपणा ४०१, दसवां शरीरद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे शरीर-भेद-प्ररूपणा ४०२, ग्यारहवां क्षेत्रद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे कर्मभूमि-अकर्मभूमि-प्ररूपणा ४०३, बारहवां कालद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकालादि-प्ररूपणा ४०४, तेरहवां गतिद्वार . पचविध निर्ग्रन्थो की गति, पदवी तथा स्थिति की प्ररूपणा ४०८,

चौदहवां सयमद्वार पचविध निर्ग्रन्थो के सयमस्थान और उनका अल्पबहुत्व ४११, पन्द्रहवां निकर्ष (सन्निकर्ष) द्वार पाचो प्रकार के निर्ग्रन्थो मे अनन्त चारित्र पर्याय ४१२, पचविध निर्ग्रन्थो के जघन्य-उत्कृष्ट चारित्र पर्यायो का अल्पबहुत्व ४१६, सोलहवां योगद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे योगो की प्ररूपणा ४२०, सत्तरहवां उपयोगद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे उपयोग-प्ररूपणा ४२०, अठारहवां कषायद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे कषाय-प्ररूपणा ४२१, उन्नीसवां लेश्याद्वार लेश्याओ की प्ररूपणा ४२२, बीसवां परिणामद्वार वर्धमानादि परिणामो की प्ररूपणा ४२४, इक्कीसवां द्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे कर्मप्रकृति-बध-प्ररूपणा ४२७, बाईसवां द्वार निर्ग्रन्थो मे कर्मप्रकृति-वेदन-निरूपण ४२८, तेईसवां कर्मोदीरणाद्वार कर्मप्रकृति-उदीरणा-प्ररूपणा ४२९, चौवीसवां उपसम्पद्-जहद्-द्वार स्वस्थानत्याग-परस्थान-सम्प्राप्ति निरूपण ४३१, पच्चीसवां सज्ञाद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे सज्ञाओ की प्ररूपणा ४३२, छब्बीसवां आहारद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे आहारक-अनाहारक-निरूपण ४३३, सत्ताईसवां भवद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे भवग्रहण-प्ररूपणा ४३४, अट्ठाईसवां आकर्षद्वार एकभव-नानाभव ग्रहणीय आकर्ष-प्ररूपणा ४३५, उनतीसवां कालद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे स्थितिकाल-निरूपण ४३७, तीसवां अन्तरद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे काल के अन्तर का निरूपण ४३८, इकतीसवां समुद्घातद्वार समुद्घातो की प्ररूपणा ४४०, बत्तीसवां क्षेत्रद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे अवगाहना क्षेत्र-प्ररूपण ४४१, तेतीसवां स्पर्शनाद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे क्षेत्रस्पर्शना-प्ररूपणा ४४२, चौतीसवां भावद्वार औपशमिकादि भावो का निरूपण ४४२, पैंतीसवां परिणामद्वार पचविध निर्ग्रन्थो का एक समय का परिमाण ४४३, छत्तीसवां अल्पबहुत्वद्वार पचविध निर्ग्रन्थो मे अल्पबहुत्व प्ररूपण ४४५ ।

सप्तम उद्देशक

प्रथम प्रज्ञापनाद्वार सयतो के भेद-प्रभेद का निरूपण ४४७, सयत-स्वरूप ४४८, द्वितीय वेदद्वार पचविध सयतो मे सवेदी-अवेदी प्ररूपणा ४५०, तृतीय रागद्वार पचविध सयतो मे सरागता-वीतरागता-निरूपण ४५०, चतुर्थ कल्पद्वार पचविध सयतो मे स्थितकल्पादि प्ररूपणा ४५१, पचम चारित्रद्वार पचविध सयतो मे पुलाकादि प्ररूपणा ४५२, छठा प्रतिसेवनाद्वार पचविध सयतो मे प्रतिसेवन-अप्रतिसेवन प्ररूपणा ४५३, सप्तम ज्ञानद्वार पचविध सयतो मे ज्ञान और श्रुताध्ययन की प्ररूपणा ४५३, अष्टम तीर्थद्वार पचविध सयतो मे तीर्थ-अतीर्थ प्ररूपणा ४५५, नौवां लिगद्वार पचविध सयतो मे स्व-अन्य गृहिलिग प्ररूपणा ४५५, दसवां शरीरद्वार

छव्वीसवाँ शतक

सताईसवाँ शतक

अट्ठाईसवाँ शतक

उनतीसवाँ शतक

तीसवाँ शतक

द्वितीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक

चतुर्थ से ग्यारहवाँ उद्देशक

इकतीसवाँ-बत्तीसवाँ शतक

इकतीसवाँ शतक

प्रथम उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक

चतुर्थ उद्देशक

पंचम उद्देशक

षष्ठ उद्देशक

बत्तीसवाँ शतक

तेतीसवाँ प्रथम एकेन्द्रिय शतक

उपसंहार

पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइयं पचमं अंगं

वियाहपण्णत्तिसुत्तं

[भगवई]

चतुर्थ खण्ड

पञ्चमगणधर-श्रीसुधर्मस्वामिविरचितं पञ्चमाङ्गम्

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रम्

[भगवती]

वीसइमं सयं : वीसवाँ शतक

प्राथमिक

* व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र का यह वीसवाँ शतक है। इसके दस उद्देशक हैं।

* **प्रथम उद्देशक . 'द्वीन्द्रिय'** मे द्वीन्द्रिय जीवो से लेकर पचेन्द्रिय जीवो के शरीरबन्ध, आहार, लेश्या, दृष्टि, योग, ज्ञान-अज्ञान, सवेदन, सज्ञा-प्रज्ञा, मन, वचन, प्राणातिपात आदि का भाव, समुद्घात, उत्पत्ति एव स्थिति कितनी होती है ? कौन किससे अल्प या अधिकादि है ? इसकी चर्चा की गई हे।

* **द्वितीय उद्देशक 'आकाश'** मे आकाश के प्रकार, धर्मास्तिकायादि शेष अस्तिकायो की जीव-रूपता-अजीवरूपता, सीमा तथा धर्मास्तिकाय से लेकर पुद्गलास्तिकाय तक के विविध अभिवचनो (पर्यायवाचक शब्दो) की प्ररूपणा की गई है।

* **तृतीय उद्देशक : 'प्राणवध'** मे प्रतिपादित किया गया है कि प्राणातिपात आदि १८ पापस्थान, चार प्रकार की बुद्धियाँ, अवग्रहादि चार मतिज्ञान, उत्थानादि, नारकत्व, देवत्व, मनुष्यत्व आदि, अष्टविध कर्म, छह लेश्या, पाच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन, चार सज्ञा, पाच शरीर, दो उपयोग आदि धर्म आत्मरूप हैं, ये आत्मा से अन्यत्र परिणत नही होते।

* **चतुर्थ उद्देशक . 'उपचय'** मे प्रज्ञापनासूत्र के इन्द्रियपद के अतिदेशपूर्वक पाच इन्द्रियो के उपचय का निरूपण किया गया है।

* **पांचवां उद्देशक : 'परमाणु'** मे परमाणुपुद्गल से लेकर द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी तथा सख्यात-असख्यात-अनन्तप्रदेशी स्कन्ध मे पाये जाने वाले वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के विविध विकल्पो की प्ररूपणा की गई है। अन्त मे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-विषयक परमाणु चतुष्टय के विविध प्रकारो का वर्णन है।

* **छठा उद्देशक . 'अन्तर'** मे प्रतिपादन किया गया है कि पृथ्वीकायिक आदि पाच स्थावर जीव रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा आदि नरकपृथ्वियो मे मरणसमुद्घात करके सौधर्म, ईशान आदि से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी मे पृथ्वीकायिकादि के रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, वे पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होते है या विपरीत रूप से करते हैं ? इसके पश्चात् उन्ही स्थावरादि के विषय मे पूछा गया है कि सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्प के मध्य मे मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभादि नारकपृथ्वियो मे पृथ्वीकायादिरूप से उत्पन्न होने योग्य हैं, वे भी पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होते है या पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करते हैं ? इसका समाधान किया गया है कि दोनो प्रकार से करते है।

* **सप्तम उद्देशक : 'बन्ध'** मे सर्वप्रथम जीवप्रयोगादि तीन प्रकार के बन्ध का निरूपण करने के बाद ज्ञानावरणीयादि कर्मों के त्रिविध बन्ध का और चौवीस दण्डको मे ज्ञानावरणीयादि अष्टविध कर्मों का त्रिविधबन्ध-निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् चौवीस दण्डको मे उदयप्राप्त ज्ञानावरणीयादि के बन्ध का, स्त्री-पुरुष-नपु सक वेद के बन्ध का, फिर औदारिक शरीर, चार सज्ञा, छह लेश्या, तीन दृष्टि, पाच ज्ञान, तीन अज्ञान, इन सब ११ बोलो के यथायोग्य बन्ध का निरूपण किया गया है। 'बन्ध' शब्द से यहाँ कर्मपुद्गलो का बन्ध विवक्षित नही है, किन्तु सम्बन्धमात्र को बन्ध कहा गया है।

* **अष्टम उद्देशक · 'भूमि'** मे पहले कर्मभूमि और अकर्मभूमि के प्रकार तथा इनमे एव ५ भरत, ५ ऐरवत एव ५ महाविदेह क्षेत्रो मे उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तथा सप्रतिक्रमण पच-महाव्रत रूप धर्म का उपदेश है या नही ? इसका निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् जम्बूद्वीपीय भरतक्षेत्र मे हुए चौवीस तीर्थंकरो के नाम, इनमे हुए जिनान्तरो का तथा जिनान्तरो के समय कालिक श्रुत के विच्छेद का कथन किया गया है। फिर भगवान् के तीर्थ की अविच्छिन्नता की कालावधि तथा तीर्थ और तीर्थकर की भिन्नता-अभिन्नता का एव उग्र, भोग, राजन्यादि क्षत्रियकुल के व्यक्तियो की धर्मप्रवेश की तथा मोक्षप्राप्ति या देवलोकप्राप्ति की सम्भावना का निरूपण किया गया है।

* **नौवाँ उद्देशक : 'चारण'** मे जघाचारण और विद्याचारण, यो चारणमुनि के दो भेद करके, दोनो का स्वरूप तथा इन दोनो प्रकार के चारणमुनियो के उत्पात का सामर्थ्य तथा गति की तीव्रता का सामर्थ्य एव गति का विषय तथा दोनो की आराधना-विराधना का रहस्य बताया गया है। साथ ही जघाचारण को जघाचारणलब्धि की उत्पत्ति का रहस्य भी प्रतिपादित किया गया है।

* **दसवाँ उद्देशक : 'सोपक्रम जीव'** मे आयुष्य के दो भेद सोपक्रम और निरुपक्रम करके, चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे उनका निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् चौवीस दण्डको के जीव आत्मोपक्रम, परोपक्रम एव निरुपक्रम तथा आत्मऋद्धि-परऋद्धि, आत्मकर्म-परकर्म, आत्मप्रयोग-परप्रयोग, इनमे से किस रूप मे उद्वर्तन (मृत्यु) करते है या उत्पन्न होते है ? इसका निरूपण है। फिर चौवीस दण्डको और सिद्धो मे कतिसचित, अकतिसचित और अवक्तव्यसचित की प्ररूपणा की गई है। तत्पश्चात् चौवीस दण्डको और सिद्धो मे कौन-कौन षट्क-समर्जित, नोषट्क-समर्जित एव अनेक षट्कसमर्जित तथा द्वादशसमर्जित, नोद्वादशसमर्जित एव अनेक द्वादशसमर्जित है तथा इनमे से कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ? इसकी प्ररूपणा की गई है।

* कुल मिला कर समस्त जीवो के विषय मे विविध पहलुओ से सुन्दर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इससे धर्माचरण, सयमपालन एव अप्रमाद आदि अनेक प्रकार की प्रेरणा मिलती है।

वीसइमं सयं : वीसवाँ शतक

वीसवें शतक के उद्देशकों का नाम-निरूपण

१. बेइंदिय १ मागासे २ पाणवहे ३ उवचए ४ य परमाणू ।
५ अंतर ६ बंधे ७ भूमी ८ चारण ९ सोवक्कमा जीवा १० ॥१॥

[१ गाथार्थ—] (इस शतक मे दश उद्देशक इस प्रकार हैं—) (१) द्वीन्द्रिय, (२) आकाश, (३) प्राणवध, (४) उपचय, (५) परमाणु, (६) अन्तर, (७) बन्ध, (८) भूमि, (९) चारण और (१०) सोपक्रम जीव ।

विवेचन—दश उद्देशको मे प्रतिपाद्य विषय—

(१) **द्वीन्द्रियादि** की वक्तव्यता-विषयक प्रथम उद्देशक है ।
(२) **द्वितीय उद्देशक** आकाशादि—अर्थ-विषयक है ।
(३) **तृतीय उद्देशक** मे प्राणातिपातादि सभी आत्मविषयक तथ्यो की प्ररूपणा है ।
(४) **चतुर्थ उद्देशक** मे श्रोत्रन्द्रिय आदि के उपचय का वर्णन है ।
(५) **पचम उद्देशक** मे परमाणु-सम्बन्धी वक्तव्यता है ।
(६) **छठा उद्देशक** रत्नप्रभादि नरकभूमियो के अन्तराल-विषयक है ।
(७) **सप्तम उद्देशक**—जीव-प्रयोगादिबन्ध के विषय मे है ।
(८) **अष्टम उद्देशक** मे कमभूमि-अकर्मभूमि आदि का प्रतिपादन है ।
(९) **नौवें उद्देशक** मे विद्याचारण आदि का वर्णन है ।
(१०) **दशवें उद्देशक** मे जीवो के सोपक्रम-निरुपक्रम होने का निरूपण है ।

१ भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७७४

पढमो उद्देसओ : 'बेइंदिय'

प्रथम उद्देशक : द्वीन्द्रियादि विषयक

विकलेन्द्रिय जीवों में स्यात् लेश्यादि द्वारों का निरूपण

२. रायगिहे जाव एव वयासि

[२] 'भगवन् !' राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

३. सिय[1] भते जाव चत्तारि पच बेंदिया एगयओ साधारणसरीर बधति, एग० ब० २ ततो पच्छा आहारेंति वा परिणामेंति वा सरीर वा बधति ?

नो तिणट्ठे समट्ठे, बेंदिया ण पत्तेयाहारा य पत्तेयपरिणामा पत्तेयसरीर बधति, प० ब० २ ततो पच्छा आहारेंति वा परिणामेंति वा सरीर वा बधति।

[३ प्र] भगवन् ! क्या कदाचित् दो, तीन, चार या पाच द्वीन्द्रिय जीव मिलकर एक साधारण शरीर बाधते हैं, इसके पश्चात् आहार करते है ? अथवा आहार को परिणमाते है, फिर विशिष्ट शरीर को बाधते है ?

[३ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (यथार्थ) नही है, क्योंकि द्वीन्द्रिय जीव पृथक्-पृथक् आहार करने वाले और उसका पृथक्-पृथक् परिणमन करने वाले होते है। इसलिए वे पृथक्-पृथक् शरीर बाधते है, फिर आहार करते है तथा उसका परिणमन करते है और विशिष्ट शरीर बाधते हैं।

४. तेसि ण भते ! जीवाण कति लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! तओ लेस्साओ पन्नत्ताओ, त जहा कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा, एव जहा एगूणवीसतिमे सए तेउकाइयाण (स० १९ उ० ३ सु० १९) जाव उव्वट्टंति, नवर सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छद्दिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छादिट्ठी; दो नाणा, दो अन्नाणा नियम; नो मणजोगी, वयजोगी वि, कायजोगी वि, आहारो नियम छद्दिसि।

[४ प्र] भगवन् ! उन (द्वीन्द्रिय) जीवो के कितनी लेश्याए कही गई है ?

[४ उ] गौतम ! उनके तीन लेश्याए कही गई है यथा कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या। इस प्रकार समग्र वर्णन, जो उन्नीसवे शतक (के तीसरे उद्देशक के सू १९) मे अग्निकायिक जीवो के विषय मे कहा गया है, वह यहाँ भी उद्वर्तित होते है, तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि ये द्वीन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि भी होते है, मिथ्यादृष्टि भी होते है, पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते हैं। उनके नियमत दो ज्ञान या दो अज्ञान होते है। वे मनोयोगी

1 सिय-लेस्सा आदि द्वारो को जानने के लिए देखे १९वे शतक के तृतीय उद्देशक के सू २ से १७ तक।

नहीं होते, वे वचनयोगी भी होते हैं और काययोगी भी होते है। वे नियमत' छह दिशा का आहार लेते—पुद्गल ग्रहण करते हैं।

५. तेसि णं भंते ! जीवाण एवं सन्ना ति वा पन्ना ति वा मणे ति वा वयी ति वा 'अम्हे णं इट्ठाणिट्ठे रसे इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसंवेदेमो ?'

णो तिणट्ठे समट्ठे, पडिसवेदेंति पुण ते। ठिती जहन्नेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं। सेसं त चेव।

[५ प्र] क्या उन जीवो को - 'हम इष्ट और अनिष्ट रस तथा इष्ट-अनिष्ट स्पर्श का प्रतिसवेदन (अनुभव) करते है', ऐसी सज्ञा, प्रज्ञा, मन अथवा वचन होता है ?

[५ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है। वे रसादि का सवेदन करते है। उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है। शेष सब पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

६ एव तेइदिया वि। एव चउरिदिया वि। नाणत्तं इदिएसु ठितीए य, सेस त चेव, ठिती जहा पन्नवणाए।[१]

[६] इसी प्रकार (द्वीन्द्रिय की तरह) त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवो के विषय मे भी समझना चाहिए। किन्तु इनकी इन्द्रियो मे और स्थिति मे अन्तर है। शेष सब बातें पूर्ववत् है। इनकी स्थिति प्रज्ञापनासूत्र (चौथे पद) के अनुसार जाननी चाहिए।

विवेचन द्वीन्द्रियादि जीवो के स्यात्, शरीर, लेश्यादि-निरूपण—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू. २ से ६ तक) में उन्नीसवे शतक मे निर्दिष्ट स्यात्-शरीर-लेश्यादि का निरूपण किया गया है।

त्रीन्द्रिय जीवो में विशेष इन के तीन इन्द्रियाँ होती है। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ४९ अहोरात्र की होती है।

चतुरिन्द्रिय जीवों मे विशेष इनके चार इन्द्रियाँ होती है। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट छह महीनो की होती है।[२]

पंचेन्द्रिय जीवो में स्यात् लेश्यादि द्वारों का निरूपण

७ सिय भंते ! जाव चत्तारि पच पचेंदिया एगयओ साहारण०।

एव जहा बिंदियाण (सु० ३-५), नवर छ लेसाओ, दिट्ठी तिविहा वि, चत्तारि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए; तिविहो जोगो।

[७ प्र] भगवन् ! क्या कदाचित् दो, तीन, चार या पाच आदि पचेन्द्रिय मिल कर एक साधारणशरीर बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न है।

१ त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति को जानने के लिए देखें – प्रज्ञापनासूत्र, चतुर्थपद सू ३७०-७१

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७४

[७ उ.] गौतम ! (इसका समाधान) पूर्ववत् द्वीन्द्रियजीवो के समान (जानना चाहिए।) विशेष यह है कि इनके छहो लेश्याएँ और तीनो दृष्टियाँ होती हैं। इनमें चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते है। तीनो योग होते हैं।

८. तेसि णं भंते ! जीवाणं एवं सन्ना ति वा पण्णा ति वा जाव वती ति वा 'अम्हे णं आहारमाहारेमो ?'

गोयमा ! अत्थेगइयाणं एवं सण्णा ति वा पण्णा ति वा मणो ति वा वती ति वा 'अम्हे णं आहारमाहारेमो', अत्थेगइयाण नो एवं सन्ना ति वा जाव वती ति वा 'अम्हे ण आहारमाहारेमो', आहारेंति पुण ते।

[८ प्र] भगवन् ! क्या उन (पचेन्द्रिय) जीवो को ऐसी सज्ञा, प्रज्ञा, मन अथवा वचन होता है कि 'हम आहार ग्रहण करते है ?'

[८ उ] गौतम ! कितने ही (सज्ञी) जीवो को ऐसी सज्ञा, प्रज्ञा, मन अथवा वचन होता है कि 'हम आहार ग्रहण करते हैं', जबकि कई (असज्ञी) जीवो को ऐसी सज्ञा यावत् वचन नही होता कि 'हम आहार ग्रहण करते है', परन्तु वे आहार तो करते ही है।

९. तेसि ण भंते ! जीवाण एव सन्ना ति वा जाव वती ति वा 'अम्हे ण इट्ठाणिट्ठे सद्दे, इट्ठाणिट्ठे रूवे, इट्ठाणिट्ठे गंधे, इट्ठाणिट्ठे रसे, इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसवेदेमो ?'

गोयमा ! अत्थेगइयाणं एव सन्ना ति वा जाव वती ति वा 'अम्हे ण इट्ठाणिट्ठे सद्दे जाव इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसंवेदेमो', अत्थेगइयाण नो एव सण्णा ति वा जाव वती इ वा 'अम्हे ण इट्ठाणिट्ठे सद्दे जाव इट्ठाणिट्ठे फासे पडिसंवेदेमो', पडिसंवेदेंति पुण ते।

[९ प्र] भगवन् ! क्या उन (पचेन्द्रिय) जीवो को ऐसी सज्ञा, प्रज्ञा, मन अथवा वचन होता है कि हम इष्ट या अनिष्ट शब्द, इष्ट या अनिष्ट रूप, इष्ट या अनिष्ट गन्ध, इष्ट या अनिष्ट रस अथवा इष्ट या अनिष्ट स्पर्श का अनुभव (प्रतिसवेदन) करते हैं ?

[९ उ] गौतम ! कतिपय (सज्ञी) जीवो को ऐसी सज्ञा, यावत् वचन होता है कि हम इष्ट या अनिष्ट शब्द यावत् इष्ट या अनिष्ट स्पर्श का अनुभव करते है। किसी-किसी (असज्ञी) को ऐसी सज्ञा यावत् वचन नही होता है। परन्तु वे (शब्द आदि का) सवेदन (अनुभव) तो करते ही है।

१०. ते णं भंते ! जीवा किं पाणातिवाए उवक्खाइज्जति० पुच्छा ?

गोयमा ! अत्थेगतिया पाणातिवाए वि उवक्खाइज्जंति जाव मिच्छादसणसल्ले वि उवक्खाइज्जंति; अत्थेगतिया नो पाणातिवाए उवक्खाइज्जंति, नो मुसावादे जाव नो मिच्छादंसणसल्ले उवक्खाइज्जंति। जेसिं पि णं जीवाणं ते जीवा एवमाहिज्जंति तेसिं पि ण जीवाणं अत्थेगइयाण विन्नाए नाणत्ते, अत्थेगइयाणं नो विन्नाए नाणत्ते। उववातो सव्वतो जाव सव्वट्ठसिद्धाओ। ठिती जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं। छस्समुग्घाया केवलिवज्जा। उव्वट्टणा सव्वत्थ गच्छंति जाव सव्वट्ठसिद्धं ति। सेसं जहा बेंदियाणं।

[१० प्र.] भगवन् ! क्या ऐसा कहा जाता है कि वे (पंचेन्द्रिय) जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य मे रहे हुए हैं ? इत्यादि प्रश्न है।

[१० उ.] गौतम ! उनमे से कई (पंचेन्द्रिय) जीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य मे रहे हुए हैं, ऐसा कहा जाता है और कई जीव प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शन शल्य मे नही रहे हुए हैं, ऐसा कहा जाता है।

जिन जीवो के प्रति वे प्राणातिपात आदि (का व्यवहार) करते हैं, उन जीवो मे से कई जीवो को —'हम मारे जाते हैं, और ये हमे मारने वाले हैं' इस प्रकार का विज्ञान होता है और कई जीवो को इस प्रकार का ज्ञान नही होता। उन जीवो का उत्पाद सर्व जीवो मे यावत् सर्वार्थसिद्ध से भी होता है। उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है। उनमे केवलीसमुद्घात को छोड कर (शेष) छह समुद्घात होते है। वे मर कर सर्वत्र सर्वार्थसिद्ध तक जाते है। शेष सब बाते द्वीन्द्रियजीवो के समान जाननी चाहिए।

विवेचन—पंचेन्द्रियजीवो मे स्यात् आदि द्वारो की प्ररूपणा—पूर्ववत् स्यात् आदि द्वारो का पंचेन्द्रियजीवो मे निरूपण किया गया है। **सञ्ज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रियजीवो मे अन्तर**—सञ्ज्ञी पंचेन्द्रियजीवो को ऐसा ज्ञान हुआ करता है कि हम आहार कर रहे हैं, अथवा हम इष्ट या अनिष्ट शब्द, रूप, रस, गन्ध या स्पर्श का अनुभव कर रहे है, इसी प्रकार वे वध्य और घातक के भेदज्ञान से युक्त होते हैं कि हम इनके द्वारा मारे जा रहे है और ये हमे मारने वाले है। असञ्ज्ञी पंचेन्द्रियजीवो को न तो इष्ट रसादि का विवेक होता है और न वध्य-घातक का भेदज्ञान होता है।

द्वीन्द्रियजीवो से पंचेन्द्रियजीवो मे अन्तर—द्वीन्द्रियजीवो मे आदि की तीन ही लेश्याएं होती है, जब कि पंचेन्द्रियजीवो मे छहो लेश्याएं होती है। द्वीन्द्रियजीवो मे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि ये दो ही दृष्टिया पाई जाती है, जब कि पंचेन्द्रियजीवो मे तीसरी सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी पाई जाती है। वहाँ मति और श्रुत ज्ञान होता है, जबकि यहाँ मत्यादि चार ज्ञान भजना से कहे गए है। जिसे केवलज्ञान होता है, उसके एक ही ज्ञान होता है। इनमे तीन अज्ञान विकल्प से होते हैं, नियम से नही। द्वीन्द्रियजीवो मे वचनयोग और काययोग ही होते है, जबकि पंचेन्द्रिय मे तीनो योग होते है। इनकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है और उत्पाद सर्वार्थसिद्ध तक सर्वत्र होता है।

'प्राणातिपात' आदि से रहित कौन, सहित कौन ?—असंयतजीव प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य वाले होते हैं जबकि संयतजीव इनसे रहित होते हैं।

कठिन शब्दार्थ—उवक्खाइज्जति—दो अर्थ—(१) उपस्थित रहते है, (२) कहते है।

विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रियजीवों का अल्प-बहुत्व

११. एएसि णं भंते ! बेइंदियाणं जाव पंचेंदियाण य कयरे जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पंचेंदिया, चउरिंदिया विसेसाहिया, तेइंदिया विसेसाहिया, बेइंदिया विसेसाहिया।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति।

॥ वीसइमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ २०-१ ॥

[११ प्र.] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) द्वीन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय जीवो में कौन किससे यावत् विशेषाधिक है ?

[११ उ.] गौतम ! सबसे अल्प पचेन्द्रिय जीव है। उनसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, उनसे त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं और उनसे द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

॥ बीसवां शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

बीओ उद्देसओ : 'आगासे'

द्वितीय उद्देशक : आकाश [आदि पंचास्तिकायसम्बन्धी]

आकाशास्तिकाय के भेद, स्वरूप तथा पंचास्तिकायों का प्रमाण

१. कतिविधे णं भंते ! आगासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविधे आगासे पन्नत्ते, तं जहा—लोयागासे य अलोयागासे य।

[१ प्र] भगवन् ! आकाश कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! आकाश दो प्रकार का कहा गया है, यथा—लोकाकाश और अलोकाकाश।

२. लोयागासे णं भंते ! किं जीवा, जीवदेसा ?

एवं जहा बितियसए अत्थिउद्देसे (स० २ उ० १० सु० ११-१३) **तह चेव इह वि भाणियव्वं, नवरं अभिलावो जाव धम्मत्थिकाए णं भंते ! केमहालए पन्नत्ते ? गोयमा ! लोए लोयमेत्ते लोयपमाणे लोकफुडे लोयं चेव ओगाहित्ताणं चिट्ठइ। एवं जाव पोग्गलत्थिकाए।**

[२ प्र] भगवन् ! क्या लोकाकाश जीवरूप है, अथवा जीवदेश-रूप है ?

[२ उ] गौतम ! द्वितीय शतक के दशवें अस्ति-उद्देशक (सू ११-१३) में जिस प्रकार का कथन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेष में यह अभिलाभ भी धर्मास्तिकाय से लेकर पुद्गलास्तिकाय तक यहाँ कहना चाहिए—

[प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा है ?

[उ] गौतम ! धर्मास्तिकाय लोक, लोकमात्र, लोक-प्रमाण, लोक-स्पृष्ट और लोक को अवगाढ करके रहा हुआ है, इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय तक कहना चाहिए।

विवेचन—एक अखण्ड आकाश के ये दो भेद ?—आकाशद्रव्य मूलत: एक ही है, फिर भी उसके ये जो दो भेद किये गए हैं, वे जीव-अजीव आदि द्रव्यों के आधारभूत आकाश की अपेक्षा से किये गए हैं। अर्थात् जीवादि द्रव्य आकाश के जितने भाग में पाए जाते हैं, वह लोकाकाश है और इससे अतिरिक्त भाग अलोकाकाश है।[१]

अभिलाप का अतिदेश-विशेष—प्रस्तुत सूत्र (२) में द्वितीय शतक के जिस अभिलाप-विशेष का अतिदेश किया गया है, वहाँ चार बातें विशेष रूप से समझ लेनी चाहिए—(१) **'लोयं चेव फुसित्ता णं चिट्ठइ'** के स्थान में **'लोयं चेव ओगाहित्ताणं चिट्ठइ'**, समझना, (२) यह अभिलाप 'जाव धम्मात्थिकाय' से लेकर 'अलोयागासे णं भंते !' इत्यादि समग्र अलोकाकाश-सूत्र यहाँ कहना चाहिए,

---

१ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भाग १३, पृ ४९९

(३) लोकाकाश जीवरूप भी है, जीवदेशरूप भी और जीवप्रदेशरूप भी है इत्यादि समस्त कथन।
(४) धर्मास्तिकायादि पाचो अस्तिकाय लोक को छूते है और लोक को व्याप्त करके ठहरे हुए हैं।[1]

अधोलोक आदि में धर्मास्तिकायादि की अवगाहना-प्ररूपणा

३. अहेलोए णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स केवतियं ओगाढे ?

गोयमा ! सातिरेगं अद्धं ओगाढे। एव एएणं अभिलावेणं जहा बितियसए (स० २ उ० १०) सु० १५-२१) जाव ईसिपब्भारा णं भंते ! पुढवी लोयागासस्स किं संखेज्जइभागं ओगाढा ?० पुच्छा।

गोयमा ! नो सखेज्जतिभागं ओगाढा; असंखेज्जतिभागं ओगाढा; नो संखेज्जे भागे, नो असखेज्जे भागे, नो सव्वलोयं ओगाढा। सेसं तं चेव।

[३ प्र] भगवन् ! अधोलोक, धर्मास्तिकाय के कितने भाग को अवगाढ करके रहा हुआ है ?

[३ उ] गौतम ! वह कुछ अधिक अर्द्ध भाग को अवगाढ कर रहा हुआ है। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा दूसरे शतक के दशवे उद्देशक (सू १५-२१) मे कथित वर्णन यहाँ भी समझना चाहिए, यावत्—

[प्र] भगवन् ! ईषत्प्राग्भारापृथ्वी लोकाकाश के सख्यातवे भाग को अवगाहित करके रही हुई है अथवा असख्यातवे भाग को, इत्यादि प्रश्न है।

[उ] गौतम ! वह लोकाकाश के सख्यातवे भाग को अवगाहित नही की हुई है, किन्तु असख्यातवे भाग को अवगाहित की हुई है, (वह लोक के) सख्यात भागो को अथवा असख्यात भागो को भी व्याप्त करके स्थित नही हैं और न समग्र लोक का व्याप्त करके स्थित है। शेष सब पूर्ववत्।

विवेचन—इस पक्ति का फलितार्थ यह है कि ईषत्प्राग्भारापृथ्वी अर्थात् सिद्धशिला न तो समग्र लोक को व्याप्त करके स्थित है, न ही लोक के सख्यात-असख्यात भागो को, न सख्यातवे भाग को, किन्तु लोक के असख्यातवे भाग को ही व्याप्त करके स्थित है।[2]

धर्मास्तिकाय के पर्यायवाची शब्द

४. धम्मत्थिकायस्स णं भंते ! केवतिया अभिवयणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! अणेगा अभिवयणा पन्नत्ता, जहा धम्मे ति वा, धम्मत्थिकाये ति वा, पाणातिवायवेरमणे ति वा, मुसावायवेरमणे ति वा एव जाव परिग्गहवेरमणे ति वा, कोहविवेगे ति वा जाव मिच्छादसणसल्लविवेगे ति वा, इरियासमिति ति वा, भासास० एसणास० आदाण-भंडमत्तनिक्खेवणस० उच्चार-पासवणखेल-सिंघाण-पारिट्ठावणियासमिती ति वा, मणगुत्ती ति वा, वइगुत्ती ति वा, कायगुत्ती ति वा, जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वे ते धम्मत्थिकायस्स अभिवयणा।

[४ प्र] भगवन् धर्मास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए हैं ?

---

१ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भाग १३, पृ ५००-५०१

२ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भाग १३, पृ ५०२

[४ उ] गौतम ! इसके अनेक अभिवचन (पर्यायवाची शब्द) कहे गए है, यथा—धर्म, धर्मास्तिकाय, प्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, यावत् परिग्रहविरमण, अथवा क्रोध-विवेक, यावत्—मिथ्यादर्शन-शल्य-विवेक, अथवा ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभाण्डमात्र-निक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिकासमिति, अथवा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति या कायगुप्ति, ये सब तथा इनके समान जितने भी दूसरे इस प्रकार के शब्द है, वे धर्मास्तिकाय के अभिवचन हैं।

विवेचन—अभिवचन अर्थात् पर्यायवाची शब्द।

धर्मास्तिकाय के ये पर्यायवाची शब्द : क्यों और कैसे?—धर्मास्तिकाय के पर्यायवाची मुख्यतया दो शब्द हैं—(१) धर्म और (२) धर्मास्तिकाय। धर्मशब्द भी इन दोनों अर्थों का अभिधायक इस प्रकार है—(१) जो उत्तम सुख (मोक्ष) मे धरता—रखता है, अथवा दुर्गति मे गिरते हुए आत्मा को धारण करके सुगति मे रखता है, वह धर्म है। वह सामान्यधर्म और विशेष-धर्म के रूप मे दो प्रकार का है। यह धर्म शब्द सामान्यधर्मप्रतिपादक है। श्रुत-चारित्रधर्म विशेष-धर्मप्रतिपादक है। इसी प्रकार प्राणातिपातविरमण आदि से कायगुप्ति तक जितने भी शब्द है अथवा और भी इस प्रकार के चारित्रधर्म से सम्बन्धित जो शब्द है, वे सब चारित्रधर्म के अन्तर्गत विशेषधर्म के प्रतिपादक हैं। (२) धर्मास्तिकाय द्रव्य भी धर्म का पर्यायवाची शब्द है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—जो जीव और पुद्गलो की गति और पर्याय को धारण करता है, वह धर्म-द्रव्य है। इसी का दूसरा नाम धर्मास्तिकाय है, जिसका निर्वचन इस प्रकार है—धर्मरूप अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशराशि-धर्मास्तिकाय है। आशय यह है कि धर्मशब्द के साधर्म्य से अस्तिकायरूप धर्म के प्राणातिपातविरमणादि चारित्रधर्म भी पर्यायवाची है।[1]

जे यावन्ने तहप्पगारा का आशय—ये और अन्य भी तथाप्रकार के जो चारित्रधर्माभिधायक सामान्य-विशेषधर्मप्रतिपादक शब्द है, वे सब धर्मास्तिकाय के पर्यायवाची शब्द है।[2]

अधर्मास्तिकाय के पर्यायवाची शब्द

५. अधम्मत्थिकायस्स णं भंते ! केवइया अभिवयणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! अणेगा अभिवयणा पन्नत्ता, त जहा—अधम्मे ति वा, अधम्मत्थिकाये ति वा, पाणातिवाए ति वा जाव मिच्छादंसणसल्ले ति वा, इरियाअस्समिती ति वा जाव उच्चार-पासवण जाव पारिट्ठावणियाअस्समिती ति वा, मणअगुत्ती ति वा, वइअगुत्ती ति वा, कायअगुत्ती ति वा, जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वे ते अधम्मत्थिकायस्स अभिवयणा।

[५ प्र] भगवन् ! अधर्मास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए है ?

[५ उ.] गौतम ! (उसके) अनेक अभिवचन कहे गए है, यथा—अधर्म, अधर्मास्तिकाय, अथवा प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, अथवा ईर्यासम्बन्धी असमिति, यावत् उच्चार-प्रस्रवण-

१ (क) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २८४०

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७६

२ वही, पत्र ७७६

खेल-जल्ल-सिंघाण-परिष्ठापनिकासम्बन्धी असमिति, अथवा मन-अगुप्ति, वचन-अगुप्ति और काय-अगुप्ति, ये सब और इसी प्रकार के जो अन्य शब्द है, वे सब अधर्मास्तिकाय के अभिवचन है।

विवेचन—धर्मास्तिकाय के विपरीत शब्द : अधर्मास्तिकाय के पर्यायवाची—पूर्वोक्त लक्षण वाले धर्म से विपरीत अधर्म शब्द है, जो जीव और पुद्‌गलों की स्थिति में सहायक है। शेष सब पूर्ववत् समझना चाहिए।[1]

आकाशास्तिकाय के पर्यायवाची शब्द

६. आगासत्थिकायस्स ण० पुच्छा।

गोयमा! अणेगा अभिवयणा पन्नत्ता, त जहा—आगासे ति वा, आगासत्थिकाये ति वा, गगणे ति वा, नभे ति वा, समे ति वा, विसमे ति वा, खहे ति वा, विहे ति वा, वीयी ति वा, विवरे ति वा, अंबरे ति वा, अबरसे ति वा, छिड्डे ति वा, झुसिरे ति वा, मग्गे ति वा, विमुहे ति वा, अद्दे ति वा, वियद्दे ति वा, आधारे ति वा, वोमे ति वा, भायणे ति वा, अतरिक्खे ति वा, सामे ति वा, ओवासतरे ति वा, अगमे ति वा, फलिहे ति वा, अणंते ति वा, जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वे ते आगासत्थिकायस्स अभिवयणा।

[६ प्र] भगवन्! आकाशास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए है?

[६ उ.] गौतम! (आकाशास्तिकाय के) अनेक अभिवचन कहे गए है, यथा—आकाश, आकाशास्तिकाय, अथवा गगन, नभ, अथवा सम, विषम, खह (ख), विहायस्, वीचि, विवर, अम्बर, अम्बरस, छिद्र, शुषिर, मार्ग, विमुख, अर्द, व्यर्द, आधार, व्योम, भाजन, अन्तरिक्ष, श्याम, अवकाशान्तर, अगम, स्फटिक और अनन्त, ये सब तथा इनके समान और भी अनेक अभिवचन आकाशास्तिकाय के है।

विवेचन 'आकाश' शब्द का निर्वचन—आ—मर्यादापूर्वक अथवा अभिविधिपूर्वक सभी अर्थ जहाँ काश को यानी अपने-अपने स्वभाव को प्राप्त हो, वह 'आकाश' है।

गगनादि कठिन शब्दो के निर्वचन—गगन—जिसमे गमन का अतिशय विषय (प्रदेश) है। **नभ**—जिसमे भा अर्थात् दीप्ति न हो। **सम**—जिसमे निम्न—नीची और उन्नत—ऊची ऊबडखाबड जगह का अभाव हो, वह सम है। **विषम**—जहाँ पहुँचना दुर्गम हो, वह विषम है। **खह**—खनन करने और हान त्याग — करने (छोडने) पर भी जो रहता है, वह खह। **विहायस्**—विशेषतया जिसका हान—त्याग किया जाता हो। **विवर**—वरण—आवरण से रहित (विगत)। **वीचि**—जिसका विविक्त, पृथक् या एकान्त स्वभाव हो। **अम्बर**—अम्बा (माता) की तरह जननसामर्थ्यशील, अम्बा—जल। उसका दान (राण) देने वाला। **अम्बरस**—अम्बा—जलरूप रस जिसमे से गिरता हो। **छिद्र**—छिद—छेदन होने पर भी जिसका अस्तित्व रहे वह छिद्र। **शुषिर**—समुद्रादि से जल शोष कर पुन दान कर देता हो, उसे शुषिर कहते हैं। **मग्गे**—मार्ग—आकाश स्वय पथरूप होने से मार्ग है। **विमुख**—जिसका कोई मुख—आदि (—सिरा) न हो। **अर्द व्यर्द**—जिस पर अर्दन—गमन, विशेषरूप से गमन किया जाए। **व्योम**—विशेषरूप से पक्षियो एव मनुष्यो का जिससे अवन—रक्षण हो। **भाजन**—ससार

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७६

का आश्रयदाता होने से। **अन्तरिक्ष** -अन्त —मध्य में जिसकी ईक्षा- दर्शन हो; वह अन्तरिक्ष। श्यामवर्ण होने से वह **श्याम** भी कहलाता है। जहां विशेषादिरूप (अवकाशरूप) अन्तर न हो; वह **अवकाशान्तर** है। गम—गमनक्रिया से रहित होने से वह **अगम** है। स्फटिक के समान स्वच्छ होने से **स्फटिक** भी कहलाता है, **अनन्त**—अन्त (सीमा) से रहित होने से **अनन्त**—जिसका अन्त न हो।[1]

जीवास्तिकाय के पर्यायवाची शब्द

७. जीवत्थिकायस्स णं भंते ! केवतिया अभिवयणा० पुच्छा।

गोयमा ! अणेगा अभिवयणा पन्नत्ता, त जहा—जीवे ति वा, जीवत्थिकाये ति वा, पाणे ति वा, भूते ति वा, सत्ते ति वा, विण्णू ति वा, चेया ति वा, जेया ति वा, आया ति वा, रगणे ति वा, हिंडुए ति वा, पोग्गले ति वा, माणवे ति वा, कत्ता ति वा, विकत्ता ति वा, जए ति वा, जतू ति वा, जोणी ति वा, सयंभू ति वा, ससरीरी ति वा, नायये ति वा, अंतरप्पा ति वा, जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वे ते जीवअभिवयणा।

[७ प्र] भगवन् ! जीवास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए है ?

[७ उ] गौतम ! उसके अनेक अभिवचन कहे गए है, यथा—जीव, जीवास्तिकाय, या प्राण, भूत, सत्त्व, अथवा विज्ञ, चेता, जेता, आत्मा, रगण, हिण्डुक, पुद्गल, मानव, कर्त्ता, विकर्त्ता, जगत्, जन्तु, योनि, स्वयम्भू, सशरीरी, नायक एव अन्तरात्मा, ये सब और इसके समान अन्य अनेक अभिवचन जीव के हैं।

विवेचन—**जीव के विविध अभिवचनो के व्युत्पत्त्यर्थ** **जीव**—जो प्राणधारण करता है—जीता है, आयुष्यकर्म और जीवत्व का अनुभव करता है, इसलिए वह जीव कहलाता है। वैसे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, ये जैनशास्त्रो मे जीव के चार पारिभाषिक शब्द भी हे। वहाँ द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीवो को **'प्राण'** वनस्पतिकाय को **'भूत'**, पचेन्द्रियप्राणियो को जीव और चार स्थावरजीवो को **'सत्त्व'** कहते हे। प्राणवायु को भीतर खीचने और बाहर छोडने (श्वासोच्छ्वास लेने) के कारण भी जीव को **'प्राण'** कहते हे। जीव शुभाशुभ कर्मों के साथ सम्बद्ध है, अच्छे-बुरे कार्य करने मे समर्थ है, अथवा सत्ता वाला है, इसलिए इसे **शक्त**, **सक्त** का **सत्त्व** कहते हे। कडवे, कसैले, खट्टे-मीठे आदि रसो को जानता है, इसलिए इसे **विज्ञ** कहते हे। सुख-दु ख का वेदन करता है, इसलिए **'वेद'** कहते हे। **चेता**—पुद्गलो का चयनकर्ता होने से चेता है। **जेता**—कर्मरिपुओ का विजेता होने से। **आत्मा**—नाना गतियो मे सतत अतन गमन (परिभ्रमण) करता है। **रगण**—रागयुक्त है। नाना गतियो मे हिण्डन—भ्रमण करता है, इसलिए इसे **'हिण्डुक'** कहते हें। **पुद्गल**—शरीरो के पूरण गलन होने से पुद्गल है। **मा+नव** जो नवीन न हो, अनादि (प्राचीन) हो, वह **मानव** है। **कर्त्ता**—कर्मो का कर्त्ता। **विकर्त्ता**—विविधरूप से कर्मों का कर्त्ता—**विकर्त्ता**—अथवा विच्छेदक। **जगत्**—अतिशयगमनशील (विविधगतियो मे) होने से। **जन्तु** जो जन्म ग्रहण करता है। **योनि**—दूसरो को उत्पन्न करने वाला। **स्वयंम्भू**—स्वयं (अपने कर्मों के फलस्वरूप) होने वाला। **सशरीरी**- शरीरयुक्त होने के कारण

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७६

सशरीरी। **नायक**—कर्मों का नेता। **अन्तरात्मा**—जो अन्त अर्थात् मध्यरूप आत्मा हो, शरीररूप न हो, वह। ये सब जीव के पर्यायवाची शब्द हैं।[1]

पुद्गलास्तिकाय के पर्यायवाची शब्द

८. पोग्गलत्थिकायस्स णं भंते ! पुच्छा।

गोयमा ! अणेगा अभिवयणा पन्नत्ता, त जहा—पोग्गले ति वा, पोग्गलत्थिकाये ति वा, परमाणुपोग्गले ति वा, दुपदेसिए ति वा, तिपदेसिए ति वा जाव असखेज्जपदेसिए ति वा अणत-पदेसिए ति वा खधे, जे यावऽन्ने तहप्पकारा सव्वे ते पोग्गलत्थिकायस्स अभिवयणा।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० !

॥ वीसइमे सए : बीओ उद्देसओ समत्तो ॥ २०-२ ॥

[८ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के कितने अभिवचन कहे गए है ?

[८ उ] गौतम ! (उसके) अनेक अभिवचन कहे गए हैं, यथा—पुद्गल, पुद्गलास्तिकाय, परमाणु-पुद्गल, अथवा द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् असख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशीस्कन्ध, ये और इसके समान अन्य अनेक अभिवचन पुद्गल के हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

॥ वीसवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७६-७७७

(ख) भगवती विवेचन भा ६ (प घेवरचदजी), पृ २८४०-४१

(ग) प्राणा द्वि-त्रि-चतु प्रोक्ता, भूतास्तु तरव स्मृता।
जीवा पचेन्द्रिया प्रोक्ता शेषा सत्त्वा उदीरिता ॥

तइओ उद्देसओ : 'पाणवहे'

तृतीय उद्देशक : प्राणवध (आदि-विषयक)

आत्मा में प्राणातिपात से लेकर अनाकारोपयोग धर्म तक का परिणमन

१. अह भंते ! पाणातिवाए मुसावाए जाव मिच्छादसणसल्ले, पाणातिवायवेरमणे जाव मिच्छदंसणसल्लविवेगे, उप्पत्तिया जाव पारिणामिया, उग्गहे जाव धारणा, उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कारपरक्कमे, नेरइयत्ते, असुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते, नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए, कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा, सम्मदिट्ठी ३,[1] चक्खुदंसणे ४,[2] आभिणिबोहियणाणे जाव[3] विभंगनाणे, आहारसन्ना ४,[4] ओरालियसरीरे ५,[5] मणोजोए ३,[6] सागारोवयोगे अणागारोवयोगे, जे यावन्ने तहप्पगारा सव्वे ते णऽन्नत्थ आताए परिणमंति ?

हंता, गोयमा ! पाणातिवाए जाव ते णऽन्नत्थ आताए परिणमंति ।

[१ प्र] भगवन् ! प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, औत्पत्तिकी यावत् पारिणामिकी बुद्धि, अवग्रह यावत् धारणा, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम, नैरयिकत्व, असुरकुमारत्व यावत् वैमानिकत्व, ज्ञानावरणीय यावत् अन्तरायकर्म, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, चक्षुदर्शन यावत् केवलदर्शन, आभिनिबोधिकज्ञान यावत् विभगज्ञान आहारसज्ञा यावत् परिग्रहसज्ञा, औदारिकशरीर यावत् कार्मण शरीर, मनोयोग, वचनयोग, काययोग तथा साकारोपयोग एव अनाकारोपयोग, ये सब और इनके जैसे अन्य धर्म, क्या आत्मा के सिवाय अन्यत्र परिणमन नही करते हैं ?

[१ उ] हाँ, गौतम ! प्राणातिपात से लेकर अनाकारोपयोग तक सब धर्म, आत्मा के सिवाय अन्यत्र परिणमन नही करते हैं।

विवेचन—प्राणातिपात आदि आत्मा मे परिणत होते हैं या अन्यत्र ? प्राणातिपात आदि सभी आत्मा के पर्याय होने से आत्मा को छोड कर अन्यत्र परिणमन नही करते, क्योकि

---

१ ३ का अक शेष दो दृष्टियो—मिथ्यादृष्टि एव सम्यग्मिथ्यादृष्टि का सूचक है।

२ ४ का अक शेष तीन दर्शन—अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन का सूचक है।

३ 'जाव' पद से यहाँ **'सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे केवलनाणे, मतिअन्नाणे, सुयअन्नाणे'** यह पाठ समझना चाहिए।

४ **४ का अंक** शेष तीन—**'भयसन्ना, मेहुणसन्ना'** का सूचक है।

५ **५ का अंक 'वेउव्वियसरीरे, आहारगसरीरे, तेयगसरीरे, कम्मगसरीरे'** पाठ का सूचक है।

६. **३ का अंक**—'वइजोगे कायजोगे' इस पाठ का सूचक है।

पर्याय पर्यायी के साथ कथञ्चित् एक रूप होते है, इसलिए ये सब पर्याय आत्मरूप ही हैं, आत्मा से भिन्न पदार्थ मे ये परिणत नही होते ।[1]

गर्भ में उत्पन्न होते हुए जीव में वर्णादि-प्ररूपणा

२. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे कतिवण्णं कतिगंधं ?

एव जहा बारसमसए पचमुद्देसे (स० १२ उ० ५ सु० ३६-३७) जाव कम्मओ ण जए, णो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमति ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति जाव विहरति ।

।। बीसइमे सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ।।२०-३ ।।

[२ प्र] भगवन् ! गर्भ मे उत्पन्न होता हुआ जीव कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले परिणामो से युक्त होता है ?

[२ उ] गौतम ! बारहवे शतक के पचम उद्देशक (सू ३६-३७) मे जैसा कहा है, उसी प्रकार यहा भी –कर्म से जगत् है, कर्म के बिना जीव मे विविध (रूप से जगत् का) परिणाम नही होता, यहाँ तक (जानना चाहिए ।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—प्रस्तुत प्रश्न किस हेतु मे उठाया गया है ? यह जानना आवश्यक है, क्योकि आत्मा (जीव) स्वभावत अमूर्त है, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से रहित है, तो फिर वह वर्णादि परिणाम से कैसे परिणमित हो सकता है ? इस शका का समाधान यह है कि गर्भ मे उत्पन्न होता हुआ जीव तैजस एव कार्मण शरीर से युक्त होता है, तभी वह औदारिक आदि शरीर को ग्रहण करता है । शरीर पुद्गलमय है । वह वर्णादियुक्त होता है । इसलिए ससारी जीव वर्णादि विशिष्ट शरीर से कथञ्चित् अभिन्न माना गया है, ऐसी स्थिति मे प्रश्न होता है कि शरीररूप धर्म से कथचित् अभिन्न जीवरूपी धर्मी कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शो वाला होता है ?

इसके उत्तर मे भगवान् का उत्तर बारहवे शतक के पचम उद्देशक मे कथित है कि पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श के परिणामो से परिणत शरीर के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध वाला जीव गर्भ मे उत्पन्न होता है ।[2]

कम्मओ ण जए० : तात्पर्य—इस पक्ति का तात्पर्य यह है कि कर्म से ही जगत् यानी ससार की प्राप्ति होती है । कर्म के अभाव मे जीव मे विविधरूप से जगत् परिणत नही होता ।[3]

।। बीसवाँ शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७७७

२ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका भा १३, पृ ५३२

३ वही, पृ ५३३

चउत्थो उद्देसओ : 'उवचए'

चतुर्थ उद्देशक : 'उपचय'

इन्द्रियोपचय के भेदादि की प्ररूपणा

१. कतिविधे णं भंते ! इंदियोवचये पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविहे इंदियोवचये पन्नत्ते, त जहा—सोतिंदियउवचए एव बितियो इंदियउद्देसम्रो निरवसेसो भाणियव्वो जहा पन्नवणाए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे जाव विहरइ ।

।। वीसइमे सए : चउत्थो उद्देसम्रो समत्तो ।। २०-४ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! इन्द्रियोपचय पाच प्रकार का कहा गया है, यथा—श्रोत्रेन्द्रियोपचय इत्यादि सब वर्णन प्रज्ञापनासूत्र के (पन्द्रहवे पद के) द्वितीय इन्द्रियोद्देशक के समान कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन इन्द्रियोपचय . स्वरूप और प्रकार—उपचय का अर्थ है—बढना, वृद्धि होना । इन्द्रियाँ पाच है, इसलिए उनका उपचय भी पाच प्रकार का है । यह समग्र वर्णन प्रज्ञापनासूत्र के १५वे पद के द्वितीय उद्देशक मे विस्तृत रूप से किया गया है ।[1]

।। वीसवाँ शतक . चतुर्थ उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १, सू १००६-६७, पृ २४९-६० (म जै विद्या)
  (ख) भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका भा १३, पृ ५३६

पंचमो उद्देसओ : 'परमाणू'

पंचम उद्देशक : परमाणु (आदि–विषयक)

परमाणु-पुद्गल में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-प्ररूपणा

१. परमाणुपोग्गले णं भंते ! कतिवण्णे कतिगंधे कतिरसे कतिफासे पन्नत्ते ?

गोयमा ! एगवण्णे एगगंधे एगरसे दुफासे पन्नत्ते । जति एगवण्णे—सिय कालए, सिय नीलए, सिए लोहियए, सिए हालिद्दए, सिय सुक्किलए । जति एगगंधे—सिय सुब्भिगंधे, सिय दुब्भिगंधे । जति एगरसे—सिय तित्ते, सिय कडुए, सिय कसाए, सिय अंबिले, सिय महुरे । जति दुफासे—सिय सीए य निद्धे य १, सिय सीते य लुक्खे य २, सिय उसिणे य निद्धे य ३; सिय उसिणे य लुक्खे य ४ ।

[१ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! (वह) एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श वाला कहा गया है। यदि एक वर्ण वाला हो तो १ कदाचित् काला, २ कदाचित् नीला, ३. कदाचित् लाल, ४ कदाचित् पीला और ५ कदाचित् श्वेत होता है। यदि एक गन्ध वाला होता है तो ६. कदाचित् सुरभिगन्ध और ७ कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है। यदि एक रस वाला होता है तो ८ कदाचित् तीखा, ९ कदाचित् कटुक, १० कदाचित् कसैला, ११ कदाचित् खट्टा और १२ कदाचित् मीठा (मधुर) होता है। यदि दो स्पर्श वाला होता है तो १३ कदाचित् शीत और स्निग्ध, १४ कदाचित् शीत और रूक्ष, १५ कदाचित् उष्ण और स्निग्ध और १६ कदाचित् उष्ण और रूक्ष होता है।

[इस प्रकार परमाणु-पुद्गल मे वर्ण के पाच, गन्ध के दो, रस के पाच और स्पर्श के चार, यो कुल मिलाकर सोलह भग पाए जाते हैं।]

विवेचन—परमाणु-पुद्गल मे अविरोधी दो स्पर्श—इसमे शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, इन चार स्पर्शो मे से दो अविरोधी स्पर्श पाये जाते हैं। शेष स्पर्श बादर पुद्गल मे ही होते हैं। परमाणु-पुद्गल मे नही होते है।[1]

द्विप्रदेशी स्कन्ध में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श की प्ररूपणा

२. दुपएसिए ण भंते ! खंधे कतिवण्णे० ।

एवं जहा अट्ठारसमसए छट्ठुद्देसए (स० १८ उ० ६ सु० ७) जाव सिए चउफासे पन्नत्ते । जति एगवण्णे—सिय कालए जाव सिय सुक्किलए । जति दुवण्णे—सिय कालए य नीलए य १, सिय

---

1 भगवती अ वृत्ति, पत्र ७८२

कालए य लोहियए य २, सिय कालए य हालिद्दए य ३, सिय कालए य सुक्किलए य ४, सिय नीलए य लोहिए य ५, सिय नीलए य हालिद्दए य ६, सिय नीलए य सुक्किलए य ७, सिय लोहियए य हालिद्दए य ८, सिय लोहियए य सुक्किलए य ९, सिय हालिद्दए य, सुक्किलए य १०—एवं एए दुयासंजोगे दस भंगा।

जति एगगंधे—सिय सुब्भिगंधे १, सिय दुब्भिगंधे २। जति दुगंधे—सुब्भिगंधे य दुब्भिगंधे य।

रसेसु जहा वण्णेसु।

जति दुफासे—सिय सीए य निद्धे य—एवं जहेव परमाणुपोग्गले ४। जति तिफासे—सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १; सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे २; सव्वे निद्धे, देसे सीए, देसे उसिणे ३; सव्वे लुक्खे, देसे सीए, देसे उसिणे ४। जति चउफासे—देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १। ४+४+१=९। एते नव भंगा फासेसु।

[२ प्र] भगवन्! द्विप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, (गन्ध, रस और स्पर्श) आदि वाला होता है?

[२ उ] गौतम! अठारहवें शतक के छठे उद्देशक (सू. ७) मे कथित वर्णन के अनुसार यहां भी, यावत् कदाचित् चार स्पर्श वाला तक कहना चाहिए।

यदि वह एक वर्ण वाला होता है तो (१-५) कदाचित् काला यावत् श्वेत होता है। यदि वह दो वर्ण वाला होता है तो (६) कदाचित् काला और नीला, (७) कदाचित् काला और लाल, (८) कदाचित् काला और पीला, (९) कदाचित् काला और श्वेत, (१०) कदाचित् नीला और लाल, (११) कदाचित् नीला और पीला, (१२) कदाचित् नीला और श्वेत, (१३) कदाचित् लाल और पीला, (१४) कदाचित् लाल और श्वेत और (१५) कदाचित् पीला और श्वेत होता है।

(इस प्रकार द्विकसंयोगी दस भंग होते हैं।) यदि वह एक गन्ध वाला होता है तो (१६) कदाचित् सुरभिगन्ध, (१७) कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है। यदि दो गन्ध वाला है तो (१८) दोनों—सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध वाला होता है।

(१९ से ३३) जिस प्रकार वर्ण के भग कहे है, उसी प्रकार रससम्बन्धी पन्द्रह (असयोगी ५, द्विकसंयोगी १०) भग होते हैं।

यदि दो स्पर्श वाला होता है तो (३४-३७) शीत और स्निग्ध इत्यादि चार भग परमाणु-पुद्गल के समान जानना चाहिए।

यदि वह तीन स्पर्श वाला होता है तो (३८) सर्व शीत होता है, उसका एक देश (आंशिक) स्निग्ध और एक देश रूक्ष होता है, (३९) सर्व उष्ण होता है, उसका एक देश स्निग्ध और एक देश रूक्ष होता है, (४०) (अथवा) सर्व स्निग्ध होता है, उसका एक देश शीत और एक देश उष्ण होता है, (४१) अथवा सर्व रूक्ष होता है, उसका एक देश शीत और एक देश उष्ण होता है, (४२) यदि वह चार स्पर्श वाला होता है तो उसका एक देश शीत, एक देश उष्ण, एक देश स्निग्ध और एक देश रूक्ष होता है। इस प्रकार स्पर्श के (४+४+१=९) नो भग होते है।

विवेचन—द्विप्रदेशी स्कन्ध के बयालीस भंग—द्विप्रदेशी स्कन्ध के जब दोनो प्रदेश एक वर्ण वाले होते हैं, तब असयोगी ५ भग होते है। जब दोनो प्रदेश भिन्न वर्ण वाले होते है, तब द्विकसयोगी दस भग होते हैं। इसी प्रकार जब दोनो प्रदेश एक गन्ध वाले होते है, तब असयोगी दो भग होते है और जब दोनों प्रदेश दो गन्ध वाले होते है, तब द्विकसयोगी एक भग होता है। इसी प्रकार जब दोनो प्रदेश एक रस वाले हो तो असयोगी ५ भग होते है और जब दोनो प्रदेश भिन्न-भिन्न दो रस वाले हों तब दस भंग होते है। इसी प्रकार स्पर्श के द्विकसयोगी ४ भग और त्रिसयोगी ४ भग तथा चतुःसयोगी १ भंग होता है। इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध मे वर्ण के १५, गन्ध के ३, रस के १५, और स्पर्श के ९, ये सब मिला कर ४२ भग होते हैं।[1]

त्रिप्रदेशीस्कन्ध मे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श की प्ररूपणा

३. तिपएसिए ण भते ! खधे कतिवण्णे० ?

जहा अट्ठारसमसए (स० १८ उ० ६ सु० ८) जाव चउफासे पन्नत्ते। जति एगवण्णे—सिय कालए जाव सुक्किलए ५। जति दुवण्णे सिय कालए य नीलए य १, सिय कालए य नीलगा य २, सिय कालगा य नीलए य ३, सिय कालए य लोहियए य १, सिय कालए य लोहियगा य २, सिय कालगा य लोहियए य ३, हालिद्दएण वि समं ३; एवं सुक्किलएण वि समं ३, सिय नीलए य, लोहियए य एत्थ वि भगा ३, एव हालिद्दएण वि भगा ३, एव सुक्किलएण वि समं भगा ३; सिय लोहियए य हालिद्दए य, भगा ३, एवं सुक्किलएण वि समं ३; सिय हालिद्दए य सुक्किलए य भगा ३। एव सव्वेते दस दुयासजोगा भगा तीसं भवंति। जति तिवण्णे—सिय कालए य नीलए य लोहियए य १, सिय कालए य नीलए य हालिद्दए य २, सिय कालए य नीलए य सुक्किलए य ३, सिय कालए य लोहियए य हालिद्दए य ४, सिय कालए य लोहियए य सुक्किलए य ५, सिय कालए य हालिद्दए य सुक्किलए य ६ सिय नीलए य लोहियए य हालिद्दए य ७, सिय नीलए य लोहियए य सुक्किलए य ८, सिय नीलए य हालिद्दए य सुक्किलए य ९, सिय लोहियए य हालिद्दए य सुक्किलए य १०, एव एए दस तिया सयोगे भगा। जति एगगंधे सिय सुब्भिगधे १, सिय दुब्भिगधे २; जति दुगधे—सिय सुब्भिगधे य, दुब्भिगधे य, भगा ३।

रसा जहा वण्णा।

जदि दुफासे—सिय सीए य निद्धे य। एव जहेव दुपएसियस्स तहेव चत्तारि भगा ४। जति तिफासे सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १; सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसा लुक्खा २; सव्वे सीते, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ३; सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, लुक्खे, एत्थ वि भगा तिन्नि ३; सव्वे निद्धे, देसे सीते, देसे उसिणे—भगा तिन्नि ३; सव्वे लुक्खे देसे सीए, देसे उसिणे भगा तिन्नि, [१२]। जति चउफासे—देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १; देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा २; देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ३; देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे,

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७८२-७८३

(ख) भगवती हिन्दी विवेचन (प. घेवरचन्दजी), भा. ६, पृ. २८४७-२८४८

देसे लुक्खे ४; देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसा लुक्खा ५, देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ६, देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ७; देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा ८; देसा सीया, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ९। एवं एए तिपदेसिए फासेसु पणवीसं भंगा।

[३ प्र] भगवन् ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाला कहा गया है ?

[३ उ] **गौतम !** अठारहवें शतक के छठे उद्देशक के सू ८ में कथित वर्णन के अनुसार 'कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है' तक कहना चाहिए।

यदि **एक वर्ण** वाला होता है तो (५) कदाचित् काला होता है, यावत् श्वेत होता है। यदि **दो वर्ण** वाला होता है तो (१) उसका एक अंश कदाचित् काला और एक अंश नीला होता है, अथवा (२) उसका एक अंश काला और दो अंश नीले होते है, या (३) उसके दो अंश काले और एक अंश नीला होता है, अथवा (४) एक अंश काला और एक अंश लाल होता है, या (५) एक देश काला और दो देश लाल होते है, अथवा (६) दो देश काले और एक देश लाल होता है। इसी प्रकार काले वर्ण के पीले वर्ण के साथ तीन भंग (पूर्ववत्) जानने चाहिए। तथा काले वर्ण के साथ श्वेत वर्ण के भी तीन भंग जानने चाहिए। इसी प्रकार नीले वर्ण के लाल वर्ण के साथ पूर्ववत् तीन भंग कहने चाहिए। इसी प्रकार नीले वर्ण के तीन भंग पीले के साथ और तीन भंग श्वेत वर्ण के साथ जानना चाहिए। तथैव लाल और पीले के भी तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार लाल वर्ण के तीन भंग श्वेत के साथ जानना चाहिए। पीले और श्वेत के भी तीन भंग जानने चाहिए। ये सब दस द्विकसंयोगी मिलकर तीस भंग होते है।

यदि त्रिप्रदेशी स्कन्ध तीन वर्ण वाला होता है (१) कदाचित् काला, नीला और लाल होता है, (२) अथवा कदाचित् काला, नीला और पीला होता है, अथवा (३) कदाचित् काला, नीला और श्वेत होता है, या (४) कदाचित् काला, लाल और पीला होता है, अथवा (५) कदाचित् काला, लाल और श्वेत होता है, या (६) कदाचित् काला, पीला और श्वेत होता है, अथवा (७) कदाचित् नीला, लाल और पीला होता है, या (८) कदाचित् नीला, लाल और श्वेत होता है, या (९) कदाचित् नीला, पीला और श्वेत होता है, अथवा (१०) कदाचित् लाल, पीला और श्वेत होता है। इस प्रकार ये दस त्रिकसंयोगी भंग होते है।

यदि एक गन्ध वाला होता है तो (१) कदाचित् सुगन्धित होता है, या (२) कदाचित् दुर्गन्धित होता है। यदि दो गन्ध वाला होता है तो सुगन्धित और दुर्गन्धित के (एक अंश-- एकवचन और अनेक अंश—बहुवचन की अपेक्षा से पूर्ववत्) तीन भंग होते है।

जिस प्रकार वर्ण के (४५ भंग होते है,) उसी प्रकार रस के भी (४५ भंग) (कहने चाहिए।)

(**त्रिप्रदेशी स्कन्ध**) यदि दो स्पर्श वाला होता है, तो कदाचित् शीत और स्निग्ध, इत्यादि चार भंग जिस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध के कहे है, उसी प्रकार यहाँ भी (४ भंग) समझने चाहिए। जब वह तीन स्पर्श वाला होता है तो (१) सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, (२) अथवा सर्वशीत, एक देश स्निग्ध और अनेक देश रूक्ष होता है, अथवा (३) सर्वशीत

अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, या (४) सर्वउष्ण, एकदेश स्निग्ध **और एकदेश रूक्ष** होता है। यहाँ भी पूर्ववत् तीन भग (४-५-६) होते है। अथवा कदाचित् **सर्वस्निग्ध,** एकदेश शीत और एकदेश उष्ण, यहाँ भी पूर्ववत् तीन भग कहने चाहिए। अथवा **सर्वरूक्ष,** एकदेश शीत और एकदेश उष्ण, इसके भी पूर्ववत् तीन भग होते हैं। कुल मिलाकर त्रिकसयोगी त्रिस्पर्शी के (३+३+३+३=१२) बारह भग होते हैं। यदि त्रिप्रदेशीस्कन्ध चार स्पर्श वाला होता है, तो (१) एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। अथवा (२) एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते हैं। अथवा (३) एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। अथवा (४) एकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। या (५) एकदेश शीत, अनेक-देश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते हैं। अथवा (६) एकदेश शीत अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। या (७) अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष। (८) अथवा अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेक-देश रूक्ष। (९) अथवा अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है।

इस प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्ध मे स्पर्श के कुल (४+१२+९=२५) पच्चीस भग होते हैं।

विवेचन त्रिप्रदेशी स्कन्ध मे वर्णादि के एक सौ बीस भंग—त्रिप्रदेशी स्कन्ध मे तीन परमाणु (प्रदेश) होते हैं, तथापि तथाविध परिणाम के कारण वे तीनो एकप्रदेशावगाही, द्विप्रदेशा-वगाही और त्रिप्रदेशावगाही होते है। जब वे एकप्रदेशावगाही होते है, तब उनमे अश की कल्पना नही हो सकती। जब वे द्विप्रदेशावगाही होते हैं, तब उनमे दो अशो की और जब त्रिप्रदेशावगाही होते हैं, तब तीन अशो की कल्पना हो सकती है। जब तीनो ही प्रदेश काला आदि एक वर्ण-रूप परिणाम वाले होते हैं, तब उनके पाच विकल्प होते हैं। जब दो वर्णरूप परिणाम होता है, तब एक प्रदेश काला और दो प्रदेश एक आकाशप्रदेशावगाही होने से एक अश नीला होता है, इस प्रकार द्विक-सयोगी प्रथम भग होता है। अथवा एक प्रदेश काला होता है और दो प्रदेश भिन्न-भिन्न दो आकाश प्रदेशावगाही होने से दो अश नीले हो, ऐसी विवक्षा हो सकती है। इस प्रकार दूसरा भग हुआ। इसी प्रकार दो अश काले हो और एक अश नीला हो, इस प्रकार एक द्विकसयोगी के तीन-तीन भग होने के कारण दस द्विकसयोग के तीस भग होते है।

गन्ध के एक गन्ध-परिणाम हो, तब दो भग होते हैं। जब दो गन्ध परिणाम वाला होता है, तब एकअश और अनेकअश की कल्पना से पूर्ववत् तीन भग होते हैं।

वर्ण के समान ही रस-सम्बन्धी द्विकसयोगी ३० भग, त्रिसयोगी १० भग और असयोगी ५ भग, यो कुल मिलाकर ४५ भग होते हैं।

जब त्रिप्रदेशी स्कन्ध के दो स्पर्श होते हैं, तब द्विप्रदेशी के समान चार भग होते है। जब तीन स्पर्श होते हैं तब तीनो प्रदेश शीत होने से सर्वशीत, एकप्रदेशात्मक एकदेश स्निग्ध और द्विप्रदेशात्मक एकदेश रूक्ष होता है। यह प्रथम भग है। इसी प्रकार सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और

अनेकदेश रूक्ष, यह दूसरा भग है तथा सर्वशीत, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, यह तीसरा भग है। इस प्रकार तीन भग होते हैं। इसी प्रकार सर्वउष्ण, सर्वस्निग्ध और सर्वरूक्ष के साथ भी तीन-तीन भग जानने जाहिए।

त्रिप्रदेशी स्कन्ध के चार स्पर्श के सर्व अश एकवचन मे हो, तब **प्रथम भंग** बनता है। जैसे—एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष। इनमे से अन्तिम रूक्ष पद को अनेकवचन मे रखने पर **दूसरा भंग** बनता है, अर्थात्—दो परमाणुरूप एकदेश शीत और परमाणुरूप एकदेश उष्ण, फिर दो शीतपरमाणुओ मे एक परमाणु स्निग्ध और दूसरा शीत, परमाणुओ मे से एक परमाणु तथा उष्ण परमाणुरूप एकदेश, ये दो अश रूक्ष। जब तीसरे 'स्निग्ध' पद को अनेकवचन मे रखा जाय, तब **तीसरा भंग** बनता है यथा—एक परमाणुरूप देश शीत, दो परमाणुरूप दो उष्ण, और जो शीत है, वह परमाणु और दो उष्ण परमाणुओ मे से एक परमाणु, ये दोनो स्निग्ध तथा जो एक उष्ण है, वह रूक्ष होता है। दूसरे 'उष्ण' पद मे अनेकवचन रखने पर **चौथा भंग** बनता है। यथा स्निग्ध दो परमाणुरूप एकदेश शीत और एक परमाणुरूप दूसरा अश रूक्ष, स्निग्ध दो परमाणुओ मे से एक परमाणुरूप अश तथा रूक्ष अश, ये दोनो उष्ण होते है। पाचवा भग इस प्रकार है—एक अंश शीत और स्निग्ध तथा दूसरे दो अश उष्ण और रूक्ष। छठा भग इस प्रकार है—एक अश शीत और रूक्ष तथा दूसरे दो अश—उष्ण और स्निग्ध। सातवा भग इस प्रकार है स्निग्धरूप दो परमाणुओ मे से एक और दूसरा एक, इस प्रकार दो अश शीत और शेष एक अश उष्ण तथा एक अश स्निग्ध और रूक्ष होता है। आठवा भग यो है—दो अश शीत और रूक्ष तथा एक अश उष्ण और स्निग्ध। नौवां भग इस प्रकार है- भिन्न देशवर्ती दो परमाणु शीत और स्निग्ध, तथा एक अश उष्ण और रूक्ष होता है। इस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध के स्पर्श-सम्बन्धी पच्चीस भग होते हैं।[1]

इस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध मे वर्ण के ४५, गन्ध के ५, रस के ४५ और स्पर्श के २५, ये सब मिल कर १२० भग होते हैं।

चतुःप्रदेशी स्कन्ध में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श की प्ररूपणा

४. चउपएसिए णं भंते ! खंधे कतिवण्णे० ?

जहा अट्ठारसमसए (स० ८ उ० ६ सु० ९) जाव सिय चउफासे पन्नत्ते। जति एगवण्णे—सिय कालए य जाव सुक्किलए ५। जति दुवण्णे—सिय कालए य, नीलए य १; सिय कालए य, नीलगा य २; सिय कालगा य, नीलए य ३; सिय कालगा य, नीलगा य ४; सिय कालए य, लोहियए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा ४; सिय कालए य, हालिद्दए य ४; सिय कालए य, सुक्किलए य ४; सिय नीलए य, लोहियए य ४; सिय नीलए य, हालिद्दए य ४; सिय नीलए य, सुक्किलए य ४; सिय लोहियए य, हालिद्दए य ४; सिय लोहियए य, सुक्किलए य ४; सिय हालिद्दए य,

---

१ (क) भगवती चतुर्थ खण्ड (गु अनुवाद) (प भगवानदासजी) पृ १०१
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २८५२-५३

सुक्किलए य ४; एवं एए दस दुयासजोगा, भंगा पुण चत्तालीसं ४०। जति तिवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य २; सिय कालए य, नीलगा य लोहियए य, ३; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य ४; एए भंगा ४। एव काल-नील-हालिद्दएहिं भंगा ४; काल-नील-सुक्किल० ४; काल-लोहिय-हालिद्द० ४; काल-लोहिय-सुक्किल० ४; काल-हालिद्द-सुक्किल० ४; नील-लोहिय-हालिद्दगाण भंगा ४, नील-लोहिय-सुक्किल० ४; नील-हालिद्द-सुक्किल० ४; लोहिय-हालिद्द-सुक्किलगाण भगा ४, एव एए दस तियगसंजोगा, एक्केक्के संजोए चत्तारि भगा, सव्वेते चत्तालीस भंगा ४०। जति चउवण्णे सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य १, सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, सुक्किलए य २; सिय कालए य, नीलए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य ३; सिय कालए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य ४; सिय नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य, एवमेते चउक्कगसंयोए पच भंगा। एए सव्वे नउइभगा।

जदि एगगंधे—सिय सुब्भिगधे १, सिय दुब्भिगधे २। जदि दुगधे—सिय सुब्भिगंधे य, सिय दुब्भिगंधे य।

रसा जहा वण्णा।

जइ दुफासे—जहेव परमाणुपोग्गले ४। जइ तिफासे—सव्वे सीते, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १, सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसा लुक्खा २, सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ३; सव्वे सीए, देसा निद्धा देसा लुक्खा ४। सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एव भगा ४। सव्वे निद्धे, देसे सीए, देसे उसिणे ४। सव्वे लुक्खे, देसे सीए, देसे उसिणे ४। एए तिफासे सोलसभगा। जति चउफासे—देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १; देसे सीए, उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा २, देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ३; देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसा लुक्खा ४, देसे सीए, देसा उसिणा देसे निद्धे, देसे लुक्खे ५; देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसा लुक्खा ६; देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ७, देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा ८। देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ९—एव एए चउफासे सोलस भगा भाणियव्वा जाव देसा सीया, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा। सव्वेते फासेसु छत्तीस भगा।

[४ प्र] भगवन्! चतु.प्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला होता है? इत्यादि प्रश्न।

[४ उ] गौतम! अठारहवे शतक के छठे उद्देशकवत् 'वह कदाचित् चार स्पर्श वाला है', तक कहना चाहिए।

यदि वह एक वर्ण वाला होता है तो कदाचित् काला, यावत् श्वेत होता है। जब दो वर्ण वाला होता है, तो (१) कदाचित् उसका एक अश काला और एक अश नीला होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला और अनेकदेश नीले होते हैं (३) कदाचित् अनेकदेश काले और एकदेश नीला होता है, (४) कदाचित् अनेकदेश काले और अनेकदेश नीले होते हैं। (५-८) अथवा

कदाचित् एकदेश काला और देशलाल होता है, यहाँ भी पूर्ववत् चार भग कहने चाहिए। (९-१२) अथवा कदाचित् एकदेश काला और एकदेश पीला; इत्यादि पूर्ववत् चार भग कहने चाहिए। इसी तरह (१३-१६) अथवा कदाचित् एक अश काला और एक अश श्वेत, इत्यादि पूर्ववत् चार भग कहने चाहिए। (१७-२०) अथवा कदाचित् एक अश नीला और एक अश लाल आदि पूर्ववत् चार भग। (२१-२४) कदाचित् नीला और पीला के पूर्ववत् चार भग। (२५-२८) कदाचित् नीला और श्वेत के पूर्ववत् चार भग। फिर (२९-३२) कदाचित् लाल और पीला के पूर्ववत् चार भग। (३३-३६) कदाचित् लाल और श्वेत के पूर्ववत् चार भग। इसी प्रकार (३७-४०) अथवा कदाचित् पीला और श्वेत के भी चार भग कहने चाहिए। यो इन दस द्विकसयोग के ४० भग होते है।

यदि वह तीन वर्ण वाला होता है तो—(१) कदाचित् काला, नीला और लाल होता है, अथवा (२) कदाचित् एक अश काला, एक अश नीला और अनेक अश लाल होते हैं, अथवा (३) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला और एकदेश लाल होता है। अथवा (४) कदाचित् अनेकदेश काले, एकदेश नीला और एकदेश लाल होता है। इस प्रकार प्रथम त्रिकसयोग के चार भग होते है। (५-८) इसी प्रकार द्वितीय त्रिकसयोग—काला, नीला और पीला वर्ण के चार भग, (९-१२) तृतीय त्रिकसयोग—काला, नीला और श्वेत वर्ण के चार भग, (१३-१६) काला, लाल और पीला वर्ण के चार भग, (१७-२०) काला, लाल और श्वेत वर्ण के चार भग, (२१-२४) अथवा काला, पीला और श्वेत वण के चार भग, (२५-२८) अथवा नीला, लाल और पीला वर्ण के चार भग, (२९-३२) या नीला, लाल और श्वेत वर्ण के चार भग, (३३-३६) अथवा नीला, पीला और श्वेत वर्ण के चार भग, (३७-४०) अथवा कदाचित् लाल, पीला और श्वेत वर्ण के चार भग होते हैं। इस प्रकार १० त्रिकसयोगो के प्रत्येक के चार-चार भग होने से सब मिला कर ४० भग हुए।

यदि वह चार वर्ण वाला है तो (१) कदाचित् काला, नीला, लाल और पीला होता है, (२) कदाचित् काला, लाल, नीला और श्वेत होता है, (३) कदाचित् काला, नीला, पीला और श्वेत होता है, (४) अथवा कदाचित् काला, लाल, पीला और श्वेत होता है, (५) अथवा कदाचित् नीला, लाल, पीला और श्वेत होता है। इस प्रकार चतु सयोगी के कुल पाच भग होते है। इस प्रकार चतु प्रदेशी स्कन्ध के एक वर्ण के असयोगी ५, दो वर्ण के द्विकसयोगी ४०, तीन वर्ण के त्रिकसयोगी ४० और चार वर्ण के चतु सयोगी ५ भग हुए। कुल मिलाकर वर्णसम्बन्धी ९० भग हुए।

यदि वह चतु प्रदेशी स्कन्ध एक गन्ध वाला होता है तो (१) कदाचित् सुरभिगन्ध और (२) कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है। यदि वह दो गन्ध वाला होता है तो कदाचित् सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध वाला होता है, इसके (एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा से) चार भग होते है। इस प्रकार गन्ध-सम्बन्धी कुल ६ भग होते है।

जिस प्रकार वर्ण सम्बन्धी (९० भग कहे गए है) उसी प्रकार रस-सम्बन्धी (९० भग कहने चाहिए)।

यदि वह (चतु:प्रदेशी स्कन्ध) दो स्पर्श वाला होता है, तो उसके परमाणुपुद्गल के समान चार भंग कहने चाहिए। यदि वह तीन स्पर्श वाला होता है तो, (१) सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और

एकदेश रूक्ष होता है, (२) अथवा सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते हैं, (३) अथवा सर्वशीत, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, अथवा (४) सर्वशीत, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते है। (इस प्रकार ये सर्वशीत के ४ भग हुए।) इसी प्रकार सर्वउष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष इत्यादि चार भग होते है। तथा सर्वस्निग्ध, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण, इत्यादि के चार भग होते है, अथवा सर्वरूक्ष, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण, इत्यादि के भी चार भग होते है। कुल मिला कर तीन स्पर्श के त्रिसयोगी १६ भग होते है। यदि वह चार स्पर्श वाला हो तो (१) उसका एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। (२) अथवा एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते हैं। (३) अथवा एकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। अथवा (४) एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते है। (५) अथवा एकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। अथवा (६) एकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते है। अथवा (७) एकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। अथवा (८) एकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते है। अथवा (९) अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। इस प्रकार चार स्पर्श के सोलह भग, यावत्—अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते है, (यहाँ तक कहने चाहिए)। इस प्रकार द्विक-सयोगी ४, त्रिकसयोगी १६ और चतु सयोगी १६, ये सब मिल कर स्पर्श सम्बन्धी ३६ भग होते है।

विवेचन—चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के वर्णादि सम्बन्धी दो सौ बाईस भग— प्रस्तुत सूत्र मे चतु प्रदेशी स्कन्ध के विषय मे वर्ण के ९०, गन्ध के ६, रस के ९० और स्पर्श के ३६, ये सब मिलकर २२२ भग होते है।

चतु प्रदेशी स्कन्ध के रससम्बन्धी ९० भग—रस के द्विकसयोगी और त्रिकसयोगी दस-दस भग होते हैं और एक-एक सयोग मे एकवचन और अनेकवचन द्वारा चतुर्भंगी होने से १०×२=२० को चार गुना (२०×४) करने से इसके कुल ८० भग होते हैं। चतु सयोगी भग के अक क्रम से ५ भग निम्नोक्त रेखाचित्र के अनुसार जानना—
१ तीखा, २ कडुआ, ३ कसैला, ४ खट्टा, ५ मीठा इस प्रकार चतु सयोगी ५ भग और असयोगी ५ भाग मिलाने से रस के कुल (१०+१०)×४ =८०+५+५=९० भग होते है।

१	२	३	४
१	२	३	५
१	२	४	५
१	३	४	५
२	३	४	५

चार स्पर्श के १६ भंग चतुष्प्रदेशी स्कन्ध में चार स्पर्श वाले १६ भग होते हैं। उनमें से ९ भग तो मूलपाठ मे कहे गए है। शेष ७ भग इस प्रकार हैं—(१०) अनेकदेश शीत, एकदेश, उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष। (११) अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष। (१२) अथवा अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष। (१३) अथवा अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध, एकदेश रूक्ष। (१४) अथवा अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष, (१५) अथवा अनेकदेश शीत,

अनेकादेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष। अथवा (१६) अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष।[1]

पंच-प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि की प्ररूपणा

५. पंचपदेसिए णं भंते ! खंधे कतिवण्णे० ?

जहा अट्ठारसमसए (स० १८ उ० ६ सु० १०) जाव सिय चउफासे पन्नत्ते। जति एगवण्णे, एगवण्णदुवण्णा जहेव चउपदेसिए। जति तिवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य २; सिय कालए य, नीलगा य, लोहियए य ३; सिय कालए य; नीलगा य, लोहियगा य ४; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य ५; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियगा य ६; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियए य ७। सिय कालए य, नीलए य, हालिद्दए य, एत्थ वि सत्त भंगा ७। एवं कालग-नीलग-सुक्किलएसु सत्त भंगा ७; कालग-लोहिय-हालिद्देसु ७; कालग-लोहिय-सुक्किलेसु ७; कालग-हालिद्द-सुक्किलेसु ७; नीलग-लोहिय-हालिद्देसु ७; नीलग-लोहिय-सुक्किलेसु सत्त भंगा ७; नीलग-हालिद्द-सुक्किलेसु ७; लोहिय-हालिद्द-सुक्किलेसु वि सत्त भंगा ७; एवमेते तियासंजोएण सत्तरि भंगा। जति चउवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य २; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दगे य ३; सिय कालए य, नीलगा य, लोहियगे य, हालिद्दए य ४; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियगे य, हालिद्दए य ५—एए पंच भंगा; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, सुक्किलए य—एत्थ वि पंच भंगा; एवं कालग-नीलग-हालिद्द-सुक्किलेसु वि पंच भंगा; कालग-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलएसु वि पंच भंगा ५; नीलग-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलेसु वि पंच भंगा; एवमेते चउक्कगसंजोएणं पणुवीसं भंगा। जति पंचवण्णे—कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य—सव्वमेते एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पंचगसंजोएणं ईयाल भंगसयं भवति।

गंधा जहा चउपएसियस्स।

रसा जहा वण्णा।

फासा जहा चउपदेसियस्स।

[५ प्र] भगवन् ! पंचप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न है।

[५ उ.] गौतम ! अठारहवें शतक के छठे उद्देशक के अनुसार, 'वह कदाचित् चार स्पर्श वाला कहा गया है', तक जानना चाहिए।

यदि वह एक वर्ण वाला या दो वर्ण वाला होता है, तो चतुःप्रदेशी स्कन्ध के समान (उसके ५ और ४० भंग क्रमशः जानना चाहिए)। जब वह तीन वर्ण वाला होता है तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला और एकदेश लाल होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला

१. (क) भगवती चतुर्थ खण्ड (गु अनुवाद) (प भगवानदासजी) पृ. १०३-१०४

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा. ६ (प घेवरचंदजी) पृ २८५८

और अनेकदेश लाल होता है, (३) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला और एकदेश लाल होता है, (४) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला और अनेकदेश लाल होते है, (५) अथवा कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला और एकदेश लाल होता है। (६) अथवा अनेकदेश काला एकदेश नीला और अनेकदेश लाल होते है। (७) अथवा अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला और एकदेश लाल होता है। (८-१४), अथवा कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला और एकदेश पीला होता है। इस त्रिक-सयोग मे भी सात भग होते हैं। (१५-२१) इसी प्रकार काला, नीला और श्वेत के भी सात भग होते है। (२२-२८) (इसी प्रकार) काला, लाल और पीला के भी सात भग होते हैं। (२९-३५) काला, लाल और श्वेत के सात भग होते है। अथवा (३६-४२) काला पीला और श्वेत के भी सात भग होते है। अथवा (४३-४९) नीला, लाल और पीला के भी सात भग होते है। अथवा (५०-५६)नीला, लाल और श्वेत के सात भग होते हैं। अथवा (५७-६३) नीला, पीला और श्वेत के सात भग होते है। अथवा (६४-७०) लाल, पीला और श्वेत के सात भग होते हैं। इस प्रकार दस त्रिक-सयोगो के प्रत्येक के सात-सात भग होने से ७० भग होते हैं।

यदि वह चार वर्ण वाला हो तो, (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है। (२) अथवा एकदेश काला, नीला, और लाल तथा अनेकदेश पीला होता है। (३) अथवा कदाचित् एकदेश काला, नीला, अनेकदेश लाल और एकदेश पीला होता है। (४) अथवा एकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है। (५) अथवा अनेकदेश काला, एकदेश नीला एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है। इस प्रकार चतु सयोगी पाच भग होते है। इसी प्रकार (६-१०) कदाचित् एकदेश काला, नीला, लाल और श्वेत के भी पाच भग (पूर्ववत्) होते है। (११-१५) तथैव एकदेश काला, नीला, पीला और श्वेत के भी पाच भग होते है। इसी प्रकार (१६-२०) अथवा काला, लाल, पीला और श्वेत के भी पाच भग होते है। अथवा (२१-२५) नीला, लाल, पीला और श्वेत के पाच भग होते है। इस प्रकार चतु सयोगी पच्चीस भग होते है।

यदि वह पाच वर्ण वाला हो तो काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत होता है। इस प्रकार असयोगी ५, द्विकसयोगी ४०, त्रिकसयोगी ७०, चतु सयोगी २५ और पचसयोगी एक, इस प्रकार सब मिलकर वर्ण के १४१ भग होते है।

गन्ध के चतु प्रदेशी स्कन्ध के समान यहाँ भी ६ भग होते हैं। वर्ण के समान रस के भी १४१ भग होते है। स्पर्श के ३६ भग चतु प्रदेशी स्कन्ध के समान होते है।

विवेचन—पञ्चप्रदेशी स्कन्ध के वर्णादि—सम्बन्धी तीन सौ चौबीस भंग—पचप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे वर्ण के १४१, गन्ध के ६, रस के १४१, और स्पर्श के ३६, ये कुल मिला कर ३२४ भग होते है।

षट्प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के भंगों का निरूपण

६. छप्पएसिए ण भंते ! खंधे कतिवण्णे० ?

एव जहा पचपएसिए जाव सिय चउफासे पन्नत्ते। जदि एगवण्णे, एगवण्ण-दुवण्णा जहा पंचपदेसियस्स। जति तिवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य- एवं जहेव पंच पएसियस्स

एत्थ भंगा जाव सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियए य ७; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियगा य ८, एए अट्ठ भंगा; एवमेते दस तियासजोगा, एक्केक्के संजोगे अट्ठ भंगा; एवं सव्वे वि तियगसंजोगे असीतिभंगा। जति चउवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य २; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दए य ३; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दगा य ४, सिय कालए य नीलया य, लोहियए य, हालिद्दए य ५; सिय कालए य, नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दगा य ६; सिय कालए य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दए य ७; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य ८; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य ९; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दए य १०; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दए य ११; एए एक्कारस भंगा। एवमेए पच चउक्का सजोगा कायव्वा, एक्केक्के संजोए एक्कारस भंगा, सव्वेते चउक्कगसंजोएणं पणपन्न भंगा। जति पचवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोयिए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य २, सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दगा य सुक्किलए य ३; सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दए य सुक्किलए य ४; सिय कालए य नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य ५, सिय कालगा य, नीलए य, लोहियगे य, हालिद्दए य, सुक्किलए य ६, एवं एए छब्भंगा भाणियव्वा। एवमेते सव्वे वि एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पचग-सजोएसु छासीयं भंगसयं भवति।

गंधा जहा पंचपएसियस्स।

रसा जहा एयस्सेव वण्णा।

फासा जहा चउप्पएसियस्स।

[६ प्र] भगवन् ! षट्-प्रदेशिक स्कन्ध कितने वर्ण वाला होता है ? इत्यादि पूर्ववत प्रश्न है।

[६ उ] गौतम ! जिस प्रकार पचप्रदेशी स्कन्ध के (वर्णादि के विषय मे कहा है,) उसी प्रकार (यहाँ भी) कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है, तक (जानना चाहिए।)

यदि वह **एक वर्ण** और **दो वर्ण** वाला है तो एक वर्ण के ५ और दो वर्ण के ४ भग पच-प्रदेशी स्कन्ध के समान होते हैं। यदि वह **तीन वर्ण** वाला हो तो कदाचित् काला, नीला और लाल होता है, इत्यादि, जिस प्रकार पच-प्रदेशिक स्कन्ध के, यावत् 'कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला और एकदेश लाल होता है, ये सात भग कहे हैं', वे उसी प्रकार समझने चाहिए, आठवाँ भग इस प्रकार है—(८) कदाचित् अनेकदेश काला, नीला और लाल होते है। इस प्रकार ये दस त्रिकसयोग होते है। प्रत्येक त्रिकसयोग मे ८ भग होते है। अतएव सभी त्रिकसयोगो के कुल मिला कर (८ × १० =) ८० भग होते है।

यदि वह **चार वर्ण** वाला होता है, तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल

और अनेकदेश पीला होता है, (३) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, (४) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है, (५) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, (६) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है, (७) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, (८) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, (९) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है, अथवा (१०) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, अथवा (११) कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है।

इस प्रकार ये चतु सयोगी ग्यारह भग होते है। यो पाच चतु सयोग कहने चाहिए। प्रत्येक चतुःसयोग के ग्यारह-ग्यारह भग होते हैं। सब मिलकर ये ११ × ५ = ५५ भग होते हैं।

यदि वह पाच वर्ण वाला होता है, तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है, (३) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, अनेकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है, (४) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (५) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, अथवा (६) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है। इस प्रकार ये छह भग कहने चाहिए। इस प्रकार असयोगी ५, द्विकसयोगी ४०, त्रिक-सयोगी ८०, चतु सयोगी ५५ और पंचसयोगी ६, यो सब मिला कर वर्णसम्बन्धी १८६ भग होते हैं। गन्धसम्बन्धी छह भग पचप्रदेशी स्कन्ध के समान (समझने चाहिए।)

रससम्बन्धी १८६ भग इसी के वर्णसम्बन्धी भग के समान (कहने चाहिए।)

स्पर्शसम्बन्धी ३६ भग चतु प्रदेशी स्कन्ध के समान जानने चाहिए।

विवेचन - षट्प्रदेशी स्कन्ध के वर्णादि विषयक चार सौ-चौदह भग—षट्-प्रदेशीस्कन्ध के वर्ण के १८६, गन्ध के ६, रस के १८६, और स्पर्श के ३६, यो कुल मिलाकर ४१४ भग होते है।

सप्तप्रदेशी स्कन्ध मे वर्णादि भंगों का निरूपण

७. सत्तपएसिए णं भंते ! खंधे कतिवण्णे० ?

जहा पचपएसिए जाव सिय चउफासे पन्नत्ते। जति एगवण्णे, एव एगवण्ण-दुवण्ण-तिवण्णा जहा छप्पएसियस्स। जइ चउवण्णे – सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य २; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दए य ३; एवमेते चउक्कगसजोएणं पन्नरस भंगा भाणियव्वा जाव सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दए य १५। एवमेते पंच चउक्का संजोगा नेयव्वा; एक्केक्के सजोए पन्नरस भगा सव्वमेते पचसत्तरि भंगा भवति। जति पचवण्णे– सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य हालिद्दए य,

सुक्किलगा य २; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य, सुक्किलए य ३; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य, सुक्किलगा य ४; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दए य, सुक्किलए य ५; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य ६; सिय कालए य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दगा य, सुक्किलए य ७; सिय कालए य, नीलगा य, लोहियगे य, हालिद्दए य, सुक्किलए य ८; सिय कालए य, नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य ९; सिय कालए य, नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दगा य, सुक्किलए य १०, सिय कालए य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दए य, सुक्किलए य ११; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य १२; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य १३; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य, सुक्किलए य १४; सिय कालगा य, नीलगे य, लोहियगा य, हालिद्दए य, सुक्किलए य, १५; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य १६; एए सोलस भंगा। एव सव्वमेते एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पचग-सजोगेण दो सोला भगसया भवति।

गधा जहा चउप्पएसियस्स।

रसा जहा एयस्स चेव वण्णा।

फासा जहा चउप्पएसियस्स।

[७ प्र] भगवन् ! सप्तप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श का होता है, इत्यादि प्रश्न ?

[७ उ] गौतम पचप्रदेशिक स्कन्ध के समान, 'कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है' तक कहना चाहिए। यदि वह एक वर्ण, दो वर्ण अथवा तीन वर्ण वाला हो तो षट्प्रदेशी स्कन्ध के एक वर्ण, दो वर्ण एव तीन वर्ण के भगो के समान जानना चाहिए।

यदि वह चार वर्ण वाला होता है, तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है, (३) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, [(४) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है।] इस प्रकार चतुष्क-सयोग मे कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, तक ये पन्द्रह भग होते हैं। इस प्रकार पाच चतु सयोगी भग होते हैं। एक-एक चतुष्कसयोग मे पन्द्रह-पन्द्रह भग होते है। सब मिल कर ये ७५ भग होते हैं।

यदि वह पाँच वर्ण वाला होता है, तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है, (३) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, अनेकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (४) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, अनेकदेश पीला और अनेकेदेश श्वेत होता है, (५) कदाचित् एकदेश

काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (६) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल और एकदेश पीला तथा अनेकदेश श्वेत होता है, (७) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, अनेकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (८) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (९) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है, (१०) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, अनेकदेश पीला और एकदेश शुक्ल होता है, (११) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और एक देश श्वेत होता है, (१२) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (१३) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है, (१४) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, अनेकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (१५) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (१६) कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश शुक्ल होता है। इस प्रकार सोलह भग होते हैं। अर्थात्—असयोगी ५, द्विकसयोगी ४०, त्रिसयोगी ८०, चतु सयोगी ७५ और पचसयोगी १६ भग होते हैं। कुल मिलाकर वर्ण के २१६ भग होते हैं।

गन्ध के छह भग चतु प्रदेशी स्कन्ध के समान होते है। रस के २१६ भग इसी के वर्ण के समान कहने चाहिए। स्पर्श के भग ३६ चतु प्रदेशी स्कन्ध के समान कहने चाहिये।

विवेचन—सप्तप्रदेशी स्कन्ध मे वर्णादि विषयक चार सौ चौहत्तर भंग— सप्तप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे वर्ण के २१६, गन्ध के ६, रस के २१६ और स्पर्श के २६, यो कुल मिला कर ४७४ भग होते हैं।

अष्टप्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि भंगों का निरूपण

८. अट्ठपदेसियस्स ण भंते ! खधे० पुच्छा।

गोयमा ! सिय एगवण्णे जहा सत्तपदेसियस्स जाव सिय चतुफासे पन्नत्ते। जति एगवण्णे, एव एगवण्ण-दुवण्ण-तिवण्णा जहेव सत्तपएसिए। जति चउवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दगा य २; एवं जहेव सत्तपदेसिए जाव सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दगे य १५, सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दगा य १६; एए सोलस भंगा। एवमेते पंच चउक्कगसंजोगा; सव्वमेते असीति भगा ८०। जति पचवण्णे—सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य १; सिय कालगे य, नीलगे य, लोहियगे य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य २; एवं एएणं कमेणं भंगा चारेयव्वा जाव सिय कालए य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दगा य, सुक्किलगे य १५—एसो पन्नरसमो भगो, सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य १६, सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य १७; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियए य हालिद्दगा य, सुक्किलए य १८; सिय कालगा य, नीलगे य, लोहियए य, हालिद्दगा य, सुक्किलगा

य १९; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दए य, सुक्किलए य २०; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य २१; सिय कालगा य, नीलए य, लोहियगा य, हालिद्दगा य, सुक्किलए य २२; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियगे य, हालिद्दए य, सुक्किलगे य २३; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य २४; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियए य, हालिद्दगा य, सुक्किलए य २५; सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दए य, सुक्किलए य २६; एए पंचगसंजोएणं छव्वीसं भंगा भवंति । एवामेव सपुव्वावरेणं एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पंचगसंजोएहिं दो एक्कतीसं भंगसया भवति ।

गंधा जहा सत्तपएसियस्स ।

रसा जहा एयस्स चेव वण्णा ।

फासा जहा चउप्पएसियस्स ।

[८ प्र] भगवन् ! अष्टप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला होता है ? इत्यादि प्रश्न है ।

[८ उ] गौतम ! जब वह एक वर्ण वाला होता है, इत्यादि वर्णन सप्तप्रदेशी स्कन्ध के समान यावत्—कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है, इत्यादि कहना चाहिए । यदि एक वर्ण, दो वर्ण या तीन वर्ण वाला हो तो सप्तप्रदेशी स्कन्ध के एक वर्ण, द्विवर्ण एव त्रिवर्ण के समान भग कहने चाहिए । यदि वह चार वर्ण वाला होता है, तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और एकदेश पीला होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है, इस प्रकार सप्तप्रदेशी स्कन्ध के समान पन्द्रह भग (पन्द्रहवाँ भग), कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल एव एकदेश पीला, तथा (सोलहवाँ भग) कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है, तक जानना चाहिए । एक चतु सयोग मे सोलह भग होते है । इस प्रकार इन पाच चतु -सयोगो के प्रत्येक के सोलह-सोलह भग होने से ५ × १६ = ८० भग होते है ।

यदि वह पाच वर्ण वाला होता है, तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है । इस प्रकार इस क्रम से (१५) कदाचित् एकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल और अनेकदेश पीला होता है, इस पन्द्रहवे भंग तक कहना चाहिए । (१६) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (१७) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है, (१८) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल और अनेकदश पीला तथा एकदेश श्वेत होता है, (१९) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (२०) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (२१) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है, (२२) कदाचित् अनेकदेश काला, एकदेश नीला, अनेकदेश लाल, अनेकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (२३) कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता

है, (२४) कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेक-देश श्वेत होता है, (२५) कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, एकदेश लाल, अनेकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, अथवा (२६) कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है। इस प्रकार पचसयोगी छव्वीस भग होते हैं। इसी प्रकार कुल मिलाकर वर्ण के क्रमश'—असंयोगो ५, द्विक-सयोगी ४०, त्रिकसयोगी ८०, चतु संयोगी ८० और पंचसंयोगी २६, यो वर्णसम्बन्धी कुल २३१ भग होते है।

गन्ध के सप्तप्रदेशी स्कन्ध के समान ६ भग होते है।

रस के इसी स्कन्ध के वर्ण के समान २३१ भग होते है।

स्पर्श के चतु प्रदेशी स्कन्ध के ३६ भग होते हैं।

विवेचन—अष्टप्रदेशी स्कन्ध के वर्णादिविषयक पांच सौ चार भंग—अष्टप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे वर्ण के २३१, गन्ध के ६, रस के २३१ और स्पर्श के ३६, ये कुल मिलाकर ५०४ भग होते है।

नवप्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के भंगों का निरूपण

२. नवपदेसियस्स० पुच्छा।

गोयमा ! सिय एगवण्णे जहा अट्ठपएसिए जाव सिय चउफासे पन्नत्ते। जति एगवण्णे, एगवण्ण-दुवण्ण-तिवण्ण-चउवण्णा जहेव अट्ठपएसियस्स। जति पंचवण्णे—सिय कालए, य नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलए य १; सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किलगा य २; एवं परिवाडीए एक्कतीसं भंगा भाणियव्वा जाव सिय कालगा य, नीलगा य, लोहियगा य, हालिद्दगा य, सुक्किलए य; एए एक्कतीसं भंगा। एव एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पंचगसजोएहिं दो छत्तीसा भगसया भवति।

गंधा जहा अट्ठपएसियस्स।

रसा जहा एयस्स चेव वण्णा।

फासा जहा चउप्पएसियस्स।

[९ प्र] भगवन्! नवप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला होता है? इत्यादि प्रश्न।

[९ उ] गौतम! अष्टप्रदेशी स्कन्ध के समान, कदाचित् एकवर्ण (से लेकर) कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है, तक कहना चाहिए। यदि वह एक वर्ण, दो वर्ण, तीन वर्ण अथवा चार वर्ण वाला हो तो उसके भग अष्टप्रदेशी स्कन्ध के (एक वर्ण, दो वर्ण, तीन वर्ण और चार वर्ण के) समान (कहने चाहिए।)

यदि वह पाच वर्ण वाला होना है, तो (१) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, (२) कदाचित् एकदेश काला, एकदेश नीला, एकदेश लाल, एकदेश पीला और अनेकदेश श्वेत होता है। इस प्रकार इस क्रम से कदाचित् अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश लाल, अनेकदेश पीला और एकदेश श्वेत होता है, यहाँ तक इकतीस भग कहने चाहिए। इस प्रकार पाच वर्ण के ३१ भग होते हैं।

यो वर्ण की अपेक्षा असयोगी ५, द्विकसंयोगी ४०, त्रिकसयोगी ८०, चतु:सयोगी ८० और पंचसयोगी ३१, ये सब मिलाकर वर्ण सम्बन्धी २३६ भग होते है।

गन्ध-विषयक ६ भग अष्टप्रदेशी के समान होते हैं।

रस-विषयक २३६ भग इसी (अष्टप्रदेशी) के वर्ण के समान २३६ भग कहने चाहिए।

स्पर्श के ३६ भग चतु.प्रदेशी के समान समझने चाहिए।

विवेचन—नवप्रदेशी स्कन्ध के वर्णादि-विषयक पांच सौ चौदह भंग—प्रस्तुत नौ प्रदेशी स्कन्ध के विषय में वर्ण के २३६, गन्ध के ६, रस के २३६ और स्पर्श के ३६, ये कुल मिला कर ५१४ भग होते है।

दश प्रदेशी स्कन्ध में वर्णादि के भंगों का निरूपण

१०. दसपदेसिए ण भंते ! खंधे० पुच्छा।

गोयमा ! सिय एगवण्णे जहा नवपदेसिए जाव सिय चउफासे पन्नत्ते। जति एगवण्णे, एगवण्ण-दुवण्ण-तिवण्ण-चउवण्णा जहेव नवपएसियस्स। पंचवण्णे वि तहेव, नवरं बत्तीसतिमो वि भंगो भण्णति। एवमेते एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पंचगसंजोएसु दोन्नि सत्तत्तीसा भंगसया भवंति।

गधा जहा नवपएसियस्स।

रसा जहा एयस्स चेव वण्णा।

फासा जहा चउप्पएसियस्स।

[१० प्र] भगवन् ! दशप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला होता है, इत्यादि प्रश्न ?

[१० उ.] गौतम ! नव-प्रदेशिक स्कन्ध के समान कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है तक कहना चाहिए। यदि एकवर्णादि वाला हो तो नव-प्रदेशिक स्कन्ध के एक वर्ण, दो वर्ण, तीन वर्ण और चार वर्ण-(सम्बन्धी भग) के समान कहना चाहिए। यदि वह पाच वर्ण वाला हो तो नवप्रदेशी के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अनेकदेश काला, अनेकदेश नीला, अनेकदेश पीला और अनेकप्रदेश श्वेत होता है। यह बत्तीसवाँ भग अधिक कहना चाहिए।

इस प्रकार असयोगी ५, द्विकसयोगी ४०, त्रिकसयोगी ८०, चतुष्कसयोगी ८० और पच-सयोगी ३२, ये सब मिला कर वर्ण के २३७ भग होते हैं।

गन्ध के ६ भग नवप्रदेशी-सम्बन्धी के समान है।

रस के २३७ भग इसी के वर्ण के समान होते है।

स्पर्शसम्बन्धी ३६ भग चतुप्रदेशी के समान होते है।

११. जहा दसपएसिओ एवं संखेज्जपएसिओ वि।

[११] दशप्रदेशी स्कन्ध के समान सख्यातप्रदेशी स्कन्ध (के) भी (वर्णादि सम्बन्धी भग कहने चाहिए।)

१२. एवं असंखेज्जपएसिओ वि।

[१२] इसी प्रकार असख्यातप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे भी समझना चाहिए।

१३. सुहुमपरिणओ अणंतपएसिओ वि एवं चेव ।

[१३] सूक्ष्मपरिणाम वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे भी इसी प्रकार भग कहने चाहिए ।

विवेचन- दशप्रदेशी स्कन्ध के वर्णादि विषयक भंग- दशप्रदेशी स्कन्ध मे वर्ण के २३७, गन्ध के ६, रस के २३७, स्पर्श के ३६, ये सब मिलाकर ५१६ भंग होते है ।

सख्यात-प्रदेशी, असख्यात-प्रदेशी और सूक्ष्मपरिणाम वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के विषय मे भी इसी के समान भग कहने चाहिए ।

बादरपरिणामी अनन्तप्रदेशी स्कन्ध मे वर्णादि प्ररूपण

१४. बादरपरिणए ण भते ! अणतपएसिए खधे कतिवण्णे० ?

एव जहा अट्ठारसमसए जाव सिय अट्ठफासे पन्नत्ते । वण्ण-गंध-रसा जहा दसपएसियस्स । जति चउफासे—सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए; सव्वे सीए, सव्वे निद्धे १; सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे सीए, सव्वे लुक्खे २, सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे उसिणे, सव्वे निद्धे ३; सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए, सव्वे उसिणे, सव्वे लुक्खे ४, सव्वे कक्खडे, सव्वे लहुए, सव्वे सीए, सव्वे निद्धे ५, सव्वे कक्खडे, सव्वे लहुए, सव्वे सीए, सव्वे लुक्खे ६; सव्वे कक्खडे, सव्वे लहुए, सव्वे उसिणे, सव्वे निद्धे ७, सव्वे कक्खडे, सव्वे लहुए, सव्वे उसिणे, सव्वे लुक्खे ८; सव्वे मउए, सव्वे गरुए, सव्वे सीए, सव्वे निद्धे ९, सव्वे मउए, सव्वे गरुए, सव्वे सीए, सव्वे लुक्खे १०; सव्वे मउए, सव्वे गरुए, सव्वे उसिणे, सव्वे निद्धे ११; सव्वे मउए, सव्वे गरुए, सव्वे उसिणे, सव्वे लुक्खे १२, सव्वे मउए, सव्वे लहुए, सव्वे सीए, सव्वे निद्धे १३, सव्वे मउए, सव्वे लहुए, सव्वे सीए, सव्वे लुक्खे १४; सव्वे मउए, सव्वे लहुए, सव्वे उसिणे, सव्वे निद्धे १५, सव्वे मउए, सव्वे लहुए, सव्वे उसिणे, सव्वे लुक्खे १६; एए सोलस भगा ।

जइ पचफासे - सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १; सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसा लुक्खा २, सव्वे, कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसे लुक्खे ३; सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसा लुक्खा ४ । सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे० ४; सव्वे कक्खडे, सव्वे लहुए, सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे० ४, सव्वे कक्खडे, सव्वे लहुए, सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे० ४, एव एए कक्खडेण सोलस भगा । सव्वे मउए, सव्वे, गरुए, सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे० ४; एवं मउएण वि सोलस भगा । एव बत्तीसं भगा । सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे निद्धे, देसे सीए, देसे उसिणे० ४; सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, सव्वे लुक्खे, देसे सीए, देसे उसिणे ४; ० एए बत्तीस भगा । सव्वे कक्खडे, सव्वे सीए, सव्वे निद्धे, देसे गरुए, देसे लहुए ४; एत्थ वि बत्तीस भगा । सव्वे गरुए, सव्वे सीए, सव्वे निद्धे, देसे कक्खडे, देसे मउए ४; ० एत्थ वि बत्तीस भगा । एव सव्वेते पंचफासे अट्ठावीस भगसयं भवति ।

जदि छफासे—सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १; सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा २; एवं जाव सव्वे कक्खडे, सव्वे गरुए, देसा सीता, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा १६; एए सोलस भगा। सव्वे कक्खडे, सव्वे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एत्थ वि सोलस भंगा। सव्वे मउए, सव्वे गरुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एत्थ वि सोलस भंगा। सव्वे मउए, सव्वे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एत्थ वि सोलस भगा १६। एए चउसट्ठि भंगा। सव्वे कक्खडे, सव्वे सीए, देसे गरुए, देसे लहुए; देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एवं जाव सव्वे मउए, सव्वे उसिणे, देसा गरुया, देसा लहुया, देसा णिद्धा, देसा लुक्खा; एत्थ वि चउसट्ठि भगा। सव्वे कक्खडे, सव्वे निद्धे, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे जाव सव्वे मउए, सव्वे लुक्खे, देसा गरुया, देसा लहुया, देसा सीया, देसा उसिणा १६; एए चउसट्ठि भंगा। सव्वे गरुए, सव्वे सीए, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एव जाव सव्वे लहुए, सव्वे उसिणे, देसा कक्खडा, देसा मउया, देसा निद्धा, देसा लुक्खा; एए चउसट्ठि भंगा। सव्वे निद्धे, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे सीए, देसे उसिणे, जाव सव्वे लहुए, सव्वे लुक्खे, देसा कक्खडा, देसा मउया, देसा सीता, देसा उसिणा, एए चउसट्ठि भगा। सव्वे सीए, सव्वे निद्धे, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, जाव सव्वे उसिणे, सव्वे लुक्खे, देसा कक्खडा, देसा मउया, देसा गरुया, देसा लहुया; एए चउसट्ठि भगा। सव्वेते छफासे तिन्नि चउरासीया भंगसया भवंति ३८४।

जति सत्तफासे—सव्वे कक्खडे, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे १; सव्वे कक्खणे, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा ४; सव्वे कक्खडे, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ४; सव्वे कक्खडे, देसे गरुए, देसे लहुए, देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ४; सव्वे कक्खडे, देसे गरुए, देसे लहुए, देसा, सीया, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ४; सव्वेते सोलस भगा। सव्वे कक्खडे, देसे गरुए, देसा लहुया, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एव गरुएण एगत्तएण, लहुएणं पुहत्तएणं एए वि सोलस भंगा। सव्वे कक्खडे, देसा गरुया, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एए वि सोलस भगा भाणियव्वा। सव्वे कक्खडे, देसा गरुया, देसा लहुया, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एए वि सोलस भगा भाणियव्वा। एवमेए चउसट्ठि भगा कक्खडेण समं। सव्वे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एवं मउएण वि सम चउसट्ठि भगा भाणियव्वा। सव्वे गरुए, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एव गरुएण वि समं चउसट्ठि भगा कायव्वा। सव्वे लहुए, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे,लुक्खे; एवं लहुएण वि सम चउसट्ठि भंगा कायव्वा। सव्वे सीए, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एवं सीएण वि समं चउसट्ठि भंगा कायव्वा। सव्वे उसिणे, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे

गरुए, देसे लहुए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे; एवं उसिणेण वि समं चउसट्ठि भगा कायव्वा। सव्वे निद्धे, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे; एव निद्धेण वि सम चउसट्ठि भगा कायव्वा। सव्वे लुक्खे, देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे; एव लुक्खेण वि सम चउसट्ठि भगा कायव्वा जाव सव्वे लुक्खे, देसा कक्खडा, देसा मउया, देसा गरुया, देसा लहुया, देसा सीया, देसा उसिणा। एव सत्तफासे पच बारसुत्तरा भंगसया भवंति।

जति अट्ठफासे देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीते, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ४; देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसे सीते, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ५; देसे कक्खडे, देसे महुए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसा सीता, देसे उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ४; देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसे लहुए, देसा सीता, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ४; एए चत्तारि चउक्का सोलस भगा। देसे कक्खडे, देसे मउए, देसे गरुए, देसा लहुया, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एव एए गरुएण एगत्तएणं, लहुएणं पोहत्तएण सोलस भंगा कायव्वा। देसे कक्खडे, देसे मउए, देसा गरुया, देसे लहुए, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे ४, एए वि सोलस भगा कायव्वा। देसे कक्खडे, देसे मउए, देसा गरुया, देसा लहुया, देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एए वि सोलस भगा कायव्वा। सव्वेते चउसट्ठि भंगा कक्खड-मउएहिं एगत्तएहिं। ताहे कक्खडेणं एगत्तएणं, मउएण पुहत्तएणं एए चेव चउसट्ठि भगा कायव्वा। ताहे कक्खडेण पुहत्तएण, मउएणं एगत्तएणं चउसट्ठि भंगा कायव्वा। ताहे एतेहिं चेव दोहि वि पुहत्तएहिं चउसट्ठि भगा कायव्वा जाव देसा कक्खडा, देसा मउया, देसा गरुया, देसा लहुया, देसा सीता, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा—एसो अपच्छिमो भगो। सव्वेते अट्ठफासे दो छप्पणा भंगसया भवंति।

एवं एए बादरपरिणए अणतपएसिए खधे सव्वेसु संजोएसु बारस छण्णउया भंगसया भवंति।

[१४ प्र] भगवन्! बादर-परिणाम वाला (स्थूल) अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला होता है, इत्यादि प्रश्न ?

[१४ उ] गौतम! अठारहवें शतक के छठे उद्देशक में कथित निरूपण के समान 'कदाचित् आठ स्पर्श वाला कहा गया है,' (यहाँ तक) जानना चाहिए। अनन्तप्रदेशी बादर परिणामी स्कन्ध के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के भग, दशप्रदेशी स्कन्ध के समान कहने चाहिए।

यदि वह चार स्पर्श वाला होता है, तो (१) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत और सर्वस्निग्ध होता है, (२) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत और सर्वरूक्ष होता है, (३) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है, (४) कदाचित् सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वरूक्ष

होता है। (५) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु (हलका), सर्वशीत और सर्वस्निग्ध होता है। (६) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु सर्वशीत, और सर्वरूक्ष होता है। (७) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है। (८) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वरूक्ष होता है। (९) कदाचित् सर्वमृदु (कोमल), सर्वगुरु, सर्वशीत और सर्वस्निग्ध होता है। (१०) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वगुरु, सर्वभीत और सर्वरूक्ष होता है। (११) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है। (१२) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वरूक्ष होता है। (१३) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वशीत और सर्वस्निग्ध होता है। (१४) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वशीत और सर्वरूक्ष होता है। (१५) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है। (१६) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वरूक्ष होता है। इस प्रकार ये सोलह भग होते है।

यदि पाच स्पर्श वाला होता है, तो (१) सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। (२) अथवा सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और अनेददेश रूक्ष होता है। (३) अथवा सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, अनेकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। (४) अथवा सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होता है। (५-८) अथवा सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वउष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, इनके चार भग। (९-१२) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होते हैं, इनके भी चार भग। (१३-१६) अथवा कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वउष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष इसके भी पूर्ववत् चार भग। इस प्रकार कर्कश के साथ सोलह भग होते है। (१-४) अथवा सर्वमृदु सर्वगुरु, सर्वशीत, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, इस (मृदु) के भी पूर्ववत् चार भग होते है। पहले के १६ और ये १६ भग मिल कर कुल ३२ भग होते है। (१-१६) अथवा सर्वकर्कश, सर्वगुरु सर्वस्निग्ध, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण के भी १६ भग होते हैं। (१-१६) अथवा सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वरूक्ष, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण के १६ भग, दोनो (१६+१६=३२) मिला कर बत्तीस भग होते है।

अथवा (१-३२) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वशीत, सर्वस्निग्ध, एकदेश गुरु और एकदेश लघु, के पूर्ववत् बत्तीस भग होते है। अथवा (१-३२) कदाचित् सर्वगुरु, सर्वशीत, सर्वस्निग्ध, एकदेश कर्कश और एकदेश मृदु के भी पूर्ववत् बत्तीस भग होते है।

इस प्रकार सब मिला कर पाच स्पर्श वाले १२८ भग हुए।

यदि छह स्पर्श वाला होता है, तो (१) सर्वकर्कश, सर्वगुरु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वगुरु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष, इस प्रकार यावत् सर्वकर्कश, सर्वलघु, अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष, इस प्रकार सोलहवे भग तक कहना चाहिए। इस प्रकार ये १६ भग हुए। (२) कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, यहाँ भी (पूर्ववत् सब मिलकर) सोलह भग होते है। (३) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वगुरु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, यहाँ भी सब मिल कर सोलह भग

होते है। (४) कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष यहा भी कुल सोलह भग होते हैं। ये सब मिल कर १६+१६+१६+१६=६४ भंग होते है।

[१-६४] अथवा कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वशीत, एकदेशगुरु, एकदेशलघु, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, इस प्रकार यावत् सर्वमृदु सर्वउष्ण, अनेकदेश लघु, अनेकदेश गुरु, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते है, यह चौसठवाँ भग है। इस प्रकार यहाँ भी चौसठ भग होते हैं। [१-६४] अथवा कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वस्निग्ध, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण होता है, यावत् कदाचित् सर्वमृदु, सर्वरूक्ष, अनेकदेश गुरु, अनेकदेश लघु, अनेकदेश शीत और अनेकदेश उष्ण होता है। यह चौसठवाँ भग है। इस प्रकार यहाँ भी १६+१६+१६+१६=६४ भग होते है। कदाचित् सर्वगुरु, सर्वशीत, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश उष्ण होता है, इस प्रकार यावत्—सर्वलघु, सर्वउष्ण, अनेकदेश कर्कश, अनेकदेश मृदु, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते है, यह चौसठवाँ भग है। यहाँ भी चौसठ भग होते हैं।

[१-६४] कदाचित् सर्वगुरु, सर्वस्निग्ध, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण होता है, यावत् कदाचित् सर्वलघु, सर्वरूक्ष अनेकदेश कर्कश, अनेकदेश मृदु, अनेकदेश शीत और अनेकदेश उष्ण होते है, यह चौसठवाँ भग है। इस प्रकार यहाँ भी ६४ भग होते है।

[१-६४] कदाचित् सर्वशीत, सर्वस्निग्ध, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु और एकदेश लघु होता है, यावत् कदाचित् सर्वउष्ण, सर्वरूक्ष, अनेकदेश कर्कश, अनेकदेश मृदु, अनेकदेश गुरु, अनेकदेश लघु होता है। यह चौसठवाँ भग है। इस प्रकार यहाँ भी चौसठ भग होते है। षट्स्पर्श सम्बन्धी ये सब ६४×६=३८४ भग होते है।

यदि वह सात स्पर्श वाला होता है तो (१) कदाचित् सर्वकर्कश, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश, शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। (२-३-४) कदाचित् सर्वकर्कश, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष होते हैं (इस प्रकार चार भग होते है।), (२) कदाचित् सर्वकर्कश, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है, इत्यादि चार भग। (३) कदाचित् सर्वकर्कश, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इत्यादि चार भग तथा (४) कदाचित् सर्वकर्कश, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष इत्यादि चार भंग, ये सब मिलाकार ४×४=१६ भग होते है। अथवा कदाचित् (२) सर्वकर्कश, एकदेश गुरु, अनेकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है। इस प्रकार 'गुरु' पद को एकवचन मे और 'लघु' पद को अनेक (बहु-) वचन मे रखकर पूर्ववत् यहाँ भी सोलह भग कहने चाहिये। अथवा कदाचित् ३ सर्वकर्कश, अनेकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध एव एकदेश रूक्ष, इत्यादि, ये भी सोलह भग कहने चाहिये। (४) अथवा कदाचित् सर्वकर्कश, अनेकदेश गुरु, अनेकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, ये सब मिलकर सोलह भग कहने चाहिये।

इस प्रकार ये १६×४=६४ भग 'सर्वकर्कश' के साथ होते हैं।

(२) अथवा कदाचित् सर्वमृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध, और एकदेश रूक्ष होता है। रूक्ष की तरह 'मृदु' शब्द के साथ भी पूर्ववत् १६ × ४ = ६४ भग होते है।

(३) अथवा कदाचित् सर्वगुरु, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध, और एकदेश रूक्ष, इस प्रकार के 'गुरु' के साथ भी पूर्ववत् १६ × ४ = ६४ भंग कहने चाहिए।

(४) अथवा कदाचित् सर्वलघु, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध, एकदेश रूक्ष, इस प्रकार 'लघु' के साथ भी पूर्ववत् १६ × ४ = ६४ भग कहने चाहिये।

(५) कदाचित् सर्वशीत, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इस प्रकार 'शीत' के साथ भी ६४ भग कहने चाहिये।

(६) कदाचित् सर्वउष्ण, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इस प्रकार 'उष्ण' के साथ भी ६४ भग कहने चाहिये।

(७) कदाचित् सर्वस्निग्ध, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण होता है, इस प्रकार 'स्निग्ध' के साथ भी ६४ भग होते है।

(८) कदाचित् सर्वरूक्ष, एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत और एकदेश उष्ण, इस प्रकार 'रूक्ष' के साथ भी ६४ भग कहने चाहिये।

यावत् सर्वरूक्ष, अनेकदेश कर्कश, अनेकदेश मृदु, अनेकदेश गुरु, अनेकदेश लघु, अनेकदेश शीत और अनेकदेश उष्ण होता है। इस प्रकार ये सब मिलकर ८ × ६४ = ५१२ भग सप्तस्पर्शी (बादरपरिणामी अनन्तप्रदेशी स्कन्ध) के होते है।

यदि वह आठ स्पर्शवाला होता है, तो (१ I) कदाचित् एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष होता है (इत्यादि, इसके) चार भग (कहने चाहिए)। (II) कदाचित् एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत और अनेकदेश उष्ण तथा एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इत्यादि चार भग कहने चाहिये। (III) कदाचित् एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, अनेकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इत्यादि चार भग। (IV) कदाचित् एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, एकदेश लघु, अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, ये चार भग। इस प्रकार इन चार चतुष्को के १६ भग होते है। अथवा (२) कदाचित् एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, एकदेश गुरु, अनेकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इस प्रकार 'गुरु' पद को एकवचन मे और 'लघु' पद को बहुवचन मे रखकर पूर्ववत् १६ भग कहने चाहिये। (३) कदाचित् एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, अनेकदेश गुरु, एकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इसके भी १६ भग (पूर्ववत्) होते है। (४) कदाचित् एकदेश कर्कश, एकदेश मृदु, अनेकदेश गुरु, अनेकदेश लघु, एकदेश शीत, एकदेश उष्ण, एकदेश स्निग्ध और एकदेश रूक्ष, इसके भी पूर्ववत् १६ भंग कहने चाहिये।

ये सब मिलाकर (१६ × ४ = ६४) चौसठ भंग 'कर्कश' और 'मृदु' को एकवचन में रखने से होते है। इन्ही भगो मे 'कर्कश' को एकवचन मे और 'मृदु' को बहुवचन मे रखकर ६४ भग कहने चाहिये। अथवा उन्ही भगो मे 'कर्कश' को बहुवचन मे और 'मृदु' को एकवचन मे रखकर पूर्ववत् ६४ भग कहने चाहिये। अथवा 'कर्कश' और मृदु दोनो को बहुवचन मे रख कर फिर ६४ भग कहने चाहिये; यावत् अनेकदेश कर्कश, अनेकदेश मृदु, अनेकदेश गुरु, अनेकदेश लघु, अनेकदेश शीत, अनेकदेश उष्ण, अनेकदेश स्निग्ध और अनेकदेश रूक्ष, यह अन्तिम भग है। ये सब मिला कर अष्टस्पर्शी भग २५६ होते है।

इस प्रकार बादर परिणाम वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के सर्वसयोगो के कुल १२९६ भग होते है।

विवेचन—बादर परिणामी अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के स्पर्श सम्बन्धी एक हजार दो सौ छियानवं भंग - इसके स्पर्श-सम्बन्धी चतु सयोगी १६, पचसयोगी १२८, षट्सयोगी ३८४, सप्तसयोगी ५१२, और अष्टसंयोगी २५६, ये सब मिला कर बादर अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के स्पर्श के १२९६ भग होते हैं। एक परमाणु से लेकर सूक्ष्म अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक स्पर्श सम्बन्धा २९८ भग होते हैं। परमाणु से लेकर बादर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के कुल ६४७० भग होते है, जो पहले गिना दिये है।[1]

१५. कतिविधे णं भंते ! परमाणू पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे परमाणू पन्नत्ते, तं जहा—दव्वपरमाणू खेत्तपरमाणू कालपरमाणू भावपरमाणू ।

[१५ प्र] भगवन् ! परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१५ उ] गौतम ! परमाणु चार प्रकार का कहा गया है यथा—द्रव्यपरमाणु, क्षेत्रपरमाणु, कालपरमाणु और भावपरमाणु।

१६. दव्वपरमाणू ण भंते ! कतिविधे पन्नत्ते !

गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, त जहा अच्छेज्जे अभेज्जे अडज्झे अगेज्झे ।

[१६ प्र] भगवन् ! द्रव्यपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६ उ] गौतम ! (द्रव्यपरमाणु) चार प्रकार का कहा गया है यथा—अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य।

१७. खेत्तपरमाणू ण भते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विहे पन्नत्ते, त जहा— अणड्ढे अमज्झे अपएसे अविभाइमे ।

[१७ प्र] भगवन् ! क्षेत्रपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१७ उ] गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है यथा- अनर्द्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाज्य।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, पृ ८६९-७०

१८. कालपरमाणू० पुच्छा।

गोयमा ! चउव्विधे पन्नत्ते, तं जहा—अवण्णे अगधे अरसे अफासे।

[१८ प्र] भगवन् ! कालपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१८ उ] गौतम ! कालपरमाणु चार प्रकार का कहा गया है। यथा—अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श।

१९. भावपरमाणू णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! चउव्विधे पन्नत्ते' तं जहा—वण्णमंते गंधमंते रसमंते फासमंते।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति।

॥ वीसइमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ॥ २०-५ ॥

[१९ प्र] भगवन् ! भावपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१९ उ] गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा—वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् और स्पर्शवान्।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन परमाणु : द्रव्यादि की अपेक्षा से क्या है, क्या नहीं ?—प्रस्तुत पांच सूत्रों (१५ से १९ सू. तक) मे परमाणु के स्वरूप का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से विश्लेषण किया गया है।

द्रव्यपरमाणु : स्वरूप—वर्णादिधर्म की विवक्षा किये बिना एक परमाणु को द्रव्यपरमाणु कहते है। क्योंकि यहाँ केवल द्रव्य की ही विवक्षा की गई है। **अच्छेद्य**—द्रव्यपरमाणु का शस्त्रादि द्वारा छेदन नही हो सकता, इसलिये वह अच्छेद्य है। **अभेद्य**—उसका सूई आदि द्वारा भेदन नही हो सकता, इसलिये अभेद्य है। **अदाह्य**—वह अग्नि आदि से जलाया नही जा सकता, इसलिये अदाह्य है। **अग्राह्य**—उसे हाथ आदि से पकडा नही जा सकता, इसलिये अग्राह्य है।

क्षेत्रपरमाणु : स्वरूप—एक आकाशप्रदेश को क्षेत्रपरमाणु कहते है। **अनर्द्ध**—परमाणु के सम-सख्यावाले अवयव नही होते, इसलिये वह अनर्द्ध कहलाता है। **अमध्य**—विषम सख्या वाले अवयव नही हैं, इसलिये अमध्य कहलाता है। **अप्रदेश**—इसके प्रदेश (अवयव) नही है, इसलिए अप्रदेश है। **अविभाज्य**—परमाणु का विभाजन या विभाग नही हो सकता, इसलिए वह अविभाग या अविभाज्य है।

कालपरमाणु : स्वरूप—एक समय को कालपरमाणु कहते है। इसलिये एक समय में उसके लिये वर्णादि की विवक्षा नही होती।

भावपरमाणु : स्वरूप—वर्णादिधर्म की प्रधानता की विवक्षापूर्वक परमाणु को भाव-परमाणु कहते हैं। भावपरमाणु—वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श से युक्त होता है।[1]

॥ बीसवां शतक : पंचम उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७८८
(ख) भगवती विवेचन भा. ६ (प. घेवरचन्दजी), पृ. २८८७

छठो उद्देसओ : 'अन्तर'

छठा उद्देशक : 'अन्तर'

प्रथम से सप्तम नरकपृथ्वी तक की दो-दो पृथ्वियों के बीच में मरणसमुद्घात करके सौधर्मादिकल्प से ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक पृथ्वीकायिकरूप में उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक द्वारा पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद-निरूपण

१. पुढविकाइए ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए, समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से ण भंते ! किं पुव्वि उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा, पुव्वि आहारेत्ता पच्छा उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! पुव्वि वा उववज्जित्ता० एवं जहा सत्तरसमसए छट्ठुद्देसे (स० १७ उ० ६ सु० १) जाव से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ पुव्वि वा जाव उववज्जेज्जा, नवरं तहिं संपाउणणा, इमेहिं आहारो भण्णइ, सेसं तं चेव ।

[१ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभापृथ्वी और शर्कराप्रभापृथ्वी के बीच मे मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प मे पृथ्वीकायिक के रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, वे पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करते है, अथवा पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! वे पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करते है अथवा पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होते है, इत्यादि वर्णन सत्तरहवे शतक के छठे उद्देशक के (सू १ के) अनुसार यावत् हे गौतम ! इसलिए ऐसा कहा जाता है कि यावत् पीछे उत्पन्न होते है, (यहाँ तक कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि वहाँ पृथ्वीकायिक 'सम्प्राप्त करते है,—पुद्गल-ग्रहण करते है'- ऐसा कहा है, और यहाँ 'आहार करते हैं'—ऐसा कहना चाहिए । शेष सब पूर्ववत् ।

२. पुढविकाइए ण भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए० जे भविए ईसाणे कप्पे पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए० ?

एवं चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा पृथ्वी के मध्य मे मरणसमुद्घात करके ईशानकल्प मे पृथ्वीकायिकरूप से उत्पन्न होने योग्य है, वे पहले उत्पन्न हो कर पीछे आहार करते हैं या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होते है ?

[२ उ] गौतम ! (इसका उत्तर भी) पूर्ववत (समझना चाहिए ।)

३. एवं जाव ईसिपब्भाराए उववातेयव्वो।

[३] इसी प्रकार (सनत्कुमार से लेकर) ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक (उपपात आलापक) कहना चाहिए।

४. पुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए, समो० २ जे भविए सोहम्मे कप्पे जाव ईसिपब्भाराए० ?

एवं।

[४ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा के मध्य मे मरण—समुद्घात करके सौधर्मकल्प मे यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी मे उत्पन्न होने योग्य है, वे पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करते हैं, या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होते है ?

[४ उ] ये (सब आलापक) पूर्ववत् कहने चाहिए।

५ एएणं कमेण जाव तमाए अहेसत्तमाए य पुढवीए अंतरा समोहए समाणे जे भविए सोहम्मे जाव ईसिपब्भाराए उववाएयव्वो।

[५] इसी क्रम से यावत् तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी के मध्य में मरणसमुद्घात करके (पृथ्वीकायिक जीवो मे) सौधर्मकल्प (से लेकर) यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी मे (पूर्ववत्) उपपात (आलापक) कहने चाहिए।

विवेचन प्रस्तुत सूत्रों (सू १ से ५ तक) मे पृथ्वीकायिक जीव, जो रत्नप्रभादि दो-दो नरकपृथ्वियो के बीच मे मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी मे, पृथ्वीकायिकरूप मे उत्पन्न होने योग्य है, उनका पहले उत्पाद होकर पीछे आहार होता है, **अथवा** पहले आहार होकर पीछे उत्पाद होता है ? यह चर्चा की गई है।

पहले उत्पाद और पीछे आहार या पहले आहार और पीछे उत्पाद का तात्पर्य - जो जीव गेंद के समान समुद्घातगामी होता है, वह मर कर पहले उत्पत्तिस्थान मे उत्पन्न होता है, अर्थात् उत्पत्तिस्थान मे जाता है। तत्पश्चात् आहार करता है, अर्थात्—आहार-प्रायोग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है। किन्तु जो जीव ईलिका की गति के समान समुद्घातगामी (समुद्घात करके उत्पत्तिक्षेत्र मे उत्पन्न होने हेतु जाने वाला) होता है, वह पहले आहार करता है, अर्थात् उत्पत्तिक्षेत्र मे प्रदेश-प्रक्षेप (पहुँचाए हुए प्रदेशो) के द्वारा आहार ग्रहण करता है और इसके पश्चात् - पूर्व शरीर मे रहे हुए प्रदेशो को उत्पत्तिक्षेत्र मे खीचता है।[1]

सौधर्मादिकल्प से ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक के बीच में मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभा से अधःसप्तम पृथ्वी तक पृथ्वीकायिकरूप मे उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक की पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद-प्ररूपणा

६ पुढविकाइए णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं सणंकुमार-माहिंदाण य कप्पाणं अंतरा समोहए,

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९०

समो० २ जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! किं पुव्वि उववज्जित्ता पच्छा आहारेज्जा ?

सेसं तं चेव जाव से तेणट्ठेणं जाव णिक्खेवओ।

[६ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प के मध्य में मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी में पृथ्वीकायिकरूप में उत्पन्न होने योग्य है, वह पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है अथवा पहले आहार करके फिर उत्पन्न होता है ।

[६ उ] गौतम ! इसका उत्तर पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया है, इत्यादि उपसंहार तक कहना चाहिए ।

७. पुढविकाइए णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं सणंकुमार-माहिंदाण य कप्पाणं अंतरा समोहए, स० २ जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए ?

एवं चेव।

[७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प के मध्य में मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभा पृथ्वी में पृथ्वीकायिकरूप से उत्पन्न होने योग्य है, वह पहले यावत् पीछे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[७ उ] गौतम ! (इसका उत्तर भी) पूर्ववत् (समझना चाहिए ।)

८. एवं जाव अहेसत्तमाए उववातेतव्वो।

[८] इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमपृथ्वी तक उपपात (आलापक) (कहने चाहिए ।)

एवं सणंकुमार-माहिंदाणं बंभलोगस्स य कप्पस्स अंतरा समोहए, समो० २ पुणरवि जाव अहेसत्तमाए उववाएयव्वो।

[९] इसी प्रकार सनत्कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्प के मध्य में मरणसमुद्घात करके पुनः रत्नप्रभा से लेकर यावत् अधःसप्तमपृथ्वी तक उपपात (आलापक) कहने चाहिए ।

१०. एवं बंभलोगस्स लंतगस्स य कप्पस्स अंतरा समोहए० पुणरवि जाव अहेसत्तमाए० ।

[१०] इसी प्रकार ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के मध्य में मरणसमुद्घातपूर्वक पुनः (रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर) अधःसप्तमपृथ्वी तक के सम्बन्ध में कहना चाहिए ।

११. एवं लंतगस्स महासुक्कस्स य कप्पस्स अंतरा समोहए, समोहणित्ता पुणरवि जाव अहेसत्तमाए० ।

[११] इसी प्रकार लान्तक और महाशुक्र कल्प के मध्य में मरणसमुद्घातपूर्वक पुनः अधःसप्तमपृथ्वी तक... ।

१२. एवं महासुक्कस्स सहस्सारस्स य कप्पस्स अंतरा० पुणरवि जाव अहेसत्तमाए० ।

[१२] इसी प्रकार महाशुक्र और सहस्रार कल्प के अन्तराल में मरणसमुद्घात करके पुनः अधःसप्तमपृथ्वी तक... ।

१३. एवं सहस्सारस्स आणय-पाणयाण य कप्पाणं अंतरा० पुणरवि जाव अहेसत्तमाए० ।

[१३] इसी प्रकार सहस्रार और आनत-प्राणत कल्प के बीच मे मरणसमुद्घात करके पुन अध.सप्तमपृथ्वी तक ।

१४. एवं आणय-पाणयाणं आरणऽच्चुयाण य कप्पाणं अंतरा० पुणरवि जाव अहेसत्तमाए० ।

[१४] इसी प्रकार आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्प के बीच मे मरणसमुद्घात करके पुन अध सप्तमपृथ्वी तक ।

१५. एवं आरणऽच्चुयाण गेवेज्जविमाणाण य अंतरा० जाव अहेसत्तमाए० ।

[१५] इसी प्रकार आरण-अच्युत और ग्रैवेयक विमानो के अन्तराल मे, मरणसमुद्घात करके पुन अध सप्तमपृथ्वी तक ।

१६. एव गेवेज्जविमाणाण अनुत्तर विमाणाण य अंतरा० पुणरवि जाव अहेसत्तमाए० ।

[१६] इसी प्रकार ग्रैवेयकविमानो और अनुत्तरविमानो के अन्तराल मे (मरणसमुद्घात-पूर्वक) पुन अध सप्तमपृथ्वी तक ।

१७. एवं अणुत्तरविमाणाण ईसिपब्भाराए य अतरा० पुणरवि जाव अहेसत्तमाए उववाएयव्वो ।

[१७] इसी प्रकार अनुत्तरविमानो और ईषत्प्राग्भारापृथ्वी के अन्तराल मे (मरणसमुद्घात-पूर्वक) पुन अध सप्तमपृथ्वी तक ।

विवेचन—प्रस्तुत १२ सूत्रो (सू ६ से १७ तक) मे पहले से विपरीत निरूपण है। अर्थात् पहले के आलापको मे सात नरकपृथ्वियो मे से दो-दो के मध्य मे मरणसमुद्घात का निरूपण था, इन आलापको मे सौधर्मदेवलोक से ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक मे से चार, तीन या अधिक देवलोको के बीच मे मरणसमुद्घात करने का वर्णन है। वहाँ सौधर्म से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक विशेषण तथा यहाँ उसके स्थान पर रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर अध सप्तमपृथ्वी तक मे उत्पन्न होने योग्य पृथ्वीकायिक का विशेषण है।

पृथ्वीकायिकविषयक सूत्रों के अतिदेशपूर्वक अप्कायिकविषयक पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद-निरूपण

१८. आउकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए, समो० जे भविए सोहम्मे कप्पे आउक्काइयत्ताए उववज्जित्तए० ?

सेसं जहा पुढविकाइयस्स जाव से तेणट्ठेणं० ।

[१८ प्र] भगवन् ! जो अप्कायिक जीव, इस रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा पृथ्वी के बीच मे मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प मे अप्कायिक के रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, वह पहले उत्पन्न होकर पीछे आहार करता है या पहले आहार करके पीछे उत्पन्न होता है ?

[१८ उ] गौतम ! (अप्कायिक नाम के सिवाय) शेष समग्र (समाधान) पृथ्वीकायिक (इसी उद्देशक के सू १) के समान जानना चाहिये, यावत् इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि इत्यादि ।

१९. एवं पढम-दोच्चाणं अंतरा समोहयओ जाव ईसिपब्भाराए य उववातेयव्वो ।

[१९] इसी प्रकार पहली और दूसरी पृथ्वी के बीच मे मरणसमुद्घातपूर्वक अप्कायिक जीवो का यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक उपपात (आलापक) जानना चाहिए ।

२०. एवं एएणं कमेणं जाव तमाए अहेसत्तमाए य पुढवीए अतरा० समोहए, समो० २ जाव इसिपब्भाराए उववातेयव्वो आउक्काइयत्ताए ।

[२०] इसी प्रकार इसी क्रम से यावत् तम प्रभा और अध सप्तमा पृथ्वी के मध्य मे मरण-समुद्घातपूर्वक अप्कायिक जीवो का यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक अप्कायिक रूप से उपपात जानना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत तीन अप्कायिक-विषयक सूत्रो (१८ से २० तक) मे पृथ्वीकायिक जीव विषयक पाच सूत्रो (सू १ से ५ तक) के अतिदेशपूर्वक अप्कायिक जीवो के विषय मे निरूपण किया गया है ।

पृथ्वीकायिक-विषयक सूत्रों के अतिदेशपूर्वक अप्कायिक जीवविषयक (विशिष्ट परिस्थिति में) पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद प्ररूपणा

२१. आउयाए ण भते ! सोहम्मीसाणाण सणंकुमार-माहिंदाण य कप्पाण अंतरा समोहए, समोहणिता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए[1] घणोदधिवलएसु आउकाइयत्ताए उववज्जित्तए० ? सेस त चेव ।

[२१ प्र.] भगवन् ! जो अप्कायिक जीव, सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प के बीच मे मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभा-पृथ्वी मे (घनोदधि और) घनोदधि-वलयो मे अप्कायिक-रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[२१ उ] (गौतम ! 'अप्कायिक' इस शब्दोच्चार के सिवाय) शेष सब (निरूपण) पृथ्वी-कायिक के समान (सू ६ के उल्लेखानुसार) जानना चाहिए ।

२२. एवं एएहिं चेव अतरा समोहयओ जाव अहेसत्तमाए पुढवीए घणोदधिवलएसु आउकाइयत्ताए उववाएयव्वो ।

[२२] इस प्रकार इन (पूर्वोक्त) अन्तरालो मे मरणसमुद्घात को प्राप्त अप्कायिक जीवो का अध सप्तमपृथ्वी तक के (घनोदधि और) घनोदधिवलयो मे अप्कायिकरूप से उपपात कहना चाहिए ।

२३. एवं जाव अणुत्तरविमाणाणं ईसिपब्भाराए य पुढवीए अंतरा समोहए जाव अहेसत्तमाए घणोदधिवलएसु उववातेयव्वो ।

[२३] इसी प्रकार यावत् अनुत्तरविमान और ईषत्प्राग्भारापृथ्वी के बीच मरणसमुद्घात प्राप्त अप्कायिक जीवो का अध.सप्तमपृथ्वी तक के (घनोदधि और) घनोदधिवलयो मे अप्कायिक के रूप मे उपपात जानना चाहिए ।

---

१ **पाठभेद**—यहाँ **'घणोदधि-घणोदधिवलएसु'** इस प्रकार का पाठभेद है ।

विवेचन—प्रस्तुत तीन अप्कायिक-विषयक सूत्रो (२१ से २३ तक) में पृथ्वीकायिक-विषयक १२ सूत्रो (सू. ६ से १७ तक) के अतिदेशपूर्वक निरूपण किया गया है। विशेष यह है कि यहाँ घनोदधिवलयो मे अप्कायिकरूप से उत्पाद का निरूपण है।

सत्तरहवें शतक के दसवें उद्देशक के अनुसार वायुकायिक जीवों के विषय में पूर्व-पश्चात् आहार-उत्पाद-विषयक प्ररूपणा

२४. वाउकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए सक्करप्पभाए य पुढवीए अंतरा समोहए, समोहणित्ता जे भविए सोहम्मे कप्पे वाउकाइयत्ताए उववज्जित्तए० ?

एवं जहा सत्तरसमसए वाउकाइयउद्देसए (स० १७ उ० १० सु० १) तहा इह वि, नवरं अंतरेसु समोहणावेयव्वो, सेसं तं चेव जाव अणुत्तरविमाणाणं ईसिपब्भाराए य पुढवीए अंतरा समोहए, समोह० २ जे भविए अहेसत्तमाए घणवात-तणुवाते घणवातवलएसु तणुवायवलएसु वाउक्काइयत्ताए उववज्जित्तए, सेसं तं चेव, से तेणट्ठेणं जाव उववज्जेज्जा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।[1]

।। बीसइमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ।। २०-६ ।।

[२४ प्र] भगवन् ! जो वायुकायिक जीव, इस रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा पृथ्वी के मध्य में मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्प मे वायुकायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[२४ उ] गौतम ! जिस प्रकार सत्तरहवे शतक के दसवे वायुकायिक उद्देशक (के सूत्र १) मे कहा गया है, उसी प्रकार यहा भी कहना चाहिये। विशेष यह है कि रत्नप्रभा आदि पृथ्वियो के अन्तरालो मे मरणसमुद्घातपूर्वक कहना चाहिये। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिये।

इस प्रकार यावत् अनुत्तरविमानो और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के मध्य मे मरणसमुद्घात करके जो वायुकायिक जीव अध सप्तमपृथ्वी मे घनवात और तनुवात तथा घनवातवलयो और तनुवातवलयो मे वायुकायिकरूप से उत्पन्न होने योग्य है, इत्यादि सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिये, यावत्—'इस कारण उत्पन्न होते है।'

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतम-स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र २४ मे सत्तरहव शतक के दसवे वायुकायिक उद्देशक के अतिदेशपूर्वक वायुकायिक जीव-विषयक निरूपण किया गया है। सभी आलापक पूर्ववत् ही हैं, किन्तु विशेष इतना ही है कि वायुकायिक जीव के विशेषण के रूप मे घनवात-तनुवात तथा घनवात-तनुवात-वलयो मे उत्पन्न होने योग्य—ऐसा निरूपण किया गया है।

।। बीसवां शतक: छठा उद्देशक समाप्त ।।

---

१ **तीन उद्देशक**—दूसरी वाचना के अभिप्रायानुसार यहाँ पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वायुकायिक विषयक पृथक्-पृथक् उद्देशक माने गए हैं।—अ वृ

सत्तमो उद्देसओ : 'बंधे'

सप्तम उद्देशक : बन्ध

बन्ध के तीन भेद और चौवीस दण्डकों में उनकी प्ररूपणा

१. **कतिविधे ण भंते ! बधे पन्नत्ते ?**

गोयमा ! तिविधे बंधे पन्नत्ते, तं जहा—जीवप्पयोगबंधे अणंतरबंधे परंपरबंधे।

[१ प्र] भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१ उ] गौतम ! बन्ध तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—जीवप्रयोगबन्ध, अनन्तरबन्ध और परम्परबन्ध।

२. **नेरतियाणं भंते ! कतिविधे बंधे पन्नत्ते ?**

एवं चेव।

[२ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीवो के बन्ध कितने प्रकार के हैं ?

[२ उ] गौतम ! पूर्ववत् (तीनो प्रकार के) है।

३. **ऐव जाव वेमाणियाणं।**

[३] इसी प्रकार वैमानिको तक (के बन्ध के विषय मे जानना चाहिए।)

विवेचन - बन्ध के प्रकार, एव चौवीस दण्डकों मे बन्ध-निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे बन्ध, उसके प्रकार एव नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के जीवो के बन्ध के विषय मे निरूपण किया गया है।

बन्ध का स्वरूप—आत्मा के साथ कर्म-पुद्गलो के सम्बन्ध को बन्ध कहते है। उसके तीन प्रकार है।

जीवप्रयोगबन्ध—जीव के प्रयोग से अर्थात् मन-वचन काया के व्यापार से आत्मा के साथ कर्म-पुद्गलो का सम्बन्ध होना अर्थात् आत्मप्रदेशो मे सश्लेष होना जीवप्रयोगबन्ध कहलाता है। **अनन्तरबन्ध** जिन पुद्गलो का बन्ध हुए अनन्तर-अव्यवहित समय है—दो-तीन आदि समय नही हुए, उनका बन्ध अनन्तरबन्ध कहलाता है और जिनके बन्ध को दो-तीन आदि समय हो चुके हैं, उनका बन्ध **परस्परबन्ध** कहा जाता है।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९१

(ख) भगवती-उपक्रम, पृ ४५८

अष्टविध कर्मों के त्रिविधबन्ध एवं उनकी चौवीस दण्डकों में प्ररूपणा

४. नाणावरणिज्जस्स ण भंते ! कम्मस्स कतिविधे बंधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविधे बंधे पन्नत्ते, तं जहा—जीवप्पयोगबंधे अणंतरबंधे परंपरबंधे ।

[४ प्र.] भगवन् ! ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! वह बन्ध तीन प्रकार का कहा गया है। यथा जीवप्रयोगबन्ध, अनन्तर-बन्ध और परम्परबन्ध ।

५ नेरइयाणं भंते ! नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स कतिविधे बंधे पन्नत्ते ?

एवं चेव ।

[५ प्र] भगवन् ! नैरयिको के ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! पूर्ववत् (त्रिविध बन्ध होता है ।)

६. एव जाव वेमाणियाणं ।

[६] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त (बन्धनिरूपण समझना चाहिए ।)

७. एवं जाव अंतराइयस्स ।

[७] इसी प्रकार (दर्शनावरणीय से लेकर) यावत् अन्तराय कर्म तक के (बन्ध के विषय मे जानना चाहिए ।

विवेचन—ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध : जीवो से सम्बद्ध या असम्बद्ध ?—प्रस्तुत सूत्र ४ मे ज्ञानावरणीयकर्म का तीन प्रकार का बन्ध कहा है, परन्तु वह जीव से सम्बद्ध हुए बिना हो नही सकता, इसलिए जीव (आत्मा) के साथ ज्ञानावरणीय कर्मपुद्गलो के सम्बन्ध की अपेक्षा से ही जीव-प्रयोगबन्ध आदि बन्धत्रय घटित हो सकते है। यही कारण है कि अगले दो सूत्रो मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के ज्ञानावरणीय कर्मबन्ध के प्रकार की प्ररूपणा की गई है।

आठों कर्मों के उदयकाल में प्राप्त होने वाले बन्धत्रय का २४ दण्डकों में निरूपण

८. णाणावरणिज्जोदयस्स णं भंते ! कम्मस्स कतिविधे बधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे बंधे पन्नत्ते । एवं चेव ।

[८ प्र] भगवन् ! उदयप्राप्त ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८ उ] गौतम ! वह पूर्ववत् तीन प्रकार का कहा गया है।

९. एवं जाव नेरइयाण वि ।

[९] इसी प्रकार नैरयिको के भी (उदयप्राप्त ज्ञानावरणीयकर्म के बन्ध-प्रकार के विषय मे जान लेना चाहिए ।)

१०. एवं वेमाणियाणं ।

[१०] इसी प्रकार वैमानिकों तक (के उदयप्राप्त०… ।)

११. एवं जाव अंतराइओदयस्स।

[११] और इसी प्रकार (उदयप्राप्त दर्शनावरणीय से लेकर) अनन्तराय कर्म तक के (बन्ध-प्रकार के विषय मे कहना चाहिए।)

विवेचन—णाणावरणिज्जोदयस्स : तीन व्याख्याएँ—वृत्तिकार ने प्रस्तुत सू ८ की इस पंक्ति की तीन व्याख्याएँ प्रस्तुत की है – (१) ज्ञानावरणीय के उदयरूप कर्म का, अर्थात् - उदय-प्राप्त ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध, यह बन्ध भूतभाव (पूर्वकाल) की अपेक्षा से समझना चाहिए। (२) अथवा ज्ञानावरणीय रूप मे जिस कर्म का उदय है, ऐसे कर्म का बन्ध समझना चाहिए, क्योकि ज्ञानावरणीयादि कर्म ज्ञानादि का आवारक रूप होने से कुछ विपाक से और कुछ प्रदेश से वेदा जाता है, अत विपाकोदय से वेदे जाने योग्य उदय को ज्ञानावरणीयकर्म का बन्ध समझना चाहिए। (३) अथवा ज्ञानावरणीय के उदय मे जो ज्ञानावरणीयकर्म बधता है अथवा वेदा जाता है, वह भी ज्ञानावरणीय कर्म का उदय ही है, उस कर्म का बन्ध समझना।[1]

वेदत्रय तथा दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय में त्रिविधबन्ध-प्ररूपणा

१२. इत्थिवेदस्स णं भंते! कतिविधे बंधे पन्नत्ते?

गोयमा! तिविधे बंधे पन्नत्ते। एव चेव।

[१२ प्र] भगवन्! स्त्रीवेद का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

[१२ उ] गौतम! उसका पूर्ववत् तीन प्रकार का बन्ध कहा गया है।

१३. असुरकुमाराणं भंते! इत्थिवेदस्स कतिविधे बंधे पन्नत्ते?

एवं चेव।

[१३ प्र] भगवन्! असुरकुमारो के स्त्रीवेद का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

[१३ उ] (गौतम!) पूर्ववत् (तीन प्रकार का है।)

१४. एव जाव वेमाणियाण, नवरं जस्स इत्थिवेदो अत्थि।

[१४] इसी प्रकार वैमानिको तक कहना चाहिए। विशेष यह कि जिसके स्त्रीवे है, (उसके लिए ही यह जानना चाहिए।)

१५. एवं पुरिसवेदस्स वि; एव नपुंसगवेदस्स वि; जाव वेमाणियाणं, नवरं जस्स जो अत्थि वेदो।

[१५] इसी प्रकार पुरुषवेद एव नपुंसकवेद के (बन्ध के) विषय मे भी जानना चाहिए और वैमानिको तक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि जिसके जो वेद हो, वही जानना चाहिए।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति पत्र ७९१

(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा ६, पृ २८९९

१६. दंसणमोहणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स कतिविधे बंधे पन्नत्ते ? एवं चेव।

[१६ प्र] भगवन् ! दर्शनमोहनीय कर्म का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[१६ उ.] गौतम ! (वह भी) पूर्ववत् (तीन प्रकार का है।)

१७. [एवं] निरतरं जाव वेमाणियाणं।

[१७] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त अन्तर-रहित (बन्ध-कथन करना चाहिए।)

१८. एवं चरित्तमोहणिज्जस्स वि जाव वेमाणियाणं।

[१८] इसी प्रकार चारित्रमोहनीय के बन्ध के विषय मे भी वैमानिकों तक (जानना चाहिए।)

विवेचन—स्त्रीवेद आदि के त्रिविध बन्ध का आशय—वेद के त्रिविध बन्ध का यहाँ आशय है—स्त्रीवेद, पुरुषवेद या नपुंसकवेद के उदय होने पर जो बन्ध हो, उदयप्राप्त स्त्रीवेदादि का बन्ध।

दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीय के बन्ध के विषय मे स्पष्टीकरण—केवल दर्शन-चारित्रमोहनीय के जो बन्धत्रय बताए हैं वे जीव की अपेक्षा से बताए है, क्योकि जीव के साथ कर्मपुद्गलो (दर्शन-चारित्रमोहनीय कर्म के पुद्गलो) का सम्बन्ध होने पर ही बन्ध होता है।

शरीर, संज्ञा, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान एवं ज्ञानाज्ञानविषयों में त्रिविधबन्धप्ररूपणा

१९. एवं एएणं कमेणं ओरालियसरीरस्स जाव कम्मगसरीरस्स, आहार-सण्णाए जाव परिग्गहसण्णाए, कण्हलेसाए जाव सुक्कलेसाए, सम्मद्दिट्ठीए मिच्छादिट्ठीए सम्मामिच्छादिट्ठीए, आभिणिबोहियणाणस्स जाव केवलनाणस्स, मतिअन्नाणस्स सुयअन्नाणस्स विभंगनाणस्स।

[१९] इस प्रकार इसी क्रम से औदारिकशरीर, यावत् कार्मणशरीर के, आहारसज्ञा यावत् परिग्रहसज्ञा के, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या के, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एव सम्यग्मिथ्यादृष्टि के, आभिनिबोधिकज्ञान यावत् केवलज्ञान के, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान तथा विभगज्ञान के पूर्ववत् (त्रिविधबन्ध समझना चाहिए।)

२०. एवं आभिनिबोहियनाणविसयस्स णं भंते ! कतिविधे बंधे पन्नत्ते ?

जाव केवलनाणविसयस्स, मतिअन्नाणविसयस्स, सुयअन्नाणविसयस्स, विभंगनाणविसयस्स; एएसि सव्वेसि पयाणं तिविधे बधे पन्नत्ते।

[२० प्र.] भगवन् ! इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञान के विषय का बन्ध कितने प्रकार का है ?

[२० उ] गौतम ! आभिनिबोधिकज्ञान के विषय से लेकर यावत् केवलज्ञान के विषय, मति-अज्ञान के विषय, श्रुत-अज्ञान के विषय और विभगज्ञान के विषय, इन सब पदो के तीन-तीन प्रकार का बन्ध कहा गया है।

२१. सव्वेते चउवीसं दंडगा भाणियव्वा, नवरं जाणियव्वं जस्स जं अत्थि; जाव वेमाणियाणं भंते ! विभंगणाणविसयस्स कतिविधे बंधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! तिविहे बंधे पन्नत्ते, तं जहा—जीवप्पयोगबंधे अणंतरबंधे परंपरबंधे ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति ।

।। वीसइमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।। २०-७ ।।

[२१] इन सब पदो का चौवीस दण्डको के विषय मे (बन्ध-विषयक) कथन करना चाहिए। इतना विशेष है कि जिसके जो हो, वही जानना चाहिए। यावत् - (निम्नोक्त प्रश्नोत्तर तक।)

[प्र] भगवन् ! वैमानिको के विभगज्ञान-विषय का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

[उ] गौतम ! (उनके इसका) बन्ध तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—जीवप्रयोगबन्ध, अनन्तरबन्ध और परम्परबन्ध।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—दृष्टि, ज्ञान आदि के साथ बन्ध कैसे ? यह तो पहले कहा जा चुका है कि आत्मा के साथ कर्मों के सम्बन्ध को बन्ध कहते है, परन्तु यहाँ यदि कर्मपुद्गलो या अन्य पुद्गलो का आत्मा के साथ सम्बन्ध माना जाए तो औदारिकादि शरीर, अष्टविध कर्मपुद्गल, आहारादि सज्ञाजनक कर्म और कृष्णादि लेश्याओ के पुद्गलो का बन्ध तो घटित हो सकता है, परन्तु दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान और तद्विषयक बन्ध कैसे सम्भव हो सकता है, क्योकि ये सब अपौद्गलिक (आत्मिक) है ?

इसका समाधान यह है कि यहाँ बन्ध शब्द से केवल कर्मपुद्गलो का बन्ध ही विवक्षित नही है, अपितु सम्बन्धमात्र को यहाँ बन्ध माना गया है और ऐसा बन्ध दृष्टि आदि धर्मो के साथ जीव का है ही, फिर बन्ध जीव के वीर्य से जनित होने के कारण उनके लिए जीवप्रयोगबन्ध आदि का व्यपदेश किया गया है। ज्ञेय के साथ ज्ञान के सम्बन्ध की विवक्षा के कारण आभिनिबोधिकज्ञान के विषय आदि के भी त्रिविध बन्ध घटित हो जाते है।[1]

पचपन बोलो मे से किसमे कितने ?—८ कर्मप्रकृति, ८ कर्मोदय, ३ वेद, १ दर्शनमोहनीय, १ चारित्रमोहनीय, ५ शरीर, ४ सज्ञा, ६ लेश्या, ३ दृष्टि, ५ ज्ञान, ३ अज्ञान और ८ ज्ञान-अज्ञान के विषय, यो कुल ५५ बोल होते है। नारको मे ४४ बोल पाए जाते है (उपर्युक्त ५५ मे से २ वेद, २ शरीर, ३ लेश्या, २ ज्ञान तथा २ अज्ञान के विषय ये ११ बोल कम हुए)। भवनवासी और वाणव्यन्तर देवों मे ४६ बोल, उपर्युक्त ४४ मे से एक नपुसक वेद कम तथा २ वेद और १ लेश्या अधिक)। ज्योतिष्क देवो मे ४३ बोल (उपर्युक्त ४६ मे से ३ लेश्या कम), वैमानिक देवो मे ४५ बोल (उपर्युक्त ४३ मे दो लेश्याएँ अधिक)। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय मे ३५ बोल (८ कर्म, ८ कर्मोदय, १ वेद, १ दर्शनमोह, १ चारित्रमोह, ३ शरीर, ४ सज्ञा, ४ लेश्या, १ दृष्टि, २ अज्ञान, २ अज्ञान के विषय, यो कुल ३५)। अग्निकाय मे ३४ बोल (उपर्युक्त ३५ मे से १ लेश्या कम)। वायुकाय मे ३५ बोल (उपर्युक्त ३४ मे १ शरीर बढा)। तीन विकलेन्द्रिय मे ३९ बोल, (उपर्युक्त ३४ मे १ दृष्टि, २ ज्ञान और दो ज्ञान के विषय बढे)। तिर्यञ्चपचेन्द्रिय मे ५० बोल, (५५ मे से १ शरीर, २ ज्ञान, २ ज्ञान के विषय

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९१,

(ख) भगवती खण्ड ४ (प भगवानदास दोशी), पृ ११५

कम हुए) तथा मनुष्य मे ५५ बोल पाए जाते हैं। २४ दण्डको मे ५५ मे जितने-जितने बोल पाए जाते हैं, उनमे से प्रत्येक मे त्रिविध बन्ध होते है।[1]

।। बीसवां शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती उपक्रम पृ ४५९

(ख) पगडी ८ उदये ८ वेए ३ दसणमोहे चरित्ते य ।
ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेय-कम्मए चेव ।।१।।
सन्ना ४ लेस्सा ६ दिट्ठी ३ णाणाऽणाणेसु ५+३, तव्विसय ८ ।
जीवप्पओगबधे अणतर-परपरे च बोद्धव्वे । ।।२।। अ वृ

अट्ठमो उद्देसओ : 'भूमी'

आठवाँ उद्देशक : (कर्म-अकर्म) भूमि (आदि-सम्बन्धी)

कर्मभूमियों और अकर्मभूमियों की संख्या का निरूपण

१. कति णं भंते ! कम्मभूमीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! पन्नरस कम्मभूमीओ पन्नत्ताओ, त जहा—पच भरहाइ, पच एरवताइं, पच महाविदेहाइं ।

[१ प्र] भगवन् ! कर्मभूमिया कितनी कही गई है ?

[१ उ] गौतम ! कर्मभूमिया पन्द्रह कही गई है। यथा पाच भरत, पाच ऐरवत और पाच महाविदेह ।

२. कति णं भंते ! अकम्मभूमीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! तीसं अकम्मभूमीओ पन्नत्ताओ, त जहा—पच हेमवयाइ, पच हेरण्णवयाइं, पंच हरिवासाइ, पंच रम्मगवासाइं, पंच देवकुरूओ, पच उत्तरकुरूओ ।

[२ प्र] भगवन् ! अकर्मभूमिया कितनी कही गई है ?

[२ उ] गौतम ! अकर्मभूमिया तीस कही गई है। यथा—पाच हैमवत, पाच हैरण्यवत, पाच हरिवर्ष, पाच रम्यकवर्ष, पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु ।

विवेचन—कर्मभूमि और अकर्मभूमि—जिन क्षेत्रो मे असि (शस्त्रास्त्र और युद्धविद्या,) मसि (लेखन और अध्ययन-अध्यापनादि) तथा कृषि (खेतीबाडी तथा आजीविका के अन्य उपाय) रूप कर्म (व्यवसाय) हो, उन्हे 'कर्मभूमि' कहते है। जहाँ असि, मषि, कृषि आदि न हो, किन्तु कल्पवृक्षो से निर्वाह होता हो, उन्हे 'अकर्मभूमि' कहते हैं।

कर्मभूमियां कहाँ-कहाँ ?—जम्बूद्वीप मे एक भरत, एक ऐरवत और एक महाविदेह है। धातकीखण्डद्वीप मे दो भरत, दो ऐरवत और दो महाविदेह है। अर्धपुष्करद्वीप मे दो भरत, दो ऐरवत और दो महाविदेह है। इस प्रकार कुल १५ कर्मभूमिया है।

तीस अकर्मभूमियां कहाँ-कहाँ ?—तीस अकर्मभूमियो मे से एक हैमवत, एक हैरण्यवत, एक हरिवर्ष, एक रम्यकवर्ष, एक देवकुरु और एक उत्तरकुरु, ये छह क्षेत्र जम्बूद्वीप मे हैं और इनसे दुगुने—बारह क्षेत्र धातकीखण्डद्वीप मे और बारह क्षेत्र अर्धपुष्करद्वीप मे हैं।[1]

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २९०१

अकर्मभूमि और कर्मभूमि के विविध क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सद्भाव-अभाव का निरूपण

३. एयासु णं भंते ! तीसासु अकम्मभूमीसु अत्थि ओसप्पिणी ति वा, उस्सप्पिणी ति वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

[३ प्र] भगवन् ! इन (उपर्युक्त) तीस अकर्मभूमियो मे क्या उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीरूप काल है ?

[३ उ.] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है ।

४. एएसु णं भंते ! पचसु भरहेसु पंचसु एरवएसु अत्थि ओसप्पिणी ति वा, उस्सप्पिणी ति वा ?

हंता, अत्थि ।

[४ प्र] भगवन् ! इन पाच भरत और पाच ऐरवत (क्षेत्रो) मे क्या उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप काल है ?

[४ उ] हाँ, (गौतम !) है ।

५. एएसु णं भंते ! पचसु महाविदेहेसु० ?

णेवत्थि ओसप्पिणी, नेवत्थि उस्सप्पिणी, अवट्ठिए णं तत्थ काले पन्नत्ते समणाउसो !

[५ प्र] भगवन् ! इन (उपर्युक्त) पाच महाविदेह क्षेत्रो मे क्या उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी रूप काल है ?

[५ उ] आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ न तो उत्सर्पिणीकाल है और न अवसर्पिणीकाल है। वहाँ (एकमात्र) अवस्थित काल कहा गया है ।

विवेचन—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का स्वरूप—जिस काल मे जीवो के सहनन और सस्थान उत्तरोत्तर अधिकाधिक शुभ होते चले जाएँ, आयु और अवगाहना उत्तरोत्तर बढती जाए तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम की भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाए, उसे उत्सर्पिणीकाल कहते है। इस काल मे पुद्गलो के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी क्रमशः शुभ, शुभतर होते जाते है। अर्थात्—अशुभतम, अशुभतर और अशुभ भाव क्रमश:-क्रमश शुभ, शुभतर और शुभतम हो जाते हैं। इसमे उत्तरोत्तर वृद्धि होते-होते क्रमश उच्चतम अवस्था आ जाती है। उत्सर्पिणीकाल का कालमान दस कोडाकोडी सागरोपमवर्ष का होता है ।

जिस काल मे सहनन और सस्थान क्रमश अधिकाधिक हीन होते जाएँ, आयु और अवगाहना भी उत्तरोत्तर घटती चली जाए तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम का क्रमश. ह्रास होता जाए, उसे 'अवसर्पिणीकाल' कहते हैं। अवसर्पिणीकाल मे पुद्गलो के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हीन, हीनतर होते जाते है। शुभभाव घटते जाते है, अशुभभाव बढ़ते जाते हैं। अवसर्पिणीकाल का कालमान भी दस कोडाकोडी सागरोपम वर्ष का होता है ।[१]

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६ पृ २९०२

अरहंतों द्वारा महाविदेह और भरत-ऐरवतक्षेत्र में कौन-कौन से धर्म का निरूपण ?

६. एएसु ण भंते ! पचसु महाविदेहेसु अरहंता भगवतो पचमहव्वतिय सपडिक्कमणं धम्मं पण्णवयति ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । एएसु ण पचसु भरहेसु, पचसु एरवएसु पुरिम-पच्छिमगा दुवे अरहंता भगवंतो पचमहव्वतियं (पंचाणुव्वइयं) सपडिक्कमणं धम्म पण्णवयति, अवसेसा णं अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्म पण्णवयति । एएसु ण पचसु महाविदेहेसु अरहता भगवंतो चाउज्जाम धम्मं पण्णवयंति ।

[६ प्र] भगवन् ! इन (उपर्युक्त) पाच महाविदेह क्षेत्रो मे अरहन्त भगवन्त क्या सप्रतिक्रमण पच-महाव्रत वाले धर्म का उपदेश करते है ?

[६ उ] (गौतम !) यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है ।

इन (उपर्युक्त) पाच भरत क्षेत्रो मे तथा पाच ऐरवत क्षेत्रो मे प्रथम और अन्तिम ये दो अरहन्त भगवन्त सप्रतिक्रमण पाच महाव्रतो वाले धर्म का उपदेश करते है । शेष (बाईस) अरहन्त भगवन्त चातुर्याम (चार यामरूप) धर्म का उपदेश करते है और पाच महाविदेह क्षेत्रो मे भी अरिहन्त भगवन्त चातुर्याम-धर्म का उपदेश करते है ।

विवेचन फलितार्थ पाच भरत और ऐरवत क्षेत्रो मे प्रथम और अन्तिम तीर्थकर भगवान् प्रतिक्रमण-सहित पचमहाव्रतरूप धर्म की प्ररूपणा करते है, शेष बाईस तीर्थंकर भगवान् तथा पाच महाविदेह क्षेत्र मे होने वाले तीर्थंकर भगवान् चातुर्याम-धर्म की प्ररूपणा करते है ।

भरतक्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणीकाल मे चौवीस तीर्थंकरो के नाम

७ जबुद्दीवे ण भते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए कति तित्थयरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउवीस तित्थयरा पन्नत्ता, त जहा- उसभ-अजिय-सभव-अभिनदण-सुमति-सुप्पभ-सुपास-ससि-पुप्फदत-सीयल-सेज्जस-वासुपुज्ज-विमल-अणतइ-धम्म- सति-कु थु-अर- मल्लि- मुणिसुव्वय-नमि-नेमि-पास-वद्धमाणा ।

[७ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र (भारतवर्ष) मे इस अवसर्पिणी काल मे कितने तीर्थंकर हुए है ?

[७ उ] गौतम ! चौवीस तीर्थंकर हुए है । यथा---१ ऋषभ, २ अजित, ३ सम्भव, ४ अभिनन्दन, ५ सुमति, ६ सुप्रभ (पद्मप्रभ), ७ सुपार्श्व, ८ शशी (चन्द्रप्रभ), ९ पुष्पदन्त (सुविधि), १० शीतल, ११ श्रेयास, १२ वासुपूज्य, १३ विमल, १४ अनन्त, १५ धर्म, १६ शान्ति, १७ कुन्थु, १८ अर, १९ मल्लि, २० मुनिसुव्रत, २१ नमि, २२ नेमि, २३ पार्श्व और २४ वर्द्धमान (महावीर) ।

विवेचन—कतिपय तीर्थंकरो के नामान्तर प्रस्तुत सूत्र मे कितने ही तीर्थंकरो के दूसरे नाम का उल्लेख किया गया है । यथा पद्मप्रभ का सुप्रभ, चन्द्रप्रभ का शशी, सुविधिनाथ का पुष्पदन्त, अरिष्टनेमि का नेमि और महावीर का वर्द्धमान नाम से उल्लेख किया गया है ।

चौवोस तीर्थंकरों के अन्तर तथा तेईस जिनान्तरों में कालिकश्रुत के व्यवच्छेद-अव्यवच्छेद का निरूपण

८. एएसि णं भंते ! चउवीसाए तित्थयराणं कति जिणंतरा पन्नत्ता ?

गोयमा ! तेवीस जिणंतरा पन्नत्ता ।

[८ प्र] भगवन् ! इन चौवीस तीर्थकरो के कितने जिनान्तर (तीर्थकरो के व्यवधान) कहे गए है ?

[८ उ] गौतम ! इनके तेईस अन्तर कहे गए हैं ।

९. एएसु ण भते ! तेवीसाए जिणतरेसु कस्स कहिं कालियसुयस्स वोच्छेदे पन्नत्ते ?

गोयमा ! एएसु ण तेवीसाए जिणतरेसु पुरिम-पच्छिमएसु अट्ठसु अट्ठसु जिणंतरेसु, एत्थ णं कालियसुयस्स अवोच्छेदे पन्नत्ते, मज्झिमएसु सत्तसु जिणतरेसु एत्थ णं कालियसुयस्स वोच्छेदे पन्नत्ते, सव्वत्थ वि ण वोच्छिन्ने दिट्ठिवाए ।

[९ प्र] भगवन् ! इन तेईस जिनान्तरो मे किस जिन के अन्तर मे कब कालिकश्रुत (सूत्र) का विच्छेद (लोप) कहा गया है ?

[९ उ] गौतम ! इन तेईस जिनान्तरो मे से पहले और पीछे के आठ-आठ जिनान्तरो (के समय) मे कालिकश्रुत (सूत्र) का अव्यवच्छेद (लोप नही) कहा गया है और मध्य के आठ जिनान्तरो मे कालिकश्रुत का व्यवच्छेद कहा गया है, किन्तु दृष्टिवाद का व्यवच्छेद तो सभी जिनान्तरो (के समय) मे हुआ है ।

विवेचन – कालिकश्रुत और अकालिकश्रुत का स्वरूप—जिन सूत्रो (शास्त्रो) का स्वाध्याय दिन और रात्रि के पहले और अन्तिम पहर मे ही किया जाता हो, उन्हे **कालिकश्रुत** कहते है । जैसे—आचाराग आदि २३ सूत्र, (११ अगशास्त्र, निरयावलिका आदि ५ सूत्र, चार छेदसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और उत्तराध्ययनसूत्र) । जिन सूत्रो का स्वाध्याय (अस्वाध्याय के समय या परिस्थिति को छोडकर) सभी समय किया जा सकता हो, उन्हे **उत्कालिकश्रुत** कहते है । जैसे – दशवैकालिक आदि ९ सूत्र (दशवैकालिक, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार, औपपातिकसूत्र, राजप्रश्नीय, सूर्यप्रज्ञप्ति, जीवाभिगम, प्रज्ञापना और आवश्यकसूत्र) । **कालिकश्रुत का विच्छेद कब और कितने काल तक ?** नौवे तीर्थकर श्रीसुविधिनाथ से ले कर सोलहवे तीर्थकर श्रीशान्तिनाथ भगवान् तक सात अन्तरो (मध्यकाल) मे कालिकश्रुत का विच्छेद (लोप) हो गया था और दृष्टिवाद का विच्छेद तो सभी जिनान्तरो मे हुआ और होता है ।

सात जिनान्तरो मे कालिकश्रुत का विच्छेदकाल इस प्रकार है—सुविधिनाथ और शीतलनाथ के बीच मे पल्योपम के चतुर्थ भाग तक, शीतलनाथ और श्रेयासनाथ के बीच मे पल्योपम के चतुर्थभाग तक, श्रेयासनाथ और वासुपूज्यस्वामी के बीच मे पल्योपम के तीन चौथाई भाग (पौन पल्योपम) तक, वासुपूज्य और विमलनाथ के मध्य मे एक पल्योपम तक, विमलनाथ और अनन्तनाथ के मध्य मे

पल्योपम के तीन चौथाई भाग, अनन्तनाथ और धर्मनाथ के मध्य मे पल्योपम के चतुर्थभाग तक तथा धर्मनाथ और शान्तिनाथ के मध्य मे पल्योपम के चतुर्थ भाग तक कालिकश्रुत का विच्छेद हो गया था। इसकी एक सग्रहणीगाथा इस प्रकार है—

"चउभागो १ चउभागो २ तिण्णि य, चउभाग ३ पलियमेग च ४।
तिण्णेव चउब्भागा ५ चउत्थभागो य ६ चउभागो ७॥"[1]

भ. महावीर और शेष तीर्थंकरों के समय में पूर्वश्रुत की अविच्छिन्नता की कालावधि

१० जंबुद्दीवे ण भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुपियाण केवतियं कालं पुव्वगए अणुसज्जिस्सति ?

गोयमा ! जबुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एग वाससहस्स पुव्वगए अणुसज्जिस्सति।

[१० प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष (भरतक्षेत्र) मे इस अवसर्पिणीकाल मे आप देवानुप्रिय का पूर्वगतश्रुत कितने काल तक (स्थायी) रहेगा ?

[१० उ] गौतम ! इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल मे मेरा पूर्वगतश्रुत एक हजार वर्ष तक (अविच्छिन्न) रहेगा।

११. जहा ण भंते ! जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुपियाण एग वाससहस्सं पुव्वगए अणुसज्जिस्सति तहा ण भंते ! जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए अवसेसाण तित्थगराण केवतिय काल पुव्वगए अणुसज्जित्था ?

गोयमा ! अत्थेगइयाण सखेज्ज काल, अत्थेगइयाणं असखेज्ज काल।

[११ प्र] भगवन् ! जिस प्रकार इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे, इस अवसर्पिणीकाल मे, आप देवानुप्रिय का पूर्वगतश्रुत एक हजार वर्ष तक रहेगा, भगवन् ! उसी प्रकार जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे, इस अवसर्पिणीकाल मे अवशिष्ट अन्य तीर्थकरो का पूर्वगतश्रुत कितने काल तक (अविच्छिन्न) रहा था ?

[११ उ] गौतम ! कितने ही तीर्थकरो का पूर्वगतश्रुत सख्यात काल तक रहा और कितने ही तीर्थंकरो का असख्यात काल तक रहा।

भगवान् महावीर और भावी तीर्थंकरों मे अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ की अविच्छिन्नता की कालावधि

१२. जंबुद्दीवे ण भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुपियाण केवतिय कालं तित्थे अणुसज्जिस्सति ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९३
(ख) भगवती विवेचन, भाग ६ (प घेवरचन्दजी), पृ २९०५

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एक्कवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसज्जिस्सति।

[१२ प्र] भगवन् ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल मे आप देवानुप्रिय का तीर्थ कितने काल तक (अविच्छिन्न) रहेगा ?

[१२ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल मे मेरा तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक (अविच्छिन्न) रहेगा।

१३. जहा णं भंते जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुपियाणं एक्कवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसज्जिस्सति तहा णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेस्साणं चरिमतित्थगरस्स केवतियं कालं तित्थे अणुसज्जिस्सति ? गोयमा ! जावतिए णं उसभस्स अरहओ कोसलियस्स जिणपरियाए तावतियाइं संखेज्जाइं आगमेस्साणं चरिमतित्थगरस्स तित्थे अणुसज्जिस्सति।

[१३ प्र] भगवन् ! जिस प्रकार जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे इस अवसर्पिणी काल मे आप देवानुप्रिय का तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक रहेगा, हे भगवन् ! उसी प्रकार जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष मे भावी तीर्थंकरो मे से अन्तिम तीर्थंकर का तीर्थ कितने काल तक अविच्छिन्न रहेगा ?

[१३ उ] गौतम ! कौशलिक (कौशलदेशोत्पन्न) ऋषभदेव, अरहन्त का जितना जिनपर्याय है, उतने (एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व) वर्ष तक भावी तीर्थंकरो मे से अन्तिम तीर्थंकर का तीर्थ रहेगा।

विवेचन—पूर्वश्रुत और तीर्थ : स्वरूप और अविच्छिन्नत्व की कालावधि—पूर्वश्रुत वह है, जो अतिप्राचीन है। इन सभी शास्त्रो से बहुत पहले का है, विशिष्ट श्रुतज्ञानी अथवा अतिशयज्ञानी ही जिसकी वाचना दे सकते हैं। वह पूर्वश्रुत १४ प्रकार का है। यथा—उत्पादपूर्व, अग्रायणीपूर्व आदि। तीर्थ का यहाँ अर्थ है—धर्मतीर्थ—धर्मसघ या धर्ममयशासन। प्रत्येक तीर्थंकर नये तीर्थ (सघ) की स्थापना करता है।

यहाँ बताया गया है कि भगवान् महावीर का पूर्वगतश्रुत एक हजार वर्ष तक अविच्छिन्न रहेगा, जबकि अन्य तीर्थंकरो मे से कई तीर्थंकरो (पार्श्वनाथ आदि) का पूर्वश्रुत सख्यात काल तक रहा था और कई (ऋषभदेव आदि) तीर्थंकरो का पूर्वश्रुत असख्यात काल तक रहा था।

इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर का तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा, जबकि पश्चानुपूर्वी के क्रम से पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरो का तीर्थ सख्यात काल तक रहा था और ऋषभदेव आदि का तीर्थ[१] असख्यात काल तक रहा था।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९३
(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २९०७

तीर्थ और प्रवचन क्या और कौन ?

१४. तित्थं भंते ! तित्थं, तित्थगरे तित्थं ?

गोयमा ! अरहा ताव नियमं तित्थगरे, तित्थं पुण चाउव्वण्णाइण्णो समणसंघो, तंजहा— समणा समणीओ सावगा सावियाओ।

[१४ प्र.] भगवन् ! तीर्थ को तीर्थ कहते है अथवा तीर्थंकर को तीर्थ कहते हैं ?

[१४ उ.] गौतम ! अर्हन् (अरिहन्त) तो अवश्य (नियम से) तीर्थंकर हैं, (तीर्थ नही), किन्तु तीर्थ चार प्रकार के वर्णो (वर्गो) से युक्त श्रमणसंघ है। यथा श्रमण, श्रमणियां, श्रावक और श्राविकाएँ।

१५. पवयणं भंते ! पवयणं, पावयणी पवयणं ?

गोयमा ! अरहा ताव नियमं पावयणी, पवयणं पुण दुवालसंगे गणिपिडगे, तंजहा—आयारो जाव दिट्ठिवाओ।

[१५ प्र.] भगवन् ! प्रवचन को ही प्रवचन कहते है, अथवा प्रवचनी को प्रवचन कहते हैं ?

[१५ उ.] गौतम ! अरिहन्त तो अवश्य (निश्चितरूप से) प्रवचनी है (प्रवचन नही), किन्तु द्वादशांग गणिपिटक प्रवचन है, यथा—आचारांग यावत् दृष्टिवाद।

विवेचन तीर्थ क्या है और क्या नहीं ?—संघ को तीर्थ कहते है। वह ज्ञानादिगुणो से युक्त होता है। तीर्थंकर स्वयं तीर्थ नही होते, वे तीर्थ के प्रवर्तक— संस्थापक होते है।

चाउवण्णाइण्णे : विशेषार्थ—जिसमे श्रमणादि चार वर्ण (वर्ग) हो, वह चतुर्वर्ण, उसके गुणो क्षमादि तथा ज्ञानादि आचरणो से आकीर्ण—व्याप्त श्रमणसंघ है। चतुर्वर्ण से यहा ब्राह्मणादि चार वर्ण नही, किन्तु श्रमण-श्रमणी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्वर्ण समझना चाहिए।

प्रवचन क्या है, क्या नहीं ?—प्रवचन का अर्थ है—जो वचन प्रकर्ष रूप से कहा जाए अर्थात् जो मुक्तिमार्ग का प्रदर्शक हो, आत्महितकारी हो, अबाधित हो उसे प्रवचन कहते हैं। उसका दूसरा नाम 'आगम' है। तीर्थंकर प्रवचनो के प्रणेता— प्रवचनी होते है, प्रवचन नही।[1]

निर्ग्रन्थ-धर्म में प्रविष्ट उग्रादि क्षत्रियों द्वारा रत्नत्रयसाधना से सिद्धगति या देवगति में गमन तथा चतुर्विध देवलोक-निरूपण

१६. जे इमे भंते ! उग्गा भोगा राइण्णा इक्खागा नाया कोरव्वा, एए णं अस्सि धम्मे ओगाहंति, अस्सि अट्ठविहं कम्मरयमलं पवाहेंति, अट्ठ० पवा० २ ततो पच्छा सिज्झंति जाव अंतं करेंति ?

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७९३

(ख) प्रकर्षेणोच्यतेऽभिधेयमनेनेति प्रवचनम् —आगमः।

(ग) भगवती विवेचन भा. ६ (पं. घेवरचन्दजी), पृ. २९०८

हंता, गोयमा ! जे इमे उग्गा भोगा० तं चेव जाव अंतं करेंति । अत्थेगइया अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति ।

[१६ प्र] भगवन् ! जो ये उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल और कौरव्यकुल हैं, वे (इन कुलों मे उत्पन्न क्षत्रिय) क्या इस धर्म मे प्रवेश करते है और प्रवेश करके अष्टविध कर्मरूपी रज—मैल को धोते है और नष्ट करते है ? तत्पश्चात् सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते हैं, यावत् सर्वदु खो का अन्त करते है ?

[१६ उ] हाँ गौतम ! जो ये उग्र आदि कुलो मे उत्पन्न क्षत्रिय है, वे यावत् सर्व दु खो का अन्त करते है, अथवा कितने ही किन्ही देवलोको मे देवरूप से उत्पन्न होते है ।

१७ कतिविधा ण भंते ! देवलोया पन्नत्ता ?

गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पन्नत्ता, तंजहा—भवणवासी वाणमंतरा जोतिसिया वेमाणिया ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। वीसइमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ।। २०-८ ।।

[१७ प्र] भगवन् ! देवलोक कितने प्रकार के कहे है ?

[१७ उ] गौतम ! देवलोक चार प्रकार के कहे है । यथा--भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—किन उग्रादि क्षत्रियो की सिद्धगति या देवगति ?--जो क्षत्रिय निरर्थक या राज्यलिप्सावश भयकर नरसंहार करते है, महारम्भी-महापरिग्रही या निदानकर्ता आदि है उन्हे स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त नही होता, किन्तु जो निर्ग्रन्थधर्म (मुनिधर्म) मे प्रविष्ट होते है, ज्ञानादि की उत्कृष्ट साधना करके अष्टकर्म क्षय करते है, वे ही मुक्त होते है, शेष देवलोक मे जाते है । यही इस सूत्र का आशय है ।

।। बीसवां शतक : अष्टम उद्देशक समाप्त ।।

नवमो उद्देसओ : 'चारण'

नौवां उद्देशक : चारण (-मुनि सम्बन्धी)

चारण मुनि के दो प्रकार : विद्याचारण और जंघाचारण

१. कतिविधा ण भंते ! चारण पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा चारणा पन्नत्ता, तं जहा—विज्जाचारणा य जंघाचारणा य।

[१ प्र] भगवन् ! चारण कितने प्रकार के कहे है ?

[१ उ] गौतम ! चारण दो प्रकार के कहे हैं, यथा—विद्याचारण और जघाचारण।

विवेचन—चारण मुनि : स्वरूप और प्रकार—लब्धि के प्रभाव से आकाश मे अतिशय गमन करने की शक्ति वाले मुनि को 'चारण' कहते हैं। चारण मुनि दो प्रकार के होते हैं—विद्याचारण और जघाचारण। पूर्वगत श्रुत (शास्त्रज्ञान) से तीव्र गमन करने की लब्धि को प्राप्त मुनि 'विद्या-चारण' कहलाते हैं और जघा के व्यापार से गमन करने की लब्धि वाले मुनिराज को जघाचारण कहते हैं।[1]

विद्याचारणलब्धि समुत्पन्न होने से विद्याचारण कहलाता है

२. से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति—विज्जाचारणे विज्जाचारणे ?

गोयमा ! तस्स ण छट्ठ छट्ठेण अनिक्खित्तेण तवोकम्मेण विज्जाए उत्तरगुणलद्धिं खममाणस्स विज्जाचारणलद्धी नाम लद्धी समुप्पज्जति, से तेणट्ठेणं जाव विज्जाचारणे विज्जाचारणे।

[२ प्र] भगवन् ! विद्याचारण मुनि को 'विद्याचारण' क्यो कहते हैं ?

[२ उ] अन्तर-(व्यवधान) रहित छट्ठ-छट्ठ (बेले-बेले) के तपश्चरणपूर्वक पूर्वश्रुतरूप विद्या द्वारा उत्तरगुणलब्धि (तपोलब्धि) को प्राप्त मुनि को विद्याचारणलब्धि नाम की लब्धि उत्पन्न होती है। इस कारण से यावत् वे विद्याचारण कहलाते है।

विवेचन—विद्याचारणलब्धि की प्राप्ति का उपाय—विद्याचारणलब्धि की प्राप्ति उसी मुनि को होती है, जिसने पूर्वों का विधिवत् अध्ययन किया हो तथा जिसने बीच मे व्यवधान किये बिना लगातार वेले-बेले की तपस्या की हो एव जिसे उत्तरगुण अर्थात् पिण्डविशुद्धि आदि उत्तरगुणो मे

१ (क) चरण—गमनमतिशयवदाकाशे एषामस्तीति चारणा। विद्या—श्रुत तच्च पूर्वगत, तत्कृतोपकाराश्चारणा विद्याचारणा। जघाव्यापारकृतोपकाराश्चारणा जघाचारणा।

—भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९४

(ख) 'अइसय-चरण-समत्था, जघा-विज्जाहिं चारणा मुणओ।
जघाहिं जाइ पढमो, निस्स काउ रविकरे वि ॥ १ ॥' —अ वृत्ति, पत्र ७९४

पराक्रम करने से उत्तरगुणलब्धि, अर्थात्—तपोलब्धि प्राप्त हो गई हो। यही विद्याचारणलब्धि है, जिसके प्रभाव से वह मुनि आकाश मे शीघ्रगति से गमन कर सकता है।[1]

खममाणस्स—सहने वाले—तपश्चर्या करने वाले को।

विद्याचारण की शीघ्र, तिर्यक् एवं ऊर्ध्वगति-सामर्थ्य तथा विषय

३. विज्जाचारणस्स णं भंते ! कहं सीहा गती ? कहं सीहे गतिविसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! अयं ण जबुद्दीवे दीवे सव्वदीव० जाव किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, देवे णं महिड्ढीए जाव महेसक्खे जाव 'इणामेव इणामेव' त्ति कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छरा-निपाएहिं तिक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ताण हव्वमागच्छेज्जा, विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! तहा सीहा गती, तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते।

[३ प्र] भगवन् ! विद्याचारण की शीघ्र गति कैसी होती है ? और उसका गति-विषय कितना शीघ्र होता है ?

[३ उ] गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप, जो सर्वद्वीपो मे (आभ्यन्तर है,) यावत् जिसकी परिधि (तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन से) कुछ विशेषाधिक है, उस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के चारो ओर कोई महर्द्धिक यावत् महासौख्य-सम्पन्न देव यावत्—'यह चक्कर लगा कर आता हूँ' यो कहकर तीन चुटकी बजाए उतने समय मे, तीन वार चक्कर लगा कर आ जाए, ऐसी शीघ्र गति विद्याचारण की है। उसका इस प्रकार का शीघ्रगति का विषय कहा है।

४. विज्जाचारणस्स णं भंते ! तिरियं केवतिए गतिविसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! से णं इओ एगेण उप्पाएण माणुसुत्तरे पव्वए समोसरणं करेति, माणु० क० २ तहिं चेतियाइ वंदति, तहि० व० २ बितिएणं उप्पाएण नंदिस्सरवरे दीवे समोसरणं करेति, नंदि० क० २ तहिं चेतियाइ वंदति, तहि० व० २ तओ पडिनियत्तति, त० प० इहमागच्छति, इहमा० २ इहं चेतियाइं वंदइ। विज्जाचारणस्स ण गोयमा ! तिरिय एवतिए गतिविसए पन्नत्ते।

[४ प्र] भगवन् ! विद्याचारण की तिरछी (तिर्यग्) गति का विषय कितना कहा है ?

[४ उ] गौतम ! वह (विद्याचारण मुनि) यहाँ से एक उत्पात (उडान) से मानुषोत्तर-पर्वत पर समवसरण करता है (अर्थात् वहाँ जा कर ठहरता है)। फिर वहाँ चैत्यो (ज्ञानियो) की स्तुति करता है। तत्पश्चात् वहाँ से दूसरे उत्पात में नन्दीश्वरद्वीप मे समवसरण (स्थिति) करता है, फिर वहाँ चैत्यो की वन्दना (स्तुति) करता है, तत्पश्चात् वहाँ से (एक ही उत्पात मे) वापस लौटता है और यहाँ आ जाता है। यहाँ आकर चैत्यवन्दन करता है। गौतम विद्याचरण ! मुनि की तिरछी गति का विषय ऐसा कहा गया है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९५

(ख) भगवती उपक्रम पृ ४६३

५. विज्जाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गतिविसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेति, नं० क० २ तहिं चेतियाइं वंदइ, तहिं० वं० २ बितिएणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेइ, पं० क० २ तहिं चेतियाइं वंदति, तहिं० वं० २ तओ पडिनियत्तति, तओ० प० २ इहमागच्छति, इहमा० २ इहं चेतियाइं वंदइ। विज्जाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गतिविसए पन्नत्ते। से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेति, नत्थि तस्स आराहणा, से णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेति, अत्थि तस्स आराहणा।

[५ प्र.] भगवन् ! विद्याचारण की ऊर्ध्वगति का विषय कितना कहा गया है ?

[५ उ.] गौतम ! वह (विद्याचारण) यहाँ से एक उत्पात से नन्दनवन में समवसरण (स्थिति) करता है। वहाँ ठहर कर वह चैत्यों की वन्दना करता है। फिर वहाँ से दूसरे उत्पात से पण्डकवन में समवसरण करता है, वहाँ भी वह चैत्यों की वन्दना करता है। फिर वहाँ से वह लौटता है और वापस यहाँ आ जाता है। यहाँ आकर वह चैत्यों की वन्दना करता है। हे गौतम ! विद्याचारण मुनि की ऊर्ध्वगति का विषय ऐसा कहा गया है।

यदि वह विद्याचारण मुनि (लब्धि का प्रयोग करने सम्बन्धी) उस (प्रमाद) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर (मृत्यु को प्राप्त हो) जाए तो उसकी (चारित्र-) आराधना नहीं होती और यदि वह विद्याचारण मुनि उस (प्रमाद) स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है तो उसकी (चारित्र-) आराधना होती है।

विवेचन—विद्याचारण की शीघ्रगति का परिमाण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (३-४-५) में से प्रथम सूत्र में विद्याचरण मुनि का सार्वत्रिक (सर्व दिशागत) गमनक्रिया की तीव्रता का परिमाण तीन चुटकी बजाने जितने समय में एक महर्द्धिक देव द्वारा तीन बार सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का चक्कर लगाकर आने जितना बताया गया है। द्वितीय और तृतीय सूत्र में क्रमशः उसकी तिर्यग्गति और ऊर्ध्वगति के विषय (क्षेत्र) का प्रतिपादन है।

कठिन शब्दार्थ—**सीहा**—शीघ्र। **उप्पाएण**—उत्पात—उडान से।

विद्याचारण की तिर्यक् और ऊर्ध्व गति का विषय—प्रस्तुत सूत्रद्वय में कहा गया है कि विद्याचारण का गमन दो उत्पात से और आगमन एक उत्पात से होता है। इसका कारण उक्त लब्धि का स्वभाव समझना चाहिए। किन्हीं आचार्यों का मत है कि विद्याचारण की विद्या आते समय विशेष अभ्यास वाली हो जाती है, किन्तु गमन के समय में वैसी अभ्यास वाली नहीं होती। इस कारण आते समय वह एक ही उत्पात में यहाँ आ जाता है, किन्तु जाते समय दो उत्पात से वहाँ पहुँचता है।[1]

मानुषोत्तरपर्वत, नन्दीश्वरद्वीप, नन्दनवन एवं पण्डकवन में समवसरण एवं चैत्यवन्दन : विशेष संगत अर्थ और भ्रान्तिनिवारण—प्रस्तुत में समवसरण का अर्थ—धर्मसभा नहीं, किन्तु सम्यक् रूप से अवसरण—अवस्थान यानी ठहरना या स्थित होना है। यहाँ समवसरण का धर्मसभा अर्थ

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७९५

सगत नही हो सकता, क्योकि एक तो समवसरण तीर्थकरो के लिए देवो द्वारा रचित धर्मसभा-स्थल होता है, वह विद्याचारण या जघाचारण जैसे मुनियो के लिए नही होता । दूसरे समवसरण अर्थात् धर्मसभा की रचना करने का वहाँ कोई औचित्य नही, क्योकि वहाँ कोई श्रोता उनका धर्मोपदेश सुनने नही आता । इसलिए '**समवसरणं करेति**' यह वाक्यप्रयोग स्पष्ट करता है कि वहाँ चारण-मुनि उतरता है—ठहरता है ।

'**चेतिआइं वंदति**'—मे चैत्य का अर्थ 'मन्दिर' किया जाए तो यह अर्थ यहाँ सगत नही होता, क्योकि न तो मानुषोत्तरपर्वत पर मन्दिर का वर्णन है और न ही स्वस्थान अर्थात्—जहाँ से उन्होने उत्पात (उडान) किया है, वहाँ भी मन्दिर है। अत चैत्य का अर्थ मन्दिर या मूर्ति करना सगत नही है, अपितु '**चिति संज्ञाने**' धातु से निष्पन्न 'चैत्य' शब्द का अर्थ- विशिष्ट सम्यक्ज्ञानी है तथा '**वंदइ**' का अर्थ स्तुति करना है अभिवादन करना है, क्योकि '**वदि अभिवादन स्तुत्योः**' के अनुसार यहाँ प्रसगसगत अर्थ 'स्तुति करना' है । क्योकि मानुषोत्तर पर्वत आदि पर अभिवादन करने योग्य कोई पुरुष नही रहता है, अत वे उन-उन पर्वत, द्वीप एव वनो मे शीघ्रगति से पहुँचते है, वहाँ चैत्यवन्दन करते है, अर्थात् —विशिष्ट सम्यग्ज्ञानियो की स्तुति करते है । इसका तात्पर्य यह है कि मानुषोत्तर पर्वत, नन्दीश्वर द्वीप आदि की रचना का वर्णन जैसा उन विशिष्ट ज्ञानियो या आगमो से जाना था,[1] वैसा ही रचना को साक्षात् देखते है तब वे (चारणलब्धिधारक) उन विशिष्ट ज्ञानियो की स्तुति करते है ।

गतिविषय का तात्पर्य—गतिविषय का अर्थ गतिगोचर होता है, किन्तु उसका तात्पर्य वृत्तिकार ने बताया है कि वे भले ही उन क्षेत्रो मे गमन न कर, फिर भी उनका शीघ्रगति का विषयभूत क्षेत्र अमुक-अमुक है ।[2]

विद्याचारण : कब विराधक, कब आराधक ?—लब्धि का प्रयोग करना प्रमाद है । लब्धि का प्रयोग करने के बाद अन्तिम समय मे आलोचना न की जाने पर चारित्र की आराधना नही होती, किन्तु विराधना होती है । अर्थात् यदि लब्धि का प्रयोग करने के बाद चारणलब्धिसम्पन्न साधक मरणकाल मे उक्त प्रमादस्थान की आलोचना एव प्रतिक्रमण नही करता, तो वह चारित्र का विराधक होने से चारित्र की आराधना का फल नही पाता । इसके विपरीत यदि लब्धिप्रयोग करने के बाद चारणलब्धिसम्पन्न मुनि उस प्रमादस्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर लेता है तो वह चारित्राराधक होता है और आराधनाफल भी पाता है ।[3]

जंघाचारण का स्वरूप

६. से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—जंघाचारणे जंघाचारणे ?

गोयमा ! तस्स णं अट्ठमं अट्ठमेण अनिक्खित्तेण तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स जंघाचारण-लद्धी नामं लद्धी समुप्पज्जइ । से तेणट्ठेणं जाव जंघाचारणे जंघाचारणे ।

---

१ (क) भगवती विवेचन, भाग ६ (प घेवरचन्दजी), पृ २९१७
(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ८८०

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९५

३ (क) वही, पत्र ७९५ (ख) भगवती विवेचन भा ६, (प. घे), पृ २९१६

[६ प्र] भगवन्! जंघाचारण को जंघाचारण क्यों कहते हैं?

[६ उ] गौतम! अन्तररहित (लगातार) अट्ठम-अट्ठम (तेले-तेले) के तपश्चरण-पूर्वक आत्मा को भावित करते हुए मुनि को 'जंघाचारण' नामक लब्धि उत्पन्न होती है, इस कारण उसे 'जंघाचारण' कहते हैं।

विवेचन जंघाचारण का स्वरूप—पूर्वोक्त विधिपूर्वक तेले-तेले की तपश्चर्या करने वाले मुनि को जंघाचारण-लब्धि प्राप्त होती है। विद्याचारण की अपेक्षा जंघाचारण की गति सात गुणी अधिक शीघ्र होती है।[1]

जंघाचारण की शीघ्र, तिर्यक् और ऊर्ध्वगति का सामर्थ्य और विषय

७. जंघाचारणस्स णं भंते! कहं सीहा गती? कहं सीहे गतिविसए पन्नत्ते? गोयमा? अयं णं जंबुद्दीवे दीवे एवं जहेव विज्जाचारणस्स, नवरं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छेज्जा। जंघाचारणस्स णं गोयमा! तहा सीहा गती, तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते। सेसं तं चेव।

[७ प्र] भगवन्! जंघाचारण की शीघ्र गति कैसी होती है और उसकी शीघ्रगति का विषय कितना होता है?

[७ उ] गौतम! यह जम्बूद्वीप, यावत् (जिसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन से कुछ) विशेषाधिक है, इत्यादि समग्र वर्णन विद्याचारणवत् (जानना चाहिए)। विशेष यह है कि (कोई महर्द्धिक यावत् तीन चुटकी बजाए, उतने समय में इस समग्र जम्बूद्वीप की) इक्कीस बार परिक्रमा करके शीघ्र वापस लौटकर आ जाता है। हे गौतम! जंघाचारण की इतनी शीघ्रगति और इतना शीघ्रगति-विषय कहा है। शेष कथन सब पूर्ववत् है।

८. जंघाचारणस्स णं भंते! तिरियं केवतिए गतिविसए पन्नत्ते? गोयमा! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं रुयगवरे दीवे समोसरणं करेति, रुय० क० २ तहिं चेतियाइं वंदति, तहिं० वं० २ ततो पडिनियत्तमाणे बितिएणं उप्पाएणं नंदीसरवरदीवे समोसरणं करेति, नं० क० २ तहिं चेतियाइं वंदति, तहिं० वं० २ इहमागच्छति, इहमा० २ इहं चेतियाइं वंदति। जंघाचारणस्स णं गोयमा! तिरियं एवतिए गतिविसए पन्नत्ते।

[८ प्र] भगवन्! जंघाचारण की तिरछी गति का विषय कितना कहा है?

[८ उ] गौतम! वह (जंघाचारण मुनि) यहाँ से एक उत्पात से रुचकवरद्वीप में समवसरण करता है, फिर वहाँ ठहर कर वह चैत्य-वन्दना करता है। चैत्यों की स्तुति करके लौटते समय दूसरे उत्पात से नन्दीश्वरद्वीप में समवसरण करता है तथा वहाँ स्थित होकर चैत्यस्तुति करता है। तत्पश्चात् वहाँ से लौटकर यहाँ आता है। यहाँ आकर वह चैत्य-स्तुति करता है। हे गौतम! जंघाचारण की तिरछी गति का ऐसा (शीघ्र) गतिविषय कहा गया है।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७९५

(ख) भगवती विवेचन भा. ६ (पं. घेवरचंदजी), पृ. २९१६

९. जंघाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गतिविसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरण करेति, स० क० २ तहिं चेतियाइं वंदति, तहिं वं० २ ततो पडिनियत्तमाणे बितिएणं उप्पाएणं नंदणवणे समोसरणं करेति, न० क० २ तहिं चेतियाइं वंदति, तहिं० वं २ इहमागच्छति, इहमा० २ इहं चेतियाइं वंदइ। जंघाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गतिविसए पन्नत्ते। से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेति, नत्थि तस्स आराहणा; से णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कते कालं करेति, अत्थि तस्स आराहणा।

सेवं भंते ! जाव विहरति।

॥ वीसइमे सए : नवमो उद्देसओ समत्तो ॥२०-९ ॥

[९ प्र.] भगवन् ! जघाचारण की ऊर्ध्व-गति का विषय कितना कहा गया है ?

[९ उ] गौतम ! वह (जघाचारण मुनि) यहाँ से एक उत्पात मे पण्डकवन मे समवसरण करता है। फिर वहाँ ठहर कर चैत्यस्तुति करता है। फिर वहाँ से लौटते हुए दूसरे उत्पात से नन्दनवन मे समवसरण करता है। फिर वहाँ चैत्यस्तुति करता है। तत्पश्चात् वहाँ से वापस यहाँ आ जाता है। यहाँ आकर चैत्यस्तुति करता है। इसीलिए हे गौतम ! जघाचारण का ऐसा ऊर्ध्वगति का विषय कहा गया है। यह जघाचारण उस (लब्धिप्रयोग-सम्बन्धी प्रमाद-) स्थान की आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये बिना यदि काल कर जावे तो उसकी (चारित्र-) आराधना नही होती। (इसके विपरीत) यदि वह जघाचारण उस प्रमादस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है तो उसकी आराधना होती है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—जघाचारण का शीघ्रतर गति-सामर्थ्य—तीन चुटकी बजाने जितने समय मे जघाचारण २१ बार समग्र जम्बूद्वीप के चक्कर लगाकर लौट आता है। यह गति विद्याचारण से सात गुणी अधिक शीघ्र है। जघाचारण की लब्धि का ज्यो-ज्यो प्रयोग होता है, त्यो-त्यो वह अल्प सामर्थ्य वाली हो जाती है, इसलिए वह जाते समय तो एक ही उत्पात मे वहाँ पहुँच जाता है, किन्तु लौटते समय दो उत्पात से पहुचता है।[1]

॥ बीसवां शतक : नौवां उद्देशक समाप्त ॥

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९५-७९६

दसमो उद्देसओ : 'सोवक्कमा जीवा'

दसवाँ उद्देशक : 'सोपक्रम जीव'

चौवीस दण्डकों में सोपक्रम एव निरुपक्रम आयुष्य की प्ररूपणा

१. जीवा णं भते ! कि सोवक्कमाउया, निरुवक्कमाउया ?

गोयमा ! जीवा सोवक्कमाउया वि निरुवक्कमाउया वि ।

[१ प्र] भगवन् ! जीव सोपक्रम-आयुष्य वाले होते हैं या निरुपक्रम-आयुष्य वाले होते है ?

[१ उ] गौतम ! जीव सोपक्रम-आयुष्य वाले भी होते है और निरुपक्रम-आयु वाले भी ।

२. नेरतिया णं० पुच्छा ।

गोयमा ! नेरतिया नो सोवक्कमाउया, निरुवक्कमाउया ।

[२ प्र] भगवन् ! नैरयिक सोपक्रम-आयुष्य वाले होते है, अथवा निरुपक्रम-आयुष्य वाले ?

[२ उ] गौतम ! नैरयिक जीव सोपक्रम-आयुष्य वाले नही होते, वे निरुपक्रम-आयुष्य वाले होते है ।

३. एव जाव थणियकुमारा ।

[३] इसी प्रकार (नैरयिको के समान) स्तनितकुमारो-पर्यन्त (जानना चाहिए) ।

४. पुढविकाइया जहा जीवा ।

[४] पृथ्वीकायिको का आयुष्य औधिक जीवो के (सू १ के अनुसार) जानना चाहिए ।

५. एव जाव मणुस्सा ।

[५] इसी प्रकार मनुष्यो-पर्यन्त कहना चाहिए ।

६. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरतिया ।

[६] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको का (आयुष्यसम्बन्धी कथन) नैरयिको के समान है ।

विवेचन—सोपक्रम और निरुपक्रम आयुष्य वालों का लक्षण—सोपक्रम और निरुपक्रम, ये दोनो जैनपारिभाषिक शब्द है । उपक्रम कहते है—(व्यवहार से) अप्राप्तकाल (असमय) मे ही आयुष्य के समाप्त हो जाने को । जिन जीवो का आयुष्य उपक्रम सहित है, वे सोपक्रमायुष्क कहलाते हैं, इसके विपरीत जिन जीवो का आयुष्य बीच मे टूटता नही है, असमय मे समाप्त नही होता, वे निरुपक्रमायुष्क कहलाते हैं ।[1]

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९५

(ख) भगवती विवेचन, भा ६ (प घेवरचन्दजी), पृ २९२१

फलितार्थ—चारो जाति के देव और नारक निरुपक्रमायुष्क होते हैं। शेष ससारी जीवो मे दोनो ही प्रकार की आयु वाले जीव होते है। मनुष्यो और तिर्यञ्चो मे असख्यात वर्ष की आयु वाले तथा चरमशरीरी मनुष्य और उत्तमपुरुष निरुपक्रमायुष्क होते है। शेष मनुष्य, तिर्यञ्च पचेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवो का दोनो ही प्रकार का आयुष्य होता है—सोपक्रम भी, निरुपक्रम भी।[1]

चौवीस दण्डकों में उत्पत्ति और उद्वर्त्तना की आत्मोपक्रम-परोपक्रम आदि विभिन्न पहलुओं से प्ररूपणा

७ नेरतिया णं भंते ! किं आओवक्कमेणं उववज्जंति, परोवक्कमेणं उववज्जंति, निरुवक्कमेण उववज्जंति ?

गोयमा ! आओवक्कमेण वि उववज्जति, परोवक्कमेण वि उववज्जति, निरुवक्कमेण वि उववज्जति।

[७ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव, आत्मोपक्रम से, परोक्रम से या निरुपक्रम से उत्पन्न होते है ?

[७ उ] गौतम ! आत्मोपक्रम से भी उत्पन्न होते है, परोपक्रम से भी और निरुपक्रम से भी उत्पन्न होते है।

८. एव जाव वेमाणिया।

[८] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

९ नेरतिया ण भंते ! किं आओवक्कमेण उव्वट्टंति, परोवक्कमेणं उव्वट्टति, निरुवक्कमेणं उव्वट्टंति ?

गोयमा ! नो आओवक्कमेणं उव्वट्टति, नो परोवक्कमेणं उव्वट्टति, निरुवक्कमेण उव्वट्टति।

[९ प्र] भगवन् ! नैरयिक आत्मोपक्रम से उद्वर्त्तते (मरते) है अथवा परोपक्रम से या निरुपक्रम से उद्वर्त्तते हे ?

[९ उ] गौतम ! वे न तो आत्मोपक्रम से उद्वर्त्तते है और न परोपक्रम से, किन्तु निरुपक्रम से उद्वर्तित होते हैं।

१०. एवं जाव थणियकुमारा।

[१०] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो पर्यन्त कहना चाहिए।

---

१. **देवा नेरइया वि य, असखवासाउया य तिरि-मणुआ।
उत्तमपुरिसा य तहा चरिमसरीरा निरुवक्कमा ॥१॥
सेसा संसारत्था हवेज्ज, सोवक्कमा उ इयरे य।
सोवक्कम-निरुवक्कम-भेओ, भणिओ समासेणं ॥२॥**

—भगवती अ वृ पत्र ७९५

११. पुढविकाइया जाव मणुस्सा तिसु उव्वट्टंति ।

[११] पृथ्वीकायिको से लेकर मनुष्यो तक का उद्वर्त्तन (उपर्युक्त) तीनों ही उपक्रमों से होता है।

१२. सेसा जहा नेरइया, नवरं जोतिसिय-वेमाणिया चयंति ।

[१२] शेष सब जीवो का उद्वर्त्तन नैरयिको के समान कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्क एव वैमानिक के लिए ('उद्वर्त्तन करते है' के बदले) च्यवन करते है, (कहना चाहिए।)

१३. नेरतिया ण भंते ! किं आतिड्ढीए उववज्जति, परिड्ढीए उववज्जति ?

गोयमा ! आतिड्ढीए उववज्जति, नो परिड्ढीए उववज्जति ।

[१३ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव आत्मऋद्धि से उत्पन्न होते हैं या परऋद्धि से उत्पन्न होते है ?

[१३ उ] गौतम ! वे आत्मऋद्धि से उत्पन्न होते है, परऋद्धि से उत्पन्न नही होते।

१४. एव जाव वेमाणिया ।

[१४] इसी प्रकार वैमानिको तक कहना चाहिए।

१५. नेरतिया ण भते ! कि आतिड्ढीए उव्वट्टति, परिड्ढीए उव्वट्टति ?

गोयमा ! आतिड्ढीए उव्वट्टति, नो परिड्ढीए उव्वट्टति ।

[१५ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव आत्मऋद्धि से उद्वर्तित होते है या परऋद्धि से उद्वर्तित होते (मरते) है ?

[१५ उ] गौतम ! वे (नैरयिक) आत्मऋद्धि स उद्वर्तित होते है, किन्तु परऋद्धि से उद्-वर्तित नही होते।

१६. एव जाव वेमाणिया, नवर जोतिसिय-वेमाणिया चयतीति अभिलावो ।

[१६] इसी प्रकार वैमानिको तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक के लिए ('उद्वर्त्तन' के बदले) 'च्यवन' (कहना चाहिए।)

१७ नेरइया ण भते ! किं आयकम्मुणा उववज्जंति, परकम्मुणा उववज्जति ?

गोयमा ! आयकम्मुणा उववज्जति, नो परकम्मुणा उववज्जति ।

[१७ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव अपने कर्म से उत्पन्न होते है या परकर्म से उत्पन्न होते है ?

[१७ उ] गौतम ! वे आत्मकर्म से उत्पन्न होते है, परकर्म से नही।

१८. एव जाव वेमाणिया ।

[१८] इसी प्रकार वैमानिको (तक कहना चाहिए)।

१९. एव उव्वट्टणादंडओ वि ।

[१९] इसी प्रकार उद्वर्त्तना-दण्डक भी कहना चाहिए।

२०. नेरइया णं भंते ! किं आयप्पयोगेणं उववज्जंति, परप्पयोगेणं उववज्जंति ?

गोयमा ! आयप्पयोगेणं उववज्जंति, नो परप्पयोगेणं उववज्जंति ।

[२० प्र.] भगवन् ! नैरयिक जीव आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते है, अथवा परप्रयोग से उत्पन्न होते हैं ?

[२० उ.] गौतम ! वे आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते है, परप्रयोग से उत्पन्न नही होते हैं ।

२१. एवं जाव वेमाणिया ।

[२१] इसी प्रकार वैमानिको पर्यन्त (कहना चाहिए) ।

२२ एवं उव्वट्टणादंडओ वि ।

[२२] इसी प्रकार उद्वर्त्तना-दण्डक भी (कहना चाहिए) ।

विवेचन—प्रस्तुत १६ सूत्रो (७ से २२ तक) मे नैरयिको से वैमानिको पर्यन्त चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के उत्पत्ति और उद्वर्त्तना (मृत्यु) के विषय मे आत्मोपक्रम-परोपक्रम-निरुपक्रम, आत्म-ऋद्धि-परऋद्धि, आत्मकर्म-परकर्म, आत्मप्रयोग-परप्रयोग आदि विभिन्न पहलुओ से चर्चा की गई है ।[1]

आत्मोपक्रम-परोपक्रम-निरुपक्रम का स्वरूप—**आत्मोपक्रम**—व्यवहारदृष्टि से आयुष्य को स्वयमेव घटा देना । यथा—श्रेणिक नरेश । **परोपक्रम**—अन्य के द्वारा आयुष्य का घटाया जाना अर्थात् अन्य के द्वारा आयुष्य घटाने से मरना, यथा—कोणिक सम्राट् । **निरुपक्रम**—उपक्रम के अभाव मे मरना । यथा—कालसौकरिक ।[2]

आतिड्ढिए—आत्मऋद्धि अर्थात् अपने सामर्थ्य से, दूसरे (ईश्वरादि) के सामर्थ्य से नही ।

आयकम्मुणा—आत्मकर्म से अर्थात् स्वकृत आयुष्य आदि कर्मों से ।

आयप्पओगेण—अपने ही व्यापार से ।[3]

चौवीस दण्डकों और सिद्धों में कति-अकति-अवक्तव्य-संचित पदों का यथायोग्य निरूपण

२३. [१] नेरइया णं भंते ! किं कतिसंचिता, अकतिसंचिता, अव्वत्तव्वगसंचिता ?

गोयमा ! नेरइया कतिसंचिया वि, अकतिसंचिता वि, अवत्तव्वगसंचिता वि ।

[२३-१ प्र.] भगवन् ! नैरयिक कतिसंचित है, अकतिसंचित हैं अथवा अवक्तव्यसंचित है ?

[२३-१ उ.] गौतम ! नैरयिक कतिसंचित भी हैं, अकतिसंचित भी हैं और अवक्तव्यसंचित भी है ।

[२] से केणट्ठेणं जाव अवत्तव्वगसंचित्ता वि ?

गोयमा ! जे णं नेरइया संखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया कतिसंचिता, जे णं

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ८८२-८८३

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ७९६

३ वही, पत्र ७९६

नेरइया असंखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया अकतिसंचिया, जे णं नेरइया एक्कएणं पवेसणएणं पविसति ते ण नेरइया अवत्तव्वगसचिता; से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव अवत्तव्वग-संचिता वि ।

[२३-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया कि (नैरयिक कतिसचित भी है) यावत् अवक्तव्यसचित भी है ?

[२३-२ उ] गौतम ! जो नैरयिक (नरकगति मे एक साथ) सख्यात प्रवेश करते (उत्पन्न होते) है, वे कतिसचित है, जो नैरयिक (एक साथ) असख्यात प्रवेश करते हैं, वे अकतिसचित हैं और जो नैरयिक एक-एक (करके) प्रवेश करते हैं, वे अवक्तव्यसचित है। हे गौतम ! इसी कारण कहा गया है कि (नैरयिक कतिसचित भी हैं,) यावत् अवक्तव्यसचित भी है ।

२४. एव जाव थणियकुमारा ।

[२४] इसी प्रकार (असुरकुमारो से लेकर) स्तनितकुमारो तक (के विषय मे कहना चाहिए ।)

२५. [१] पुढविकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! पुढविकाइया नो कतिसंचिता, अकतिसचिता, नो अवत्तव्वगसचिता ।

[२५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक कतिसंचित है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[२५-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव कतिसचित भी नही और अवक्तव्यसचित भी नही किन्तु अकतिसचित है ।

[२] से केणट्ठेण जाव नो अवत्तव्वगसंचिता ?

गोयमा ! पुढविकाइया असखेज्जएण पवेसणएण पविसति; से तेणट्ठेण जाव नो अवत्तव्वग-सचिता ।

[२५-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि (पृथ्वीकायिक जीव) यावत् अवक्तव्य-सचित नही है ?

[२५-२ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव एक साथ असख्य प्रवेशनक से प्रवेश करते (उत्पन्न होते) है, इसलिए कहा जाता है कि वे अकतिमचित हैं, किन्तु कतिसचित नही है और अवक्तव्यसचित भी नही है ।

२६ एव जाव वणस्सतिकाइय ।

[२६] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक तक (जानना चाहिए) ।

२७. बेंदिया जाव वेमाणिया जहा नेरइया ।

[२७] द्वीन्द्रियो से लेकर वैमानिको पर्यन्त नैरयिको के समान (कहना चाहिए) ।

२८ [१] सिद्धाण पुच्छा ।

गोयमा ! सिद्धा कतिसचिता, नो अकतिसंचिता, अवत्तव्वगसंचिता वि ।

[२८-१ प्र.] भगवन् ! सिद्ध कतिसचित है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२८-१ उ.] गौतम ! सिद्ध कतिसचित और अवक्तव्यसचित है, किन्तु अकतिसचित नही है ।

[२] से केणट्ठेणं जाव अवत्तव्वगसंचिता वि ?

गोयमा ! जे णं सिद्धा संखेज्जएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा कतिसंचिता, जे णं सिद्धा एक्कएण पवेसणएण पविसति ते ण सिद्धा अवत्तव्वगसचिता; से तेणट्ठेणं जाव अवत्तव्वगसंचिता वि ।

[२८-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि सिद्ध कतिसचित और अवक्तव्यसचित भी हैं, किन्तु अकतिसचित नही है ?

[२८-२ उ] गौतम ! जो सिद्ध सख्यातप्रवेशनक से प्रवेश करते है, वे कतिसचित है और जो सिद्ध एक-एक करके प्रवेश करते हैं, वे अवक्तव्यसचित हैं। इसलिए कहा गया है कि सिद्ध यावत् अवक्तव्यसचित भी हैं ।

विवेचन—कतिसंचित आदि की परिभाषा—जो जीव दूसरी जाति मे से आकर एक समय मे एक साथ संख्यात उत्पन्न होते है, वे **कतिसचित** कहलाते हैं । अर्थात् दो से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक की सख्या वालो को यहाँ कतिसचित (सख्यात) कहा गया है। जो एक समय में एक साथ असख्यात उत्पन्न होते हैं, (जिनकी सख्या न की जा सके) उन्हे **अकतिसंचित** (असख्यात) कहते हैं और जिसे न सख्यात कहा जा सकता हो, न असख्यात, किन्तु एक समय मे सिर्फ एक जीव उत्पन्न हो, उसे **अवक्तव्यसंचित** कहते है ।[1]

फलितार्थ—पृथ्वीकायादि पाच स्थावरो और सिद्धो का छोडकर शेष समस्त जीव तीनो ही प्रकार के है । जैसे—नैरयिक जीव एक-एक करके भी उत्पन्न होते है, दो से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक सख्यात भी उत्पन्न होते है और असख्यात भी उत्पन्न होते हैं ।

पृथ्वीकायादि पाच स्थावर अकतिसचित है, क्योकि वे एक समय मे एक साथ एक, दो से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक नही, किन्तु असख्यात उत्पन्न होते है । यद्यपि वनस्पतिकायिक जीव एक साथ एक समय मे अनन्त उत्पन्न होते हैं, किन्तु वे अनन्त तो स्वजातीय-वनस्पतिजीव ही वनस्पति (स्व) जाति मे उत्पन्न होते है, विजातीय जीवो मे से आकर वनस्पतिकायिक के रूप मे उत्पन्न होने वाले जीव तो असख्यात ही होते हैं । इसी की यहाँ विवक्षा है ।

सिद्ध भगवान् अकतिसचित नही है, क्योकि मोक्ष जाने वाले जीव एक समय मे एक से लेकर सख्यात (१०८ तक) ही होते है । असख्यात जीव एक साथ सिद्ध नही होते। जब एक जीव सिद्ध होता है, तब वह अवक्तव्यसचित कहलाता है किन्तु जब दो से लेकर १०८ जीव तक सिद्ध होते है, तब वे 'कतिसचित' कहलाते है ।[2]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९९
(ख) भगवती. विवेचन (प घेवरचदजी) भा ६, पृ. २९२५

२. (क) वही, पृ २९२५
(ख) भगवती, अ वृत्ति, पत्र ७९९

कति-अकति-अवक्तव्य-संचित यथायोग्य चौवीस दण्डकों और सिद्धों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

२९. एएसि णं भंते ! नेरइयाण कतिसंचिताणं अकतिसंचियाणं अवत्तव्वगसचिताण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

सव्वत्थोवा नेरइया अवत्तव्वगसंचिता, कतिसंचिया संखेज्जगुणा, अकतिसंचिता असंखेज्जगुणा।

[२९ प्र] भगवन् ! इन कतिसचित, अकतिसचित और अवक्तव्यसचित नैरयिको मे से कौन किससे (अल्प, अधिक, तुल्य अथवा) यावत् विशेषाधिक हैं ?

[२९ उ] गौतम ! सबसे थोडे अवक्तव्यसचित नैरयिक है, उनसे कतिसचित नैरयिक सख्यातगुणे है और अकतिसचित उनसे असख्यातगुणे है।

३०. एव एगिदियवज्जाण जाव वेमाणियाण अप्पाबहुगं, एगिदियाण नत्थि अप्पाबहुग।

[३०] एकेन्द्रिय जीवो के सिवाय वैमानिको तक का इसी प्रकार (नैरयिकवत्) अल्पबहुत्व कहना चाहिए। एकेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व नही है।

३१. एएसि ण भंते ! सिद्धाण कतिसचियाण, अवत्तव्वगसचिताण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सिद्धा कतिसचिता, अवत्तव्वगसचिता संखेज्जगुणा।

[३१ प्र] भगवन् ! कतिसचित और अवक्तव्यसचित सिद्धो मे कौन किससे यावत् विशेषाधिक है ?

[३१ उ] गौतम ! सबसे थोडे कतिसचित सिद्ध होते है, उनसे अवक्तव्यसचित सिद्ध सख्यातगुणे है।

विवेचन— कतिसचितादि का अल्पबहुत्व—एकेन्द्रिय को छोडकर शेष समस्त ससारी जीवो मे सबसे थोडे जो अवक्तव्यसचित बतलाए है, वे इसलिए कि अवक्तव्यस्थान एक ही है। उनसे कतिसचित सख्यातगुणे है, क्योकि उनके सख्यात स्थान हैं और उनसे अकतिसचित असख्यातगुणे है, क्योकि उनके असख्यात स्थान है। प्रश्न होता है, फिर सिद्धो मे कतिसचित सिद्ध सबसे थोडे क्यो बतलाए है ? कुछ आचार्य इसका समाधान यो देते हैं कि इस (अल्पबहुत्व) मे स्थान की अल्पता कारण नही है, वस्तुस्वभाव ही ऐसा है। कतिसचित स्थान अवक्तव्यसचित स्थान से बहुत होने पर भी सिद्धो मे कतिसचित सिद्ध सबसे थोडे बताए हैं और अवक्तव्यसचित स्थान एक होने पर भी अवक्तव्यसचित सिद्ध उनसे सख्यातगुणे अधिक है, क्योंकि दो आदि रूप से केवली अल्पसख्या में सिद्ध होते हैं। अत. वस्तुस्वभाव और लोकस्वभाव ऐसा ही है, यह मानना चाहिए।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९९

(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २९२५

चौवीस दण्डकों और सिद्धों में षट्कसमर्जित आदि पांच विकल्पों का यथायोग्य निरूपण

३२. [१] नेरइया णं भंते ! किं छक्कसमज्जिया, नोछक्कसमज्जिया, छक्केण य नोछक्केण य समज्जिया, छक्केहिं समज्जिया, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया ?

गोयमा ! नेरइया छक्कसमज्जिया वि, नोछक्कसमज्जिया वि, छक्केण य नोछक्केण य समज्जिया वि, छक्केहिं समज्जिया वि, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया वि ।

[३२-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक षट्कसमर्जित हैं, नो-षट्कसमर्जित हैं, (एक) षट्क और नोषट्क-समर्जित है, अथवा अनेक षट्कसमर्जित हैं या अनेक षट्कसमर्जित—एक नो-षट्क-समर्जित हैं ?

[३२-१ उ.] गौतम ! नैरयिक षट्कसमर्जित भी हैं, नो-षट्कसमर्जित भी हैं, और एक षट्क तथा एक नोषट्कसमर्जित भी है, अनेक षट्कसमर्जित और एक नोषट्कसमर्जित भी है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ—नेरइया छक्कसमज्जिया वि जाव छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया वि ?

गोयमा ! जे णं नेरइया छक्कएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया छक्कसमज्जिता । जे णं नेरइया जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया नोछक्कसमज्जिया । जे णं नेरइया एगेणं छक्कएणं; अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया छक्केण य नोछक्केण य समज्जिया जे णं नेरइया णेगेहिं छक्कएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं नेरइया छक्केहिं समज्जिया । जे णं नेरइया णेगेहिं छक्कएहिं; अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया । से तेणट्ठेणं तं चेव जाव समज्जिया वि ।

[३२-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि नैरयिक षट्कसमर्जित भी हैं, यावत् अनेक षट्कसमर्जित तथा एक नो-षट्कसमर्जित भी हैं ?

[३२-२ उ] गौतम ! जो नैरयिक (एक समय मे एक साथ) छह की सख्या मे प्रवेश करते है, वे नैरयिक 'षट्कसमर्जित' (कहलाते) हैं । जो नैरयिक (एक साथ) जघन्य एक, दो अथवा तीन और उत्कृष्ट पाच सख्या में प्रवेश करते हैं, वे नो-षट्कसमर्जित (कहलाते) हैं । जो नैरयिक एक षट्क सख्या से और अन्य जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट पाच की सख्या मे प्रवेश करते हैं, वे 'षट्क और नो-षट्कसमर्जित' (कहलाते) हैं । जो नैरयिक अनेक षट्क सख्या मे प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक अनेक षट्कसमर्जित (कहलाते) है । जो नैरयिक अनेक षट्क तथा जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट पाच सख्या मे प्रवेश करते हैं, वे नैरयिक 'अनेक षट्क और एक नो-षट्कसमर्जित' (कहलाते) है । इसलिए हे गौतम ! इस प्रकार कहा गया है कि यावत् अनेक षट्क और एक नो-षट्कसमर्जित भी होते हैं ।

३३. एवं जाव थणियकुमारा ।

[३३] इसी प्रकार स्तनितकुमारो पर्यन्त कहना चाहिए ।

३४. [१] पुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! पुढविकाइया नो छक्कसमज्जिया, नो नोछक्कसमज्जिया, नो छक्केण य नोछक्केण य समज्जिया, छक्केहि समज्जिया वि, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया वि ।

[३४-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव षट्कसमर्जित है ? इत्यादि प्रश्न पूर्ववत् ।

[३४-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव न तो षट्कसमर्जित है, न नो-षट्कसमर्जित हैं और न एक षट्क और एक नो-षट्क से समर्जित है, किन्तु अनेक षट्कसमर्जित है तथा अनेक षट्क और एक नो-षट्क से समर्जित भी हैं ।

[२] से केणट्ठेणं जाव समज्जिता वि ?

गोयमा ! जे णं पुढविकाइया णेगेहि छक्कएहि पवेसणगं पविसंति ते णं पुढविकाइया छक्केहि समज्जिया । जे णं पुढविकाइया णेगेहि छक्कएहि; अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा दोहि वा तिहि वा, उक्कोसेणं पंचएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं पुढविकाइया छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया । से तेणट्ठेणं जाव समज्जिया वि ।

[३४-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि (पृथ्वीकायिक जीव यावत् अनेक षट्कसमर्जित है तथा अनेक षट्क और एक नो-षट्क-) समर्जित भी है ?

[३४-२ उ] गौतम ! जो पृथ्वीकायिक जीव अनेक षट्क से प्रवेश करते हैं, वे अनेक षट्क-समर्जित है तथा जो पृथ्वीकायिक अनेक षट्क से तथा जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट पांच सख्या मे प्रवेश करते है, वे अनेक षट्क और एक नो-षट्कसमर्जित कहलाते है । हे गौतम ! इसीलिए कहा गया है कि पृथ्वीकायिक जीव यावत् एक नो-षट्कसमर्जित हैं ।

३५. एव जाव वणस्सइकाइया, बेइंदिया जाव वेमाणिया ।

[३५] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक तक समझना चाहिए और द्वीन्द्रिय से ले कर वैमानिको तक पूर्ववत् जानना चाहिये ।

३६. सिद्धा जहा नेरइया ।

[३६] सिद्धो का कथन नैरयिको के समान है ।

विवेचन षट्कसमर्जित आदि की परिभाषा—जिसका छह का परिमाण हो, उसे षट्क कहते हैं । षट्क से यानी छह के समूह से जो समर्जित हो—अर्थात्—पिण्डित—एकत्रित हो, वह षट्कसमर्जित हैं । भाव यह है कि एक समय मे एक साथ जो उत्पन्न होते है, यदि उनकी राशि छह हो तो वे **षट्कसमर्जित** कहलाते हे । जो एक साथ एक समय मे एक, दो, तीन, चार या पाच उत्पन्न हुए हो, वे **नो-षट्कसमर्जित** कहलाते हे । जो एक समय मे एक साथ एक षट्क के रूप मे (छह) उत्पन्न हुए हो, साथ ही एक साथ एक समय मे एक से लेकर पाँच तक यानी सात, आठ, नौ, दस और ग्यारह तक उत्पन्न हुए हो, वे **एक षट्क, एक नो-षट्कसमर्जित** कहलाते है । जो एक समय मे, एक साथ छह-छह के अनेक समूहो के रूप मे उत्पन्न हुए हो, वे **अनेकषट्कसमर्जित** कहलाते हे । जो

एक समय मे अनेक षट्क-समुदायरूप से और एकादि (एक से लेकर पाच तक) अधिक रूप से उत्पन्न हुए हो, वे **अनेकषट्क और एक नो-षट्कसमर्जित** कहलाते है।[1]

किन मे कितने भंगो की प्राप्ति ? नैरयिको मे ये पाचो भग पाए जाते हैं, क्योकि नैरयिको मे एक समय मे एक से लेकर असख्यात तक उत्पन्न होते है। असख्यातो मे भी ज्ञानीजनो के ज्ञान से षट्क आदि की व्यवस्था बन जाती है।

एकेन्द्रिय जीवो मे एक समय मे एक साथ असख्यात उत्पन्न होते है, इसलिए उनमे अनेक षट्कसमर्जित तथा अनेकषट्क एक नो-षट्कसमर्जित, ये दो भग ही पाए जाते हैं।

शेष सब ससारी जीवो मे पूर्वोक्त पाचो ही भग पाए जाते हैं।[2]

षट्कसमर्जित आदि से विशिष्ट चौवीस दण्डकों और सिद्धों के अल्पबहुत्व का यथायोग्य निरूपण

३७. एएसि ण भते ! नेरतियाण छक्कसमज्जियाणं, नोछक्कसमज्जिताणं छक्केण, य नोछक्केण य समज्जियाण, छक्केहि समज्जियाण, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जियाणं कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा नेरइया छक्कसमज्जिया, नोछक्कसमज्जिया सखेज्जगुणा, छक्केण य नो छक्केण य समज्जिया सखेज्जगुणा, छक्केहि समज्जिया असखेज्जगुणा, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया सखेज्जगुणा।

[३७ प्र] भगवन् ! १ षट्कसमर्जित, २ नो-षट्कसमर्जित ३ एक षट्क एक नो-षट्कसमर्जित ४ अनेक षट्कसमर्जित तथा ५ अनेक षट्क एक नो-षट्कसमर्जित नैरयिको मे कौन किन से (अल्प, बहुत, तुल्य) यावत् विशेषाधिक है ?

[३७ उ] गौतम ! १ सबसे कम एक षट्कसमर्जित नैरयिक है, २ नो-षट्कसमर्जित नैरयिक उनसे सख्यातगुणे है, ३ एक षट्क और नो-षट्कसमर्जित नैरयिक उनसे सख्यातगुणे हैं, ४ अनेक षट्कसमर्जित नैरयिक उनसे असख्यातगुणे है, और ५ अनेक षट्क और एक नो-षट्कसमर्जित नैरयिक उनसे सख्यातगुणे है।

३८. एवं जाव थणियकुमारा।

[३८] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक (का अल्पबहुत्व समझना चाहिए।)

३९ एएसि ण भते ! पुढविकाइयाण छक्केहि समज्जिताण, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जियाण कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविकाइया छक्केहि समज्जिया, छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया सखेज्जगुणा।

---

१ (क) भगवती विवेचन भा ६ (घेवरचन्दजी), पृ २९३१
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ७९९-८०

२. वही, पत्र ८००

[३९ प्र] भगवन् ! अनेक षट्कसमर्जित और अनेक षट्क तथा नो-षट्कसमर्जित पृथ्वीकायिको मे कौन किससे (अल्प, बहुत, तुल्य) यावत् विशेषाधिक है ?

[३९ उ] गौतम ! सबसे अल्प अनेक षट्कसमर्जित पृथ्वीकायिक हैं। अनेक षट्क और नो-षट्क-समर्जित पृथ्वीकायिक उनसे सख्यातगुणे है।

४०. एव जाव वणस्सइकाइयाणं।

[४०] इस प्रकार वनस्पतिकायिको तक (जानना चाहिए)।

४१. बेइंदियाण जाव वेमाणियाण जेहा नेरइयाण।

[४१] द्वीन्द्रियो से लेकर वैमानिको तक (का अल्पबहुत्व) नैरयिको के समान (जानना चाहिए)।

४२. एएसि ण भते ! सिद्धाण छक्कसमज्जियाण, नोछक्कसमज्जियाण जाव छक्केहि य नोछक्केण य समज्जियाण य कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सिद्धा छक्केहि य नोछक्केण य समज्जिया, छक्केहिं समज्जिया सखेज्जगुणा, छक्केण य नोछक्केण य समज्जिया सखेज्जगुणा, छक्कसमज्जिया सखेज्जगुणा, नोछक्कसमज्जिया संखेज्जगुणा।

[४२ प्र] भगवन् ! इन षट्कसमर्जित, नो-षट्कसमर्जित, यावत अनेक षट्क और एक नो-षट्कसमर्जित सिद्धो मे कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[४२ उ] गौतम ! अनेक षट्क और नोषट्क से समर्जित सिद्ध सबसे थोडे है। उनसे अनेक षट्कसमर्जित सिद्ध सख्यातगुणे हैं। उनसे एक षट्क और नो-षट्कसमर्जित सिद्ध सख्यातगुणे है। उनसे षट्कसमर्जित सिद्ध सख्यातगुणे है और उनसे भी नो-षट्कसमर्जित सिद्ध सख्यातगुणे है।

विवेचन—षट्कसमर्जित आदि से विशिष्ट चौवीस दण्डको और सिद्धो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत छह सूत्रो (३७ से ४२ तक) मे जो षट्कसमर्जित आदि से विशिष्ट जीवो का अल्पबहुत्व बताया गया है, वह स्थान के अल्पत्व एव बाहुल्य की अपेक्षा से समझना चाहिए। अन्य आचार्यों का कहना है कि वस्तु-स्वभाव ही ऐसा है।[१]

चौवीस दण्डकों और सिद्धों में द्वादश, नोद्वादश आदि पदो का यथायोग्य निरूपण

४३. [१] नेरइया णं भते ! किं बारससमज्जिया, नोबारससमज्जिया, बारसएण य नोबारसएण य समज्जिया, बारसएहिं समज्जिया, बारसएहि य नोबारसएण य समज्जिया ?

गोयमा ! नेरइया बारससमज्जिया वि जाव बारसएहि य नोबारसएण य समज्जिया वि।

[४३ १ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव क्या द्वादशसमर्जित है, या नो-द्वादशसमर्जित हैं, अथवा द्वादश-नो-द्वादशसमर्जित है, या अनेक द्वादश और नो-द्वादशसमर्जित है ?

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८००

[४३-१ उ.] गौतम ! नैरयिक द्वादश-समर्जित भी हैं और यावत् अनेक द्वादश और नो-द्वादश-समर्जित भी हैं ।

[२] से केणट्ठेण जाव समज्जिया वि ?

गोयमा ! जे णं नेरइया बारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया बारससमज्जिया। जे णं नेरइया जहन्नेण एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएण पविसंति ते णं नेरइया नोबारससमज्जिया। जे णं नेरइया बारसएण, अन्नेण य जहन्नेण एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेण एक्कारसएण पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया बारसएण य नोबारसएण य समज्जिया। जे णं नेरइया णेगेहि बारसएहि पवेसणग पविसंति ते ण नेरतिया बारसएहि समज्जिया। जे ण नेरइया णेगेहि बारसएहिं; अन्नेण य जहन्नेण एक्केण वा दोहि वा तीहि वा, उक्कोसेणं एक्कारसएण पवेसणएण पविसति ते णं नेरइया बारसएहि य नोबारसएण य समज्जिया। से तेणट्ठेण जाव समज्जिया वि।

[४३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक द्वादशसमर्जित भी है, यावत् अनेकद्वादश और नो-द्वादशसमर्जित भी है ?

[४३-२ उ] गौतम ! जो नैरयिक (एक समय मे एक साथ) बारह की सख्या मे (नरक मे जाकर) प्रवेश करते हे, वे द्वादशसमर्जित है । जो नैरयिक जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते है, वे नो-द्वादशसमर्जित हैं । जो नैरयिक एक समय मे बारह तथा जघन्य एक, दो, तीन तथा उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते है, वे द्वादश-नोद्वादशसमर्जित हैं । जो नैरयिक एक समय मे अनेक बारह-बारह की सख्या मे प्रवेश करते है, वे अनेक-द्वादशसमर्जित हैं । जो नैरयिक एक समय मे अनेक-बारह-बारह की सख्या मे तथा जघन्य एक-दो-तीन और उत्कृष्ट ग्यारह तक प्रवेश करते हे, वे अनेक द्वादश-नो-द्वादशसमर्जित है ।

हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक द्वादशसमर्जित यावत् अनेक-द्वादश तथा नोद्वादश-समर्जित कहलाते हैं ।

४४. एव जाव थणियकुमारा ।

[४४] इसी प्रकार (पाचो विकल्प) स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए ।

४५. [१] पुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! पुढविकाइया नो बारसयसमज्जिया, नो नोबारसयसमज्जिया, नो बारसएण य नोबारसएण य समज्जिया, बारसएहि समज्जिया वि, बारसएहि य नोबारसएण य समज्जिया वि ।

[४५-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक क्या द्वादश-समर्जित है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[४५-१ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक न तो द्वादशसमर्जित है, न नो-द्वादशसमर्जित है और न ही वे द्वादशसमर्जित-नो-द्वादशसमर्जित है, किन्तु वे अनेक-द्वादशसमर्जित भी है और अनेक द्वादश-नो-द्वादशसमर्जित भी है ।

[२] से केणट्ठेण जाव समज्जिया वि ? गोयमा ! जे णं पुढविकाइया णेगेहिं बारसएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं पुढविकाइया बारसएहिं समज्जिया। जे णं पुढविकाइया णेगेहिं बारसएहिं; अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं एक्कारसएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं पुढविकाइया बारसएहि य नोबारसएण य समज्जिया। से तेणट्ठेण जाव समज्जिया वि।

[४५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि (पृथ्वीकायिक यावत् अनेक-द्वादशसमर्जित भी है और अनेक द्वादश-नोद्वादश) समर्जित भी है ?

[४५-२ उ] गौतम ! जो पृथ्वीकायिक जीव (एक समय मे एक साथ) अनेक द्वादश-द्वादश की सख्या मे प्रवेश करते है, वे अनेक द्वादशसमर्जित है और जो पृथ्वीकायिक जीव अनेक द्वादश तथा जघन्य एक, दो, तीन एव उत्कृष्ट ग्यारह प्रवेशनक से प्रवेश करते है, वे अनेक द्वादश और एक नो-द्वादश-समर्जित है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक यावत् अनेक द्वादश-नो-द्वादशसमर्जित भी है।

[४६] एवं जाव वणस्सइकाइया।

[४६] इसी प्रकार (के अभिलाप) वनस्पतिकायिक तक (कहने चाहिए)।

४७. बेइंदिया जाव सिद्धा जहा नेरइया।

[४७] द्वीन्द्रिय जीवो से लेकर सिद्धो तक नैरयिको के समान समझना चाहिए।

विवेचन—द्वादशसमर्जित आदि का स्वरूप—जो जीव एक समय मे एक साथ बारह की सख्या मे सामूहिक रूप से उत्पन्न हो उन्हे **द्वादशसमर्जित** कहते है तथा जो जीव एक से लेकर ग्यारह तक एक साथ उत्पन्न हो, उन्हे नो-द्वादशसमर्जित कहते है। शेष कथन षट्कसमर्जित के समान समझना चाहिए।[1]

द्वादश, नोद्वादश आदि से समर्जित चौवीस दण्डकों तथा सिद्धों का अल्पबहुत्व

४८. एएसि ण भते ! नेरइयाण बारससमज्जियाणं०।

सव्वेसि अप्पाबहुग जहा छक्कसमज्जियाण, नवर बारसाभिलावो, सेस त चेव।

[४८ प्र] भगवन् ! इन द्वादशसमर्जित यावत् अनेक द्वादश-नो-द्वादशसमर्जित नैरयिको मे कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

[४८ उ] गौतम ! जिस प्रकार षट्कसमर्जित आदि जीवो का अल्पबहुत्व कहा, उसी प्रकार द्वादशसमर्जित आदि सभी जीवो का अल्पबहुत्व कहना चाहिए। विशेष इतना है कि 'षट्क' के स्थान मे 'द्वादश', ऐसा अभिलाप करना (कहना) चाहिए। शेष सब पूर्ववत् है।

विवेचन—द्वादशसमर्जित आदि का अल्पबहुत्व षट्कसमर्जित आदि के समान ही है। केवल षट्क के बदले द्वादश शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

१. भगवती विवेचन भा ६, (प घेवरचदजी), पृ २९३४

चौवीस दण्डकों और सिद्धों में चतुरशीतिसमर्जित आदि पदों का यथायोग्य निरूपण

४९. [१] नेरतिया णं भंते ! किं चुलसीतिसमज्जिया, नोचुलसीतिसमज्जिया, चुलसीतीए य नोचुलसीतीते य समज्जिया, चुलसीतीहिं समज्जिया, चुलसीतीहि य नोचुलसीतीए य समज्जिया ?

गोयमा ! नेरतिया चुलसीतिसमज्जिया वि जाव चुलसीतीहि य नोचुलसीतीए य समज्जिया वि।

[४९-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव चतुरशीति (चौरासी)-समर्जित हैं या नो-चतुरशीति-समर्जित है, अथवा चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित है, या वे अनेक चतुरशीतिसमर्जित हैं, अथवा अनेक-चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित है ?

[४९-१ उ] गौतम ! नैरयिक चतुरशीतिसमर्जित भी है, यावत् अनेक-चतुरशीति-नो-चतुरशीति-समर्जित भी है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव समज्जिया वि ?

गोयमा ! जे णं नेरइया चुलसीतीएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया चुलसीति-समज्जिया। जे णं नेरइया जहन्नेणं एक्केण वा दोहि वा तीहि वा, उक्कोसेणं तेसीतिपवेसणएणं पविसंति ते णं नेरइया नोचुलसीतिसमज्जिया। जे णं नेरइया चुलसीतीएणं; अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा दोहि वा तीहि वा, उक्कोसेणं तेसीतीएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरतिया चुलसीतीए य नोचुलसीतीए समज्जिया। जे णं नेरइया णेगेहिं चुलसीतीएहिं पवेसणगं पविसंति ते णं नेरतिया चुलसीतीहिं समज्जिया। जे णं नेरइया णेगेहिं चुलसीतीएहिं, अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा जाव उक्कोसेणं तेसीतीएणं जाव पवेसणएणं पविसंति ते णं नेरतिया चुलसीतीहि य नोचुलसीतीए य समज्जिया, से तेणट्ठेणं जाव समज्जिया वि।

[४९-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि (नैरयिक) यावत् (अनेक-चतुरशीति-नो-चतुरशीति-) समर्जित भी है ?

[४९-२ उ] गौतम ! जो नैरयिक (एक समय में एक साथ) चौरासी प्रवेशनक से (८४ संख्या में) प्रवेश करते है, वे चतुरशीतिसमर्जित हैं। जो नैरयिक जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट तेयासी (८३) (एक साथ) प्रवेश करते है, वे नो-चतुरशीतिसमर्जित है। जो नैरयिक एक साथ, एक समय में चौरासी तथा जघन्य एक, दो, तीन, यावत् उत्कृष्ट तेयासी प्रवेश करते है, वे चतुरशीति-नोचतुरशीति-समर्जित है। जो नैरयिक एक साथ एक समय में अनेक चौरासी प्रवेश करते है, वे अनेक चतुरशीतिसमर्जित है और जो नैरयिक एक-एक समय में अनेक चौरासी तथा जघन्य एक-दो-तीन उत्कृष्ट तेयासी प्रवेश करते है, वे अनेक चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि नैरयिक चतुरशीतिसमर्जित भी है, यावत् अनेक चतुरशीति-नो-चतुरशीति-समर्जित भी है।

५०. एवं जाव थणियकुमारा।

[५०] इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

५१ पुढविकाइया तहेव पच्छिल्लएहिं दोहिं, नवरं अभिलावो चुलसीतिईओ।

[५१] पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में अनेक चतुरशीतिसमर्जित और अनेक चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित, ये दो पिछले भंग समझने चाहिए। विशेष यह कि यहाँ 'चौरासी' ऐसा कहना चाहिए।

५२ एवं जाव वणस्सतिकाइया।

[५२] इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों तक (पूर्वोक्त दो भंग) जानने चाहिए।

५३ बेइंदिया जाव वेमाणिया जहा नेरइया।

[५३] द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर वैमानिकों तक नैरयिकों के समान (आलापक कहने चाहिए)।

५४ [१] सिद्धाणं पुच्छा।

गोयमा ! सिद्धा चुलसीतिसमज्जिता वि, नोचुलसीतिसमज्जिया वि, चुलसीतीए य नोचुलसीतीए य समज्जिया वि, नो चुलसीतीहिं समज्जिया, नो चुलसीतीहि य नोचुलसीतीए य समज्जिया।

[५४-१ प्र] भगवन् ! सिद्ध चतुरशीतिसमर्जित हैं, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[५४-१ उ] गौतम ! सिद्ध भगवान् चतुरशीतिसमर्जित भी हैं तथा नो-चतुरशीति-समर्जित भी हैं तथा चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित भी हैं, किन्तु वे अनेक चतुरशीतिसमर्जित नहीं हैं, और न ही वे अनेक चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित हैं।

[२] से केणट्ठेणं जाव समज्जिया ?

गोयमा ! जे णं सिद्धा चुलसीतिएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा चुलसीतिसमज्जिया। जे णं सिद्धा जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं तेसीतीएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा नोचुलसीतिसमज्जिया। जे णं सिद्धा चुलसीतएणं; अन्नेण य जहन्नेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेणं तेसीतएणं पवेसणएणं पविसंति ते णं सिद्धा चुलसीतीए य नोचुलसीतीए य समज्जिया। से तेणट्ठेणं जाव समज्जिता।

[५४-२ प्र] भगवन् ! उपर्युक्त कथन का कारण क्या है ?

[५४-२ उ.] गौतम ! जो सिद्ध एक साथ, एक समय में चौरासी संख्या में प्रवेश करते हैं वे चतुरशीतिसमर्जित हैं। जो सिद्ध एक समय में, जघन्य एक-दो-तीन और उत्कृष्ट तेयासी तक प्रवेश करते हैं, वे नो-चतुरशीतिसमर्जित हैं। जो सिद्ध एक समय में एक साथ चौरासी और साथ ही जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट तेयासी तक प्रवेश करते हैं, वे चतुरशीतिसमर्जित और नो-चतुरशीतिसमर्जित हैं। इसी कारण हे गौतम ! सिद्ध भगवान् यावत् चतुरशीति-नो-चतुरशीति-समर्जित कहे जाते हैं।

विवेचन—चतुरशीतिसमर्जित आदि शब्दो का भावार्थ—जो जीव एक समय मे एक साथ चौरासी सख्या मे सामूहिकरूप से उत्पन्न हो वे चतुरशीतिसमर्जित कहलाते हैं। जो एक से लेकर तेयासी तक एक साथ उत्पन्न हो, वे नो-चतुरशीतिसमर्जित कहलाते है। शेष शब्दो का अर्थ सुगम है।[1]

सिद्धो मे प्रारम्भ के तीन भंग क्यो और कैसे ?—सिद्ध भगवान् एक समय मे १०८ से अधिक मुक्त नही होते, इसलिए पिछले दो भग—अनेक चतुरशीतिसमर्जित, एव अनेक चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित नही पाए जाते। प्रारम्भ के पूर्वोक्त तीन भग पाए जाते हैं। परन्तु तीसरे भग (चतुरशीति-नोचतुरशीतिसमर्जित) मे 'नो-चतुरशीति' मे एक से लेकर चौबीस तक ही लेने चाहिए, क्योकि सिद्ध भगवान् एक समय मे एक साथ अधिक से अधिक १०८ ही सिद्ध होते हैं, इसलिए चौरासी मे २४ सख्या को जोडने से १०८ हो जाते है। अत यहाँ नोचतुरशीति मे उत्कृष्ट सख्या ८३ न लेकर ८४ तक ही लेनी चाहिए।

चतुरशीति-नोचतुरशीति इत्यादि से समर्जित चौवोस दण्डकों और सिद्धों का अल्पबहुत्व निरूपण

५५. एएसि ण भते ! नेरतियाण चुलसीतिसमज्जियाण नोचुलसीतिसमज्जियाण जाव-विसेसाहियावा ?

सव्वेसि अप्पाबहुग जहा छक्कसमज्जियाण जाव वेमाणियाण, नवर अभिलावो चुलसीतओ।

[५५ प्र] भगवन् ! चतुरशीतिसमर्जित आदि नैरयिको मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक है ?

[५५ उ] गौतम ! चतुरशीतिसमर्जित नोचतुरशीतिसमर्जित इत्यादि विशिष्ट नैरयिको का अल्पबहुत्व षट्कसमर्जित आदि के समान समझना चाहिए और वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ 'षट्क' के स्थान मे 'चतुरशीति' शब्द कहना चाहिए।

५६. एएसि ण भते ! सिद्धाण चुलसीतिसमज्जियाण, नोचुलसीतिसमज्जियाण, चुलसीतीए य नोचुलसीतीए य समज्जियाण कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सिद्धा चुलसीतीए य नोचुलसीतीए य समज्जिया, चुलसीतिसमज्जिया अणंतगुणा, नोचुलसीतिसमज्जिया अणंतगुणा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।

।। बीसइमे सए : दसमो उद्देसओ समत्तो ।। २०-१० ।।

।। बीसइमं सयं समत्तं ।। २० ।।

---

१ भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), पृ २९३९

२ वही, पृ २९३९

[५६ प्र] भगवन् ! चतुरशीतिसमर्जित, नो-चतुरशीतिसमर्जित तथा चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित सिद्धो मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक है ?

[५६ उ] गौतम ! सबसे थोडे चतुरशीति-नो-चतुरशीतिसमर्जित सिद्ध है, उनसे चतुरशीति-समर्जित सिद्ध अनन्तगुणे है, उनसे नो चतुरशीतिसमर्जित सिद्ध अनन्तगुणे है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर यावत्—गौतम स्वामी विचरते है ।

।। वीसवाँ शतक : दशम उद्देशक समाप्त ।।

।। वीसवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

एगवीसइमं बावीसइमं तेवीसइमं य सयं

इक्कीसवाँ, बाईसवाँ और तेईसवाँ शतक

प्राथमिक

* ये व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र के क्रमश इक्कीसवाँ, बाईसवाँ और तेईसवाँ तीन शतक हैं। इन तीनो शतको का वर्ण्यविषय प्राय एक सरीखा है और एक दूसरे से सम्बन्धित है।

* इन तीनो शतको मे विभिन्न जाति की वनस्पतियो के विविध वर्गो के मूल से लेकर बीज तक दस प्रकारो के विषय मे निम्नोक्त पहलुओ से चर्चा की गई है—

(१) उनके मूल आदि दसो मे उत्पन्न होने वाले जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?
(२) वे जीव एक समय मे कितनी सख्या मे उत्पन्न होते है ?
(३) उनका अपहार कितने काल मे होता है ?
(४) उनके शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?
(५) वे जीव ज्ञानावरणीयादि कर्मों का बन्ध, वेदन, उदय और उदीरणा करते है या नही ?
(६) वे जीव कितनी लेश्या वाले है ? उनमे लेश्या के कितने भग पाए जाते है ?
(७) उनमें दृष्टियाँ कितनी पाई जाती हैं ?
(८) उनमे योग कितने है, उपयोग कितने होते है ?
(९) उनमे ज्ञान, अज्ञान कितने हैं ?
(१०) उनमे इन्द्रियाँ कितनी होती है ?
(११) उनकी भवस्थिति कितनी है ? कितने काल तक गति-आगति करते है ? अर्थात् गमनागमन की स्थिति कितनी है ?
(१२) उनकी कायस्थिति कितने काल तक की होती है ?
(१३) वे कितनी दिशाओ से क्या आहार लेते है ?
(१४) उन जीवो मे कितने समुद्घात होते है, वे समुद्घात करके मरते है या समुद्घात किये बिना ही मरते है ?
(१५) वे मूलादि के जीव के रूप मे पहले उत्पन्न हो चुके हैं या नही ?

इन सब प्रश्नो का सामान्यतया समाधान इक्कीसवे शतक के प्रथम वर्ग के प्रथम (मूल) उद्देशक मे किया गया है। इनमे से कई प्रश्नो का समाधान ग्यारहवे शतक के प्रथम उत्पलोद्देशक के अतिदेशपूर्वक किया गया है। आगे के शतको मे उल्लिखित वर्गों मे निर्दिष्ट मूलादि दस-दस उद्देशको मे इसी वर्ग के अनुसार समाधान सूचित किया गया है।

※ इन तीनो शतकों के प्रत्येक वर्ग के दस-दस उद्देशक इस प्रकार हैं—(१) मूल, (२) कन्द, (३) स्कन्ध, (४) त्वचा (छाल), (५) शाखा, (६) प्रवाल, (७) पत्र, (८) पुष्प, (९) फल और (१०) बीज।

※ इक्कीसवे शतक मे ८ वर्ग है। प्रत्येक वर्ग के १०-१० उद्देशक होने से आठ वर्गों के कुल ८० उद्देशक होते हैं। बाईसवे शतक के ६ वर्ग है और प्रत्येक वर्ग के दस-दस उद्देशक होने से ६० उद्देशक होते है। तेईसवे शतक के ५ वर्ग है। प्रत्येक वर्ग के दस-दस उद्देशक होने से ५० उद्देशक होते हैं।

※ इन तीनो शतको मे प्रतिपाद्य विषयो के पूर्वोक्त उत्पत्ति आदि द्वारो की चर्चा मे प्रायः इक्कीसवे शतक के प्रथम वर्ग या चतुर्थ वर्ग अथवा बाईसवे शतक के प्रथम वर्ग का अथवा आलुक वर्ग का अतिदेश किया गया है।[1]

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ८९० से ९०३ तक

एगवीसतिमं सयं : इक्कीसवाँ शतक

इक्कीसवें शतक के आठ वर्गों के नाम तथा ८० उद्देशकों का निरूपण

१. सालि १ कल २ अयसि ३ वंसे ४ उक्खू ५ दब्भे ६ य अब्भ ७ तुलसी ८ य।
अट्ठेते दसवग्गा असीति पुण होंति उद्देसा ॥१॥

[१ गाथार्थ-] (१) शालि, (२) कलाय, (३) अलसी, (४) बास, (५) इक्षु, (६) दर्भ (डाभ), (७) अभ्र (वनस्पति), (८) तुलसी, इस प्रकार इक्कीसवे शतक मे ये आठ वर्ग है। प्रत्येक वर्ग मे दस-दस उद्देशक है। इस प्रकार आठ वर्गों मे कुल ८० उद्देशक है।

विवेचन—आठ वर्गों मे प्रतिपाद्य-विषय—इक्कीसवे शतक मे कुल आठ वर्ग है। जिनमे मुख्यतया प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है— (१) **शालि**—इस वर्ग मे शालि आदि धान्यो की उत्पत्ति आदि के विषय मे वर्णन है। (२) **कलाय**—मटर आदि दालो (धान्यो) की उत्पत्ति आदि से सम्बन्धित निरूपण है। (३) **अलसी**—इस वर्ग मे अलसी आदि तिलहनो से सम्बन्धित वर्णन है। (४) **वंस**—इसमे बास आदि वनस्पतियो का वर्णन है। (५) **इक्षु**-इसमे गन्ना आदि पर्ववाली वनस्पति से सम्बन्धित वर्णन है। (६) **दर्भ**—डाभ आदि तृण के विषय मे वर्णन है। (७) **अभ्र**—इस वर्ग मे **अभ्र** नामक वनस्पति के समान अनेक वनस्पतियो सम्बन्धी वर्णन है। (८) **तुलसी**—इस वर्ग मे तुलसी आदि वनस्पतियो से सम्बन्धित वर्णन है।[1]

प्रत्येक वर्ग मे दस-दस उद्देशक—इस प्रकार है—(१) मूल, (२) कन्द, (३) स्कन्ध, (४) त्वचा, (५) शाखा, (६) प्रवाल (कोमल पत्ते), (७) पत्र, (८) पुष्प, (९) फल और (१०) बीज। इस तरह प्रत्येक वर्ग मे ये दस उद्देशक है।[2]

---

१ भगवती विवेचन भाग ६, (प घेवरचदजी), पृ २९३०

२. **मूले १. कदे २ खधे ३ तया ४. य साले ५. पवाल ६ पत्ते य ७।**
पुप्फे फल ८-९. य बीए १०. वि य एक्केक्को होइ उद्देसो ॥ १ ॥

— भगवती अ वृत्ति, पृ ८००

पढमे 'सालिवग्गो' पढमो उद्देसओ : 'मूल'

प्रथम वर्ग : शालि (आदि), प्रथम उद्देशक : 'मूल'

मूल-रूप में उत्पन्न होने वाले शालि आदि जीवों के उत्पाद-संख्या-शरीरावगाहना-कर्म-बन्ध-वेद-उदय-उदीरणा-दृष्टि आदि पदों की प्ररूपणा

२. रायगिहे जाव एवं वयासि—

[२] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

३. ग्रह भंते ! साली-वीही-गोधूम-जव-जवजवाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कग्रोहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरि० मणु० देव० ।

जहा वक्कंतीए तहेव उववातो, नवरं देववज्ज ।

[३ प्र] भगवन् ! ग्रब (प्रश्न यह है कि)--शालि, व्रीहि, गोधूम—गेहूँ (यावत्) जौ, जवजव, इन सब धान्यो के मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे जीव कहाँ से ग्रा कर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको से ग्रा कर उत्पन्न होते है, ग्रथवा तिर्यञ्चो, मनुष्यो या देवो से ग्राकर उत्पन्न होते है ?

[३ उ] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्ति-पद मे कथित प्ररूपणा के ग्रनुसार इनका उपपात समझना चाहिए । विशेष यह है कि देवगति से ग्रा कर ये मूलरूप मे उत्पन्न नही होते हैं ।

४. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवतिया उववज्जति ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा ग्रसखेज्जा वा उववज्जंति । ग्रवहारो जहा उप्पलुद्देसे (स० ११ उ० १ सु० ७) ।

[४ प्र.] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[४ उ] गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट सख्यात ग्रथवा ग्रसख्यात उत्पन्न होते हैं ।

इनका ग्रपहार (ग्यारहवे शतक के) उत्पल-उद्देशक (के सूत्र ७) के ग्रनुसार (जानना चाहिए ।)

५. एतेसि ण भंते ! जीवाण केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स ग्रसंखेज्जइभाग, उक्कोसेणं धणुपुहत्तं ।

[५ प्र] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त शालि ग्रादि) जीवो के शरीर की ग्रवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

[५ उ.] गौतम ! (इनके शरीर की अवगाहना) जघन्य अंगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट धनुष-पृथक्त्व (दो से नौ धनुष तक) की कही गई है।

६ ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधगा, अबंधगा ?

तहेव जहा उप्पलुद्देसे (स० ११ उ० १ सु० ९) ।

[६ प्र] भगवन् ! वे जीव ज्ञानावरणीयकर्म के बन्धक है या अबन्धक ?

[६ उ] गौतम ! जिस प्रकार (ग्यारहवे शतक के) उत्पल-उद्देशक (के सू ९) मे कहा गया है, उसके समान (जानना चाहिए)।

७. एवं वेदे वि, उदए वि, उदीरणाए वि ।

[७] इसी प्रकार (कर्मों के) वेदन, उदय और उदीरणा के विषय मे भी (जानना चाहिए।)

८. ते ण भते ! जीवा किं कण्हलेस्सा नील० काउ० ?

छव्वीस भगा ।

[८ प्र] भगवन् ! वे जीव कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी या कापोतलेश्यी होते है ?

[८ उ] गौतम ! (यहाँ तीन लेश्या-सम्बन्धी) छब्बीस भग कहने चाहिए।

९. दिट्ठी जाव इंदिया जहा उप्पलुद्देसे (स० ११ उ० १ सु० १५-३०) ।

[९] दृष्टि से लेकर यावत् इन्द्रियो के विषय मे (ग्यारहवे शतक के) उत्पलोद्देशक के अनुसार (प्ररूपणा समझनी चाहिए।)

१० से ण भते ! साली-वीही-गोधूम-[? ☐ जव-] जवजवगमूलगजीवे कालओ केवच्चिर होति ?

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।

[१० प्र] भगवन् ! शालि, व्रीहि, गेहू, यावत् जौ, जवजव आदि, (इन सब धान्यो) के मूल का जीव कितने काल तक रहता है ?

[१० उ.] गौतम ! (वह मूल का जीव) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यात काल तक रहता है।

११. से णं भते ! साली-वीही-गोधूम-[? + जव-] जवजवगमूलगजीवे पुढविजीवे पुणरवि साली-वीही जाव जवजवगमूलगजीवे केवतियं काल सेवेज्जा ?, केवतिय काल गतिरागति करिज्जा ?

एवं जहा उप्पलुद्देसे (स० ११ उ० १ सु० ३२) ।

[११ प्र] भगवन् ! शालि, व्रीहि, गोधूम, जौ, (यावत्) जवजव (आदि धान्यो) के मूल का जीव, यदि पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न हो और फिर पुन. शालि, व्रीहि यावत् जौ, जवजव आदि

☐ + [?] पाठान्तर—जाव

धान्यों के मूल रूप मे उत्पन्न हो, तो इस रूप मे वह कितने काल तक रहता है ? तथा कितने काल तक गति-आगति (गमनागमन) करता रहता है ?

[११ उ] हे गौतम ! (इसका समाधान ग्यारहवे शतक के) उत्पल-उद्देशक के अनुसार (जानना चाहिए)।

१२. एएण अभिलावेणं जाव मणुस्सजीवे ।

[१२] इस अभिलाप से मनुष्य एव सामान्य जीव के (अभिलाप तक कहना चाहिए)।

१३ आहारो जहा उप्पलुद्देसे (स० ११ उ० १ सु० २१) ।

[१३] आहार (सम्बन्धी निरूपण) भी (पूर्वोक्त) उत्पलोद्देशक के समान है।

१४. ठिती जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वासपुहत्तं ।

[१४] (इन जीवो की) स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष-पृथक्त्व (दो वर्ष से लेकर नौ वर्ष तक) की है।

१५. समुग्घायसमोहया य उव्वट्टणा य जहा उप्पलुद्देसे (स० ११ उ० १ सु० ४२-४४) ।

[१५] समुद्घात-समवहत (समुद्घात की प्राप्ति) और उद्वर्त्तना (पूर्वोक्त) उत्पलोद्देशक के अनुसार है।

१६. अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता साली वीही जाव जवजवगमूलगजीवत्ताए उववन्नपुव्वा ?

हंता, गोयमा ! असतिं अदुवा अणंतखुत्तो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। एगवीसतिमे सए : पढमे वग्गे पढमो उद्देसओ समत्तो ।। २१-१-१ ।।

[१६ प्र] भगवन् ! क्या सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव और सर्व सत्त्व शालि, व्रीहि, यावत् जवजव के मूल के जीव रूप मे इससे पूर्व उत्पन्न हो चुके है ?

[१६ उ.] हा, गौतम ! (वे इमसे पूर्व मूल के जीवरूप मे) अनेक बार अथवा अनन्त बार (उत्पन्न हो चुके है)।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—प्रस्तुत प्रथम उद्देशक के १५ सूत्रो (सू २ से १६ तक) मे शालि आदि के मूल के रूप में उत्पन्न होने वाले जीवों की उत्पत्ति, संख्या आदि के विषय मे प्राय· प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के प्रथम उत्पलोद्देशक के अतिदेश-पूर्वक प्ररूपणा की गई है।

देवों की उत्पत्ति मूल में क्यों नहीं ?—प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद मे वनस्पति में देवो की उत्पत्ति बतलाई गई है, किन्तु यहाँ शालि आदि वनस्पति के मूल मे देवो की उत्पत्ति का निषेध इसलिए किया गया है कि देव वनस्पति के पुष्प आदि शुभ अगो मे उत्पन्न होते हैं, परन्तु उसके मूल आदि अशुभ अगो मे नही। इसलिए मूलपाठ मे कहा गया है - '**णवरं देववज्जं**।' अर्थात् देव देवगति से आकर शालि आदि के मूल आदि मे उत्पन्न नही होते।

वनस्पति मे जघन्य एक, दो आदि की उत्पत्ति का कथन कैसे ?—यद्यपि वनस्पति मे सामान्यतया प्रतिसमय अनन्त जीव उत्पन्न होते है, किन्तु शालि आदि प्रत्येकशरीरी होने से इनमे जघन्यत एक, दो आदि की उत्पत्ति का कथन सिद्धान्तविरुद्ध नही है।

अपहार -उन शालि आदि के जीवो का प्रतिसमय अपहार किया जाए (एक-एक करके निकाला जाए), तो असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी बीत जाने पर भी वे पूरी तरह निकाले नही जा सकते। (यद्यपि ऐसा किसी ने कभी किया नही और किया भी नही जा सकता)।

कर्मबन्धक - शालि आदि के जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बन्धक है, अबन्धक नही।

लेश्या सम्बन्धी छब्बीस भंग—कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्याओ के एकवचन और बहुवचन से सम्बन्धित असयोगी तीन-तीन भग होने से छह भग असयोगी होते है। कृष्ण-नील, कृष्ण-कापोत और नील-कापोत, यो द्विकसयोगी तीन भग होते है। इनके प्रत्येक के एकवचन और बहुवचन से सम्बन्धित चार-चार भग होने से कुल १२ भग द्विकसयोगी हुए। त्रिकसयोगी एकवचन और बहुवचन सम्बन्धी आठ भग होते है। इस प्रकार ये कुल ६+१२+८=२६ भग होते है।

दो प्रकार की स्थिति—भव की अपेक्षा इनकी गमनागमन की स्थिति जघन्य दो भव की और उत्कृष्ट असख्यात भव तक की है, जबकि काल की अपेक्षा स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट असख्यात काल तक की है।

समुद्घात-प्राप्ति—शालि आदि जीवो मे वेदना, कषाय और मरण, ये तीन समुद्घात होते है। ये समुद्घात करके भी मरते है और समुद्घात किये बिना भी मरते है। मर कर ये मनुष्य और तिर्यञ्च गति मे जाते हैं, इत्यादि वर्णन ग्यारहवे शतक के प्रथम उद्देशक के अनुसार जान लेना चाहिए।

दृष्टि आदि--मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, काययोगी है, द्विविध उपयोगी है, इत्यादि सब उत्पलोद्देशक के अनुसार कहना चाहिए।[1]

॥ इक्कीसवां शतक : प्रथमवर्ग, प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८०१

(ख) 'गोयमा ! नो अबधगा, बधए वा बधगा वा।' —उत्पलोद्देशक शतक ११, ३ १.

(ग) भगवती विवेचन भा ६, (प घेवरचन्दजी), पृ २९४५

पढमे सालिवग्गो : सेसा नव उद्देसगा

प्रथम 'शालि' वर्ग : शेष नौ उद्देशक

कन्द आदि के रूप में उत्पन्न शालि आदि जीवों का प्रथमोद्देशकानुसार निरूपण

२-१. अह भंते ! साली वीही जाव जवजवाण, एएसि ण जे जीवा कदत्ताए वक्कमति ते ण भंते ! जीवा कम्रोहिंतो उववज्जंति ?

एव कदाहिगारेण सो चेव मूलुद्देसो अपरिसेसो भाणियव्वो जाव असति अदुवा अणतखुत्तो ।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

[उ २, सू १ प्र] भगवन् ! शालि, व्रीहि, यावत् जवजव, इन सबके 'कन्द' रूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[उ २, सू १ उ] (गौतम !) 'कन्द' के विषय मे, वही (पूर्वोक्त) मूल का समग्र उद्देशक, 'अनेक बार या अनन्त बार इससे पूर्व उत्पन्न हो चुके है, (यहाँ तक) कहना चाहिए। (विशेष यह है कि यहाँ 'मूल' के स्थान मे 'कन्द' पाठ कहना चाहिए।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरने लगे।

३-१. एवं खधे वि उद्देसो नेतव्वो ।

[उ ३, सू १] इसी प्रकार (प्रथम उद्देशकवत्) स्कन्ध का (तृतीय) उद्देशक भी जानना चाहिए।

४-१. एवं तयाए वि उद्देसो भाणितव्वो ।

[उ ४, सू १] इसी प्रकार (प्रथम उद्देशकवत्) 'त्वचा' का (चतुर्थ) उद्देशक भी कहना चाहिए।

५-१. साले वि उद्देसो भाणियव्वो ।

[उ ५, सू १] शाखा (शाल) के विषय मे भी (पूर्ववत् समग्र पचम) उद्देशक कहना चाहिए।

६-१. पवाले वि उद्देसो भाणियव्वो ।

[उ ६, सू १] प्रवाल (कोपल) के विषय मे भी (पूर्ववत् समग्र छठा) उद्देशक कहना चाहिए।

७-१. पत्ते वि उद्देसो भाणियव्वो ।

एए सत्त वि उद्देसगा अपरिसेस जहा मूले तहा नेयव्वा ।

[उ ७ सू १] पत्र के विषय मे भी (पूर्ववत् समग्र सप्तम) उद्देशक कहना चाहिए।

ये सातो ही उद्देशक समग्ररूप से 'मूल' उद्देशक के समान जानने चाहिए।

८-१. एवं पुप्फे वि उद्देसओ, नवर देवो उववज्जति जहा उप्पलुद्देसे (स० ११ उ० १ सु० ५)। चत्तारि लेस्साओ, असीति भगा। ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग, उक्कोसेणं अंगुलपुहत्तं। सेसं तं चेव।

[उ ८, सू १] 'पुष्प' के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्ववत् समग्र अष्टम) उद्देशक कहना चाहिए। विशेष यह है कि 'पुष्प' के रूप मे देव (आकर) उत्पन्न होता है। ग्यारहवे शतक के प्रथम उत्पलोद्देशक मे जिस प्रकार चार लेश्याएँ और उनके अस्सी भग कहे गए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहने चाहिए। इसकी अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट अगुल-पृथक्त्व की होती है। शेष सब पूर्ववत् है।

९-१. जहा पुप्फे एवं फले वि उद्देसओ अपरिसेसो भाणियव्वो।

[उ ९, सू १] जिस प्रकार 'पुष्प' के विषय मे कहा है, उसी प्रकार 'फल' के विषय मे भी समग्र (नौवाँ) उद्देशक कहना चाहिए।

१०-१. एवं बीए वि उद्देसओ।

एए दस उद्देसगा।

सेवं भंते! सेव भंते! ०।

॥ पढमो वग्गो समत्तो ॥

[उ १०, सू १] 'बीज' के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्ववत् दसवाँ) उद्देशक कहना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम वर्ग के ये दस उद्देशक पूर्ण हुए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरने लगे।

विवेचन—इन नौ उद्देशको को नौ सूत्रो मे दूसरे से दसवे उद्देशक के रूप मे 'मूल' उद्देशक के अतिदेशपूर्वक (कुछ बातो मे अन्तर के सिवाय) क्रमश. कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज नाम से समग्र एक-एक उद्देशक कहा गया है।

देवों की उत्पत्ति मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल और पत्र, इन सात मे देव उत्पन्न नही होते, वे पुष्प, फल और बीज के रूप में उत्पन्न होते है।

पुष्पादि में चार लेश्याएँ, अस्सी भंग—पुष्प, फल और बीज मे चार लेश्याएँ होती हैं, क्योकि इनमें देव आकर उत्पन्न होते है। कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्याओ के एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा से असयोगी चार-चार भग गिनने से आठ भग होते है। द्विकसंयोगी छह विकल्प होते

हैं, उनके प्रत्येक के एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा चार-चार भग होने से ६×४=२४ भग होते हैं। त्रिकसयोगी चार विकल्प होते है। एक-एक विकल्प के आठ-आठ भग होने से ४×८=३२ भग होते है। चतु सयोगी सोलह भग होते है। इस प्रकार कुल मिलाकर ८+२४+३२+१६=८० भग होते हैं।[1]

इन वसो की अवगाहना—एक गाथा के अनुसार मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल और पत्र, इस सातो की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट धनुष-पृथक्त्व की है। पुष्प, फल और बीज, इन तीनो की जघन्य अगुल के असख्यातव भाग की और उत्कृष्ट अगुलपृथक्त्व की है।[2]

॥ इक्कीसवाँ शतक प्रथम वर्ग समाप्त ॥

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८०२

(ख) भगवती विवेचन भाग ६, (प घेवरचन्दजी), पृ २९५७

२. **मूले कदे खधे तया य साले पवाल-पत्ते य।**
सत्तसु वि धणु पुहुत्त, अगुलिमो पुप्फ-फल-बीए॥ भगवती अ वृ, पत्र ८०२

बितिए 'कल' वग्गो : दस उद्देसगा

द्वितीय 'कल' वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम शालिवर्गानुसार द्वितीय कलवर्ग का निरूपण

१. ग्रह भंते ! कल-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-ग्रालिसंदग-सडिण-पलिमथगाणं, एएसि ण जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते ण भंते ! जीवा कम्रोहितो उववज्जति ? एव मूलाईया दस उद्देसगा भाणियव्वा जहेव सालीणं निरवसेस तहेव ।

।। एगवीसइमे सए : बितियो वग्गो समत्तो ।। २१-२ ।।

[१ प्र] भगवन् ! कलाय (मटर), मसूर, तिल, मूग, उडद (माष), निष्पाव (वल्ल—वालोर नामक धान्य), कुलथ, ग्रालिसदक, सटिन ग्रौर पलिमथक (चना), इन सबके मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे कहाँ से ग्राकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार शालि ग्रादि के विषय मे मूल ग्रादि दस उद्देशक कहे है, उसी प्रकार यहाँ भी मूल ग्रादि समग्र दस उद्देशक कहने चाहिए ।

।। इक्कीसवाँ शतक द्वितीय वर्ग समाप्त ।।

ततिए 'अयसि' वग्गे : दस उद्देसगा

तृतीय 'अतसी' वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम शालिवर्गानुसार तृतीय अतसी वर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! अयसि-कुसु भ-कोद्दव-कंगु-रालग-तुवरी-कोद्दूसा-सण-सरिसव-मूलगबीयाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! जीवा कओहिंतो उववज्जति ? एव एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा जहेव सालीण निरवसेसं तहेव भाणियव्व ।

।। एगवीसइमे सए : तइओ वग्गो समत्तो ।। २१-३ ।।

[१ प्र] भगवन् ! अलसी, कुसुम्ब, कोद्रव, काग, राल, तूअर, कोदूसा, सण और सर्षप (सरसो) तथा मूलक बीज, इन वनस्पतियो के मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहां से आ कर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] (गौतम !) 'शालि' आदि प्रथम वर्ग के मूल आदि दस उद्देशको के समान यहाँ भी समग्ररूप से मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए ।

।। इक्कीसवाँ शतकः तृतीय वर्ग समाप्त ।।

चउत्थे 'वंस' वग्गो : दस उद्देसगा

चतुर्थ 'वंश' वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम शालिवर्ग के अनुसार चतुर्थ वंशवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! वंस-वेणु-कणग-कक्कावंस-चारुवंस-उडाकुडा[1]-विमा-कंडा-वेणुया-कल्लाणीणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति० ? एवं एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा जहेव सालीणं, नवरं देवो सव्वत्थ वि न उववज्जति । तिन्नि लेसाओ । सव्वत्थ वि छव्वीसं भंगा । सेसं तं चेव ।

।। एगवीसइमे सए : चउत्थो वग्गो समत्तो ।। २१-४ ।।

[१ प्र] भगवन् ! बांस, वेणु, कनक, कर्कावंश, चारुवंश, उडा (दण्डा), कुडा, विमा, कण्डा, वेणुका और कल्याणी, इन सब वनस्पतियों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आ कर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] (गौतम !) यहाँ भी पूर्ववत् शालि-वर्ग के समान मूल आदि दश उद्देशक कहने चाहिए। विशेष यह है कि देव यहाँ किसी स्थान में उत्पन्न नहीं होते। सर्वत्र तीन लेश्याएँ और उनके छब्बीस भंग जानने चाहिए। शेष सब पूर्ववत् ।

।। इक्कीसवाँ शतक : चतुर्थ वर्ग समाप्त ।।

१. पाठान्तर—'दंडा'

पंचमे 'उक्खु' वग्गो : दस उद्देसगा

पंचम 'इक्षु' वर्ग : दश उद्देशक

चतुर्थ वंशवर्गानुसार पंचम इक्षुवर्ग का निरूपण

१ अह भंते ! उक्खु-उक्खुवाडिया-वीरण-इक्कड-भमास-सुंठि-सर-वेत्त-तिमिर-सतबोरग-नलाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति० ? एवं जहेव वंसवग्गो तहेव एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा नवरं खंधुद्देसे देवो उववज्जति । चत्तारि लेसाओ । सेसं तं चेव ।

।। एगवीसइमे सए : पंचमो वग्गो समत्तो ।। २१-५ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! इक्षु (गन्ना), इक्षुवाटिका, वीरण, इक्कड, भमास, सुंठि, शर, वेत्र (बेंत), तिमिर, सतबोरग (शतपर्वक) और नल, इन सब वनस्पतियों के मूल रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] जिस प्रकार वंशवर्ग (चतुर्थ) के मूलादि दस उद्देशक कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए । विशेष यह है कि स्कन्धोद्देशक में देव भी उत्पन्न होते हैं, अतः उनके चार लेश्याएँ होती हैं (इत्यादि कहना चाहिए) । शेष पूर्ववत् ।

।। इक्कीसवाँ शतक : पंचम 'इक्षु' वर्ग समाप्त ।।

छट्ठे 'दब्भ' वग्गो : दस उद्देसगा

छठा 'दर्भ' वर्ग : दश उद्देशक

चतुर्थ वंशवर्गानुसार छठे दर्भवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! सेडिय-भतिय[1]-कोतिय-दब्भ-कुस-पव्वग-पोदइल-अज्जुण-आसाढग-रोहियंस-मुतव-खीर-भुस-एरंड-कुरुकुंद-करकर-सुंठ-विभंगु-महुरयण[2]-थुरग-सिप्पिय-सुंकलितणाण, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति० ? एवं एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं जहेव वंसवग्गो।

॥ एगवीसइमे सए : छट्ठो वग्गो समत्तो ॥ २१-६ ॥

[१ प्र.] भगवन् ! सेडिय (सडिय), भतिय (भण्डिय), कोन्तिय, दर्भ-कुश, पर्वक, पोदेइल (पोदीना), अर्जुन, आषाढक, रोहितक (रोहिताश), मुतअ, खीर (समू, अवखीर या तवखीर), भुस, एरण्ड, कुरुकुन्द, करकर (करवर), सूंठ, विभंगु, मधुरयण (मधुवयण), थुरग, शिल्पिक और सुंकलि-तृण, इन सब वनस्पतियों के मूलरूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! यहाँ भी चतुर्थ वंशवर्ग के समान समग्र मूल आदि दश उद्देशक कहने चाहिए।

॥ इक्कीसवाँ शतक : छठा वर्ग समाप्त ॥

पाठान्तर—१ भंडिय-कोतिय-दब्भ-कुस-दब्भग-पोदइल-अजुण—। २ वयण

सत्तमे 'अब्भ' वग्गो : दस उद्देसगा

सप्तम 'अभ्र' वर्ग : दश उद्देशक

चतुर्थ वंशवर्गानुसार सप्तम अभ्रवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! अब्भरुह-वायाण[1]-हरितग-तंदुलज्जग-तण-वत्थुल-बोरग-मज्जार-[2]पाइ-बिल्लि-पालक्क-दगपिप्पलिय-दव्वि-सोत्थिक-सायमंडुक्कि-मूलग-सरिसव-अंबिलसाग-जियतगाणं,[3] एएसि णं जे जीवा मूल० ? एवं एत्थ वि दस उद्देसगा जहेव वंसवग्गो ।।

।। एगवीसइमे सए : सत्तमो वग्गो समत्तो ।। २१-७ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! अभ्ररुह, वायाण (वोयाण), हरीतक (हरड), तंदुलेय्यक (चंदलिया), तृण, वत्थुल (बथुआ), बोरक (बेर, पोरक), मार्जारिक, पाई, बिल्ली (चिल्ली), पालक, दगपिप्पली, दर्वी, स्वस्तिक, शाकमण्डुकी, मूलक, सर्षप (सरसों), अम्बिलशाक, जीयन्तक (जीवन्तक), इन सब वनस्पतियों के मूल रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] (गौतम !) यहाँ भी चतुर्थ वंशवर्ग के समान समग्ररूप में मूलादि दश उद्देशक कहने चाहिए ।

विवेचन—अभ्रवृक्ष का स्वरूप—एक वृक्ष में दूसरी जाति के वृक्ष के उग जाने को अभ्रवृक्ष कहते हैं । यथा—नीम के वृक्ष में पीपल के वृक्ष का उग जाना या बड में पीपल का उग जाना ।[4]

।। इक्कीसवाँ शतक : सप्तम वर्ग समाप्त ।।

१. वोयाण । २. मज्जारयाईचिल्लियालक्क । ३. जिवंतगा । ।
४. भगवती विवेचन (पं. घेवरचन्दजी) भा. ६, पृ. २९५४

अट्ठमे 'तुलसी' वग्गो : दस उद्देसगा

अष्टम तुलसी वर्ग : दश उद्देशक

चतुर्थ वंशवर्गानुसार अष्टम तुलसीवर्ग का निरूपण

१ अह भंते ! तुलसी-कण्हदराल-फणेज्जा-अज्जा-भूयणा[1]-चोरा-जीरा-दमणा-मरुया-इंदीवर-सयपुप्फाणं, एतेसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति० ? एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं जहा वंसाणं।

एवं एएसु अट्ठसु वग्गेसु असीतिं उद्देसगा भवंति।

।। एगवीसतिमे सए: अट्ठमो वग्गो समत्तो ।।२१-८ ।।

।। एगवीसतिमं सयं समत्तं ।। २१ ।।

[१ प्र] भगवन् ! तुलसी, कृष्णदराल, फणेज्जा, अज्जा, भूयणा (चूयणा), चोरा, जीरा, दमणा, मरुया, इन्दीवर और शतपुष्प, इन सबके मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] (गौतम !) चौथे वंशवर्ग के समान यहाँ भी समग्र रूप से मूलादि दश उद्देशक कहने चाहिए।

इस प्रकार आठ वर्गों में अस्सी उद्देशक होते हैं।

विवेचन—इन आठों ही वर्गों में जिन-जिन वनस्पतियों का उल्लेख किया है, उनमें से अधिकांश वनस्पतियाँ अप्रसिद्ध हैं। उनकी जानकारी 'निघण्टु' आदि में कर लेनी चाहिए।

आठों ही वर्गों में प्रथम शालिवर्ग का अतिदेश किया गया है। इसलिए प्रथम वर्ग में किये गए दसों उद्देशकों के विवेचन के अनुसार सभी वर्गों का विवेचन समझ लेना चाहिए।

।। इक्कीसवाँ शतक : अष्टम वर्ग समाप्त ।।

इक्कीसवाँ शतक सम्पूर्ण

---

१. अज्जाचूयणा

बावीसइमं सयं : बाईसवाँ शतक

बाईसवें शतक के छह वर्गों के नाम : इनके आठ उद्देशको का निरूपण

१. तालेगट्ठिय १-२ बहुबीयगा ३ य गुच्छा ४ य गुम्म ५ वल्ली ६ य ।
छद्दसवग्गा एए सट्ठि पुण होंति उद्देसा ॥१॥

[१ गाथार्थ—] इस शतक मे दस-दस उद्देशको के छह वर्ग इस प्रकार है—(१) ताल, (२) एकास्तिक (या एकास्थिक), (३) बहुबीजक, (४) गुच्छ, (५) गुल्म और (६) वल्लि (बेल)। प्रत्येक वर्ग के १०-१० उद्देशक होने से, सब मिला कर साठ उद्देशक होते है।

विवेचन—बाईसवें शतक के वर्गों मे प्रतिपाद्य विषय—

(१) **प्रथम वर्ग ताल**—इसमे ताल, तमाल आदि वृक्षो के विषय मे दश उद्देशक है।

(२) **द्वितीय वर्ग—एकास्थिक**—जिसमे एक गुठली हो, ऐसे नीम, आम, जामुन आदि का इसमे वर्णन है।

(३) **तृतीय वर्ग—बहुबीजक**—इसमे बहुत बीज वाली अस्थिक, तिन्दुक आदि वनस्पतियो का वर्णन है।

(४) **चौथा वर्ग—गुच्छ**—इसमे गुच्छ वाली बैगन आदि वनस्पतियो का वर्णन है।

(५) **पचम वर्ग—गुल्म**—इसमे नवमालिका, सिरियक आदि वनस्पतियो से सम्बन्धित वर्णन है और

(६) **छठा वर्ग वल्ली**—इसमे बेलो से सम्बन्धित निरूपण है। प्रत्येक वर्ग के मूल आदि दस-दस उद्देशक पूर्ववत् है।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पण), पृ ८९७

पढमे तालवग्गो : दश उद्देशगा

प्रथम 'ताल' वर्ग : दश उद्देशक

इक्कीसवें शतक के प्रथमवर्गानुसार प्रथम तालवर्ग का निरूपण

२. रायगिहे जाव एव वयासि –

[२] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

३. ग्रह भते ! ताल-तमाल-तक्कलि-तेतलि-साल-सरलासारगल्लाण जाव केयति-कयलि-कदलि-चम्मरुक्ख-गु तरुक्ख-हिगुरुक्ख-लवगरुक्ख-पूयफलि-खज्जूरि-नालिएरीणं, एएसि ण जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते ण भते ! जीवा कओहिंतो उववज्जति ?०

एवं एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा कायव्वा जहेव सालीणं (स० २१ व० १ उ० १-१०), नवर इम नाणत्त मूले कदे खधे तयाए साले य, एएसु पंचसु उद्देसगेसु देवो न उववज्जति; तिण्णि लेसाओ; ठिती जहन्नेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण दसवाससहस्साइ, उवरिल्लेसु पंचसु उद्देसएसु देवो उववज्जति; चत्तारि लेसाओ, ठिती जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वासपुहत्तं; ओगाहणा मूले कदे धणुपुहत्त, खधे तयाए साले य गाउयपुहत्त, पवाले पत्ते य धणुपुहत्त, पुप्फे हत्थपुहत्त, फले बीए य अगुलपुहत्त, सव्वेसि जहन्नेण अगुलस्स असखेज्जइभाग । सेस जहा सालीण ।

एवं एए दस उद्देसगा ।

।। बावीसइमे सए : पढमो वग्गो समत्तो ।। २२-१ ।।

[३ प्र] भगवन् ! ताल (ताड), तमाल, तक्कली, तेतली, शाल, सरल (देवदार), सारगल्ल, यावत्—केतकी (केवडा), कदली (केला), चर्मवृक्ष, गुन्दवृक्ष, हिगुवृक्ष, लवगवृक्ष, पूगफल (सुपारी), खजूर और नारियल, इन सबके मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[३ उ] (गौतम !) (इक्कीसवे शतक व १ उ १ सू १-१० मे अकित) शालिवर्ग के दश उद्देशको के समान यहाँ भी वर्णन समझना चाहिए। विशेष यह है कि इन वृक्षो के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा और शाखा, इन पाचो अवयवो मे देव आकर उत्पन्न नही होते, इसलिए इन पाचो मे तीन लेश्याएँ होती हैं, शेष पाच मे देव उत्पन्न होते है, इसलिए उनमे चार लेश्याएँ होती है। पूर्वोक्त पाच की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की होती है, अन्तिम पाच की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष-पृथक्त्व की होती है। मूल और कन्द की अवगाहना धनुष-पृथक्त्व की और स्कन्ध, त्वचा एव शाखा की गव्यूति (गाऊ—दो कोस)-पृथक्त्व की

होती है। प्रवाल और पत्र की अवगाहना धनुष- पृथक्त्व की होती है। पुष्प की अवगाहना हस्त-पृथक्त्व की और फल तथा बीज की उत्कृष्ट अवगाहना अगुल-पृथक्त्व की होती है। इन सबकी जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की होती है। शेष सब कथन शालिवर्ग के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार ये उद्देशक पूर्ण हुए।

विवेचन—**शालिवर्ग के अतिदेशपूर्वक दश उद्देशक** इस शतक के वर्गो और उद्देशका का प्रतिपाद्य विषय और व्याख्या प्राय पूर्वोक्त इक्कीसवे शतक के समान है।

प्राचीन आचार्यों द्वारा निरूपित गाथा—देवो मे से आकर किन-किन मे उत्पत्ति होती है, किन मे नही ? इसके लिए एक गाथा है—

'पत्त-पवाले पुप्फे फले य बीए य होइ उववाओ।
रुक्खेसु सुरगणाण पसत्थ-रस-वन्न-गंधेसु ॥'

अर्थात्—इनमे से प्रशस्त रस, वर्ण और गन्ध वाले पत्र, प्रवाल, पुष्प, फल और बीज मे देव आकर उत्पन्न होते है।[1]

॥ बाईसवाँ शतक : प्रथम वर्ग समाप्त ॥

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८०४

बीए 'एगट्ठिय' वग्गो : दस उद्देसगा

द्वितीय 'एकास्थिक' वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम तालवर्गानुसार द्वितीय एकास्थिक वर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! निबब-जबु-कोसंब-ताल-अंकोल्ल-पीलु-सेलु-सल्लइ-मोयइ-मालुय-बउल-पलास-करंज-पुत्तजीवग-ऽरिट्ठ-बिहेलग-हरियग-भल्लाय-उबरिय[1]- खीरणि-धायइ- पियाल-पूइय-णिवाग-सेण्हण-पासिय-सीसव-अयसि-पुन्नाग-नागरुक्ख-सीवण्णि-असोगाण, एएसि ण जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति० ?

एव मूलाईया दस उद्देसगा कायव्वा निरवसेस जहा तालवग्गे ।

।। बावीसइमे सए : बितिओ वग्गो समत्तो ।। २२-२ ।।

[१ प्र] भगवन् ! नीम, आम्र, जम्बू (जामुन), काशम्ब, ताल, अकोल्ल, पीलु, सेलु, सल्लकी, मोचकी, मालुक, बकुल, पलाश, करज, पुत्रजीवक, अरिष्ट (अरीठा), बहेडा, हरितक (हर्डे), भिल्लामा, उम्बरिय (उम्बभरिक), क्षीरणी (खिरनी), धातकी (धावडी), प्रियाल (चारोली), पूतिक, निवाग (नीपाक), सेण्हक, पासिय, शीशम, अतसी, पुन्नाग (नागकेसर), नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक, इन सब वृक्षो के मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! यहाँ भी तालवर्ग के समान समग्र रूप से मूल आदि दस उद्देशक कहने चाहिए ।

।। बाईसवाँ शतक द्वितीय वर्ग समाप्त ।।

पाठान्तर १. उबभरिय

तइए 'बहुबीयग' वग्गो : दस उद्देसगा

तृतीय 'बहुबीजक' वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम तालवर्गानुसार तृतीय बहुबीजकवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! अत्थिय-तेंदुय-बोर-कविट्ठ, अबाडग-माउलुंग[1]-बिल्ल-आमलग-फणस-दाडिम-आसोट्ठ[2]-उंबर-वड-णग्गोह-नंदिरुक्ख- पिप्पलि- सतर- पिलक्खुरुक्ख- काउंबरिय- कुत्थुंभरिय- देवदालि-तिलग-लउय-छत्तोह-सिरीस-सत्तिवण्ण-दधिवण्ण-लोद्ध-धव-चंदण-अज्जुण-णीव-कुडग-कलंबाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति ते णं भंते ! ० ?

एवं एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा तालवग्गसरिसा नेयव्वा जाव बीय।

।। बावीसइमे सए : तइओ वग्गो समत्तो ।। २२-३ ।।

[१ प्र] भगवन् ! अगस्तिक, तिन्दुक, बोर, कवीठ, अम्बाडक, बिजौरा, बिल्व (बेल), आमलक (आँवला), फणस (अनन्नास), दाडिम (अनार), अश्वत्थ (पीपल), उंबर (उदुम्बर), बड, न्यग्रोध, नन्दिवृक्ष, पिप्पली (पीपर), सतर, प्लक्षवृक्ष (ढाक का पेड), काकोदुम्बरी, कुस्तुम्भरी, देवदालि, तिलक, लकुच (लीची), छत्रौघ, शिरीष, सप्तपर्ण (सादड), दधिपर्ण, लोध्रक (लोद), धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुटज और कदम्ब, इन सब वृक्षों के मूलरूप से जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! यहाँ भी प्रथम तालवर्ग के सदृश मूल आदि (मूल से लेकर) बीज तक दस उद्देशक कहने चाहिए।

।। बाईसवाँ शतक तृतीय वर्ग समाप्त ।।

---

१ माउलिंग २ आसत्थ

चउत्थे 'गुच्छ' वग्गो : दस उद्देसगा

चतुर्थ 'गुच्छ' वर्ग : दश उद्देशक

इक्कीसवें शतक के चतुर्थवर्गानुसार चतुर्थ गुच्छवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! वाइगणि-अल्लइ-बोंडइ० एव जहा पण्णावणाए गाहाणुसारेण[1] णेयव्वं जाव गजपाडला-दासि-अकोल्लाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमति० ?

एव एत्थ वि मूलादीया दस उद्देसगा[2] जाव बीयं ति निरवसेस जहा वसवग्गो (स० २१ व० ४)।

।। बावीसइमे सए : चउत्थो वग्गो समत्तो ।। २२-४ ।।

[१ प्र] भगवन् ! बेंगन, अल्लइ, बोंडइ (पोंडइ) इत्यादि वृक्षो के नाम प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद की गाथा के अनुसार जानना चाहिए, यावत् गजपाटला, दासि (वासी) अकोल्ल तक, इन सभी वृक्षो (पौधो) के मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! यहाँ भी मूल से लेकर बीज तक समग्ररूप से मूलादि दस उद्देशक (इक्कीसवे शतक चतुर्थ) वशवर्ग के समान जानने चाहिए।

।। बाईसवाँ शतक : चतुर्थ वर्ग समाप्त ।।

---

१ देखिये प्रज्ञापनासूत्र की ये गाथाएँ

वाइगणि-मल्लइ-थुडइ य तह कत्थुरी य जीभुमणा।

रूवी आढईणीली तुलसी तह माउलिंगी य ।। १८ ।।

इत्यादि यावत् –जीवइ केयइ तह गजपाडला दा (वा) सि अकोले ।। २२ ।। — प्रज्ञापना पद १, पत्र ३२-२

२. **अधिकपाठ** –तालवग्गा-सरिसा नेयव्वा

पंचमे 'गुम्म' वग्गो : दस उद्देसगा

पंचम 'गुल्म' वर्ग : दश उद्देशक

इक्कीसवें शतक के प्रथम वर्गानुसार पंचम गुल्मवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! सिरियक-णवमालिय-कोरटग-बधुजीवग-मणोज्जा, जहा पण्णवणाए पढमपए,[1] गाहाणुसारेणं जाव नलणीय-कुंद-महाजातीण, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति० ?

एवं एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा निरवसेसं जहा सालीणं (स० २१ व० १ उ० १-१०)।

॥ बावीसइमे सए : पंचमो वग्गो समत्तो ॥ २२-५ ॥

[१ प्र.] भगवन् ! सिरियक, नवमालिक, कोरटक, बन्धुजीवक, मणोज्ज, इत्यादि सब नाम प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद की गाथा के अनुसार नलिनी, कुन्द और महाजाति (तक जानने चाहिए,) इन सब पौधों के मूलरूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! यहाँ भी मूलादि समग्र दश उद्देशक (इक्कीसवें शतक के प्रथम) शालिवर्ग के समान (जानने चाहिए)।

॥ बाईसवाँ शतक : पंचम वर्ग समाप्त ॥

---

१. देखिये प्रज्ञापना पद १ की ये गाथाएँ —

सेण (सिरि) यए णोमालिय कोरटय-बधुजीवग-मणोज्जे ।
पिइय पाण कणयर कुंजय तह सिंदुवारे य ॥ २३ ॥
जाई-मोग्गर तह जूहिया य तह मल्लिया य वासंती ।
वत्थुल कत्थुल सेवाल गंठी मगदंतिया चेव ॥ २४ ॥
चंपक-जी (जा) ईं णीइया कुंदो तहा महाजाई ॥ —प्रज्ञापना पद १, पत्र ३२-२

छट्ठे 'वल्ली' वग्गो : दस उद्देसगा

छठा 'वल्ली' वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम तालवर्गानुसार छठे वल्लिवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! पूसफलि-कालिंगी-तुंबी-तउसी-एला-वालुंकी एवं पदाणि छिंदियव्वाणि पण्णवणागाहाणुसारेणं जहा तालवग्गे जाव दधिफोल्लइ[1]-काकलि-सोक्कलि-अक्कबोदीणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमंति० ?

एव मूलाईया दस उद्देसगा कायव्वा जहा तालवग्गे। नवर फलउद्देसे[2], ओगाहणाए जहन्नेणं अगुलस्स असखेज्जतिभाग, उक्कोसेण धणुपुहत्त; ठिती सव्वत्थ जहन्नेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेणं वासपुहत्त। सेस त चेव।

एव छसु वि वग्गेसु सट्ठि उद्देसगा भवति।

॥ बावीसइमे सए : छट्ठो वग्गो समत्तो ॥ २२-६ ॥

॥ बावीसतिम सयं समत्तं २२ ॥

[१ प्र] भगवन् ! पूसफलिका, कालिंगी (तरबूज की बेल), तुम्बी, त्रपुषी (ककडी), एला (इलायची), वालु की, इत्यादि वल्लीवाचक पद (नाम) प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद की गाथा के अनुसार अलग कर लेने चाहिए, फिर तालवर्ग के समान, यावत् दधिफोल्लइ, काकली (कागणी), सोक्कली और अर्कबोन्दी, इन सब वल्लियो (बेलो लताओ) के मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? ऐसा प्रश्न समझना चाहिए।

[१ उ] गौतम ! यहाँ भी तालवर्ग के समान मूल आदि दस उद्देशक कहने चाहिए। विशेष यह है कि फलोद्देशक मे फल की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट धनुष-पृथक्त्व की होती है। सब जगह स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वर्ष-पृथक्त्व की है। शेष सर्व पूर्ववत् है।

पाठान्तर— १. 'दहफुल्लइ कागणि-मोगली' २. 'फलउद्देसओ'

विवेचन—यहाँ वल्लियो के नाम-निर्देश प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद की छब्बीसवी गाथा से लेकर तीसवी गाथा तक मे इस प्रकार है—

पुसफली कालिगी तु बी तउसी य एलवालु की ।
घोसाडइ पडोला, पचगुली आयणीली य ।।२६।। यावत्
दधिफोल्लइ कागली सोगली य तह अक्कबोदी य ।।३०।।[1]

इस प्रकार इन छह वर्गों मे सब मिलाकर साठ उद्देशक होते है ।

।। बाईसवाँ शतक : छठा वर्ग समाप्त ।।

।। बाईसवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र पद १, पत्र ३३/१
(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी), भा. ६, पृ २९६५

तेवीसइमं सयं : तेईसवाँ शतक

तेईसवें शतक का मंगलाचरण

१. नमो सुयदेवयाए भगवतीए ।[1]

[१] भगवद्वाणीरूप श्रुतदेवता भगवती को नमस्कार हो ।

विवेचन—यह व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का मध्य-मगलाचरण प्रतीत होता है ।

तेईसवे शतक के पांच वर्गों के नाम तथा उसके पचास उद्देशकों का निरूपण

२. ग्रालुय १ लोही २ ग्रवए ३ पाढा ४ तह मासवण्णि वल्ली य ५ ।
पचेते दसवग्गा पण्णासं होंति उद्देसा ।। १ ।।

[२ गाथार्थ—] तेईसवे शतक मे दस-दस उद्देशको के पाच वर्ग ये है—(१) ग्रालुक, (२) लोही, (३) ग्रवक, (४) पाठा और (५) माषपर्णी वल्ली । इस प्रकार पाच वर्गों के पचास उद्देशक होते हैं ।। १ ।।

विवेचन—पांच वर्गों का सक्षिप्त परिचय—

(१) **प्रथम वर्ग—ग्रालुक** मे ग्रालू, मूला, ग्रार्द्रक, हल्दी ग्रादि साधारण वनस्पति के प्रकार सम्बन्धी मूलादि १० उद्देशक है ।

(२) **द्वितीय वर्ग —लोही**— मे लोही, नीहू, थीहू ग्रादि ग्रनन्तकायिक वनस्पति से सम्बन्धित दस उद्देशक है ।

(३) **तृतीय वर्ग —ग्राय** —मे ग्रवक ग्रादि वनस्पति सम्बन्धी दस उद्देशक है ।

(४) **चतुर्थ वर्ग—पाठा**—मे पाठा, मृगवालु की ग्रादि वनस्पति सम्बन्धी दस उद्देशक है ग्रौर

(५) **पचम वर्ग —माषपर्णी**— मे माषपर्णी ग्रादि वनस्पतियो से सम्बन्धित दश उद्देशक है । प्रत्येक वर्ग के दस-दस उद्देशक होने से इस शतक मे पाचो वर्गों के ५० उद्देशक होते है ।[2]

---

१ भगवतीसूत्र चतुर्थखण्ड (गुजराती ग्रनुवाद, प भगवानदासजी सम्पादित) प्रति मे (पृ १३६) यह मगलाचरण-पाठ नही है ।—स

२ भगवती. ग्र वृत्ति, पत्र ८०५

पढमे 'आलुय' वग्गो : दश उद्देसगा

प्रथम आलुक वर्ग : दश उद्देशक

इक्कीसवें शतक के चतुर्थवर्गानुसार प्रथम आलुकवर्ग का निरूपण

३. रायगिहे जाव एव वयासि—

[३] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

४. अह भंते ! आलुय-मूलग-सिंगबेर-हलिद्द-रुरु-कंडरिय-जारु-छीरबिरालि-किट्ठि-कुंदु-कण्हकडसु-मधुपयलइ-महुसिंगि-णेरुहा-सप्पसुगधा-छिन्नरुहा-बीयरुहाणं, एएसि णं जे जीवा मूलत्ताए वक्कमति० ? एव मूलाईया दस उद्देसगा कायव्वा वसवग्ग (स० २१ व० ४) सरिसा, नवर परिमाण जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा, असखेज्जा वा, अणता वा उववज्जति, अवहारो-गोयमा ! ते ण अणंता समये समये अवहीरमाणा अवहीरमाणा अणताहि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं एवतिकालेण अवहीरति, नो चेव ण अवहिया सिया, ठिती जहन्नेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त। सेस त चेव।

।। तेवीसइमे सए : पढमो वग्गो समत्तो ।। २३-१ ।।

[४ प्र] भगवन् ! आलू, मूला, अदरक (शृ गबेर), हल्दी, रुरु, कडरिक, जीरु, क्षीर-विराली (क्षीर विदारीकन्द), किट्ठि, कुन्दु, कृष्णकडसु, मधु, पयलइ, मधुशृ गी, निरुहा, सर्पसुगन्धा, छिन्नरुहा और बीजरुहा, इन सब (साधारण) वनस्पतियो के मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[४ उ] गौतम ! यहाँ (इक्कीसवे शतक के चतुर्थ) वशवर्ग के (दश उद्देशको के) समान मूलादि दस उद्देशक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इनके मूल के रूप मे जघन्य एक, दो या तीन, और उत्कृष्ट सख्यात, असख्यात और अनन्त जीव आकर उत्पन्न होते है। हे गौतम ! यदि एक-एक समय मे, एक-एक जीव का अपहार किया जाए तो अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक किये जाने पर भी उनका अपहार नही हो सकता, (यद्यपि ऐसा किसी ने किया नही और कोई कर भी नही सकता), क्योकि उनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है। शेष सब पूर्ववत्।

।। तेईसवाँ शतक : प्रथम वर्ग समाप्त ।।

❖❖

बिइए 'लोही' वग्गो : दस उद्देसगा

द्वितीय लोही वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम वर्गानुसार द्वितीय लोहीवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ![1] लोही-णीहू-थीहू-थीभगा-अस्सकण्णी-सीहकण्णी-सीउढी-मुसुंढीणं, एएसि णं जे जीवा मूल० ? एव एत्थ वि दस उद्देसगा जहेव आलुवग्गे, णवरं ओगाहणा तालवग्गसरिसा, सेस तं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भते ! त्ति० ।

॥ बितियो वग्गो समत्तो ॥ २३-२ ॥

[१ प्र] भगवन् ! लोही, नीहू, थीहू, थीभगा, अश्वकर्णी, सिहकर्णी, सीउढी और मुसुढी इन सब वनस्पतियो के मूल के रूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! आलुकवर्ग के समान यहाँ भी मूलादि दस उद्देशक (कहने चाहिए)। विशेष यह है कि इनकी अवगाहना तालवर्ग के समान है। शेष (सब कथन) पूर्ववत् (समझना चाहिए।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

॥ तेईसवाँ शतक : द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

---

१ पाठभेद— प्रज्ञापनासूत्र मे कुछ पदो मे पाठभेद है। यथा—

अवए पणए सेवाल लोहिणी, मिहूत्थिहूत्थिभागा ।

असकण्णी सीहकण्णी सिउढि तत्तो मुसुढी य ॥ ४३ ॥ —प्रज्ञापना पद १, पत्र ३४-२

तइए 'अवय' वग्गो : दस उद्देसगा

तृतीय अवकवर्ग : दश उद्देशक

प्रथम वर्गानुसार तृतीय अवकवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! आय[1]-काय-कुहुण-[2]-कु दुक्क[3]-उव्वेहलिय-सफा-सज्झा[4]-छत्ता-वसाणिय-कुराणं[5], एएसि ण जे जीवा मूलत्ताए० ? एवं एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा निरवसेसं जहा आलुवग्गो।[6]

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। ततिओ वग्गो समत्तो ।। २३-३ ।।

[१ प्र] भगवन् ! आय, काय, कुहणा, कुन्दुक्क, उव्वेहलिय, सफा, सज्झा, छत्ता, वशानिका और कुरा (अथवा कुमारी), इन वनस्पतियो के मूलरूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे कहा से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! यहाँ भी आलूवर्ग के मूलादि समग्र दस उद्देशक कहने चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि ।

।। तेईसवाँ शतक : तृतीय वर्ग समाप्त ।।

पाठान्तर—१ अवय कवय ।

२ 'कुहणा अणेगविहा प त —आए काए कुहणे कुणक्के दव्वहलिया, सफाए सज्झाए छत्तोए वसीण हिताकुरए।'

—प्रज्ञापना. प १, पत्र ३३-२

३ कु दुरुक्क तथा कुहुक्क ४ सज्जा ५. कुमाराण

६. अधिकपाठ—नवर ओगाहणा तालवग्गसरिसा । सेस त चेव ।

चउत्थे 'पाठा' वग्गो : दस उद्देसगा

चतुर्थ पाठा वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम वर्गानुसार चतुर्थ पाठावर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! पाढा-मियवालुंकि-मधुररस-रायवल्लि-पउम-मोढरि-दंति-चंडीण[1], एएसि णं जे जीवा मूल० ?

एवं एत्थ वि मूलाईया दस उद्देसगा आलुयवग्गसरिसा, नवरं ओगाहणा जहा वल्लीणं, सेसं तं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ तेवीसइमे सए : चउत्थो वग्गो समत्तो ॥२३-४ ॥

[१ प्र] भगवन् ! पाठा, मृगवालुंकी, मधुररसा, राजवल्ली, पद्मा, मोढरी, दन्ती और चण्डी, इन सब वनस्पतियों के मूल के रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहाँ से आते हैं ?

[१ उ] गौतम ! इस विषय में भी आलूवर्ग के समान मूलादि दश उद्देशक कहने चाहिए । विशेष यह है कि इनकी अवगाहना (२२वें शतक के छठे) वल्लीवर्ग के समान समझनी चाहिए । शेष सब वर्णन पूर्ववत् है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' इत्यादि ।

॥ तेईसवाँ शतक : चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥

---

१ **देखिये प्रज्ञापना. में**—पाढा मियवालुंकी महुररसा चेव रायवत्ती (ल्ली) य ।
पउमा माढरि दतीति चडीकिट्ठी त्ति यावरा । —प्रज्ञापना प १, पत्र ३४-२

पंचमे 'मासपण्णी' वग्गो : दस उद्देसगा

पचम माषपर्णी वर्ग : दश उद्देशक

प्रथम वर्गानुसार माषपर्णी नामक पंचमवर्ग का निरूपण

१. अह भंते ! मासपण्णी-मुग्गपण्णी-जीवग-सरिसव-करेणुया-काओलि-खीरकाओलि-भंगि-णहि-किमिरासि-भद्दमुत्थ-णंगलइ-[1]पयुयकिण्णा-पयोयलया-ढेहरेणुया-लोहीण,[2] एएसि णं जे जीवा मूल० ?

एवं एत्थ वि दस उद्देसगा निरवसेसं आलुयवग्गसरिसा ।

।। तेवीसइमे सए : पचमो वग्गो समत्तो ।। २३-५ ।।

[१ प्र] भगवन् ! माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवक, सरसव, करेणुका, काकोली, क्षीरकाकोली, भगी, णही, कृमिराशि, भद्रमुस्ता, लाँगली, पयोदकिण्णा, पयोदलता, (पाढहढ) हरेणुका और लोही, इन सब वनस्पतियो के मूलरूप मे जो जीव उत्पन्न होते है, वे कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] (गौतम !) यहाँ आलुकवर्ग के समान मूलादि दश उद्देशक समग्ररूप से कहने चाहिए ।

।। तेईसवाँ शतक पचम वर्ग समाप्त ।।

एवं एएसु पचसु वि वग्गेसु पण्णासं उद्देसगा भाणियव्व त्ति । सव्वत्थ देवा ण उववज्जति । तिन्नि लेसाओ ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। तेवीसतिम सयं समत्तं ।। २३ ।।

इस प्रकार इन पाचो वर्गों के कुल मिला कर (मूलादि) पचास उद्देशक कहने चाहिए । विशेष यह है कि इन पाचो वर्गों मे कथित वनस्पतियो के सभी स्थानो मे देव आकर उत्पन्न नही होते, इसलिए इन सब मे तीन लेश्याएँ जाननी चाहिए ।

१. **तुलना कीजिए**—मासपण्णि मुग्गपण्णी जीवय (व) रसहे य रेणुया चेव ।
काओली खीरकाओली तहा भगी नही इय ।। ४७ ।।
किमिरासी भद्दमुच्छा णगलइ पेलुया इय ।
किण्ह पउले य हढे हरतणुया चेव लोयाणी ।। ४८ ।।
कण्हे कदे वज्जे सूरणकदे तहेव खल्लूरे ।
एए अणतजीवा ज यावन्ने तहाविहा ।। ४९ ।। — प्रज्ञापना पद १, पत्र ३४-२

२ **पाठान्तर** 'पओयकिण्णा पउल पाढे-हरणुया ।'

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—पांचो वर्गों में बतलाई हुई वनस्पतियां प्राय: अप्रसिद्ध है। प्रज्ञापना के प्रथमपद मे इनका विस्तृत वर्णन तथा विवेचन है। जिज्ञासुओ को वही देखना चाहिए।

।। तेईसवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

चउवीसइमं सयं : चौवीसवाँ शतक

प्राथमिक

* यह व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का चौवीसवाँ शतक है।

* कतिपय दर्शनो का अभिमत है कि ईश्वर से प्रेरित होकर जीव स्वर्ग या नरक मे जाता है। वह चाहे तो जीव को कठोर दण्ड दे सकता है, जीव की गति-मति बदल सकता है। वही सांसारिक जीवो का कर्त्ता-धर्ता-हर्त्ता है। परन्तु जैनदर्शन कहता है कि सभी जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार चारो गतियो मे से किसी भी गति या योनि मे जाते है, उसको शरीर, इन्द्रिय, ज्ञान, अज्ञान, योग, उपयोग, लेश्या, वेद, सुख-दु ख-वेदन, आयुष्य, अध्यवसाय तथा अन्य साधन अपने-अपने शुभाशुभ कर्मो के अनुसार मिलते है।

* अवतार या तीर्थंकर कहलाने वाले महापुरुष भी पूर्वकृत कर्मो को भोगे बिना छूट नही सकते। बडे-बडे सत्ताधारी, धनपति, विद्यावान्, बलवान् भी कर्मों के चक्कर से छूट नही सकते। यह बात दूसरी है कि सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष कर्मो का फल भोगते समय समभाव से भोगते है, पुराने कर्मों का क्षय करते हैं, नये कर्मों को आने से या बधने से रोकते है। परन्तु जब तक कर्मो का—विशेषत घातीकर्मो का क्षय नही हो जाता, तब तक व्यक्ति ससार मे—चारो गतियो, विविध योनियो मे भ्रमण करता रहता है।

* प्राणिमात्र के प्रति परमवत्सल भगवान् महावीर ने यही तथ्य समझाने के लिए चौवीस उद्देशको से युक्त यह शतक प्ररूपित किया है। गणधर श्री गौतम स्वामी को लक्ष्य करके समस्त ससारी जीवो को, विशेषत मनुष्यो को परोक्ष रूप से यह सदबोध दिया है कि अगर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होना हो, उपपात आदि वीस बोलो से छुटकारा पाना हो तो इन सबके मूल शुभ-अशुभ कर्मो से मुक्त होने और ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप द्वारा आत्मशुद्धि करने तथा आत्मस्वरूप मे रमण करने का प्रयत्न करो।

* इसी उद्देश्य से प्रस्तुत शतक मे चौवीस दण्डकवर्ती समस्त सासारिक जीवो को लेकर २० द्वारो के माध्यम से शुभाशुभ कर्मजन्य वीस बोलो का निरूपण किया गया है। प्रत्येक दण्डक के अनुसार एक-एक उद्देशक की रचना की गई है। प्रत्येक दण्डकवर्ती जीव के साथ २० बोलो का कथन किया गया है। नि सदेह आत्महितैषी मुमुक्षु जीवो के लिए प्रत्येक उद्देशक मननीय है। जब तक शरीर है, तब तक कुछ शुभ तत्त्व इनमे से कथचित् उपादेय भी है।

* वीस द्वार इस प्रकार है—(१) उपपात, (२) परिमाण, (३) सहनन, (४) ऊँचाई (अवगाहना), (५) सस्थान, (६) लेश्या, (७) दृष्टि, (८) ज्ञान, अज्ञान, (९) योग, (१०) उपयोग। (११)

सज्ञा, (१२) कषाय, (१३) इन्द्रिय, (१४) समुद्घात, (१५) वेदना, (१६) वेद, (१७) आयुष्य, (१८) अध्यवसाय, (१९) अनुबन्ध और (२०) कायसवेध।[1]

* चौवीस दण्डक इस प्रकार है—(१) सात नरक पृथ्वियो का एक दण्डक, (२-११) असुरकुमार आदि १० भवनवासी देवो के १० दण्डक, (१२-१६) पाच स्थावरो के पाच दण्डक, (१७-१९) तीन विकलेन्द्रियो के तीन दण्डक, (२०) तिर्यञ्चपचेन्द्रिय का एक दण्डक, (२१) मनुष्य का एक दण्डक, (२२) वाणव्यन्तर देव का एक दण्डक, (२३) ज्योतिष्क देव का एक दण्डक और (२४) वैमानिक देव का एक दण्डक।[2]

* उपपात का अर्थ है—नैरयिकादि कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

* परिमाण का अर्थ है - नैरयिकादि मे उत्पन्न होने वाले जीवो की सख्या। सहनन का अर्थ है—शरीर की अस्थियो आदि की रचना। सस्थान—आकृति, डीलडौल। उच्चत्व—शरीर की ऊँचाई। लेश्या—कृष्णादि द्रव्यो के सान्निध्य से आत्मा मे उत्पन्न हुआ शुभाशुभ परिणाम। अथवा एक प्रकार की दीप्ति। दृष्टि का अर्थ है दर्शन (सम्यक् या मिथ्या बुद्धि) ज्ञान, अज्ञान, इन्द्रिय वेदना आदि प्रसिद्ध है। योग -मन-वचन-काया का व्यापार (प्रवृत्ति)। उपयोग—ज्ञान-दर्शनरूप व्यापार (या ध्यान)। सज्ञा—आहार आदि की अभिलाषा या बुद्धि। कषाय—क्रोध-मान-माया-लोभरूप वृत्ति, क्रोधादि का रस-विशेष। समुद्घात का अर्थ है—जिस समय आत्मा वेदना, कषाय आदि से परिणत होता है, उस समय वह अपने कतिपय प्रदेशो को शरीर से बाहर निकाल करके उन प्रदेशो से वेदनीय-कषायादि कर्मप्रदेशो की जो निर्जरा करता है, वह। वेद का अर्थ है मोहनीयकर्म का एक भेद, जिसके उदय से मैथुन की इच्छा होती है। आयुष्य का अर्थ है—किसी पर्याय मे जीवित रहने का कारणभूत कर्म। अध्यवसाय का अर्थ है, आत्मा का शुभाशुभ परिणाम, विचार या मानसिक सकल्प। अनुबन्ध का अर्थ है—विवक्षित पर्याय से अविच्छिन्न रहना। कायसवेध का अर्थ है—विवक्षित काय से कायान्तर (दूसरी काय) या तुल्यकाय मे जाकर पुन यथासम्भव उसी काया मे आना। निष्कर्ष यह है कि ये सब जीव के शरीर, मन, वचन आदि से सम्बद्ध एव कर्मजन्य विविध परिणतियाँ हैं, जो जन्म-मरण के साथ लगी हुई है।

* कुल मिलाकर इसमे आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान का सार भरा हुआ है, जिससे प्रेरणा लेकर मुमुक्षु भव्य साधक अपने आत्मकल्याण का पथ आसानी से पकड सकता है।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ९०४ से ९६८

२ दण्डकप्रकरण

चउवीसतिमं सयं : चौवीसवाँ शतक

चौवीसवें शतक के चौवीसदण्डकीय चौवीस उद्देशकों में उपपात आदि वीस द्वारों का निरूपण

१. उववाय १ परीमाण २ संघयणुच्चत्तमेव ३-४ संठाण ५।
लेस्सा ६ दिट्ठी ७ णाणे अण्णाणे ८ जोग ९ उवओगे १० ॥१॥
सण्णा ११ कसाय १२ इंदिय १३ समुग्घाए १४ वेदणा १५ य वेदे १६ य।
आउ १७ अज्झवसाणा १८ अणुबंधो १९ कायसंवेहो २० ॥२॥
जीवपए जीवपए जीवाण दंडगम्मि उद्देसो।
चउवीसतिमम्मि सए चउवीस होंति उद्देसा ॥३॥

[१ गाथार्थ—] चौवीसवें शतक मे चौवीस उद्देशक इस प्रकार है—(१) उपपात, (२) परिमाण, (३) सहनन, (४) उच्चता (ऊँचाई), (५) संस्थान, (६) लेश्या, (७) दृष्टि, (८) ज्ञान, अज्ञान, (९) योग, (१०) उपयोग, (११) संज्ञा, (१२) कषाय, (१३) इन्द्रिय, (१४) समुद्घात, (१५) वेदना, (१६) वेद, (१७) आयुष्य, (१८) अध्यवसाय, (१९) अनुबन्ध, (२०) काय-संवेध ॥१-२॥ ये वीस द्वार है।

यह सब विषय चौवीस दण्डक मे से प्रत्येक जीवपद मे कहे जायेंगे। [अर्थात्—प्रत्येक दण्डक पर ये वीस द्वार कहे जायेंगे।] इस प्रकार चौवीसवें शतक मे चौवीस दण्डक-सम्बन्धी चौवीस उद्देशक कहे जायेंगे।

विवेचन—उपपात आदि वीस द्वारो का अर्थ (१) **उपपात** नैरयिक आदि कहाँ से आकर उत्पन्न होते है?, (२) **परिमाण**—नैरयिकादि मे जो जीव उत्पन्न होते है, उन मे उत्पद्यमान जीवो का परिमाण (गणना), (३ से १८ तक) संहनन से लेकर अध्यवसाय तक का अर्थ स्पष्ट है। (१९) **अनुबन्ध** - विवक्षित पर्याय से अविच्छिन्न रहना। (२०) **कायसंवेध**—विवक्षित काया से कायान्तर (दूसरी काया) मे अथवा तुल्यकाया मे जाकर पुन यथासम्भव उसी काया मे आना।[1]

इन वीस द्वारो मे से पहला-दूसरा द्वार तो जीव जहाँ उत्पन्न होता है, उस स्थान की अपेक्षा से है। तीसरे से उन्नीसवें तक सत्रह द्वार, उत्पन्न होने वाले जीव के उस भव-सम्बन्धी है और वीसवाँ द्वार दोनो भव-सम्बन्धी सम्मिलित है।[2]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८०८
(ख) भगवती विवेचन (प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २९७५

२ वही, भाग ६, पृ २९७५

पढमो नेरइय-उद्देसओ

प्रथम उद्देशक : नैरयिक का उपपात

गति की अपेक्षा से नैरयिकादि-उपपात-निरूपण

२. रायगिहे जाव एव वयासि--

[२] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा-

३. [१] नेरइया ण भते ! कम्रोहितो उववज्जंति? कि नेरइएहितो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति, मणुस्सेहितो उववज्जति, देवेहितो उववज्जति ?

गोयमा ! नो नेरइएहितो उववज्जति, तिरिक्खजोणिएहितो वि उववज्जति, मणुस्सेहितो वि उववज्जति, नो देवेहितो उववज्जति।

[३-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से उत्पन्न होते है, या तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, मनुष्यो से उत्पन्न होते है, अथवा देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[३-१ उ] गौतम ! वे नैरयिको से आकर उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, मनुष्यो से भी उत्पन्न होते है, (परन्तु) देवो मे आकर उत्पन्न नही होते है।

[२] जति तिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति कि एगिदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति, बेइदियतिरिक्ख०, तेइदियतिरिक्ख०, चउरिदियतिरिक्ख०, पचेदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! नो एगिदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति, नो बेइदिय० नो तेइदिय०, नो चउरिदिय०, पचेदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति।

[३-२ प्र.] (भगवन् !) यदि (नैरयिकजीव) तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है तो क्या वे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है, या द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से, त्रीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से, चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से, अथवा पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है ?

[३-२ उ] गौतम ! वे न तो एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है और न द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से, न त्रीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से और न चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है।

[३] जति पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, असन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, असन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

[३-३ प्र] भगवन् ! यदि वे पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है तो क्या सज्ञी-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है, या असज्ञी-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है।

[३-३ उ] गौतम ! वे सज्ञी-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से भी आकर उत्पन्न होते है, असज्ञी-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से भी आकर उत्पन्न होते है।

[४] जति सन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं जलचरेहिंतो उववज्जति, थलचरेहिंतो उववज्जति, खहचरेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! जलचरेहिंतो वि उववज्जति, थलचरेहिंतो वि उववज्जति, खहचरेहिंतो वि उववज्जंति।

[३-४ प्र] भगवन् ! यदि वे [नैरयिक] सज्ञी-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या जलचरो से उत्पन्न होते है, या स्थलचरो से अथवा खेचरो से आकर उत्पन्न होते है ?

[३-४ उ.] गौतम ! वे जलचरो से भी आकर उत्पन्न होते है, स्थलचरो से भी तथा खेचरो से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

[५] जति जलचर-थलचर-खहचरेहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जति ?

[३-५ प्र] (भगवन् !) यदि वे जलचर, स्थलचर और खेचर जीवो से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या पर्याप्त (जलचरादि) से अथवा अपर्याप्त (जलचरादि) से आकर उत्पन्न होते है ?

[३-५ उ] गौतम ! वे पर्याप्त (जलचरादि) से (आकर) उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्त (जलचरादि) से (आकर) उत्पन्न नही होते।

विवेचन—निष्कर्ष—द्वितीय सूत्र मे पूछा गया है कि क्या नैरयिक जीव चार गतियो मे से आकर (नरक मे) उत्पन्न होते है ? इसके उत्तर मे कहा गया है कि वे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति से आकर उत्पन्न होते है। इसके पश्चात् तीसरे सूत्र के पाच विभागो के प्रश्नो का उत्तर है—वे तिर्यञ्चगति मे से आकर उत्पन्न होते हैं तो सिर्फ पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिको से और उनमें भी जलचर, स्थलचर और खेचर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवो से आकर उत्पन्न होते है।[1]

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ९०४-९०५

प्रथम नरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच के विषय में उपपात आदि बीस द्वारों की प्ररूपणा

४. पज्जत्ताअसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसु पुढवीसु उववज्जेज्जा ।

गोयमा ! एगाए रयणप्पभाए पुढवीए उववज्जेज्जा ।

[४ प्र] भगवन् ! पर्याप्त असंज्ञी पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव, जो नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितनी नरक-पृथ्वियो मे उत्पन्न होता है ?

[४ उ] गौतम ! वह एक रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है ।

५. पज्जत्ताअसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भंते ! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[५ प्र] भगवन् ! पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव, जो रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों मे उत्पन्न होता है ?

[५ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ।

६. ते ण भंते ! जीवा एगसमएण केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा, असखेज्जा वा उववज्जंति ।

[६ प्र] भगवन् ! वे (पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक) जीव (रत्नप्रभापृथ्वी मे) एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[६ उ] गौतम ! वे (एक समय मे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है ।

७. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किंसंघयणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सेवट्टसघयणा पन्नत्ता ।

[७ प्र] भगवन् ! उनके शरीर किस सहनन वाले होते है ?

[७ उ] गौतम ! वे सेवार्त्तसहनन वाले होते है ।

८. तेसि णं भंते ! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं ।

[८ प्र.] भगवन् ! उन जीवो के शरीर की अवगाहना कितनी बडी होती है ?

[८ उ.] गौतम ! (उनके शरीर की अवगाहना) जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट एक हजार योजन की होती है।

९. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किंसंठिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! हुंडसठाणसंठिया पन्नत्ता।

[९ प्र.] भगवन् ! उनके शरीर का संस्थान कौन-सा कहा गया है ?

[९ उ.] गौतम ! उनके हुण्डकसंस्थान होता है।

१०. तेसि णं भंते ! जीवाणं कति लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! तिन्नि लेस्साओ पन्नत्ताओ, तं जहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा।

[१० प्र.] भगवन् ! उन जीवों के कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

[१० उ.] गौतम ! उनके (आदि की) तीन लेश्याएँ कही गई हैं कृष्ण, नील, कापोत।

११. ते णं भंते ! जीवा किं सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी ?

गोयमा ! नो सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी।

[११ प्र.] भगवन् ! वे जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं, मिथ्यादृष्टि होते हैं अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं ?

[११ उ.] गौतम ! वे सम्यग्दृष्टि नहीं होते, मिथ्यादृष्टि होते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते हैं।

१२. ते णं भंते जीवा किं नाणी, अन्नाणी ?

गोयमा ! नो नाणी, अन्नाणी, नियमं दुअन्नाणी, तं जहा—मतिअन्नाणी य सुयअन्नाणी य।

[१२ प्र.] भगवन् ! वे जीव ज्ञानी होते हैं या अज्ञानी होते हैं ?

[१२ उ.] गौतम ! वे ज्ञानी नहीं होते, अज्ञानी होते हैं, उनके अवश्य दो अज्ञान होते हैं, यथा—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

१३. ते णं भंते ! जीवा किं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी ?

गोयमा ! नो मणजोगी, वइजोगी वि, कायजोगी वि।

[१३ प्र.] भगवन् ! वे जीव मनोयोगी होते हैं, या वचनयोगी अथवा काययोगी होते हैं ?

[१३ उ.] गौतम ! वे मनोयोगी नहीं, (किन्तु) वचनयोगी और काययोगी होते हैं।

१४. ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! सागारोवउत्ता वि, अणागारोवउत्ता वि।

[१४ प्र.] भगवन् ! वे जीव साकारोपयोग वाले हैं या अनाकारोपयोग-युक्त हैं ?

[१४ उ.] गौतम ! वे साकारोपयोग-युक्त भी होते हैं और अनाकारोपयोग-युक्त भी होते हैं।

१५. तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सन्नाओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि सन्नाओ पन्नत्ताओ, तं जहा—आहारसण्णा भयसण्णा मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा ।

[१५ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितनी सज्ञाए कही गई हैं ?

[१५ उ] गौतम ! उनके चार सज्ञाए कही गई है, यथा—आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा और परिग्रहसज्ञा ।

१६. तेसि णं भंते ! जीवाणं कति कसाया पन्नत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि कसाया पन्नत्ता, तं जहा- कोहकसाये माणकसाये मायाकसाये लोभकसाये ।

[१६ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितने कषाय होते है ?

[१६ उ] गौतम ! उनके चार कषाय होते है, यथा—क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय ।

१७. तेसि ण भंते ! जीवाण कति इंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंच इंदिया पन्नत्ता, तं जहा—सोतिंदिए चक्खिदिए जाव फासिंदिए ।

[१७ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितनी इन्द्रियाँ कही गई है ?

[१७ उ] गौतम ! उनके पांच इन्द्रियाँ कही है, यथा—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, यावत् स्पर्शन्द्रिय ।

१८ तेसि ण भंते ! जीवाणं कति समुग्घाया पन्नत्ता ?

गोयमा! तओ समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणतियसमुग्घाए ।

[१८ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितने समुद्घात कहे है ?

[१८ उ] गौतम ! उनके तीन समुद्घात कहे है, यथा—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात ।

१९. ते णं भंते जीवा किं सायावेदगा, असायावेदगा ?

गोयमा ! सायावेदगा वि, असातावेदगा वि ।

[१९ प्र] भगवन् ! वे जीव साता-वेदक है या असाता-वेदक है ?

[१९ उ] गौतम ! वे सातावेदक भी है और असातावेदक भी है ।

२०. ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेदगा, पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा ?

गोयमा ! नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा ।

[२० प्र] भगवन् ! वे जीव स्त्रीवेदक है, पुरुषवेदक है या नपुसकवेदक है ?

[२० उ] गौतम ! वे न तो स्त्रीवेदक होते है और न ही पुरुषवेदक होते है, किन्तु नपुसकवेदक है ।

२१. तेसि णं भंते ! जीवाण केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[२१ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितने काल की स्थिति कही है ?

[२१ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

२२. तेसि णं भंते ! जीवाणं केवतिया अज्झवसाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पन्नत्ता ।

[२२ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितने अध्यवसाय-स्थान कहे हे ?

[२२ उ] गौतम ! उनके अध्यवसाय-स्थान असख्यात है ?

२३ ते ण भते ! किं पसत्था, अप्पसत्था ?

गोयमा ! पसत्था वि, अप्पसत्था वि ।

[२३ प्र] भगवन् ! उनके वे अध्यवसाय-स्थान प्रशस्त होते है या अप्रशस्त होते है ?

[२३ उ] गौतम ! वे प्रशस्त भी होते है और अप्रशस्त भी होते है ।

२४ से ण भते ! 'पज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिये' इति कालओ केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी ।

[२४ प्र] भगवन् ! वे जीव पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकरूप मे कितने काल तक रहते है ?

[२४ उ] गौतम ! वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पूर्वकोटि तक (उस अवस्था मे) रहते है ।

२५. से ण भते ! 'पज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए रयणप्पभापुढविनेरइए पुणरवि 'पज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए' त्ति केवतिय काल सेवेज्जा ?, केवतिय काल गतिरागति करेज्जा ?

गोयमा ! भवादेसेण दो भवग्गहणाइं; कालाएसेण जहन्नेण दस वाससहस्साइ अतोमुहुत्त-मब्भहियाइ, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जतिभाग पुव्वकोडिमब्भहिय; एवतियं काल सेवेज्जा, एवतियं काल गतिरागति करेज्जा । [सु० ५ २५ पढमो गमओ] ।

[२५ प्र] भगवन् ! वे जीव पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव हो, फिर रत्नप्रभापृथ्वी मे नैरयिकरूप से उत्पन्न हो और पुन (उसी) पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिक हो, यो कितना काल सेवन (व्यतीत) करते है और कितने काल तक गति-आगति (गमनागमन) करते है ?

[२५ उ] गौतम ! वे भवादेश (भव की अपेक्षा) मे दो भव और कालादेश (काल की अपेक्षा) मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग, इतना काल सेवन (व्यतीत) करते है और इतने काल तक गमनागमन करते रहते है । [सू ५ से २५ तक प्रथम गमक]

२६. पज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए जहन्नकालट्ठितीएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठितीयेसु उववज्जेज्जा।

[२६ प्र] भगवन् ! पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, जो जघन्यकाल-स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों मे उत्पन्न होने योग्य हो, तो हे भगवन् ! वे कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों मे उत्पन्न होते है ?

[२६ उ] गौतम ! वे जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होते है।

२७. ते ण भते ! जीवा एगसमएण केवतिया उववज्जति ?

एवं स च्चेव वत्तव्वता निरवसेसा भाणियव्वा जाव अणुबधो त्ति।

[२७ प्र] भगवन् ! वे (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[२७ उ] गौतम ! पूर्वकथित समग्र वक्तव्यता, यावत् अनुबन्ध (सू. ५ से २४) तक इसी प्रकार (पूर्ववत्) कह देनी चाहिए।

२८. से णं भते ! पज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नकालट्ठितीयरयणप्पभापुढविणेरइए, पुणरवि [जहण्णकाल०] पज्जत्ताअसण्णि० जाव गतिरागति करेज्जा ?

गोयमा ! भवादेसेण दो भवग्गहणाइ, कालाएसेण जहन्नेण दसवाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण पुव्वकोडी दसहि वाससहस्सेहि अब्भहिया, एवतिय काल सेवेज्जा, एवतिय काल गतिरागति करेज्जा। [सु० २६ — २८ बीओ गमओ]।

[२८ प्र] भगवन् ! वे जीव पर्याप्त-असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो, फिर जघन्य काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नरयिको मे उत्पन्न हो और पुन पर्याप्त-असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो तो यावत् (कितना काल सेवन—व्यतीत करते है और) कितने काल तक गति-आगति (गमनागमन) करते है ?

[२८ उ] गौतम ! वे भवादेश (भव की अपेक्षा) से दो भव ग्रहण करते है, और कालादेश (काल की अपेक्षा) से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि काल सेवन करते है और इतने काल तक गमनागमन करते है। [सू २६ से २८ तक द्वितीय गमक]

२९. पज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! जे भविए उक्कोसकालट्ठितीयेसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से णं भते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण पलिओवमस्स असखेज्जतिभागट्ठितीएसु उववज्जेज्जा, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असखेज्जतिभागट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[२९ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, रत्नप्रभा मे उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य हो, तो वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[२९ उ.] गौतम ! वह जघन्य पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिको मे और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ।

३०. ते ण भंते ! जीवा० ?

अवसेस तं चेव जाव अणुबंधो ।

[३० प्र.] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[३० उ] गौतम ! पूर्ववत् (सू. ६ से २४ तक के समान) समग्र वक्तव्यता अनुबन्ध पर्यन्त जानना चाहिए ।

३१. से णं भंते ! पज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठितीयरयणप्पभापुढविनेरइए [उक्कोस०][1] पुणरवि पज्जत्ता० जाव करेज्जा ?

गोयमा ! भवाएसेण दो भवग्गहणाइं; कालादेसेण जहन्नेण पलिओवमस्स असखेज्जतिभागं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जतिभाग पुव्वकोडिअब्भहिय, एवतिय कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा । [सु० २९—३१ तइओ गमओ] ।

[३१ प्र] भगवन् ! वह जीव, पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो, फिर उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो और पुन पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो तो वह (कितना काल सेवन करता है और कितने काल तक) गमनागमन करता रहता है ?

[३१ उ] गौतम ! भवादेश से (भवापेक्षया) दो भव ग्रहण करता है और काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग, इतना काल सेवन करता है और इतने काल तक गमनागमन करता है। [सू २९ से ३१ तक तृतीय गमक]

३२ जहन्नकालट्ठितीयपज्जत्ताअसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण वसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जतिभागट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[३२ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

---

१ [ ] इस कोष्ठक के अन्तर्गत पाठ अन्य प्रतियो मे नही है । —स

[३२ उ.] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिकों मे उत्पन्न होता है।

३३. [१] ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केव० ?

अवसेसं तं चेव, णवरं इमाइं तिन्नि णाणत्ताइं—आउ अज्झवसाणा अणुबंधो य। ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३३-१ प्र.] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३३-१ उ] गौतम ! (यहाँ से लेकर अनुबन्ध तक) समस्त (आलापक) पूर्ववत् समझना चाहिए। विशेषत. आयु (स्थिति), अध्यवसाय और अनुबन्ध, इन तीन बातो मे अन्तर है, यथा—स्थिति (आयुष्य) जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

[२] तेसि णं भंते ! जीवाणं केवतिया अज्झवसाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा अज्झवसाणा पन्नत्ता।

[३३-२ प्र] भगवन् ! उन जीवो के अध्यवसाय कितने कहे है ?

[३३-२ उ] गौतम ! उनके अध्यवसाय असख्यात कहे है।

[३] ते ण भंते ! किं पसत्था, अप्पसत्था ?

गोयमा ! नो पसत्था, अप्पसत्था।

[३३-३ प्र] भगवन् ! (उनके) वे (अध्यवसाय) प्रशस्त होते है, या अप्रशस्त होते है ?

[३३-३ उ] गौतम ! वे प्रशस्त नही होते, अप्रशस्त होते हैं।

[४] अणुबधो अंतोमुहुत्तं। सेस त चेव।

[३३-४ उ] उनका अनुबन्ध (जघन्यकाल स्थिति वाले, पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक रूप मे) अन्तर्मुहूर्त तक रहता है। शेष सब कथन पूर्ववत् है।

३४ से ण भंते ! जहन्नकालट्ठितीयपज्जत्ताअसन्निपचेंदिय० रयणप्पभा० जाव करेज्जा ?

गोयमा ! भवाएसेण दो भवग्गहणाइ; कालादेसेणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जतिभागं अतोमुहुत्तमब्भहियं, एवतिय कालं सेविज्जा जाव करेज्जा। [सु० ३२—३४ चउत्थो गमओ]।

[३४ प्र] भगवन् ! वह जोव, जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिक हो, (फिर) रत्नप्रभापृथ्वी मे यावत् (नैरयिकरूप से उत्पन्न हो, और पुन जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक रूप मे उत्पन्न हो, तो वह कितना काल सेवन करता है और कितने काल तक गमनागमन) करता रहता है ?

[३४ उ] गौतम ! वह भवादेश से दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त-अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त-अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग

काल सेवन करता है, यावत् (इतने काल तक गमनागमन) करता है। [सू ३२ से ३४ तक चतुर्थ गमक]

३५. जहन्नकालट्ठितीयपज्जत्ताग्रसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भंते ! जे भविए जहन्नकालट्ठितीएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु उववज्जेज्जा, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[३५ प्र] भगवन् ! जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिक जो जीव जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य हो, भगवन् ! वह जीव कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[३५ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

३६. ते ण भते ! जीवा० ?

सेसं त चेव। ताइ चेव तिन्नि णाणत्ताइ जाव—(अणुबंधो)।

[३६ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[३६ उ] (गौतम !) यहाँ से लेकर अनुबन्ध तक पूर्ववत् (सू ६ से २४ तक) समझना चाहिए।

विशेषत उन्ही (पूर्वोक्त) तीन बातो (आयु-स्थिति, अध्यवसाय और अनुबन्ध) मे अन्तर है। (जिसे पूर्वकथित) यावत् (अनुबन्ध तक सू ३३/१-२-३-४ सूत्रवत् जानना चाहिए।)

३७. से णं भंते ! जहन्नकालट्ठितीयपज्जत्ता० जाव जोणिए जहन्नकालट्ठितीयरयणप्पभापुढवि० पुणरवि जाव ?

गोयमा ! भवाएसेणं दो भवग्गहणाइ; कालाएसेण जहन्नेण दसवाससहस्साइ अंतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण वि दसवाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइ, एवइय काल सेवेज्जा जाव करेज्जा। [सु० ३५—३७ पचमो गमग्रो]।

[३७ प्र] भगवन् ! जो जीव, जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो, फिर वह जघन्यस्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न हो, और पुन वह पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो तो, कितना काल सेवन करता है और कितने काल तक गमनागमन करता रहता है ?

[३७ उ] गौतम ! भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष काल सेवन करता है, यावत् (और इतने काल तक गमनागमन) करता है। [सू ३५ से ३७ तक पचम गमक]

३८. जहन्नकालट्ठितीयपज्जत्ता० जाव तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए उक्कोसकालट्ठितीएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं पलिश्रोवमस्स असंखेज्जतिभागट्ठितीएसु उववज्जेज्जा, उक्कोसेण वि पलिश्रोवमस्स असंखेज्जतिभागट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[३८ प्र] भगवन् ! जघन्यकाल की स्थिति वाला, पर्याप्त असंज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, जो रत्नप्रभापृथ्वी के उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[३८ उ] गौतम ! वह जघन्य पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

३९. ते ण भंते जीवा० ?

अवसेस त चेव। ताइं चेव तिन्नि नाणत्ताइं जाव—(अणुबंधो)।

[३९ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[३९ उ] गौतम ! (यह सब सू ६ से २४ तक के समान) पूर्ववत्। विशेषत उन्ही (पूर्वोक्त) तीन बातो (आयु, अध्यवसाय और अनुबन्ध) मे अन्तर है। जिसे पूर्वकथित अनुबन्ध तक सूत्र ३३/१-२-३-४ के समान जानना चाहिए।

४०. से णं भते ! जहन्नकालट्ठितीयपज्जत्ता जाव तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठितीयरयण० जाव करेज्जा ?

गोयमा ! भवाएसेण दो भवग्गहणाइ, कालाएसेण जहन्नेणं पलिश्रोवमस्स असंखेज्जतिभागं अतोमुहुत्तमब्भहियं; उक्कोसेण वि पलिश्रोवमस्स असंखेज्जतिभागं अतोमुहुत्तमब्भहियं, एवतिय कालं जाव करेज्जा। [सु० ३८ ४० छट्ठो गमओ]।

[४० प्र] भगवन् ! वह जीव, जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक हो, फिर वह उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे यावत् उत्पन्न हो और पुन पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो तो, वह कितना काल सेवन करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है ?

[४० उ] गौतम ! भवादेश मे (वह) दो भव ग्रहण करता है और कालादेश मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग तथा उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग काल यावत् (सेवन करता है और इतने काल तक गमनागमन) करता है। [सू ३८ से ४० तक छठा गमक]

४१. उक्कोसकालट्ठितीयपज्जत्ताअसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवतिकालं जाव उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण पलिश्रोवमस्स असंखेज्जतिभाग जाव उववज्जेज्जा।

[४१ प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त-असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जो जीव, रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य है, भते ! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[४१ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले (नैरयिको मे) उत्पन्न होता है, (और) उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

४२. ते ण भते ! जीवा एगसमएणं० ?

अवसेसं जहेव ओहियगमए तहेव अणुगंतव्वं, नवरं इमाइ दोन्नि नाणत्ताइ--ठिती जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी। एवं अणुबधो वि। अवसेसं तं चेव।

[४२ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? (इत्यादि प्रश्न।)

[४२ उ] गौतम ! सारी वक्तव्यता पूर्वोक्त औघिक (सामान्य) (सू ६ से २५ तक) के अनुसार जाननी चाहिए। किन्तु इन दो बातो (स्थिति और अनुबन्ध) मे अन्तर है। (यथा--) स्थिति—जघन्य पूर्वकोटि वर्ष की और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष की है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी है। शेष सब पूर्ववत् (जानना चाहिए।)

४३. से णं भंते ! उक्कोसकालट्ठितीयपज्जत्ताअसन्नि० जाव तिरिक्खजोणिए रतणप्पभा० ?

भवाएसेणं दो भवग्गहणाइं; कालाएसेण जहन्नेण पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडीए अब्भहियं; एवतिय जाव करेज्जा। [सु० ४१ ४३ सत्तमो गमओ]।

[४३ प्र] भगवन् ! वह जीव, उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञी०--यावत् (पचेन्द्रिय-) तिर्यञ्चयोनिक हो, (फिर) रत्नप्रभापृथ्वी (के नैरयिको मे उत्पन्न हो, और पुन उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक हो तो वह वहाँ कितने काल तक यावत् (सेवन एव गमनागमन करता है ?)

[४३ उ] गौतम ! वह भवादेश से दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू ४१ से ४३ तक सप्तम गमक]

४४ उक्कोसकालट्ठितीयपज्जत्ता० तिरिक्खजोणिए० ण भते ! जे भविए जहन्नकालट्ठितीएसु रयण जाव उववज्जित्तए से ण भते ! केवति० जाव उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठितीएसु उववज्जेजा।

[४४ प्र] भगवन् ! उत्कृष्टकाल की स्थिति वाला पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जो जीव जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभा के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[४४ उ] गौतम ! वह जघन्य और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिको में उत्पन्न होता है ।

४५. ते णं भंते ! ० ?

सेसं तं चेव जहा—सत्तमगमे जाव—(अणुबंधो) ।

[४५ प्र] भगवन् ! वे जीव एकसमय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

[४५ उ] गौतम ! जैसे सप्तम गमक मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी अनुबन्ध तक (जानना चाहिए ।)

४६. से णं भते ! उक्कोसकालट्ठिती० जाव तिरिक्खजोणिए जहन्नकालट्ठितीयरयणप्पभा० जाव करेज्जा ?

गोयमा ! भवाएसेण दो भवग्गहणाइं; कालाएसेण जहन्नेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी दसहि वाससहस्सेहिं अब्भहिया; एवतियं जाव करेज्जा । [सु० ४४—४६ अट्ठमो गमओ] ।

[४६ प्र] भगवन् ! जो जीव उत्कृष्टकाल की स्थिति वाला यावत् पचेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिक हो, फिर वह जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो और पुन वही पर्याप्त० हो यावत् तो वह कितना काल सेवन तथा गमनागमन करता है ?

[४६ उ] गौतम ! वह भवादेश से दो भव ग्रहण करता है तथा कालादेश से जघन्य और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटिवर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है । [सू. ४४ से ४६ तक अष्टम गमक]

४७. उक्कोसकालट्ठितीयपज्जत्ता० जाव तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए उक्कोसकाल-ट्ठितीएसु रयण० जाव उववज्जित्तए से ण भते ! केवतिकाल० जाव उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण पलिओवमस्स असंखज्जतिभागट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असखेज्जतिभागट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[४७ प्र] भगवन् ! उत्कृष्टकाल की स्थिति वाला पर्याप्त० यावत् तिर्यञ्चयोनिक जो जीव, रत्नप्रभापृथ्वी के उत्कृष्टस्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य हो तो भगवन् ! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[४७ उ] गौतम ! वह जघन्य पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ।

४८. ते णं भते ! जीवा एगसमएणं० ?

सेसं जहा सत्तमगमए जाव—(अणुबंधो) ।

[४८ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[४८ उ.] गौतम ! पूर्ववत् यावत् (अनुबन्ध तक) सभी (आलापक) सप्तम गमक के अनुसार (समझने चाहिए।)

४९ से णं भंते ! उक्कोसकालट्ठितीयपज्जत्ता० जाव तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठितीयरयणप्पभा० जाव करेज्जा ?

गोयमा ! भवाएसेणं दो भवग्गहणाइं; कालाएसेणं जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पुव्वकोडीए अब्भहियं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागं पुव्वकोडिमब्भहियं; एवतियं कालं सेवेज्जा जाव करेज्जा। [सु० ४७—४९ नवमो गमओ]।

[४९ प्र.] भगवन् ! वह जीव, उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त यावत् (पचेन्द्रिय) तिर्यञ्चयोनिक हो, फिर वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में (उत्पन्न हो और पुन) यावत् उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक मे हो तो (कितना काल सेवन एव गमनागमन) करता है ?

[४९ उ.] गौतम ! भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है तथा कालादेश से जघन्य पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग, इतना काल सेवन (व्यतीत करता है) यावत् (गमनागमन) करता है। [सू ४७ से ४९ तक नौवाँ गमक]

५०. एवं एए ओहिया तिण्णि गमगा, जहन्नकालट्ठितीएसु तिन्नि गमगा, उक्कोसकालट्ठितीएसु तिन्नि गमगा; सव्वेते नव गमा भवंति।

[५०] इस प्रकार (पूर्वोक्त गमकों में से) ये तीन गमक औघिक (सामान्य) है, तीन गमक जघन्यकाल की स्थिति वालों (मे उत्पत्ति) के है और तीन गमक उत्कृष्टकाल की स्थिति वालों (मे उत्पत्ति) के है। ये सब मिला कर नौ गमक होते है।

विवेचन--नौ गमकों का स्पष्टीकरण—(१) पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव का रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों मे उत्पन्न होना, यह पहला गमक है, (२) जघन्यकाल-स्थिति वाले प्रथम नरक के नैरयिकों मे उत्पन्न होना, यह दूसरा गमक है, (३) उत्कृष्टस्थिति वाले प्रथम नरक के नैरयिकों मे उत्पन्न होना, यह तीसरा गमक है। इस प्रकार पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के साथ किसी प्रकार का विशेषण लगाये बिना तीन गमक होते है। तत्पश्चात् जघन्य स्थिति वाले पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव से सम्बन्धित पूर्ववत् तीन गमक होते हैं, तथा उत्कृष्ट स्थिति वाले पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव से सम्बन्धित भी पूर्ववत् तीन गमक होते है। इस प्रकार ये नौ गमक (आलापक) होते है।[1]

पर्याप्त असज्ञी-तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीव के विषय में बीस द्वार—सूत्र ४ से लेकर २५वे तक पर्याप्त असज्ञीतिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीव के विषय मे २० द्वार है। विवरण इस प्रकार है—

---

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन, प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ. २९९८
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८०९

उपपात (उत्पत्ति)– के विषय मे दो प्रश्न किये गए है—(१) पर्याप्त असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कितनी नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होता है? और (२) कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है? उत्तर स्पष्ट है—वह एकमात्र रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होता है, रत्नप्रभा के नैरयिको की जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम की है। किन्तु पर्याप्त असज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च जो नरक मे जाता है, वह पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले नैरयिको तक ही उत्पन्न होता है, इससे आगे नही। इसलिए यहाँ उत्कृष्टत पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले प्रथम नरकीय नारको तक ही उत्पन्न होना बताया है।[1]

अन्य द्वारो का स्पष्टीकरण—यहाँ से आगे अनुबन्ध तक प्राय सभी द्वार स्पष्ट है। दृष्टिद्वार मे इन्हे केवल मिथ्यादृष्टि तथा ज्ञान-अज्ञानद्वार मे इन्हे अज्ञानी बताया गया है, परन्तु श्रेणिक महाराज का जीव जो प्रथम नरक मे गया है, वह तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि तथा ज्ञानी था। इसका समाधान यह है कि यहाँ पर्याप्त असज्ञी-तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो मे से मर कर जो प्रथम नरक मे जाता है, उसका कथन है, मनुष्य मे से मर कर प्रथम नरक मे जाने वाले का कथन नही। इसलिए इस कथन मे विरोध नही है। असज्ञी की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है, नरक मे जाने वाले के अध्यवसायस्थान अप्रशस्त होते है, किन्तु आयुष्य की दीर्घस्थिति हो, तो प्रशस्त और अप्रशस्त दोनो प्रकार के अध्यवसाय हो सकते है। अनुबन्ध आयुष्य के समान ही होता है किन्तु कायसवेध नैरयिक और तिर्यञ्चपचेन्द्रिय की जघन्य और उत्कृष्ट दोनो स्थितियो को मिला कर जानना चाहिए।[2]

कायसवेध के विषय मे स्पष्टीकरण—कायसवेध का पर भव और काल दोनो अपेक्षाओ से विचार किया गया है। **भव की अपेक्षा से** दो भव का कायसवेध इसलिए बताया है कि जो जीव पूर्वभव मे असज्ञी-तिर्यंचपचेन्द्रिय हो और वहाँ से मर कर नरक मे उत्पन्न हो तो वह नरक से निकल कर फिर असज्ञी तिर्यञ्चपचेन्द्रिय नही होता, वह अवश्य ही सज्ञीपन प्राप्त कर लेता है।

काल की अपेक्षा से असज्ञी-तिर्यंचपंचेन्द्रिय का कायसवेध—जघन्यत अन्तर्मुहूर्त आयुष्य-सहित, प्रथम नरक की जघन्य १० हजार वर्ष की स्थिति वाला होता है, इसलिए जघन्य कायसवेध अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का बताया है। उत्कृष्ट कायसवेध—असज्ञी के पूर्वकोटिवर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयुष्यसहित प्रथम नरक (रत्नप्रभा) मे उसका उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण है, इसलिए इन दोनो के आयुष्य को मिला कर असज्ञी-तिर्यचपचेन्द्रिय का उत्कृष्ट कायसवेध पूर्वकोटिवर्ष अधिक पल्योपम के असख्यातवे भागप्रमाण बताया गया है।[3]

नरक में उत्पन्न होनेवाले संख्यातवर्षायुष्क पर्याप्त संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको की उपपात-प्ररूपणा

५१. जदि सन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति किं सखेज्जवासाउयसन्निपंचेन्दिय-तिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति, असखेज्जवासाउयसन्निपचेदियतिरिक्ख० जाव उववज्जंति ?

---

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ २९७९

२ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९०६ तथा ९६५
(ख) भगवती (हिन्दी प घेवरचदजी), भा ६, पृ २९९९

३ (क) वही भा ६, पृ २९८६
(ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८०९

गोयमा ! संखेज्जवासाउयसण्णिपंचेंदिय० जाव उववज्जति, नो असंखेज्जवासाउय० जाव उववज्जंति ।

[५१ प्र.] भगवन् ! यदि नैरयिक सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे से आकर उत्पन्न होते हैं, अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[५१ उ] गौतम ! वे सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यचयोनिको मे से आकर उत्पन्न नही होते है ।

५२. जदि सखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदिय जाव उववज्जति कि जलचरेहिंतो उववज्जंति ?० पुच्छा ।

गोयमा ! जलचरेहिंतो उववज्जंति जहा असन्नी जाव पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[५२ प्र] भगवन् ! यदि नैरयिक सख्यातवर्ष की आयु वाले सज्ञी-तिर्यञ्चपचेन्द्रियो मे से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचरो मे से आकर उत्पन्न होते है, स्थलचरो मे से अथवा खेचरो मे से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[५२ उ.] गौतम ! वे जलचरो मे से आकर उत्पन्न होते है, इत्यादि सब असज्ञी के समान, यावत् पर्याप्तको मे से आकर उत्पन्न होते है, अपर्याप्तको मे से नही, (यहाँ तक कहना चाहिए ।)

५३. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से ण भंते ! कतिसु पुढवीसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! सत्तसु पुढवीसु उववज्जेज्जा, त जहा—रयणप्पभाए जाव अहेसत्तमाए ।

[५३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त-सख्येयवर्षायुष्क-सज्ञीपचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जो जीव, नरक-पृथ्वियो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितनी नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होता है ?

[५३ उ.] गौतम ! वह सातो ही नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होता है, यथा रत्नप्रभा यावत् अध सप्तम पृथ्वी ।

विवेचन—निष्कर्ष—उपर्युक्त तीन प्रश्नो (५१ से ५३ तक) के उत्तर का सार यह है कि जो नैरयिक सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे से आते है, वे सख्यातवर्ष की आयु वाले, पर्याप्तक, जलचर, स्थलचर, खेचर तीनो से आकर उत्पन्न होते हैं ।[1]

---

१ *वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण-युक्त) भा २, पृ ९११*

रत्नप्रभानरक में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त-संख्यातवर्षायुष्क-संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च के उपपात-परिमाणादि बीस द्वार-प्ररूपणा

५४. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भंते ! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितोएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेणं सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[५४ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सख्यातवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, जो रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[५४ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

५५. ते ण भंते ! जीवा एगसमएण केवतिया उववज्जति ?

जहेव असन्नी।

[५५ प्र] भगवन् ! वे जीव (सज्ञी तिर्यञ्चपचेन्द्रिय), एक समय में कितने उत्पन्न होते है ?

[५५ उ] गौतम ! (पूर्ववत्) असज्ञी के समान समझना।

५६. तेसि णं भंते ! जीवाण सरीरगा किंसघयणी पन्नत्ता ?

गोयमा ! छव्विहसघयणी पन्नत्ता, त जहा—वइरोसभनारायसघयणी उसभनारायसघयणी जाव सेवट्टसघयणी।

[५६ प्र] भगवन् ! उन जीवो के शरीर किस सहनन वाले होते है ?

[५६ उ] गौतम ! उनके शरीर छहो प्रकार के सहनन वाले है, यथा वे वज्रऋषभनाराच-सहनन वाले, ऋषभनाराचसहनन वाले यावत् सेवार्त्तसहनन वाले होते है।

५७. सरीरोगाहणा जहेव असन्नीण।[1]

[५७] (उनके) शरीर की अवगाहना, असज्ञी के समान जानना।

५८. तेसि णं भंते ! जीवाण सरीरगा किंसठिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! छव्विहसंठिया पन्नत्ता, तं जहा—समचतुरस० नग्गोह० जाव हुंडा०।

[५८ प्र] भगवन् ! उन जीवो के शरीर किस सस्थान वाले होते है ?

[५८ उ] गौतम ! वे छहो प्रकार के सस्थान वाले होते हैं, यथा—समचतुरस्र, न्यग्रोध-परिमण्डल यावत् हुण्डक सस्थान।

---

१. अधिकपाठ—'जहन्नेण अंगुलस्स असखेज्जइभागं, उक्कोसेण जोयणसहस्सं।'
(अर्थात्—जघन्य अगुल के असंख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन)।

५९. [१] तेसि ण भंते ! जीवाणं कति लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेसाओ पन्नत्ताओ, त जहा—कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा ।

[५९-१ प्र] भगवन् ! उन जीवो के कितनी लेश्याएँ कही गई है ?

[५९-१ उ] गौतम ! उनके छहो लेश्याएँ कही गई हैं। यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या ।

[२] दिट्ठी तिविहा वि । तिन्नि नाणा, तिन्नि अन्नाणा भयणाए । जोगो तिविहो वि । सेसं जहा असण्णीण जाव अणुबधो । नवर पच समुग्घाया आदिल्लगा । वेदो तिविहो वि, अवसेस तं चेव जाव—

[५९-२] (उनमे) दृष्टियाँ तीनो ही होती है । तीन ज्ञान तथा तीन अज्ञान भजना से होते हैं । योग तीनो ही होते हैं । शेष सब यावत् अनुबन्ध तक असज्ञी के समान समझना । 'विशेष यह है कि समुद्घात आदि के पाच होते है तथा वेद तीनो ही होते है । शेष सब पूर्ववत् समझना चाहिए । यावत्—

६०. से ण भते ! पज्जत्तसखेज्जवासाउय जाव तिरिक्खजोणिए रयणप्पभ० जाव करेज्जा ?

गोयमा ! भवादेसेणं जहन्नेण दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेण अट्ठ भवग्गहणाइ । कालाएसेण जहन्नेण दसवाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइ चउहि पुव्वकोडीहि अब्भहियाइ । एवतियं कालं सेवेज्जा जाव करेज्जा । [सु० ५४—६० पढमो गमओ] ।

[६० प्र] भगवन् ! वह पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव, रत्नप्रभापृथ्वी मे नारकरूप मे उत्पन्न हो और फिर सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक हो, तो वह कितने काल यावत् गमनागमन करता है ?

[६० उ.] गौतम ! भव की अपेक्षा जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव तक ग्रहण करता है तथा काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार पूवकोटि अधिक चार सागरोपम काल तक सेवन (व्यतीत) करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है । [सू ५४ से ६० तक प्रथम गमक]

६१. पज्जत्तसखेज्ज जाव जे भविए जहन्नकालं जाव से णं भते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेणं वि दसवाससहस्सट्ठितीएसु जाव उववज्जेज्जा ।

[६१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव रत्नप्रभा-पृथ्वी मे जघन्य स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न हो, तो कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[६१ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले (नैरयिको) मे उत्पन्न होता है ।

६२. ते णं भंते ! जीवा० ?

एवं सो चेव पढमगमओ निरवसेसो नेयव्वो जाव कालादेसेणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चत्तालीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ; एवतियं कालं सेवेज्जा०।[1] [सु० ६१-६२ बीओ गमओ]।

[६२ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[६२ उ] गौतम ! पूर्ववत् प्रथम गमक (सू ५४ से ६० तक) पूरा, यावत् काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और चालीस हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि काल तक सेवन (व्यतीत) करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। [सू ६१-६२ द्वितीय गमक]

६३. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण सागरोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा। अवसेसो परिमाणादीओ भवादेसपज्जवसाणो सो चेव पढमगमो नेयव्वो जाव कालाएसेण जहन्नेणं सागरोवम अंतोमुहुत्तमब्भहिय, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवतिय काल सेविज्जा०। [सु० ६३ तइओ गमओ]।

[६३] यदि वह उत्कृष्ट काल की स्थिति मे उत्पन्न हो तो जघन्य एक सागरोपम की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी एक सागरोपम की स्थिति वाले (नैरयिको) मे उत्पन्न होता है।

शेष परिमाणादि से लेकर भवादेश-पर्यन्त कथन उसी पूर्वोक्त प्रथम गमक के समान, यावत् काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम काल तक सेवन करता है तथा इतने ही काल तक गमनागमन करता है, ऐसा समझना चाहिए। [सू ६३ तृतीय गमक]

६४ जहन्नकालट्ठितीयपज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भंते ! जे भविए रयणप्पभपुढवि जाव उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[६४ प्र.] भगवन् ! जघन्यकाल की स्थिति वाला, पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, जो रत्नप्रभापृथ्वी मे नैरयिकरूप मे उत्पन्न होने वाला हो, तो वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[६४ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

६५. ते णं भंते ! जीवा० ?

अवसेसो सो चेव गमओ। नवरं इमाइं अट्ठ णाणत्ताइं—सरीरोगाहणा जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेण धणुपुहत्तं १। लेस्साओ तिण्णि आदिल्लाओ २। नो सम्मद्दिट्ठी,

१ 'एवतिय काल गतिरागति करेज्जा।'

मिच्छद्दिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी ३। दो अन्नाणा णियमं ४। समुग्घाया आदिल्ला तिन्नि ५। आउ ६; अज्झवसाणा ७, अणुबधो ८ य जहेव असन्नीणं। अवसेसं जहा पढमे गमए जाव कालादेसेण जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमहुत्तमब्भहियाइं; उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं; एवतिय कालं जाव करेज्जा। [सु० ६४—६५ चउत्थो गमओ]।

[६५ प्र] भगवन् ! वे जीव (एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।)

[६५ उ.] गौतम ! यह सब वक्तव्यता उसी (प्रथम) गमक के समान (जाननी चाहिए।) विशेषता इन आठ विषयो मे है, यथा—(१) (इनके) शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व (दो धनुष से नौ धनुष तक) की होती है। (२) इनमे आदि की तीन लेश्याएँ होती है। (३) वे सम्यग्दृष्टि नही होते, और न ही सम्यग्-मिथ्यादृष्टि होते है, एकमात्र मिथ्यादृष्टि होते है। (४) इनमे नियम से दो अज्ञान होते है। (५) इनमे आदि के तीन समुद्घात होते है। (६-७-८) इनके आयुष्य, अध्यवसाय और अनुबन्ध का कथन असज्ञी के समान समझना चाहिए। शेष सब प्रथम गमक के समान, यावत् काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार सागरोपम काल यावत् इतने काल तक गमनागमन करते हैं। [सू ६४-६५ चतुर्थ गमक]

६६. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[६६] जघन्य काल की स्थिति वाला, वही (पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) जीव, (रत्नप्रभापृथ्वी मे) जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले तथा उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले (नैरयिको) मे उत्पन्न होता है।

६७. ते णं भंते ! ०?

एवं सो चेव चउत्थो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो जाव कालाएसेण जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तालीसं वाससहस्साइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं; एवतियं जाव करेज्जा। [सु० ६६-६७ पंचमो गमओ]।

[६७ प्र] भगवन् ! वे जीव (एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?) इत्यादि प्रश्न।

[६७ उ] गौतम ! यहाँ सम्पूर्ण कथन पूर्वोक्त चतुर्थ गमक (सू ६४-६५) के समान समझना चाहिए, यावत्—काल की अपेक्षा मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चालीस हजार वर्ष तक कालयापन करते है तथा इतने ही काल तक गमनागमन करते है। [सू ६६-६७ पचम गमक]

६८. सो च्चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा, उक्कोसेण वि सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[६८] वही (जघन्य स्थिति वाला यावत् सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च रत्नप्रभा पृथ्वी मे) उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न हो, तो जघन्य सागरोपम स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है और उत्कृष्ट भी सागरोपम स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

६९. ते णं भंते ! ०

एवं सो चेव चउत्थो गमश्रो निरवसेसो भाणियव्वो जाव कालादेसेणं जहन्नेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं; एवतियं जाव करेज्जा । [सु० ६८-६९ छट्ठो गमश्रो] ।

[६९ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[६९ उ] यहाँ पूर्ववत् सम्पूर्ण चतुर्थ गमक, यावत्—काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक सागरोपम और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार सागरोपम काल यावत् गमनागमन करता है, (यहाँ तक) कहना चाहिए। [६८-६९ छठा गमक]

७० उक्कोसकालट्ठितीयपज्जत्तसंखेज्जवासा० जाव तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जाव जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[७० प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त-सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[७० उ] गौतम ! वे जघन्यत दस हजार वर्ष की और उत्कृष्टत एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

७१. ते णं भंते ! जीवा ० ?

अवसेसो परिमाणादीश्रो भवादेसपज्जवसाणो एतेसिं चेव पढमगमश्रो णेयव्वो, नवरं ठिती जहन्नेण पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी । एवं अणुबंधो वि । सेसं त चेव । कालादेसेणं जहन्नेण पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहि अब्भहिया, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइ; एवतिय काल जाव करेज्जा । [सु० ७०-७१ सत्तमो गमश्रो] ।

[७१ प्र] भगवन ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[७१ उ] गौतम ! परिमाण आदि से लेकर भवादेश तक की वक्तव्यता के लिए इनका (सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का) प्रथम गमक जानना चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी जानना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् समझना तथा काल की अपेक्षा से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटिवर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम- -इतना काल यावत् गमनागमन करता है। [सू ७०-७१ सप्तम गमक]

७२. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठितीएसु । उववज्जेज्जा ।

[७२] यदि वह (उत्कृष्ट० सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च) जघन्यस्थिति वाले (रत्नप्रभापृथ्वी

के नैरयिकों) में उत्पन्न हो, तो वह जघन्य और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

७३. ते णं भंते ! जीवा० ?

सो चेव सत्तमो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो जाव भवादेसो त्ति। कालादेसेणं जहन्नेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेण चत्तारि पुव्वकोडीओ चत्तालीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ; एवतियं जाव करेज्जा। [सु० ७२–७३ अट्ठमो गमओ]।

[७३ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[७३ उ] गौतम ! (परिमाण से लेकर भवादेशपर्यन्त) सम्पूर्ण सप्तम गमक कहना चाहिए। काल की अपेक्षा से, जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटिवर्ष और उत्कृष्ट चालीस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटिवर्ष यावत् गमनागमन करता है। [सू ७२-७३ अष्टम गमक]

७४. उक्कोसकालट्ठितीयपज्जत्ता जाव तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए उक्कोसकालट्ठितीय जाव उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं सागरोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[७४ प्र] भगवन् ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त यावत् तिर्यञ्चयोनिक, जो उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

[७४ उ] गौतम ! वह जघन्य और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

७५. ते णं भंते ! जीवा० ?

सो चेव सत्तमगमओ निरवसेसो भाणियव्वो जाव भवादेसो त्ति। कालादेसेण जहन्नेण सागरोवमं पुव्वकोडीए अब्भहियं, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवइयं जाव करेज्जा। [सु० ७४-७५ नवमो गमओ]।

[७५ प्र] भगवन् ! वे जीव (एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?) इत्यादि प्रश्न।

[७५ उ] गौतम ! परिमाण से लेकर भवादेश तक के लिए वही पूर्वोक्त सप्तम गमक सम्पूर्ण कहना चाहिये। काल की अपेक्षा से जघन्य पूर्वकोटि अधिक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम काल यावत् गमनागमन करता है। [७४-७५ नौवाँ गमक]

७६. एवं एते नव गमगा उक्खेवनिक्खेवओ नवसु वि जहेव असण्णीण।

[७६] इस प्रकार ये नौ गमक होते हैं, और इन नौ ही गमकों का प्रारम्भ और उपसंहार (उत्क्षेप और निक्षेप) असंज्ञी जीवों के समान (कहना चाहिए।)

विवेचन—नौ गमक—यहाँ पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक की अपेक्षा से रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति-सम्बन्धी नौ गमक कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) औधिक (सामान्य) संज्ञी-तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय का, औधिक नैरयिकों में उत्पन्न होने रूप प्रथम गमक है। (२) जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होने रूप दूसरा गमक है। (३) उत्कृष्ट स्थिति वाले

नैरयिको मे उत्पन्न होने रूप तीसरा गमक है। (४) जघन्य स्थिति वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च का रत्नप्रभा नरक पृथ्वी मे उत्पन्न होने रूप चौथा गमक है। (५) जघन्य स्थिति वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च का जघन्य स्थिति (१० हजार वर्ष) वाली रत्नप्रभापृथ्वी के नारको मे उत्पन्न होने रूप पचम गमक है। (६) जघन्य स्थिति वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च का उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होने रूप छठा गमक है। (७) उत्कृष्ट स्थिति वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च का रत्नप्रभा-नारको मे उत्पन्न होने रूप सप्तम गमक है। (८) उत्कृष्ट स्थिति वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च का जघन्य स्थिति वाले रत्नप्रभा-नैरयिको मे उत्पन्न होने रूप आठवाँ गमक है और (९) उत्कृष्ट स्थिति वाले सज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च का उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा-नैरयिको मे उत्पन्न होने रूप नौवाँ गमक है।[1]

नौ गमको के परिमाणादि द्वारो मे अन्तर—(१) **प्रथम गमक में विशेष**—एक समय मे उत्पत्ति-सख्या, शरीरावगाहना तथा उपयोग से लेकर अनुबन्ध (आयु, अध्यवसाय और अनुबन्ध) तक के द्वार असज्ञी के समान बताए गए है। उनमे छहो सहनन, छहो सस्थान, छहो लेश्याएँ, तीनो दृष्टियां तथा तीनो ही योग एव वेद होते है। नरक मे उत्पन्न होने वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे तीन ज्ञान या तीन अज्ञान विकल्प से पाये जाते है। अर्थात् किसी मे दो या तीन ज्ञान और किसी मे दो या तीन अज्ञान होते है। असज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे आदि के तीन समुद्घात होते हैं और नरक मे जाने वाले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे आदि के पाच समुद्घात होते है। अर्थात्—उनमे अन्तिम दो (आहार और केवली) समुद्घात नही होते, क्योकि ये दोनो समुद्घात मनुष्यो के सिवाय अन्य जीवो मे नही होते। सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च, प्रथम नरक मे उत्पन्न होकर पुन उसी (स ति प) भव मे उत्पन्न हो, तो भव की अपेक्षा जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव करता है। अर्थात्—वह पहले सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे उत्पन्न होता है, वहाँ से निकल कर पुन नरक मे उत्पन्न होता है, फिर मनुष्य मे, यो अधिकृत कायसवेध मे दो भव जघन्यत होते है। आठ भव इस प्रकार होते है– प्रथम सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च, फिर नारक, फिर सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च, फिर नारक, तदनन्तर सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च, फिर नारक, तत्पश्चात् सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च और फिर उसी नरकपृथ्वी मे नारक, इस प्रकार वह आठ बार उत्पन्न होता है। नौवे भव मे मनुष्य होता है।

चौथे गमक मे आठ नानात्व (अन्तर) हैं—(१) अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की, उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व की है, (२) लेश्या आदि की तीन, (३) दृष्टि सिर्फ मिथ्यादृष्टि, (४) अज्ञान दो, (५) प्रथम के तीन समुद्घात, (६) आयुष्य अन्तर्मुहूर्त, (७) अध्यवसायस्थान अप्रशस्त, (अशुभ) और अनुबन्ध आयुष्यानुसार होता है। शेष कथन सज्ञी के प्रथम गमक के समान है।

सातवे गमक मे अन्तर- इसका आयुष्य और अनुबन्ध पूर्वकोटिवर्ष का होता है।[2]

पारिभाषिक शब्दो के अर्थ - **उक्खेव**—उत्क्षेप प्रारम्भवाक्य (प्रस्तावना) रूप होता है और **निक्खेव**—निक्षेप समाप्तिवाक्य रूप होता है। निक्षेप का दूसरा नाम निगमन या उपसहार है।[3]

---

१ (क) भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ८११-८१२
(ख) भगवतीसूत्र, (हिन्दी-विवेचन) भा ६, पृ ३०११

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८११-८१२
(ख) भगवतीसूत्र, (हिन्दी-विवेचन) भा ६, पृ. ३०११

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८१२

शर्कराप्रभा से तमःप्रभा नरक तक में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च के उपपात-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

७७. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भंते ! जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइएसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं सागरोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेणं तिसागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[७७ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, जो शर्करा-प्रभा पृथ्वी मे नैरयिक रूप से उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[७७ उ] गौतम ! वह जघन्य एक सागरोपम की स्थिति वाले और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ।

७८ ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं० ?

एवं ज च्चेव रयणप्पभाए उववज्जतगस्स लद्धी स च्चेव निरवसेसा भाणियव्वा जाव भवादेसो त्ति । कालादेसेणं जहन्नेणं सागरोवम अंतोमुहुत्तमब्भहिय, उक्कोसेण बारस सागरोवमाइ चउहि पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइ; एवतियं जाव करेज्जा ।

[७८ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[७८ उ] गौतम ! रत्नप्रभा नरक मे उत्पन्न होने वाले पर्याप्त सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च की समग्र वक्तव्यता यहाँ भवादेश पर्यन्त कहनी चाहिए तथा काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक बारह सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करता है ।

७९. एवं रयणप्पभपुढविगमगसरिसा नव वि गमगा भाणियव्वा, नवर सव्वगमएसु वि नेरइयट्ठिती-सवेहेसु सागरोवमा भाणियव्वा ।

[७९] इस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के गमक के समान नौ ही गमक जानने चाहिए । परन्तु विशेष यह है कि सभी नरको मे नैरयिको की स्थिति और सवेध के सम्बन्ध मे 'सागरोपम' कहने चाहिए ।

८०. एवं जाव छट्ठपुढवि त्ति, णवर नेरइयठिती जा जत्थ पुढवीए जहन्नुक्कोसिया सा तेणं चेव कमेण चउग्गुणा कायव्वा, वालुयप्पभाए अट्ठावीस सागरोवमा चउग्गुणिया भवति, पंकप्पभाए चत्तालीसं, धूमप्पभाए अट्ठसट्ठि, तमाए अट्ठासीति । संघयणाइ वालुयप्पभाए पंचविहसघयणी, त जहा - वइरोसभनाराय जाव खोलियासघयणी । पकप्पभाए चउव्विहसघयणी । धूमप्पभाए तिविहसंघयणी । तमाए दुविहसघयणी, त जहा—वइरोसभनारायणी य उसभनारायसंघयणी य । सेसं त चेव ।

[८०] इसी प्रकार छठी नरकपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए। परन्तु जिस नरकपृथ्वी मे जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति जितने काल की हो, उसे उसी क्रम से चार गुणी करनी चाहिए। जैसे—वालुकाप्रभापृथ्वी मे उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है, उसे चार गुणा करने से अट्ठाईस सागरोपम होती है। इसी प्रकार पकप्रभा मे चालीस सागरोपम की, धूमप्रभा मे अडसठ सागरोपम की और तम प्रभा मे ८८ सागरोपम की स्थिति होती है। सहनन के विषय मे—वालुकाप्रभा मे वज्रऋषभनाराच से कीलिका सहनन तक पाच सहनन वाले जाते है। पकप्रभा मे आदि के चार सहनन वाले, धूमप्रभा मे प्रथम के तीन सहनन, तम प्रभा मे प्रथम के दो सहनन वाले नैरयिक रूप मे उत्पन्न होते है। यथा—वज्रऋषभनाराच और ऋषभनाराच सहनन वाले। शेष सब कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

विवेचन—शर्कराप्रभा सम्बन्धी वक्तव्यता—परिमाण, सहनन आदि की जो वक्तव्यता रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होने वाले नैरयिक की कही गई है, वही शर्कराप्रभा के सम्बन्ध मे जाननी चाहिए।

स्थिति सम्बन्धी कथन मे अन्तर—शर्कराप्रभा मे सज्ञी जीव की अपेक्षा जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक एक सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति १२ सागरोपम की कही गई है, क्योकि शर्कराप्रभा मे उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है, उसे चार से गुणा करने पर बारह सागरोपम होती है।

रत्नप्रभा मे जघन्य स्थिति १० हजार वर्ष की तथा उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है। शर्कराप्रभा आदि नरकपृथ्वियो की उत्कृष्ट स्थिति क्रमश ३, ७, १०, १७, २२ और ३३ सागरोपम की है। पूर्व-पूर्व की नरकपृथ्वियो मे जो उत्कृष्ट स्थिति होती है, वही आगे-आगे की नरकपृथ्वियो मे जघन्य स्थिति होती है। अत शर्कराप्रभा आदि मे स्थिति और कायसवेध के विषय मे 'सागरोपम' कहना चाहिए।

छठी नरकपृथ्वी तक नौ ही गमको की वक्तव्यता रत्नप्रभानरकपृथ्वी के गमको के समान है। जिस नरक की जितनी उत्कृष्ट स्थिति है, उसका उत्कृष्ट कायसवेध उससे चार गुणा है। जैसे—वालुकाप्रभा नरकपृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति ७ सागरोपम की है। उसे चार से गुणा करने पर अट्ठाईस सागरोपम उत्कृष्ट कायसवेध होता है। इसी तरह आगे-आगे की नरकपृथ्वियो मे समझना चाहिए।[१]

छठी नरक तक सहननादि विशेष—पहली और दूसरी नरकपृथ्वी मे छहो सहनन वाले जीव जाते है। तत्पश्चात् आगे-आगे की नरकपृथ्वियो मे एक-एक सहनन कम होता जाता है। इस दृष्टि से तीसरी नरकपृथ्वी मे पाच सहनन वाले, चौथी मे चार सहनन वाले, पाचवी मे तीन सहनन वाले और छठी नरकपृथ्वी मे दो सहनन वाले जीव जाते है।[२]

---

१ भगवती (हिन्दी विवेचनयुक्त) भाग ६, पृ ३०१९

२ वही, पृ ३०१९

सप्तम नरकपृथ्वी में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्च के उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

८१ पज्जत्तसंखेज्जवासाउय० जाव तिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए अहेसत्तमपुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं बावीससागरोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण तेत्तीससागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[८१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, जो अध सप्तम-नरकपृथ्वी मे उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

[८१ उ] गौतम ! वह जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

८२. ते ण भंते ! जीवा० ?

एवं जहेव रयणप्पभाए णव गमका, लद्धी वि स च्चेव, णवर वइरोसभनारायसंघयणी, इत्थिवेदगा न उववज्जति। सेस त चेव जाव अणुबंधो त्ति। सवेहो भवाएसेण जहन्नेण तिण्णि भवग्गहणाइ, उक्कोसेण सत्त भवग्गहणाइं; कालाएसेण जहन्नेण बावीस सागरोवमाइ दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ चउहि पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइ; एवतियं जाव करेज्जा १। [सु० ८१-८२ पढमो गमओ]।

[८२ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[८२ उ.] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के समान इसके भी नौ गमक और अन्य सब वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि वहाँ वज्रऋषभनाराचसहनन वाला ही उत्पन्न होता है, स्त्रीवेद वाले जीव वहाँ उत्पन्न नही होते। शेष समग्र कथन अनुबन्ध तक पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। सवेध—भव की अपेक्षा से जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट सात भव तथा काल की अपेक्षा से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम तक गमनागमन करता है। [८१-८२ प्रथम गमक]

८३. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, स च्चेव वत्तव्वया जाव भवादेसो त्ति। कालाएसेणं जहन्नेणं० कालादेसो वि तहेव जाव चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइ; एवतिय जाव करेज्जा। [सु० ८३ बीओ गमओ]।

[८३] वे (सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होते है, इत्यादि सब वक्तव्यता भवादेश तक पूर्वोक्त रूप से जानना। कालादेश से भी जघन्यत: उसी प्रकार यावत् चार पूर्वकोटि अधिक (६६ सागरोपम), इतने काल तक गमनागमन करता है, (यहाँ तक कहना चाहिए।) [सू. ८३ द्वितीय गमक]

८४. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, स च्चेव लद्धी जाव अणुबंधो त्ति, भवाएसेणं जहन्नेण तिन्नि भवग्गहणाइ, उक्कोसेणं पंच भवग्गहणाइं; कालाएसेणं जहन्नेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ

दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवतियं जाव करेज्जा। [सु० ८४ तइओ गमओ]।

[८४] वह जीव उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न हो, इत्यादि सब वक्तव्यता, अनुबन्ध तक पूर्ववत् जानना। भव की अपेक्षा से जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट पाच भव ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा से— जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [सू ८४ तृतीय गमक]

८५. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, स च्चेव रयणप्पभपुढविजहन्नकालट्ठितीय-वत्तव्वया भाणियव्वा जाव भवादेसो त्ति। नवरं पढमं संघयण; नो इत्थिवेदगा; भवाएसेण जहन्नेणं तिन्नि भवग्गहणाइं, उक्कोसेण सत्त भवग्गहणाइ; कालाएसेण जहन्नेण बावीसं सागरोवमाइ दोहिं अतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ चउहि अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइ, एवतिय जाव करेज्जा। [सु० ८५ चउत्थो गमओ]।

[८५] वही (सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च) जीव स्वय जघन्य स्थिति वाला हो और वह सप्तम नरकपृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो, तो तत्सम्बन्धी समस्त वक्तव्यता रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होने योग्य जघन्य स्थिति वाले (सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च) की वक्तव्यता के अनुसार भवादेश तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि वह (सप्तम नरकपृथ्वी मे उत्पन्न होने वाला) प्रथम सहननी होता है, वह स्त्रीवेदी नही होता। भव की अपेक्षा से—जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट सात भव ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा से— जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू ८५ चतुर्थ गमक]

८६. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एवं सो चेव चउत्थगमओ निरवसेसो भाणियव्वो जाव कालादेसो त्ति। [सु० ८६ पंचमो गमओ]।

[८६] वही (जघन्य स्थिति वाला संज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव) जघन्य स्थिति वाले सप्तम नरकपृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो तो उस सम्बन्ध मे समग्र चतुर्थ गमक कालादेश तक कहना चाहिए। [सू ८६ पचम गमक]

८७. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, स च्चेव लद्धी जाव अणुबधो त्ति। भवाएसेण जहन्नेण तिन्नि भवग्गहणाइ, उक्कोसेण पच भवग्गहणाइ। कालाएसेणं जहन्नेण तेत्तीस सागरोवमाइं दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ तिहिं अतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइ, एवतियं कालं जाव करेज्जा। [सु० ८७ छट्ठो गमओ]।

[८७] वही (जघन्य स्थिति वाला सज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च) उत्कृष्ट स्थिति वाले सप्तम नरक-पृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो तो, इस सम्बन्ध मे अनुबन्ध तक पूर्वोक्त वक्तव्यता जाननी चाहिए। भव की अपेक्षा से—जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट पाँच भव ग्रहण करता है तथा काल की अपेक्षा से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम, काल तक गमनागमन करता है। [सू. ८७ छठा गमक]

८८. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, जहन्नेणं बावीससागरोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेणं तेत्तीससागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[८८] वही स्वय उत्कृष्ट स्थिति वाला (सञ्ज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च) हो और सप्तम नरक-पृथ्वी मे उत्पन्न हो तो जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

८९. ते णं भंते !० ?

अवसेसा स च्चेव सत्तमपुढविपढमगमगवत्तव्वया भाणियव्वा जाव भवादेसो त्ति, नवर ठिती अणुबंधो य जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी। सेसं त चेव। कालाएसेणं जहन्नेण बावीस सागरोवमाइ दोहि पुव्वकोडीहि अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ चउहि पुव्वकोडीहि अब्भहियाइं, एवतिय जाव करेज्जा। [सु० ८८-८९ सत्तमो गमओ]।

[८९ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[८९ उ] इस विषय मे समग्र वक्तव्यता सप्तम नरकपृथ्वी के गमक के समान, भवादेश तक कहनी चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति और अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष जानना चाहिए। शेष सव पूर्ववत्। सवेध—काल की अपेक्षा से—जघन्य दो पूर्वकोटि अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू ८८-८९ सप्तम गमक]

९० सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, स च्चेव लद्धी, संवेहो वि तहेव सत्तमगमगसरिसो। [सु० ९० अट्ठमो गमओ]।

[९०] यदि वह (उत्कृष्ट स्थिति वाला सञ्ज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च जीव) जघन्य स्थिति वाले सप्तम नरकपृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो तो उसके सम्बन्ध मे वही वक्तव्यता और वही सवेध सप्तम गमक के सदृश कहना चाहिए। [सू ९० अष्टम गमक]

९१. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव लद्धी जाव अणुबंधो त्ति। भवाएसेणं जहन्नेणं तिन्नि भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं पंच भवग्गहणाइ। कालाएसेणं जहन्नेण तेत्तीस सागरोवमाइ दोहि पुव्वकोडीहि अब्भहियाइ, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ तिहि पुव्वकोडीहि अब्भहियाइ, एवतियं काल सेवेज्जा जाव करेज्जा। [सु० ९१ नवमो गमओ]।

[९१] यदि वह (उत्कृष्ट स्थिति वाला सञ्ज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च जीव) उत्कृष्ट स्थिति वाले सप्तम नरक के नैरयिको मे उत्पन्न हो तो, वही पूर्वोक्त वक्तव्यता, यावत् अनुबन्ध तक (जाननी चाहिए।) सवेध—भव की अपेक्षा से जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट पांच भव, तथा काल की अपेक्षा से जघन्य दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम, यावत् इतने काल वह गमनागमन करता है। [सू ९१ नौवाँ गमक]

विवेचन सप्तम नरकभूमि में उत्पत्ति आदि सम्बन्धी गमक—यहाँ रत्नप्रभापृथ्वी के ९ गमको की तरह सारी वक्तव्यता समझनी चाहिए, विशेष अन्तर यह है कि सप्तम नरकपृथ्वी मे

एक (वज्रऋषभनाराच) सहनन वाले जीव ही उत्पन्न होते हैं तथा स्त्रीवेद वाले जीव वहाँ उत्पन्न नही होते। क्योकि स्त्रीवेदी जीवो की उत्पत्ति छठे नरक तक ही होती है। भवादेश से जघन्य तीन भव सातवे नरक मे कहे गए हैं। वह इस प्रकार होते हैं—प्रथम भव मत्स्य का, द्वितीय भव नारक का और तृतीय भव मत्स्य का, इस क्रम से दो भव मत्स्यो के और एक भव नारक का होता है तथा उत्कृष्टत सात भव इस प्रकार से होते है— प्रथम भव मत्स्य का, द्वितीय भव सप्तम पृथ्वी के नारक का, तृतीय भव पुन मत्स्य का, चौथा भव पुन सप्तम पृथ्वी के नारक का, पाचवाँ भव मत्स्य का, छठा भव सप्तम पृथ्वी के नारक का और सातवाँ भव पुन मत्स्य का। इस प्रकार से उत्कृष्टत· ७ भव वे ग्रहण करते हैं तथा काल की अपेक्षा से जो दो अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम कहा गया है, वह इस प्रकार है सातवे नरक की भव सम्बन्धी जघन्य स्थिति २२ सागरोपम की है। इस अपेक्षा से २२ सागरोपम और तृतीय मत्स्यभव-सम्बन्धी दो अन्तर्मुहूर्त समझने चाहिए तथा उत्कृष्ट ६६ सागरोपम कहा है। वह यो समझना चाहिए कि सातवी नरकपृथ्वी मे २२ सागरोपम की स्थिति से तीन बार उत्पन्न होता है, इस दृष्टि से ६६ सागरोपम हो जाते है तथा ४ पूर्वकोटि की अधिकता जो कही गई है, वह नारक भवो से अन्तरित चार मत्स्यभवो की अपेक्षा से होती है। फलितार्थ यह है कि सातवी नरकपृथ्वी मे जघन्य स्थिति वाले नैरयिको मे उत्कृष्टत. तीन वार ही उत्पन्न होता है, इस अपेक्षा से ६६ सागरोपम घटित हो जाते है। यदि ऐसा न हो तो उपर्युक्त परिमाण घटित नही हो सकता। यहाँ उत्कृष्ट काल की विवक्षा है। इसलिए जघन्य स्थिति वाले नैरयिको मे ३ वार उत्पन्न होने का कथन किया गया है तथा चार मत्स्यभवो की अपेक्षा से ४ पूर्वकोटि का कथन किया गया है। उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिको मे दो वार के उत्पाद से ६६ सागरोपम का प्रमाण लभ्य होता है और तीन मत्स्यभवो की अपेक्षा से तीन पूर्वकोटि का कथन किया गया है। यह **प्रथम गमक** है। जघन्यकाल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होने का **दूसरा गमक** है। उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पाद-सम्बन्धी **तृतीय गमक** है। इसमे उत्कृष्टत. पाच भव-ग्रहण का कथन है, जिनमे तीन मत्स्यभव और दो नारकभव समझने चाहिए। इनसे यह निश्चित हो जाता है कि सातवे नरक मे उत्कृष्ट स्थिति वाले नारको मे दो ही वार उत्पत्ति होती है। जघन्य स्थिति वाले सञ्ज्ञी-पचेन्द्रियतिर्यञ्च का जघन्य स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पादसम्बन्धी **चतुर्थ गमक** है। इसकी वक्तव्यता रत्नप्रभापृथ्वी के चौथे गमक के तुल्य है। अन्तर केवल इतना ही है कि रत्नप्रभा मे ६ सहनन और ३ वेद कहे गए हैं, किन्तु सातवे नरक के चौथे गमक मे केवल एक वज्रऋषभनाराचसहनन का कथन और स्त्रीवेद का निषेध करना चाहिए। शेष गमको का कथन स्पष्ट ही है।[1]

पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी-मनुष्यों को समुच्चयरूप से सातों नरकों में उत्पाद आदि प्ररूपणा

९२. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! सन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जति, नो असन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८१२

(ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भाग १४, पृ ४७६ से ४८७

[९२ प्र] भगवन् ! यदि वह नैरयिक मनुष्यो मे से आकर उत्पन्न होता है, तो क्या वह सज्ञी-मनुष्यो मे से या असज्ञी-मनुष्यो मे से उत्पन्न होता है ?

[९२ उ] गौतम ! वह सज्ञी-मनुष्यो मे से उत्पन्न होता है, असज्ञी मनुष्यो मे से उत्पन्न नही होता है ।

९३ जति सन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सखेज्जवासाउयसन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जति, असखेज्जवा० जाव उववज्जंति ?

गोयमा ! सखेज्जवासाउयसन्निमणु०, नो असखेज्जवासाउय जाव उववज्जति ।

[९३ प्र] भगवन् ! यदि वह सज्ञी-मनुष्यो मे से आ कर उत्पन्न होता है तो क्या सख्येय वर्ष की आयु वाले सज्ञी-मनुष्यो मे से अथवा असख्येय वर्ष की आयु वाले सज्ञी-मनुष्यो मे से उत्पन्न होता है ?

[९३ उ] गौतम ! वह सख्येय वर्ष की आयु वाले सज्ञी-मनुष्यो मे से उत्पन्न होता है, असख्येय वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो मे से उत्पन्न नही होता है ।

९४. जदि सखेज्जवासा० जाव उववज्जति कि पज्जत्तसखेज्जवासाउय०, अपज्जत्तसखेज्ज-वासाउय० ?

गोयमा ! पज्जत्तसखेज्जवासाउय० नो अपज्जत्तसखेज्जवासा उय० जाव उववज्जति ।

[९४ प्र] भगवन् ! यदि वह सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-मनुष्यो मे से आकर उत्पन्न होता है, तो क्या वह पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-मनुष्यो मे से या अपर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-मनुष्यो मे से उत्पन्न होता है ?

[९४ उ] गौतम ! वह पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-मनुष्यो मे से उत्पन्न होता है, अपर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-मनुष्यो मे से उत्पन्न नही होता है ।

९५ पज्जत्तसखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भते ! कतिसु पुढवीसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! सत्तसु पुढवीसु उववज्जेज्जा, त जहा रयणप्पभाए जाव अहेसत्तमाए ।

[९५ प्र] भगवन् ! सख्यात वर्ष की आयु वाला पर्याप्त मनुष्य, जो नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितनी नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होता है ?

[९५ उ] गौतम ! वह सातो ही नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न होता है, यथा—रत्नप्रभा मे, यावत् अध सप्तम नरकपृथ्वी मे ।

विवेचन –**निष्कर्ष** – सख्यात वर्ष की आयु वाला, पर्याप्त सज्ञी-मनुष्य सातो ही नरकपृथ्वियो मे से किसी मे भी उत्पन्न हो सकता है ।[1]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ९१७-९१८

रत्नप्रभानरक में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क मनुष्य में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

९६. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए रयणप्पभपुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेणं सागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[९६ प्र] भगवन् ! पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी-मनुष्य जो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

[९६ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

९७. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति। संघयणा छ। सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलपुहत्तं, उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं। एवं सेसं जहा सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं जाव भवादेसो त्ति, नवरं चत्तारि नाणा, तिन्नि अन्नाणा भयणाए, छ समुग्घाया केवलिवज्जा; ठिती अणुबंधो य जहन्नेणं मासपुहत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी। सेसं तं चेव। कालाएसेणं जहन्नेणं दस वाससहस्साइं मासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवतियं जाव करेज्जा। [सु० ९६-९७ पढमो गमओ]।

[९७ प्र] भगवन् ! वे जीव (संख्येयवर्षायुष्क पर्याप्त-संज्ञी मनुष्य) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

[९७ उ.] गौतम ! वे जीव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। उनमें छहों संहनन होते हैं। उनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल-पृथक्त्व (दो अंगुल से नौ अंगुल तक) की और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की होती है। शेष सब कथन यावत् भवादेश तक, संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के समान है। विशेष यह है, कि उनमें चार ज्ञान तथा तीन अज्ञान विकल्प से होते हैं। केवलिसमुद्घात को छोड़कर शेष छह समुद्घात होते हैं। उनकी स्थिति और अनुबन्ध जघन्य मासपृथक्त्व उत्कृष्ट पूर्वकोटि होता है। शेष सब पूर्ववत्। संवेधकाल की अपेक्षा से जघन्य मासपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम तक गमनागमन करता है। [सू ९६-९७ प्रथम गमक]

९८. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवरं कालादेसेणं जहन्नेणं दस वाससहस्साइं मासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चत्तालीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवतियं०। [सु० ९८ बीओ गमओ]।

[९८] यदि वह मनुष्य जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न हो तो उपर्युक्त सर्ववक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से—जघन्य मास-

पृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चालीस हजार वर्ष यावत् गमनागमन करता है। [सू ९८ द्वितीय गमक]

९९. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं सागरोवमं मासपुहत्तमब्भहियं, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं चउहि पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवतियं जाव करेज्जा। [सु० ९९ तइओ गमओ]।

[९९] यदि वह मनुष्य, उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो, तो पूर्वोक्त सर्व वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से—जघन्य मास-पृथक्त्व अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम, काल यावत् गमनागमन करता है। [सू ९९ तृतीय गमक]

१००. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, एसा चेव वत्तव्वता, नवरं इमाइं पंच नाणत्ताइं—सरीरोगाहणा जहन्नेण अंगुलपुहत्तं, उक्कोसेण वि अंगुलपुहत्तं १, तिन्नि नाणा, तिन्नि अन्नाणा भयणाए २, पंच समुग्घाया आविल्ला ३, ठिती ४ अणुबंधो ५ य जहन्नेणं मासपुहत्तं, उक्कोसेण वि मासपुहत्तं। सेसं तं चेव जाव भवादेसो त्ति। कालादेसेणं जहन्नेणं दस वाससहस्साइं मासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं मासपुहत्तेहिं अब्भहियाइं, एवतियं जाव करेज्जा। [सु० १०० चउत्थो गमओ]।

[१००] यदि वह मनुष्य स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला हो और रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो, तो उसके विषय मे भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। इसमे इन पाच बातो में विशेषता है—(१) उनके शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अगुल-पृथक्त्व होती है। (२) उनके तीन ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्प (भजना) से होते है। (३) उनके आदि के पाच समुद्घात होते है (४-५) उनकी स्थिति और अनुबन्ध जघन्य मासपृथक्त्व और उत्कृष्ट मास-पृथक्त्व होता है। शेष सब भवादेश तक पूर्ववत् जानना चाहिए। काल की अपेक्षा से जघन्य मास-पृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार मासपृथक्त्व अधिक चार सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू १०० चतुर्थ गमक]

१०१. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया चउत्थगमगसरिसा, नवरं कालाएसेण जहन्नेण दस वाससहस्साइं मासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण चत्तालीसं वाससहस्साइं चउहिं मासपुहत्तेहिं अब्भहियाइं, एवतियं जाव करेज्जा। [सु० १०१ पंचमो गमओ]।

[१०१] यदि वह मनुष्य स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला हो और रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो, तो पूर्वोक्त चतुर्थगमक के समान इसकी वक्तव्यता समझना। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से— जघन्य मासपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार मासपृथक्त्व अधिक चालीस हजार वर्ष काल यावत् गमनागमन करता है। [सू १०१ पचम गमक]

१०२. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव गमगो, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं सागरोवमं मासपुहत्तमब्भहियं, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं मासपुहत्तेहिं अब्भहियाइं, एवतियं जाव करेज्जा। [सु० १०२ छट्ठो गमओ]।

[१०२] यदि वह जघन्य कालस्थिति वाला मनुष्य, उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न हो, तो पूर्वोक्त गमक के समान जानना। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से जघन्य मासपृथक्त्व अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार मासपृथक्त्व अधिक चार सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू १०२ छठा गमक]

१०३. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जातो, सो चेव पढमगमओ नेयव्वो, नवरं सरीरोगाहणा जहन्नेण पच धणुसयाइ, उक्कोसेण वि पच धणुसयाइं; ठिती जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी; एव अणुबधो वि, कालाएसेण जहन्नेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइ चउहिं पुव्वकोडीहि अब्भहियाइं, एवतियं काल जाव करेज्जा। [सु० १०३ सत्तमो गमओ]।

[१०३] यदि वह मनुष्य स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और (रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे) उत्पन्न हो, तो उसके विषय मे प्रथम गमक के समान समझना। विशेषता यह है कि उसके शरीर की अवगाहना जघन्य पाच सौ धनुष और उत्कृष्ट भी पाच सौ धनुष की होती है। स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की होती है एव अनुबन्ध भी उसी प्रकार जानना। काल की अपेक्षा से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू १०३ सप्तम गमक]

१०४. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, स च्चेव सत्तमगमगवत्तव्वया, नवरं कालाएसेण जहन्नेण पुव्वकोडी दसहि वाससहस्सेहि अब्भहिया, उक्कोसेण चत्तारि पुव्वकोडीओ चत्तालीसाए वाससहस्सेहि अब्भहियाओ, एवतिय कालं जाव करेज्जा। [सु० १०४ अट्ठमो गमओ]।

[१०४] यदि वही (उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला) मनुष्य, जघन्य काल की स्थिति वाले (रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको) मे उत्पन्न हो, तो उसकी वक्तव्यता सप्तम गमक के समान जानना। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चालीस हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू. १०४ अष्टम गमक]

१०५. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, सा चेव सत्तमगमगवत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं सागरोवम पुव्वकोडीए अब्भहिय, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइ, एवतिय काल सेवेज्जा जाव करेज्जा। [सु० १०५ नवमो गमओ]।

[१०५] यदि वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला मनुष्य, उत्कृष्ट स्थिति वाले (रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको) मे उत्पन्न हो तो उसी पूर्वोक्त सप्तम गमक के समान वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से जघन्य पूर्वकोटि अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करता है। [सू. १०५ नौवाँ गमक]

विवेचन रत्नप्रभा के नैरयिको मे उत्पत्ति-परिमाणादि-विचार—रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य पर्याप्तक, सख्यातवर्ष की आयु वाले और सज्ञी होते हैं, क्योकि सज्ञी मनुष्य सदा सख्यात ही होते है, इसलिए उत्कृष्ट रूप से इनकी उत्पत्ति सख्यात ही होती है।[1]

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८१६-८१७

ज्ञान-अज्ञान—नरक मे उत्पन्न होने वाले गर्भज मनुष्य के चार ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्प से कहे गए है, चूर्णिकार द्वारा इसका समाधान किया गया है कि जो मनुष्य अवधिज्ञान, मन.पर्याय-ज्ञान और आहारकशरीर प्राप्त करके वहाँ से गिर कर नरक मे उत्पन्न होता है, उस मनुष्य मे अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान और आहारकशरीर उसकी पूर्वावस्था को लेकर समझना चाहिए। इस दृष्टि से उक्त मनुष्य मे ४ ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्प से बताये गए है।[1]

जघन्य स्थिति मासपृथक्त्व : कैसे ?—सिद्धान्त यह है कि दो मास से कम आयुष्य (स्थिति) वाला मनुष्य नरकगति मे नही जाता, इसलिए नरकगति मे जाने वाले मनुष्य की जघन्य आयु (स्थिति) मासपृथक्त्व होती है।[2]

संवेधकाल- मनुष्यभव की अपेक्षा—मनुष्य होकर यदि नरकगति मे उत्पन्न हो तो एक नरकपृथ्वी मे चार बार उत्पन्न होता है, उसके पश्चात् वह निश्चय ही तिर्यञ्च होता है। इसलिए मनुष्यभवसम्बन्धी सवेधकाल चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम का कहा गया है।[3]

चौथे गमक मे पाँच विशेष बातें- जघन्य स्थिति वाले मनुष्य की नरकोत्पत्ति सम्बन्धी चतुर्थ गमक मे पाच नानात्व (विशेषताएँ) पाए जाते है—(१) यहाँ शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अगुलपृथक्त्व बताई गई है, जबकि प्रथम गमक मे जघन्य अगुलपृथक्त्व और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की बताई गई है। (२) प्रथम गमक मे ४ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से बताए गए है, परन्तु यहाँ ३ ज्ञान और ३ अज्ञान भजना से बतलाए गए है, क्योकि जघन्य स्थिति वाले मनुष्य मे इन्ही का सद्भाव होता है। (३) प्रथम गमक मे ६ समुद्घात बतलाये गए है, जबकि यहाँ जघन्य स्थिति वाले मनुष्य मे आहारकसमुद्घात नही पाया जाता। (४-५) प्रथम गमक मे स्थिति और अनुबन्ध जघन्य मासपृथक्त्व, उत्कृष्ट पूर्वकोटि बतलाया गया है, जबकि यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट मास पृथक्त्व ही बतलाया गया है। शेष गमको का कथन स्पष्ट है, स्वयमेव चिन्तन कर लेना चाहिए।[4]

शर्कराप्रभानरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी-मनुष्य में उपपात परिमाणादि द्वारों की प्ररूपणा

१०६. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइएसु जाव उववज्जित्तए से णं भंते ! केवति जाव उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण सागरोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण तिसागरोवमठितीएसु उववज्जेज्जा।

[१०६ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-मनुष्य, जो शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है ?

---

१ (क) ओहिनाण-मणपज्जवनाण-आहारय-शरीराणि लद्धूण परिसाडित्ता उववज्जति। - भगवती चूर्णि
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८१७

२ वही, पत्र ८१७

३ वही पत्र ८१७

४. वही, पत्र ८१७

[१०६ उ.] गौतम ! वह जघन्य एक सागरोपम की और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की स्थिति वाले शर्कराप्रभा-नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

१०७. ते णं भंते ! ० ?

एवं सो चेव रयणप्पभपुढविगमश्रो नेयव्वो, नवर सरीरोगाहणा जहन्नेणं रयणिपुहत्तं, उक्कोसेण पच धणुसयाइ, ठिती जहन्नेणं वासपुहत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडी, एव अणुबंधो वि। सेसं त चेव जाव भवादेसो त्ति; कालाएसेण जहन्नेण सागरोवमं वासपुहत्तमब्भहिय, उक्कोसेण बारस सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहि अब्भहियाइ, एवतिय जाव करेज्जा।

[१०७ प्र] भगवन् ! वे जीव वहाँ एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[१०७ उ] गौतम ! उनके विषय मे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के समान गमक जानना चाहिए। विशेष यह है कि उनके शरीर की अवगाहना जघन्य रत्निपृथक्त्व (दो हाथ से लेकर नौ हाथ तक) और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष होती है। उनकी स्थिति जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की होती है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी समझना चाहिए। शेष सब कथन भवादेश तक पूर्ववत् समझना। काल की अपेक्षा से—जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक बारह सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करता है।

१०८. एवं एसा ओहिएसु तिसु गमएसु मणूसस्स लद्धी, नाणत्तं नेरइयट्ठिति कालाएसेण संवेहं च जाणेज्जा। [सु० १०६—८ पढम-बीय-तइयगमा]।

[१०८] इस प्रकार औघिक के तीनो गमक (औघिक का औघिक मे उत्पन्न होना, औघिक का जघन्य स्थिति वाले शर्कराप्रभा-नैरयिको मे उत्पन्न होना और औघिक का उत्कृष्ट स्थिति वाले शर्कराप्रभा-नैरयिको मे उत्पन्न होना) मनुष्य की वक्तव्यता के समान जानना। विशेषता नैरयिक की स्थिति और कालादेश से सवेध जान लेना चाहिए। [सू १०६-१०७-१०८ प्रथम-द्वितीय-तृतीय गमक]

१०९. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि तिसु गमएसु एसा चेव लद्धी; नवर सरीरोगाहणा जहन्नेण रयणिपुहत्त, उक्कोसेण वि रयणिपुहत्तं; ठिती जहन्नेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेण वि वासपुहत्त; एव अणुबधो वि। सेस जहा ओहियाण। सवेहो उवजुंजिऊण भाणियव्वो। [सु० १०९ चउत्थ-पंचम-छट्ठगमा]।

[१०९] यदि वह स्वय जघन्य स्थिति वाला सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य, शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न हो, तो तीनो गमको (शर्कराप्रभा नैरयिको मे जघन्यकाल की स्थिति वाले श प्र नैरयिको मे और उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले श प्र नैरयिको मे उत्पन्न होने से सम्बन्धित गमक) मे पूर्वोक्त वही वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि उनके शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट भी रत्निपृथक्त्व होती है। उनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व की होती है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी होता है। शेष सब कथन औघिक गमक के समान जानना। सवेध भी उपयोगपूर्वक समझ लेना चाहिए। [सू १०९ चार-पांच-छह गमक]

११०. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु इमं णाणत्तं— सरीरोगाहणा जहन्नेणं पंच धणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंच धणुसयाइं; ठिती जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी; एवं अणुबंधो वि। सेसं जहा पढमगमए, नवरं नेरइयठितिं कायसंवेहं च जाणेज्जा [सु० ११० सत्तम-अट्ठम-नवमगमा]।

[११०] यदि वह मनुष्य स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न हो, तो उसके भी तीनों गमकों (शर्कराप्रभापृथ्वीनैरयिकों में, जघन्य स्थिति वाले श. प्र. नैरयिकों में और उत्कृष्ट स्थिति वाले श. प्र. नैरयिकों में उत्पन्न होने सम्बन्धी गमक) में विशेषता इस प्रकार है—उनके शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की होती है। उनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटिवर्ष की होती है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी समझना। शेष सब प्रथम गमक के समान है। विशेषता यह है कि नैरयिक की स्थिति और कायसंवेध तदनुकूल जानना चाहिए। [सू. ११० सातवाँ-आठवाँ-नौवाँ गमक]

विवेचन—शर्कराप्रभापृथ्वी में उत्पत्ति आदि सम्बन्धी प्रश्नोत्तर—दो रत्नि (हाथ) से कम की अवगाहना वाले और दो वर्ष से कम आयुष्य वाले मनुष्य दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रथम-द्वितीय-तृतीय गमक में नानात्व कथन—(१) औधिक मनुष्य की औधिक नारकों में उत्पत्ति-सम्बन्धी प्रथम गमक में स्थिति आदि का निर्देश मूल पाठ में कर दिया है। (२) औधिक मनुष्य की जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पत्तिसम्बन्धी द्वितीय गमक में नैरयिक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम होती है। काल की अपेक्षा से संवेध—जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम होता है। (३) औधिक मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पत्ति सम्बन्धी तृतीय गमक में भी इसी प्रकार जानना चाहिए, किन्तु इसका कालतः संवेध जघन्य तीन सागरोपम और उत्कृष्ट बारह सागरोपम होता है।

चार-पांच-छह गमक में विशेष कथन—(४) जघन्य स्थिति वाले मनुष्य की औधिक नरक में उत्पत्तिसम्बन्धी चतुर्थ गमक में काल की अपेक्षा संवेध वर्षपृथक्त्व अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार वर्षपृथक्त्व अधिक बारह सागरोपम होता है, (५) जघन्य स्थिति वाले मनुष्य की जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पत्ति सम्बन्धी पंचम गमक में कायसंवेध काल की अपेक्षा से जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार वर्षपृथक्त्व अधिक चार सागरोपम होता है। इसी प्रकार (६) छठा गमक भी उपयोग-पूर्वक जानना चाहिए।

सप्तम-अष्टम-नवम गमक में विशेष कथन (७) उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्य की औधिक नारकों में उत्पत्ति सम्बन्धी सप्तम गमक, (८) उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्य की जघन्य स्थिति वाले नारकों में उत्पत्ति सम्बन्धी अष्टम गमक एवं (९) उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में उत्पत्ति-सम्बन्धी नवम गमक में शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की है। इसी प्रकार दूसरे नानात्व भी समझ लेने चाहिए। तिर्यञ्च की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की कही गई थी, लेकिन मनुष्यगमकों में मनुष्य स्थिति कहनी चाहिए। किन्तु शर्करा-

प्रभादि नरको मे जाने वाले मनुष्यो की स्थिति जघन्य वर्षपृथक्त्व की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की होती है।[1]

बालुका-पंक-धूम-तमः प्रभा नरक में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त-संख्येयवर्षायुष्कसंज्ञी-मनुष्य में उपपात-परिमाणादि द्वारों की प्ररूपणा

१११. एवं जाव छट्ठपुढवी, नवरं तच्चाए आढवेत्ता एक्केक्कं संघयणं परिहायति जहेव तिरिक्खजोणियाणं; कालादेसो वि तहेव, नवरं मणुस्सट्ठिती जाणियव्वा।

[१११] इसी प्रकार छठी नरकपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि तीसरी नरकपृथ्वी से लेकर आगे तिर्यञ्चयोनिक के समान एक-एक सहनन कम होता है। कालादेश भी इसी प्रकार कहना चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि यहाँ मनुष्यो की स्थिति जाननी चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत १११वे सूत्र मे तीसरी से छठी नरकपृथ्वी तक उत्पत्ति आदि के कथन का पूर्ववत् अतिदेश किया गया है। जो विशेषताएँ हैं वे मूल पाठ मे स्पष्ट हैं।

सप्तमनरक में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त-संख्येयवर्षायुष्कसंज्ञी-मनुष्य में उपपात-परिमाणादि द्वारों की प्ररूपणा

११२. पज्जत्तसखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते! जे भविए अहेसत्तमपुढविनेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! जहन्नेणं बावीससागरोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेणं तेत्तीससागरोवमट्ठिसीएसु उववज्जेज्जा।

[११२ प्र] भगवन्! पर्याप्त-सख्येयवर्षायुष्क-सज्ञी मनुष्य, जो सप्तमपृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है?

[११२ उ] गौतम! वह जघन्य बाईस सागरोपम की स्थिति वाले और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिको मे उत्पन्न होता है।

११३. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं० ?

अवसेसो सो चेव सक्करप्पभापुढविगमओ नेयव्वो, नवर पढमं संघयणं, इत्थिवेदगा न उववज्जंति। सेसं तं चेव जाव अणुबधो त्ति। भवादेसेण दो भवग्गहणाइं; कालादेसेण जहन्नेणं बावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवतिय जाव करेज्जा। [सु० ११२-१३ पढमो गमओ]।

[११३ प्र] भगवन्! वे जीव एक समय मे (कितने उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।)

[११३ उ] (गौतम!) इसकी सभी वक्तव्यता पूर्ववत् शर्कराप्रभापृथ्वी के गमक के समान समझनी चाहिए। विशेष यह है कि सातवी नरकपृथ्वी मे प्रथम सहनन वाले ही उत्पन्न होते है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८१७

वहाँ स्त्रीवेदी उत्पन्न नही होते। शेष समग्र कथन अनुबन्ध तक पूर्ववत् जानना चाहिए। भव की अपेक्षा से--दो भव ग्रहण और काल की अपेक्षा से जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। [सू ११२-११३ प्रथम गमक]

११४. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवरं नेरइयट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा। [सु० ११४ बीओ गमओ]।

[११४] यदि वही मनुष्य, जघन्य काल की स्थिति वाले सप्तमपृथ्वी-नारको मे उत्पन्न हो, तो भी यही (पूर्वोक्त) वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ नैरयिक की स्थिति और संवेध स्वय विचार करके कहना चाहिए। [११४ द्वितीय गमक]

११५. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवर संवेहं जाणेज्जा। [सु० ११५ तइओ गमओ]।

[११५] यदि वही मनुष्य, उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सप्तमपृथ्वी के नारको मे उत्पन्न हो, तो भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि इसका सवेध स्वय जान लेना चाहिए। [सू ११५ तृतीय गमक]

११६. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु एसा चेव वत्तव्वया, नवरं सरीरोगाहणा जहन्नेणं रयणिपुहत्तं; उक्कोसेण वि रयणिपुहत्तं, ठिती जहन्नेणं वासपुहत्त, उक्कोसेण वि वासपुहत्त; एवं अणुबंधो वि; सवेहो उवजुंजिऊण भाणियव्वो। [सु० ११६ चउत्थ-पंचम-छट्ठगमा]।

[११६] यदि वही (पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी-मनुष्य) स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और सप्तमपृथ्वी के नारको मे उत्पन्न हो, तो तीनो गमको (जघन्य स्थिति वाले सज्ञी मनुष्य की सप्तमनरकपृथ्वी के नारको मे उत्पत्ति-सम्बन्धी चतुर्थ गमक, इसी मनुष्य की जघन्य स्थिति वाले सप्तम नरक के नारको मे उत्पत्ति-सम्बन्धी पचम गमक और इसी मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति वाले सप्तमपृथ्वी के नारको मे उत्पत्ति सम्बन्धी छठे गमक) मे यही वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि उसके शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट रत्निपृथक्त्व होती है। उनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार होता है। सवेध के विषय मे उपयोग पूर्वक कहना चाहिए। [सू ११६ चतुर्थ-पचम-षष्ठ गमक]

११७. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु एसा चेव वत्तव्वया, नवर सरीरोगाहणा जहन्नेण पंच धणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंच धणुसयाइं; ठिती जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी; एव अणुबधो वि। नवसु वि एएसु गमएसु नेरइयट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा। सव्वत्थ भवग्गहणाइ दोन्नि जाव नवमगमए कालादेसेण जहन्नेण तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं उक्कोसेण वि तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवतियं कालं सेवेज्जा, एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा। [सु० ११७ सत्तम-अट्ठम-नवमगमा]।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।

।। चउवीसइम सते : पढमो उद्देसओ समत्तो ।।२४-१।।

[११७] यदि वह सज्ञी मनुष्य स्वय उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और सप्तम नरकपृथ्वी मे उत्पन्न हो, तो उसके भी तीनो गमको मे (उत्कृष्ट स्थिति वाले सज्ञी मनुष्य की सप्तम नरक के नारको मे उत्पत्तिसम्बन्धी सप्तम गमक, ऐसे ही मनुष्य की जघन्य स्थिति वाले सप्तम नरक के नारको मे उत्पत्तिसम्बन्धी अष्टम गमक और ऐसे ही मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति वाले सप्तम नरक के नारको मे उत्पत्तिसम्बन्धी नवम गमक यही (पूर्वोक्त) वक्तव्यता समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की है। स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटिवर्ष की है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी जानना चाहिए। इन (उपर्युक्त) नौ ही गमको मे नैरयिको की स्थिति और सवेध स्वय विचार कर जान लेना चाहिए। यावत् नौवे गमक तक दो ही भवग्रहण होता है, काल की अपेक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम, इतना काल सेवन (यापन) करता है और इतने काल तक गमनागमन करता है। [सू ११७ सप्तम-अष्टम-नवम-गमक]

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—**सप्तम नरकपृथ्वी मे कायसंवेध**—सप्तम नरकपृथ्वीसम्बन्धी प्रथम गमक मे काय-सवेध उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम कहा गया है, क्योकि सातवे नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य रूप से उत्पन्न नही होता। अत प्रथम मनुष्य का भव और दूसरा सप्तम नरक का भव, इन दो भवो मे कायसवेध इतने ही काल का होता है। नौ ही गमको मे भव की अपेक्षा से सज्ञी मनुष्य दो भव ही ग्रहण करता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।[1]

।। चौवीसवाँ शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८१७

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा २ (मूलपाठ-टिप्पणी) पृ. ९२१

बिइओ : असुरकुमारुद्देसओ

द्वितीय उद्देशक : असुरकुमारों का उपपात

गति की अपेक्षा से असुरकुमारों के उपपात की प्ररूपणा

१. रायगिहे जाव एव वयासि—

[१] राजगृह नगर मे गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

२. असुरकुमारा णं भंते ! कओहितो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरि-मणु-देवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जति ।

[२ प्र] भगवन् ! असुरकुमार कहाँ से—किस गति से उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है या तिर्यञ्चो से, मनुष्यो से अथवा देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[२ उ] गौतम ! वे नैरयिको से आकर उत्पन्न नही होते, तिर्यञ्चयोनिको और मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु देवो से आकर उत्पन्न नही होते ।

विवेचन—असुरकुमारो की उत्पत्ति· वे नारको और देवो से उत्पन्न नही होते, किन्तु या तो वे तिर्यञ्चो से अथवा मनुष्यो से मरण करके उत्पन्न होते है ।

असुरकुमार मे उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक की उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

३ एव जहेव नेरइयउद्देसए जाव पज्जत्तप्रसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! जे भविए असुकुरमारेसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीयेसु, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जतिभागकाल-ट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[३ प्र] जिस प्रकार नैरयिक उद्देशक मे प्रश्न है, इसी प्रकार (यहाँ भी प्रश्न है—) भगवन् ! पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, जो असुरकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है ?

[३ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है ।

४. ते णं भंते ! जीवा० ?

एवं रयणप्पभागमगसरिसा नव वि गमा भाणियव्वा, नवरं जाहे अप्पणा जहन्नकालट्ठितीयो भवति ताहे अज्झवसाणा पसत्था, नो अप्पसत्था तिसु वि गमएसु । अवसेसं तं चेव । [गमा १-९] ।

[४ प्र.] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

[४ उ.] (गौतम !) यहाँ रत्नप्रभापृथ्वी के गमको के समान सभी—नौ ही गमक कहने चाहिये। विशेष यह है कि यदि वह स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो, तो तीनो गमको में अध्यवसाय प्रशस्त होते है, अप्रशस्त नही होते। शेष सब कथन पूर्ववत् जानना। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—उत्कृष्ट स्थिति के समकक्ष मान—यहाँ पर्याप्त असज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, जो असुर कुमारो मे उत्पन्न होता है, उसकी उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग बतलाई है, यह कालमान पूर्वकोटिरूप समझना चाहिए, क्योकि सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्वकोटि-परिमाण होता है और वह अपने आयुष्य के समान ही उत्कृष्ट देवायु बाधता है। चूर्णिकार भी इसी तथ्य का समर्थन करते है—

'उक्कोसेण स तुल्लपुव्वकोडी आउयत्तं णिव्वत्तेइ ण य
सम्मुच्छिमो पुव्वकोडी-आउयत्ताओ परो अत्थि।'

अर्थात्—समूर्च्छिम तिर्यञ्च का आयुष्य पूर्वकोटि से अधिक नही होता। इसलिये वह देवभव मे भी उत्कृष्टत पूर्वकोटि-परिणाम ही आयुष्य बाधता है, अधिक नही।[1]

अध्यवसाय : प्रशस्त या अप्रशस्त ?—पर्याप्त असज्ञी-तिर्यञ्च पचेन्द्रिय के चौथे, पाँचवे और छठे गमक मे प्रशस्त अध्यवसाय होते है, अप्रशस्त अध्यवसाय नही।[2]

संख्येयवर्षायुष्क-असंख्येयवर्षायुष्क संज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक की असुरकुमारों में उपपात-प्ररूपणा

५. जदि सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउयसन्नि० जाव उववज्जंति, असंखेज्जवासाउय० जाव उववज्जंति ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउय० जाव उववज्जति, असखेज्जवासाउय० जाव उववज्जंति ।

[५ प्र] भगवन् ! यदि सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव असुरकुमारो मे उत्पन्न हो तो क्या वह सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होता है, अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी तिर्यञ्च पचेन्द्रिय जीवो से आकर उत्पन्न होता है ?

[५ उ.] गौतम ! वह सख्यात वर्ष और असख्यात वर्ष की आयु वाले दोनो प्रकार के तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होता है।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२०

२ वही, पत्र ८२०

विवेचन—निष्कर्ष- जो सज्ञी-तिर्यञ्च पचेन्द्रिय असुरकुमारो मे आकर उत्पन्न होते हैं, वे दोनो प्रकार के होते है—सख्यात वर्ष की आयु वाले और असख्यात वर्ष की आयु वाले ।[1]

असुरकुमार में उत्पन्न होने वाले असंख्येयवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक की उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

६. असखेज्जवासाउयसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु उववज्जेज्जा, उक्कोसेणं तिपलिओवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[६ प्र] भगवन् ! असख्यातवर्ष की आयु वाले सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, जो असुरकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है ?

[६ उ.] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है ।

७. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा उववज्जंति । वयरोसभनारायसंघयणी । ओगाहणा जहन्नेण धणुपुहत्त, उक्कोसेणं छग्गाउयाइं । समचउरससंठाणसठिया पन्नत्ता । चत्तारि लेस्साओ आदिल्लाओ । नो सम्मद्दिट्ठी, मिच्छाद्दिट्ठी, नो सम्मामिच्छाद्दिट्ठी । नो नाणी, अन्नाणी, नियमं दुअण्णाणी, त जहा- मतिअन्नाणी, सुयअन्नाणी य । जोगो तिविहो वि । उवयोगो दुविहो वि । चत्तारि सण्णाओ । चत्तारि कसाया । पंच इंदिया । तिन्नि समुग्घाया आदिल्लगा । समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति । वेयणा दुविहा वि । इत्थिवेदगा वि, पुरिसवेदगा वि, नो नपुंसगवेदगा । ठिती जहन्नेणं सातिरेगा पुव्वकोडी, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं । अज्झवसाणा पसत्था वि अप्पसत्था वि । अणुबंधो जहेव ठिती । कायसंवेहो भवाएसेणं दो भवग्गहणाइं; कालाएसेणं जहन्नेण सातिरेगा पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेण छप्पलिओवमाइं, एवतियं जाव करेज्जा । [पढमो गमओ] ।

[७ प्र] भगवान् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[७ उ] गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते हैं । वे वज्र-ऋषभनाराचसहनन वाले होते है । उनकी अवगाहना जघन्य धनुषपृथक्त्व की और उत्कृष्ट छह गाऊ (गव्यूति दो कोस) की होती है । वे समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं । उनमे प्रारम्भ की चार लेश्याएँ होती है । वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते, केवल मिथ्यादृष्टि होते हैं । वे ज्ञानी नही, अज्ञानी होते है । उनमे नियम से दो अज्ञान होते हैं—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान । उनमे योग तीनो ही पाये जाते हैं । उपयोग भी दोनो प्रकार के होते है । उनमे चार

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, पृ ९२२

संज्ञा, चार कषाय, पांच इन्द्रियाँ तथा आदि के तीन समुद्घात होते हैं। वे समुद्घात करके भी मरते हैं और समुद्घात किये बिना भी मरते हैं। उनमे साता और असाता दोनो प्रकार की वेदना होती है। वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी होते हैं, नपुंसकवेदी नही होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य कुछ अधिक (सातिरेक) पूर्वकोटि वर्ष की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। उनके अध्यवसाय प्रशस्त भी और अप्रशस्त भी होते हैं। उनका अनुबन्ध स्थिति के तुल्य होता है, कायसंवेध—भव की अपेक्षा से—दो भव ग्रहण करते हैं, काल की अपेक्षा से—जघन्य दस हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट छह पल्योपम, इतने काल तक गमनागमन करते है। [सू ६-७ प्रथम गमक]

८. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवरं असुरकुमारट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा। [बीओ गमओ]।

[८] यदि वह (असख्यातवर्षायुष्क पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जीव जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न हो तो इसकी वक्तव्यता पूर्वोक्तानुसार जाननी चाहिए। विशेष असुरकुमारों की स्थिति और सवेध स्वय जान लेना चाहिए। [सू ८ द्वितीय गमक]

९. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण तिपलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि तिपलिओवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा। एसा चेव वत्तव्वया, नवरं ठिती से जहन्नेणं तिण्णि पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि तिन्नि पलिओवमाइं। एव अणुबंधो वि, कालाएसेणं जहन्नेणं छप्पलिओवमाइं, एवतियं० सेस तं चेव। [तइओ गमओ]।

[९] यदि वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न हो, तो वह जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना। विशेष यह है कि उसकी स्थिति अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम होता है। काल की अपेक्षा से—जघन्य और उत्कृष्ट छह पल्योपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। शेष सब कथन पूर्ववत् जानना। [सू. ९ तृतीय गमक]

१०. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेणं सातिरेगपुव्वकोडिआउएसु उववज्जेज्जा।

[१०] यदि वह (असख्यातवर्षायुष्क सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और असुरकुमारो में उत्पन्न हो, तो वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट सातिरेक पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है।

११. ते णं भंते!० ?

अवसेसं तं चेव जाव भवाएसो त्ति, नवरं ओगाहणा जहन्नेण धणुपुहत्तं, उक्कोसेणं सातिरेगं धणुसहस्सं। ठिती जहन्नेणं सातिरेगा पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि सातिरेगा पुव्वकोडी, एवं अणुबंधो वि। कालाएसेणं जहन्नेणं सातिरेगा पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं सातिरेगाओ दो पुव्वकोडीओ, एवतियं०। [चउत्थो गमओ]।

[११ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[११ उ] (गौतम !) शेष सब कथन, यावत् भवादेश तक उसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना। विशेष यह है कि उनकी अवगाहना जघन्य धनुषपृथक्त्व और उत्कृष्ट सातिरेक एक हजार धनुष। उनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट सातिरेक पूर्वकोटि की जानना। अनुबन्ध भी इसी प्रकार है। काल की अपेक्षा से—जघन्य दस हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट सातिरेक दो पूर्वकोटि, इतने काल तक गमनागमन करता है। [सू ११ चतुर्थ गमक]

१२. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवरं असुरकुमारट्ठितिं संवेहं च जाणेज्जा। [पंचमो गमओ]।

[१२] यदि वह जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न हो तो उसके विषय में यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ असुरकुमारो की स्थिति और संवेध के विषय मे विचार कर स्वय जान लेना। [सू. १२ पचम गमक]

१३. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण सातिरेगपुव्वकोडिआउएसु, उक्कोसेण वि सातिरेगपुव्वकोडिआउएसु उववज्जेज्जा। सेस त चेव, नवर कालाएसेणं जहन्नेणं सातिरेगाओ दो पुव्वकोडीओ, उक्कोसेण वि सातिरेगाओ दो पुव्वकोडीओ, एवतिय काल सेवेज्जा०। [छट्ठो गमओ]।

[१३] यदि वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट सातिरेक पूर्वकोटिवर्ष की आयु वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है। शेष सब पूर्वकथित वक्तव्यतानुसार जानना। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से—जघन्य और उत्कृष्ट सातिरेक (कुछ अधिक) दो पूर्वकोटिवर्ष, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [सू १३ छठा गमक]

१४. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, सो चेव पढमगमओ भाणियव्वो, नवर ठिती जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि तिन्नि पलिओवमाइ। एव अणुबंधो वि। कालाएसेण जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइ दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहियाइ, उक्कोसेण छ पलिओवमाइ, एवतिय० [सत्तमो गमओ]।

[१४] वही जीव स्वय उत्कृष्टकाल की स्थिति वाला हो और असुरकुमारो मे उत्पन्न हो, तो उसके लिये वही प्रथम गमक कहना चाहिए। विशेष यह है कि उसकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है तथा उसका अनुबन्ध भी इसी प्रकार जानना। काल की अपेक्षा से—जघन्य दस हजार वर्ष अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट छह पल्योपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [सू १४ सप्तम गमक]

१५. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवर असुरकुमारट्ठितिं संवेहं च जाणिज्जा। [अट्ठमो गमओ]।

[१५] यदि वह (उत्कृष्ट स्थिति वाला सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न हो, तो उसके विषय मे भी पूर्वोक्त वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष

यह है कि असुरकुमारो की स्थिति और सवेध का कथन यहाँ विचारपूर्वक जान लेना चाहिए। [सू. १५ अष्टम गमक]

१६. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेणं तिपलिओवमं, उक्कोसेण वि तिपलिओवमं। एसा चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं छप्पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि छप्पलिओवमाइं, एवतियं०। [नवमो गमओ]।

[१६] यदि वह (उत्कृष्ट स्थिति वाला सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न हो, तो वह जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है, इत्यादि वही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से—जघन्य और उत्कृष्ट छह पल्योपम, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है। [सू. १६ नौवाँ गमक]

विवेचन—असुरकुमारो मे संज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की उत्पत्ति आदि से सम्बन्धित कुछ स्पष्टीकरण—(१) **असख्यातवर्ष की आयु** वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च की जो उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की बतलाई गई है, वह देवकुरु आदि के युगलिक तिर्यञ्चो की अपेक्षा से समझनी चाहिए, क्योकि उनकी तीन पल्योपमरूप असख्यात वर्ष की आयु होती है और वे उत्कृष्ट अपनी आयु के तुल्य ही देवायु का बन्ध करते है। वे उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते हैं, क्योकि असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्च, मनुष्यक्षेत्रवर्ती ही होने से सदा सख्यात ही होते है, असख्यात कदापि नही होते।[1]

उनके सहनन आदि—उनमे एकमात्र वज्रऋषभनाराच सहनन ही पाया जाता है, क्योकि असख्यात वर्षायुष्को मे यही सहनन होता है। उनकी अवगाहना जो धनुषपृथक्त्व कही गई है, वह पक्षियो की अपेक्षा समझनी चाहिए। उनकी आयु पल्योपम के असख्यातवे भाग परिमाण होने से वे असख्यात वर्ष की आयु वाले होते है। उत्कृष्ट अगवाहना, जो छह गाऊ की बताई गई है, वह देवकुरु आदि मे उत्पन्न हाथी आदि की अपेक्षा से समझनी चाहिए। असख्यातवर्ष की आयु वाले नपुसकवेदी नही होते, वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी ही होते है। उत्कृष्ट छह पल्योपम की स्थिति बतलाई गई है, वह तीन पल्योपम तो तिर्यञ्च-भव-सम्बन्धी और तीन पल्योपम असुरकुमार-भव-सम्बन्धी समझनी चाहिए। जीव, देवभव से निकल कर फिर असख्यातवर्ष की आयुष्य वाले जीवो मे उत्पन्न नही होते।[2]

जघन्य काल की स्थिति रूप चतुर्थ गमक के विषय मे कुछ स्पष्टीकरण—जघन्य काल की स्थिति वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्च की स्थिति सातिरेक पूर्वकोटि की कही है, वह पक्षी आदि के लिए समझनी चाहिए। उत्कृष्ट स्थिति सातिरेक पूर्वकोटि की बतलाई गई है, उसका आशय यह है कि असख्यात वर्ष की आयु वाले पक्षी आदि की स्थिति सातिरेक पूर्वकोटि की होती है और वह अपनी उत्कृष्ट आयु के बराबर ही देवायु का बन्ध करता है। उत्कृष्ट अवगाहना सातिरेक एक हजार धनुष की बतलाई गई है, वह सातवे कुलकर से पहले होने वाली हस्ति आदि की अपेक्षा से समझनी

---

१ भगवती, अ. वृत्ति, पत्र, ८२०

२ वही, पत्र ८२०

चाहिए, क्योकि यहाँ जघन्य स्थिति वाले असख्यात वर्षायुष्क तिर्यञ्च का प्रकरण चल रहा है। उसकी आयु सातिरेक पूर्वकोटि की होती है। इस प्रकार का हस्ती आदि सातवे कुलकर के समय मे या उससे पहले पाया जाता है। सातवे कुलकर की अवगाहना तो ५०० धनुष होती है, उससे पहले होने वाले कुलकरो की अवगाहना उससे अधिक होती है और उसके समय में होने वाले हस्ति आदि की अवगाहना उससे दुगुनी होती है। अत सप्तम कुलकर अथवा उससे पहले होने वाले असख्यात वर्ष की आयु वाले हस्ती आदि मे ही उपर्युक्त अवगाहना-प्रमाण पाया जाता है।[1]

चौथे गमक मे जो सातिरेक दो पूर्वकोटि की स्थिति बताई गई है उसमे एक सातिरेक पूर्वकोटि तो तिर्यञ्च-भव-सम्बन्धी जाननी चाहिए और एक सातिरेकपूर्वकोटि असुरकुमार-भव-सम्बन्धी समझनी चाहिए। असुरकुमारो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है और उनका सवेध सातिरेक पूर्वकोटि सहित दस हजार वर्ष का होता है।[2] शेष गमको के विषय मे स्वयमेव विचार कर लेना चाहिए।

असुरकुमार में उत्पन्न होने वाले संख्येय वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक में उपपातादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१७. जति सखेज्जवासाउयसन्निपचेंदिय० जाव उववज्जति किं जलचर एव जाव पज्जत्त-संखेज्जवासाउयसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए से ण भंते! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण सातिरेगसागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[१७ प्र] भगवन्! यदि असुरकुमार, सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे जलचरो से आकर उत्पन्न होते है, इत्यादि यावत्—पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो असुरकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है?

[१७ उ] गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट सातिरेक एक सागरोपम की स्थिति वाले (असुरकुमारो) मे उत्पन्न होता है।

१८. ते णं भते! जीवा एगसमएण०?

एव एएसिं रयणप्पभपुढविगमगसरिसा नव गमगा नेयव्वा, नवर जाहे अप्पणा जहन्नकाल-ट्ठितीयो भवति ताहे तिसु वि गमएसु इमं नाणत्त—चत्तारि लेस्साओ; अज्झवसाणा पसत्था, नो अप्पसत्था। सेस तं चेव। संवेहो सातिरेगेण सागरोवमेण कायव्वो। [१-९ गमगा]।

[१८ प्र] भगवन्! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है?

[१८ उ.] (गौतम!) इनके सम्बन्ध मे रत्नप्रभापृथ्वी के विषय मे वर्णित नौ गमको के

१. भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्र ८२०
२. वही, पत्र ८२०

सदृश यहाँ भी नौ गमक जानने चाहिए। विशेष यह है कि जब वह स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला होता है, तब तीनो ही गमको (४-५-६) मे यह अन्तर जानना चाहिए—इनमे चार लेश्याएँ होती है। इनके अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नही। शेष सब कथन पूर्ववत्। सवेध सातिरेक सागरोपम से कहना चाहिए। [सू १७-१८, एक से नौ गमक तक]

विवेचन—निष्कर्ष—(१) असुरकुमारो मे पर्याप्त सख्येयवर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिक जीव उत्पन्न होते है। (२) विशेषतया वे जघन्य १० हजार वर्ष की और उत्कृष्ट सातिरेक एक सागरोपम की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होते है। (३) इसके नौ गमक रत्नप्रभा के गमकसदृश होते है। (४) कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—जघन्यकालिक स्थिति वाले तीनो (४-५-६) गमको मे लेश्याएँ चार, अध्यवसाय प्रशस्त और सवेध सातिरेक सागरोपम से।

उत्कृष्ट सातिरेक सागरोपम स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पत्ति का कथन बलीन्द्रनिकाय की अपेक्षा से समझना चाहिए।[२]

अन्य विशेषताओ का स्पष्टीकरण (१) जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होने योग्य तिर्यञ्चो के चौथे, पाचवे और छठे गमक मे तीन लेश्याएँ (कृष्ण, नील, कापोत) कही गई है, किन्तु यहाँ इन्ही तीन गमको मे चार लेश्याएँ कही गई हैं, इसका कारण यह है कि असुरकुमारो मे तेजोलेश्या वाले जीव भी उत्पन्न होते है। (२) रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति के तिर्यञ्चो के अध्यवसायस्थान अप्रशस्त कहे गए है, किन्तु यहाँ असुरकुमारो मे प्रशस्त बताए हे, दीर्घकालिक स्थिति वालो मे तो प्रशस्त और अप्रशस्त दोनो अध्यवसायस्थान होते है, किन्तु जघन्य स्थिति वालो मे अप्रशस्त नही होते, क्योकि काल अल्प होता है। (३) रत्नप्रभा-पृथ्वी के गमको मे सवेध एक सागरोपम से बताया गया है, जबकि यहाँ असुरकुमार-गमको मे सातिरेक (कुछ अधिक) एक सागरोपम बतलाया गया है। यह भी बलीन्द्रनिकाय की अपेक्षा से समझना चाहिए।

संख्येय वर्षायुष्क-असंख्येयवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यो की असुरकुमारों में उत्पत्ति का निरूपण

१९. जदि मणुस्सेहितो उववज्जति किं सन्निमणुस्सेहितो, असन्निमणुस्सेहितो ?

गोयमा ! सन्निमणुस्सेहितो, नो असन्निमणुस्सेहितो उववज्जति।

[१९ प्र] भगवन्! यदि वे (असुरकुमार) मनुष्यो से आ कर उत्पन्न होते है, तो क्या वे सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है या असज्ञी मनुष्यो से ?

[१९ उ] गौतम! वे सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है, असज्ञी मनुष्यो से नही।

२०. जदि सन्निमणुस्सेहितो उववज्जति कि संखेज्जावासाउयसन्निमणुस्सेहितो उववज्जति, असंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्सेहितो उववज्जति ?

गोयमा ! सखेज्जवासाउय० जाव उववज्जति, असखेज्जवासाउय० जाव उववज्जति।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भाग २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९२५

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२०

३. वही, पत्र ८२१

[२० प्र] भगवन् ! यदि वे संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते है तो क्या सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं या असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है ?

[२० उ] गौतम ! वे सख्यात वर्ष की आयु वाले (सज्ञी मनुष्यो से आकर) भी उत्पन्न होते है और असख्यात वर्ष की आयु वाले (सज्ञी मनुष्यो) से (आकर) भी।

विवेचन—निष्कर्ष—असुरकुमार सख्यात वर्ष की और असख्यातवर्ष की आयु वाले भी सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है।

असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

२१. असखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण तिपलिओवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[२१ प्र] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी मनुष्य, जो असुरकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होता है ?

[२१ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले (असुरकुमारो) मे उत्पन्न होता है।

२२. एवं असंखेज्जवासाउयतिरिक्खजोणियसरिसा आदिल्ला तिन्नि गमगा नेयव्वा, नवर सरीरोगाहणा पढम-बितिएसु गमएसु जहन्नेणं सातिरेगाइ पच धणुसयाइं, उक्कोसेण तिन्नि गाउयाइं। सेसं तं चेव। ततियगमे ओगाहणा जहन्नेण तिन्नि गाउयाइं, उक्कोसेण वि तिण्णि गाउयाइ। सेस जहेव तिरिक्खजोणियाण। [१—३ गमगा]।

[२२] इस प्रकार पूर्वोक्त असुरकुमारो की उत्पत्ति के प्रथम के तीनो गमक (१-२-३) असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्चयोनिक जीवो के गमक के समान जानने चाहिए। विशेषता यह है कि प्रथम और द्वितीय गमक मे शरीरावगाहना जघन्य सातिरेक पान्च सौ धनुष की और उत्कृष्ट तीन गाऊ की होती है। शेष सब कथन पूर्ववत्। तृतीय गमक मे शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट तीन गाऊ की समझनी चाहिए। शेष सब कथन तिर्यञ्चयोनिको के समान है। [सू २१-२२ गमक १-२-३]

२३. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि जहन्नकालट्ठितीयतिरिक्खजोणिय-सरिसा गमगा भाणियव्वा, नवरं सरीरोगाहणा तिसु वि गमएसु जहन्नेणं सातिरेगाइं पंच धणुसयाइ। सेस त चेव। [४—६ गमगा]।

[२३] यदि वह स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला हो और असुरकुमारों मे

उत्पन्न हो तो उसके भी तीनो गमक जघन्यकाल की स्थिति वाले तिर्यञ्चयोनिक के समान कहने चाहिए। विशेषता यह है कि तीनो ही गमको मे शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट सातिरेक पाच सौ धनुष की होती है। शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। [सू. २३, गमक ४-५-६]

२४. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि ते चेव पच्छिल्लगा तिन्नि गमगा भाणियव्वा, नवरं सरीरोगाहणा तिसु वि गमएसु जहन्नेण तिन्नि गाउयाइं, उक्कोसेण वि तिन्नि गाउयाइं। ववसेसं तं चेव। [७—९ गमगा]।

[२४] यदि वह स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो उसके विषय मे भी पूर्वोक्त अन्तिम तीनो गमक कहने चाहिए। विशेष यह है कि तीनो गमको मे शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट तीन गाऊ की होती है। शेष सब कथन पूर्ववत् है। [सू २४, गमक ७-८-९]

विवेचन -कुछ स्पष्टीकरण—(१) असख्यातवर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो की तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पत्ति का कथन देवकुरु आदि के यौगलिक मनुष्यो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि वे ही अपनी आयु के सदृश देवायु का उत्कृष्ट बन्ध करते है। (२) **आदि के तीनो गमको के अवगाहना-सम्बन्धी**—शरीरावगाहना के विषय मे औघिक मनुष्य का औघिक असुर-कुमारो मे उत्पन्न होने सम्बन्धी गमक है और औघिक मनुष्य का जघन्य स्थिति वाले असुरकुमारो मे उत्पन्न होने सम्बन्धी द्वितीय गमक है। इनमे से अधिक औघिक असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य की जघन्य सातिरेक ५०० धनुष की अवगाहना होती है, यह सातवे कुलकर या उससे पहले होने वाले यौगलिक मनुष्य की अपेक्षा से समझनी चाहिए तथा उसकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाऊ की होती है, जो देवकुरु आदि के यौगलिक मनुष्य की अपेक्षा से समझनी चाहिए। यह प्रथम गमक मे होता है। दूसरे गमक मे भी इसी तरह दोनो प्रकार की अवगाहना समझनी चाहिए। तीसरे गमक मे अवगाहना तीन गाऊ की बताई है, क्योकि यही तीन पल्योपमरूप उत्कृष्ट स्थिति मे उत्पन्न होता है और वह अपनी उत्कृष्ट आयु के समान ही देवायु का बन्धक होता है।[1]

असुरकुमारों में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य में उपपात-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

२५. जइ सखेज्जवासाउयसन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जइ किं पज्जत्तसखेज्जवासाउय० अपज्जत्त-सखेज्जवासाउय० ?

गोयमा ! पज्जत्तसखेज्ज०, नो अप्पज्जत्तसंखेज्ज०।

[२५ प्र.] भगवन् ! यदि वह (असुरकुमार) सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है, तो क्या वह पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है, अथवा अपर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो से ?

[२५ उ] गौतम ! वह पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है, अपर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो से उत्पन्न नही होता है।

---

१ (क) भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचन प घेवरचन्दजी) भा ६, पृ ३०५१

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२१

२६. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण सातिरेगसागरोवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[२६ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य, जो असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थितिवाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है ?

[२६ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट सातिरेक सागरोपम काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है।

२७. ते णं भंते ! जीवा० ?

एवं जहेव एएसिं रयणप्पभाए उववज्जमाणाणं नव गमका तहेव इह वि नव गमगा भाणियव्वा, णवरं संवेहो सातिरेगेण सागरोवमेण कायव्वो, सेसं तं चेव। [१—९ गमगा]।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। चतुरवीसइमे सए : बिइओ उद्देसओ समत्तो ।। २४-२ ।।

[२७ प्र] भगवन् ! वे जीव (असुरकुमार) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[२७ उ] (गौतम !) जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के नौ गमक कहे गए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी नौ गमक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इसका संवेध सातिरेक सागरोपम से कहना चाहिए। शेष समग्र कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—निष्कर्ष—संज्ञी मनुष्य के नौ ही गमकों का कथन पूर्वोक्त रत्नप्रभा-गमकों के समान समझना चाहिए। विशेषता सिर्फ इतनी है कि इनका संवेध सातिरेक सागरोपम से समझना चाहिये।[1]

।। चौवीसवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२१

तइओ नागकुमारुद्देसओ

तृतीय उद्देशक : नागकुमार—(उत्पादादि-प्ररूपणा)

गति की अपेक्षा से नागकुमारों की उत्पत्ति का निरूपण

१. रायगिहे जाव एव वयासि—

[१] राजगृह नगर मे गौतमस्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

२. नागकुमारा ण भते ! कम्रोहितो उववज्जंति ? कि नेरइएहितो उववज्जंति, तिरि-मणु-देवेहितो उववज्जति ?

गोयमा ! नो णेरइएहितो उववज्जति तिरिक्खजोणिय-मणुस्सेहितो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति।

[२ प्र] भगवन् नागकुमार कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है, अथवा तिर्यञ्चयोनिको से, मनुष्यो मे या देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[२ उ] गौतम ! वे न तो नैरयिको से और न देवो से आकर उत्पन्न होते हैं, वे तिर्यञ्चयोनिको से या मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है।

विवेचन—**निष्कर्ष**—नागकुमार न तो नैरयिको से आकर उत्पन्न होते हैं और न ही देवो से, वे तिर्यञ्चो और मनुष्यो मे आकर उत्पन्न होते हैं।

नागकुमार में उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

३. जदि तिरिक्ख० ?

एवं जहा असुरकुमाराणं वत्तव्वया (उ० २ सु० ३) **तहा एतेसिं पि जाव असण्णि त्ति।**

[३ प्र] (भगवन् !) यदि वे (नागकुमार) तिर्यञ्चो से आते है, तो इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[३ उ] (गौतम !) जिस प्रकार (उ २ सू ३ मे) असुरकुमारो की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार इनकी भी वक्तव्यता, यावत् असज्ञी-पर्यन्त कहनी चाहिए।

संख्येय वर्षायुष्क-असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों की नागकुमारों मे उत्पत्ति की प्ररूपणा

४. जदि सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो० किं संखेज्जवासाउय०, असंखेज्जवासाउय० ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउय०, असखेज्जवासाउय० जाव उववज्जंति।

[४ प्र.] भगवन् ! यदि वे (नागकुमार) सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं, या असख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ?

[४ उ] गौतम ! वे सख्येय वर्षायुष्क एव असख्येय वर्षायुष्क (दोनो प्रकार के) सज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं।

विवेचन—निष्कर्ष—नागकुमार, असुरकुमार की तरह सख्यातवर्ष की और असख्यातवर्ष की आयु वाले दोनो प्रकार के सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते है।

नागकुमारों में उत्पन्न होने वाले असंख्येय वर्षायुष्क-संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक में उपपात-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

५. असखिज्जवासाउयसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठिती० ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण देसूणदुपलिओवमट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[५ प्र] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, जो नागकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होता है ?

[५ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होता है।

६ ते णं भंते ! जीवा० ?

अवसेसो सो चेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स गमगो भाणियव्वो जाव भवाएसो त्ति; कालादेसेण जहन्नेणं सातिरेगा पुव्वकोडी दसहि वाससहस्सेहि अब्भहिया, उक्कोसेण देसूणाइ पच पलिओवमाइं, एवतियं० जाव करेज्जा। [पढमो गमओ]।

[६ प्र] भगवन् ! वे जीव (नागकुमार) एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[६ उ.] (गौतम !) असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले असख्येय वर्षायुष्क पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के समान यहाँ भी भवादेश तक गमक कहना चाहिए। काल की अपेक्षा से—जघन्य दस हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटिवर्ष और उत्कृष्ट देशोन पाच पल्योपम, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है। [सू ५-६ प्रथम गमक]

७. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवर नागकुमारट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा। [बीओ गमओ]।

[७] यदि वह जघन्यकाल की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न हो, तो उसके लिये भी वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ नागकुमारो की स्थिति और सवेध जानना चाहिए। [सू ७, द्वितीय गमक]

८. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, तस्स वि एस चेव वत्तव्वया, नवरं ठिती जहन्नेणं देसूणाइं दो पलिग्रोवमाइं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिग्रोवमाइं। सेसं तं चेव जाव भवादेसो त्ति। कालादेसेणं जहन्नेणं देसूणाइं चत्तारि पलिग्रोवमाइं, उक्कोसेणं देसूणाइं पंच पलिग्रोवमाइं, एवतियं कालं०। [तइग्रो गमग्रो]।

[८] यदि वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न हो, तो उसके लिए भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि उसकी स्थिति जघन्य देशोन दो पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। भवादेश तक शेष सब कथन पूर्ववत्। काल की अपेक्षा से—जघन्य देशोन चार पल्योपम और उत्कृष्ट देशोन पाच पल्योपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। [सू ८, तृतीय गमक]

९. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीग्रो जाग्रो, तस्स वि तिसु वि गमएसु जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स जहन्नकालट्ठितीयस्स तहेव निरवसेसं। [४-६ गमगा]।

[९] यदि वह स्वय जघन्य काल की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न हुआ हो तो उसके भी तीनो गमको मे असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले जघन्य काल की स्थिति के असख्यातवर्षायुष्क सज्ञी तिर्यञ्च के तीनो गमको के समान समग्र कथन जानना चाहिए।

[सू ९, ४-५-६ गमक]

१०. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीयो जाग्रो, तस्स वि तहेव तिन्नि गमका जहा असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स, नवरं नागकुमारट्ठिति सवेहं च जाणेज्जा। सेसं तं चेव जहा असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स। [७—९ गमगा]।

[१०] यदि वह स्वय उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न हुआ हो, तो उसके भी तीनो गमक, असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्चयोनिक के तीनो गमको के समान कहने चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ नागकुमार की स्थिति और सवेध जानना चाहिए। शेष सब वर्णन असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्चयोनिक के समान जानना चाहिए।

[सू १०, ७-८-९ गमक]

विवेचन—नागकुमारो की उत्पत्तिविषयक स्पष्टीकरण—(१) 'उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वालो मे उत्पन्न होता है', यह कथन उत्तरदिशा के नागकुमारनिकाय की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योंकि उन्ही मे देशोन दो पल्योपम की उत्कृष्ट आयु होती है। (२) उत्कृष्ट सवेधपद मे जो देशोन पाच पल्योपम कहे गए है, वे असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्च सम्बन्धी तीन पल्योपम और नागकुमार सम्बन्धी देशोन दो पल्योपम, इस प्रकार देशोन पाच पल्योपम समझना चाहिए। (३) दूसरे गमक मे नागकुमारो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की बताई है। सवेधकाल की अपेक्षा से—जघन्य सातिरेक पूर्वकोटि सहित दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तीन पल्योपम सहित दस हजार वर्ष समझना चाहिए। (४) तीसरे गमक मे देशोन दो पल्योपम की स्थिति वालो मे उत्पत्ति समझनी चाहिए। जघन्य देशोन दो पल्योपम की जो स्थिति कही है, वह अवसर्पिणीकाल के सुषमा नामक दूसरे आरे का कुछ भाग बीत जाने पर असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्चो की

अपेक्षा से समझनी चाहिए, क्योकि उन्ही में इतना आयुष्य हो सकता है और वे ही अपनी उत्कृष्ट आयु के समान देवायु का बन्ध करके उत्कृष्ट स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होते है। (५) तीन पल्योपम की जो स्थिति कही गई है, वह देवकुरु आदि के असख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यञ्चो की अपेक्षा से समझनी चाहिए। तीन पल्योपम की आयु वाले भी नागकुमारो मे देशोन दो पल्योपम की आयु बाधते हैं, क्योकि वे अपनी आयु के बराबर अथवा उससे कम आयु तो बाध लेते है, परन्तु अधिक देवायु नही बाधते।[1]

नागकुमार में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक में उपपातादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

११. जदि संखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदिय० जाव किं पज्जत्तसंखेज्जवासाउय०, अपज्जत्तसंखे० ?

गोयमा ! पज्जत्तसंखेज्जवासाउय०, नो अपज्जत्तसंखेज्जवासाउय०। जाव—

[११ प्र] भगवन् ! यदि वे (नागकुमार) सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते है या अपर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यचो से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[११ उ] गौतम ! वे पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं, अपर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न नही होते है।

१२. पज्जत्तसंखेज्जवासाउय० जाव जे भविए णागकुमारेसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेजा ?

गोयमा ! जहन्नेण दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणाइ दो पलितोवमाइ। एवं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स वत्तव्वया तहेव इह वि नवसु वि गमएसु, णवर नागकुमारट्ठितिं संवेहं च जाणेज्जा। सेसं तं चेव। [१—९ गमगा]।

[१२ प्र] भगवन् ! यदि पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, जो नागकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य हो, तो वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होता है ?

[१२ उ.] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होता है, इत्यादि जिस प्रकार असुरकुमारो के उत्पन्न होने वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ नौ ही गमको मे कहनी चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि यहाँ नागकुमारो की स्थिति और सवेध जानना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना। [१—९ गमक]

---

१. (क) कहा है—दाहिण—'दिवड्ढपलिय दो देसूणुत्तरिल्लाण'

(ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८२३

(ग) भगवती (हिन्दी विवेचन प घेवरचन्दजी), भा ६, पृ ३०५७

नागकुमार में उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१३. जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सन्निमणु०, असण्णिमणु० ?

गोयमा ! सन्निमणु०, नो असन्निमणु० जहा असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स जाव—

[१३ प्र] भगवन् ! यदि वह (नागकुमार) मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है, तो वे सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं, या असज्ञी मनुष्यो से ?

[१३ उ] गौतम ! वे सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है, असज्ञी मनुष्यो से नही, इत्यादि जैसे असुरकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य मनुष्यो की वक्तव्यता कही है, वैसे ही यहाँ कहनी चाहिए। यावत्—

१४. असखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जइ ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्स०, उक्कोसेण देसूणदुपलिओवम०। एव जहेव असखेज्ज-वासाउयाणं तिरिक्खजोणियाण नागकुमारेसु आदिल्ला तिण्णि गमका तहेव इमस्स वि, नवर पढम-बितिएसु गमएसु सरीरोगाहणा जहन्नेण सातिरेगाइ पच धणुसयाइ, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइ, ततियगमे ओगाहणा जहन्नेण देसूणाइं दो गाउयाइ, उक्कोसेण तिण्णि गाउयाइं। सेस तं चेव। [१—३ गमगा]।

[१४ प्र] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी मनुष्य, जो नागकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होता है ?

[१४ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्चो के नागकुमारो मे उत्पन्न होने सम्बन्धी आदि के तीन गमक जानने चाहिए। परन्तु पहले और दूसरे गमक मे शरीर की अवगाहना जघन्य सातिरेक पाच सौ धनुष और उत्कृष्ट तीन गाऊ होती है। तीसरे गमक मे अवगाहना जघन्य देशोन दो गाऊ और तीन गाऊ की होती है। शेष सब पूर्ववत्। [गमक १-२-३]

१५. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु जहा तस्स चेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स तहेव निरवसेस। [४ ६ गमगा]।

[१५] यदि वह स्वय (नागकुमार), जघन्य काल की स्थिति वाला हो, तो उसके भी तीनो गमको मे असुरकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य असख्यात वर्ष की आयुष्य वाले सज्ञी मनुष्य के समान समग्र वक्तव्यता कहनी चाहिए। [गमक ४-५-६]

१६. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीयो जाओ तस्स तिसु वि गमएसु जहा तस्स चेव उक्कोसकालट्ठितीयस्स असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स, नवर नागकुमारट्ठिति सवेह च जाणेज्जा। सेसं तं चेव। [७—९ गमगा]।

[१६] यदि वह (नागकुमार) स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो, तो उसके सम्बन्ध मे भी तीनो गमको मे असुरकुमारो मे उत्पन्न होने योग्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असख्यातवर्षीय

सञ्ज्ञी मनुष्य के समान वक्तव्यता जाननी चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि यहाँ नागकुमारो की स्थिति और सवेध जानना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना। [गमक ७-८-९]

नागकुसार मे उत्पन्न होनेवाले पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क संज्ञी-मनुष्य में उपपात आदि प्ररूपणा

१७. जवि संखेज्जवासाउयसन्निमणु० कि पज्जत्तासंखेज्ज०, अप्पज्जत्तासं० ?

गोयमा ! पज्जत्तासंखे०, नो अपज्जत्तासखे०।

[१७ प्र.] भगवन्! यदि वे सख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से आते है तो पर्याप्त या अपर्याप्त सख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से आते है?

[१७ उ] गौतम! वे पर्याप्त सख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से आते है, अपर्याप्त सख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से नही आते हैं।

१८. पज्जत्तासखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से ण भते! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए से णं भते! केवति० ?

गोयमा! जहन्नेण दसवाससहस्स०, उक्कोसेणं देसूणदोपलिओवमट्ठिती०। एव जहेव असुर-कुमारेसु उववज्जमाणस्स स च्चेव लद्धी निरवसेसा नवसु गमएसु, नवर नागकुमारट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा। [१—९ गमगा]।

सेवं! भंते! सेव भंते! त्ति०।

॥ चउवीसतिमे सए : ततिओ उद्देसगो समत्तो ॥ २४-३ ॥

[१८ प्र] भगवन्! पर्याप्त सख्यात वर्ष की आयु वाला सञ्ज्ञी मनुष्य नागकुमारो मे उत्पन्न हो तो कितनी काल की स्थिति वालो मे उत्पन्न होता है?

[१८ उ] गौतम! जघन्य दश हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति के नागकुमारो मे उत्पन्न होता हैं, इत्यादि असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य की वक्तव्यता के समान किन्तु स्थिति और सवेध नागकुमारो के समान जानना चाहिए। [१-९-गमक]

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी, यावत् विचरण करते है।

विवेचन - निष्कर्ष—(१) नागकुमार पर्याप्त सख्यात अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से आकर नागकुमारो मे उत्पन्न होते है। (२) वे जघन्य १० हजार वर्ष और उत्कृष्ट कुछ न्यून दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारो मे उत्पन्न होते है। (३) नागकुमारो मे उत्पन्न होने सम्बन्धी नौ ही गमको की वक्तव्यता प्राय. असुरकुमारो के समान है। जहाँ-जहाँ अन्तर है, वहाँ मूलपाठ मे ही वह बता दिया गया है।[१]

॥ चौवीसवाँ शतक : तृतीय उद्देशक सम्पूर्ण ॥

१. (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, भाग २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९२८-९२९
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भाग ६, पृ. ३०६१

चउत्थाइ-एगारस-पज्जंता सुवण्णकुमाराइ-थणियकुमार-पज्जंता उद्देसगा

चतुर्थ से लेकर ग्यारहवें उद्देशक तक : सुवर्णकुमार से स्तनितकुमार तक

चौथे से लेकर ग्यारहवें उद्देशक की समग्र वक्तव्यता : तृतीय नागकुमार-उद्देशकानुसार

१. अवसेसा सुवण्णकुमारादी जाव थणियकुमारा, एए अट्ठ वि उद्देसगा जहेव नागकुमाराण तहेव निरवसेसा भाणियव्वा।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। चउवीसतिमे सए : चउत्थाइ-एगारसपज्जंता उद्देसगा समत्ता ।। २४-४-११ ।।

[१] सुवर्णकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक अवशिष्ट आठ भवनपति देवो के ये आठ उद्देशक भी नागकुमारो के समान समग्र वक्तव्यता-युक्त कहने चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

।। चौवीसवाँ शतक : चार से ग्यारह उद्देशक तक सम्पूर्ण ।।

बारसमो : पुढविकाइय उद्देसओ

बारहवाँ उद्देशक : पृथ्वीकायिक (उपपातादिप्ररूपणा)

गति की अपेक्षा से पृथ्वीकायिकों की उत्पत्तिप्ररूपणा

१. [१] **पुढविकाइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति ?**

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जति।

[१-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ? या तिर्यञ्चो, मनुष्यो या देवो से उत्पन्न होते है ?

[१-१ उ] गौतम ! वे नैरयिको से नही, किन्तु तिर्यञ्चो, मनुष्यो या देवो से उत्पन्न होते है।

[२] जदि तिरिक्खजोणि० किं एगिंदियतिरिक्खजोणि०, ?

एव जहा वक्कंतीए उववातो जाव—

[१-२ प्र] यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव) तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[१-२ प्र] गौतम ! जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के (छठे) व्युत्क्रान्ति पद मे कहा गया है, तदनुसार यहाँ भी उपपात कहना चाहिए। यावत्—

[३] जदि बादरपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्ताबायर० जाव उववज्जति, अपज्जत्ताबायरपुढवि० ?

गोयमा ! पज्जत्ताबायरपुढवि०, अपज्जताबायरपुढवि जाव उववज्जंति।

[१-३ प्र] भगवन् ! यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव) बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिको से उत्पन्न होते है तो पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक से उत्पन्न होते है या अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक से उत्पन्न होते है।

[१-३ उ] गौतम ! वे पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो प्रकार के बादर पृथ्वीकायिक जीवो से आकर उत्पन्न होते है, (यहाँ तक कहना चाहिए।)

विवेचन—दो निष्कर्ष—(१) पृथ्वीकायिक जीव नारको से नही आते, तिर्यञ्चो, मनुष्यो या देवो से आकर उत्पन्न होते है। (२) तिर्यञ्चयोनिको मे भी वे पर्याप्त और अपर्याप्त बादर पृथ्वी-कायिक जीवो से आकर उत्पन्न होते है।[1]

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ. ९३०

प्रज्ञापनासूत्र का अतिदेश—प्रश्न १-२ मे प्रज्ञापनासूत्र के व्युत्क्रान्ति नामक छठे पद का अतिदेश किया गया है। वहाँ के पाठ का भावार्थ इस प्रकार है—(प्र) 'भगवन्! वे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है, यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं? (उ) गौतम! वे एकेन्द्रिय यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं।'[1]

पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होनेवाले पृथ्वीकायिक संबंधी उत्पत्ति-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

२. पुढविकाइए णं भंते! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए से णं भंते! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेणं बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु उववज्जेज्जा।

[२ प्र] भगवन्! जो पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है?

[२ उ] गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है।

३ ते णं भंते! जीवा एगसमएण० पुच्छा।

गोयमा! अणुसमयं अविरहिया असंखेज्जा उववज्जंति। सेवट्टसंघयणी, सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग। मसूराचंदासंठिया। चत्तारि लेस्साओ। नो सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी। दो अन्नाणा नियम। नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी। उवयोगो दुविहो वि। चत्तारि सण्णाओ। चत्तारि कसाया। एगे फासिंदिए पन्नत्ते। तिण्णि समुग्घाया। वेयणा दुविहा। नो इत्थिवेयगा, नो पुरिसवेयगा, नपुंसगवेयगा। ठिती जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं। अज्झवसाणा पसत्था वि, अपसत्था वि। अणुबंधो जहा ठिती।

[३ प्र.] भगवन्! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[३ उ] गौतम! वे प्रतिसमय निरन्तर असख्यात उत्पन्न होते हैं। वे सेवार्त्तसहनन वाले होते है। उनके शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण होती है। उनका सस्थान (आकार) मसूर की दाल जैसा होता है। उनमे चार लेश्याएँ होती है। सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते, मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। वे ज्ञानी नही, अज्ञानी ही होते हैं। उनमे दो अज्ञान (मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान) नियम से होते है। वे मनोयोगी और वचनयोगी नही होते, काययोगी ही होते हैं। उनमे साकार और अनाकार दोनो उपयोग होते है। उनमे चारो सज्ञाएँ, चारो कषाय और एकमात्र स्पर्शेन्द्रिय होती है। उनमे प्रथम के तीन समुद्घात होते है, साता और असाता-दोनो वेदना होनी है। वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नही होते, नपुसकवेदी ही होते है। उनकी स्थिति

१. देखो—पण्णवणासुत्त भा १, छठा व्युत्क्रान्तिपद सू ६५०, पृ १७४ (महा. वि. प्रकाशन)

जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की होती है। उनके अध्यवसाय प्रशस्त और अप्रशस्त, दोनो प्रकार के होते है। अनुबन्ध स्थिति के अनुसार होता है।

४. से णं भंते ! पुढविकाइए पुणरवि 'पुढविकाइए' त्ति केवतियं काल सेवेज्जा ? केवतियं कालं गतिरागति करेज्जा ?

गोयमा ! भवाएसेण जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं असखेज्जाइं भवग्गहणाइ। कालाबेसेणं जहन्नेण दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेण असखेज्जं काल, एवतिय जाव करेज्जा। [पढमो गमम्रो]।

[४ प्र] भगवन् ! वह पृथ्वीकायिक मर कर पुन पृथ्वीकायिक रूप मे उत्पन्न हो तो इस प्रकार कितने काल तक सेवन करता है और कितने काल तक गमनागमन करता रहता है ?

[४ उ] गौतम ! भव की अपेक्षा से—वह जघन्य दो भव एव उत्कृष्ट असख्यात भव ग्रहण करता है और काल की अपेक्षा से – वह जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यात काल, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता रहता है। [सू २-३-४ प्रथम गमक]

५. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु। एव चेव वत्तव्वया निरवसेसा। [बीओ गमओ]।

[५] यदि वह (पृथ्वीकायिक) जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार समग्र वक्तव्यता जाननी चाहिए। [सू ५ द्वितीय गमक]

६. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु। सेस चेव जाव अणुबंधो त्ति, णवर जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असंखेज्जा वा। भवाएसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइ। कालाएसेण जहन्नेण बावीस वाससहस्साइं अतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण छावत्तर वाससयसहस्स, एवतियं कालं जाव करेज्जा। [तइओ गमओ]।

[६] यदि वह (पृथ्वीकायिक) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है। शेष सब कथन यावत् अनुबन्ध तक पूर्वोक्त प्रकार से जानना। विशेष यह है कि वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है। भव की अपेक्षा से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है तथा काल की अपेक्षा से– जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख छिहत्तर हजार (१७६०००) वर्ष इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है। [सू ६, तृतीय गमक]

७. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, सो चेव पढमिल्लओ गमओ भाणियव्वो, नवर लेस्साओ तिन्नि; ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं; अप्पसत्था अज्झवसाणा; अणुबंधो जहा ठिती। सेस तं चेव। [चउत्थो गमओ]।

[७] यदि वह (पृथ्वीकायिक) स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिक में उत्पन्न हो तो उसके सम्बन्ध मे पूर्वोक्त प्रथम गमक के समान कहना चाहिए। किन्तु विशेष यह है कि उसमे लेश्याएँ तीन होती है। उसकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है। उसका अध्यवसाय अप्रशस्त और अनुबन्ध स्थिति के समान होता है। शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए। [सू ७, चतुर्थ गमक]

८. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, स च्चेव चउत्थगमकवत्तव्वता भाणियव्वा। [पचमो गमश्रो]।

[८] यदि वह (जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक) जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न हो तो उसके सम्बन्ध मे पूर्वोक्त चतुर्थ गमक के अनुसार वक्तव्यता कहनी चाहिए। [सू ८, पचम गमक]

९. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वता, नवर जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा जाव भवाएसेणं जहन्नेण दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेण अट्ठ भवग्गहणाइ। कालाएसेण जहन्नेण बावीस वाससहस्साइं अतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण अट्ठासीति वाससहस्साइ चउहि अतोमुहुत्तेहि अब्भहियाइ, एवतियं०। [छट्ठो गमश्रो]।

[९] यदि वह (जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक) उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न हो, तो यही वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि वह जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात अथवा असख्यात उत्पन्न होते हैं। यावत् भवादेश से—जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है। [सू ९, छठा गमक]

१०. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीश्रो जातो, एव तइयगमगसरिसो निरवसेसो भाणियव्वो, नवरं अप्पणा से ठिती जहन्नेण बावीस वाससहस्साइं, उक्कोसेण वि बावीसं वाससहस्साइं। [सत्तमो गमश्रो]।

[१०] यदि वह (पृथ्वीकायिक) स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न हो, तो उसके विषय मे तृतीय गमक के समान समग्र गमक कहना चाहिए। विशेष यह है कि उसकी स्वय की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की होती है। [सू १०, सप्तम गमक]

११. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं। एव जहा सत्तमगमगो जाव भावदेसो। कालाएसेणं जहन्नेणं बावीसं वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीतिं वाससहस्साइ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवतियं०। [अट्ठमो गमश्रो]।

[११] यदि वह (उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक) स्वय जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको में उत्पन्न हो तो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको

मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार यहाँ सातवे गमक की वक्तव्यता यावत् भवादेश तक कहनी चाहिए। काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [सू ११, अष्टम गमक]

१२. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो जहन्नेण बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु। एस चेव सत्तमगमकवत्तव्वया जाव भवादेसो त्ति। कालाएसेणं जहन्नेणं चोयालीसं वाससहस्साइं, उक्कोसेण छावत्तरं वाससयसहस्सं, एवतियं०। [नवमो गमओ]।

[१२] यदि वही (उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक जीव) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न हो तो जघन्य और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है। यहाँ सप्तम गमक की समग्र वक्तव्यता भवादेश तक कहनी चाहिए। काल की अपेक्षा से—जघन्य ४४ हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख छिहत्तर हजार वर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है। [सू १२, नौवाँ गमक]

विवेचन—पृथ्वीकायिको की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कुछ स्पष्टीकरण—तृतीय गमक मे उत्पत्ति-परिमाण—तृतीय गमक मे उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको की उत्पत्ति के विषय मे जो यह कहा गया है कि 'वे एक, दो या तीन उत्पन्न होते है' इसका आशय यह है कि प्रथम और द्वितीय गमक मे उत्पन्न होने वाले बहुत होने से असख्यात ही उत्पन्न होते है, किन्तु तृतीय गमक मे उत्कृष्ट स्थिति वाले एक आदि से लेकर असख्यात तक उत्पन्न होते है। क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले कम होने से वे एक आदि रूप मे भी उत्पन्न हो सकते हैं।[1]

तृतीय गमक के आठ भवों का स्पष्टीकरण—तृतीय गमक मे पृथ्वीकायिको के उत्कृष्ट ८ भव बताए गए हैं, उसका कारण यह है कि जिस सवेध मे दोनो पक्षो मे, अथवा दोनो पक्षो मे से किसी एक पक्ष मे, अर्थात्—उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक जीव की अथवा जिसमे उत्पन्न होता है, उन पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति उत्कृष्ट हो तो अधिक से अधिक आठ भव की कायस्थिति होती है। इससे भिन्न (जघन्य और मध्यम स्थिति हो तो) असख्यात भवो की कायस्थिति होती है। अत यहाँ उत्पत्ति के विषयभूत (जिनमे उत्पन्न होता है, उन) जीवो की उत्कृष्ट स्थिति होने से आठ भव कहे गए हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए।

एक भव की उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष की होती है। इस दृष्टि से आठ भवो की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख छिहत्तर हजार (१७६०००) वर्ष की होती है।[2]

चौथे गमक में तीन लेश्याएँ. क्यों और कैसे?—चौथे गमक मे तीन लेश्याएँ कही गई हैं, इसका कारण यह है कि जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक मे जीव, देवो से च्यव कर उत्पन्न नही होता, अत उसमे (जघन्यकाल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक मे) तेजोलेश्या नही होती।[3]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२५

२. वही, पत्र ८२५

३. वही, पत्र ८२५

छठे गमक में उत्कृष्ट काल कितना और क्यों ?—छठे गमक मे चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष काल कहा गया है, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाले की चार-चार बार उत्पत्ति होती है। एक बार की उत्पत्ति का जघन्य एव उत्कृष्ट काल बाईस हजार वर्ष है, अतः चार बार उत्पत्ति होने मे इतना काल होता है।

नौवें गमक मे जघन्य काल कितना और क्यो ?—नौवे गमक मे जघन्य ४४ हजार वर्ष कहे गए है। वह इस दृष्टि से कहा गया है कि बाईस हजार वर्ष रूप उत्कृष्ट स्थिति के दो भव करने से ४४ हजार वर्ष होते है।[1]

पृथ्वीकायिकों मे उत्पन्न होनेवाले अप्कायिको मे उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१३. जति आउकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं सुहुमआउ० बादरआउ० एवं चउक्कओ भेदो भाणियव्वो जहा पुढविकाइयाण ।

[१३ प्र] (भगवन् !) यदि वह (पृथ्वीकायिक जीव) अप्कायिक-एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होता है, तो क्या सूक्ष्म अप्कायिक० से आकर उत्पन्न होता है, या बादर अप्कायिक० से ?

[१३ उ] (गौतम !) पृथ्वीकायिक जीवो के समान यहाँ भी (सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त, ये) चार भेद कहने चाहिए।

१४. आउकाइए ण भते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जिज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु। एव पुढविकाइयगमगसरिसा नव गमगा भाणियव्वा। नवरं थिबुगाबिंदुसंठिते। ठिती जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइ। एवं अणुबधो वि। एव तिसु गमएसु। ठिती सवेहो तइय-छट्ठ-सत्तमऽट्ठम-नवमेसु गमएसु भवादेसेण जहन्नेण दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेण अट्ठ भवग्गहणाइ सेसेसु चउसु गमएसु जहन्नेण दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेण असखेज्जाइ भवग्गहणाइ। तइयगमए कालाएसेण जहन्नेण बावीस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण सोलसुत्तरं वाससयसहस्स, एवतियं०। छट्ठे गमए कालाएसेणं जहन्नेण बावीसं वाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण अट्ठासीतिं वाससहस्साइ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवतिय०। सत्तमगमए कालाएसेण जहन्नेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं सोलसुत्तर वाससयसहस्सं, एवतियं०। अट्ठमे गमए कालाएसेण जहन्नेणं सत्त वाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण अट्ठावीस वाससहस्साइ चउहि अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइ, एवतियं०। नवमे गमए भवाएसेणं जहन्नेण दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेण

---

१ भगवती अ वृत्ति पत्र ८२५

अट्ठ भवग्गहणाइं; कालाएसेण जहन्नेणं एकूणतीसं वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सोलसुत्तरं वाससयसहस्सं, एवतियं०। एवं नवसु वि गमएसु आउकाइयठिई जाणियव्वा। [१—९ गमगा]।

[१४ प्र] भगवन्! जो अप्कायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होता है?

[१४ उ] गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होता है। इस प्रकार पृथ्वीकायिक के समान अप्कायिक के भी नौ गमक जानना चाहिए। विशेष यह है कि अप्कायिक का संस्थान स्तिबुक (बुलबुले) के आकार का होता है। स्थिति और अनुबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष है। इसी प्रकार तीनों गमकों में जानना चाहिए। तीसरे, छठे, सातवें, आठवें और नौवें गमकों में संवेध— भव की अपेक्षा से - जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण होते है। शेष चार गमकों में जघन्य दो भव और उत्कृष्ट असंख्यात भव होते हैं। तीसरे गमक में काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख सोलह हजार वर्ष, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। छठे गमक में काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। सातवें गमक में काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक सात हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख सोलह हजार वर्ष तक गमनागमन करता है। आठवें गमक में काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक सात हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक २८ हजार वर्ष तक गमनागमन करता है। नौवें गमक में भवादेश से—जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है तथा काल की अपेक्षा से—जघन्य उनतीस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख सोलह हजार वर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है। इस प्रकार नौ ही गमकों में अप्कायिक की स्थिति जाननी चाहिए।

(गमक १ से ९ तक)

विवेचन—अप्काय के भेद—सूक्ष्म और बादर अप्काय में से प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चार प्रकार होते हैं।

भवादेश से संवेध का कथन—भव की अपेक्षा से सभी गमकों में जघन्यतः दो भवग्रहण प्रसिद्ध है, किन्तु उत्कृष्ट में विशेषता है। यथा—तीसरे, छठे, सातवें, आठवें और नौवें गमक में उत्कृष्टतः संवेध आठ भव ग्रहण करते हैं। शेष पहले, दूसरे, चौथे और पांचवें गमक में उत्कृष्ट असंख्यात भव होते है, क्योंकि इन चार गमकों में किसी भी पक्ष में उत्कृष्ट स्थिति नहीं है।[१]

कालादेश से कथन काल की अपेक्षा से—तीसरे गमक में जघन्य २२,००० वर्ष कहे गए है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति इतनी ही है और अन्तर्मुहूर्त जो अधिक कहा गया है, वह वहाँ पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले अप्कायिक की जघन्यकाल-स्थिति की विवक्षा से कहा गया है। इसी गमक में कालापेक्षया उत्कृष्ट १,१६,००० वर्ष कहे गए है। यहाँ उत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों के चार भवों के ८८,००० वर्ष होते है, इसी प्रकार औधिक में उत्कृष्ट स्थिति वाले अप्कायिक जीवों के चार भवों के २८,००० वर्ष होते हैं, इन दोनों को मिलाने से कुल एक लाख सोलह हजार वर्ष होते हैं।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२५

छठे गमक मे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पत्ति बतलाई गई है। इसलिए दोनो के चार भवो के चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८,००० वर्ष होते है। सातवे और आठवे गमक का सवेध भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

नौवे गमक मे जघन्यत पृथ्वीकायिक और अप्कायिक की उत्कृष्ट स्थिति मिलाने से २९,००० वर्ष होते है तथा उत्कृष्टत पूर्वोक्त दृष्टि से एक लाख सोलह हजार वर्ष होते है।

अन्य सब बात मूलपाठ मे स्पष्ट है।[1]

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होनेवाले तेजस्कायिको में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१५. जति तेउक्काइएहिंतो उवव० ?

तेउक्काइयाण वि एस चेव वत्तव्वया, नवर नवसु वि गमएसु तिन्नि लेस्साओ। तेउकाइयाणं सूयीकलावसठिया। ठिती जाणियव्वा। तइयगमए कालादेसेण जहन्नेण बावीसं वाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेणं अट्ठासीतिं वाससहस्साइ बारसहिं रातिंदिएहिं अब्भहियाइ, एवतिय०। एव सवेहो उवजजिऊण भाणियव्वो। [१—९ गमगा]।

[१५ प्र] भगवन् ! यदि वह तेजस्कायिक (अग्निकायिक) से आकर उत्पन्न होता हो तो ? इत्यादि प्रश्न।

[१५ उ] तेजस्कायिको के विषय मे भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि नो ही गमको मे तीन लेश्याएँ होती है। तेजस्काय का सस्थान सूचीकलाप (सूइयो के ढेर) के समान होता है। इसकी स्थिति (तीन अहोरात्र की) जाननी चाहिए। तीसरे **गमक** मे काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट बारह अहोरात्र अधिक ८८,००० वर्ष, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है। इसी प्रकार सवेध भी उपयोग (ध्यान) रख कर कहना चाहिए। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन - कुछ तथ्यों का स्पष्टीकरण--(१) **तीन लेश्याएँ क्यो ?**—अप्काय मे देवो की उत्पत्ति होती है, इसलिए चार लेश्याएँ कही गई है, जबकि तेजस्काय मे देवो की उत्पत्ति नही होती, इसलिए इसके नौ ही गमको मे तीन लेश्याएँ कही गई है। (२) **स्थिति**—तेजस्काय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन अहोरात्र की है। (३) **तृतीय गमक मे तेजस्कायिक की उत्पत्ति**—उत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे इसकी उत्पत्ति होती है, तब एक पक्ष उत्कृष्ट स्थिति वाला होने से पृथ्वीकायिक के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति ८८,००० वर्ष की होती है तथा तेजस्काय के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति बारह अहोरात्र होती है। (४) **संवेध**—छठे से नौवे गमक तक मे भव की अपेक्षा से आठ भव होते है और काल की अपेक्षा उपयोगपूर्वक कहना चाहिए। शेष गमको मे उत्कृष्ट असख्यात भव होते है और काल भी असख्यात होता है।[2]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२६

२ वही, पत्र ८२६

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होनेवाले वायुकायिकों में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१६ जति वाउकाइएहिंतो० ?

वाउकाइयाण वि एव चेव नव गमगा जहेव तेउकाइयाणं, नवरं पडागासंठिया पन्नत्ता, संवेहो वाससहस्सेहिं कायव्वो, तइयगमए कालादेसेण जहन्नेणं बावीस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं एग वाससयसहस्स, एवतिय० । एव संवेहो उवजुंजिऊण भाणियव्वो । [१—९ गमगा] ।

[१६ प्र] (भगवन् !) यदि वे वायुकायिको से आकर उत्पन्न हो तो ? इत्यादि प्रश्न ।

[१६ उ] वायुकायिको के विषय मे तेजस्कायिको की तरह नौ ही गमक कहने चाहिए । विशेष यह है कि वायुकाय का सस्थान पताका के आकार का होता है । सवेध हजारो वर्षो से कहना चाहिए । तीसरे गमक मे काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है । इस प्रकार उपयोगपूर्वक सवेध कहना चाहिए । [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—कुछ स्पष्टीकरण—(१) वायुकायिक जीवो का संवेध—हजारो से कहना चाहिए, इस कथन का आशय यह है कि तेजस्काय के अधिकार मे तीन अहोरात्र से सवेध किया गया था, क्योकि उनकी उत्कृष्ट स्थिति तीन अहोरात्र की होती है, जबकि वायुकायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की होती है, इसलिए इनका सवेध तीन हजार वर्षो से कहना चाहिए । (२) तीसरे गमक मे उत्कृष्ट आठ भव बताए है, उनमे से पृथ्वीकायिक के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति ८८,००० वर्ष की होती है और वायुकायिक जीवो के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति १२,००० वर्ष की होती है । इन दोनो को मिलाने से सवेध एक लाख वर्ष का होता है । इस प्रकार जहाँ उत्कृष्ट स्थिति का गमक हो, वहाँ उत्कृष्ट आठ भव और तदनुसार काल कहना चाहिए । इसके अतिरिक्त दूसरे गमको मे असख्यात भव और तदनुसार असख्यात काल कहना चाहिए ।[1]

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होनेवाले वनस्पतिकायिकों में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१७. जति वणस्सतिकाइएहिंतो० ?

वणस्सइकाइयाण आउकाइयगमगसरिसा नव गमगा भाणियव्वा, नवरं नाणासंठिया । सरीरोगाहणा पन्नत्ता—पढमएसु पच्छिल्लएसु य तिसु गमएसु जहन्नेणं अगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेण सातिरेग जोयणसहस्सं, मज्झिल्लएसु तिसु तहेव जहा पुढविकाइयाइं । संवेहो ठिती य जाणियव्वा । ततिए गमए कालाएसेणं जहन्नेण बावीस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसुत्तरं वाससयसहस्सं, एवतिय० । एवं संवेहो उवजुंजिऊण भाणियव्वो ।

---

१. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ८२६

[१७ प्र.] भगवन् ! यदि वे वनस्पतिकायिको से आकर उत्पन्न होते हैं, तो ? इत्यादि प्रश्न ।

[१७ उ.] अप्कायिको के गमको के समान वनस्पतिकायिको के नौ गमक कहने चाहिए। वनस्पतिकायिको का सस्थान अनेक प्रकार का होता है। उनके शरीर की अवगाहना इस प्रकार कही गई है—प्रथम के तीन गमको और अन्तिम तीन गमको मे जघन्य अगुल के असख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सातिरेक एक हजार योजन की होती है। बीच के तीन गमको मे अवगाहना पृथ्वीकायिको के समान समझनी चाहिए। इसकी सवेध और स्थिति (जो भिन्न है) जान लेनी चाहिए। तृतीय गमक मे काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक लाख अट्ठाईस हजार वर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है। इस प्रकार उपयोगपूर्वक सवेध भी कहना चाहिए।

विवेचन—वनस्पतिकायिको के नौ गमको का स्पष्टीकरण—(१) वनस्पतिकायिक के नौ गमको के लिए अप्कायिक-गमको का अतिदेश किया गया है। (२) **विशेषताएँ इस प्रकार हैं**—वनस्पतिकाय का सस्थान नाना प्रकार का है। वनस्पतिकाय के प्रथम तीन औधिक गमको मे और अन्तिम तीन (७-८-९) गमको मे अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनो प्रकार की होती है। जघन्य अंगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट सातिरेक एक हजार योजन की होती है। बीच के (४-५-६) तीन गमको मे जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की होती है। वनस्पतिकाय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की होती है। इसके अनुसार सवेध भी जानना चाहिए। किसी भी पक्ष मे उत्कृष्ट स्थिति के गमको मे उत्कृष्ट आठ भव होते है। उनमे से पृथ्वीकाय के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति ८८,००० वर्ष होती है और वनस्पतिकाय के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति ४०,००० वर्ष होती है। दोनो को मिलाने से एक लाख अट्ठाईस हजार वर्ष का सवेधकाल होता है।[१]

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होनेवाले द्वीन्द्रिय जीवों में उपपातादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

१८. जदि बेइंदिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तबेइंदिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तबेइंदिएहिंतो० ?

गोयमा ! पज्जत्तबेइंदिएहिंतो उवव०, अपज्जत्तबेइंदिएहिंतो वि उववज्जंति ।

[१८ प्र.] भगवन् ! यदि वे द्वीन्द्रिय जीवो से आकर उत्पन्न हो तो क्या पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो से ?

[१८ उ.] गौतम ! वे पर्याप्त द्वीन्द्रियो से भी तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रियो से भी आकर उत्पन्न होते है।

१९. बेइंदिए णं भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकाल० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु ।

[१९ प्र.] भगवन् ! जो द्वीन्द्रिय जीव पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने योग्य हैं, वे कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते हैं ?

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ८२६

[१९ उ] गौतम ! वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है।

२०. ते ण भते ! जीवा एगसमएणं० ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। सेवट्टसघयणी। ओगाहणा जहन्नेण अंगुलस्स असखेज्जतिभाग, उक्कोसेण बारस जोयणाइं। हुडसठिता। तिन्नि लेसाओ। सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छादिट्ठी। दो णाणा, दो अन्नाणा नियम। नो मणजोगी, वइजोगी वि, कायजोगी वि। उवयोगो दुविहो वि। चत्तारि सण्णाओ। चत्तारि कसाया। दो इंदिया पन्नत्ता, त जहा—जिब्भिदिए य फासिंदिए य। तिन्नि समुग्घाया। सेस जहा पुढविकाइयाणं, नवरं ठिती जहन्नेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बारस सवच्छराइ। एव अणुबधो वि। सेस त चेव। भवाएसेण जहन्नेण दो भवग्गहणाइ उक्कोसेणं संखेज्जाइं भवग्गहणाइ। कालाएसेणं जहन्नेणं दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं सखेज्ज काल, एवतियं०। [पढमो गमओ]।

[२० प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न है।

[२० उ] गौतम ! वे (एक समय मे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है। वे सेवार्त्तसहनन वाले होते है। उनकी अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट बारह योजन की होती है। उनका सस्थान हुडक होता है। उनमे लेश्याए तीन और दृष्टियाँ दो—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होती है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होती। उनमे दो ज्ञान या दो अज्ञान अवश्य होते है। वे मनोयोगी नही होते, वचनयोगी और काययोगी होते हैं। उनमे दो उपयोग, चार सज्ञाएँ और चार कषाय होते है। उनके जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय, ये दो इन्द्रियाँ होती है। उनमे तीन समुद्घात होते है। शेष सभी बाते पृथ्वीकायिको के समान जाननी चाहिए। विशेष उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार होता है। शेष सब पूर्ववत् समझना। भव की अपेक्षा से—वे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट सख्यात भव ग्रहण करते है। काल की अपेक्षा से वे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यात काल तक गमनागमन करते है। [प्रथम गमक]

२१. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया सव्वा। [बीओ गमओ]।

[२१] यदि वह (द्वीन्द्रिय) जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त सभी वक्तव्यता समझनी चाहिए। [द्वितीय गमक]

२२. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव बेंदियस्स लद्धी, नवर भवाएसेण जहन्नेणं दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं। कालाएसेण जहन्नेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण अट्ठासीत वाससहस्साइं अडयालीसाए सवच्छरेहिं अब्भहियाइं, एवतियं०। [तइओ गमओ]।

[२२] यदि वह (द्वीन्द्रिय), उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको में उत्पन्न हो तो भी पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि भव की अपेक्षा से—जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक ८८,००० वर्ष तक गमनागमन करता है। [तृतीय गमक]

२३. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, तस्स वि एस चेव वत्तव्वता तिसु वि गमएसु, नवरं इमाइं सत्त नाणत्ताइं—सरीरोगाहणा जहा पुढविकाइयाण; नो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी, दो अन्नाणा णियमं, नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी, ठिती जहन्नेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं, अज्झवसाणा अप्पसत्था, अणुबंधो जहा ठिती। संवेहो तहेव आविल्लेसु, दोसु गमएसु, ततियगमए भवादेसो तहेव अट्ठ भवग्गहणाइं। कालाएसेणं जहन्नेणं बावीसं वाससहस्साइं अतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेण अट्ठासीतिं वाससहस्साइं चउहिं अतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं। [४-६ गमगा]।

[२३] यदि वह (द्वीन्द्रिय) स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न हो, तो उसके भी तीनो गमको मे पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु विशेष यहाँ सात नानात्व (भेद) है। यथा—(१) शरीर की अवगाहना पृथ्वीकायिको के समान (अगुल के असख्यातवाँ भाग) है, (२) वह सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होता, किन्तु मिथ्यादृष्टि होता हे, (३) इसमे दो अज्ञान नियम से होते है, (४) वह मनोयोगी और वचनयोगी नही किन्तु काययोगी होता है, (५) उसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है, (६) उसके अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं और (७) अनुबन्ध स्थिति के अनुसार होता है। दूसरे त्रिक के पहले के दो गमको (चौथे और पाचवे गमक) से सवेध भी इसी प्रकार समझना चाहिए। (दूसरे त्रिक के तृतीय गमक) छठे गमक मे भवादेश भी उसी प्रकार आठ भव जानने चाहिए। कालादेश—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२,००० वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८,००० वर्ष तक गमनागमन करता है। [गमक ४-५-६]

२४. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, एयस्स वि ओहियगमगसरिसा तिन्नि गमगा भाणियव्वा, नवरं तिसु वि गमएसु ठिती जहन्नेण बारस संवच्छराइं, उक्कोसेण वि बारस संवच्छराइं। एव अणुबंधो वि। भवाएसेणं जहन्नेण दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेण अट्ठ भवग्गहणाइं। कालाएसेण उवयुज्जिऊण भाणियव्वं जाव नवमे गमए जहन्नेणं बावीसं वाससहस्साइं बारसहिं संवच्छरेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीतिं वाससहस्साइं अडयालीसाए संवच्छरेहिं अब्भहियाइं, एवतियं०। [७-९ गमगा]।

[२४] यदि वह (द्वीन्द्रिय जीव), स्वय उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न हो तो उनके भी तीनो गमक (७-८-९) औघिक गमको (१-२-३) के समान कहने चाहिए। विशेष यह है कि इन (अन्तिम) तीनो गमको मे स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार समझना चाहिए। भव की अपेक्षा से—जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा से—विचार करके सवेध कहना चाहिए, यावत् नौवे गमक मे जघन्य

बारह वर्ष अधिक २२,००० वर्ष और उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक ८८,००० वर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है। [गमक ७-८-९]

विवेचन—द्वीन्द्रिय में उत्पत्ति-सम्बन्धी नौ गमको के विषय मे स्पष्टीकरण—

(१) **अवगाहना**—द्वीन्द्रियो की उत्कृष्ट अवगाहना जो बारह योजन की बताई गई है, वह शख आदि की अपेक्षा से समझनी चाहिए। कहा गया है—**'सखो पुण बारस जोइणाइं।'**

(२) **सम्यग्दृष्टित्व**—औधिक द्वीन्द्रिय का औधिक पृथ्वीकायिको मे उत्पत्तिरूप प्रथम गमक मे जो सम्यग्दृष्टित्व कहा गया है, वह सास्वादन-सम्यक्त्व की अपेक्षा से समझना चाहिए।

(३) **भवादेश और कालादेश**—द्वीन्द्रिय सम्बन्धी तृतीय गमक मे भवादेश से उत्कृष्ट ८ भव बतलाए है, क्योकि यहाँ एक पक्ष उत्कृष्ट स्थिति वाला है। कालादेश से द्वीन्द्रिय के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति ४८ वर्ष होती है और पृथ्वीकाय के चार भवो की उत्कृष्ट स्थिति ८८,००० वर्ष होती है। दोनो मिलाकर ४८ वर्ष अधिक ८८,००० वर्ष बताए गए है।

(४) **द्वीन्द्रिय के मध्यमत्रिक मे सात बातो का अन्तर**—प्रथम त्रिक (तीनो गमक) मे उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन बताई गई थी, किन्तु यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग बताई गई है। प्रथम के तीन गमको मे सम्यग्दृष्टि बताया गया है, किन्तु इन (मध्यम) के तीन गमको मे सम्यग्दृष्टि का अभाव है, क्योकि जघन्य स्थिति होने से इनमे सास्वादन सम्यग्यदृष्टि जीवो की उत्पत्ति नही होती है। इनमे दो अज्ञान ही पाये जाते हैं, ज्ञान नही। योगद्वार मे जघन्य स्थिति होने के कारण अपर्याप्तक होने से इनमे वचनयोग नही पाया जाता। इनकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। जबकि पहले १२ वर्ष की बतलाई थी। अल्प स्थिति होने से अध्यवसाय भी अप्रशस्त होते है। सातवाँ नानात्व अनुबन्ध स्थिति के अनुसार होता है।[1]

(५) **संवेध**—चौथे और पाचवे गमक मे भवादेश से उत्कृष्ट सख्यात भव होते है और कालादेश से सख्यातकाल होता है। छठे गमक का सवेध भवादेश से आठ भव तथा कालादेश से अन्तर्मुहूर्त अधिक २२,००० वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८,००० होता है।

सातवे गमक का सवेध भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव। कालादेश से ४८ वर्ष अधिक ८८,००० वर्ष। आठवे गमक मे चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ४८ वर्ष। नौवे गमक का सवेध जघन्य १२ वर्ष अधिक २२,००० वर्ष और उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक ८८,००० वर्ष का होता है। अत इस प्रकार सर्वत्र उपयोग पूर्वक जघन्य और उत्कृष्ट सवेध कहना चाहिए।[2]

पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होनेवाले त्रीन्द्रिय में उपपात-परिमाण आदि बीस द्वारों की प्ररूपणा

२५. जति तेइंदिएहिंतो उववज्जइ० ?

एवं चेव नव गमका भाणियव्वा। नवरं आदिल्लेसु तिसु वि गमएसु सरीरोगाहणा जहन्नेणं

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२९

२. वही, पत्र ८२९

अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं । तिन्नि इंदियाइं । ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एकूणपण्ण रातिंदियाइं । ततियगमए कालाएसेणं जहन्नेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीतिं वाससहस्साइं छण्णउयरातिंदियसतमब्भहियाइं, एवतियं० । मज्झिमा तिन्नि गमगा तहेव । पच्छिमा वि तिण्णि गमगा तहेव, नवरं ठिती जहन्नेणं एकूणपण्णं राइंदियाइं, उक्कोसेण वि एकूणपण्ण राइंदियाइं । संवेहो उवजुंजिऊण भाणितव्वो । [१-९ गमगा] ।

[२५ प्र] यदि वह पृथ्वीकायिक त्रीन्द्रिय जीवों से आकर उत्पन्न होता हो, तो ? इत्यादि प्रश्न ।

[२५ उ] यहाँ भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) नौ गमक कहना चाहिए । प्रथम के तीन गमकों में शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग तथा उत्कृष्ट तीन गाऊ की होती है । इनके तीन इन्द्रियाँ होती है । इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ४९ अहोरात्र की होती है । तृतीय गमक में काल की अपेक्षा—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक, २२,००० वर्ष और उत्कृष्ट १९६ अहोरात्र अधिक ८८,००० वर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है । बीच के तीन (४-५-६) गमकों का कथन उसी प्रकार (पूर्वोक्त द्वीन्द्रिय के समान) जानना चाहिए । अन्तिम तीन (७-८-९) गमकों की वक्तव्यता भी पूर्ववत् जानना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट ४९ रात्रि-दिवस की होती है । इनका संवेध उपयोगपूर्वक कहना चाहिए । [गमक १ से ९ तक] ।

विवेचन त्रीन्द्रिय-उत्पत्ति-सम्बन्धी नौ गमकों में विशेषता का स्पष्टीकरण - (१) त्रीन्द्रिय के तृतीय गमक में उत्कृष्ट आठ भव होते है । उनमें से त्रीन्द्रिय के चार भवों की उत्कृष्ट स्थिति १९६ अहोरात्र और पृथ्वीकाय के चार भवों की उत्कृष्ट स्थिति ८८ हजार वर्ष होती है । दोनों को मिलाने से कुल १९६ रात्रि-दिवस अधिक ८८ हजार वर्ष होते है । (२) चौथे, पांचवें और छठे गमक को तथा सातवें, आठवें और नौवें गमक की वक्तव्यता द्वीन्द्रिय के समान है । परन्तु सातवें, आठवें और नौवें गमक का संवेध - भवादेश से प्रत्येक के ८ भव तथा कालादेश से सातवें और नौवें गमक में उत्कृष्ट १९६ रात्रि-दिन अधिक ८८ हजार वर्ष होते है । आठवें गमक में चार अन्तर्मुहूर्त अधिक १९६ रात्रि-दिवस होते है । शेष विषय मूलपाठ से ही स्पष्ट है ।[1]

पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होनेवाले चतुरिन्द्रिय जीवों के उपपात-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

२६. जति चउरिंदिएहिंतो उववo ?

एवं चेव चउरिंदियाण वि नव गमगा भाणियव्वा, नवरं एएसु चेव ठाणेसु नाणत्ता भाणियव्वा -सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं । ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा । एवं अणुबंधो वि । चत्तारि इंदिया । सेसं तहेव जाव

---

१ भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ८२९

नवमगमए कालाएसेणं जहन्नेणं बावीसं वाससहस्साइं छहिं मासेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीतिं वाससहस्साइं चउवीसाए मासेहिं अब्भहियाइं, एवतिय०। [१—९ गमगा]।

[२६ प्र] (भगवन्!) यदि वे पृथ्वीकायिक जीव चतुरिन्द्रिय जीवो से आकर उत्पन्न हो, तो? इत्यादि प्रश्न।

[२६ उ] चतुरिन्द्रिय जीवो के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्वोक्त त्रीन्द्रिय के समान) नौ गमक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इन (कुछ) स्थानो मे नानात्व कहना चाहिए—इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट चार गाऊ की होती है। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट छह माह की होती है। अनुबन्ध भी स्थिति के अनुसार होता है। इनके चार इन्द्रियाँ होती हैं। शेष सब पूर्ववत् जानना, यावत् नौवे गमक मे कालादेश से जघन्य छह मास अधिक २२,००० वर्ष और उत्कृष्ट चौवीस मास अधिक ८८,००० वर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—चतुरिन्द्रिय-उत्पत्तिविषयक विशेषता—चतुरिन्द्रिय के नौ ही गमको का कथन त्रीन्द्रिय के समान है, किन्तु सवेध मे कुछ विशेषता है, वह मूल पाठ मे स्पष्ट कर दी गई है। जिसका स्पष्टीकरण नही किया गया है, उसे स्वय उपयोग लगाकर यथायोग्य जान लेनी चाहिए।[1]

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक की अपेक्षा पृथ्वीकायिक-उत्पत्ति निरूपण

२७. जइ पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति असन्निपंचेंदियतिरिक्खजो०?

गोयमा! सन्निपचेंदिय०, असन्निपंचेंदिय०।

[२७ प्र.] (भगवन्!) यदि वे (पृथ्वीकायिक) पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो मे आकर उत्पन्न होते है तो क्या वे सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है या असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न हाते है?

[२७ उ] गौतम! वे सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते हैं और असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते है।

२८. जइ असण्णिपंचिंदिय० किं जलचरेहिंतो उवव० जाव किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति अपज्जत्तएहिंतो उवव०?

गोयमा! पज्जत्तएहितो वि उवव०, अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति।

[२८ प्र] भगवन्! यदि वे (पृथ्वीकायिक) असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है तो क्या वे जलचरो से उत्पन्न होते है, अथवा यावत् क्या पर्याप्तको से या अपर्याप्तको से उत्पन्न होते है?

[२८ उ] गौतम! वे यावत् सभी के पर्याप्तको से भी और अपर्याप्तको से भी आते हैं।

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२९

विवेचन—निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक जीव सज्ञी और असज्ञी दोनो प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से तथा उनमें भी जलचरादि के पर्याप्तको और अपर्याप्तको से आकर उत्पन्न होते हैं।[1]

पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होनेवाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक के उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

२९. **असण्णिपंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवति० ?**

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं० उक्कोसेणं बावीसवाससह० ।

[२९ प्र] भगवन् ! असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ?

[२९ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है।

३०. **ते ण भंते ! जीवा० ?**

एव जहेव बेइंदियस्स ओहियगमए लद्धी तहेव, नवरं सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असखेज्जति०, उक्कोसेणं जोयणसहस्स। पच इंदिया। ठिती अणुबंधो य जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी। सेसं त चेव। भवाएसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं। कालादेसेण जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेण चत्तारि पुव्वकोडीओ अट्ठासीतीए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवतियं०। नवसु वि गमएसु कायसंवेहो भवाएसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं। कालाएसेणं उवजुज्जिऊण भाणितव्व, नवर मज्झिमएसु तिसु गमएसु जहेव बेइंदियस्स मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु। पच्छिल्लएसु तिसु गमएसु जहा एयस्स चेव पढमगमए, नवरं ठिती अणुबंधो जहन्नेण पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी। सेसं तहेव जाव नवमगमए जहन्नेणं पुव्वकोडी बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ अट्ठासीतीए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवतिय कालं सेविज्जा०। [१—९ गमगा]।

[३० प्र.] भगवन् ! वे जीव (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक), एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इयादि प्रश्न।

[३० उ] गौतम ! द्वीन्द्रिय के औधिक गमक में जो वक्तव्यता कही है, वही वक्तव्यता यहाँ कहनी चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है। इनके पाचो इन्द्रिया होती है। स्थिनि और अनुबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष का है। शेष सब पूर्वोक्तानुसार जानना। भव की अपेक्षा से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव होते हैं। काल की अपेक्षा से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ८८ हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि वर्ष, यावत् इतने काल गमनागमन करता है।

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९३६

नौ ही गमकों में कायसंवेध - भव की अपेक्षा से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव होते हैं। काल की अपेक्षा से कायसंवेध उपयोगपूर्वक कहना चाहिए। विशेष यह है कि तीनों (चौथे-पाँचवें-छठे) गमकों में द्वीन्द्रिय के मध्य में तीनों गमकों के समान कहना चाहिए। पिछले तीन गमकों (सातवें-आठवें-नौवें) का कथन प्रथम के तीन गमकों के समान समझना चाहिए। यह स्थिति और अनुबन्ध जघन्य तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि समझना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना, यावत् —नौवें गमक में जघन्य पूर्वकोटि-अधिक २२,००० वर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि-अधिक ८८,००० वर्ष, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों की स्थिति तथा नौ ही गमकों में जो विशेष अन्तर है, वह मूलपाठ में अंकित है। इसलिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।[1]

पृथ्वीकाय में उत्पन्न होनेवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

३१. जदि सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए० किं संखेज्जवासाउय०, असंखेज्जवासाउय० ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउय०, नो असंखेज्जवासाउय०।

[३१ प्र.] भगवन् ! यदि वे (पृथ्वीकायिक), संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे संख्यातवर्ष की आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच से आकर उत्पन्न होते है या असंख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी प. ति. से ?

[३१ उ.] गौतम ! वे संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते है, असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से नहीं।

३२. जदि संखेज्जवासाउय० किं जलचरेहिंतो० ?

सेसं जहा असण्णीणं जाव

[३२ प्र.] यदि वे पृथ्वीकायिक संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से उत्पन्न होते है, तो क्या जलचरों से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[३२ उ.] यहाँ समग्र वक्तव्यता असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के समान जाननी चाहिए। यावत्—

३३. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवतिया उववज्जंति० ?

एवं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स सन्निस्स तहेव इह वि, नवरं ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं। सेसं तहेव जाव कालादेसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ अट्ठासीतीए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवतियं०। एवं संवेहो णवसु वि गमएसु जहा असण्णीणं तहेव निरवसेसं। लद्धी से आदिल्लएसु तिसु वि गमएसु

[1] वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा. २, (मूलपाठ-टिप्पण) पृ. ९३६-९३७

एस चेव, मज्झिल्लएसु वि तिसु गमएसु एस चेव। नवरं इमाइं नव नाणत्ताइं—ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जति०, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जति०। तिन्नि लेस्साओ, मिच्छादिट्ठी, दो अन्नाणा, कायजोगी, तिन्नि समुग्घाया; ठिती जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं; अप्पसत्था अज्झवसाणा, अणुबंधो जहा ठिती। सेसं तं चेव। पच्छिल्लएसु तिसु गमएसु जहेव पढमगमए, नवरं ठिती अणुबंधो जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी। सेसं तं चेव। [१—९ गमगा]।

[३३ प्र.] भगवन्! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है?, इत्यादि प्रश्न।

[३३ उ] (गौतम!) जैसी रत्नप्रभा मे उत्पन्न होने योग्य सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो की वक्तव्यता कही है, वैसी यहाँ भी कहनी चाहिए। विशेष यह है कि उनके शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट हजार योजन की होती है। शेष सब उसी प्रकार जानना चाहिए। यावत् कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ८८ हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि, यावत् इतने काल गमनागमन करते है। इसी प्रकार नौ ही गमको मे सवेध भी असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की तरह कहना चाहिए। प्रथम के तीन (१-२-३) गमको और मध्य के तीन (४-५-६) गमको मे भी यही वक्तव्यता जाननी चाहिए। परन्तु मध्य के तीन (४-५-६) गमको में नौ नानात्व है। यथा—(१) शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अगुल का असख्यातवाँ भाग होती है। (२) लेश्याएँ तीन होती है। (३) वे मिथ्यादृष्टि होते हैं। (४) उनमे दो अज्ञान होते हैं। (५) काययोगी होते है। (६) तीन समुद्घात होते है। (७) स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होती है। (८) अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं और (९) अनुबन्ध भी स्थिति के अनुसार होता है। शेष सब पूर्वोक्त कथनानुसार कहना चाहिए। अन्तिम तीन (७-८-९) गमको मे प्रथम गमक के समान वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि स्थिति और अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि का होता है। शेष सब पूर्ववत्।

विवेचन निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने वाले सज्ञी तिर्यञ्च पचेन्द्रिय जीवो की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की होती है। इनके प्रथम तीन गमको का कथन रत्नप्रभा मे उत्पन्न होने वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च के प्रथम, द्वितीय और तृतीय गमक के समान ही है। चौथे, पाचवें और छठे गमक का कथन भी इसी प्रकार है। किन्तु नौ विषयो मे अन्तर है, जो मूलपाठ मे बताया गया है। अन्तिम तीन गमको का कथन प्रथम के तीन गमको के समान है। स्थिति और अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि का होता है।[1]

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी-संज्ञी-संख्येय वर्षायुष्क पर्याप्तक-अपर्याप्तक मनुष्यों के उत्पादादि बीस द्वारो की प्ररूपणा

३४. जदि मणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सन्निमणुस्सेहिंतो उवव०, असन्निमणुस्सेहिंतो०?

गोयमा! सन्निमणुस्सेहिंतो०, असण्णिमणुस्सेहिंतो वि उववज्जति।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८२९

[३४ प्र.] (भगवन् !) यदि वे (पृथ्वीकायिक) मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे संज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है या असज्ञी मनुष्यो से ?

[३४ उ] गौतम ! वे सज्ञी और असज्ञी दोनो प्रकार के मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं।

३५. असन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु० से णं भंते ! केवतिकाल० ?

एवं जहा असन्निपंचेंदियतिरिक्खस्स जहन्नकालट्ठितीयस्स तिन्नि गमगा तहा एतस्स वि ओहिया तिन्नि गमगा भाणियव्वा तहेव निरवसेस। सेसा छ न भण्णंति। [१ – ३ गमगा]।

[३५ प्र] भगवन् ! यदि असज्ञी मनुष्य, जो पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने योग्य है, कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ?

[३५ उ] जिस प्रकार जघन्य काल की स्थिति वाले असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के विषय मे तीन गमक कहे गए है, उसी प्रकार यहाँ भी औघिक तीन गमक सम्पूर्ण कहने चाहिए। शेष गमक नही कहने चाहिए। [गमक १ से ३ तक]

३६. जइ सन्निमणुस्सेहिंतो उववज्जति किं संखेज्जवासाउय०, असखेज्जवासाउय० ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउय०, णो असंखेज्जवासाउय०।

[३६ प्र.] यदि वे (पृथ्वीकायिक) सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है या असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[३६ उ.] गौतम ! वे सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं, असख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यो से उत्पन्न नही होते।

३७. जवि संखेज्जवासाउय० किं पज्जत्त०, अपज्जत्त० ?

गोयमा ! पज्जत्तसखे०, अपज्जत्तसंखेज्जवासा०।

[३७ प्र] भगवन् ! यदि वे सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है या अपर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो से ?

[३७ उ] गौतम ! वे पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो प्रकार के सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं।

३८. सन्निमणुस्से णं भते ! जे भविए पुढविकाइएसु उवव०, से णं भते ! केवतिकाल० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त०, उक्कोसेण बावीसवाससहस्सट्ठितीएसु।

[३८ प्र.] भगवन् ! सख्येय वर्षायुष्क पर्याप्त सज्ञी मनुष्य जो पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ?

[३८ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है।

३९. ते णं भंते ! जीवा० ?

एवं जहेव रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स तहेव तिसु वि गमएसु लद्धी। नवरं ओगाहणा जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंच धणुसताइं; ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी। एवं अणुबंधो। संवेहो नवसु गमएसु जहेव सन्निपंचेंदियस्स। मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु लद्धी—जहेव सन्निपंचेंदियस्स मज्झिल्लएसु तिसु। सेसं तं चेव निरवसेसं। पच्छिल्ला तिन्नि गमगा जहा एयस्स चेव ओहिया गमगा, नवर ओगाहणा जहन्नेणं पंच धणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंच धणसयाइं; ठिती अणुबंधो जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी। सेसं तहेव, नवरं पच्छिल्लएसु गमएसु संखेज्जा उववज्जंति, नो असंखेज्जा उवव०। [१-९ गमगा]।

[३९ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३९ उ] गौतम ! रत्नप्रभा मे उत्पन्न होने योग्य मनुष्य की जो वक्तव्यता पहले कही है, वही यहाँ तीनो गमको मे कहनी चाहिए। विशेष यह है कि उसके शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष की होती है, स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार जानना चाहिए। सवेध—जैसे सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च का कहा है, वैसे ही यहाँ नौ ही गमको मे कहना चाहिए। बीच के तीन गमको (४-५-६) मे सज्ञी पचेन्द्रिय के मध्यम तीन गमको की वक्तव्यता के समान कहना चाहिए। शेष सब पूर्वोक्त प्रकार से जानना। पिछले तीन गमको (७-८-९) का कथन इसी के प्रथम तीन औघिक गमको के समान कहना चाहिए। विशेष यह है कि शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की है, स्थिति और अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि के होते हैं। शेष सब पूर्ववत्। विशेषता यह है कि पिछले तीन गमको (७-८-९) मे सख्यात ही उत्पन्न होते है, असख्यात नही। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—मनुष्यों की पृथ्वीकायिकादि मे उत्पत्ति आदि से सम्बद्ध गमको मे विशेषता—(१) निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक जीव सज्ञी और असज्ञी, सख्यात वर्ष की आयु वाले, पर्याप्तक और अपर्याप्तक मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है। (२) **कितने काल की स्थिति सम्बन्धी** प्रश्न का समाधान यह है कि जिस प्रकार जघन्य काल की स्थिति वाले असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के विषय मे तीन गमक कहे गए है, उसी प्रकार यहाँ असज्ञी मनुष्यो के भी आदि के औघिक तीनो समग्र गमक समझने चाहिए। शेष छह गमक सम्मूर्च्छिम (असज्ञी) मनुष्यो मे सम्भव नही हैं, इसलिए यहाँ शेष छह गमको का निषेध किया गया है। (३) **संज्ञी मनुष्यों के नौ गमकों में विशेष ज्ञातव्य**—जिस प्रकार रत्नप्रभा मे उत्पन्न होने योग्य सज्ञी मनुष्य के गमक कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ भी पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने योग्य सज्ञी मनुष्य के छह गमको (प्रथम, द्वितीय, तृतीय और सप्तम, अष्टम और नवम गमक) का कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि रत्नप्रभा में उत्पन्न होने वाले मनुष्य की अवगाहना जघन्य अगुल-पृथक्त्व की और स्थिति जघन्य मास-पृथक्त्व कही थी, किन्तु यहाँ अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है। सवेध—नौ गमको मे पृथ्वीकायिको मे आकर उत्पन्न होने वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के समान है, क्योकि पृथ्वीकायिकों मे उत्पन्न होने वाले सज्ञी मनुष्य और तिर्यञ्च की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि

की होती है। मध्य के तीन गमको का कथन सज्ञी-पचेन्द्रिय के मध्य के तीनो गमको के समान है। प्रथम के तीन औघिक गमको मे जो अवगाहना और स्थिति कही गई है, वह अन्तिम तीन गमको मे नही होती, किन्तु इनमें अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की और स्थिति तथा अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि के है।[1]

देवों से आकर पृथ्वीकायिकों में उत्पाद-निरूपण

४०. जति देवेहिंतो उववज्जंति किं भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति, वाणमतर०, जोतिसिय-देवेहिंतो उवव०, वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

[४० प्र] भगवन् ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) देवो से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है, अथवा वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[४० उ] गौतम ! वे भवनवासी देवो से भी आकर उत्पन्न होते है, यावत् वैमानिक देवो से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

विवेचन—निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक जीवो मे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक, चारो निकायो के देव उत्पन्न हो सकते हैं।

भवनवासी देवों की अपेक्षा पृथ्वीकायिको मे उत्पत्ति-निरूपण

४१. जइ भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जति किं असुरकुमारभवणवासिदेवेहितो उववज्जति जाव थणियकुमारभवणवासिदेवेहिंतो० ?

गोयमा ! असुरकुमारभवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जति जाव थणियकुमारभवणवासिदेवेहितो वि उववज्जंति।

[४१ प्र.] भगवन् ! यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव) भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे असुरकुमार-भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है, अथवा यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[४१ उ] गौतम ! वे असुरकुमार-भवनवासी देवो से भी आकर उत्पन्न होते है, यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी देवो से भी आकर उत्पन्न होते है।

विवेचन—निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक जीव दसो प्रकार के भवनपति देवो से आकर उत्पन्न होते हैं। दस प्रकार के भवनपति देवो के नाम इस प्रकार है—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार,

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, भाग २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९३८-९३९
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८३२

(३) सुपर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) वायुकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) द्वीपकुमार, (९) दिक्कुमार और (१०) स्तनितकुमार।[1]

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होनेवाले असुरकुमार में उत्पाद-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

४२. असुरकुमारे ण भते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अतोमुहुत्त०, उक्कोसेणं बावीसवाससहस्सट्ठिती० ।

[४२ प्र] भगवन् ! जो असुरकुमार पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ?

[४२ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है।

४३ ते ण भंते ! जीवा० पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा उवव० ।

[४३ प्र.] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[४३ उ] गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं।

४४. तेसि ण भते ! जीवाण सरीरगा किंसंघयणी पन्नत्ता ?

गोयमा ! छण्ह सघयणाण असघयणी जाव[2] परिणमति ।

[४४ प्र] भगवन् ! उन जीवो (पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने वाले भवनपति देवो) के शरीर किस प्रकार के सहनन वाले कहे गए है ?

[४४ उ.] गौतम ! उनके शरीर छहो प्रकार के सहननो से रहित होते है, (क्योकि उनके अस्थि, शिरा, स्नायु इत्यादि नही होते, परन्तु जो इष्ट, कान्त और मनोज्ञ पुद्गल है, वे शरीर-सघातरूप से) यावत् परिणत होते है।

४५. तेसि णं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा० ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य, उत्तरवेउव्विया य । तत्थ ण जा सा

१, (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९३९

(ख) भवनवासिनोऽसुर-नाग-सुपर्ण-विद्युदग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमारा ।

—तत्त्वार्थ अ ४, सू ११

२ 'जाव' पद से सूचितपाठ —"**णेवट्ठी णेव छिरा नेव ण्हारू नेव सघयणमत्थि । जे पोग्गला इट्ठा कता पिया मणुण्णा मणामा ते तेसिं सरीरसघायत्ताए ति ।**" —अ वृ पत्र ८३२

भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेण अंगुलस्स संखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं।

[४५ प्र] भगवन्! उन जीवो के शरीर की अवगाहना कितनी बडी होती है?

[४५ उ.] गौतम! (उनके शरीर को अवगाहना) दो प्रकार की कही गई है। यथा— भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमे जो भवधारणीय अवगाहना है, वह जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट सप्त रत्नि (हाथ) की है तथा उनमे जो उत्तरवैक्रिय अवगाहना है, वह जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट एक लाख योजन की है।

४६. तेसि ण भंते! जीवाणं सरीरगा किंसंठिता पन्नत्ता?

गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, त जहा—भवधारणिज्जा य, उत्तरवेउव्विया य। तत्थ ण जे ते भवधारणिज्जा ते समचतुरससठिया पन्नत्ता। तत्थ ण जे ते उत्तरवेउव्विया ते नाणासंठिया पन्नत्ता। लेस्साओ चत्तारि। दिट्ठी तिविहा वि। तिण्णी णाणा नियमं, तिण्णि अण्णाणा भयणाए। जोगो तिविहो वि। उवयोगो दुविहो वि। चत्तारि सण्णाओ। चत्तारि कसाया। पच इंदिया। पच समुग्घाया। वेयणा दुविहा वि। इत्थिवेदगा वि, पुरिसवेदगा वि, नो नपुसगवेयगा। ठिती जहन्नेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेग सागरोवम। अज्झवसाणा असखेज्जा, पसत्था वि अप्पसत्था वि। अणुबंधो जहा ठिती। भवादेसेणं दो भवग्गहणाइ। कालादेसेण जहन्नेण दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण सातिरेगं सागरोवम बावीसाए वाससहस्सेहि अब्भहिय, एवतियं०। एवं णव वि गमा नेयव्वा, नवरं मज्झिल्लएसु पच्छिल्लएसु य तिसु गमएसु असुरकुमाराण ठितिविसेसो जाणियव्वो। सेसा ओहिया चेव लद्धी कायसवेह च जाणेज्जा। सव्वत्थ दो भवग्गहणा जाव णवमगमए कालादेसेणं जहन्नेणं सातिरेगं सागरोवम बावीसाए वाससहस्सेहिमब्भहिय, उक्कोसेण वि सातिरेग सागरोवम बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, एवतियं०। [१–९ गमगा]।

[४६ प्र] भगवन्! उन जीवो के शरीर का सस्थान कौन-सा कहा गया है? (इत्यादि प्रश्न।)

[४६ उ.] गौतम! उनके शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमे जो भवधारणीय शरीर हैं, वे समचतुरस्रसस्थान वाले कहे गए है तथा जो उत्तरवक्रिय शरीर है, वे अनेक प्रकार के सस्थान वाले कहे गए हैं। उनके चार लेश्याए, तीन दृष्टियाँ नियमत तीन ज्ञान, तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से, योग तीन, उपयोग दो, सज्ञाए चार, कषाय चार, इन्द्रिया पाच, समुद्घात पाच और वेदना दो प्रकार की होती है। वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी होते है, नपुसकवेदी नही होते। उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट सातिरेक सागरोपम की होती है। उनके अध्यवसाय असख्यात प्रकार के प्रशस्त और अप्रशस्त दोनो प्रकार के होते है। अनुबन्ध स्थिति के अनुसार होता है। (सवेध) भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है। कालादेश से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष अधिक सातिरेक सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। इस प्रकार नौ ही गमक जानने चाहिए। विशेष यह है कि

मध्यम और अन्तिम तीन-तीन गमको मे असुरकुमारो की स्थिति-विषयक विशेषता जान लेनी चाहिए। शेष औघिक वक्तव्यता और काय-सवेध जानना चाहिए। सवेध मे सर्वत्र दो भव जानने चाहिए। इस प्रकार यावत् नौवे गमक मे कालादेश से जघन्य बाईस हजार वर्ष अधिक साधिक सागरोपम काल तक गमनागमन करता है। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—पृथ्वीकायिक मे असुरकुमारो की उत्पत्तिसम्बन्धी कुछ स्पष्टीकरण—(१) असुरकुमारो का सहनन—सिद्धान्तत देवो का शरीर सहनन वाला नही होता, उनके शरीर मे हड्डी, शिरा (नसे) तथा स्नायु आदि नही होते, किन्तु इष्ट, कान्त, प्रिय एव मनोज्ञ पुद्गल सघातरूप से परिणत हो जाते है। (२) **अवगाहना**—उत्पत्ति के समय देवो के भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग होती है, जबकि उत्तरवैक्रिय अवगाहना आभोग (उपयोग)- जनित होने से जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग होती है, भवधारणीय अवगाहना के समान वे अगुल के असख्यातवे भाग अवगाहना नही कर सकते। उत्तरवैक्रिय अवगाहना इच्छानुसार होने से उत्कृष्ट एक लाख योजन तक की की जा सकती है। (३) **सस्थान**—इसी प्रकार उत्तरवैक्रिय सस्थान अपनी इच्छानुसार बनाया जाता है, इसलिए वह नाना प्रकार का होता है। (४) **अज्ञान**—इनमे तीन अज्ञान भजना से कहे गए हैं, इसका कारण यह है कि जो असुरकुमार असज्ञी जीवो से आते है, उनमे अपर्याप्त-अवस्था मे विभगज्ञान नही होता। शेष मे होता है। इसलिए अज्ञान के विषय मे भजना कही गई है (५) **सवेध**—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का जो कहा गया है, उसमे, पृथ्वीकायिक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और असुरकुमारो की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की, दोनो को मिला कर कहा गया है। इसी प्रकार उत्कृष्ट के विषय मे समझना चाहिए कि पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट स्थिति २२,००० वर्ष की है और असुरकुमारो की उत्कृष्ट स्थिति सातिरेक सागरोपम है। इन दोनो को मिला कर उत्कृष्ट सवेध कहा गया है। इसका सवेधकाल भी इतना ही है, क्योकि असुरकुमारादि से निकल कर पृथ्वीकाय मे आते हैं किन्तु पृथ्वीकाय से निकल कर असुरकुमारादि मे नही आते। मध्य के तीन गमको मे असुरकुमारो की स्थिति दस हजार वर्ष की तथा अन्तिम तीन गमको मे सातिरेक सागरोपम की समझनी चाहिए।[1]

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होनेवाले नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपति देवों में उत्पत्ति-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

४७. नागकुमारे ण भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु० ?

एस चेव वत्तव्वया जाव भवादेसो त्ति। णवर ठिती जहन्नेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणाइ दो पलितोवमाइ। एव अणुबंधो वि, कालाएसेणं जहन्नेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं देसूणाइ दो पलिओवमाइ बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाइं। एवं णव वि गमगा असुरकुमारगमगसरिसा, नवर ठिति कालाएसं च जाणेज्जा। एवं जाव थणियकुमाराण।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८३२
(ख) भगवती हिन्दी विवेचन भा. ६, पृ ३०९७-३०९८

[४७ प्र] भगवन् ! जो नागकुमार देव पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४७ उ] गौतम ! यहाँ असुरकुमार देव की पूर्वोक्त समस्त वक्तव्यता यावत्—भवादेश तक कहनी चाहिए । विशेष यह है कि उसकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की होती है । अनुबन्ध भी इसी प्रकार समझना चाहिए । (सवेध) कालादेश से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष अधिक देशोन दो पल्योपम, (यावत् इतने काल गमनागमन करता है ।) इस प्रकार नौ ही गमक असुरकुमार के गमको के समान जानना चाहिए । परन्तु विशेष यह है कि यहाँ स्थिति और कालादेश इनको (भिन्न) जानना । इसी प्रकार (सुपर्णकुमार से लेकर) यावत् स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए ।

विवेचन - नागकुमार से स्तनितकुमार तक मे उत्पन्न होने सम्बन्धी द्वार—कुछ बातो को छोडकर प्राय सभी गमक असुरकुमार के गमको की तरह है । तीन बातो मे भिन्नता है- स्थिति, अनुबन्ध और सवेध (कालादेश), जिनका उल्लेख मूलपाठ मे किया गया है ।

पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होनेवाले वाणव्यन्तर देवो मे उत्पाद-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

४८ जति वाणमतरेहिंतो उववज्जंति कि पिसायवाणमतर० जाव गधव्ववाणमतर० ?

गोयमा ! पिसायवाणमंतर० जाव गंधव्ववाणमंतर० ।

[४८ प्र] भगवन् ! यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव), वाणव्यन्तर देवो से आकर उत्पन्न होते है तो क्या वे पिशाच वाणव्यन्तरो से आकर उत्पन्न होते है, अथवा यावत् गन्धर्व वाणव्यन्तरो से आकर उत्पन्न होते है ?

[४८ उ] गौतम ! वे पिशाच वाणव्यन्तरो से भी आकर उत्पन्न होते है, यावत् गन्धर्व वाणव्यन्तरो से भी आकर उत्पन्न होते है ।

४९. वाणमतरदेवे ण भते ! जे भविए पुढविकाइए० ?

एएसि पि असुरकुमारगमगसरिसा नव गमगा भाणियव्वा । नवर ठिति कालादेस च जाणेज्जा । ठिती जहन्नेण दस वाससहस्साइ, उक्कोसेण पलिओवम । सेसं तहेव ।

[४९ प्र] भगवन् ! जो वाणव्यन्तर देव, पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४९ उ] गौतम ! इनके भी नौ गमक असुरकुमार के नौ गमको के सदृश कहने चाहिए । परन्तु विशेष यह है कि यहाँ स्थिति और कालादेश (भिन्न) जानना चाहिए । इनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है । शेष सब उसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना चाहिए । [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—निष्कर्ष—(१) वाणव्यन्तर देवो से आकर पृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने वाले पिशाचादि सभी प्रकार के वाणव्यन्तर देव होते है । वाणव्यन्तर देवो के ८ भेद इस प्रकार हैं—

(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गान्धर्व, (५) यक्ष, (६) भूत (प्रेत आदि) (७) राक्षस, (८) पिशाच।[1]

(२) इनके नौ ही गमक स्थिति और कालादेश को छोड कर असुरकुमार के नौ ही गमको के समान समझना चाहिए।[2]

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होनेवाले ज्योतिष्कदेवों में उपपात-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

५०. जति जोतिसियदेवेहिंतो उवव० किं चदविमाणजोतिसियदेवेहिंतो उववज्जंति जाव ताराविमाणजोतिसियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! चंदविमाण० जाव ताराविमाण०।

[५० प्र] भगवन् ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) ज्योतिष्क देवो से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे चन्द्रविमान-ज्योतिष्क देवो से आकर उत्पन्न होते है अथवा यावत् ताराविमान-ज्योतिष्क देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[५० उ] गौतम ! वे चन्द्रविमान-ज्योतिष्क देवो से भी आकर उत्पन्न होते है, यावत् तारा-विमान-ज्योतिष्कदेवो से भी आकर उत्पन्न होते है।

५१ जोतिसियदेवे ण भंते ! भविए पुढविकाइए० ?

लद्धी जहा असुरकुमाराण। णवर एगा तेउलेस्सा पन्नत्ता। तिन्नि नाणा, तिन्नि अन्नाणा नियम। ठिती जहन्नेणं अट्ठभागपलिओवम, उक्कोसेण पलिओवम वाससयसहस्समब्भहियं, एव अणुबंधो वि। कालाएसेणं जहन्नेणं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं पलिओवम वाससयसहस्सेणं बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, एवतिय०। एवं सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा, नवरं ठिंति कालाएसं च जाणेज्जा।

[५१ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देव जो पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वे कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है ?

[५१ उ] (गौतम !) इनके विषय मे उत्पत्ति-परिमाणादि की लब्धि (प्राप्ति) असुरकुमारो की वक्तव्यता के समान जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके एकमात्र तेजोलेश्या होती है। इनमे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियम से होते है। इनकी स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवे भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार जानना चाहिए। (सवेध) काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का आठवाँ भाग और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम तथा एक लाख वर्ष, इतने काल तक गमनागमन करता है। इसी प्रकार शेष आठ गमक भी कहने चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति और कालादेश (पूर्वापेक्षया भिन्न) समझने चाहिए।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९४१

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९४१

विवेचन—कुछ तथ्यों का स्पष्टीकरण—(१) ज्योतिष्कदेवो मे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियम से कहे गए हैं, इसका कारण यह है कि इनमे असज्ञी जीव नही आते, जो सम्यग्दृष्टि सज्ञी जीव आते हैं, उनके उत्पत्ति के समय ही मतिज्ञान आदि तीन ज्ञान होते है और जो मिथ्यादृष्टि सज्ञी आते हैं, उनके मति-अज्ञान आदि तीन अज्ञान होते है। (२) पल्योपम के आठवे भाग (⅛) की जो जघन्य स्थिति कही गई है, वह तारा-विमानवासी देवी-देवो की अपेक्षा समझनी चाहिए तथा एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति कही गई है, वह चन्द्र-विमानवासी देवो की अपेक्षा समझनी चाहिए।[1] (३) पृथ्वीकायिक जीवो मे पाचो प्रकार के ज्योतिष्क देव आकर उत्पन्न होते है। ज्योतिष्क देवो के ५ भेद इस प्रकार है—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारा।[2]

वैमानिक देवों की अपेक्षा पृथ्वीकायिक-उत्पत्ति-निरूपण

५२. जइ वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति किं कप्पोवगवेमाणिय० कप्पातीयवेमाणिय० ?

गोयमा ! कप्पोवगवेमाणिय०, नो कप्पातीयवेमाणिय०।

[५२ प्र] भगवन् ! यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव), वैमानिकदेवो से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे कल्पोपपन्न वैमानिकदेवो से आकर उत्पन्न होते है अथवा कल्पातीत वैमानिकदेवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[५२ उ] गौतम ! वे कल्पोपपन्न वैमानिकदेवो से आकर उत्पन्न होते है, कल्पातीत से उत्पन्न नही होते है।

५३. जदि कप्पोवगवेमाणिय० किं सोहम्मकप्पोवगवेमाणिय० जाव अच्चुयकप्पोवगवेमा० ?

गोयमा ! सोहम्मकप्पोवगवेमाणिय०, ईसाणकप्पोवगवेमाणिय०, नो सणंकुमारकप्पोवगवेमाणिय० जाव नो अच्चुयकप्पोवगवेमाणिय०।

[५३ प्र] (भगवन् !) यदि वे (पृथ्वीकायिक) कल्पोपन्न वैमानिकदेवो से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे सौधर्म-कल्पोपन्न वैमानिकदेवो से आकर उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् अच्युत-कल्पोपन्न वैमानिकदेवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[५३ उ] गौतम ! वे सौधर्म-कल्पोपपन्न वैमानिकदेवो से तथा ईशान-कल्पोपपन्न वैमानिक-देवो से आकर उत्पन्न होते है, किन्तु सनत्कुमार-वैमानिकदेवो से लेकर यावत् अच्युत-कल्पोपपन्न वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न नही होते।

विवेचन—निष्कर्ष—(१) सौधर्म देवलोक से लेकर अच्युत देवलोक तक के देव **'कल्पोपक'** या **'कल्पोपपन्न'** कहलाते हैं। इनसे आगे के नौ ग्रैवेयक एव पाच अनुत्तर विमानवासी देव **'कल्पातीत'** कहलाते हैं। कल्पातीत देव वहाँ से च्यवन करके पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न नही होते। अब रहे कल्पोपपन्नक, उनमें से सौधर्म और ईशान कल्प के देव ही च्यव कर पृथ्वीकायिक आदि मे उत्पन्न हो सकते

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८३१

(ख) जघन्या त्वष्टभागः। ज्योतिष्काणामधिकम्। —तत्त्वार्थसूत्र अ ४, सू ५१, ४८

२. ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो-ग्रह-नक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च। —तत्त्वार्थसूत्र अ ४, सू १३

हैं, इनके आगे सनत्कुमारकल्प से लेकर अच्युतकल्प के देव च्यवन करके पृथ्वीकायादि मे उत्पन्न नही होते ।[1]

५४. सोहम्मदेवे णं भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु उवव० से णं भंते ? केवति० ?

एव जहा जोतिसियस्स गमगो । णवर ठिती अणुबधो य जहन्नेणं पलिग्रोवम, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं । कालादेसेणं जहण्णेणं पलिग्रोवमं अतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं बावीसाए वाससहस्सेहिं ग्रब्भहियाइ, एवतिय काल० । एव सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा, णवर ठिति कालाएसं च जाणेज्जा । [१-९ गमगा] ।

[५४ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्पोपपन्न वैमानिक देव, जो पृथ्वीकायिको में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[५४ उ] गौतम ! ज्योतिष्क देवो के गमक के समान (यहाँ भी प्रथम गमक) कहना चाहिए । विशेषता यह है कि इनकी स्थिति और अनुबन्ध जघन्य एक पल्योपम और उत्कृष्ट दो सागरोपम है । (सवेध) कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक एक पल्योपम और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष अधिक दो सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करता है । इसी प्रकार शेष आठ गमक भी जानने चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ स्थिति और कालादेश (पहले की अपेक्षा भिन्न) समझने चाहिए । [गमक १ से ९ तक] ।

५५. ईसाणदेवे णं भंते ! जे भविए० ।

एव ईसाणदेवेण वि नव गमगा भाणियव्वा, नवर ठिती अणुबधो जहन्नेणं सातिरेगं पलिग्रोवमं उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइ । सेस तं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति ।

।। चउवीसइमे सते : बारसमो उद्देसग्रो समत्तो ।। २४-१२ ।।

[५५ प्र.] भगवन् ! ईशानदेव, जो पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने योग्य है, कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिको मे उसकी उत्पत्ति होती है ?

[५५ उ] (गौतम !) इस (ईशानदेव के) सम्बन्ध मे पूर्वोक्त नौ ही गमक इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति और अनुबन्ध जघन्य सातिरेक एक पल्योपम और उत्कृष्ट सातिरेक दो सागरोपम होता है । शेष सब पूर्ववत् समझना चाहिए ।

---

१. (क) भगवती, हिन्दी-विवेचन भा ७, पृ ३१०२

(ख) **वैमानिकाः कल्पोपपन्ना : कल्पातीताश्च । सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मलोक-लान्तक-महाशुक्र-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च ।**

—तत्त्वार्थसूत्र अ. ४, सू १७, १८, २० ।

(ग) **वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा. २ (मू. पा. टि.), पृ. ९४१-९४२**

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' इस प्रकार कह कर गौतम-स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—इन सब गमकों की व्याख्या पूर्ववत् जाननी चाहिए।

॥ चौबीसवां शतक : बारहवां उद्देशक समाप्त ॥

तेरसमो : आउकाइय-उद्देसओ

तेरहवाँ उद्देशक : अप्कायिकों की उत्पत्ति आदि सम्बन्धी

तेरहवें उद्देशक के प्रारम्भ में मध्य मंगलाचरण

१. नमो सुयदेवयाए ।

[१] श्रुत-देवता को नमस्कार हो ।

विवेचन—यह मध्य-मगलाचरण है । आदि-मगलाचरण करने के बाद अब शास्त्रकार शास्त्र की निर्विघ्न समाप्ति के लिए शास्त्र के मध्य मे अर्थात् चौवीसवे शतक के तेरहवे उद्देशक के आदि मे मगलाचरण करते हैं ।

अप्कायिकों में उत्पन्न होनेवाले चौवीस दण्डकों में उत्पादादि प्ररूपणा

२. आउकाइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?०

एव जहेव पुढविकाइयउद्देसए जाव पुढविकाइये णं भंते ! जे भविए आउकाइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त०, उक्कोसेणं सत्तवाससहस्सट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ।

[२ प्र.] भगवन् ! अप्कायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है । इत्यादि प्रश्न ।

[२ उ] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक-उद्देशक (बारहवे) मे कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना । यावत्—

[प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, जो अप्कायिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले अप्कायिक मे उत्पन्न होता है ?

[उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की स्थिति वाले अप्कायिको मे उत्पन्न होता है ।

३. एवं पुढविकाइयउद्देसगसरिसो भाणियव्वो, णवरं ठिइं संवेहं च जाणेज्जा । सेसं तहेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।

।। चउवीसमे सते : तेरसमो उद्देसओ समत्तो ।। २४-१३ ।।

[३] इस प्रकार यह समग्र उद्देशक (नौ गमको सहित) पृथ्वीकायिक के समान कहना चाहिए । विशेष यह है कि इसकी स्थिति और सवेध (के विषय मे यथायोग्य) जान लेना चाहिए । शेष सब पूर्ववत् जानना ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—निष्कर्ष—स्थिति और संवेध के सिवाय अप्कायिक का समग्र वर्णन पृथ्वीकायिक-उद्देशक (पूर्वोक्त बारहवे उद्देशक) के समान समझना चाहिए।

॥ चौवीसवाँ शतक तेरहवाँ उद्देशक समाप्त ॥

चउद्दसमो : तेउक्काइय-उद्देसओ

चौदहवाँ उद्देशक : तेजस्कायिक (की उत्पत्ति आदि-सम्बन्धी)

तेजस्कायिकों में उत्पन्न होनेवाले दण्डकों में बारहवें उद्देशक के अनुसार वक्तव्यता-निर्देश

१. तेउक्काइया णं भंते ! कम्रोहिंतो उववज्जंति ?०

एव पुढविकाइयउद्देसगसरिसो उद्देसो भाणितव्वो, नवरं ठिति संवेह च जाणेज्जा। देवेहिंतो न उववज्जति। सेस त चेव।

सेवं भते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरति।

॥ चउवीसइमे सए : चतुद्दसमो उद्देसम्रो समत्तो ॥२४-१४॥

[१ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक जीव, कहाँ से आ कर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[१ उ] यह उद्देशक भी पृथ्वीकायिक-उद्देशक की तरह कहना चाहिए। विशेष यह है कि इसकी स्थिति और सवेध (पहले से भिन्न) समझने चाहिये। तेजस्कायिक जीव देवो से आ कर उत्पन्न नही होते। शेष सब पूर्ववत् जानना।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर श्रीगौतमस्वामी यावत् विचरण करते है।

विवेचन—निष्कर्ष—स्थिति और संवेध को छोड़ कर समग्र तेजस्कायिक उद्देशक भी पृथ्वीकायिक उद्देशक के समान कहना चाहिए। विशेष—कोई भी देव च्यव कर तेजस्काय जीवो मे उत्पन्न नही होता। तेजस्काय की स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन अहोरात्र है।[1]

॥ चौबीसवाँ शतक : चौदहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २, पृ. ९४३
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८३३

पण्णरसमो : वाउकाइय-उद्देसओ

पन्द्रहवाँ उद्देशक : वायुकायिक की उत्पत्ति आदि-सम्बन्धी

वायुकायिकों में उत्पन्न होनेवाले दण्डकों में चौदहवें उद्देशक के अनुसार वक्तव्यता-निर्देश

१. वाउकाइया णं भंते ! कम्रोहितो उववज्जंति ?०

एवं जहेव तेउक्काइयउद्देसम्रो तहेव, नवर ठिति संवेहं च जाणेज्जा ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। चउवीसइमे सते : पनरसमो उद्देसम्रो समत्तो ।।२४-१५।।

[१ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीव, कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] तेजस्कायिक-उद्देशक के समान इसकी समग्र वक्तव्यता है । स्थिति और संवेध तेजस्कायिक से भिन्न समझना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर श्रीगौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—निष्कर्ष—स्थिति और संवेध के अतिरिक्त वायुकायिक-सम्बन्धी समग्र वक्तव्यता तेजस्कायिक उद्देशक के समान कहना चाहिए । देवो से च्यव कर आया हुआ जीव वायुकायिको मे उत्पन्न नही होता । वायुकायिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है ।

।। चौवीसवाँ शतक : पन्द्रहवाँ उद्देशक समाप्त ।।

सोलसमो : वणस्सइकाइय-उद्देसओ

सोलहवाँ उद्देशक : वनस्पतिकायिक (की उत्पत्ति आदि सम्बन्धी)

वनस्पतिकायिकों में उत्पन्नहोने वाले चौवीस दण्डकों में बारहवें उद्देशकानुसार वक्तव्यता

१. वणस्सतिकाइया णं भंते ! कश्रोहितो उववज्जंति ?०

एव पुढविकाइयसरिसो उद्देसो, नवरं जाहे वणस्सतिकाइओ वणस्सतिकाइएसु उववज्जति ताहे पढम-बितिय-चउत्थ-पंचमेसु गमएसु परिमाणं अणुसमय अविरहियं अणता उववज्जति, भवाएसेणं जहन्नेण दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अणताइं भवग्गहणाइं, कालाएसेणं जहन्नेणं दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेण अणत कालं, एवतियं०। सेसा पंच गमा अट्ठभवग्गहणिया तहेव, नवर ठिति संवेहं च जाणेज्जा।

सेव भते ! सेवं भंते त्ति०।

।। चउवीसइमे सए : सोलसमो उद्देसओ समत्तो ।। २४-१६ ।।

[१ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव, कहाँ से आ कर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ.] यह उद्देशक पृथ्वीकायिक-उद्देशक के समान है । विशेष यह है कि जब वनस्पतिकायिक जीव, वनस्पतिकायिक जीवो मे उत्पन्न होते हैं, तब पहले, दूसरे, चौथे और पाचवे गमक मे परिमाण यह है कि प्रतिसमय निरन्तर वे अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं । भव की अपेक्षा से—वे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट अनन्त भव ग्रहण करते हैं, तथा काल की अपेक्षा से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है । शेष पाच गमको मे उसी प्रकार आठ भव जानने चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति और संवेध पहले से भिन्न जानना चाहिए ।

विवेचन -(१) वनस्पतिकायिक के जीवो का वनस्पतिकाय मे उद्वर्तन और उत्पाद अनन्त है, दूसरी कायो का नही, क्योकि दूसरी सभी कायो के जीव असख्यात ही है । इसलिए उनका उद्वर्तन और उत्पाद असख्यात का ही होता है, अनन्त का नही । (२) वनस्पतिकाय के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पचम गमक की स्थिति उत्कृष्ट नही होने से अनन्त उत्पन्न होते हैं । शेष पांच गमको की उत्कृष्ट स्थिति होने से उनमे एक, दो या तीन, इत्यादि रूप से भी उत्पन्न होते है, पहले, दूसरे, चौथे और पांचवे गमक की स्थिति उत्कृष्ट न होने के कारण ही उनमे भवादेश से उत्कृष्ट अनन्तभव और कालादेश से अनन्तकाल है । शेष पाच गमको मे उत्कृष्ट स्थिति होने से भवादेश से उत्कृष्ट आठ भव और कालादेश से उत्कृष्ट ८० हजार वर्ष है । सर्वगमको मे जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रतीत है । अर्थात्—जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट १० हजार वर्ष है । संवेध—तीसरे और सातवे गमक

मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक १० हजार वर्ष और उत्कृष्ट आठ भव की अपेक्षा ८० हजार वर्ष है। छठे और आठवे गमक मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक १० हजार वर्ष और उत्कृष्ट ४ अन्तर्मुहूर्त अधिक ४० हजार वर्ष है। नौवे गमक मे जघन्य २० हजार वर्ष और उत्कृष्ट ८० हजार वर्ष है।[1]

॥ चौवीसवां शतक । सोलहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

१. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ८३३

सत्तरसमो : बेइंदिय-उद्देसओ

सत्तरहवाँ उद्देशक : द्वीन्द्रियों मे उत्पादादि सम्बन्धी

द्वीन्द्रियों में उत्पन्न होनेवाले दण्डकों मे उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१. बेइंदिया ण भंते ! कओोहितो उववज्जति ?० जाव पुढविकाइए ण भंते ! जे भविए बेइंदिएसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवति० ?

स च्चेव पुढविकाइयस्स लद्धी जाव कालाएसेण जहन्नेण दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं संखेज्जाइ भवग्गहणाइ, एवतिय० ।

[१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव कहा से आ कर उत्पन्न होते है, इत्यादि, यावत्—हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव, जो द्वीन्द्रिय जीवों मे उत्पन्न होने योग्य हो, तो कितने काल की स्थिति वाले द्वीन्द्रियो मे उत्पन्न होते है ।

[१ उ] भगवन् ! यहाँ पूर्वोक्त (पृथ्वीकाय मे उत्पन्न होने योग्य) पृथ्वीकायिक की वक्तव्यता के समान, यावत् कालादेश से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात भव, यावत् इतने काल गमनागमन करते है ।

२. एवं तेसु चेव चउसु गमएसु संवेहो, सेसेसु पंचसु तहेव अट्ठ भवा । एवं जाव चतुरिंदिएण समं चउसु संखेज्जा भवा, पंचसु अट्ठ भवा, पचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणुस्सेसु समं तहेव अट्ठभवा । देवेसु न चेव उववज्जंति, ठिति संवेहं च जाणेज्जा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। चउवीसइमे सए सत्तरसमो उद्देसओ समत्तो ।। २४-१७ ।।

[२] जिस प्रकार (पृथ्वीकायिक के साथ द्वीन्द्रिय का संवेध कहा गया है,) इसी प्रकार पहला, दूसरा, चौथा और पाँचवाँ इन चार गमको मे संवेध जानना चाहिए। शेष पाच गमको मे उसी प्रकार आठ भव होते है । पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो और मनुष्यो के साथ पूर्वोक्त आठ भव जानना चाहिए । देवो से च्यव कर आया हुआ जीव द्वीन्द्रिय मे उत्पन्न नही होता । यहाँ स्थिति और संवेध पहले से भिन्न है ।

'भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—स्पष्टीकरण—पृथ्वीकायिक जीव के पृथ्वीकायिक जीव मे ही उत्पन्न होने की वक्तव्यता के समान द्वीन्द्रिय मे उत्पन्न होने के विषय मे भी जानना चाहिए तथा पृथ्वीकायिक जीव

का बेइन्द्रिय के साथ जो सवेध कहा गया है, वही अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के साथ कहना चाहिए । अर्थात्— पहले, दूसरे, चौथे और पाचवे गमक मे उत्कृष्ट सख्यात भव और शेष पाच गमको मे उत्कृष्ट आठ भाव जानने चाहिए । कालादेश से पृथ्वीकायिकादि की जो स्थिति हो, उसे द्वीन्द्रिय की स्थिति के साथ जोड कर सवेध जानना चाहिए । पचेन्द्रियतिर्यञ्चो और मनुष्यो के साथ द्वीन्द्रिय से पूर्वोक्तवत् सभी गमको मे उत्कृष्ट आठ-आठ भव होते है ।[1]

।। चौवीसवाँ शतक : सत्तरहवाँ उद्देशक समाप्त ।।

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८३४

(ख) भगवती, (हिन्दी विवेचन) भा ६, पृ ३११०

अट्ठारसमो : तेइंदिय-उद्देसओ

अठारहवाँ उद्देशक : त्रीन्द्रिय को उत्पादादि-प्ररूपणा

त्रीन्द्रियों में उत्पन्न होनेवाले दण्डकों में सत्रहवें उद्देशकानुसार वक्तव्यता-निर्देश

१ तेइंदिया णं भंते ! कम्रोहिंतो उववज्जंति ?०

एवं तेइंदियाणं जहेव बेंदियाणं उद्देसो, नवर ठिंति संवेहं च जाणेज्जा । तेउकाइएसु समं ततियगमे उक्कोसेण अट्ठुत्तराइ बे राइंदियसयाइं । बेइंदिएहिं सम ततियगमे उक्कोसेणं अडयालीस संवच्छराइं छण्णउयराइंदियसयमब्भहियाइं । तेइंदिएहिं समं ततियगमे उक्कोसेण बाणउयाइं तिन्नि राइंदियसयाइं । एवं सव्वत्थ जाणेज्जा जाव सन्निमणुस्स त्ति ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ चउवीसइमे सए : अट्ठारसमो उद्देसओ समत्तो ॥ २४-१८ ॥

[१ प्र] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?, इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] द्वीन्द्रिय-उद्देशक के समान त्रीन्द्रियो के विषय मे भी कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति और संवेध (द्वीन्द्रिय से भिन्न) समझना चाहिए । तेजस्कायिको के साथ (त्रीन्द्रियो का संवेध) तीसरे गमक मे उत्कृष्ट २०८ रात्रि-दिवस का और द्वीन्द्रियो के साथ तीसरे गमक मे उत्कृष्ट १९६ रात्रि-दिवस अधिक ४८ वर्ष होता है । त्रीन्द्रियो के साथ तीसरे गमक मे उत्कृष्ट ३९२ रात्रि दिवस होता है । इस प्रकार यावत्—संज्ञी मनुष्य तक सर्वत्र जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—त्रीन्द्रियजीवो के स्थिति और संवेध-विशेषता का स्पष्टीकरण—(१) त्रीन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होने वाले जीवो की स्थिति और त्रीन्द्रिय जीवो की स्थिति को मिला कर संवेध कहना चाहिए । यथा—त्रीन्द्रियो मे उत्पन्न होने वाले तेजस्कायिक जीवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन रात्रि-दिवस है, उसे चार भवो के साथ गुणा करने पर बारह-रात्रि-दिवस होते है तथा त्रीन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति ४९ रात्रि-दिवस की है । उसे चार भवो के साथ गुणा करने पर १९६ रात्रि-दिवस होते हैं । इन दोनो राशियो को जोडने से २०८ रात्रि-दिवस होते है । यही तेजस्कायिक का त्रीन्द्रिय के तीसरे गमक का संवेध-काल है ।

(२) द्वीन्द्रिय का संवेध चार भवो की अपेक्षा ४८ वर्ष होता है और त्रीन्द्रिय के चार भवो का संवेध १९६ रात्रि-दिवस होता है । दोनों को मिलाने से १९६ रात्रि-दिवस अधिक ४८ वर्ष, द्वीन्द्रिय के साथ त्रीन्द्रिय का तीसरे गमक का संवेधकाल होता है । त्रीन्द्रिय का त्रीन्द्रिय के साथ

आठ भवो का सवेधकाल ३९२ रात्रि-दिवस होता है। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय, असज्ञी तिर्यञ्च, सज्ञी तिर्यच, असज्ञी मनुष्य और सज्ञी मनुष्य के साथ तीसरे गमक का सवेधकाल जानना चाहिए।

(३) तीसरे गमक का सवेधकाल बताया गया है, इसलिए तदनुसार छठे आदि गमको का सवेधकाल सूचित हुआ समझना चाहिए। क्योंकि उनमे भी आठ भव होते है। एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियो के साथ प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पचम—इन चार गमको का सवेध भवादेश से सख्यात भव और कालादेश मे सख्यातकाल जानना चाहिए।[1]

॥ चौवीसवां शतक : अठारहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१ (क) भगवतीसूत्र, अ वृत्ति, पत्र ८३४

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भाग ६, पृ ३१११-३११२

एगूणवीसइमो : चउरिंदिय-उद्देसओ

उन्नीसवाँ उद्देशक : चतुरिन्द्रिय (जीवो की उत्पत्ति आदि सम्बन्धी)

चतुरिन्द्रियों में उत्पन्न होनेवाले दण्डको में उपपात-परिमाण आदि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१. चउरिंदिया ण भंते ! कओहिंतो उववज्जति ?०

जहा तेइंदियाणं उद्देसओ तहा चउरिंदियाण वि, नवरं ठिति संवेहं च जाणेज्जा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। चउवीसइमे सए : एगूणवीसइमो उद्देसओ समत्तो ।। २४-१९ ।।

[१ प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] जिस प्रकार त्रीन्द्रिय-उद्देशक कहा है, उसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो के विषय मे समझना चाहिए । विशेष—स्थिति और संवेध (त्रीन्द्रिय से भिन्न) जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—निष्कर्ष—स्थिति और संवेध के सिवाय चतुरिन्द्रिय-सम्बन्धी समग्र उद्देशक त्रीन्द्रिय-उद्देशक के समान जानना चाहिए ।

।। चौवीसवां शतक : उन्नीसवां उद्देशक समाप्त ।।

वीसइमो : पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिय-उद्देसओ

वीसवाँ उद्देशक : पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-सम्बन्धी

१. पंचिदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! कम्रोहिंतो उववज्जंति ? किं नेरतिएहिंतो उवव०, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उवव०, तिरिक्ख-मणुएहिंतो वि उववज्जंति, देवेहिंतो वा उववज्जंति ।

[१ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है या तिर्यञ्चो, मनुष्यो अथवा देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है, तिर्यञ्चो, मनुष्यो तथा देवो से भी आकर उत्पन्न होते है ।

विवेचन—निष्कर्ष—पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, नारको, तिर्यञ्चो, मनुष्यो एव देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ।

नरक-पृथ्वियों की अपेक्षा पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों में उत्पत्ति-निरूपण

२. जइ नेरइएहिंतो उववज्जति कि रयणप्पभपुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति जाव अहेसत्तम-पुढविनेरइएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! रयणप्पभपुढविनेरइएहिंतो वि उवव० जाव अहेसत्तमपुढविनेरइएहिंतो वि० ।

[२ प्र] भगवन् ! यदि वे (पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है, अथवा यावत् वे अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ?

[२ उ] गौतम ! वे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से, यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ।

विवेचन—निष्कर्ष—पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव, प्रथम से लेकर सप्तम नरक के नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ।

पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों में उत्पन्न होनेवाले सात नरकों के नैरयिकों के उत्पाद-परिमाणादि द्वारों की प्ररूपणा

३. रयणप्पभपुढविनेरइए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से ण भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उवव० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउएसु उववज्जेज्जा।

[३ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले (पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिको) मे उत्पन्न होता है ?

[३ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है।

४. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उवव० ?

एवं जहा असुरकुमाराणं वत्तव्वया। नवरं सघयणे पोग्गला अणिट्ठा अकंता जाव परिणमंति। ओगाहणा दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अगुलस्स असखेज्जतिभाग, उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिन्नि रयणीओ छच्च अंगुलाइं। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जतिभाग, उक्कोसेणं पन्नरस धणूइं अड्डातिज्जाओ य रयणीओ।

[४ प्र] भगवन् ! वे जीव, एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[४ उ] जैसे असुरकुमारो की वक्तव्यता कही है, वैसे यहाँ भी कहनी चाहिए। विशेष यह है कि (रत्नप्रभा नैरयिको के) सहनन मे अनिष्ट और अकान्त (अप्रिय) पुद्गल यावत् परिणमन करते हैं। उनकी अवगाहना दो प्रकार की कही गई है भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमे से जो भवधारणीय अवगाहना है, वह जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन रत्नि (हाथ) और छह अगुल की होती है। उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष ढाई हाथ (रत्नि) की होती है।

५. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किंसंठिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ ण जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पन्नत्ता। तत्थ ण जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पन्नत्ता। एगा काउलेस्सा पन्नत्ता। समुग्घाया चत्तारि। नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा; नपुंसगवेदगा। ठिती जहन्नेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सागरोवम। एव अणुबंधो वि। सेसं तहेव। भवाएसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेण अट्ठ भवग्गहणाइं कालाएसेण जहन्नेणं दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइ चउहि पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवतियं०। [पढमो गमओ]।

[५ प्र.] भगवन् ! उन जीवो के शरीर किस सस्थान वाले होते है ?, इत्यादि प्रश्न।

[५ उ] गौतम ! उनके शरीर दो प्रकार के कहे गए है- भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। दोनो प्रकार के शरीर केवल हुण्डक-सस्थान वाले होते हैं। उनमे एक मात्र कापोतलेश्या होती है। चार समुद्घात होते हैं। वे स्त्रीवेदी तथा पुरुषवेदी नही होते, केवल नपुंसकवेदी होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार

होता है। शेष सब पूर्वोक्त प्रकार से जानना। भव की अपेक्षा से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव तथा काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करते हैं। [प्रथम गमक]

६. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु उववन्नो, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु उववन्नो। अवसेसं तहेव, नवरं कालाएसेण जहन्नेण तहेव, उक्कोसेण चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं; एवतियं काल०। [बीओ गमओ]।

[६] यदि वह (रत्नप्रभा-नैरयिक) जघन्य काल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होता है। शेष सब पूर्ववत् कहना। विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से पूर्वोक्त अनुसार और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार सागरोपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [द्वितीय गमक]

७. एवं सेसा वि सत्त गमगा भाणियव्वा जहेव नेरइयउद्देसए सन्निपचेंदिएहिं समं णेरइयाणं। मज्झिमएसु य तिसु गमएसु पच्छिमएसु य तिसु गमएसु ठितिनाणत्तं भवति। सेसं तं चेव। सव्वत्थ ठितिं संवेहं च जाणेज्जा। [३-९ गमगा]।

[७] इसी प्रकार शेष सात गमक, नैरयिक-उद्देशक मे सज्ञी पचेन्द्रियो के साथ बतलाए है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। बीच के तीन गमको (४-५-६) मे तथा अन्तिम तीन गमको (७-८-९) मे स्थिति की विशेषता है। शेष सब पूर्ववत् जानना। सर्वत्र स्थिति और सवेध उपयोगपूर्वक जान लेना चाहिए। [गमक ३ से ९ तक]

८. सक्करप्पभापुढविनेरइए णं भंते! जे भविए०?

एवं जहा रयणप्पभाए नव गमगा तहेव सक्करप्पभाए वि, नवरं सरीरोगाहणा जहा ओगाहण-संठाणे; तिन्नि नाणा तिन्नि अन्नाणा नियमं। ठिति-अणुबंधा पुव्वभणिया। एवं नव वि गमगा उवजुंजिऊण भाणियव्वा।

[८ प्र] भगवन्! शर्कराप्रभापृथ्वी का नैरयिक जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होने योग्य है (वह कितने काल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है?) इत्यादि प्रश्न।

[८ उ.] जैसे रत्नप्रभा के सम्बन्ध मे नौ गमक कहे है, वैसे यहाँ भी नौ गमक कहने चाहिए। विशेष यह है कि शरीर की अवगाहना, (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवे) अवगाहना-सस्थान-पद के अनुसार जानना। उनमे तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियम से होते है। स्थिति और अनुबन्ध पहले कहा गया है। इस प्रकार नौ ही गमक उपयोग-पूर्वक कहने चाहिए।

९. एवं जाव छट्ठपुढवी, नवरं ओगाहणा-लेस्सा-ठिति-अणुबंधा संवेहा य जाणियव्वा।

[९] इसी प्रकार यावत् छठी नरकपृथ्वी तक जानना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अवगाहना, लेश्या, स्थिति, अनुबन्ध और सवेध (यथायोग्य भिन्न-भिन्न) जानने चाहिए।

१०. अहेसत्तमपुढविनेरइए णं भंते! जे भविए०?

एवं चेव णव गमगा, नवरं ओगाहणा-लेस्सा-ठिति-अणुबंधा जाणियव्वा। संवेहे भवाएसेणं

जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं छ भवग्गहणाइं। कालाएसेणं जहन्नेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवतियं०। आदिल्लएसु छसु गमएसु जहन्नेण दो भवग्गहणाइ उक्कोसेणं छ भवग्गहणाइं। पच्छिल्लएसु तिसु गमएसु जहन्नेणं दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेणं चत्तारि भवग्गहणाइं। लद्धी नवसु वि गमएसु जहा पढमगमए, नवरं ठितिविसेसो कालाएसो य—बितियगमए जहन्नेण बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ तिहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं; एवतियं काल०। ततियगमए जहन्नेणं बावीसं सागरोवमाइ पुव्वकोडीए अब्भहियाइ, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीहि अब्भहियाइ। चउत्थगमे जहन्नेणं बावीस सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तमब्भहियाइ, तिहिं छावट्ठि सागरोवमाइ तिहि पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइ। पंचमगमए जहन्नेणं बावीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ तिहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइ। छट्ठगमए जहन्नेण बावीस सागरोवमाइ पुव्वकोडीए अब्भहियाइ, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ तिहिं पुव्वकोडीहि अब्भहियाइ। सत्तमगमए जहन्नेण तेत्तीस सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ, दोहिं पुव्वकोडीहि अब्भहियाइ। अट्ठमगमए जहन्नेण तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइ। णवमगमए जहन्नेण तेत्तीस सागरोवमाइ पुव्वकोडीए अब्भहियाइ, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवतिय। [१—९ गमगा]।

[१० प्र] भगवन्! अध सप्तमपृथ्वी का नैरयिक, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होने योग्य हो, तो वह कितने काल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है?, इत्यादि प्रश्न।

[१० उ] गौतम! पूर्वोक्त सूत्र के अनुसार इसके भी नौ गमक कहने चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ अवगाहना, लेश्या, स्थिति और अनुबन्ध भिन्न-भिन्न जानने चाहिए। सवेध—भव की अपेक्षा से—जघन्य दो भव और उत्कृष्ट छह भव, तथा काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। प्रथम के छह गमको (१ से ६ तक) मे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट छह भव तथा अन्तिम तीन गमको (७-८-९) मे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट चार भव जानने चाहिए। नौ ही गमको मे प्रथम गमक के समान वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु दूसरे गमक मे स्थिति की विशेषता है तथा काल की अपेक्षा से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम यावत् इतने काल गमनागमन करता है। तीसरे गमक मे जघन्य पूर्वकोटि अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम, चौथे गमक मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम, पाचवे गमक मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम और उत्कृष्ट तीन अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम, छठे गमक मे जघन्य पूर्वकोटि अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम तथा सातवे गमक मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम और

उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि अधिक ३६ सागरोपम, आठवे गमक मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम और उत्कृष्ट दो अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम, तथा नौवे गमक मे जघन्य पूर्वकोटि अधिक ३३ सागरोपम और उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि-अधिक ६६ सागरोपम यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन--**कुछ स्पष्टीकरण**--(१) नरक से निकले हुए जीव असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्च आदि मे आकर उत्पन्न नही होते। वे पूर्वकोटि तक की आयु वाले मे आकर उत्पन्न होते हैं।

(२) पृथ्वीकायिक जीवो मे आने वाले असुरकुमार के परिमाण आदि की जो वक्तव्यता कही गई है, वही पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे आने वाले नैरयिक के विषय मे जाननी चाहिए।

(३) उत्पत्ति के समय नैरयिक की अवगाहना जघन्यत अगुल के असख्यातवे भाग होती है।

(४) **प्रथम से सप्तम नरक तक के नारको की अवगाहना**-- प्रथम नरक मे उत्कृष्ट अवगाहना सात धनुष तीन हाथ छह अगुल कही है, वह तेरहवे प्रस्तट (पाथडे) की अपेक्षा समझनी चाहिए। प्रथम प्रस्तटादि मे अवगाहना का क्रम इस प्रकार है--

रयणाइ पढम-पयरे, हत्थतियं देह-उस्सयं भणियं।
छप्पन्नंगुलसड्ढा, पयरे-पयरे य वुड्ढीओ॥

अर्थात्--रत्नप्रभा-पृथ्वी के प्रथम प्रस्तट मे तीन हाथ की अवगाहना होती है। आगे के प्रत्येक प्रस्तट मे साढे छप्पन अगुल की वृद्धि होती जाती है। इस क्रम से तेरहवे प्रस्तट के नैरयिक की अवगाहना सात धनुष तीन हाथ छह अगुल होती है। यह भवधारणीय अवगाहना है। नैरयिक मे जितनी भवधारणीय अवगाहना होती है, उससे दुगुनी उत्तरवैक्रिय अवगाहना होती है।

सात नरको की अवगाहना का कथन प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवे पद मे इस प्रकार है-

सत्त धणु तिण्णि रयणी, छच्चेव अगुलाइ उच्चत्त।
पढमाए पुढवीए विउणा विउणं च सेसासु॥

अर्थात्--प्रथम नरक मे नारको की अवगाहना सात धनुष तीन हाथ छह अगुल की होती है। आगे दूसरे आदि नरको मे क्रमश दुगुनी-दुगुनी अवगाहना होती है।[1]

(५) यहाँ मूल में दो गमको में स्थिति आदि का कथन किया गया है। इससे आगे सात गमको मे स्थिति आदि का कथन इसी शतक के प्रथम उद्देशक मे सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के साथ नैरयिक जीवो के समान है।

(६) दूसरे आदि नरको मे सज्ञी जीव ही उत्पन्न होते है। इसलिए उनमे तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियम से होते हैं।

सप्तम पृथ्वी के नारक का संवेध--यहाँ तीन पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम का जो कथन किया गया है, वह भव और काल की बहुलता की विवक्षा मे किया गया है। यह सवेध जघन्य

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४०
(ख) पण्णवणासुत्त (महावीरविद्यालय द्वारा प्रकाशित) भा १, सू १५२९/३, पृ ३४०

स्थिति वाले सप्तम पृथ्वी के नैरयिक मे पाया जाता है, क्योंकि सप्तम नरक में तीन भवो की जघन्य स्थिति ६६ सागरोपम की होती है, और पचेन्द्रिय तिर्यञ्च के तीन भवो की उत्कृष्ट स्थिति तीन पूर्वकोटि की होती है। यदि उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की आयु वाला नैरयिक हो और पूर्वकोटि की आयु वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे आकर उत्पन्न हो तो इस प्रकार दो बार ही उत्पत्ति होती है। इससे दो पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम ही स्थिति होती है। तिर्यञ्चभवसम्बन्धी पूर्वकोटि नही होती। इस प्रकार भव और काल की उत्कृष्टता नही होती।[1]

पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों में उत्पन्न होनेवाले एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियों के उपपात-परिमाणादि की प्ररूपणा

११. जति तिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहितो० ?

एवं उववाओ जहा पुढविकाइयउद्देसए जाव—

[११ प्र] यदि वह (सञ्ज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होता है तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यञ्च योनिको से आकर उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न।

[११ उ] पृथ्वीकायिक-उद्देशक मे कहे अनुसार यहाँ उपपात समझना चाहिए। यावत्—

१२. पुढविकाइए णं भंते ! जे भविए पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउएसु उववज्जति।

[१२ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव, पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले (पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको) मे उत्पन्न होता है।

[१२ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले (पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो) मे उत्पन्न होता है।

१३. ते णं भंते ! जीवा० ?

एव परिमाणाईया अणुबधपज्जवसाणा जा चेव अप्पणो सट्ठाणे वत्तव्वया सा चेव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणस्स भाणियव्वा, नवर नवसु वि गमएसु परिमाणे जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सखेज्जा वा उववज्जति। भवादेसेण वि नवसु वि गमएसु—भवाएसेणं जहन्नेण दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइ। सेस त चेव। कालाएसेण उभओ ठिति करेज्जा।

[१३ प्र] भगवन् ! वे पृथ्वीकायिक जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[१३ उ] यहाँ परिमाण से लेकर अनुबन्ध तक, अपने-अपने स्वस्थान मे जो वक्तव्यता कही है, तदनुसार ही पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे भी कहनी चाहिए। विशेष यह है कि नौ ही

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र, ८४०

गमको मे परिमाण—जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं, ऐसा जानना। (सवेध-) नौ ही गमको मे भव की अपेक्षा से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करते है। शेष पूर्ववत्। कालादेश से—दोनो पक्षो की स्थिति को जोडने से (काल) सवेध जानना चाहिए।

१४. जवि आउकाइएहिंतो उवव०?

एवं आउकाइयाण वि।

[१४ प्र] भगवन्! यदि वह (पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) अप्कायिक जीवो से आकर उत्पन्न हो तो? इत्यादि प्रश्न।

[१४ उ] पूर्ववत् अप्काय के सम्बन्ध मे कहना चाहिए।

१५. एव जाव चउरिंदिया उववाएयव्वा, नवरं सव्वत्थ अप्पणो लद्धी भाणियव्वा। नवसु वि गमएसु भवाएसेण जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेण अट्ठ भवग्गहणाइ। कालाएसेणं उभओ ठिति करेज्जा। सव्वेसिं सव्वगमएसु जहेव पुढविकाइएसु उववज्जमाणाण लद्धी तहेव। सव्वत्थ ठिति संवेह च जाणेज्जा।

[१५] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय तक उपपात कहना चाहिए, परन्तु सर्वत्र अपनी-अपनी वक्तव्यता कहनी चाहिए। नौ ही गमको मे भव की अपेक्षा से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव तथा कालादेश से दोनो की स्थिति को जोडना चाहिए। जिस प्रकार पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार सभी गमको मे सभी जीवो के सम्बन्ध मे कहनी चाहिए। सर्वत्र स्थिति और सवेध यथायोग्य भिन्न-भिन्न जानना चाहिए।

विवेचन—कुछ स्पष्टीकरण : एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-सम्बन्धी—(१) पृथ्वीकायिक जीव, यदि पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न हो तो प्रतिसमय असख्यात उत्पन्न होते है, किन्तु यदि पृथ्वीकायिक, पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो तो जघन्य एक दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है। (२) सवेध-भव की अपेक्षा से नौ ही गमको मे उत्कृष्ट आठ भव होते है। (३) अप्कायिक से लेकर चतुरिन्द्रिय तक से निकल कर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होने मे परिमाणादि की वक्तव्यता सर्वत्र अपनी-अपनी कहनी चाहिए।[1]

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले असज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों के उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१६. जवि **पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं सन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, असन्निपचेंदियतिरिक्खजोणि०?**

गोयमा! सन्निपंचेंदिय०, असन्निपंचेंदिय०। भेदो जहेव पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स जाव—

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४०

[१६ प्र.] भगवन् ! यदि (वे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च), पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे सज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है या असज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते है ?

[१६ उ.] गौतम ! वे सज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो तथा असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से भी आकर उत्पन्न होते है, इत्यादि, पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्चो के भेद कहे हैं, तदनुसार यहाँ भी कहने चाहिए। यावत्—

१७. असन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए ण भते ! जे भविए पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिकाल ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त०, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागट्ठितीए उवव०।

[१७ प्र] भगवन् ! असज्ञीपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने योग्य हैं, वह कितने काल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है ?

[१७ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है।

१८. ते ण भंते० !

अवसेसं जहेव पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स असन्निस्स तहेव निरवसेसं जाव भवाएसो त्ति। कालाएसेणं जहन्नेणं दो अन्तोमुहुत्ता, उक्कोसेण पलिओवमस्स असज्जतिभागं पुव्वकोडिपुहत्तमब्भहियं, एवतियं०। [पढमो गमओ]

[१८ प्र.] भगवन् ! वे (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[१८ उ] इस सम्बन्ध मे पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने वाले असज्ञी तिर्यञ्च-पंचेन्द्रियों की जो वक्तव्यता कही है, तदनुसार भवादेश तक कहनी चाहिए। कालादेश से— जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक पल्योपम का असख्यातवाँ भाग, यावत् इतने काल गमनागमन करता । [प्रथम गमक]

१९. बितियगमए एस चेव लद्धी, णवर कालाएसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ, एवतियं०। [बीओ गमओ]।

[१९] द्वितीय गमक मे भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि कालादेश से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि, इतने काल तक यावत गमनागमन करता है। [द्वितीय गमक]

२०. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असखेज्जतिभागट्ठितीएसु उवव०।

[२०] यदि वह (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च), उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय-

तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होता है ।

२१. ते णं भंते ! जीवा० ।

एवं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स असन्निस्स तहेव निरवसेसं जाव कालादेसो त्ति, नवरं परिमाणे—जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति । सेसं तं चेव । [तइओ गमओ]

[२१ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२१ उ] जैसे रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होने वाले असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार की वक्तव्यता यहाँ कालादेश तक कहनी चाहिए । परन्तु परिमाण के सम्बन्ध मे विशेष यह है कि वह जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है । शेष सब पूर्ववत् जानना । [तृतीय गमक]

२२. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउएसु उवव० ।

[२१] यदि वह स्वय (असज्ञी प तिर्यञ्च) जघन्यकाल की स्थिति वाला हो, तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होता है ।

२३. ते णं भंते ! ० ?

अवसेसं जहा एयस्स पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स मज्झिमेसु तिसु गमएसु तहा इह वि मज्झिमेसु तिसु गमएसु जाव अणुबंधो ति । भवाएसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं । कालाएसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ । [चउत्थो गमओ] ।

[२३ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२३ उ] पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति के असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के बिचले तीन गमको (४-५-६) मे जिस प्रकार कथन किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी तीनो ही गमको मे अनुबन्ध तब सब कहना चाहिए । भवादेश से—जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है, तथा कालादेश से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्व कोटिवर्ष, यावत् इतने काल गमनागमन करता है । [चतुर्थ गमक]

२४. सो जेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया, नवरं कालादेसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं अट्ठ अंतोमुहुत्ता, एवतियं । [पंचमो गमओ] ।

[२४] यदि वह (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वाले सज्ञीपचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो, तो उसके विषय मे भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि

कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ अन्तर्मुहूर्त, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [पंचम गमक]

२५. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण पुव्वकोडीआउएसु, उक्कोसेण वि पुव्वकोडीआउएसु, उवव०। एस चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जाणेज्जा। [छट्ठो गमओ]।

[२५] यदि वह (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न हो तो वह जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होता है। यहाँ यही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ कालादेश (भिन्न) समझना चाहिए। [छठा गमक]

२६ सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, सच्चेव पढमगमगवत्तव्वया, नवरं ठिती से जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी। सेसं तं चेव। कालाएसेणं जहन्नेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तमब्भहिया, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जतिभाग पुव्वकोडीपुहत्तमब्भहियं, एवतियं०। [सत्तमो गमओ]।

[२६] यदि वह (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो, तो प्रथम गमक के अनुसार उसकी वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि उसकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की होती है। शेष पूर्ववत् जानना। काल की अपेक्षा से – जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक पल्योपम के असख्यातवे भाग, इतने काल तक गमनागमन करता है। [सप्तम गमक]

२७. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया जहा सत्तमगमे, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तमब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ; एवतियं०! [अट्ठमो गमओ]।

[२७] यदि वह (उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे उत्पन्न हो, तो भी यही सातवे गमक की वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [आठवाँ गमक]

२८. सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववन्नो, जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं। एवं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स असन्निस्स नवमगमए तहेव निरवसेसं जाव कालादेसो त्ति, नवरं परिमाणं जहा एयस्सेव ततियगमे। सेसं तं चेव। [नवमो-गमओ]।

[२८] यदि वही (असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च), उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होता है, इत्यादि समग्र वक्तव्यता, रत्नप्रभा मे उत्पन्न होने वाले असज्ञी पचेन्द्रियतिर्यञ्च-सम्बन्धी नवम गमक की वक्तव्यता के अनुसार कालादेश तक कहनी चाहिए। परन्तु

परिमाण में विशेष यह है कि वह इसके तीसरे गमक मे कहे अनुसार कहना। शेष पूर्ववत् जानना। [नौवा गमक]

विवेचन—कुछ स्पष्टीकरण—(१) असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है, वह असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च से निकल कर असख्यात वर्ष की आयु वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न हो सकता है, इसलिए कहा गया है **उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जभागठिईएत्ति।** अर्थात्—वह उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है। (२) **परिमाणादि द्वारो का कथन** जिस प्रकार पृथ्वीकायिक से उत्पन्न होने वाले असज्ञी के पृथ्वीकायिक उद्देशक मे परिमाणादि द्वारो का कथन किया गया है उसी प्रकार यहा भी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे होने वाले असज्ञी का भी करना चाहिए। (३) **इसका उत्कृष्ट कालादेश** - पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपम का असख्यातवा भाग कहा गया है, वह इस कारण से है कि पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाला असज्ञी, पूर्वकोटि की आयुवाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे सात बार उत्पन्न होता है, इसलिए सात भवग्रहण करने मे सात पूर्वकोटिवर्ष हुए। आठवे भव मे पल्योपम के असख्यातवे भाग की स्थिति वाले यौगलिक तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त कालादेश बनता है। (३) असख्यात वर्ष की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च असख्यात उत्पन्न नही होते वे सख्यात ही उत्पन्न होते है, क्योकि वे सख्यात ही होते हैं। (४) जघन्य स्थिति वाला असज्ञी, सख्यात वर्ष की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे ही उत्पन्न होता है। इसीलिए चौथे गमक मे कहा गया है—उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार नौ गमको का कथन विचारपूर्वक करना चाहिए। (५) असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की परिमाणादि अवशिष्ट विषयो की वक्तव्यता तीनो मध्यम गमो अर्थात् जघन्य स्थिति वाले तीनो (४-५-६) गमो मे अनुबन्धपर्यन्त (पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले के तीनो मध्यम गमको के अनुसार) कहनी चाहिए।[1]

पंचेन्द्रियतिर्यंचों में उत्पन्न होनेवाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों के उत्पाद-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

२९. जदि सन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं संखेज्जवासा०, असखेज्ज० ? गोयमा ! संखेज्ज०, नो असंखेज्ज०।

[२९ प्र] यदि वे (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च), सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आ कर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आ कर उत्पन्न होते है या असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से।

[२९ उ.] गौतम ! वे सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आ कर उत्पन्न होते हैं, किन्तु असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से उत्पन्न नही होते हैं।

३०. जदि संखेज्ज०, जाव किं पज्जत्तासंखेज्ज, अपज्जत्तासंखेज्ज ?

दोसु वि।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४१

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ६, पृ ३१३४

[३० प्र] भगवन् ! यदि वे (सज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) संख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से ?

[३० उ] गौतम ! वे दोनो (पर्याप्तक और अपर्याप्तक सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यंचो) से आकर उत्पन्न होते है।

३१ संखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए जे भविए पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से ण भंते ? केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिपलिओवमट्ठितीएसु उववज्जिज्जा।

[३१ प्र] भगवन ! यदि सख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है ?

[३१ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है।

३२. ते ण भंते ! ०

अवसेसं जहा एयस्स चेव सन्निस्स रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स पढमगमए, नवरं ओगाहणा जहन्नेण अगुलस्स असखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, सेस तं चेव जाव भवादेसो त्ति। कालादेसेणं जहन्नेण दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइ पुव्वकोडिपुहत्तमब्भहियाइ; एवतिय०। [पढमो गमओ]।

[३२ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३२ उ] (गौतम !) रत्नप्रभापृथ्वी मे उत्पन्न होने वाले इस सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के प्रथम गमक के समान सब वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु इसकी अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की होती है। शेष सब कथन भवादेश तक पूर्ववत् जानना। काल की अपेक्षा से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [प्रथम गमक]

३३ सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया, नवर कालाएसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियाओ। [बीओ गमओ]।

[३३] यदि वही (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जीव, जघन्य काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो, तो वही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष कालादेश से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि, (यावत् इतने काल गमनागमन करता है।) [द्वितीय गमक]

३४. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववण्णो, जहन्नेणं तिपलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि तिपलिओवमट्ठितीएसु उवव०। एस चेव वत्तव्वया, नवरं परिमाणं जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि

वा, उक्कोसेण संखेज्जा उववज्जति । ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं । सेस त चेव जाव अणुबधो त्ति । भवादेसेण दो भवग्गहणाइं । कालादेसेण जहन्नेण तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ पुव्वकोडीए अब्भहियाइ । [तइओ गमओ] ।

[३५] यदि वह (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचो मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है, इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यतानुसार कहना चाहिए । परन्तु परिमाण मे विशेष यह है कि वह जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है । (उसके शरीर की) अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट एक हजार योजन की होती है। शेष पूर्ववत् यावत् अनुबन्ध तक जानना । भवादेश से—दो भव और कालादेश से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-अधिक तीन पल्योपम, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है । [तृतीय गमक]

३५. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउएसु उवव० । लद्धी से जहा एयस्स चेव सन्निपचेंदियस्स पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु सच्चेव इह वि मज्झिमएसु तिसु गमएसु कायव्वा । सवेहो जहेव एत्थ चेव असन्निस्स मज्झिमएसु तिसु गमएसु । [४-६ गमगा] ।

[३५] यदि वह (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च), स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला हो और (सज्ञी प तिर्यञ्चो मे) उत्पन्न हो, तो वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-वर्ष की स्थितिवाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होता है । इस विषय मे पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले इसी सज्ञी पचेन्द्रिय की वक्तव्यता के अनुसार मध्य के तीन (४-५-६) गमक जानने चाहिए तथा पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होने वाले असज्ञी पचेन्द्रिय के बीच के तीन गमको (४-५-६) मे जो सवेध कहा है, तदनुसार यहाँ भी कहना चाहिए । [गमक ४-५-६]

६६. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, जहा पढमगमओ, णवर ठिती अणुबंधो जहन्नेण पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी । कालाएसेणं जहन्नेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तमब्भहिया, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहत्तमब्भहियाइ । [सत्तमो गमओ] ।

[३६] यदि वह (सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो, तो उसके विषय मे प्रथम गमक के समान कहना चाहिए । परन्तु विशेष यह है कि स्थिति और अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष कहना चाहिए । कालादेश से—जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम, इतने काल तक यावत् गमनागमन करता है । [सप्तम गमक]

३७. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववण्णो, एस चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तमब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियाओ, [अट्ठमो गमओ] ।

[३७] यदि वही (उत्कृष्ट स्थिति वाला सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो, तो उसके विषय मे भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि कालादेश से – जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि यावत् इतने काल गति-आगति करता रहता है। [अष्टम गमक]

३८. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण तिपलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि तिपलिओवमट्ठितीएसु। अवसेसं तं चेव, नवर परिमाण ओगाहणा य जहा एयस्सेव ततियगमए। भवाएसेण दो भवग्गहणाइ। कालाएसेण जहन्नेण तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइ; एवतियं०। [नवमो गमओ]।

[३८] यदि वह (उत्कृष्टकाल की स्थिति वाला सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न हो तो वह जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है। शेष सब पूर्वोक्त कथनानुसार जानना। विशेष यह है कि परिमाण और अवगाहना इसी के तीसरे गमक मे कहे अनुसार समझना। भवादेश से—दो भव और कालादेश से—जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-अधिक तीन पल्योपम, यावत् इतने काल गति-आगति करता रहता है। [नौवाँ गमक]

विवेचन विशेष तथ्यो का स्पष्टीकरण—(१) सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, सख्यात-वर्ष की आयु वाले पर्याप्तको एव अपर्याप्तको से उत्पन्न होते है। (२) वह तीन पल्योपम की स्थिति तक मे उत्पन्न हो सकते है। (३) **संख्यात ही क्यो?**—उत्कृष्ट स्थिति वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च असख्यात वर्ष की आयु वाले ही होते है और वे (परिमाण मे) सख्यात होने से उत्कृष्ट रूप से भी सख्यात ही उत्पन्न होते हैं। (४) **अवगाहना**—सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे उत्पन्न होने वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रियतिर्यञ्चो की अवगाहना, रत्नप्रभा मे उत्पन्न होने वाले सञ्ज्ञी तिर्यञ्च पचेन्द्रिय के समान नही होती, क्योकि वहाँ सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च की अवगाहना केवल सात धनुष की बतलाई गई है, जबकि यहाँ उत्कृष्टत एक हजार योजन की है, यह मत्स्य आदि की अपेक्षा से कही गई है। (५) सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च से आता हो तो भी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिए। पहले और सातवे गमक मे कालादेश सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम होता है। तीसरे और नौवे गमक मे उत्कृष्ट सख्यात ही उत्पन्न होते है और भव भी दो ही होते है। अत: दो भवो का ही कालादेश कहना चाहिए। शेष गमको मे यौगलिक पचेन्द्रिय तिर्यञ्च नही होते। अत उनकी स्थिति का आकलन विचारपूर्वक करना चाहिए।[1]

मनुष्य की अपेक्षा पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिकों में उत्पत्तिनिरूपण

३९. जदि मणुस्सेहितो उववज्जंति किं सण्णिमणु०, असण्णिमणु० ?

गोयमा ! सण्णिमणु०, असण्णिमणु०।

[३९ प्र] भगवन्! यदि सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है तो क्या सञ्ज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं या असञ्ज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है?

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४१
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा. ६, पृ ३१३४

[३९ उ.] गौतम ! वे सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी—दोनो प्रकार के मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं ।

विवेचन—निष्कर्ष—सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी—दोनो प्रकार के मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं ।

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी मनुष्यों में उत्पादादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

४०. असन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए पचेंदियतिरिक्ख० उवव० से णं भंते ! केवतिकाल० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउएसु उववज्जति । लद्धी से तिसु वि गमएसु जहेव पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स, सवेहो जहा एत्थ चेव असन्निस्स पचेंदियस्स मज्झिमेसु तिसु गमएसु तहेव निरवसेसो भाणियव्वो ।

[४० प्र] भगवन् ! असञ्ज्ञी मनुष्य, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे उत्पन्न होता है ?

[४० उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है । पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले असञ्ज्ञी मनुष्य की प्रथम के तीन गमको मे जो वक्तव्यता कही है, उसके अनुसार यहाँ भी प्रथम के तीन गमको मे कहनी चाहिए । जिस प्रकार असञ्ज्ञी-पचेन्द्रिय के मध्यम तीन गमको मे सवेध कहा है, उसी प्रकार सब यहाँ भी कहना चाहिए ।

विवेचन—असञ्ज्ञी मनुष्यो मे आद्य तीन ही गमक—असञ्ज्ञी मनुष्य के विषय मे नौ गमको मे से आदि के तीन गमक ही सम्भव हैं, क्योकि असञ्ज्ञी मनुष्य की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की ही होने से ये तीन ही गम हो सकते है, शेष छह गम नही होते ।[1]

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों में उत्पन्न होनेवाले संज्ञी मनुष्य में उत्पाद-परिमाण आदि द्वार

४१. जइ सण्णिमणुस्स० किं सखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्स०, असखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्स० ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउय०, नो असखेज्जवासाउय० ।

[४१ प्र] भगवन् ! यदि वह (सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) सञ्ज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है तो, क्या वह सख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से या असख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है ?

[४१ उ] गौतम ! वह सख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है, असख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी मनुष्यो से उत्पन्न नही होता है ।

४२ जवि संखेज्ज० किं पज्जत्ता०, अपज्जत्ता० ?

गोयमा ! पज्जत्त०, अपज्जत्त० ।

[४२ प्र] भगवन् ! यदि वह (सञ्ज्ञी-पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) सख्यात वर्ष की आयु वाले सञ्ज्ञी

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४१

मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है, तो क्या वह पर्याप्तक संज्ञी मनुष्यों से या अपर्याप्तक संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होता है ?

[४२ उ] गौतम ! वह पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों प्रकार के सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है।

४३. संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख० उववज्जित्तए से णं भंते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त०, उक्कोसेणं तिपलिओवमट्ठितीएसु उवव० ।

[४३ प्र] भगवन् ! सख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी मनुष्य, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है ?

[४३ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है।

४४. ते ण भंते !० ?

लद्धी से जहा एयस्सेव सन्निमणुस्सस्स पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स पढमगमए जाव भवादेसो त्ति। कालाएसेणं जहन्नेणं दो अतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहत्त-मब्भहियाइ०। [पढमो गमओ]।

[४४ प्र] भगवन् ! वे जीव (सज्ञी मनुष्य) एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[४४ उ] (गौतम !) पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले इसी सज्ञी मनुष्य की प्रथम गमक मे कही हुई वक्तव्यता—भवादेश तक कहनी चाहिए। कालादेश से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम (यावत् इतने काल गमनागमन करता है।) [प्रथम गमक]

४५. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं, चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहि अतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ० । [बीओ गमओ]।

[४५] यदि वह (सज्ञी मनुष्य) जघन्यकाल की स्थिति वाले संज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों मे उत्पन्न हो, तो उसके लिए यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु कालादेश से—जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि वर्ष, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [द्वितीय गमक]

४६. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि तिपलिओवमट्ठिईएसु। एसा चेव वत्तव्वया, नवरं ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलपुहत्तं, उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं। ठिती जहन्नेणं मासपुहत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी। एव अणुबंधो वि। भवादेसेणं दो

भवग्गहणाइं। कालादेसेणं जहन्नेणं तिण्णि पलिश्रोवमाइं मासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिश्रोवमाइ पुव्वकोडीए श्रब्भहियाइ; एवतिय०। [तइश्रो गमश्रो]।

[४६] यदि वही (सज्ञी मनुष्य), उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो, तो वह जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सज्ञी-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है। यहाँ भी वही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि उसकी अवगाहना जघन्य अगुल-पृथक्त्व और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की होती है। स्थिति जघन्य मास-पृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की होती है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी जान लेना। भवादेश से—जघन्य दो भव तथा कालादेश से—जघन्य मास-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। [तृतीय गमक]

४७ सो चेव श्रप्पणा जहन्नकालट्ठितीश्रो जाश्रो, जहा सन्निस्स पचेंदियतिरिक्खजोणियस्स पंचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणस्स मज्झिमेसु तिसु गमएसु वत्तव्वया भणिया सच्चेव एतस्स वि मज्झिमेसु तिसु गमएसु निरवसेसा भाणियव्वा, नवर परिमाण उक्कोसेण सखेज्जा उववज्जति। सेस त चेव। [४—६ गमगा]।

[४७] यदि वह (सज्ञी मनुष्य) स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो, तो जिस प्रकार सज्ञी पचेन्द्रिय-तियञ्चयोनिक मे उत्पन्न होने वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की बीच के तीन गमको (४-५-६) मे वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार इसके भी बीच के तीन गमको की समस्त वक्तव्यता भवादेश तक कहनी चाहिए। परन्तु विशेषता परिमाण के विषय मे यह है कि वे उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है, शेष पूर्वोक्तवत् कहना चाहिए। (४-५-६ गमक)

४७. सो चेव श्रप्पणा उक्कोसकालट्ठितीश्रो जाश्रो, सच्चेव पढमगमगवत्तव्वया, नवरं श्रोगाहणा जहन्नेणं पंच धणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंच धणुसयाइ। ठिती श्रणुबधो जहन्नेण पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी। सेस तहेव जाव भवाएसो त्ति। कालाएसेण जहन्नेण पुव्वकोडी अतोमुहुत्तमब्भहिया, उक्कोसेण तिन्नि पलिश्रोवमाइ पुव्वकोडिपुहत्तमब्भहियाइ, एवतिय०। [सत्तमो गमश्रो]।

[४८] यदि वह (सज्ञी मनुष्य) स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो, तो उसके लिए प्रथम गमक की वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की होती है। स्थिति और अनुबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष का है। शेष पूर्ववत् भवादेश तक। कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [सप्तम गमक]

४९. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एसा चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तमब्भहिया, उक्कोसेण चत्तारि पुव्वकोडीश्रो चउहि अंतोमुहुत्तेहिं श्रब्भहियाश्रो०। [श्रट्ठमो गमश्रो]।

[४९] यदि वह (सज्ञी मनुष्य) जघन्यकाल की स्थिति वाले संज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च में उत्पन्न हो तो भी यही (पूर्ववत्) वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि, (यावत् इतने काल गमनागमन करता है।) [अष्टम गमक]

५०. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेणं तिपलिओवमा, उक्कोसेण वि तिपलिओवमा। एस चेव लद्धी जहेव सत्तमगमे। भवाएसेणं दो भवग्गहणाइ। कालाएसेण जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइ; उक्कोसेण वि तिण्णि पलिओवमाइ पुव्वकोडीए अब्भहियाइ, एवतिय०। [नवमो गमओ]।

[५०] यदि (सज्ञी मनुष्य) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न हो तो जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यचो मे उत्पन्न होता है। यहाँ पूर्वोक्त सप्तम गमक की वक्तव्यता कहनी चाहिए। भवादेश से—जघन्य दो भव ग्रहण करता है तथा कालादेश से—जघन्य पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [नौवा गमक]

विवेचन—स्पष्टीकरण—(१) असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य देव मे ही उत्पन्न होते है, तिर्यञ्च आदि मे नही। (२) पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के तीसरे गमक मे अवगाहना और स्थिति के विषय मे जो विशेषता बताई गई है, उससे स्पष्ट है कि अगुलपृथक्त्व (दो अगुल से नौ अगुल तक) से कम अवगाहना वाला और मासपृथक्त्व (दो मास से नौ मास तक) से कम स्थिति वाला मनुष्य, उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तियञ्चो मे उत्पन्न नही होता। (३) सज्ञी मनुष्य के मध्य के तीन गमक के परिमाण मे उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है, क्योकि सज्ञी मनुष्य सख्यात ही है, इसलिए वे उत्कृष्ट रूप से भी सख्यात ही उत्पन्न होते है।[1]

देवो से पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों मे उत्पत्ति का निरूपण

५१. जदि देवेहिंतो उवव० कि भवणवासिदेवेहिंतो उवव०, वाणमतर०, जोतिसिय०, वेमाणियदेवेहिंतो० ?

गोयमा ! भवणवासिदेवे० जाव वेमाणियदेवे०।

[५१ प्र] यदि देवो से आकर वे (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) उत्पन्न होते है, तो क्या वे भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है, वाणव्यतर., ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[५१ उ] गौतम ! वे भवनवासी देवो से, यावत् वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते है।

विवेचन—निष्कर्ष—सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक, चारों प्रकार के देवो से आकर उत्पन्न होते हैं।

---

१. भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ६, पृ ३१४०

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों में उत्पन्न होनेवाले भवनवासी देवों के उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

५२. जदि भवणवासि० किं असुरकुमारभवण० जाव थणियकुमारभवण० ?

गोयमा ! असुरकुमार० जाव थणियकुमारभवण० ।

[५२ प्र] (भगवन् !) यदि वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे असुरकुमार अथवा यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[५२ उ] गौतम ! वे असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देवो से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

५३. असुरकुमारे णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउएसु उवव० । असुरकुमाराणं लद्धी नवसु वि गमएसु जहा पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स एवं जाव ईसाणदेवस्स तहेव लद्धी । भवाएसेणं सव्वत्थ अट्ठ भवग्गहणाइं उक्कोसेणं, जहन्नेणं दोन्नि भव० । ठिति संवेहं च सव्वत्थ जाणेज्जा ।

[५३ प्र] भगवन् ! असुरकुमार, जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है ?

[५३ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है। उसके नौ ही गमको मे जो वक्तव्यता पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले असुरकुमारो की कही है, वैसी ही वक्तव्यता यहाँ कहनी चाहिए। इसी प्रकार ईशान देवलोक पर्यन्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। भवादेश से सर्वत्र उत्कृष्टत आठ भव और जघन्यत: दो भव ग्रहण करता है। सर्वत्र स्थिति और संवेध भिन्न भिन्न समझना चाहिए।

५४. नागकुमारे णं भंते ! जे भविए० ? एस चेव वत्तव्वया, नवरं ठितिं संवेधं च जाणेज्जा ।

[५४ प्र] भगवन् ! नागकुमार, जो पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले (संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो) मे उत्पन्न होता है ?

[५४ उ.] गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त समस्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि स्थिति और संवेध भिन्न जानना।

५५. एवं जाव थणियकुमारे ।

[५५] इसी प्रकार (सुपर्णकुमार से ले कर) स्तनितकुमार तक जानना चाहिए।

विवेचन - स्पष्टीकरण—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे उत्पन्न होने वाले असुरकुमारादि देवो के लिए वक्तव्यता मे पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होने वाले देव यावत् ईशान देवलोक के देवो का अतिदेश

किया गया है, इसका कारण यह है कि ईशान देवलोक तक के देव ही पृथ्वीकायिकादि में उत्पन्न होते है।[1]

पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों में उत्पन्न होनेवाले वाणव्यन्तर देवों के उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

५६. जदि वाणमंतरे० किं पिसाय० ?

तहेव जाव—

[५६ प्र] भगवन् ! यदि वे (सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च), वाणव्यन्तर देवो से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे पिशाच वाणव्यन्तर देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[५६ उ] पूर्ववत् समझना चाहिए, यावत्—

५७. वाणमतरे णं भते ! जे भविए पंचेंदियतिरिक्ख० ?

एवं चेव, नवरं ठिति सवेहं च जाणेज्जा।

[५७ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है ?

[५७ उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना। स्थिति और सवेध उससे भिन्न जानना चाहिए।

विवेचन—निष्कर्ष सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे सभी प्रकार के वाणव्यन्तर जाति के देव आ कर उत्पन्न होते है तथा वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होते हैं।

पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों में उत्पन्न होनेवाले ज्योतिष्क देवों मे उपपात-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

५८. जदि जोतिसिय० ?

उववातो तहेव जाव—

[५८ प्र] यदि वह (सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) ज्योतिष्क देवो से आकर उत्पन्न होता है, तो ? इत्यादि प्रश्न।

[५८ उ] उसका उपपात पूर्वोक्त कथनानुसार (पृथ्वीकायिक मे उत्पन्न होने वाले सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के उपपात के समान) कहना चाहिए। यावत्—

५९. जोतिसिए णं भंते ! जे भविए पंचेंदियतिरिक्ख० ?

एस चेव वत्तव्वया जहा पुढविकाइयउद्देसए। भवग्गहणाइं नवसु वि गमएसु अट्ठ जाव कालाएसेण जहन्नेणं अट्ठभागपलिओवम अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं चत्तारि पलिओवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं चउहि य वाससयसहस्सेहिं अब्भहियाइं; एवतियं०।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४२

[५९ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देव, जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[५९ उ.] गौतम ! यही पूर्वोक्त वक्तव्यता जो पृथ्वीकायिक-उद्देशक मे कही है, तदनुसार कहनी चाहिए। नौ ही गमको मे भवादेश से आठ भव जानना, यावत् कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि और चार लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है ।

६०. एवं नवसु वि गमएसु, नवरं ठिति संवेहं च जाणेज्जा ।

[६०] इसी प्रकार नौ ही गमको के विषय मे जानना चाहिए। किन्तु यहाँ स्थिति और सवेध भिन्न (विशेष) जानना चाहिए । [गमक १ से ९ तक]

वैमानिक देवों की पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों में उत्पत्तिनिरूपणा

६१. जदि वेमाणियदेवे० किं कप्पोवग०, कप्पातीतवेमाणिय० ?

गोयमा ! कप्पोवगवेमाणिय०, नो कप्पातीतवेमा० ।

[६१ प्र] यदि वे (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते है तो क्या वे कल्पोपपन्न-वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते हैं, या कल्पातीत-वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[६१ उ] गौतम ! वे कल्पोपपन्न-वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते है, कल्पातीत-वैमानिक देवो से उत्पन्न नही होते हैं ।

६२. जदि कप्पोवग० ?

जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति, नो आणय जाव नो अच्चुयकप्पोवगवेमा० ।

[६२ प्र] भगवन् ! यदि वे कल्पोपपन्न-देवो से आकर उत्पन्न होते है तो (कौन-से कल्प से) ? इत्यादि प्रश्न ।

[६२ उ.] गौतम ! वे (सौधर्म से ले कर) यावत् सहस्रार-कल्पोपपन्न-वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते है, किन्तु आनत (से लेकर) यावत् अच्युत-कल्पोपपन्न-वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न नही होते हैं ।

विवेचन—निष्कर्ष—सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च, कल्पोपपन्न-वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते हैं तथा कल्पोपपन्न मे भी सौधर्मकल्प से लेकर सहस्रारकल्प तक के देवो से आकर उत्पन्न होते है, आगे के आनत से लेकर अच्युत-कल्प के देवो से उत्पन्न नही होते है ।[1]

---

१ विवाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ९५५

पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चों में उत्पन्न होनेवाले सौधर्म से सहस्रारदेव पर्यन्त के उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

६३. सोहम्मदेवे णं भंते ! जे भविए पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त०, उक्कोसेणं पुव्वकोडिग्राउएसु । सेसं जहेव पुढविकाइय-उद्देसए नवसु वि गमएसु, नवर नवसु वि गमएसु जहन्नेण दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं । ठिति कालादेसं च जाणेज्जा ।

[६३ प्र] भगवन् ! सौधर्म देव जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो) मे उत्पन्न होता है ?

[६३ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो) मे उत्पन्न होना है। शेष सब नौ ही गमको से सम्बन्धित वक्तव्यता पृथ्वीकायिक-उद्देशक मे कहे अनुसार जानना। परन्तु विशेष यह है कि नौ ही गमको मे (सवेध)—भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव होते है। स्थिति और कालादेश भी भिन्न-भिन्न समझना चाहिए।

६४. एव ईसाणदेवे वि ।

[६४] इसी प्रकार ईशान देव के विषय मे भी जानना चाहिए।

६५. एव एएण कमेण अवसेसा वि जाव सहस्सारदेवेसु उववातेयव्वा, नवरं ओगाहणा जहा ओगाहणसठाणे । लेस्सा—सणकुमार-माहिंद-बंभलोएसु एगा पम्हलेस्सा, सेसाणं एगा सुक्कलेस्सा । वेदे नो इत्थिवेदगा, पुरिसवेदगा, नो नपुंसगवेदगा । आउ-अणुबधा जहा ठितिपदे । सेसं जहेव ईसाणगाणं । कायसवेहं च जाणेज्जा ।

सेव भते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। चउवीसइमे सए : वीसतिमो उद्देसओ समत्तो ।। २४-२० ।।

[६५] इसी क्रम से शेष सब देवो का—सहस्रारकल्प पर्यन्त के देवो का—उपपात कहना चाहिए। परन्तु अवगाहना, (प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवे) अवगाहना-सस्थान-पद के अनुसार जानना। लेश्या (इस प्रकार है)—सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक मे एक पद्मलेश्या तथा लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार मे एक शुक्ललेश्या होती है। वेद—ये स्त्रीवेद और नपुसकवेदी नही होते, केवल पुरुषवेदी होते है। (प्रज्ञापनासूत्र के चतुर्थ) स्थितिपद के अनुसार आयु (स्थिति) और अनुबन्ध जानना चाहिए। शेष सब ईशानदेव के समान कहना चाहिए। कायसवेध भिन्न-भिन्न जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरने लगे।

विवेचन—स्पष्टीकरण—(१) पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे आठवे देवलोक से आकर उत्पन्न होते हैं। इनके परिणाम, सहनन आदि की वक्तव्यता पूर्ववत् समझना चाहिए। भवादेश आदि के लिए भी पूर्ववत् अतिदेश किया गया है।[1]

(२) **अवगाहना**—प्रज्ञापनासूत्र के २१ वें पद के अनुसार इस प्रकार है--

'भवण-वण-जोइ-सोहम्मीसाणे सत्त हुंति रयणीओ।
एक्केक्क-हाणि सेसे दुदुगे य दुगे चउक्के य ।।'

अर्थात्—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म और ईशान देवलोक मे भवधारणीय अवगाहना जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग, उत्कृष्ट सात रत्नि (हाथ) है। सनत्कुमार और माहेन्द्र मे ६ रत्नि है। ब्रह्मलोक और लान्तक मे ५ रत्नि, महाशुक्र और सहस्रार मे ४ रत्नि तथा आनत, प्राणत, आरण और अच्युत मे तीन रत्नि की अवगाहना होती है। उत्तरवैक्रिय अवगाहना सभी देवलोको मे जघन्य अगुल का सख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन की होती है। (३) स्थिति सभी की भिन्न-भिन्न है, जिसका निर्देश अन्यत्र किया जा चुका है। स्थिति के अनुसार उपयोगपूर्वक सवेध जान लेना चाहिए।[2]

।। चौवीसवाँ शतक : बीसवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ।।

---

१. भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८४२

२ (क) वही, पत्र ८४२

(ख) पण्णवणासुत्त, भा १, सू १५३२/५, पृ. ३४१ (महावीरविद्यालय प्रकाशन)

एक्कवीसइमो : मणुस्स-उद्देसओ

इक्कीसवाँ उद्देशक : मनुष्य (की उत्पादादिप्ररूपणा)

गति की अपेक्षा मनुष्यों के उपपात का निरूपण

१. मणुस्सा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, जाव देवेहिंतो उवव० ।

गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उववज्जंति, एव उववाओ जहा पचेंदियतिरिक्खजोणियउद्दे सए (उ० २० सु० १-२) जाव तमापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जति, नो अहेसत्तमपुढविनेरइएहिंतो उवव० ।

[१ प्र.] भगवन् ! मनुष्य कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ? या मनुष्यो, तिर्यञ्चो अथवा देवो से आकर होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! नैरयिको से भी आकर उत्पन्न होते है, यावत् देवो से भी आकर उत्पन्न होते है। इस प्रकार यहाँ 'पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-उद्देशक' (उ २०, सू १-२) मे कहे अनुसार, यावत्—तम.प्रभापृथ्वी के नैरयिको से भी आकर उत्पन्न होते है, किन्तु अध.सप्तमपृथ्वी के नेरयिको से आकर उत्पन्न नही होते, यहाँ तक उपपात का कथन करना चाहिए ।

विवेचन—निष्कर्ष—मनुष्य, चारो गतियो से आकर उत्पन्न होते है, यदि वे नरकगति से उत्पन्न होते है तो छठे नरक तक से आकर होते है, सप्तम नरक से आकर उत्पन्न नही होते ।[1]

मनुष्यों में उत्पन्न होनेवाले रत्नप्रभा से तमःप्रभा तक के नैरयिको में उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा

२. रयणप्पभपुढविनेरइए ण भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उवव० से णं भंते ! केवतिकाल० ?

गोयमा ! जहन्नेणं मासपुहत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउएसु ।

[२ प्र.] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक जो मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है ?

[२ उ] गौतम ! वह जघन्य मासपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की स्थिति वाले (मनुष्यो मे उत्पन्न होता है ।)

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त भा. २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ ९५६

३. अवसेसा वत्तव्वया जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जतस्स तहेव, नवरं परिमाणे जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जति, जहा तहिं अंतोमुहुत्तेहिं तहा इहं मासपुहत्तेहिं संवेहं करेज्जा। से सं तं चेव।

[३] शेष वक्तव्यता पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक मे उत्पन्न होने वाले रत्नप्रभा के नैरयिक के समान जानना चाहिए। परिमाण मे विशेष यह है कि वे जघन्य एक, दो या तीन, अथवा उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते हैं, वहाँ तो अन्तर्मुहूर्त के साथ सवेध किया था, किन्तु यहाँ मासपृथक्त्व के साथ सवेध करना चाहिए। शेष पूर्व-कथित-अनुसार जानना चाहिए।

४. जहा रयणप्पभाए तहा सक्करप्पभाए वि वत्तव्वया, नवरं जहन्नेणं वासपुहत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण पुव्वकोडि०। ओगाहणा-लेस्सा-नाण-ट्ठिति-अणुबंध-संवेहनाणत्तं च जाणेज्जा जहेव तिरिक्खजोणियउद्देसए (उ० २० सु० ८-९) एवं जाव तमापुढविनेरइए।

[४] रत्नप्रभा की वक्तव्यता के समान शर्कराप्रभा की भी वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि जघन्य वर्षपृथक्त्व की तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है। अवगाहना, लेश्या, ज्ञान, स्थिति, अनुबध और सवेध का नानात्व (विशेषता) तिर्यञ्च-योनिक-उद्देशक (उ. २०, सू. ८-९) मे कहे अनुसार जानना। इस प्रकार तम प्रभापृथ्वी के नैरयिक तक जानना चाहिए।

विवेचन—मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले नारको के सम्बन्ध मे—(१) रत्नप्रभापृथ्वी के नारक यदि मनुष्यायु का बध करते है, तो वे मासपृथक्त्व (दो महीने से नौ महीने तक) से कम आयु का बन्ध नही करते, क्योकि उनमे तथाविध परिणाम का अभाव होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी (आगे की नरक पृथ्वियो मे भी) यही कारण समझना चाहिए। (२) **परिमाणद्वार मे विशेष**—नारक, सम्मूच्छिम मनुष्यो मे नही उत्पन्न होते है। गर्भज सख्यात है, इसलिए वे (नारक) सख्यात ही उत्पन्न होते है। रत्नप्रभापृथ्वी से आकर पचेन्द्रिय-तियञ्च मे उत्पन्न होने वालो की जघन्य स्थिति पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-उद्देशक (२० वे उद्देशक) मे अन्तर्मुहूर्त बताई है, अत अन्तर्मुहूर्त के साथ सवेध किया है, किन्तु यहाँ मनुष्य-उद्देशक (उ २१) मे मनुष्यो की जघन्य स्थिति को लेकर मासपृथक्त्व के साथ सवेध किया है, क्योकि काल की अपेक्षा से जघन्य सवेध मासपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष है।

(४) शर्कराप्रभा आदि की समग्र वक्तव्यता पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च उद्देशक के अनुसार जाननी चाहिए।[1]

मनुष्यों मे उत्पन्न होने वाले अग्नि-वायुकाय के सिवाय एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-मनुष्यों के उत्पाद-परिमाणादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

५. जति तिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति, जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उवव०।

---

१. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ८४५

गोयमा ! एगिंदियतिरिक्ख० भेदो जहा पंचेंदियतिरिक्खजोणिउद्देसए (उ० २० सु० ११) नवरं तेउ-वाऊ पडिसेहेयव्वा। सेसं तं चेव जाव—

[५ प्र] भगवन् ! यदि वे (मनुष्य), तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं, या यावत् पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[५ उ] गौतम ! वे एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं, इत्यादि वक्तव्यता पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-उद्देशक (उ २०, सू ११) मे कहे अनुसार जाननी चाहिए। किन्तु विशेष यह है कि इस विषय मे तेजस्काय और वायुकाय का निषेध करना चाहिए (क्योकि इन दोनो से आकर मनुष्यो मे उत्पन्न नही होता)। शेष समग्र कथन पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत—

६. पुढविकाइए ण भते जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए से णं भते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडिग्राउएसु उवव०।

[६ प्र] भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक, मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है ?

[६ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है।

७ ते ण भंते ! जीवा० ?

एव जा चेव पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणस्स पुढविकाइयस्स वत्तव्वया सा चेव इह वि उववज्जमाणस्स भाणियव्वा नवसु वि गमएसु, नवरं ततिय-छट्ठ-णवमेसु गमएसु परिमाणं जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा उववज्जति।

[७ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[७ उ.] जो पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक की वक्तव्यता है, वही यहाँ मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक की वक्तव्यता नौ गमको मे कहनी चाहिए। विशेष यह है कि तीसरे, छठे और नौवे गमक मे परिमाण जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है, (ऐसा कहना चाहिए)।

८. जाहे अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ भवति ताहे पढमगमए अज्झवसाणा पसत्था वि अप्पसत्था वि, बितियगमए अप्पसत्था, ततिए गमए पसत्था भवंति। सेस तं चेव निरवसेसं।

[८] जब स्वय (पृथ्वीकायिक) जघन्यकाल की स्थिति वाला होता है, तब मध्य के तीन गमको मे से प्रथम (चौथे) गमक मे अध्यवसाय प्रशस्त भी होते हैं और अप्रशस्त भी। द्वितीय (पाँचवे) गमक मे अप्रशस्त और तृतीय (छठे) गमक मे प्रशस्त अध्यवसाय होते है। शेष सब पूर्ववत् जानना।

९. जति आउकाइए० एवं आउकाइयाण वि।

[९ प्र.] यदि वे अप्कायिको से आकर उत्पन्न हो तो ?

[९ उ.] अप्कायिको के लिए भी (पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए।)

१०. एवं वणस्सतिकाइयाण वि ।

[१०] इसी प्रकार वनस्पतिकायिको के लिए भी (पूर्वोक्त वक्तव्यता जाननी चाहिए ।)

११. एव जाव चउरिंदियाणं ।

[११] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय-पर्यन्त जानना ।

१२. असन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिया सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिया असन्निमणुस्सा सन्निमणुस्सा य, एए सव्वे वि जहा पंचेंदियतिरिक्खजोणिउद्देसए तहेव भाणितव्वा, नवर एताणि चेव परिमाण-अज्झवसाणणाणत्ताणि जाणिज्जा पुढविकाइयस्स एत्थ चेव उद्देसए भणियाणि । सेस तहेव निरवसेस ।

[१२] असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, असज्ञी मनुष्य और सज्ञी मनुष्य, इन सभी के विषय मे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक उद्देशक मे कहे अनुसार कहना चाहिए । परन्तु विशेषता यह है कि इन सबके परिणाम और अध्यवसायो की भिन्नता पृथ्वीकायिक के इसी उद्देशक मे कहे अनुसार समझनी चाहिए । शेष सब पूर्ववत् जानना ।

विवेचन -स्पष्टीकरण—(१) यहाँ पृथ्वीकाय से उत्पन्न होने वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की जो वक्तव्यता कही है, वही पृथ्वीकाय से उत्पन्न होने वाले मनुष्य के लिए भी जाननी चाहिए ।

(२) तृतीय गमक मे पृथ्वीकायिक से निकल कर उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्य मे जो उत्पन्न होते हैं, वे उत्कृष्ट सख्यात होते हैं । यद्यपि यहाँ सामान्य रूप (औघिकरूप) से मनुष्य का ग्रहण होने से सम्मूच्छिम मनुष्यो का भी ग्रहण हो जाता है और वे असख्यात है, तथापि उत्कृष्ट स्थिति मे पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले मनुष्य सख्यात ही होते है, जबकि पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च असख्यात हो जाते हैं । छठे और नौवे गमक मे भी यही कथन समझना चाहिए ।

(३) मध्यत्रिक के प्रथम (अर्थात् चौथे) गमक मे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक का मनुष्य में अधिक उत्पाद होता है । उस समय पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्य मे उत्पत्ति होती है, तब उसके अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं और जब उसी गमक मे जघन्य स्थिति वाले मनुष्य मे उत्पत्ति होती है तब अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं । इसलिए चौथे गमक मे दोना प्रकार के अध्यवसाय बताए हैं । मध्यत्रिक मे दूसरे (अर्थात् पाँचवें) गमक मे जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक जब जघन्य स्थिति वाले मनुष्य मे उत्पन्न होता है, तब उसके अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं । क्योकि जघन्य स्थिति मे प्रशस्त अध्यवसायो से उत्पत्ति नही होती । मध्यत्रिक के तीसरे (यानी छठे) गमक मे जब जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक, उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्य मे उत्पन्न होता है, तब उसके अध्यवसाय प्रशस्त होते है ।[1]

देवों की अपेक्षा मनुष्यों में उत्पत्ति-प्ररूपणा

१३. जवि देवेहिंतो उवव० कि भवणवासिदेवेहिंतो उवव०, वाणमंतरजोतिसिय वेमाणियदेवेहिंतो उवव० ?

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४५
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ६, पृ ३१५१-५२

गोयमा ! भवणवासि० जाव वेमाणिय० ।

[१३ प्र.] भगवन् ! यदि वे (मनुष्य) देवो से आकर उत्पन्न होते हैं, तो भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है, या वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१३ उ] गौतम ! वे (मनुष्य) भवनवासी यावत् वैमानिक देवो से भी आकर उत्पन्न होते है।

विवेचन—निष्कर्ष—मनुष्य भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एव वैमानिक, इन चारो प्रकार के देवो से आकर उत्पन्न होते हैं।

मनुष्यों में उत्पन्न होनेवाले भवनवासी आदि चारों प्रकार के देवों के उत्पाद-परिमाणादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

१४. जदि भवण० किं असुर० जाव थणिय० ?

गोयमा ! असुर० जाव थणिय० ।

[१४ प्र] भगवन् ! यदि वे (मनुष्य), भवनवासी देवो स आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे असुरकुमार-भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है, अथवा यावत् स्तनितकुमार भ० देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[१४ उ] गौतम ! वे असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देवो से आकर उत्पन्न होते हैं।

१५. असुरकुमारे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उवव० से णं भंते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं मासपुहत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउएसु, उववज्जेज्जा । एवं जच्चेव पंचेंदियतिरिक्खजोणिउद्देसयवत्तव्वया सा चेव एत्थ वि भाणियव्वा, नवर जहा तहिं जहन्नगं अतोमुहुत्तट्ठितीएसु तहा इह मासपुहत्तट्ठिईएसु, परिमाण जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सखेज्जा उववज्जति । सेस त चेव जाव ईसाणदेवो त्ति । एयाणि चेव णाणत्ताणि । सणकुमारादीया जाव सहस्सारो त्ति, जहेव पचेंदियतिरिक्खजोणिउद्देसए नवर परिमाणे जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सखेज्जा उववज्जति । उववाओ जहन्नेण वासपुहत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण पुव्वकोडिआउएसु उवव० । सेस त चेव । संवेह वासपुहत्तपुव्वकोडीसु करेज्जा ।

[१५ प्र] भगवन् ! असुरकुमार भवनवासी देव, जो मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है ?

[१५ उ] गौतम ! वह (असुरकुमार भवनवासी) जघन्य मासपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक उद्देशक मे जो वक्तव्यता कही है, वही वक्तव्यता यहाँ भी कहनी चाहिए । विशेष यह है कि जिस प्रकार वहाँ जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले तिर्यंच मे उत्पन्न होने का कहा है, उसी प्रकार यहाँ मासपृथक्त्व की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होने का कथन करना चाहिए । इसके परिमाण मे जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते है, शेष सब पूर्वकथितानुसार जानना चाहिए । इसी प्रकार ईशान देव तक वक्तव्यता कहनो चाहिए तथा ये (उपर्युक्त) विशेषताएँ भी जाननी चाहिए । जैसे पचेन्द्रिय-

तिर्यञ्चयोनिक उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार सनत्कुमार से लेकर सहस्रार तक के देव के सम्बन्ध मे कहना चाहिए। परन्तु विशेष यह है कि उनका परिमाण—जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात उत्पन्न होते हैं। उनकी उत्पत्ति जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले मनुष्यो मे होती है। शेष सब पूर्व-कथनानुसार जानना चाहिए। सवेध—(जघन्य) वर्ष-पृथक्त्व (और उत्कृष्ट) पूर्वकोटि वर्ष से करना चाहिए।

१६. सणंकुमारे ठिती चउग्गुणिया अट्ठावीसं सागरोवमा भवति। माहिंदे ताणि चेव सातिरेगाणि। बंभलोए चत्तालीसं। लंतए छप्पण्णं। महासुक्के अट्ठसट्ठि। सहस्सारे बावत्तरिं सागरोवमाइं। एसा उक्कोसा ठिती भणिया, जहन्नट्ठिति पि चउगुणेज्जा।

[१६] सनत्कुमार मे (सवेध) स्वय की उत्कृष्ट स्थिति को चार गुणा करने पर अट्ठाईस सागरोपम होता है। माहेन्द्र मे (सवेध) कुछ अधिक अट्ठाईस सागरोपम होता है। (इसी प्रकार स्वय की उत्कृष्ट स्थिति को चार गुणा करने पर) ब्रह्मलोक मे ४० सागरोपम, लान्तक मे छप्पन सागरोपम, महाशुक्र मे अडसठ सागरोपम तथा सहस्रार मे बहत्तर सागरोपम होता है। यह उत्कृष्ट स्थिति कही गई है। जघन्य स्थिति को भी चार गुणी करनी चाहिए। (यो कायसवेध कहना चाहिए।) [गमक १ से ९ तक]

१७. आणयदेवे णं भंते! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए से ण भंते! केवति० ?

गोयमा! जहन्नेणं वासपुहत्तट्ठितीएसु उवव०, उक्कोसेण पुव्वकोडिट्ठितीएसु।

[१७ प्र] भगवन्! आनतदेव, जो मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यों मे उत्पन्न होता है?

[१७ उ] गौतम! वह (आनतदेव), जघन्य वर्षपृथक्त्व की और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है।

१८. ते ण भंते! ०?

एवं जहेव सहस्सारदेवाणं वत्तव्वया, नवर ओगाहणा-ठिति-अणुबंधे य जाणेज्जा। सेस तं चेव। भवाएसेणं जहन्नेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेण छ भवग्गहणाइ। कालाएसेणं जहन्नेण अट्ठारस सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण सत्तावण्ण सागरोवमाइ तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवतिय कालं०। एव नव वि गमा, नवरं ठिति अणुबध सवेह च जाणेज्जा।

[१८ प्र] भगवन्! वे (मनुष्य) एक समय मे कितने उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[१८ उ] (गौतम!) जिस प्रकार सहस्रारदेवो की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ भी कहनी चाहिए। परन्तु इनकी अवगाहना, स्थिति और अनुबन्ध के विषय मे भिन्नता जाननी चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना। भव की अपेक्षा से - जघन्य दो भव और उत्कृष्ट छह भव ग्रहण करते हैं तथा काल की अपेक्षा से - जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक सत्तावन सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। इसी प्रकार नौ ही गमको मे जानना चाहिए। विशेष यह है कि इनकी स्थिति, अनुबन्ध और सवेध भिन्न-भिन्न जानना चाहिए।

१९. एवं जाव अच्चुयदेवो, नवरं ठिति अणुबंधं संवेहं च जाणेज्जा। पाणयदेवस्स ठिती तिउणा—सट्ठि सागरोवमाइं, आरणगस्स तेवट्ठि सागरोवमाइं, अच्चुयदेवस्स छावट्ठि सागरोवमाइं।

[१९] इसी प्रकार अच्युतदेव तक जानना चाहिए। विशेष यह है कि इनकी स्थिति, अनुबन्ध और संवेध, भिन्न-भिन्न जानने चाहिए। प्राणतदेव की स्थिति को तीन गुणी करने पर साठ सागरोपम, आरणदेव की स्थिति को तीन गुणी करने पर तिरेसठ (६३) सागरोपम और अच्युतदेव की स्थिति को तीन गुणी करने पर छासठ (६६) सागरोपम की हो जाती है।

२०. जदि कप्पातीतवेमाणियदेवेहितो उवव० किं गेवेज्जकप्पातीत०, अणुत्तरोववातियकप्पातीत० ?

गोयमा ! गेवेज्ज० अणुत्तरोववा०।

[२० प्र] भगवन् ! यदि वे मनुष्य कल्पातीत-वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते है तो क्या ग्रवेयक-कल्पातीत देवो से आकर उत्पन्न होते है, अथवा अनुत्तरौपपातिक देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[२० उ] गौतम ! वे (मनुष्य) ग्रैवेयक और अनुत्तरौपपातिक दोनो प्रकार के कल्पातीत देवो से आकर उत्पन्न होते है।

२१. जइ गेवेज्ज० किं हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जकप्पातीत० जाव उवरिमउवरिमगेवेज्ज० ?

गोयमा ! हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्ज० जाव उवरिमउवरिम०।

[२१ प्र] यदि वे (मनुष्य), ग्रैवेयक-कल्पातीत देवो से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे अधस्तन-अधस्तन (सबसे नीचे के) ग्रैवेयक-कल्पातीत देवो से आकर उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् उपरितन-उपरितन (सबसे ऊपर के) ग्रैवेयक-कल्पातीत देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[२१ उ] गौतम ! वे (मनुष्य), अधस्तन-अधस्तन यावत् उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक-कल्पातीत देवो से भी आकर उत्पन्न होते है।

२२ गेवेज्जगदेवे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवतिका० ?

गोयमा ! जहन्नेणं वासपुहत्तट्ठितीएसु, उक्कोसेण पुव्वकोडि०। अवसेसं जहा आणयदेवस्स वत्तव्वया, नवरं ओगाहणा, गोयमा ! एगे भवधारणिज्जे सरीरए से जहन्नेणं अंगुलस्स असखेज्जइभागं, उक्कोसेणं दो रयणीओ। सठाण गोयमा। एगे। भवधारणिज्जे सरीरए से समचउरससंठिते पन्नत्ते। पंच समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहा वेयणासमुग्घाए जाव तेयगसमु०, नो चेव णं वेउव्विय-तेयगसमुग्घाएहिं समोहन्निसु वा, समोहन्नति वा, समोहन्निस्संति वा, ठिती-अणुबंधा जहन्नेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं। सेसं तं चेव। कालाएसेणं जहन्नेणं बावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं तेणउतिं सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवतिय०। एवं सेसेसु वि अट्ठगमएसु, नवरं ठितिं संवेहं च जाणेज्जा।

[२२ प्र] भगवन् ! ग्रैवेयक देव, जो मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यो में उत्पन्न होता है ?

[२२ उ] गौतम ! वह जघन्य वर्षपृथक्त्व की और उत्कृष्ट पूर्वकोटिवर्ष की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होता है। शेष वक्तव्यता आनतदेव की वक्तव्यता के समान जाननी चाहिए। विशेष यह है कि हे गौतम ! उसके एकमात्र भवधारणोय शरीर होता है। उसकी अवगाहना—जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट दो रत्नि (हाथ) की होती है। उसका केवल भवधारणीय शरीर समचतुरस्रसस्थान से युक्त कहा गया है। उसमे पाँच समुद्घात पाये जाते है। यथा—वेदना-समुद्घात यावत् तैजस-समुद्घात। किन्तु उन्होने वैक्रिय-समुद्घात और तैजस-समुद्घात कभी किये नही, करते भी नही, और करेगे भी नही। उनकी स्थिति और अनुबन्ध जघन्य बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम होता है। शेष पूर्ववत् जानना। कालादेश से—जघन्य वर्षपृथक्त्व-अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि-अधिक तिरानवै (९३) सागरोपम, इतने काल तक गति-आगति करता है। (यह प्रथम गमक हुआ), शेष आठो ही गमको मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। परन्तु स्थिति और सवेध भिन्न समझना चाहिए।

२३. जदि अणुत्तरोववातियकप्पातीतवेमाणि० कि विजयअणुत्तरोववातिय० वेजयतअणुत्तरोववातिय० जाव सवट्ठसिद्ध० ?

गोयमा ! विजयअणुत्तरोववातिय० जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववातिय०।

[२३ प्र] भगवन् ! यदि वे (मनुष्य), अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत-वैमानिको से आकर उत्पन्न होते है, तो क्या वे विजय, वैजयन्त, जयन्त अथवा यावत् सर्वार्थसिद्ध वमानिक देवो से आकर उत्पन्न होते है ?

[२३ उ] गौतम ! वे (मनुष्य), विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमानवासी देवो से आकर उत्पन्न होते है।

२४. विजय-वेजयंत-जयत-अपराजितदेवे ण भते ! जे भविए मणुस्सेसु उवव० से ण भंते ! केवति० ?

एवं जहेव गेवेज्जगदेवाणं, नवर ओगाहणा जहन्नेण अगुलस्स असखेज्जतिभाग, उक्कोसेण एगा रयणी। सम्मद्दिट्ठी, नो मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी, णाणी, णो अण्णाणी, नियमं तिनाणी, तं जहा—आभिणिबोहिय० सुय० ओहिणाणी। ठिती जहन्नेण एक्कत्तीस सागरोवमाइ, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। सेस तं चेव। भवाएसण जहन्नेण दो भवग्गहणाइ, उक्कोसेणं चत्तारि भवग्गहणाइं। कालाएसेणं जहन्नेण एक्कत्तीस सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइं दोहि पुव्वकोडिहि अब्भहियाइ; एवतिय०। एव सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा, नवरं ठिति अणुबंधं च जाणेज्जा। सेस एव चेव।

[२४ प्र] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव, जो मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य है, वे कितने काल की स्थितिवाले मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं।

[२४ उ] गौतम ! ग्रैवेयक देवो के अनुसार वक्तव्यता कहनी चाहिए। उनकी अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट एक रत्नि (हाथ) की होती है। वे सम्यग्दृष्टि होते हैं,

किन्तु मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते। वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नही। उनके नियम से तीन ज्ञान होते हैं, यथा—आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। उनकी स्थिति जघन्य इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की होती है। शेष पूर्ववत् जानना। भवादेश से—वे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट चार भव ग्रहण करते है। कालादेश से—जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक इकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागरोपम, यावत् इतने काल गमनागमन करते हैं। (यह प्रथम गमक हुआ।) इसी प्रकार शेष आठ गमक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इनके स्थिति, अनुबन्ध और संवेध भिन्न-भिन्न जानने चाहिए। शेष सब इसी प्रकार है। [गमक १ से ९ तक]

२५. सव्वट्ठसिद्धगदेवे ण भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए० ?

सा चेव विजयादिदेववत्तव्वया भाणियव्वा, णवर ठिती अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ। एवं अणुबंधो वि। सेस तं चेव। भवाएसेण दो भवग्गहणाइं, कालाएसेणं जहन्नेण तेत्तीस सागरोवमाइ वासपुहत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ पुव्वकोडीए अब्भहियाइ, एवतियं०। [पढमो गमओ]।

[२५ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध देव, जो मनुष्यो मे उत्पन्न होने योग्य हैं, कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न होते है ?

[२५ उ.] (गौतम !) वही विजयादि देव-सम्बन्धी वक्तव्यता इनके विषय मे कहनी चाहिए। इनकी स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी जानना चाहिए। शेष पूर्ववत्। भवादेश से—दो भव तथा कालादेश से—जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट भी, इतने ही काल तक गमनागमन करता है। [प्रथम गमक]

२६. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं तेत्तीस सागरोवमाइ वासपुहत्तमब्भहियाइ, उक्कोसेण वि तेत्तीस सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइ; एवतियं०। [बीओ गमओ]।

[२६] यदि वह सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव जघन्य काल की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न हो तो उसके विषय मे यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। कालादेश के सम्बन्ध मे विशेष यह है कि जघन्य और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व-अधिक तेतीस सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। [द्वितीय गमक]

२७. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं; एवतियं०। [तइओ गमओ]। एए चेव तिण्णि गमगा, सेसा न भण्णंति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ चउवीसइमे सए : इक्कवीसइमो उद्देसो समत्तो ॥ २४-२१ ॥

[२७] यदि वह (सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव) उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले मनुष्यो मे उत्पन्न हो तो, उसके सम्बन्ध मे यही वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि कालादेश से—जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-अधिक तेतीस सागरोपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। [तृतीय गमक]। यहाँ ये तीन ही गमक कहने चाहिए। शेष छह गमक नही कहे जाते, (क्योकि ये बनते नही)।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—विशिष्ट तथ्यो का स्पष्टीकरण—(१) मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले असुरकुमार देव से लेकर ईशानदेव तक की वक्तव्यता के लिए यहाँ पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-उद्देशक का अतिदेश किया गया है क्योकि दोनो की वक्तव्यता समान है। (२) सनत्कुमार आदि की वक्तव्यता मे भिन्नता है, अत उनका कथन पृथक् किया गया है। (३) **सवेध का मापदण्ड**—जब औघिक या उत्कृष्ट स्थिति के देव, औघिक आदि मनुष्य मे उत्पन्न होते है, तब उत्कृष्ट स्थिति और सवेध का कथन करने के लिए चार मनुष्यभव की तथा चार देवभव की स्थिति को जोडना चाहिए। आनत आदि देवो मे उत्कृष्ट ६ भव होते है। इसलिए तीन मनुष्य के भवो और तीन देव के भवो की स्थिति को जोड कर सवेध करना चाहिए। (४) **कल्पातीत देवो मे अक्रिय समुद्घात**—कल्पातीत देवो मे लब्धि की अपेक्षा ५ समुद्घात पाये जाते है, किन्तु उनमे दो समुद्घात—वैक्रिय और तैजस—अक्रिय रहते है। ये दोनो समुद्घात वे कभी करते नही, करेगे भी नही और किये भी नही। क्योकि उनको इनसे कोई मतलब नही है। (५) प्रथम ग्रैवेयक मे जघन्य स्थिति बाईस और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की है। आगे क्रमश. प्रत्येक ग्रैवेयक मे क्रमश एक-एक सागरोपम की वृद्धि होती है। नौवे ग्रैवेयक मे उत्कृष्ट स्थिति ३१ सागरोपम की है। वहाँ भवादेश से उत्कृष्ट छह भव होते है। इसलिए तीन मनुष्यभव की उत्कृष्ट स्थिति तीन पूर्वकोटि और तीन ग्रैवेयकभव की उत्कृष्ट स्थिति ९३ सागरोपम की होती है। यह कालादेश से उत्कृष्ट सवेध है। (६) गमक—सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देवो मे प्रथम के तीन गमक ही सम्भव होते है, क्योकि उनकी अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की होती है। जघन्य स्थिति न होने से चतुर्थ, पचम और षष्ठ (छठा), ये तीन गमक नही बनते तथा उत्कृष्ट स्थिति न होने से सप्तम, अष्टम और नवम, ये तीन गमक भी नही बनते।

(७) दृष्टि—अनुत्तरौपपातिक देव मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते, सम्यग्दृष्टि ही होते है, जबकि नौ ग्रैवेयक देवो मे तीनो दृष्टियाँ पाई जाती है।[1]

॥ चौवीसवाँ शतक इक्कीसवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

१. भगवतीसूत्र अ वृत्ति, पत्राक ८४५-८४६

बावीसइमो : वाणमंतरुद्देसओ

बाईसवाँ : वाणव्यन्तर-उद्देशक

वाणव्यन्तरों में उत्पन्न होनेवाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों मे उपपात-परिमाणादि का नागकुमार-उद्देशक के अतिदेशपूर्वक निर्देश

१. वाणमतरा ण भंते कम्रोहितो उववज्जंति, किं नेरइएहिंतो उववज्जति तिरिक्खजोणिए हिंतो उववज्जति० ? एवं जहेव णागकुमारुद्देसए असण्णी तहेव निरवसेसं ।

[१ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ? या तिर्यंचयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] (गौतम !) जिस प्रकार नागकुमार-उद्देशक मे कहा है, उसी प्रकार असज्ञी तक सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

विवेचन--निष्कर्ष वाणव्यन्तर देव, मनुष्य और तिर्यञ्च गतियो से आकर उत्पन्न होते है, देवो और नारको से आकर उत्पन्न नही होते । शेष परिमाणादि बातो के लिए अतिदेश किया गया है ।

वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के उत्पाद-परिमाण आदि वीस द्वारों की प्ररूपणा

२. जदि सन्निपंचेंदिय० जाव असखेज्जवासाउयसन्निपचेंदिय० जे भविए वाणमंतर० से णं भते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्सट्ठितीएसु, उक्कोसेण पलिओवमट्ठितीएसु । सेसं तं चेव जहा नागकुमारुद्देसए जाव कालाएसेण जहन्नेण सातिरेगा पुव्वकोडी दसहि वाससहस्सेहि अब्भहिया, उक्कोसेण चत्तारि पलिओवमाइ ; एवतिय० । [पढमो गमओ] ।

[२ प्र] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयुष्य वाला यावत् संज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जो वाणव्यन्तरो मे उत्पन्न होने योग्य है, यह कितने काल की स्थिति वाले वाणव्यन्तरो मे उत्पन्न होता है ?

[२ उ] गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक पल्योपम की स्थिति वाले वाणव्यन्तरो मे उत्पन्न होता है । शेष सब नागकुमार-उद्देशक मे कहा है, उसी के अनुसार जानना, यावत् कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चार पल्योपम, इतने काल तक गमनागमन करता है । [प्रथम गमक]

३. सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहेव नागकुमाराणं बितियगमे वत्तव्वया। [बीओ गमओ]।

[३] यदि वह जघन्य काल की स्थिति वाले वाणव्यन्तर मे उत्पन्न होता है, तो नागकुमार के दूसरे गमक मे कही हुई वक्तव्यता जाननी चाहिए। [द्वितीय गमक]

४. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेणं पलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि पलिओवमट्ठितीएसु। एस चेव वत्तव्वया, नवरं ठिती जहन्नेण पलिओवमं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं। संवेहो जहन्नेण दो पलिओवमाइं, उक्कोसेण चत्तारि पलिओवमाइं; एवतियं०। [तइओ गमओ]।

[४] यदि वह उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले वाणव्यन्तरो मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम की स्थिति वाले वाणव्यन्तरो मे उत्पन्न होता है, इत्यादि वक्तव्यता पूर्ववत् जानना। स्थिति जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की जाननी चाहिए। सवेध—जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट चार पल्योपम, इतने काल तक गमनागमन करता है। [तृतीय गमक]

५. मज्झिमगमगा तिन्नि वि जहेव नागकुमारेसु। [४—६ गमगा]।

[५] मध्य के तीन गमक नागकुमार के तीन मध्य गमको के समान कहने चाहिए। [४-५-६]

६. पच्छिमेसु तिसु गमएसु त चेव जहा नागकुमारुद्देसए, नवर ठिति सवेह च जाणेज्जा। [७—९ गमगा]।

[६] अन्तिम तीन गमक भी नागकुमार-उद्देशक मे कहे अनुसार कहने चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति और सवेध भिन्न-भिन्न जानना चाहिए। [गमक ७-८-९]

७. संखेज्जवासाउय० तहेव, नवरं ठिती अणुबंधो, सवेह च उभओ ठितीए जाणेज्जा। [१—९ गमगा]।

[७] सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो की वक्तव्यता भी उसी प्रकार जाननी चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति और अनुबन्ध भिन्न है तथा सवेध, दोनो की स्थिति को मिलाकर कहना चाहिए। [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—कुछ स्पष्टीकरण—(१) वाणव्यन्तर देवो के प्रकरण मे असख्येय वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रियो के अधिकार मे उत्कृष्ट चार पल्योपम का जो कथन किया गया है, वह सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम और वाणव्यन्तर देव की एक पल्योपम, इस प्रकार दोनो की स्थिति को मिलाकर चार पल्योपम का सवेध जानना चाहिए। (२) नागकुमार के दूसरे गमक की वक्तव्यता प्रथम गमक के समान है। परन्तु यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की जाननी चाहिए। (३) सवेध—कालादेश से जघन्य १० हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष अधिक तीन पल्योपम का जानना चाहिए।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४६

वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के उत्पाद-परिमाण आदि बीस द्वारों की प्ररूपणा

८. जदि मणुस्से० असंखेज्जवासाउयाणं जहेव नागकुमाराणं उद्देसे तहेव वत्तव्वया, नवरं ततियगमए ठिती जहन्नेणं पलिओवमं, उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं। ओगाहणा जहन्नेणं गाउयं, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं। सेसं तहेव। संवेहो से जहा एत्थ चेव उद्देसए असंखेज्जवासाउयसन्नि-पंचिदियाणं।

[८] यदि वे (वाणव्यन्तर देव), मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है, तो उनकी वक्तव्यता नागकुमार-उद्देशक मे कहे अनुसार असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यो के समान कहनी चाहिए। विशेष यह है कि तीसरे गमक मे स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की जाननी चाहिए। अवगाहना जघन्य एक गाऊ की और उत्कृष्ट तीन गाऊ की होती है। शेष सब पूर्ववत् जानना। इनका सवेध इसी उद्देशक मे जैसे असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च का कहा गया है, वैसे ही कहना चाहिए।

९. सखेज्जवासाउयसन्निमणुस्सा जहेव नागकुमारुद्देसए, नवरं वाणमंतर-ठिंति संवेह च जाणेज्जा।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

॥ चउवीसइमे सए : बावीसइमो उद्देसो समत्तो ॥ २४-२२ ॥

[९] जिस प्रकार नागकुमार-उद्देशक मे कहा गया है, उसी प्रकार सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो की वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु वाणव्यन्तर देवो की स्थिति और सवेध उससे भिन्न जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—स्थितिसम्बन्धी स्पष्टीकरण—यहाँ तीसरे गमक मे जघन्य स्थिति पल्योपम की बताई गई है। यद्यपि असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो की जघन्य स्थिति साति-रेक पूर्वकोटि वर्ष की होती है, तथापि यहाँ पल्योपम की बताई गई है, इसका कारण यह है कि वह पल्योपम की आयु वाले वाणव्यन्तर देवो मे उत्पन्न होने वाला है और असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्च अपनी आयु से अधिक आयु वाले देवो मे उत्पन्न नही होते, वह बात पहले कही जा चुकी है।

अवगाहना—जिनकी पल्योपमप्रमाण आयु है, उनकी अवगाहना सुषम-दुषम आरे मे एक गाऊ की होती है।[1]

॥ चौवीसवां शतक : बाईसवां उद्देशक सम्पूर्ण ॥

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४६-८४७
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ६, पृ ३१९९

तेवीसइमो : जोतिसिय-उद्देसओ

तेईसवाँ : ज्योतिष्क-उद्देशक

गति की अपेक्षा ज्योतिष्क देवों के उपपात का निरूपण

१. जोतिसिया णं भंते ! कम्रोहिंतो उववज्जति ? किं नेरइए० ?

भेदो जाव सन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, नो असन्निपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उवव० ।

[१ प्र.] भगवन् ! ज्योतिष्क देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! (वे नारको और देवो से नही, किन्तु तिर्यञ्चो और मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं, अत. तिर्यञ्च के) भेद कहना, यावत्—वे सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न नही होते है ।

२ जवि सन्नि० किं संखेज्जे०, असंखेज्ज० ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउय०, असंखेज्जवासाउय० ।

[२ प्र] भगवन् ! यदि वे (ज्योतिष्क देव) सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे संख्यातवर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं, अथवा असख्यात-वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ?

[२ उ] गौतम ! वे सख्यातवर्ष की और असख्यातवर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं ।

विवेचन—ज्योतिष्कों की उत्पत्ति का निष्कर्ष—(१) ज्योतिष्क देव कहाँ से आकर ज्योतिष्क-रूप मे उत्पन्न होते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर मे शास्त्रकार अन्यत्र कहते है—वे नारको और देवो से आकर उत्पन्न नही होते, किन्तु तिर्यञ्चो और मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं । तिर्यञ्चो मे भी वे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न नही होते, किन्तु सख्यातवर्ष की तथा असख्यातवर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं ।

---

१ भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भाग-१५, पृ ४३३-४३४

ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होनेवाले असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों के उपपातादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

३. असंखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए जोतिसिएसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवति० ?

गोयमा ! जहन्नेण अट्ठभागपलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेणं पलिओवमवाससहस्सट्ठितीएसु उवव० । अवसेस जहा असुरकुमारुद्देसए, नवरं ठिती जहन्नेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ । एवं अणुबंधो वि । सेस तहेव, नवरं कालाएसेणं जहन्नेणं दो अट्ठभागपलिओवमाइं, उक्कोसेण चत्तारि पलिओवमाइं वाससयसहस्समब्भहियाइं; एवतियं० । [पढमो गमओ] ।

[३ प्र] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, जो ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होता है ?

[३ उ] गौतम ! वह जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की स्थिति वाले ज्योतिष्को मे उत्पन्न होता है। शेष असुरकुमार-उद्देशक के अनुसार जानना। विशेष यह है कि उसकी स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार होता है। शेष पूर्ववत् । विशेष यह है कि काल की अपेक्षा से जघन्य दो आठवें भाग (२/८) भाग और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। [प्रथम गमक]

४ सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण अट्ठभागपलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि अट्ठभागपलिओवमट्ठितीएसु । एस चेव वत्तव्वया, नवर कालाएसं जाणेज्जा । [बीओ गमओ] ।

[४] यदि वह (सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च), जघन्य काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग की स्थिति वाले ज्योतिष्को मे उत्पन्न होता है, इत्यादि वही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ कालादेश (भिन्न) जानना चाहिए। [द्वितीय गमक]

५. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववण्णो, एस चेव वत्तव्वया, नवरं ठिती जहन्नेणं पलिओवम वाससयसहस्समब्भहियं, उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइ । एव अणुबंधो वि । कालाएसेणं जहन्नेणं दो पलिओवमाइ दोहिं वाससयसहस्सेहिं अब्भहियाइ, उक्कोसेणं चत्तारि पलिओवमाइं वाससयसहस्समब्भहियाइं० । [तइओ गमओ] ।

[५] यदि वह (सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च), उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न हो, तो यही (पूर्वोक्त वक्तव्यता) कहनी चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति जघन्य एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। इसी प्रकार अनुबन्ध भी समझना, कालादेश से—जघन्य दो लाख वर्ष अधिक दो पल्योपम और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम (यावत् इतने काल गमनागमन करता है।) [तृतीय गमक]

६. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, जहन्नेण अट्ठभागपलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेणं वि अट्ठभागपलिओवमट्ठितीएसु उवव०।

[६] यदि वह (सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न हो, तो जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवे भाग की स्थिति वाले ज्योतिष्को मे उत्पन्न होता है। [चतुर्थ गमक]

७. ते णं भंते ! जीवा एग० ?

एस चेव वत्तव्वया, नवर ओगाहणा जहन्नेण धणुपुहत्तं, उक्कोसेण सातिरेगाइं अट्ठारस धणुसयाइ। ठिती जहन्नेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेण वि अट्ठभागपलिओवमं। एव अणुबधो वि। सेसं तहेव। कालाएसेण जहन्नेण दो अट्ठभागपलिओवमाइं, उक्कोसेण वि दो अट्ठभागपलिओवमाइ, एवतिय०। जहन्नकालट्ठितीयस्स एस चेव एक्को गमगो। [चउत्थो गमओ]।

[७ प्र] भगवन् ! वे जीव (असख्यात-वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[७ उ] गौतम ! इस विषय मे पूर्वोक्त वक्तव्यता जानना। विशेष यह है कि उनकी अवगाहना जघन्य धनुषपृथक्त्व और उत्कृष्ट सातिरेक अठारह सौ धनुष की होती है। स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवे भाग की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार समझना। शेष पूर्ववत्। कालादेश से—जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के दो आठवे ($\frac{2}{8}$) भाग, इतने काल तक गमनागमन करता है। जघन्यकाल की स्थिति वाले के लिए यह एक ही गमक होता है। [चतुर्थ गमक]

८. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, सा चेव ओहिया वत्तव्वया, नवर ठिती जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि तिन्नि पलिओवमाइ। एवं अणुबधो वि। सेसं तं चेव। एवं पच्छिमा तिण्णि गमगा नेयव्वा, नवर ठिंति संवेहं च जाणेज्जा। एते सत्त गमगा। [७-८-९ गमगा]।

[८] यदि वह (असख्यात-वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और ज्योतिष्को मे उत्पन्न हो, तो औघिक (सामान्य) गमक के समान वक्तव्यता जानना। विशेष यह है कि स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार जानना। शेष सब पूर्ववत्। इसी प्रकार अन्तिम तीन गमक [७-८-९] जानने चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति और सवेध (भिन्न) समझना चाहिए। ये कुल सात गमक हुए। [गमक ७-८-९]

विवेचन—स्पष्टीकरण—(१) प्रथम गमक मे जो पल्योपम का $\frac{1}{8}$ भाग जघन्य कालादेश कहा है, उसमे से एक तो असख्यातवर्षायुष्क-सम्बन्धी है और दूसरा तारा-ज्योतिष्क-सम्बन्धी है तथा उत्कृष्ट जो एक लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम बताए है, उनमे से तीन पल्योपम तो असख्यात-वर्षायुष्क-सम्बन्धी हैं और सातिरेक एक पल्योपम चन्द्र-विमानवासी ज्योतिष्क-सम्बन्धी है।

(२) तीसरे गमक मे स्थिति जघन्य एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की कही है, इस विषय में यद्यपि असख्यात वर्ष की आयु वालो की जघन्य स्थिति सातिरेक पूर्वकोटि होती है, तथापि यहाँ एक

लाख वर्ष अधिक पल्योपम कहा है, इसका कारण यह है कि वह इतनी ही स्थिति वाले ज्योतिष्क देव मे उत्पन्न होने वाला है, क्योकि असख्यात वर्ष की आयु वाले जीव अपने से अधिक आयु वाले देवो मे उत्पन्न नही होते। यह पहले भी कहा जा चुका है।

(३) चौथे गमक में जघन्य काल की स्थिति वाले की उत्पत्ति औधिक ज्योतिष्क मे बताई है, सो असख्यात वर्ष की आयु वाला जीव तो पल्योपम के आठवे भाग से कम जघन्य आयु वाला हो सकता है, किन्तु ज्योतिष्क देवो मे इससे कम आयु नही है। असख्येय वर्षायुष्क अपनी आयु के समान उत्कृष्ट देवायु बन्धक होते हैं। इसलिए जघन्य स्थिति वाले वे पल्योपम के आठवे भाग की स्थिति वाले होते हैं। प्रथम कुलकर विमलवाहन के पूर्वकाल मे होने वाले हस्ती आदि की यह स्थिति थी। इसी प्रकार औघिक ज्योतिष्क देव भी उस उत्पत्तिस्थान को प्राप्त होते हैं।

(४) **अवगाहना-विषयक**—यहा जो अवगाहना धनुषपृथक्त्व की कही गई है, वह भी विमलवाहन कुलकर से पूर्व होने वाले पल्योपम के आठव (१/८) भाग की स्थिति वाले हस्ती आदि से भिन्न क्षुद्रकाय चतुष्पदो की अपेक्षा जाननी चाहिए और उत्कृष्ट अवगाहना सातिरेक १८०० धनुष की कही है, वह विमलवाहन कुलकर से पूर्व होने वाले हस्त्यादि की अपेक्षा से जाननी चाहिए, क्योकि विमलवाहन कुलकर की अवगाहना ९०० धनुष की थी और उस समय मे होने वाले हस्ती आदि की अवगाहना उससे दुगनी थी तथा उससे पहले समय मे होने वाले हस्ती आदि की अवगाहना सातिरेक १८०० धनुष की थी।

(५) चौथे गमक की जो वक्तव्यता है, उसी मे पाचवे और छठे गमक का अन्तर्भाव कर दिया गया है। क्योकि पल्योपम के आठवे भाग की आयुवाले यौगलिक तिर्यञ्चो की पाँचवे और छठे गमक मे भी पल्योपम के आठवे भाग की ही आयु होती है।

(६) सप्तम आदि गमको मे तिर्यञ्चो की तीन पल्योपम की स्थिति होती है, जो उत्कृष्ट ही है। ज्योतिष्क देव की सातवे गमक मे जघन्य और उत्कृष्ट, यह दो प्रकार की स्थिति होती है।

(७) आठवे गमक मे स्थिति पल्योपम के आठवे (१/८) भाग तथा नौवे गमक मे सातिरेक पल्योपम होती है।

(८) इसी के अनुसार सवेध करना चाहिए।

(९) इस प्रकार पहला, दूसरा, तीसरा, ये तीन गमक, मध्य मे तीन गमको के स्थान मे एक ही गमक और अन्तिम तीन गमक, यो कुल मिलाकर ये सात[1] गमक होते है।

ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों में उपपातादि बीस द्वारों का निरूपण

९ जइ संखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदिय० ?

संखेज्जवासाउयाण जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणाणं तहेव नव वि गमगा भाणियव्वा, नवरं जोतिसियठितिं संवेहं च जाणेज्जा। सेसं तहेव निरवसेसं।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४८

(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ६, पृ ३१७३-३१७४

[९ प्र.] भगवन् ! यदि वह (ज्योतिष्क देव) सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च से आकर उत्पन्न हो तो ?

[९ उ.] यहाँ असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के समान नौ ही गमक जानने चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्क की स्थिति और सवेध भिन्न जानना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् समझना [गमक १ से ९ तक]

विवेचन—सख्येय वर्षायुष्क तिर्यञ्च-सम्बन्धी अतिदेश– यहाँ सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होने वाले ज्योतिष्क देवो के नौ गमको के लिए असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के नौ गमको का अतिदेश किया गया है। केवल स्थिति और सवेध मे अन्तर है।

ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों में उपपात आदि बीस द्वारो की प्ररूपणा

१०. जवि मणुस्सेहिंतो उववज्जति० ? भेदो तहेव जाव—

[१० प्र] (भगवन् !) यदि वे (ज्योतिष्क देव) मनुष्यो से आकर उत्पन्न हो तो ? (इत्यादि प्रश्न)।

[१० उ] (गौतम !) पूर्वोक्त सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के समान जानना चाहिए। पूर्ववत् मनुष्यो के भेदो का उल्लेख करना चाहिए।

११. असखेज्जवासाउयसन्निमणुस्स ण भते ! जे भविए जोतिसिएसु उववज्जिए से ण भते ! ० ?

एव जहा असखेज्जवासाउयसन्निपचेंदियस्स जोतिसिएसु चेव उववज्जमाणस्स सत्त गमगा तहेव मणुस्साण वि, नवर ओगाहणाविसेसो— पढमेसु तिसु गमएसु ओगाहणा जहन्नेण सातिरेगाइ नव धणुसयाइ, उक्कोसेण तिन्नि गाउयाइ। मज्झिमगमए जहन्नेण सातिरेगाइ नव धणुसयाइ, उक्कोसेण वि सातिरेगाइ नव धणुसयाइ। पच्छिमेसु तिसु गमएसु जहन्नेण तिन्नि गाउयाइ, उक्कोसेण वि तिन्नि गाउयाइ। सेस तहेव निरवसेस जाव सवेहो त्ति।

[११ प्र.] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी मनुष्य, जो ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होता है ?

[११ उ] (गौतम !) जिस प्रकार ज्योतिष्को मे उत्पन्न होने वाले असख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के सात गमक कहे गये है, उसी प्रकार यहाँ मनुष्य के विषय मे भी समझना। प्रथम के तीन गमको मे अवगाहना की विशेषता है। उनकी अवगाहना जघन्य सातिरेक नौ सौ धनुष और उत्कृष्ट तीन गाऊ की होती है। मध्य के तीन गमक मे जघन्य और उत्कृष्ट सातिरेक नौ सौ धनुष होती है तथा अन्तिम तीन गमको मे जघन्य और उत्कृष्ट तीन गाऊ होती है। शेष सवेध तक पूर्ववत् जानना चाहिए।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ ९६२

१२. जदि संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से० ?

संखेज्जवासाउयाणं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणाणं तहेव नव गमगा भाणियव्वा, नवरं जोतिसियठिति संवेहं च जाणेज्जा। सेसं तहेव निरवसेसं।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ चउवीसइमे सते : तेवीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥ २४-२३ ॥

[१२ प्र] यदि वह सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्य से आकर उत्पन्न होता है, तो ? इत्यादि प्रश्न।

[१२ उ] असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो के गमको के समान यहाँ नौ गमक कहने चाहिए। किन्तु ज्योतिष्क देवो की स्थिति और सवेध (भिन्न) जानना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—सातिरेक नौ सौ धनुष की अवगाहना कैसे—असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य के अधिकार मे अवगाहना, जो सातिरेक नौ सौ धनुष की बताई गई है, वह विमलवाहन कुलकर के पूर्वकालीन मनुष्यो की अपेक्षा मे समझनी चाहिए और तीन गाऊ की अवगाहना सुषम-सुषमा नामक प्रथम आरे मे होने वाले यौगलिको की अपेक्षा से समझनी चाहिए। पूर्वोक्त दृष्टि से मनुष्य के विषय मे भी यहाँ सात ही गमक बताये गए है।[1]

॥ चौवीसवाँ शतक : तेईसवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८४२

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ६, पृ ३१७४

चउवीसइमो : वेमाणिय-उद्देसओ

चौवीसवाँ : वैमानिक-उद्देशक

गति को लेकर सौधर्मदेव के उपपात का निरूपण

१. सोहम्मगदेवा ण भंते ! कम्रोहितो उववज्जति ? किं नेरतिएहितो उववज्जति० ?

भेदो जहा जोतिसियउद्देसए ।

[१ प्र] भगवन् ! सौधर्मदेव, किस गति से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको से उत्पन्न होते है ? अथवा तिर्यञ्चो से, मनुष्यो से या देवो से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] (पूर्वोक्त) ज्योतिष्क-उद्देशक के अनुसार भेद जानना चाहिए ।

विवेचन—ज्योतिष्क-उद्देशक के अनुसार भेद का रहस्य—सौधर्मदेव नैरयिको एव देवो से आकर उत्पन्न नही होते, किन्तु तिर्यञ्चो एव मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है । तिर्यञ्चो मे भी एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय तथा असज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न नही होते, किन्तु सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते है । सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो मे भी सख्यात वर्ष की तथा असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न होते हैं ।[1]

सौधर्मदेव में उत्पन्न होनेवाले असंख्येय-संख्येयवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के उपपातादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

२. असखेज्जवासाउयसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भते ! जे भविए सोहम्मगदेवेसु उववज्जित्तए से ण भते ! केवतिकाल० ?

गोयमा ! जहन्नेण पलिम्रोवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण तिपलिम्रोवमट्ठितीएसु उवव० ।

[२ प्र] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, जो सौधर्म-देवो मे उत्पन्न होने योग्य है, कितने काल की स्थिति वाले सौधर्मदेवो मे उत्पन्न होता है ?

[२ उ] गौतम ! वह जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सौधर्मदेवो मे उत्पन्न होता है ।

३. ते णं भंते ! ०,

अवसेसं जहा जोतिसिएसु उववज्जमाणस्स, नवरं सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छाद्दिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छाद्दिट्ठी; नाणी वि, अन्नाणी वि, दो नाणा, दो अन्नाणा नियम; ठिती जहन्नेणं दो

१. भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिकाटीका-सहित) भा १५, पृ ४३६-४६४

पलिओवमाइं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं । एवं अणुबंधो वि । सेसं तहेव । कालाएसेणं जहण्णेणं दो पलिओवमाइं, उक्कोसेणं छ पलिओवमाइं; एवतियं० । [पढमो गमओ] ।

[३ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[३ उ] (गौतम !) जैसी वक्तव्यता ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न होने वाले असख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो की कही गई है, वैसी ही वक्तव्यता यहाँ (सौधर्म देवो के लिए) भी कहनी चाहिए । विशेषता (भिन्नता) यह है कि वे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही, वे ज्ञानी भी होते है, अज्ञानी भी । उसमे दो ज्ञान या अज्ञान नियम से होते हैं । उनकी स्थिति जघन्य दो पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है । अनुबन्ध भी इसी प्रकार जानना । शेष पूर्ववत् । कालादेश से—जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट छह पल्योपम यावत् इतने काल गमनागमन करता है । [प्रथम गमक]

४ सो चेव जहन्नकालट्ठितीएसु उववन्नो, एस चेव वत्तव्वया, नवर कालाएसेणं जहन्नेणं दो पलिओवमाइ, उक्कोसेण चत्तारि पलिओवमाइ; एवतियं० । [बीओ गमओ] ।

[४] यदि वह (असख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय- तिर्यञ्च), जघन्यकाल की स्थिति वाले सौधर्म देवो मे उत्पन्न हो, तो उसके सम्बन्ध मे भी यही वक्तव्यता है । विशेष यह है कि कालादेश से जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट चार पल्योपम यावत् इतने काल गमनागमन करता है । [द्वितीय गमक]

५. सो चेव उक्कोसकालट्ठितीएसु उववन्नो, जहन्नेण तिपलिओवम०, उक्कोसेण वि तिपलिओवम० । एस चेव वत्तव्वया, नवर ठिती जहन्नेण तिन्नि पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि तिन्नि पलिओवमाइ । सेसं तहेव । कालाएसेणं जहन्नेण छ पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि छप्पलिओवमाइं० । [तइओ गमओ] ।

[५] यदि वह (असख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च), उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सौधर्म देवो मे उत्पन्न हो तो वह जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सौधर्म देवो मे उत्पन्न होता है, इत्यादि वही पूर्वोक्त वक्तव्यता यहाँ कहना । विशेष यह है कि स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम । शेष पूर्ववत् । कालादेश से—जघन्य और उत्कृष्ट छह पल्योपम यावत् इतने काल गमनागमन करता है ।

६. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, जहन्नेणं पलिओवमट्ठितीएसु, उक्कोसेण वि पलिओवमट्ठितीएसु । एस चेव वत्तव्वया, नवर ओगाहणा जहन्नेण धणुपुहत्त, उक्कोसेण दो गाउयाइं । ठिती जहन्नेणं पलिओवमं, उक्कोसेण वि पलिओवम । सेसं तहेव । कालाएसेणं जहन्नेणं दो पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि दो पलिओवमाइं; एवतियं० । [४-६ गमगा] ।

[६] यदि वह (असख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और सौधर्म देवो मे उत्पन्न हो, जघन्य और उत्कृष्ट एक पल्योपम की स्थिति वाले सौधर्म देवो मे उत्पन्न होता है, इत्यादि सब वक्तव्यता पूर्वोक्त कथानुसार । विशेष इतना है कि अवगाहना जघन्य धनुषपृथक्त्व और उत्कृष्ट दो गाऊ । स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम की होती है । शेष पूर्ववत् । कालादेश से जघन्य और उत्कृष्ट दो पल्योपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है । [गमक ४-५-६]

७. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, आदिल्लगमगसरिसा तिन्नि गमगा नेयव्वा, नवरं ठिति कालादेसं च जाणेज्जा। [७-८-९ गमगा]।

[७] यदि वह (असख्येय सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) स्वय उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और सौधर्म देवो मे उत्पन्न हो, तो उसके अन्तिम तीन गमको (७-८-९) का कथन प्रथम के तीन गमको के समान जानना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति और कालादेश (भिन्न) जानना चाहिए। [गमक ७-८-९]

८. जदि संखेज्जवासाउयसन्निपंचेंदिय० ?

संखेज्जवासाउयस्स जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स तहेव नव वि गमा, नवरं ठिति संवेहं च जाणेज्जा। जाहे य अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ भवति ताहे तिसु वि गमएसु सम्मद्दिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छादिट्ठी। दो नाणा, दो अन्नाणा नियम। सेस त चेव।

[८ प्र] यदि वह सौधर्म देव, सख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से आकर उत्पन्न हो तो ? इत्यादि प्रश्न।

[८ उ] असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के समान ही इसके नौ ही गमक जानने चाहिए। किन्तु यहाँ स्थिति और सवेध (भिन्न) समझना चाहिए। जब वह स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो तो तीनो गमको मे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होता है, किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होता। इसमे दो ज्ञान या दो अज्ञान नियम से होते है। शेष पूर्ववत्।

विवेचन—स्थिति एवं अवगाहना आदि के विषय मे स्पष्टीकरण—(१) सौधर्म देवलोक मे जघन्य स्थिति पल्योपम से कम नही होती, इसलिए वहाँ उत्पन्न होने वाला जीव, जघन्य पल्योपम की तथा उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति मे उत्पन्न होता है। यद्यपि सौधर्म देवलोक मे इससे भी बहुत अधिक स्थिति है, तथापि यौगलिक तिर्यञ्च उत्कृष्ट तीन पल्योपम की आयु वाले ही होते है। अत. वे इससे अधिक देवायु का बन्ध नही करते। दो पल्योपम का जो कथन किया है, उसमे से एक पल्योपम तिर्यञ्चभव-सम्बन्धी और एक पल्योपम देवभव-सम्बन्धी समझना चाहिए तथा उत्कृष्ट ६ पल्योपम का जो कथन है, उसमे तीन पल्योपम तिर्यञ्चभव और तीन पल्योपम देवभव के समझने चाहिए। (२) जघन्य अवगाहना जो धनुषपृथक्त्व कही है, वह क्षुद्रकाय चौपाये (छोटे शरीर वाले चतुष्पद) की अपेक्षा समझनी चाहिए और उत्कृष्ट दो गाऊ की कही है, वह जिस काल और जिस क्षेत्र मे एक गाऊ के मनुष्य होते हैं, उस क्षेत्र के हाथी आदि की अपेक्षा समझनी चाहिए (३) सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के अधिकार मे मिश्रदृष्टि का निषेध किया है, क्योकि जघन्य स्थिति वाले में मिश्रदृष्टि नही होती। उत्कृष्ट स्थिति वालो मे तीनो दृष्टियाँ होती है। यही तथ्य ज्ञान और अज्ञान के विषय मे समझना चाहिए।[1] यौगलिक तिर्यञ्च और मनुष्य (जो सौधर्म देवो मे उत्पन्न होने वाले असख्येय वर्षायुष्क हैं), उनमे भी दो ही दृष्टियाँ पाई जाती है। किन्तु भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्क मे उत्पन्न होने वाले यौगलिक मनुष्य और तिर्यञ्च मे सिर्फ एक मिथ्यादृष्टि ही बताई है तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च एकमात्र वैमानिक देव की आयु का बन्ध करते हैं।

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५१
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ६, पृ ३१८१-३१८२

सौधर्म देव में उत्पन्न होनेवाले असंख्येय-संख्येय-वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों की प्ररूपणा

९. जदि मणुस्सेहिंतो उववज्जति ?

भेदो जहेव जोतिसिएसु उववज्जमाणस्स जाव—

[९ प्र] यदि वह (सौधर्मदेव) मनुष्यो से आकर उत्पन्न हो तो ?

[९ उ] ज्योतिष्क देवो में उत्पन्न होने वाले मनुष्यो की वक्तव्यता के समान यहाँ भी कहनी चाहिए।

१०. असखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से ण भंते ! जे भविए सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववज्जित्तए० ?

एव जहेव असंखेज्जवासाउयस्स सन्निपचेंदियतिरिक्खजोणियस्स सोहम्मे कप्पे उववज्जमाणस्स तहेव सत्त गमगा, नवर आदिल्लएसु दोसु गमएसु ओगाहणा जहन्नेणं गाउय, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं। ततियगमे जहन्नेण तिन्नि गाउयाइ, उक्कोसेण वि तिन्नि गाउयाइ। चउत्थगमए जहन्नेणं गाउय, उक्कोसेण वि गाउय। पच्छिमेसु गमएसु जहन्नेण तिन्नि गाउयाइ, उक्कोसेण वि तिन्नि गाउयाइं। सेस तहेव निरवसेस। [१-९ गमगा]।

[१० प्र] भगवन् ! असख्यात वर्ष की आयु वाला सज्ञी मनुष्य, जो सौधर्म कल्प मे देवरूप से उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले सौधर्मकल्प के देवो मे उत्पन्न होता है।

[१० उ] सौधर्मकल्प मे उत्पन्न होने वाले असख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के समान सातो ही गमक जानने चाहिए। विशेष यह है कि प्रथम के दो गमको मे अवगाहना जघन्य एक गाऊ और उत्कृष्ट तीन गाऊ होती है। तीसरे गमक मे जघन्य और उत्कृष्ट तीन गाऊ, चौथे गमक मे जघन्य और उत्कृष्ट एक गाऊ और अन्तिम तीन गमको मे जघन्य और उत्कृष्ट तीन गाऊ की अवगाहना होती है। शेष पूर्ववत्। [१-९ गमक]

११. जदि संखेज्जवासाउयसन्निमणुस्सेहिंतो० ?

एव सखेज्जवासाउयसन्निमणुस्साण जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणाणं तहेव नव गमगा भाणियव्वा, नवर सोहम्मदेवट्ठिति सवेहं च जाणेज्जा। सेस त चेव।

[११ प्र] यदि वह (सौधर्म देव) सख्यातवर्ष की आयु वाले सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होता है तो ? (इत्यादि प्रश्न)।

[११ उ] असुरकुमारो मे उत्पन्न होने वाले सख्यात वर्षायुष्क सज्ञी मनुष्यो के समान नौ गमक कहने चाहिये। विशेष यह है कि सौधर्म देव की स्थिति और सवेध (उससे भिन्न) समझना चाहिए।

विवेचन—सौधर्म देवों मे उत्पन्न मनुष्यो की वक्तव्यता का निष्कर्ष—सौधर्म देवो मे उत्पद्यमान मनुष्यो की वक्तव्यता इस प्रकार है—(१) वे सज्ञी मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है, असज्ञी

मनुष्यो से नही, सज्ञी मनुष्यो से भी असख्यात वर्ष एव सख्यात वर्ष दोनो प्रकार की आयु वालो से आकर उत्पन्न होते हैं।

अवगाहना-विषयक स्पष्टीकरण— पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के अधिकार मे प्रथम के दो गमको मे जघन्य अवगाहना धनुषपृथक्त्व और उत्कृष्ट छह गाऊ की कही है, किन्तु यहाँ मनुष्य के प्रकरण मे पहले और दूसरे गमक मे अवगाहना जघन्य एक गाऊ और उत्कृष्ट तीन गाऊ की कही है। तिर्यञ्च के तीसरे गमक मे जघन्य, उत्कृष्ट अवगाहना ६ गाऊ की कही है, किन्तु यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट ३ गाऊ की कही है। चौथे गमक मे तिर्यञ्च मे जघन्य धनुषपृथक्त्व और उत्कृष्ट दो गाऊ कही है जबकि यहाँ जघन्य और उत्कृष्ट एक गाऊ की अवगाहना कही है।

ईशान से सहस्रार देव तक मे उत्पन्न होनेवाले तिर्यञ्चों व मनुष्यों के उपपातादि वीस द्वारों की प्ररूपणा

१२. ईसाणा देवा ण भंते ! कओ० उववज्जति ?०

ईसाणदेवाणं एस चेव सोहम्मगदेवसरिसा वत्तव्वया, नवर असखेज्जवासाउयसन्निपचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स जेसु ठाणेसु सोहम्मे उववज्जमाणस्स पलिओवमठितीएसु ठाणेसु इहं सातिरेगं पलिओवम कायव्वं। चउत्थगमे ओगाहणा जहन्नेण धणुपुहत्त, उक्कोसेण सातिरेगाइ दो गाउयाइं। सेस तहेव।

[१२ प्र] भगवन्। ईशान देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?, इत्यादि प्रश्न।

[१२ उ] ईशानदेव की यह वक्तव्यता सौधर्म देवो के समान है। विशेष यह है कि सौधर्म देवो मे उत्पन्न होने वाले जिन स्थानो मे असख्यातवर्ष की आयु वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च की स्थिति एक पल्योपम की कही है, वहाँ सातिरेक पल्योपम की जाननी चाहिए। चतुर्थ गमक मे अवगाहना जघन्य धनुषपृथक्त्व, उत्कृष्ट सातिरेक दो गाऊ की होती है। शेष पूर्ववत्।

१३. असखेज्जवासाउयसन्निमणुसस्स वि तहेव ठिती जहा पचेंदियतिरिक्खजोणियस्स असखेज्जवासाउयस्स, ओगाहणा वि जेसु ठाणेसु गाउयं तेसु ठाणेसु इह सातिरेग गाउयं। सेसं तहेव।

[१३] असख्यात वर्ष की आयु वाले सज्ञी की स्थिति, असख्य वर्ष की आयु वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के समान जाननी चाहिए। अवगाहना जहा एक गाऊ की कही है वहाँ सातिरेक गाऊ की जानना। शेष पूर्ववत्।

१४. सखेज्जवासाउयाणं तिरिक्खजोणियाण मणूसाण य जहेव सोहम्मे उववज्जमाणाणं तहेव निरवसेस णव वि गमगा, नवरं ईसाणे ठिंति सवेहं च जाणेज्जा।

[१४] सौधर्म देवो मे उत्पन्न होने वाले सख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्चो और मनुष्यों के विषय मे जो नौ गमक कहे है, वे ही ईशान देव के विषय मे समझने चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति और सवेध ईशान देवो के जानने चाहिये।

१ भगवतीसूत्र (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भाग १५, पृ ४७६-४७७

२ भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ६, पृ ३१८२

१५. सणंकुमारगदेवा णं भंते ! कतोहिंतो उवव० ?

उववातो जहा सक्करप्पभपुढविनेरइयाणं जाव ।

[१५ प्र.] भगवन् ! सनत्कुमारदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१५ उ.] इनका उपपात शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के समान जानना चाहिए, यावत्

१६. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निपचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए सणंकुमारदेवेसु उववज्जित्तए० ?

अवसेसा परिमाणादीया भवाएसपज्जवसाणा सच्चेव वत्तव्वया भाणियव्वा जहा सोहम्मे उववज्जमाणस्स, नवरं सणकुमारट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा । जाहे य अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ भवति ताहे तिसु वि गमएसु पंच लेस्साओ आदिल्लाओ कायव्वाओ । सेसं त चेव ।

[१६ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, जो सनत्कुमार देवो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले सनत्कुमार देवो मे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१६ उ.] परिमाण से लेकर भवादेश तक की सभी वक्तव्यता, सौधर्मकल्प मे उत्पन्न होने वाले (सख्येय वर्षायुष्क सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) के समान कहनी चाहिए । परन्तु सनत्कुमार की स्थिति और सवेध (उससे भिन्न) जानना । तब वह स्वय जघन्य काल की स्थिति वाला होता है, तब तीनो ही गमको मे प्रथम की पाच लेश्याये होती है । शेष पूर्ववत् ।

१७. जवि मणुस्सेहिंतो उवव० ?

मणुस्साण जहेव सक्करप्पभाए उववज्जमाणाणं तहेव णव वि गमगा भाणियव्वा, नवरं सणकुमारट्ठिति संवेहं च जाणेज्जा ।

[१७ प्र.] यदि (सनत्कुमार देव) मनुष्यो से आकर उत्पन्न हो तो ? इत्यादि प्रश्न ।

[१७ उ.] शर्कराप्रभा मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो के समान यहाँ भी नौ गमक कहने चाहिए । विशेष यह है कि सनत्कुमार देवो की स्थिति और सवेध (उसस भिन्न) कहना चाहिए ।

१८. माहिंदगदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जति० ?

जहा सणकुमारगदेवाण वत्तव्वया तहा माहिंदगदेवाण वि भाणियव्वा, नवरं माहिंदगदेवाण ठिती सातिरेगा भाणियव्वा सा चेव ।

[१८ प्र.] भगवन् ! माहेन्द्र देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१८ उ.] जिस प्रकार सनत्कुमार देव की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार माहेन्द्र देव की भी जाननी चाहिए । किन्तु माहेन्द्र देव की स्थिति सनत्कुमार देव से सातिरेक कहनी चाहिए ।

१९. एवं बंभलोगदेवाण वि वत्तव्वया, नवरं बंभलोगट्ठिति संवेहं जाणेज्जा । एव जाव सहस्सारो, नवर ठिति संवेहं च जाणेज्जा ।

[१९] इसी प्रकार ब्रह्मलोक देवो की भी वक्तव्यता जाननी चाहिए। किन्तु ब्रह्मलोक देव की स्थिति और सवेध (भिन्न) जानना चाहिए। इसी प्रकार सहस्रारदेव तक पूर्ववत् वक्तव्यता जाननी चाहिए। किन्तु स्थिति और सवेध अपना-अपना जानना चाहिए।

२०. लंतगाईण जहन्नकालट्ठितीयस्स तिरिक्खजोणियस्स तिसु वि गमएसु छप्पि लेस्साओ कायव्वाओ। संघयणाइ बंभलोग-लतएसु पच आदिल्लगाणि, महासुक्क-सहस्सारेसु चत्तारि, तिरिक्खजोणियाण वि मणुस्साण वि। सेस त चेव।

[२०] लान्तक आदि (लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार) देवो मे उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के तीनो ही गमको मे छहो लेश्याए कहनी चाहिए। ब्रह्मलोक और लान्तक देवो मे प्रथम के पाच सहनन, महाशुक्र और सहस्रार मे आदि के चार सहनन तथा तिर्यञ्चयोनिको तथा मनुष्यो मे भी यही जानना चाहिए। शेष पूर्ववत्।

विवेचन—लेश्या-संहननादि के विषय मे स्पष्टीकरण—(१) सनत्कुमार देवलोक मे उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति वाले सज्ञी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च मे प्रथम की पाच लेश्याए कही है, क्योकि सनत्कुमार देवलोक मे उत्पन्न होने वाला जघन्य स्थिति का तिर्यञ्च अपनी जघन्य स्थिति के कारण कृष्णादि चार लेश्याओ मे से किसी एक लेश्या मे परिणत होकर मरण के समय मे पद्मलेश्या को प्राप्त कर मरता है, तब उस देवलोक मे उत्पन्न होता है, क्योकि अगले भव की लेश्या मे परिणत हो कर ही जीव परभव मे जाता है, ऐसा सैद्धान्तिक नियम है। अत इसके पाच लेश्याए होती हैं। इसी प्रकार माहेन्द्र एव ब्रह्मलोक के विषय मे भी समझना चाहिए। (२) देवलोक मे उत्पन्न होने वाले के सहननो के विषय मे यह नियम है—

> **छेवट्टेण उ गम्मइ** चत्तारि उ जाव आइमा कप्पा।
> वड्ढेज्ज कप्पजुयल सघयणे कीलियाईए ॥

अर्थात्—प्रथम के चार देवलोको मे छह सहनन वाला जाता है। पाँचवे और छठे मे पाच संहनन वाला, सातवे, आठवे मे चार सहनन वाला, नौवे, दसवे, ग्यारहवे और बारहवे मे तीन सहनन वाला, नौ ग्रैवेयक मे दो सहनन वाला और पाँच अनुत्तर विमान मे एक सहनन वाला जाता है।[1]

आनत से सर्वार्थसिद्ध तक के देवों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के उपपात-परिमाणादि बीस द्वारो की प्ररूपणा

२१. आणयदेवा ण भते ! कओहितो उववज्जति० ?

उववाओ जहा सहस्सारदेवाणं, णवरं तिरिक्खजोणिया खोडेयव्वा जाव—

[२१ प्र.] भगवन् ! आनतदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५१

२. (ख) भगवनी (हिन्दी विवेचन) भा ६, पृ ३१९०

[२१ उ] (गौतम !) सहस्रार देवो के समान यहाँ उपपात (उत्पत्ति) कहना चाहिए। विशेष यह है कि यहाँ तिर्यञ्च की उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए। यावत्–

२२. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्से णं भंते ! जे भविए आणयदेवेसु उववज्जित्तए० ?

मणुस्साण य वत्तव्वया जहेव सहस्सारे उववज्जमाणाणं, णवरं तिन्नि संघयणाणि। सेसं तहेव, जाव अणुबंधो। भवाएसेणं जहन्नेणं तिण्णि भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं सत्त भवग्गहणाइं। कालाएसेणं जहन्नेणं अट्ठारस सागरोवमाइं दोहिं वासपुहत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं सत्तावण्णं सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइ; एवतियं०। एवं सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा, नवरं ठिंति संवेहं च जाणेज्जा। सेसं तहेव।

[२२ प्र] भगवन् ! सख्यात वर्ष की आयु वाला पर्याप्त सज्ञी मनुष्य, जो आनतदेवो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले आनतदेवो मे उत्पन्न होता है ?

[२२ उ] (गौतम !) सहस्रार देवो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो की वक्तव्यता के समान यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इसमे प्रथम के तीन सहनन होते हैं। शेष पूर्ववत् अनुबन्ध-पर्यन्त। भवादेश से—जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट सात भव ग्रहण करता है। कालादेश से—जघन्य दो वर्षपृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक सत्तावन सागरोपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है।) इसी प्रकार शेष आठ गमक भी कहने चाहिए। परन्तु स्थिति और सवेध (अपना-अपना पृथक्-पृथक्) जानना चाहिए। शेष पूर्ववत्। [गमक १ से ९ तक]

२३. एव जाव अच्चुयदेवा, नवर ठिंति संवेहं च जाणेज्जा। चउसु वि संघयणा तिन्नि आणयादिसु।

[२३] इसी प्रकार यावत् अच्युत देव-पर्यन्त जानना चाहिए। किन्तु स्थिति और सवेध (भिन्न-भिन्न) कहना चाहिए। आनतादि चार देवलोको मे प्रथम के तीन सहनन वाले उत्पन्न होते हैं।

२४. गेवेज्जगदेवा णं भंते ! कओ० उववज्जति ?

एस चेव वत्तव्वया, नवर संघयणा दो। ठिंति संवेह च जाणेज्जा।

[२४ प्र] भगवन् ! ग्रैवेयकदेव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[२४ उ.] यही (पूर्वोक्त) वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष—इनमे प्रथम के दो सहनन वाले उत्पन्न होते है तथा स्थिति और सवेध, (इनका अपना-अपना) समझना चाहिए।

२५. विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?०

एस चेव वत्तव्वता निरवसेसा जाव अणुबंधो त्ति, नवरं पढमं संघयणं, सेसं तहेव। भवाएसेणं जहन्नेणं तिन्नि भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं पंच भवग्गहणाइं। कालाएसेणं जहन्नेणं एक्कत्तीसं सागरोवमाइ दोहिं वासपुहत्तेहिं अब्भहियाइ, उक्कोसेणं छावट्ठि सागरोवमाइ तिहिं पुव्वकोडीहिं

अब्भहियाइं; एवतियं० । एवं सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा, नवरं ठिति संवेहं च जाणेज्जा । मणूसलद्धी नवसु वि गमएसु जहा गेवेज्जेसु उववज्जमाणस्स, नवर पढमसंघयणं ।

[२५ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव, कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२५ उ] पूर्वोक्त सारी वक्तव्यता अनुबन्ध तक जानना । विशेष—इनमे प्रथम सहनन वाले उत्पन्न होते हैं । शेष पूर्ववत् । भवादेश से—जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट पाच भव तथा कालादेश से—जघन्य दो वर्षपृथक्त्व-अधिक ३१ सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक ६६ सागरोपम; यावत् इतने काल गमनागमन करता है। शेष आठ गमक भी इसी प्रकार कहने चाहिए । विशेष यह है कि इनमे स्थिति और सवेध (अपना-अपना भिन्न-भिन्न) जान लेना चाहिए । मनुष्य के नौ ही गमको मे (उत्पत्ति आदि), ग्रैवेयक मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यो के गमको के समान कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि विजय आदि (चारो वैमानिक देवो) मे प्रथम सहनन वाला ही उत्पन्न होता है ।

२६. सव्वट्ठसिद्धगदेवा णं भंते ! कओ० उववज्जंति ?०

उववातो जहेव विजयाईणं जाव –

[२६ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध देव कहाँ से आकर उत्पन्न होता है ?

[२६ उ] इसका उपपात (उत्पत्ति) आदि विजय आदि के समान है । यावत्

२७. से णं भंते ! केवतिकालट्ठितीएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण तेत्तीससागरोवमट्ठिति० उक्कोसेण वि तेत्तीससागरोवमट्ठितीएसु उवव० । अवसेसा जहा विजयादिसु उववज्जताणं, नवरं भवाएसेणं तिन्नि भवग्गहणाइ; कालाएसेणं जहन्नेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं दोहिं वासपुहत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवतियं० । [पढमो गमओ] ।

[२७ प्र] भगवन् ! वे (सज्ञी मनुष्य) कितने काल की स्थिति वाले सर्वार्थसिद्ध देवो मे उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२७ उ] गौतम ! वे जघन्य और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले सर्वार्थसिद्ध देवो मे उत्पन्न होते हैं । शेष वक्तव्यता विजयादि देवो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य के समान है । विशेषता यह है कि भवादेश से –तीन भवो का ग्रहण होता है, कालादेश से—जघन्य दो वर्षपृथक्त्व-अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम, यावत् इतने काल गमनागमन करता है । [प्रथम गमक]

२८. सो चेव अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ जाओ, एस चेव वत्तव्वया, नवरं ओगाहणा-ठितीओ रयणिपुहत्त-वासपुहत्ताणि । सेसं तहेव । संवेह च जाणेज्जा । [बीओ गमओ] ।

[२८] यदि वह (सज्ञी मनुष्य) स्वय जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और सर्वार्थसिद्ध देवो मे उत्पन्न हो, तो भी यही पूर्वोक्त वक्तव्यता जाननी चाहिए । विशेषता यह है कि इसकी अवगाहना

रत्निपृथक्त्व और स्थिति वर्षपृथक्त्व होती है । शेष पूर्ववत् । संवेध (इसका अपना) जानना चाहिए ।
[द्वितीय गमक]

२९. सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठितीओ जाओ, एस चेव वत्तव्वता, नवरं ओगाहणा जहन्नेणं पंच धणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंच धणुसयाइं । ठिती जहन्नेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी । सेसं तहेव जाव भवाएसो त्ति । कालाएसेणं जहन्नेण तेत्तीसं सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तेत्तीस सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं; एवतियं कालं सेवेज्जा, एवतियं कालं गतिरागतिं करेज्जा । [तइओ गमओ] । एते तिन्नि गमगा सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति भगवं गोयमे जाव विहरइ ।

।। चउवीसतिमे सए : चउवीसतिमो उद्देसो समत्तो ।। २४-२४ ।।

।। समत्तं च चउवीसतिमं सयं ।। २४ ।।

[२९] यदि वह (सञ्ज्ञी मनुष्य) स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो यहाँ पूर्वोक्त वक्तव्यता जाननी चाहिए । किन्तु इसकी अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष है । इसकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है । शेष सब पूर्ववत् यावत् भवादेश तक । काल की अपेक्षा से—जघन्य दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट भी दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम, इतना काल सेवन (यापन) करता है और इतने काल तक गमनागमन करता है । [तीसरा गमक] सर्वार्थसिद्ध देवों में ये तीन ही गमक होते हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—आनत से सर्वार्थसिद्धि तक गमकों की प्ररूपणा—(१) आनतदेव तिर्यञ्चों में आकर उत्पन्न नहीं होता । (२) विजय आदि जघन्य तीन और उत्कृष्ट सात भव ग्रहण करते हैं । आनतादि देव मनुष्य से आकर ही उत्पन्न होते हैं । वहाँ से च्यवकर भी मनुष्य गति में आते हैं । इस प्रकार जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट आनत से अच्युत एवं ग्रैवेयक तक ७ भव करता है, विजयादि में जघन्य ३ और उत्कृष्ट ५ भव ग्रहण करता है तथा सर्वार्थसिद्ध देव में तीन भव ग्रहण करता है । (२) **आनतादि का संवेध** - आनत से अच्युत देव तक में सञ्ज्ञी मनुष्य के ४ भवसम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति चार पूर्वकोटि और आनत देव की तीन भव सम्बन्धी उत्कृष्ट स्थिति ५७ सागरोपम की होती है । आनत देव का उत्कृष्ट संवेध चार पूर्वकोटि अधिक ५७ सागरोपम का होता है । इसी प्रकार आगे के देवलोकों की स्थिति का विचार कर संवेध जानना चाहिए ।[1]

।। चौवीसवाँ शतक : चौवीसवाँ उद्देशक समाप्त ।।

।। चौवीसवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ८५१

पंचवीसइमं सयं : पच्चीसवाँ शतक

प्राथमिक

* भगवती सूत्र के पच्चीसवे शतक के बारह उद्देशक है। जिनके नाम इस प्रकार है—(१) लेश्या, (२) द्रव्य, (३) सस्थान, (४) युग्म, (५) पर्यव, (६) निर्ग्रन्थ, (७) श्रमण, (८) ओघ, (९) भव्य, (१०) अभव्य, (११) सम्यक्त्वी और (१२) मिथ्यात्वी।

* मनुष्य चेतनावान् है। वह अनन्त ज्ञान-दर्शन का धनी है, फिर भी वह स्वय को अज्ञानग्रस्त एव हीन मानता है। वह अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्मा होते हुए भी स्वय को शक्तिहीन समझता है। वह स्वभावत वीतराग और परम आत्मा होते हुए भी स्वय को राग-द्वेष से लिप्त, कषाययुक्त और अपरम आत्मा मानता है। वह अपनी शक्तियो एव उपलब्धियो से अपरिचित है। असीम और अनन्त होते हुए भी स्वय को ससीम और सान्त समझता है। कौन-से ऐसे बाधक तत्त्व हैं, जो साधक की शक्ति और उपलब्धि को सीमित कर देते है ? कौन-से ऐसे बाधक तत्त्व हैं, जो शरीर के भीतर बैठे हुए अनन्त चैतन्य को प्रकट नही होने देते ? आत्मा की शुद्धता-उज्ज्वलता तथा परमात्मसम्पन्नता को रोके हुए है ? तथा किन तत्त्वो ने उसे मोक्ष-प्राप्ति के लक्ष्य से दूर भटका दिया है और ससार के जन्म-मरण के बन्धनो मे उसे बाध रखा है ? उनसे कैसे छुटकारा मिल सकता है ? और कैसे साधक अपने चरम लक्ष्य—मोक्ष को प्राप्त कर सकता है ? आत्मा को उज्ज्वल, शुद्ध और कर्ममुक्त बना सकता है ?

* ये और इन्ही प्रश्नो का समाधान इस शतक मे निहित है। **प्रथम उद्देशक** मे लेश्याओ का प्रतिपादन किया है, जो कषाय से अनुरजित होने के कारण मनुष्य को लक्ष्य से भटका देती है, ससार-सागर से पार होने मे बाधक बनती है। यद्यपि आत्मा अपने आप मे परम शुद्ध है, तथापि लेश्या, चाहे वह शुक्ललेश्या ही क्यो न हो, जब तक रहती है, तब तक वह मोक्ष को प्राप्त नही कर सकता, वह ससारी बना रहता है। इसलिए इसी उद्देशक मे ससार-समापन्नक जीवो की सूची दे दी है, ताकि मुमुक्षु जीव यह समझ सके कि जब तक लेश्या, योग आदि है, तब तक वह ससारी ही कहलाएगा, साथ ही पन्द्रह प्रकार के योगो का तारतम्य एव अल्पबहुत्व बताया गया है, ताकि साधक अपने योगो का नापतौल कर सके। इस पाठ से यह भी ध्वनित कर दिया है कि साधक अपनी आत्मशक्तियो का विकास कर ले तो योगो के कम्पनो के प्रभाव को रोक सकता है।

* **दूसरे उद्देशक** मे द्रव्यो की चर्चा की है। मनुष्य जीव द्रव्य मे है और चेतनाहीन द्रव्य अजीव है। इनमे किसकी सख्या अधिक है ? कौन किसको प्रभावित करता है ? अथवा जीव द्रव्य अजीव द्रव्यो के परिभोग मे आते है या अजीव द्रव्य जीव द्रव्य के परिभोग मे आते है ? इसका

रहस्य खोलते हुए इस उद्देशक मे शास्त्रकार ने जीव की शक्ति को अनन्त और प्रबल बताते हुए कहा है कि जीव द्रव्य अजीव द्रव्य के परिभोग में नही आते हैं, अजीव द्रव्य ही जीव द्रव्य के परिभोग मे आते हैं। फिर यह प्रश्न भी उठाया गया है कि असख्यातप्रदेशात्मक लोकाकाश मे जीव और अजीव रूप अनन्त द्रव्य कैसे समा सकते हैं ? साथ ही यह भी बताया गया है कि जीव जिस आकाशप्रदेश मे रहा हुआ है, उसी क्षेत्र के अन्दर रहे हुए पुद्गल स्थितद्रव्य है, उससे बाहर के क्षेत्र मे रहे हुए पुद्गल अस्थितद्रव्य हैं। उन्हे जीव वहाँ से खीच कर ग्रहण करता है द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव से भी तथा वह (जीव) पाच शरीर, पाच इन्द्रिय, तीन योग और श्वासोच्छ्वास, इन चौदह के रूप मे यथायोग्य ग्रहण भी करता है। इन्ही से फिर कर्मबन्ध और उनसे जन्म-मरण-परम्परा को बढाता है। साधक को इनसे सावधान रहने का सकेत किया गया है।

* **तीसरे उद्देशक** मे बताया गया है कि जिस प्रकार जीव के छह सस्थान होते है, उसी प्रकार अजीव द्रव्य के भी परिमण्डल आदि छह सस्थान होते है। उनका अल्पबहुत्व एव सख्यापरिमाण भी यहाँ बताया है तथा रत्नप्रभादि पृथ्वियो मे कौन से सस्थान कितने हैं ? कौन-सा सस्थान कितने प्रदेश का तथा कितने प्रदेशो मे अवगाढ है ? वे कृतयुग्म है या त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योजरूप हैं ? अन्त मे लोकाकाश और अलोकाकाश की श्रेणियो की चर्चा की गई है। साथ ही जीवो और पुद्गलो की अनुश्रेणि गति और विश्रेणि गति का प्रतिपादन किया गया है।

इसके पश्चात इस उद्देशक मे इस प्रकार के सूक्ष्म सैद्धान्तिक ज्ञान के प्रदाता गणिपिटक (द्वादशाग) का भी उल्लेख किया है, जिससे साधक सूक्ष्म सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त कर सके। अन्त मे चारो गतियो के तथा सिद्ध गति के जीवो के एव सइन्द्रिय, एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय एव अनिन्द्रिय जीवो के तथा जीवो और पुद्गलो के अल्प-बहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

इस प्रकार के सूक्ष्म सैद्धान्तिक ज्ञान का प्रयोजन यह है कि साधक आत्मा की व्यापकता, अनन्त शक्तिमत्ता एव अवगाहन-क्षमता आदि का जान सके तथा आयु आदि कर्मो के बन्ध से बच सके।

* **चतुर्थ उद्देशक** मे नैरयिक से लेकर वैमानिको तक चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे कृतयुग्म आदि की चर्चा करके फिर धर्मास्तिकाय आदि षट्द्रव्यो मे भी उसी को चर्चा की है। तत्पश्चात् द्रव्यार्थ से और प्रदेशार्थ से सभी जीवो के कृतयुग्मादि की, कृतयुग्मप्रदेशावगाढ आदि की तथा कृतयुग्मादि समय की स्थिति की तथा आत्मप्रदेशो और शरीरप्रदेशो की अपेक्षा से कृतयुग्मादि की प्ररूपणा की है। फिर मतिज्ञान आदि पाच ज्ञानो के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म आदि की प्ररूपणा की है।

इसके पश्चात् जीवो की सकम्पता-निष्कम्पता तथा देशकम्पकता, सर्वकम्पकता की चर्चा की गई है तथा परमाणु पुद्गल, एकप्रदेशावगाढ, एकसमयस्थितिक तथा एकगुण काले आदि से लेकर सख्यात, असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है, जो मुमुक्षु आत्माओ के लिए श्रद्धापूर्वक ज्ञेय है। एक परमाणु से अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध तक के

कृतयुग्मादि की पूर्ववत् चर्चा की गई है। परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक सार्द्ध-अनर्द्ध की भी सूक्ष्म चर्चा है। जीवो के समान परमाणु आदि की सकम्पता-निष्कम्पता तथा कियत्काल-स्थायिता, कियत्काल का अन्तर एव उनकी सकम्पता, निष्कम्पता व अल्पबहुत्व का निरूपण भी किया गया है। अन्त मे धर्मास्तिकाय से लेकर जीवास्तिकाय तक के मध्यप्रदेशो की भी चर्चा है।

* **पंचम उद्देशक** मे जीव और अजीव के पर्यवो की प्ररूपणा से प्रारम्भ करके आवलिका से लेकर पुद्गल-परिवर्तन तक के कालसम्बन्धी परिमाण की चर्चा की है। इस चर्चा का उद्देश्य यही सभवित है कि मुमुक्षु साधक अपने अतीत के अनन्तकालिक भवो के लक्ष्यहीन अज्ञानग्रस्त जीवन पर विचार करके भविष्यत्काल को सुधार सके, उज्ज्वल बना सके। इस उद्देशक के अन्त मे द्विविध निगोद जीवो तक औदयिक आदि पाच भावो का निरूपण भी किया गया है।

* **छठे उद्देशक** मे मोक्षलक्ष्यी पचविध निर्ग्रन्थ साधक के मार्ग मे कौन-कौन से अवरोध या बाधक तत्त्व आ जाते है, जो उसकी मोक्ष की ओर की गति को मन्द कर देते है? किन साधक तत्त्वो से वह गति बढ सकती है? इस पर ३६ द्वारो के माध्यम से विस्तृत रूप से निरूपण किया गया हैं।

  वस्तुत: पाचो प्रकार के निर्ग्रन्थो के आध्यात्मिक विकास के लिए यह तत्त्वज्ञान बहुत ही उपयोगी एव अनिवार्य है।

* **सातवें उद्देशक** मे सामायिक से लेकर यथाख्यात तक पाच प्रकार के सयतो का यथार्थ स्वरूप प्रथम प्रज्ञापनद्वार के माध्यम से बताकर उनके मोक्षमार्ग मे बाधक-साधक तत्त्वो का भी पूर्वोक्त उद्देशक मे कथित ३६ द्वारो के माध्यम से सागोपाग निरूपण किया गया है। इसके पश्चात् पचविध निर्ग्रन्थो तथा पचविध सयतो को सयम मे लगे हुए या लगने वाले दोषो की शुद्धि करके आत्मा को विशुद्ध, उज्ज्वल, स्वरूपस्थ, निजगुणलीन बनाने हेतु प्रतिसेवना, आलोचनादोष, आलोचना-योग्य, आलोचना (सुनकर प्रायश्चित्त) देने योग्य गुरु, समाचारी प्रायश्चित्त और बाह्य-आभ्यन्तर द्वादशविध तप, इस सात विषयो का विशद वर्णन किया गया है।

* **आठवें उद्देशक** मे जीवो के आगामी भव मे उत्पन्न होने का प्रकार तथा उनकी शीघ्र गति एव गतिविषय की चर्चा की गई है। जीव परभव की आयु किस प्रकार बाधते है? जीवो की गति क्यो और कैसे होती है? तथा जीव आत्मऋद्धि से, स्वकर्मो से, आत्मप्रयोग (व्यापार से उत्पन्न होते है या परऋद्धि, परकर्म या पर-प्रयोग से? इसकी कर्मसिद्धान्तानुसार प्ररूपणा की गई है।

* **नौवें उद्देशक** मे भी इसी प्रकार भवसिद्धिक (नैरयिको से वैमानिको तक के) जीवो की उत्पत्ति, शीघ्रगति, गति-विषय, गति-कारण, आयुबन्ध, स्वऋद्धि-स्वकर्म-स्वप्रयोग से उत्पत्ति आदि की प्ररूपणा की गई है।

* **दशवें उद्देशक** मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की उत्पत्ति आदि के विषय मे पूर्ववत् प्ररूपणा की गई है।

* **ग्यारहवें उद्देशक** मे सम्यग्दृष्टि नैरयिको से वैमानिको तक के जीवो की (एकेन्द्रिय को छोड़-कर) उत्पत्ति आदि की पूर्ववत् चर्चा की है।

* **बारहवें उद्देशक** मे मिथ्यादृष्टि नैरयिक आदि चौबीस दण्डकवर्ती जीवो की उत्पत्ति आदि की पूर्ववत् चर्चा की है।

इन उद्देशको मे प्रतिपादित तत्त्वज्ञान से मुमुक्षु साधक कर्मसिद्धान्त पर सम्यक् श्रद्धा करके जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने के लिए स्वकृत कर्मों को स्वय काटने के लिए पुरुषार्थ करता है।

कुल मिलाकर पच्चीसवे शतक के बारह उद्देशको मे आत्मिक विकास मे साधक-बाधक तत्त्वो की गहन चर्चा है।

पंचवीसइमं सयं

पच्चीसवाँ शतक

पच्चीसवें शतक के उद्देशकों का नाम निरूपण

१ लेसा य १ दव्व २ सठाण ३ जम्म ४ पज्जव ५ नियठ ६ समणा य ७ ।
ओहे ८ भवियाऽभविए ९-१० सम्मा ११ मिच्छे य १२ उद्देसा ।।१।।

[१ गाथार्थ] पच्चीसवे शतक के ये बारह उद्देशक हैं—(१) लेश्या, (२) द्रव्य, (३) सस्थान, (४) युग्म, (५) पर्यव, (६) निर्ग्रन्थ, (७) श्रमण, (८) ओघ. (९) भव्य, (१०) अभव्य, (११) सम्यग्दृष्टि और (१२) मिथ्यादृष्टि ।

विवेचन--उद्देशको का विशेषार्थ—पच्चीसवे शतक मे बारह उद्देशक है, जिनके विशेषार्थ इस प्रकार हैं—(१) **लेश्या**—लेश्या आदि के सम्बन्ध मे प्रथम उद्देशक है । (२) **द्रव्य**--जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य से सम्बन्धित द्वितीय उद्देशक है । (३) **सस्थान**—परिमण्डल, वृत्त आदि छह सस्थानो के विषय मे तृतीय उद्देशक है । (४) **युग्म**--कृतयुग्म आदि चार युग्मो (राशियो) के विषय मे चतुर्थ उद्देशक है । (५) **पर्यव**—जीव-अजीव-पर्यव आदि से सम्बद्ध विवेचन वाला पचम उद्देशक है । (६) **निर्ग्रन्थ**—पुलाकादि पाच प्रकार के निर्ग्रन्थो का ३६ द्वारो के माध्यम से विवेचनयुक्त छठा उद्देशक है । (७) **श्रमण**—सामायिक आदि पाच प्रकार के सयतो का विविध पहलुओ से विवरणयुक्त सप्तम उद्देशक है । (८) **ओघ**—सामान्य नारकादि जीवो की उत्पत्ति से सम्बन्धित आठवाँ उद्देशक है । (९) **भव्य**—चातुर्गतिक भव्य जीवो की उत्पत्ति आदि से सम्बद्ध नौवाँ उद्देशक है । (१०) **अभव्य**-अभव्य जीवो की उत्पत्ति-सम्बन्धी दसवाँ उद्देशक है । (११) **सम्यग्दृष्टि**—चातुर्गतिक सम्यग्दृष्टि जीवो की उत्पत्ति से सम्बन्धित ११वाँ उद्देशक है और (१२) **मिथ्यादृष्टि**—चातुर्गतिक मिथ्यादृष्टि जीवो की उत्पत्ति सम्बन्धी बारहवाँ उद्देशक है । इस प्रकार पच्चीसवें शतक मे बारह उद्देशको की वक्तव्यता है ।[1]

---

१. (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मूलपाठ-टिप्पण) पृ ९६९
(ख) श्रीमद्भगवतीसूत्र, पचम अंग, चतुर्थ खण्ड (गुजराती अनुवाद), पृ. १८९

पढमो उद्देसओ : लेसा

प्रथम उद्देशक : लेश्या आदि का वर्णन

लेश्याओं के भेद, अल्पबहुत्व आदि का अतिदेशपूर्वक निरूपण

२ तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव एवं वयासी—

[२] उस काल और उस समय मे श्री गौतम स्वामी ने राजगृह मे यावत् इस प्रकार पूछा—

३. कति ण भंते ! लेस्साओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेसाओ पन्नत्ताओ, त जहा—कण्हलेस्सा जहा पढमसए बितिउद्देसए (स० १ उ० २ सु० १३) तहेव लेस्साविभागो अप्पाबहुग च जाव चउव्विहाण देवाण चउव्विहाणं देवीणं मीसग अप्पाबहुग ति ।

[३ प्र] भगवन् ! लेश्याएँ कितनी कही गई हैं ?

[३ उ] गौतम ! छह लेश्याएँ कही गई हैं। यथा कृष्णलेश्या आदि। शेष वर्णन इसी शास्त्र के प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक (श १, उ २, सू १३) मे जिस प्रकार किया गया है, तदनुसार यहाँ भी लेश्याओ का विभाग, उनका अल्पबहुत्व, यावत् चार प्रकार के देव और चार प्रकार की देवियो के मिश्रित (सम्मिलित) अल्पबहुत्व-पर्यन्त जानना चाहिए।

विवेचन—लेश्याओ का पुनः वर्णन क्यों—प्रश्न होता है कि प्रथम शतक मे लेश्याओ के स्वरूप, प्रकार आदि का वर्णन किया गया है, फिर इस शतक के प्रथम उद्देशक मे उसका पुन वर्णन क्यो किया गया है ? वृत्तिकार समाधान करते हैं कि अन्य प्रकरण के साथ इस (लेश्या) का सम्बन्ध होने से उस प्रकरण के साथ लेश्या और उनके अल्पबहुत्व का कथन पुन किया गया है। प्रज्ञापनासूत्र मे भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।[1]

संसारी जीवों के चौदह भेदों का निरूपण

४. कतिविधा ण भंते ! संसारसमावन्नगा जीवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चोद्दसविहा संसारसमावन्नगा जीवा पन्नत्ता, तं जहा—सुहुमा अपज्जत्तगा १ सुहुमा पज्जत्तगा २ बायरा अपज्जत्तगा ३ बादरा पज्जत्तगा ४ बेइंदिया अपज्जत्तगा ५ बेइंदिया पज्जत्तगा ६ एवं तेइंदिया ७-८ एव चउरिंदिया ९-१० असन्निपंचेंदिया अपज्जत्तगा ११ असन्निपंचेंदिया पज्जत्तगा १२ सन्निपंचिंदिया अपज्जत्तगा १३ सन्निपंचिंदिया पज्जत्तगा १४ ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५२

(ख) श्रीमद्भगवतीसूत्र खण्ड १, शतक १, उ २, सूत्र १३, पृ १०४

(ग) प्रज्ञापनासूत्र पद १७, उ २, पत्र ३४३-३४९

[४ प्र] भगवन् ! ससारसमापन्नक (ससारी) जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[४ उ] गौतम ! (ससारसमापन्नक जीव) चौदह प्रकार के कहे गए है। यथा—(१) सूक्ष्म अपर्याप्तक, (२) सूक्ष्म पर्याप्तक, (३) बादर अपर्याप्तक, (४) बादर पर्याप्तक, (५) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, (६) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, (७) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक, (८) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, (९-१०) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक-पर्याप्तक, (११) असज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्तक, (१२) असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक, (१३) सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्तक और (१४) सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तक ।

विवेचन—सूक्ष्म और बादर का स्वरूप और विशेषार्थ—सूक्ष्म—सूक्ष्मनामकर्म के उदय से जिन जीवो का शरीर अत्यन्त सूक्ष्म हो, अर्थात् असख्य शरीर एकत्रित होने पर भी जो चक्षुरिन्द्रिय का विषय न हो, उसे सूक्ष्मशरीर कहते है। **बादर**—बादरनामकर्म के उदय से जिन जीवो का शरीर बादर अर्थात् स्थूल हो, उन्हे बादर कहते हैं। **पर्याप्तक-अपर्याप्तक-लक्षण--पर्याप्तक**—जिस जीव मे जितनी पर्याप्तियाँ सम्भव है, जब वह उतनी पर्याप्तियाँ पूर्ण कर लेता है, तब उसे पर्याप्तक[१] कहते है। स्पष्ट शब्दो मे कहे तो एकेन्द्रिय (पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय) जीव आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास—इन चार पर्याप्तियो को पूर्ण कर लेने पर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय उक्त चार पर्याप्तियाँ और पाचवी भाषापर्याप्ति पूरी कर लेने पर तथा सज्ञी-पचेन्द्रिय उपर्युक्त पाच पर्याप्तियाँ तथा छठी मनपर्याप्ति पूर्ण कर लेने पर 'पर्याप्तक' कहलाते है। जिस जीव की पर्याप्तियाँ पूरी न हो पाई हो, अथवा जो स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूरी होने से पहले ही मरने वाला हो, वह अपर्याप्तक कहलाता है। अपर्याप्त अवस्था मे मरने वाला जीव तीन पर्याप्तियाँ पूर्ण करके चौथी श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति अधूरी रहने पर ही मरता है, पहले नही, क्योकि सभी सासारिक जीव आगामी भव की आयु बाध कर ही मृत्यु प्राप्त करते हैं तथा आयुष्य का बन्ध भी उन्ही जीवो के होता है, जिन्होने आहार, शरीर और इन्द्रिय पर्याप्तियाँ पूरी कर ली हो ।

एकेन्द्रिय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्त, ये चार भेद एकेन्द्रियो के होते हैं।

द्वीन्द्रियादि के दो-दो भेद—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पचेन्द्रिय और सज्ञी पचेन्द्रिय के पर्याप्तक और अपर्याप्तक रूप से दो-दो भेद होते है। इस प्रकार १४ भेद सासारिक जीवो के हुए ।[१]

जघन्य और उत्कृष्ट योग को लेकर संसारी जीवों का अल्पबहुत्व-निरूपण

५. एतेसि णं भंते ! चोद्दसविहाणं संसारसमावन्नगाण जीवाण जहन्नुक्कोसगस्स जोगस्स कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए १, बादरस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे २, बेंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे ३, एवं तेइंदियस्स० ४,

---

१. (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३१९३-३१९४
   (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५३

एवं चउरिंदियस्स० ५, असन्निस्स पंचेंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे ६, सन्निस्स पंचेंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे ७, सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे ८, बादरस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे ९, सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे १०, बायरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे ११, सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे १२, बादरस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे १३, बेंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे १४, एवं तेंदियस्स १५, एवं जाव सन्निस्स पंचेंदियस्स पज्जत्तगस्स जहन्नए जोए असंखेज्जगुणे १६--१८, बेंदियस्स अपज्जत्तगए उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे १९, एवं तेंदियस्स वि २०, एवं जाव सण्णिपंचेंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २१—२३, बेंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २४, एवं तेइंदियस्स वि पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २५, चउरिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २६, असन्निपंचिंदियपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २७, एवं सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे २८ ।

[५ प्र] भगवन् ! इन चौदह प्रकार के संसार-समापन्नक जीवों में जघन्य और उत्कृष्ट योग की अपेक्षा से, कौन जीव, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[५ उ] गौतम ! १ अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग सबसे अल्प है, २ बादर अपर्याप्तक एकेन्द्रिय का जघन्य योग उससे असंख्यातगुना है, ३ उससे अपर्याप्त द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, ४ उससे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, ५ उससे अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, ६ उससे अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, ७. उससे अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, ८ उससे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, ९ उससे पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, १० उससे अपर्याप्तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, ११ उससे अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, १२ उससे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, १३ उससे पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, १४ उससे पर्याप्त द्वीन्द्रिय का जघन्य योग असंख्यातगुना है, (१५-१६-१७-१८) उससे पर्याप्त त्रीन्द्रिय, पर्याप्त चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय का जघन्य योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुना है, १९ उससे अपर्याप्त द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, (२०-२१-२२-२३) इसी प्रकार उससे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय और अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग उत्तरोत्तर असंख्यातगुना है, २४ उससे पर्याप्त द्वीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, २५ इसी प्रकार पर्याप्त त्रीन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, २६ उससे पर्याप्त चतुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, २७ उससे पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है, और २८ उससे भी पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुना है ।

विवेचन जघन्य योग, उत्कृष्ट योग तथा अल्पबहुत्व—आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन (हलचल

या कम्पन) को 'योग' कहते हैं। वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशमादि की विचित्रता के कारण योग के पन्द्रह भेद होते हैं, जिनका विवेचन आगे सू ८ मे किया जाएगा। किसी-किसी जीव का योग, दूसरे जीव की अपेक्षा जघन्य (अल्प) होता है और किसी जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है। जीवो के उपर्युक्त चौदह भेदो से सम्बन्धित प्रत्येक के जघन्य और उत्कृष्ट योग होने से २८ भेद होते हैं। यहाँ जीवो का अल्पबहुत्व न कह कर योगो के अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। इनमे सबसे अल्प, सूक्ष्म अपर्याप्त एकेन्द्रिय का जघन्य-योग है, क्योकि उन जीवो का शरीर सूक्ष्म और अपर्याप्त (अपूर्ण) होने के कारण दूसरे सभी जीवो के योगो की अपेक्षा उनका योग सबसे अल्प होता है और वह भी कार्मण शरीर द्वारा औदारिक शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय मे ही होता है। तत्पश्चात् समय-समय पर योग मे वृद्धि होती है, जो उत्तरोत्तर उत्कृष्ट योग तक बढता है। पूर्वोक्त सूक्ष्म अपर्याप्त की अपेक्षा अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय जीव का जघन्य योग असख्यातगुणा होता है। बादर होने के कारण उसका योग असख्यातगुणा बडा होता है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।[1]

यद्यपि पर्याप्त त्रीन्द्रिय की उत्कृष्ट काया की अपेक्षा पर्याप्तक द्वीन्द्रियो की काया तथा सज्ञी पचेन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय की उत्कृष्ट काया, सख्यात योजन होने से सख्यातगुण ही होती है, तथापि यहाँ परिस्पन्दनरूप योग की विवक्षा होने से तथा क्षयोपशम-विशेष की सामर्थ्य से असख्यातगुण होने का कथन विरुद्ध नही है, क्योकि यह कोई नियम नही है कि अल्पकाय वाले का परिस्पन्दन अल्प हो और महाकाय वाले का परिस्पन्दन बहुत हो, क्योकि इसमे विपरीत भी दृष्टिगोचर होता है। अल्पकाय वाले का परिस्पन्दन महान् भी होता है और महाकाय वाले का परिस्पन्दन अल्प भी होता है।[2]

आगे हम जघन्य और उत्कृष्ट योग के अल्पबहुत्व का यत्र भी दे रहे है, जिससे स्पष्ट प्रतीत हो जाएगा कि महाकाय वाले का परिस्पन्दन अल्प और अल्पकाय वाले का महान् परिस्पन्दन भी होता है।

प्रथम समयोत्पन्नक चतुर्विशति दण्डकवर्ती दो जीवों का समयोगित्व-विषमयोगित्व-निरूपण

६. [१] दो भंते नेरतिया पढमसमयोववन्नगा कि समजोगी, विसमजोगी ?

गोयमा ! सिय समजोगी, सिय विसमजोगी।

[६-१ प्र] भगवन् ! प्रथम समय मे उत्पन्न दो नैरयिक समयोगी होते है या विषमयोगी ?

[६-१ उ.] गौतम ! कदाचित् समयोगी होते है और कदाचित् विषमयोगी होते है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चति –सिय समजोगी, सिय विषमजोगी ?

गोयमा ! आहारयाओ वा से अणाहारए, अणाहारयाओ वा से आहारए सिय होणे, सिय तुल्ले,

---

१ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ७, पृ. ३२०१

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५३-८५४

२. वही, पत्र ८५३

जघन्य और उत्कृष्ट योग के अल्पबहुत्व का यंत्र[1]

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त	सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त	बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त	चतुरिन्द्रिय पर्याप्त	असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त
जघन्य १	जघन्य ८	जघन्य २	जघन्य ९	जघन्य ३	जघन्य १४	जघन्य ४	जघन्य १५	जघन्य ५	जघन्य १६	जघन्य ६	जघन्य १७	जघन्य ७	जघन्य १८
उत्कृष्ट १०	उत्कृष्ट १२	उत्कृष्ट ११	उत्कृष्ट १३	उत्कृष्ट १९	उत्कृष्ट २४	उत्कृष्ट २०	उत्कृष्ट २५	उत्कृष्ट २१	उत्कृष्ट २६	उत्कृष्ट २२	उत्कृष्ट २७	उत्कृष्ट २३	उत्कृष्ट २८

सिय अब्भहिए। जदि हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा, संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखेज्जतिभागमब्भहिए वा संखेज्जतिभागमब्भहिए वा, संखेज्जगुणमब्भहिए वा असंखेज्जगुणमब्भहिए वा। से तेणट्ठेणं जाव सिय विसमजोगी।

[६-२ प्र.] भगवन्! ऐसा क्यो कहा जाता है कि कदाचित् समयोगी और कदाचित् विषमयोगी होते है?

[६-२ उ] गौतम! आहारक नारक से अनाहारक नारक और अनाहारक नारक से आहारक नारक कदाचित् हीनयोगी, कदाचित् तुल्ययोगी और कदाचित् अधिकयोगी होता है। (अर्थात्—आहारक नारक से अनाहारक नारक हीन योग वाला, अनाहारक से आहारक नारक अधिक योग वाला और दोनो अहारक या दोनो अनाहारक नारक परस्पर तुल्य योग वाले होते है।) यदि वह हीन योग वाला होता है तो असख्यातवे भागहीन, सख्यातवे भागहीन, सख्यातगुणहीन या असख्यातगुणहीन होता है। यदि अधिक योग वाला होता है तो असख्यातवां भाग अधिक, सख्यातवां भाग अधिक, सख्यातगुण अधिक या असख्यातगुण अधिक होता है। इस कारण से कहा गया है कि कदाचित् समयोगी और कदाचित् विषमयोगी भी होता है।

---

१ श्रीमद् भगवतीसूत्रम् चतुर्थखण्ड (गुजराती अनुवादसहित), पृ १९९

७. एवं जाव वेमाणियाणं ।

[७] इस प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए ।

विवेचन—**प्रथम समयोत्पन्नक**—नरकक्षेत्र मे प्रथम समय मे उत्पन्न नैरयिक **'प्रथम समयोत्पन्नक'** कहलाता है। इस प्रकार के दो नारक, जिनकी उत्पत्ति विग्रहगति से, अथवा ऋजुगति से आकर, अथवा एक की विग्रहगति से और दूसरे की ऋजुगति से आकर हुई है, वे भी **'प्रथम-समयोत्पन्नक'** कहलाते है ।[1]

समयोगी-विषमयोगी—जिन दो जीवो के योग समान हो, वे 'समयोगी' और जिनके विषम हो, वे 'विषमयोगी कहलाते है ।[2]

हीनयोगी, अधिकयोगी और तुल्ययोगी कौन और कैसे ?—आहारक नारक की अपेक्षा अनाहारक नारक हीन योग वाला होता है, क्योकि जो नारक ऋजुगति स आकर आहारक रूप से उत्पन्न होता है, वह निरन्तर आहारक होने के कारण पुद्गलो से उपचित (वृद्धिगत) होता है, इस कारण अधिक योग वाला होता है। जो नारक विग्रहगति से आकर अनाहारक रूप से उत्पन्न होता है, वह अनाहारक होने से पुद्गलो से अनुपचित होता है, अत हीनयोग वाला होता है। जो समान समय की विग्रहगति से आकर अनाहारकरूप से उत्पन्न होते है अथवा ऋजुगति से आकर आहारकरूप से उत्पन्न होते है, वे दोनो एक दूसरे की अपेक्षा तुल्ययोग वाले होते है। जो ऋजुगति से आकर आहारक उत्पन्न हुआ है, और दूसरा विग्रहगति से आकर अनाहारक उत्पन्न हुआ है, वह उसकी अपेक्षा उपचित होने से 'अत्यधिक विषमयोगी' होता है। सूत्र मे हीनता और अधिकता का कथन किया गया है, वह सापेक्ष है। समानधर्मतारूप तुल्यता प्रसिद्ध होने से उसका पृथक् कथन नही किया गया है। किन्तु यह ध्यान रहे कि यहाँ परिस्पन्दन रूप योग की ही विवक्षा की गई है ।[3]

योग के पन्द्रह भेदों का निरूपण

८. कतिविधे ण भंते ! जोए पन्नत्ते ?

गोयमा ! पन्नरसविधे जोए पन्नत्ते तं जहा—सच्चमणजोए मोसमणजोए सच्चामोसमणजोए असच्चामोसमणजोए, सच्चवइजोए मोसवइजोए सच्चामोसवइजोए असच्चामोसवइजोए, ओरालियसरीरकायजोए ओरालियमीसासरीरकायजोए वेउव्वियसरीरकायजोए वेउव्वियमीसासरीरकायजोए आहारगसरीरकायजोए आहारगमीसासरीरकायजोगे, कम्मासरीरकायजोए १५ ।

---

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३२०१
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५४

२ वही, पत्र ८५४

३ (क) वही, पत्र ८५४
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३२०१-३२०२

[८ प्र.] भगवन् ! योग कितने प्रकार का कहा गया है ?

[८ उ.] गौतम ! योग पन्द्रह प्रकार का कहा गया है। यथा— (१) सत्य-मनोयोग, (२) मृषा-मनोयोग, (३) सत्यमृषा-मनोयोग, (४) असत्यामृषा-मनोयोग (५) सत्य-वचनयोग, (६) मृषा-वचनयोग, (७) सत्यमृषा-वचनयोग, (८) असत्यामृषा-वचनयोग, (९) औदारिकशरीर-काययोग, (१०) औदारिकमिश्रशरीर-काययोग, (११) वैक्रियशरीर-काययोग, (१२) वैक्रियमिश्र-शरीरकाययोग, (१३) आहारकशरीर-काययोग, (१४) आहारकमिश्रशरीर-काययोग और (१५) कार्मण-शरीर-काययोग।

विवेचन—योग : परिभाषा और प्रकार—पूर्व सूत्रो मे प्रयुक्त 'योग' शब्द परिस्पन्दन (हलचल) अर्थ मे है जबकि यहाँ 'योग' पारिभाषिक शब्द है, जो मन, वचन और काया से होने वाली चेष्टा (व्यापार) या प्रवृत्ति के अर्थ मे है। ये योग ४ मन के निमित्त से, ४ वचन के निमित्त से और ७ काय के निमित्त से होते है, इसलिए वे १५ प्रकार के कहे गये हैं।[1]

पन्द्रह प्रकार के योगों में जघन्य-उत्कृष्ट योगों का अल्पबहुत्व

९. एयस्स ण भंते ! पन्नरसविहस्स जहन्नुक्कोसगस्स जोगस्स कयरे कतरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे कम्मगसरीरस्स जहन्नए जोय १, ओरालियमीसगस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे २, वेउव्वियमीसगस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे ३, ओरालियसरीरस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे ४, वेउव्वियसरीरस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे ५, कम्मगसरीरस्स उक्कोसए जोए असखेज्जगुणे ६, आहारगमीसगस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे ७, तस्स चेव उक्कोसए जोए असखेज्जगुणे ८, ओरालियमीसगस्स वेउव्विमीसगस्स य एएसि ण उक्कोसए जोए दोण्ह वि तुल्ले असखेज्जगुणे ९-१०, असच्चामोसमणजोगस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे ११, आहारगसरीरस्स जहन्नए जोए असखेज्जगुणे १२, तिविहस्स मणजोगस्स, चउव्विहस्स वइजोगस्स, एएसि ण सत्तण्ह वि तुल्ले जहन्नए जोए असखेज्जगुणे १३—१९; आहारगसरीरस्स उक्कोसोए जोए असखेज्जगुणे २०, ओरालियसरीरस्स वेउव्वियसरीरस्स चउव्विहस्स य मणजोगस्स, चउव्विहस्स य वइजोगस्स, एएसि णं दसण्ह वि तुल्ले उक्कोसए जोए असखेज्जगुणे २१-३०।

सेवं भते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ पचवीसइमे सते : पढमो उद्देसो समत्तो ॥ २५-१ ॥

[९ प्र.] भगवन् ! इन पन्द्रह प्रकार के योगो मे, कौन किस योग से जघन्य और उत्कृष्ट रूप से अल्प, बहुत तुल्य या विशेषाधिक है ?

[९ उ.] गौतम ! (१) कार्मणशरीर का जघन्य काययोग सबसे अल्प है, (२) उससे औदा-

१ (क) पाइअसद्दमहण्णवो, पृ. ३६३

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा. २ पृ. ९७१

रिकमिश्र का जघन्य योग असख्यातगुणा है, (३) उससे वैक्रियमिश्र का जघन्य योग असंख्यातगुणा है, (४) उससे औदारिकशरीर का जघन्य योग असख्यातगुणा है, (५) उससे वैक्रियशरीर का जघन्य योग असख्यातगुणा है, (६) उससे कार्मणशरीर का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा है, (७) उससे आहारिकमिश्र का जघन्य योग असख्यातगुणा है, (८) उससे आहारिकशरीर का उत्कृष्ट योग असंख्यातगुणा है, (९-१०) उससे औदारिकमिश्र और वैक्रियमिश्र इन दोनो का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा है, और दोनो परस्पर तुल्य है। (११) उससे असत्यामृषामनोयोग का जघन्य योग असंख्यातगुणा है। (१२) आहारकशरीर का जघन्य योग असख्यातगुणा है। (१३ से १९ तक) उससे तीन प्रकार का मनोयोग और चार प्रकार का वचनयोग, इन सातो का जघन्य योग असख्यातगुणा है और परस्पर तुल्य है। (२०) उससे आहारकशरीर का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा है, (२१ से ३० तक) उससे औदारिकशरीर, वैक्रियशरीर, चार प्रकार का मनोयोग और चार प्रकार का वचनयोग, इन दस का उत्कृष्ट योग असख्यातगुणा है और परस्पर तुल्य हे।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे।

॥ पच्चीसवाँ शतक : प्रथम उद्देशक सम्पूर्ण ॥

बीओ उद्देसओ : 'दव्व'

द्वितीय उद्देशक : 'द्रव्य'

द्रव्यों के भेद-प्रभेद तथा दोनों प्रकार के द्रव्यों की अनन्तता की प्ररूपणा

१. कतिविधा णं भंते ! दव्वा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा दव्वा पन्नत्ता, तं जहा—जीवदव्वा य अजीवदव्वा य ।

[१ प्र] भगवन् ! द्रव्य कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१ उ.] गौतम ! द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं । यथा—(१)—जीवद्रव्य और (२) अजीव-द्रव्य ।

२. अजीवदव्वा णं भते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—रूविअजीवदव्वा य, अरूविअजीवदव्वा य । एवं एएणं अभिलावेणं जहा अजीवपज्जवा जाव से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति—ते णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।

[२ प्र] भगवन् ! अजीवद्रव्य कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[२ उ] गौतम ! अजीवद्रव्य दो प्रकार के कहे गए है । यथा—(१) रूपी अजीवद्रव्य और (२) अरूपी अजीवद्रव्य । इस प्रकार इस अभिलाप (सूत्रपाठ) द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के पाचवे पद मे कथित अजीव-पर्यवो के अनुसार, यावत्—हे गौतम ! इस कारण से कहा जाता है, कि अजीवद्रव्य सख्यात नही, असख्यात नही, किन्तु अनन्त है, तक जानना चाहिए ।

३. [१] जीवदव्वा णं भंते ! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा ! नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ।

[३-१ प्र] भगवन् ! क्या जीवद्रव्य सख्यात है, असख्यात है अथवा अनन्त है ?

[३-१ उ] गौतम ! जीवद्रव्य सख्यात नही, असख्यात नही, किन्तु अनन्त है ।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ जीवदव्वा णं नो संखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ?

गोयमा ! असखेज्जा नेरइया जाव असखेज्जा वाउकाइया, अणंता वणस्सतिकाइया, असंखिज्जा बेंदिया, एव जाव वेमाणिया, अणता सिद्धा, से तेणट्ठेण जाव अणता ।

[३-२ प्र] भगवन् ! यह क्यो कहते हैं कि जीवद्रव्य सख्यात, असख्यात नही, किन्तु अनन्त हैं ?

[३-२ उ] गौतम ! नैरयिक असख्यात है, यावत् वायुकायिक असख्यात है और वनस्पति-

कायिक अनन्त हैं, द्वीन्द्रिय यावत् वैमानिक असंख्यात हैं तथा सिद्ध अनन्त हैं। इस कारण कहा जाता है कि यावत् जीवद्रव्य अनन्त है।

विवेचन—प्रज्ञापनासूत्र का अतिदेश–यहाँ जो प्रज्ञापनासूत्र के पाचवे पद का अतिदेश किया गया है, वहाँ पाचवे पद मे जीवपर्यव के पाठ है, वैसे अजीवपर्यव के पाठ भी हैं। यथा—(प्र.) भगवन् ! अरूपी अजीवद्रव्य कितने प्रकार के कहे गए है ! (उ) गौतम ! वे दस प्रकार के कहे गए हैं। यथा—धर्मास्तिकाय इत्यादि तथा (प्र) रूपी अजीवद्रव्य कितने प्रकार के कहे गए हैं ? (उ) गौतम ! वे चार प्रकार के कहे गए है। यथा—स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु। (प्र) भगवन् ! अजीवद्रव्य क्या सख्यात है, असख्यात है या अनन्त ? (उ) गौतम ! वे सख्यात नही, असख्यात नही, अनन्त है। (प्र) भगवन् ! ऐसा क्यो कहते है कि रूपी अजीवद्रव्य सख्यात, असख्यात नही, अनन्त है ? (उ.) गौतम ! परमाणु अनन्त हैं, द्विप्रदेशिक त्रिप्रदेशिक यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त है, इसलिए ।[1]

जीव और चौवीसदण्डकवर्ती जीवों को अजीवद्रव्य परिभोगतानिरूपण

४. [१] जीवदव्वाणं भंते ! अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जीवदव्वाण अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, नो अजीवदव्वाण जीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

[४-१ प्र] भगवन् ! अजीवद्रव्य, जीवद्रव्यो के परिभोग मे आते है, अथवा जीवद्रव्य, अजीवद्रव्यो के परिभोग मे आते है ?

[४-१ उ] गौतम ! अजीवद्रव्य, जीवद्रव्यो के परिभोग मे आते है, किन्तु जीवद्रव्य, अजीवद्रव्यो के परिभोग मे नही आते।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति—जाव हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! जीवदव्वा ण अजीवदव्वे परियादियंति, अजीवदव्वे परियादिइत्ता ओरालियं वेउव्विय आहारगं तेयग कम्मगं सोतिंदिय जाव फासिंदिय मणजोग वइजोग कायजोग आणापाणुत्तं च निव्वत्तयंति, से तेणट्ठेणं जाव हव्वमागच्छति।

[४-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि यावत्—(जीवद्रव्य, अजीवद्रव्यो के परिभोग के रूप मे) नही आते ?

[४-२ उ] गौतम ! जीवद्रव्य, अजीवद्रव्यो को ग्रहण करते है। ग्रहण करके औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण–इन पाच शरीरो के रूप मे, श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय–इन पाच इन्द्रियो के रूप मे, मनोयोग, वचनयोग और काययोग तथा श्वासोच्छ्वास के रूप मे परिणमाते (निष्पन्न करते) हैं। हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि अजीवद्रव्य, जीवद्रव्यो के परिभोग मे आते हैं, किन्तु जीवद्रव्य, अजीवद्रव्यो के परिभोग मे नही आते है।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५५-५६ (ख) प्रज्ञापनापद ५, सू ५०१-२, पृ १५१ (मा वि प्रकाशन)

५. [१] नेरतियाणं भंते ! अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, अजीवदव्वाणं नेरतिया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ?

गोयमा ! नेरतियाणं अजीवदव्वा जाव हव्वमागच्छंति, नो अजीवदव्वाणं नेरतिया जाव हव्वमागच्छंति।

[५-१ प्र] भगवन् ! अजीवद्रव्य, नैरयिकों के परिभोग में आते हैं अथवा नैरयिक अजीवद्रव्यों के परिभोग में आते हैं ?

[५-१ उ] गौतम ! अजीवद्रव्य, नैरयिकों के परिभोग में आते हैं, किन्तु नैरयिक, अजीवद्रव्यों के परिभोग में नहीं आते।

[२] से केणट्ठेणं० ?

गोयमा ! नेरतिया अजीवदव्वे परियादियंति, अजीवदव्वे परियादिइत्ता वेउव्विय-तेयग-कम्मग-सोतिंदिय जाव फासिंदिय जाव आणापाणुत्तं च निव्वत्तयंति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ०।

[५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से (ऐसा कहा जाता है कि यावत् नैरयिक अजीवद्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं) ?

[५-२ उ] गौतम ! नैरयिक, अजीवद्रव्यों को ग्रहण करते हैं। ग्रहण करके वैक्रिय, तैजस, कार्मणशरीर के रूप में, श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय के रूप में तथा यावत् श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणत करते हैं। हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा गया है।

६. एवं जाव वेमाणिया, नवरं सरीर-इंदिय-जोगा भाणियव्वा जस्स जे अत्थि।

[६] इसी प्रकार (असुरकुमारादि से लेकर) वैमानिकों तक कहना चाहिए। किन्तु विशेष यह है कि जिसके जितने शरीर, इन्द्रियाँ तथा योग हों, उतने यथायोग्य कहने चाहिए।

विवेचन—जीवद्रव्य अजीवद्रव्यों का परिभोग करते हैं, क्यों और कैसे ?—जीवद्रव्य सचेतन है और अजीवद्रव्य अचेतन है, इसलिए जीवद्रव्य, पहले अजीवद्रव्यों को ग्रहण करते हैं, फिर उनको अपने शरीर, इन्द्रिय, योग और श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणत करते हैं। यही उनका परिभोग है। अतः जीवद्रव्य या नैरयिकादि विशिष्ट जीवद्रव्य परिभोक्ता है और अजीवद्रव्य परिभोग्य है। इस प्रकार जीवद्रव्यों और अजीवद्रव्यों में भोक्तृ-भोग्यभाव है।[1]

असंख्येय लोक में अनन्त द्रव्यों की स्थिति

७. से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं ?

हंता, गोयमा ! असंखेज्जे लोए जाव भइयव्वाइं।

[७ प्र.] भगवन् ! असंख्य लोकाकाश (लोक) में अनन्त द्रव्य रह सकते हैं ?

[७ उ] हाँ गौतम ! असंख्यप्रदेशात्मक लोक (लोकाकाश) में अनन्त द्रव्य रह सकते हैं।

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा. ७, पृ. ३२०६

(ख) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ८५६

विवेचन—असंख्यलोकाकाश में अनन्त द्रव्यों का समावेश कैसे—प्रश्नकार का आशय यह है कि असख्यप्रदेशात्मक लोकाकाश मे अनन्तद्रव्य कैसे समा सकते है ? इसका समाधान यह है कि जैसे एक कमरा एक दीपक के प्रकाश के पुद्गलो से भरा हुआ है। उसमें दो, चार, दस, बीस आदि दीपक रख देने पर भी उनके प्रकाश के पुद्गलो का समावेश उसी मे हो जाता है, उसके लिए अलग कमरे या स्थान की आवश्यकता नही रहती। पुद्गल परिणमन की ऐसी विचित्रता है। इसी प्रकार असख्यप्रदेशात्मक लोकाकाश मे द्रव्यो के तथाविध परिणामवश अनन्तद्रव्य समा जाते हैं। इसमे किसी प्रकार का विरोध नही है और न उनमे परस्पर सघर्ष होता है। अत असख्यप्रदेशात्मक लोक मे अनन्तद्रव्यो का अवस्थान हो सकता है।[1]

लोक के एक प्रदेश में पुद्गलों के चय-छेद-उपचय-अपचय का निरूपण

८. लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे कतिदिसिं पोग्गला चिज्जति ?

गोयमा ! निव्वाघाएणं छद्दिसिं; वाघाय पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पचदिसिं।

[८ प्र] भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश मे कितनी दिशाओ से आकर पुद्गल एकत्रित होते है ?

[८ उ] गौतम ! निर्व्याघात से (व्याघात—प्रतिबन्ध न हो तो) छहो दिशाओ से तथा व्याघात की अपेक्षा—कदाचित् तीन दिशाओ से, कदाचित् चार दिशाओ से और कदाचित् पाच दिशाओ से (पुद्गल आकर एकत्रित होते है।)

९. लोगस्स ण भंते ! एगम्मि आगासपएसे कतिदिसिं पोग्गला छिज्जति ?

एवं चेव।

[९ प्र] भगवन् ! लोक के एक आकाशप्रदेश मे एकत्रित पुद्गल कितनी दिशाओ से पृथक् होते हैं ?

[९ उ] गौतम ! यह भी पूर्व कथनानुसार समझना चाहिए।

१०. एवं उवचिज्जंति, एवं अवचिज्जति।

[१०] इसी प्रकार (अन्य पुद्गलो के मिलने से) स्कन्ध के रूप मे पुद्गल उपचित होते (बढते) हैं और (पुद्गलो के अलग-अलग होने पर) अपचित होने (घटते) है।

विवेचन—चय, छेद, उपचय और अपचय का लक्षण—चय—बहुत-सी दिशाओ से आकर एक स्थान पर (एक आकाशप्रदेश मे) इकट्ठा होना समा जाना। **छेद**—एक आकाशप्रदेश मे एकत्रित पुद्गलो का पृथक् हो जाना। **उपचय** स्कन्धरूप पुद्गलो का दूसरे पुद्गलो के सम्पर्क से बढ जाना। **अपचय**—स्कन्धरूप पुद्गलो मे से प्रदेशो के पृथक् हो जाने से उस स्कन्ध का कम हो जाना।

---

१. (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ७, पृ ३२०७
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५६

इन्ही चार बातो के लिए शास्त्रकार ने चार शब्दो का उल्लेख किया है—चिज्जति, छिज्जंति उवचिज्जति, अवचिज्जति ।[1]

शरीरादि के रूप में स्थित-अस्थित द्रव्य-ग्रहण-प्ररूपणा

११. जीवे णं भंते ? जाइं दव्वाइं ओरालियसरीरत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ, अठियाइ गेण्हति ?

गोयमा ! ठियाइं पि गेण्हइ, अठियाइ पि गेण्हइ ।

[११ प्र] भगवन् ! जीव जिन पुद्गलद्रव्यो को औदारिकशरीर के रूप मे ग्रहण करता है, क्या वह उन स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यो को ?

[११ उ.] गौतम ! वह स्थित द्रव्यो को भी ग्रहण करता है और अस्थित द्रव्यो को भी ।

१२. ताइ भते ! किं दव्वओ गेण्हइ, खेत्तओ गेण्हइ, कालओ गेण्हइ, भावतो गेण्हइ ?

गोयमा ! दव्वओ वि गेण्हति, खेत्तओ वि गेण्हइ, कालओ वि गेण्हइ, भावओ वि गेण्हइ । ताइ दव्वओ अणतपएसियाइ दव्वाइ, खेत्तओ असखेज्जपएसोगाढाइ, एव जहा पण्णवणाए पढमे आहारुद्देसए जाव निव्वाघाएण छद्दिसि, वाघाय पडुच्च सिय तिदिसि, सिय चउदिसि, सिय पचदिसि ।

[१२ प्र] भगवन् ! (जीव) उन द्रव्यो को, द्रव्य से ग्रहण करता है या क्षेत्र से, काल से या भाव से ग्रहण करता है ?

[१२ उ] गौतम ! वह उन द्रव्यो को द्रव्य से भी ग्रहण करता है, क्षेत्र से भी, काल से भी और भाव से भी ग्रहण करता है । द्रव्य से—वह अनन्तप्रदेशी द्रव्यो को ग्रहण करता है, क्षेत्र से—असख्येय-प्रदेशावगाढ द्रव्यो को ग्रहण करता है, इत्यादि, जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम आहार-उद्देशक मे कहा है, तदनुसार यहाँ भी यावत् - निर्व्याघात से छहो दिशाओ से और व्याघात हो तो कदाचित् तीन कदाचित् चार और कदाचित् पाच दिशाओ से आए हुए पुद्गलो को ग्रहण करता है, (यहाँ तक कहना चाहिए) ।

१३. जीवे ण भते ! जाइ दव्वाइ वेउव्वियसरीरत्ताए गेण्हइ ताइ किं ठियाइं गेण्हति, अठियाइ गेण्हति ?

एव चेव, नवरं नियम छद्दिसिं ।

[१३ प्र] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यो को वैक्रियशरीर के रूप मे ग्रहण करता है, तो क्या वह स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यो को ?

[१३ उ.] गौतम ! इसी प्रकार पूर्ववत् समझना । विशेष यह है कि जिन द्रव्यो को वैक्रिय-शरीर के रूप मे ग्रहण करता है, वे नियम से छहो दिशाओ मे आए हुए होते हैं ।

१४. एवं आहारगसरीरत्ताए वि ।

[१४] आहारकशरीर के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

---

१. (क) भगवती, अ वृत्ति, पत्र ८५६-८५७

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३२०७-३२०८

१५. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं तेयगसरीरत्ताए गिण्हति० पुच्छा ?

गोयमा ! ठियाइं गेण्हइ, नो अठियाइं गेण्हइ । सेसं जहा ओरालियसरीरस्स ।

[१५ प्र] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यों को तैजसशरीर के रूप में ग्रहण करता है ? (इत्यादि पूर्ववत् पृच्छा)

[१५ उ] गौतम ! वह (तैजसशरीर के) स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यों को नहीं । शेष औदारिकशरीर के सम्बन्ध में कथित वक्तव्यतानुसार समझना चाहिए ।

१६. कम्मगसरीरे एवं चेव जाव भावओ वि गिण्हति ।

[१६] कार्मणशरीर के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए, यावत् भाव से भी ग्रहण करता है ।

१७. जाइं दव्वाइं दव्वओ गेण्हति ताइं किं एगपएसियाइं गेण्हइ, दुपएसियाइं गेण्हइ० ?

एवं जहा भासापदे जाव आणुपुव्विं गेण्हइ, नो अणाणुपुव्विं गेण्हति ।

[१७ प्र] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यों को द्रव्य से ग्रहण करता है, वे एक प्रदेश वाले ग्रहण करता है या दो प्रदेश वाले ग्रहण करता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१७ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के ग्यारहवें भाषापद में कहा गया है, तदनुसार आनुपूर्वी से (क्रमपूर्वक) ग्रहण करता है अनानुपूर्वी से (क्रमरहित) ग्रहण नहीं करता है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

१८. ताइं भंते ! कतिदिसिं गेण्हति ?

गोयमा ! निव्वाघाएणं० जहा ओरालियस्स ।

[१८ प्र] भगवन् ! जीव कितनी दिशाओं से आए हुए द्रव्य ग्रहण करता है ?

[१८ उ] गौतम ! निर्व्याघात हो तो छहों दिशाओं से आए हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है, इत्यादि औदारिकशरीर से सम्बन्धित वक्तव्यतानुसार कहना ।

१९. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं सोइंदियत्ताए गेण्हइ० ?

जहा वेउव्वियसरीरं ।

[१९ प्र] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यों को श्रोत्रेन्द्रिय रूप में ग्रहण करता है ? (इत्यादि प्रश्न पूर्ववत्) ।

[१९ उ] गौतम ! वैक्रियशरीर-सम्बन्धी वक्तव्यता के समान जानो ।

२०. एवं जाव जिब्भिंदियत्ताए ।

[२०] इसी प्रकार यावत् जिह्वेन्द्रिय-पर्यन्त जानना ।

२१. फासिंदियत्ताए जहा ओरालियसरीरं ।

[२१] स्पर्शेन्द्रिय के विषय में औदारिकशरीर के समान समझना चाहिए ।

२२. मणजोगत्ताए जहा कम्मगसरीरं, नवरं नियमं छद्दिसिं।

[२२] कार्मणशरीर की वक्तव्यता के समान मनोयोग की वक्तव्यता समझनी चाहिए तथा नियम से छहो दिशाओ से आए हुए द्रव्यो को ग्रहण करता है।

२३. एवं वइजोगत्ताए वि।

[२३] इसी प्रकार वचनयोग के द्रव्यो के विषय मे भी समझना चाहिए।

२४. कायजोगत्ताए जहा ओरालियसरीरस्स।

[२४] काययोग के रूप मे ग्रहण का कथन औदारिकशरीर विषयक कथनवत् है।

२५. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं आणापाणुत्ताए गेण्हइ ?

जहेव ओरालियसरीरत्ताए जाव सिय पंचदिसिं।

[२५ प्र] भगवन् ! जीव जिन द्रव्यो को श्वासोच्छ्‌वास के रूप मे ग्रहण करता है ? इत्यादि प्रश्न।

[२५ उ] गौतम ! औदारिकशरीर-सम्बन्धी कथन के समान इस विषय मे कहना चाहिए, यावत् कदाचित् पाच दिशा से आए हुए द्रव्यो को ग्रहण करता है।

२६. केयि चउवीसदंडएण एयाणि पयाणि भणंति, जस्स जं अत्थि।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ पंचवीसइमे सए : बितिओ उद्देसओ समत्तो ॥ २५-२ ॥

[२६] कई आचार्य चौबीस दण्डको पर इन पदो को कहते है, किन्तु जिसके जो (शरीर, इन्द्रिय, योग आदि) हो, वही उसके लिए यथायोग्य कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—स्थितद्रव्य अस्थितद्रव्य : परिभाषा · स्थितद्रव्य—जीव जितने आकाशक्षेत्र मे रहा हुआ है, उसी क्षेत्र के अन्दर रहे हुए जो पुद्‌गलद्रव्य है, वे स्थितद्रव्य है, और उस क्षेत्र से बाहर रहे हुए द्रव्य अस्थितद्रव्य कहलाते है। वहाँ से आकर्षित करके जीव उन्हे ग्रहण करता है। इस विषय मे किन्ही आचार्यों का मत है कि गतिरहित द्रव्य स्थितद्रव्य और गतिसहित द्रव्य अस्थित द्रव्य कहलाते हैं।[1]

वैक्रियशरीर द्वारा कितनी दिशाओ से द्रव्य-ग्रहण—वैक्रियशरीरी जीव वैक्रियशरीर के योग्य छहो दिशाओ से आए हुए द्रव्यो को ग्रहण करता है, इस कथन का आशय यह है कि उपयोगपूर्वक वैक्रियशरीर धारण करने वाला जीव प्राय पचेन्द्रिय ही होता है और वह त्रसनाडी के मध्यभाग मे होता है। इसलिए उसके छहो दिशाओ का आहार सम्भव है। कुछ आचार्यों के

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५७

मतानुसार- त्रसनाडी के बाहर भी वायुकाय के वैक्रियशरीर होता है, किन्तु अप्रधानता के कारण उसकी यहाँ विवक्षा नही की गई है। कुछ आचार्यो का मत है कि तथाविध लोकान्त के निष्कुटो (कोणो) मे वैक्रियशरीरी वायु नही होती।[1]

तैजसशरीर जीव के द्वारा अवगाढ क्षेत्र के भीतर रहे हुए द्रव्यो को ग्रहण करता है, उससे बाहर रहे हुए द्रव्यो को नही, क्योकि उन्हे खीचने का स्वभाव उसमे नही है। अथवा वह स्थित द्रव्यो को ग्रहण करता है, अस्थित द्रव्यो को नही, क्योकि उसका स्वभाव इसी प्रकार का होता है।[2]

चौदह दण्डक : चौदह पद--यहाँ पाच शरीर, पाच इन्द्रियाँ, तीन योग और श्वासोच्छ्वास, ये १४ पद हैं। इन चौदह पद-सम्बन्धी १४ दण्डक है, जिनका कथन यथायोग्य रूप से किया गया है। इसीलिए यहाँ कहा गया है--'केयि चउवीसदडएण ।'[3]

।। पच्चीसवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक सम्पूर्ण ।।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५७

२ वही, पत्र ८५८

३. वही पत्र ८५८

ततीओ उद्देसओ : 'संठाण'

तृतीय उद्देशक : 'संस्थान'

संस्थान के ६ भेदों का निरूपण

१. कति णं भंते ! सठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! छ सठाणा पन्नत्ता, त जहा—परिमंडले वट्टे तंसे चउरसे ग्रायते ग्रणित्थथे ।

[१ प्र] भगवन् ! सस्थान कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१ उ] गौतम ! सस्थान छह प्रकार के कहे गए हैं। यथा—(१) परिमण्डल, (२) वृत्त, (३) त्र्यस्र, (४) चतुरस्र, (५) ग्रायत ग्रौर (६) ग्रनित्थस्थ।

विवेचन—सस्थान : प्रकार ग्रौर स्वरूप—सस्थान का ग्रर्थ है ग्राकार। जीव के जैसे छह सस्थान होते हैं, वैसे ग्रजीवद्रव्य के भी छह सस्थान होते है। प्रस्तुत मे ग्रजीवसम्बन्धी छह सस्थानो का निरूपण है। **परिमण्डल**—चूडी सरीखा गोलाकार। **वृत्त**—कुम्हार के चाक जैसा गोल ग्राकार। **त्र्यस्र**—सिघाडे सरीखा त्रिकोण ग्राकार। **चतुरस्र**—बाजोट-सा चतुष्कोण ग्राकार। **ग्रायत**—लकडी जैसा लम्बा ग्राकार। **ग्रनित्थस्थ**—ग्रनियत ग्राकार यानी परिमण्डल ग्रादि से भिन्न विचित्र प्रकार की ग्राकृति।[1]

छह संस्थानों की द्रव्यार्थ तथा प्रदेशार्थ रूप से अनन्तता-प्ररूपणा

२ परिमडला णं भते ! संठाणा दव्वट्ठयाए किं सखेज्जा, ग्रसंखेज्जा, ग्रणता ?

गोयमा ! नो सखेज्जा, नो ग्रसखेज्जा, ग्रणता ।

[२ प्र] भगवन् ! परिमण्डल-सस्थान द्रव्यार्थरूप से सख्यात है, ग्रसख्यात है या ग्रनन्त है ?

[२ उ] गौतम ! वे संख्यात नही है, ग्रसख्यात भी नही हैं, किन्तु ग्रनन्त हैं।

३ वट्टा ण भते ! संठाणा० ?

एवं चेव ।

[३ प्र] भगवन् ! वृत्त-सस्थान द्रव्यार्थरूप से सख्यात हैं, ग्रसख्यात हैं या ग्रनन्त है ?

[३ उ] गौतम ! ये भी पूर्ववत् (ग्रनन्त) है।

४ एवं जाव ग्रणित्थंथा ।

[४] इसी प्रकार ग्रनित्थस्थ-सस्थान पर्यन्त जानना चाहिए।

५. एवं पएसट्ठयाए वि, एवं दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए वि ।

---

१ भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३२१६

[५] इसी प्रकार प्रदेशार्थरूप से भी जानना चाहिए तथा द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से भी।

विवेचन—निष्कर्ष—सभी प्रकार के संस्थान द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ तथा द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ (उभय) रूप से अनन्त है।

छह संस्थानों का द्रव्यार्थादि रूप से अल्पबहुत्व

६. एएसि णं भंते ! परिमंडल-वट्ट-तंस-चतुरंस-आयत-अणित्थंथाणं संठाणाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा परिमंडला संठाणा दव्वट्ठयाए, वट्टा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, चउरंसा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, तंसा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, आयता संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, अणित्थंथा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा परिमंडला संठाणा पएसट्ठयाए, वट्टा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, जहा दव्वट्ठयाए तहा पएसट्ठयाए वि जाव अणित्थंथा संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा परिमंडला संठाणा दव्वट्ठयाए, सो चेव दव्वट्ठयागमओ भाणियव्वो जाव अणित्थंथा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा। अणित्थंथेहिंतो संठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए, परिमंडला संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा; वट्टा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, सो चेव पएसट्ठयाए गमओ भाणियव्वो जाव अणित्थंथा संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

[६ प्र] भगवन् ! इन परिमण्डल, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र आयत और अनित्थंस्थ संस्थानों में द्रव्यार्थरूप से, प्रदेशार्थरूप से और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से कौन संस्थान किन संस्थानों से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[६ उ] गौतम ! (१) द्रव्यार्थरूप से परिमण्डल-संस्थान सबसे अल्प है, (२) उनसे वृत्त-संस्थान द्रव्यार्थरूप से संख्यातगुणा है, (३) उनसे चतुरस्र-संस्थान द्रव्यार्थरूप से संख्यातगुणा है, (४) उनसे त्र्यस्र-संस्थान द्रव्यार्थरूप से संख्यातगुणा है, (५) उनसे आयत-संस्थान द्रव्यार्थरूप से संख्यातगुणा है और (६) उनसे अनित्थंस्थ-संस्थान द्रव्यार्थरूप से असंख्यातगुणा है।

प्रदेशार्थरूप से (१) परिमण्डल-संस्थान प्रदेशार्थरूप से सबसे अल्प है, (२) उनसे वृत्त-संस्थान प्रदेशार्थरूप से संख्यातगुणा है, इत्यादि। जिस प्रकार द्रव्यार्थरूप से कहा गया है, उसी प्रकार प्रदेशार्थरूप से भी यावत्—'अनित्थंस्थ-संस्थान प्रदेशार्थरूप से असंख्यातगुणा है', यहाँ तक कहना चाहिए।

द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से परिमण्डल-संस्थान द्रव्यार्थरूप से सबसे अल्प है, इत्यादि जो पाठ द्रव्यार्थ सम्बन्धी है, वही यहाँ द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से जानना चाहिए, यावत् अनित्थंस्थ-संस्थान द्रव्यार्थरूप से असंख्यातगुणा है। द्रव्यार्थरूप अनित्थंस्थ-संस्थानों से, प्रदेशार्थरूप से परिमण्डल-संस्थान असंख्यातगुणा है, उनसे वृत्त-संस्थान प्रदेशार्थरूप से संख्यातगुणा है, इत्यादि, पूर्वोक्त प्रदेशार्थरूप का गमक, यावत् अनित्थंस्थ-संस्थान प्रदेशार्थरूप से असंख्यातगुणा है, यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन—संस्थानो की अवगाहना के अल्पबहुत्व का विचार—जो संस्थान जिस सस्थान की अपेक्षा बहुप्रदेशावगाही होता है, वह स्वाभाविकरूप से थोड़ा होता है। परिमण्डलसस्थान जघन्य बीस प्रदेश की अवगाहना वाला होता है और वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र और आयत सस्थान जघन्यत. अनुक्रम से पाँच, चार, तीन और दो प्रदेशावगाही होता है। इसलिए परिमण्डलसस्थान बहुतर-प्रदेशावगाही होने से सबसे कम हैं, उनसे वृत्तादि सस्थान अल्प-अल्प प्रदेशावगाही होने से सख्यात-गुण अधिक-अधिक होते है। अनित्थस्थसस्थान वाले पदार्थ, परिमण्डलादि द्वयादि-सयोगी होने से उनसे बहुत अधिक हैं। इसलिए ये उन सबसे असख्यातगुण अधिक हैं।

प्रदेश की अपेक्षा अल्पबहुत्व भी इसी प्रकार है, क्योकि प्रदेश द्रव्यो के अनुसार होते हैं और इसी प्रकार द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ-रूप से भी अल्पबहुत्व जानना चाहिए। किन्तु द्रव्यार्थरूप के अनित्थस्थसस्थान से परिमण्डलसस्थान प्रदेशार्थरूप से असख्यातगुण हैं।[1]

कठिनशब्दार्थ दव्वट्ठयाए—द्रव्यरूप अर्थ की अपेक्षा से। **पएसट्ठयाए**—प्रदेशरूप अर्थ की अपेक्षा से।[2]

संस्थानों के पांच भेद और उनको अनन्तता का निरूपण

७. कति ण भंते ! संठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पच संठाणा पन्नत्ता, तजहा परिमडले जाव आयते।

[७ प्र] भगवन् ! सस्थान कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[७ उ] गौतम ! सस्थान पाच प्रकार के कहे गए हैं। यथा—परिमण्डल (से लेकर) आयत तक।

८. परिमंडला णं भंते ! संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

[८ प्र] भगवन् ! परिमण्डलसस्थान सख्यात हैं, असख्यात हैं, अथवा अनन्त है ?

[८ उ] गौतम ! वे सख्यात नही, असख्यात भी नही, किन्तु अनन्त हैं।

९. वट्टा णं भते ! संठाणा किं सखेज्जा० ?

एव चेव।

[९ प्र] भगवन् ! वृत्तसस्थान सख्यात है, असख्यात हैं, या अनन्त हैं ?

[९ उ] (गौतम !) पूर्ववत् (अनन्त) हैं।

१०. एवं जाव आयता।

[१०] इसी प्रकार आयतसस्थान तक जानना चाहिए।

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ८५८

२. वही, पत्र ८५८

विवेचन—संस्थान के पांच ही भेद क्यों?—इससे पूर्व सस्थान के छह भेदो की प्ररूपणा की गई है, किन्तु यहाँ रत्नप्रभादि के विषय मे सस्थानो की प्ररूपणा करने की इच्छा से पुन सस्थान सम्बन्धी प्रश्न किया गया है। छठा अनित्थम्थमस्थान अन्य सस्थानो के सयोग से होता है। इसलिए यहाँ छठे अनित्थस्थसंस्थान की विवक्षा न होने से पाच ही सस्थान कहे है।[1]

संस्थानों की अनन्तता—पाचो ही सस्थान अनन्त है, सख्यात और असख्यात नही है।[2]

११. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए परिमडला सठाणा कि संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

गोयमा! नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता।

[११ प्र] भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे परिमण्डलसस्थान सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त है?

[११ उ] गौतम! वे सख्यात नही, असख्यात भी नही, किन्तु अनन्त है।

१२. वट्टा ण भंते! संठाणा किं संखेज्जा० ?

एवं चेव।

[१२ प्र] भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी मे वृत्तसस्थान सख्यात है, असख्यात है अथवा अनन्त है?

[१२ उ] वे भी पूर्ववत् समझना।

१३. एवं जाव आयता।

[१३] इसी प्रकार आयत तक समझना।

१४. सक्करप्पभाए णं भते! पुढवीए परिमडला सठाणा० ?

एवं चेव।

[१४ प्र] भगवन्! शर्कराप्रभापृथ्वी मे परिमण्डलसस्थान सख्यात है? इत्यादि प्रश्न।

[१४ उ] इसी प्रकार पूर्ववत् समझना।

१५. एवं जाव आयता।

[१५] इसी प्रकार आगे आयत पर्यन्त (समझना चाहिए।)

१६. एवं जाव अहेसत्तमाए।

[१६] इसी प्रकार अध सप्तमपृथ्वी तक समझना चाहिए।

१७. सोहम्मे णं भंते! कप्पे परिमडला सठाणा० ?

एवं चेव।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८५९

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ आदि), पृ ९७६

[१७ प्र.] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे परिमण्डलसंस्थान संख्यात हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१७ उ] पूर्ववत् समझना ।

१८. एवं जाव अच्चुते ।

[१८] (ईशान से लेकर) अच्युत तक इसी प्रकार कहना ।

१९. गेविज्जविमाणाणं भंते ! परिमडला संठाणा० ?

एव चेव ।

[१९ प्र] भगवन् ! ग्रैवेयक विमानो मे परिमण्डलसस्थान संख्यात है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१९ उ] (गौतम !) पूर्ववत् जानना ।

२०. एव अणुत्तरविमाणेसु ।

[२०] इसी प्रकार यावत् अनुत्तरविमानो के विषय मे भी कहना चाहिए ।

२१. एव ईसिपब्भाराए वि ।

[२१] इसी प्रकार यावत् ईषत्प्राग्भारापृथ्वी के विषय मे भी पूर्ववत् जानना ।

विवेचन—निष्कर्ष—रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक मे परिमण्डलादि पाचो सस्थान अनन्त होते है, सख्यात, असख्यात नही होते है ।[1]

यवमध्यगत परिमण्डलादि संस्थानो की परस्पर अनन्तता की प्ररूपणा

२२. जत्थ ण भते ! एगे परिमडले सठाणे जवमज्झे तत्थ परिमडला सठाणा कि सखेज्जा, असखेज्जा, अणता ?

गोयमा ! नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ।

[२२ प्र] भगवन् ! जहाँ एक यवाकार (जौ के आकार) परिमण्डलसस्थान है, वहाँ अन्य परिमण्डलसस्थान सख्यात है, असख्यात है या अनन्त है ?

[२२ उ] गौतम ! ये सख्यात नही, असख्यात भी नही, किन्तु अनन्त है ।

२३. वट्टा ण भते ! सठाणा कि सखेज्जा, असखेज्जा० ?

एव चेव ।

[२३ प्र.] भगवन् ! वृत्तसस्थान सख्यात है, असख्यात है या अनन्त है ?

[२३ उ.] गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए ।

२४. एव जाव आयता ।

[२४ प्र.] इसी प्रकार आयतसस्थान तक जानना ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा. २, पृ ९७७

२५. जत्थ ण भंते ! एगे वट्टे सठाणे जवमज्झे तत्थ परिमडला संठाणा० ?

एवं चेव; वट्टा संठाणा० ?

एवं चेव।

[२५ प्र.] भगवन् ! जहाँ यवाकार एक वृत्तसस्थान है, वहाँ परिमण्डलसस्थान कितने हैं ?

[२५ उ.] गौतम ! पूर्ववत् समझना।

[प्र] जहाँ यवाकार अनेक वृत्तसस्थान हो, वहाँ परिमण्डलसस्थान कितने है ?

[उ] पूर्ववत् समझना चाहिए।

२६. एव जाव आयता।

[२६] इसी प्रकार वृत्तसस्थान (से लेकर) यावत् आयतसस्थान भी अनन्त हैं।

२७. एव एक्केक्केणं संठाणेणं पच वि चारेयव्वा।

[२७] इसी प्रकार एक-एक सस्थान के साथ पाचो सस्थानो के सम्बन्ध का विचार करना चाहिए।

सप्त नरकपृथ्वियों से लेकर ईषत्प्राग्भारापृथ्वी तक में पांचों यवमध्य संस्थानों में परस्पर अनन्तता-प्ररूपणा

२८. जत्थ णं भते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे परिमडले सठाणे जवमज्झे तत्थ परिमडला सठाणा किं संखेज्जा० पुच्छा।

गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता।

[२८ प्र] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे जहाँ एक यवमध्य (यवाकार) परिमण्डल-सस्थान है, वहाँ दूसरे (यवाकृति निष्पादक-परिमण्डल के सिवाय) परिमण्डलसस्थान सख्यात है, असख्यात है या अनन्त है ?

[२८ उ] गौतम ! वे सख्यात या असख्यात नही है, किन्तु अनन्त है।

२९. वट्टा णं भते ! सठाणा किं सखेज्जा० ?

एव चेव।

[२९ प्र] भगवन् ! जहाँ यवाकार एक वृत्तसस्थान है वहाँ परिमण्डलसस्थान सख्यात है, असख्यात है या अनन्त हैं ?

[२९ उ.] गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

३०. एव जाव आयता।

[३०] इसी प्रकार आयत पर्यन्त समझना।

३१. जत्थ ण भते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे वट्टे सठाणे जवमज्झे तत्थ परिमडला सठाणा किं सखेज्जा० पुच्छा।

गोयमा ! नो सखेज्जा, नो असंखेज्जा. अणंता।

[३१ प्र.] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे जहाँ यवाकार एक वृत्तसस्थान है, वहाँ परिमण्डलसस्थान सख्यात हैं, असंख्यात है या अनन्त है ?

[३१ उ.] गौतम ! वे सख्यात या असख्यात नही, किन्तु अनन्त है ।

३२. वट्टा संठाणा ?

एवं चेव ।

[३२ प्र] भगवन् ! जहाँ यवाकर अनेक वृत्तस्थान हैं, वहाँ परिमण्डलसस्थान सख्यात हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[३२ उ.] गौतम ! पूर्ववत् जानना ।

३३. एवं जाव आयता ।

[३३] इसी प्रकार आयत तक जानना ।

३४. एव पुणरवि एक्केक्केणं संठाणेणं पच वि चारेयव्वा जहेव हेट्ठिल्ला जाव आयतेणं ।

[३४] यहाँ फिर पूर्ववत् प्रत्येक सस्थान के साथ पाचो सस्थानो का आयतसस्थान तक विचार करना चाहिए ।

३५. एव जाव अहेसत्तमाए ।[1]

[३५] इसी प्रकार (आगे शर्कराप्रभापृथ्वी से लेकर) अध सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए ।

३६ एव कप्पेसु वि जाव ईसीपब्भाराए पुढवीए ।[2]

[३५] इसी प्रकार कल्पो (देवलोको) से ईषत्प्राग्भारापृथ्वी पर्यन्त के लिए जानना चाहिए ।

विवेचन—परिमण्डलसंस्थान विषयक विश्लेषण यह समग्र लोक परिमण्डलसस्थान वाले पुद्गलस्कन्धो से निरतर व्याप्त है । उनमे से तुल्यप्रदेशवाले, तुल्यप्रदेशावगाही और तुल्यवर्णादि पर्याय वाले जो-जो परिमण्डल द्रव्य हो, उन सबको कल्पना से एक-एक पक्ति मे स्थापित करना चाहिए । उसके ऊपर और नीचे एक-एक जाति वाले परिमण्डलद्रव्यो को एक-एक पक्ति मे स्थापित करना चाहिए । इस प्रकार इनमे अल्पबहुत्व होने से परिमण्डलसस्थान का समुदाय यवाकार बनता है । इनमे जघन्य-प्रादेशिक द्रव्य स्वभावत अल्प होने से प्रथम पक्ति छोटी होती है और उसके बाद की पक्तियाँ अधिक-अधिकतर प्रदेश वाली होने से क्रमश बडी और अधिक बडी होती हैं । इसके पश्चात् क्रमश घटते-घटते अन्त मे उत्कृष्ट प्रदेश वाले द्रव्य अत्यन्त अल्प होने से अतिम पक्ति अत्यन्त छोटी होती है । इस प्रकार तुल्यप्रदेश वाले और उससे भिन्न परिमण्डल द्रव्यो द्वारा यवाकार क्षेत्र बनता है ।

---

१ **पाठान्तर**—[प्र] सक्करप्पभाए ण भते ! पुढवीए परिमडला सठाणा० ?
[उ] एव चेव । एव जाव—आयया । एव जाव अहेसत्तमाए ।

२ [प्र] सोहम्म ण भते ! कप्पे परिमडला सठाणा० ? [उ] एव चेव । एव जाव—अच्चुए ।
[प्र] गेवेज्जविमाणाण भते ! परिमडलसठाणा० ?
[उ] एव चेव । अणुत्तरविमाणेसु वि । एव ईसिप्पभाराए वि । —श्रीमद्भगवतीसूत्र खण्ड ४, पृ. २०५

जहाँ एक यवाकृतिनिष्पादक परिमण्डलसस्थान-समुदाय होता है, उस क्षेत्र में यवाकारनिष्पादक परिमण्डल के सिवाय दूसरे परिमण्डलसस्थान कितने होते है ? यह प्रश्न किया गया है, जिसका उत्तर दिया गया है --वे परिमण्डलसस्थान अनन्त-अनन्त होते है। इसी प्रकार वृत्तादि सस्थानो के विषय मे भी समझना चाहिए।[1]

कठिन शब्दार्थ—जवमज्झे—यवमध्य--यवाकार।[2]

पांच संस्थानों में प्रदेशतः अवगाहना-निरूपण

३७. **वट्टे ण भते ! सठाणे कतिपएसिए, कतिपएसोगाढे पन्नत्ते ?**

गोयमा ! वट्टे सठाणे दुविहे पन्नत्ते, त जहा—घणवट्टे य, पयरवट्टे य। तत्थ णं जे से पयरवट्टे से दुविधे पन्नत्ते, त जहा—ओयपएसिए य, जुम्मपएसिए य। तत्थ ण जे से ओयपएसिए से जहन्नेण पचपएसिए, पंचपएसोगाढे, उक्कोसेण अणतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे। तत्थ णं जे जुम्मपएसिए से जहन्नेण बारसपएसिए, बारसपएसोगाढे; उक्कोसेण अणतपएसिए, असंखेज्जपदेसोगाढे। तत्थ ण जे से घणवट्टे से दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—ओयपएसिए य जुम्मपएसिए य। तत्थ ण जे से ओयपएसिए से जहन्नेण सत्तपएसिए, सत्तपएसोगाढे पन्नत्ते; उक्कोसेण अणंतपएसिए, असखेज्जपएसोगाढे पन्नत्ते। तत्थ ण जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेण बत्तीसपएसिए, बत्तीसपएसोगाढे पन्नत्ते; उक्कोसेण अणतपएसिए, असखेज्जपएसोगाढे पन्नत्ते।

[३७ प्र.] भगवन् ! वृत्तसस्थान कितने प्रदेश वाला है और कितने आकाशप्रदेशो मे अवगाढ-रहा हुआ है ?

[३७ उ.] गौतम ! वृत्तसस्थान दो प्रकार का कहा है वह इस प्रकार—घनवृत्त और प्रतरवृत्त। इनमे जो प्रतरवृत्त है, वह दो प्रकार का कहा है, यथा—ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक। इनमे से ओज-प्रदेशिक प्रतरवृत्त जघन्य पच-प्रदेशिक और पाच आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्यात आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ है और जो युग्म-प्रदेशिक प्रतरवृत्त है, वह जघन्य बारह प्रदेश वाला और बारह आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्यात आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ होता है।

घनवृत्तसस्थान दो प्रकार का कहा गया है यथा ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक। ओज-प्रदेशिक जघन्य सात प्रदेश वाला और सात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशो वाला और असख्यात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है। युग्म-प्रदेशिक घनवृत्त-सस्थान जघन्य बत्तीस प्रदेशो वाला और बत्तीस आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता हे तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशो वाला और असख्यात आकाशप्रदेशा मे अवगाढ होता है।

३८. **तसे ण भते ! सठाणे कतिपएसिए कतिपएसोगाढे पन्नत्ते ?**

गोयमा ! तसे णं संठाणे दुविहे पन्नत्ते, त जहा—घणतसे य पयरतंसे य। तत्थ णं जे से

---

१ श्रीमद्भगवतीसूत्रम् चतुर्थखण्ड (गुजराती अनुवाद), पृ २०५

२ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ. ३२१९

पयरतंसे से दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—ओयपएसिए य, जुम्मपएसिए य। तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं तिपएसिए, तिपएसोगाढे पन्नत्ते, उक्कोसेण अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पन्नत्ते। तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं छप्पएसिए, छप्पएसोगाढे पन्नत्ते, उक्कोसेण अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पन्नत्ते। तत्थ णं जे से घणतसे से दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—ओयपदेसिए य, जुम्मपएसिए य। तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं पणतीसपएसिए पणतीसपएसोगाढे, उक्कोसेणं अणंतपएसिए, तं चेव। तत्थ ण जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं चउप्पएसिए चउप्पदेसोगाढे पन्नत्ते; उक्कोसेणं अणंतपएसिए, तं चेव।

[३८ प्र] भगवन्! त्र्यस्रसस्थान कितने प्रदेश वाला और कितने आकाशप्रदेशो मे अवगाढ़ कहा गया है?

[३८ उ] गौतम! त्र्यस्रसस्थान दो प्रकार का कहा गया है, यथा—घनत्र्यस्र और प्रतरत्र्यस्र। उनमे से जो प्रतरत्र्यस्र है, वह दो प्रकार का कहा है। यथा—ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक। ओज-प्रादेशिक जघन्य तीन प्रदेश वाला और तीन आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशो वाला और असख्यात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है। उनमे से जो घनत्र्यस्र है, वह दो प्रकार का कहा है, यथा—ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक। ओज-प्रदेशिक घनत्र्यस्र जघन्य पैतीस प्रदेशो वाला और पैतीस आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशिक और असख्यात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है। युग्म-प्रदेशिक घनत्र्यस्र जघन्य चार प्रदेशो वाला और चार आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्यात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है।

३९. चउरसे णं भंते! सठाणे कतिपदेसिए० पुच्छा?

गोयमा! चउरंसे सठाणे दुविहे पन्नत्ते, भेदो जहेव वट्टस्स जाव तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं नवपएसिए, नवपएसोगाढे पन्नत्ते, उक्कोसेण अणतपएसिए, असखेज्जपएसोगाढे पन्नत्ते। तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेण चउपएसिए, चउपएसोगाढे पन्नत्ते; उक्कोसेण अणंतपएसिए, त चेव। तत्थ णं जे से घणचउरसे से दुविहे पन्नत्ते, त जहा—ओयपएसिए य, जुम्मपएसिए य। तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेण सत्तावीसतिपएसिए, सत्तावीसतिपएसोगाढे, उक्कोसेण अणंतपएसिए, तहेव। तत्थ ण जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं अट्ठपएसिए, अट्ठपएसोगाढे पन्नत्ते, उक्कोसेणं अणंतपएसिए, तहेव।

[३९ प्र] भगवन्! चतुरस्रसस्थान कितने प्रदेश वाला और कितने प्रदेशो मे अवगाढ होता है?

[३९ उ.] गौतम! चतुरस्रसस्थान दो प्रकार का कहा है, यथा—घन-चतुरस्र और प्रतर-चतुरस्र, इत्यादि, वृत्तसस्थान के समान, उनमे से प्रतर-चतुरस्र के दो भेद ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक कहना। यावत् ओज-प्रदेशिक प्रतर-चतुरस्र जघन्य नौ प्रदेश वाला और नौ आकाशप्रदेशो मे अवगाढ़ तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्येय आकाशप्रदेशो में अवगाढ होता है। युग्म-प्रदेशिक

प्रतरचतुरस्र जघन्य चार प्रदेश वाला और चार आकाशप्रदेशो मे अवगाढ तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्येय प्रदेशो मे अवगाढ होता है। घन-चतुरस्र दो प्रकार का कहा है, यथा—ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक । ओज-प्रदेशिक घन-चतुरस्र जघन्य सत्ताईस प्रदेशो वाला और सत्ताईस आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्येय आकाश-प्रदेशो में अवगाढ होता है। युग्म-प्रदेशिक घन-चतुरस्र जघन्य आठ प्रदेशो वाला और आठ आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्येय आकाश प्रदेशो मे अवगाढ होता है।

४०. आयते ण भते ! सठाणे कतिपएसिए कतिपदेसोगाढे पन्नत्ते ?

गोयमा ! आयते ण सठाणे तिविधे पन्नत्ते, त जहा—सेढिआयते, पयरायते, घणायते । तत्थ ण जे से सेढिआयते से दुविहे पन्नत्ते, त जहा ओयपदेसिए य जुम्मपएसिए य। तत्थ ण जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं तिपएसिए, तिपएसोगाढे, उक्कोसेण अणतपएसिए, त चेव । तत्थ ण जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेण दुपएसिए दुपएसोगाढे, उक्कोसेण अणंत० तहेव । तत्थ णं जे से पयरायते से दुविहे पन्नत्ते, तं जहा- ओयपएसिए य, जुम्मपएसिए य । तत्थ ण जे से ओयपएसिए से जहन्नेण पन्नरसपएसिए, पन्नरसपएसोगाढे, उक्कोसेण अणंत० तहेव । तत्थ ण जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं छप्पएसिए, छप्पएसोगाढे, उक्कोसेणं अणत० तहेव । तत्थ ण जे से घणायते से दुविधे पन्नत्ते, त जहा—ओयपएसिए य, जुम्मपएसिए य। तत्थ ण जे से ओयपएसिए से जहन्नेण पणयालीसपदेसिए पणयालीसपदेसोगाढे पन्नत्ते, उक्कोसेण अणंत० तहेव । तत्थ ण जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेण बारसपएसिए बारसपएसोगाढे, उक्कोसेणं अणत० तहेव ।

[४० प्र] भगवन् ! आयतसस्थान कितने प्रदेश वाला और कितने आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है ?

[४० उ] गौतम ! आयतसस्थान तीन प्रकार का कहा है। यथा—श्रेणी-आयत, प्रतर-आयत और घन-आयत । श्रेणी-आयत दो प्रकार का कहा है, यथा—ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक । उनमे से जो ओज-प्रदेशिक है वह जघन्य तीन प्रदेशो वाला और तीन आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्यात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है । जो युग्म-प्रदेशिक है, वह जघन्य दो प्रदेश वाला और दो आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है, तथा उत्कृष्ट अनन्तप्रदेशिक और असख्यात-प्रदेशावगाढ होता है। उनमे जो से प्रतर-आयत होता है, वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक। जो ओज-प्रदेशिक है, वह जघन्य पन्द्रह आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्येय आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ होता है। जो युग्म-प्रदेशिक है, वह जघन्य छह प्रदेश वाला और छह आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशिक और असख्येय आकाश-प्रदेशो मे अवगाढ होता है। उनमे से जो घन-आयत है, वह दो प्रकार का कहा है, यथा—ओज-प्रदेशिक और युग्म-प्रदेशिक। जो ओज-प्रदेशिक है, वह जघन्य पैतालीस प्रदेशो वाला और पैतालीस आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है, तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेशिक और असख्येय आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है। जो

युग्म-प्रदेशिक है, वह जघन्य बारह प्रदेशो वाला और बारह आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशिक और असख्येय प्रदेशो मे अवगाढ होता है ।

४१. परिमडले णं भते ! सठाणे कतिपएसिए० पुच्छा ।

गोयमा ! परिमंडले णं संठाणे दुविहे पन्नत्ते, त जहा—घणपरिमंडले य पयरपरिमंडले य । तत्थ ण जे से पयरपरिमडले से जहन्नेणं वीसतिपएसिए वीसतिपएसोगाढे; उक्कोसेण अणंतपए० तहेव । तत्थ ण जे से घणपरिमंडले से जहन्नेणं चत्तालीसतिपएसिए, चत्तालीसतिपएसोगाढे पन्नत्ते; उक्कोसेण अणंतपएसिए, असखेज्जपएसोगाढे पन्नत्ते ।

[४१ प्र] भगवन् ! परिमण्डल-सस्थान कितने प्रदेशो वाला है और कितने आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है ?

[४१ उ] गौतम ! परिमण्डलसस्थान दो प्रकार का कहा है । यथा—घन-परिमण्डल और प्रतर-परिमण्डल । उनमे जो प्रतर-परिमण्डल है, वह जघन्य बीस प्रदेश वाला और बीस आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशिक और असख्येय आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है । उनमे जो घन-परिमण्डल है, वह जघन्य चालीस प्रदेशो वाला और चालीस आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेशिक और असख्यात आकाशप्रदेशो मे अवगाढ होता है ।

विवेचन—परिमण्डल का कथन पहले क्यो नहीं—पाच सस्थानो मे प्रथम परिमण्डल सस्थान है, उसका कथन पहले किया जाना चाहिए, किन्तु यहाँ परिमण्डल को छोडकर 'वृत्त', 'त्र्यस्र' आदि क्रम से कथन किया गया है । उसका कारण यह है कि इन चारो मे सम-प्रदेशो और विषम-प्रदेशो का कथन होने से सभी मे प्राय समानता है । इसलिए पहले इनका कथन और बाद मे परिमण्डल का कथन किया गया है । अथवा सूत्र का क्रम विचित्र होने से इस प्रकार का कथन किया है ।[1]

ओज और युग्म की परिभाषा—एक, तीन, पाच आदि विषम (एकी वाली) सख्या को 'ओज' कहते है और दो, चार, छ आदि सम (बेकी वाली—जोडे वाली) सख्या को 'युग्म' कहते हैं ।

घनवृत्त और प्रतरवृत्त का स्वरूप—लड्डू अथवा गेद के समान जो गोल हो, उसे 'घनवृत्त' कहते है, और मण्डक—(पकाया हुआ एक प्रकार का अन्न) के समान, जो गोल होने पर भी मोटाई मे कम हो, उसे 'प्रतरवृत्त' कहते है ।

प्रतरवृत्त और घनवृत्त का रेखाचित्र—ओजप्रदेशी प्रतरवृत्त मे दो प्रदेश ऊपर, एक प्रदेश बीच मे और दो प्रदेश नीचे होते है । यथा -

युग्मप्रदेशी प्रतरवृत्त मे बारह प्रदेश होते है, जिनमे दो प्रदेश ऊपर, उससे नीचे चार प्रदेश, उसके नीचे फिर चार प्रदेश और उसके नीचे दो प्रदेश होते हैं यथा—

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ८६१

ओजप्रदेशी घनवृत्त—में सात प्रदेश होते हैं। एक मध्य परमाणु के ऊपर एक परमाणु और नीचे भी एक परमाणु तथा उसके चारो ओर चार परमाणु होते हैं।

युग्मप्रदेशी घनवृत्त—मे बत्तीस प्रदेश होते हैं। उनमे से दो ऊपर, चार नीचे, फिर चार नीचे और उनके नीचे दो प्रदेश स्थापित करने चाहिए। उसके ऊपर इसी प्रकार का बारह प्रदेशो का दूसरा प्रतर रखना चाहिए और दोनो प्रतरो के मध्यभाग के चार प्रदेशो के ऊपर दूसरे चार प्रदेश ऊपर और चार प्रदेश नीचे रखना चाहिए।

ओज-प्रदेशिक घनत्र्यस्र—यह पैंतीस प्रदेशो का होता है। उसमे प्रथम इस प्रकार १५ प्रदेशो के प्रतर पर दूसरे दस प्रदेशो का प्रतर पर तीसरे छह प्रदेशो का प्रतर ——उस पर चौथा तीन प्रदेशो का प्रतर और उस पर एक परमाणु (प्रदेश) ० रखना चाहिए। घनत्र्यस्र के चार भेदो मे से तीसरे भेद का यह आकार दिया है। शेष तीन भेदो का कथन अर्थ मे दे दिया गया है।

चित्र सख्या (१) ओजप्रदेशी घनत्र्यस्र का समुच्चय मे आकार इस प्रकार है। चित्र सख्या (२) युग्मप्रदेशी घनत्र्यस्र। चित्र संख्या (३) ओजप्रदेशी प्रतरत्र्यस्र। चित्र सख्या (४) युग्मप्रदेशी प्रतरत्र्यस्र।

चित्र १

चित्र २

चित्र ३

चित्र ४

ओजप्रदेशी घनचतुरस्र आदि चार भेद—ओजप्रदेशी घनचतुरस्र २७ प्रदेशो का होता है। नौ प्रदेशो का प्रतर रखकर उस पर उसी प्रकार के दो प्रतर और रखने चाहिए।

युग्मप्रदेशी घनचतुरस्र ८ प्रदेशो का है जो चतुष्प्रदेशी प्रतर के ऊपर दूसरा चतुष्प्रदेशी प्रतर रखने से होता है।

इनके ऊपर न रखने से क्रमश. ओजप्रदेशी प्रतरचतुरस्र और युग्मप्रदेशी प्रतरचतुरस्र सस्थान क्रमश. ९ और ४ प्रदेशो का होता है। यथा—

तथा

श्रेणी-आयत संस्थान—प्रदेशों की लम्बी श्रेणी को श्रेणी-आयत कहते हैं। जघन्य ओज-प्रदेशी श्रेणी-आयत संस्थान तीन प्रदेशात्मक होता है—|०००| तथा युग्मप्रदेश श्रेणी-आयत द्विप्रदेशिक होता है—|०० |।

प्रतर-आयत : द्विविध—दो, तीन इत्यादि विष्कम्भ-श्रेणिरूप प्रतर-आयत कहलाता है। **ओज प्रदेशिक प्रतर-आयत**—जघन्य १५ प्रदेशों का है, यथा— और युग्म-प्रदेशी प्रतर आयत ६ प्रदेशों का होता है—।

घन-आयत : द्विविध—मोटाई और विष्कम्भसहित अनेक श्रेणियों को घन-आयत कहते हैं। **ओज-प्रदेशिक घन-आयत** पन्द्रह प्रकार के पूर्वोक्त प्रतर-आयत पर दूसरे दो उसी प्रकार के प्रतर-आयत रखने से जघन्य ४५ प्रदेशों का ओज-प्रदेशिक घन आयत होता है। यथा—

युग्म-प्रदेशिक घन-आयत—छह प्रदेशों के युग्म प्रदेशिक प्रतर-आयत के ऊपर उसी प्रकार का दूसरा प्रतर-आयत रखने से १२ प्रदेशों का युग्म-प्रदेशिक घन-आयत होता है—

परिमण्डल-संस्थान : द्विविध—युग्म-प्रदेशिक—परिमण्डल-संस्थान केवल युग्म-प्रदेशिक होता है। इनमें से प्रतर-परिमण्डल जघन्य २० प्रदेशों का होता है। यथा—

उसके ऊपर दूसरा प्रतर-परिमण्डल रखने से जघन्य ४० प्रदेशों का घन-परिमण्डल होता है।[1]

पंच संस्थानों में एकत्व-बहुत्वदृष्टि से द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता की अपेक्षा कृतयुग्मादि निरूपण

४२. परिमंडले णं भंते ! संठाणे दव्वट्ठताए किं कडजुम्मे, तेयोए, दावरजुम्मे, कलियोए ?

गोयमा ! नो कडजुम्मे, णो तेयोए, णो दावरजुम्मे, कलियोए।

[४२ प्र.] भगवन् ! परिमण्डल-संस्थान द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है अथवा कल्योज है ?

[४२ उ.] गौतम ! वह कृतयुग्म नहीं, त्र्योज नहीं, द्वापरयुग्म भी नहीं, किन्तु कल्योज है।

४३. वट्टे णं भंते ! संठाणे दव्वट्ठताए० ?

एवं चेव।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ८६१-८६२

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा. ७, पृ. ३२२८-३२२९

(ग) भगवती उपक्रम (परिशिष्ट) पृ. ५६०-५६१

[४३ प्र] भगवन् ! वृत्त-संस्थान द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४३ उ] गौतम ! (इसका कथन भी) पूर्ववत् जानना ।

४४. एवं जाव आयते ।

[४४] इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त जानना ।

४५. परिमंडला णं भंते ! संठाणा दव्वट्ठताए किं कडजुम्मा, तेयोगा० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघाएसेण सिय कडजुम्मा, सिय तेयोगा, सिय दावरजुम्मा, सिय कलियोगा । विहाणादेसेण नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, कलिओगा ।

[४५ प्र] भगवन् ! (अनेक) परिमण्डल-संस्थान द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म है, त्र्योज हैं या कल्योज है ?

[४५ उ.] गौतम ! ओघादेश से—(सामान्यत सर्वसमुदितरूप से) कदाचित् कृतयुग्म, कदाचित् त्र्योज, कदाचित् द्वापरयुग्म और कदाचित् कल्योज होते है । विधानादेश से (प्रत्येक की अपेक्षा से) कृतयुग्म नही, त्र्योज नही, द्वापरयुग्म नही, किन्तु कल्योज हैं ।

४६. एवं जाव आयता ।

[४६] इसी प्रकार (अनेक) आयत-संस्थान तक जानना चाहिए ।

४७. परिमंडले णं भंते ! संठाणे पदेसट्ठताए किं कडजुम्मे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मे, सिय तेयोगे, सिय दावरजुम्मे, सिय कलियोगे ।

[४७ प्र] भगवन् ! परिमण्डल-संस्थान प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४७ उ] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है, कदाचित् त्र्योज है, कदाचित् द्वापरयुग्म है, और कदाचित् कल्योज है ।

४८. एवं जाव आयते ।

[४८] इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त जानना चाहिए ।

४९. परिमंडला णं भंते ! संठाणा पदेसट्ठताए किं कडजुम्मा० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेण सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा । विहाणादेसेण कडजुम्मा वि, तेयोगा वि, दावरजुम्मा वि, कलियोगा वि ।

[४९ प्र] भगवन् ! (अनेक) परिमण्डल-संस्थान प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४९ उ] गौतम ! ओघादेश से—वे कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज होते है । विधानादेश से वे कृतयुग्म भी है, त्र्योज भी है, द्वापरयुग्म भी है और कल्योज भी है ।

५०. एवं जाव आयता ।

[५०] इसी प्रकार (अनेक) आयत-संस्थान तक जानना चाहिए ।

विवेचन—परिमण्डलादि संस्थान का द्रव्यरूप से विचार—परिमण्डल-सस्थान द्रव्यरूप से एक है और एक वस्तु का चार-चार से अपहार (भाग) नही होता। इस कारण एकत्व के विचार करने में कृतयुग्मादि का व्यपदेश नही होता, क्योकि एक ही शेष रहता है, अत. वह कल्योजरूप है। इसी प्रकार वृत्तादि सस्थान के विषय मे भी समझना चाहिए।

सामान्य रूप से परिमण्डलादि संस्थान का विचार—सामान्य रूप से यदि सभी परिमण्डल आदि सस्थानो का विचार करते है तब उनका चार-चार से अपहार करते हुए किसी समय कुछ भी बाकी नही रहता, कदाचित् तीन, कदाचित् दो और कदाचित् एक शेष रहता है। इसलिए कदाचित् कृतयुग्म होते है, यावत् कदाचित् कल्योज भी होते है। जब विधानादेश से—अर्थात्-विशेष दृष्टि से समुचित सस्थानो मे से एक-एक सस्थान का विचार किया जाता है, तब चार से अपहार न होने के कारण एक ही शेष रहता है। अत वह कल्योज रूप होता है।[1]

प्रदेशार्थरूप से परिमण्डलादि संस्थान का विचार जब परिमण्डलादि सस्थानका प्रदेशार्थ रूप से विचार किया जाता है, तब बीस आदि क्षेत्रप्रदेशो मे जो प्रदेश परिमण्डलादि सस्थानरूप मे व्यवस्थित होते है, उनकी अपेक्षा से बीस आदि प्रदेशो का कथन किया जाता है। उन प्रदेशो मे चार चार का अपहार करते हुए जब चार शेष रहते है, तब कृतयुग्म होते है। जब तीन शेष रहते है, तब त्र्योज होते है, दो शेष रहने पर द्वापरयुग्म और एक शेष रहने पर कल्योज होता है, क्योकि एक प्रदेश पर भी बहुत से अणु अवगाढ होते है।[2]

कठिन शब्दार्थ—ओघादेसेण- ओघादेश से—सामान्यतया सर्वसमुदित रूप से। **विहाणा-देसेण** -विधानादेश से—एक-एक की अपेक्षा से।[3]

पांच संस्थानों में यथायोग्य कृतयुग्मादि प्रदेशावगाह-प्ररूपणा

५१. परिमंडले णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मपएसोगाढे जाव कलियोगपएसोगाढे ?

गोयमा ! कडजुम्मपएसोगाढे, नो तेयोगपदेसोगाढे, नो दावरजुम्मपएसोगाढे, नो कलियोग-पएसोगाढे।

[५१ प्र] भगवन् ! परिमण्डल-सस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, त्र्योज-प्रदेशावगाढ है, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ है, अथवा कल्योज-प्रदेशावगाढ है ?

[५१ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है किन्तु न तो त्र्योज-प्रदेशावगाढ है, न ही द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ है और न कल्योज-प्रदेशावगाढ है।

५२. वट्टे ण भंते ! संठाणे किं कडजुम्म० पुच्छा।

गोयमा ! सिय कडजुम्मपदेसोगाढे, सिय तेयोगपएसोगाढे, नो दावरजुम्मपदेसोगाढे, सिय कलियोगपएसोगाढे।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६३

२ (क) वही, पत्र ८६३

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३२२१

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६३

[५२ प्र] भगवन् ! वृत्त-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है ? इत्यादि प्रश्न ।

[५२ उ.] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ है और कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ है, किन्तु द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ नही होता ।

५३. तंसे णं भंते ! संठाणे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे, सिय तेयोगपदेसोगाढे, सिय दावरजुम्मपएसोगाढे, नो कलियोगपएसोगाढे ।

[५३ प्र] भगवन् ! त्र्यस्र-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है ? इत्यादि प्रश्न ।

[५३ उ] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ, कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ और कदाचित् द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ होता है, किन्तु कल्योज-प्रदेशावगाढ नही होता ।

५४. चउरसे ण भते ! सठाणे०, ?

जहा वट्टे तहा चतुरसे वि ।

[५४ प्र] भगवन् ! चतुरस्र-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है ? इत्यादि प्रश्न ।

[५४ उ] गौतम ! जिस प्रकार वृत्त-संस्थान के विषय मे कहा है, उसी प्रकार चतुरस्र-संस्थान के विषय मे भी जानना चाहिए ।

५५. आयते णं भते ! पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे जाव सिय कलियोगपएसोगाढे ।

[५५ प्र.] भगवन् ! आयत-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है ? इत्यादि प्रश्न ।

[५५ उ] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होता है और यावत् कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ होता है ।

५६. परिमडला णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा, तेयोगपएसोगाढा० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा ।

[५६ प्र] भगवन् ! (अनेक) परिमण्डल-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते है, त्र्योज-प्रदेशावगाढ होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[५६ उ] गौतम ! वे ओघादेश से तथा विधानादेश से भी कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते हैं, किंतु न तो त्र्योज-प्रदेशावगाढ होते है, न द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ और न कल्योज-प्रदेशावगाढ होते है ।

५७. वट्टा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघाएसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा; विहाणादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि तेयोगपएसोगाढा वि, नो दावरजुम्म-पएसोगाढा, कलियोगपएसोगाढा वि ।

[५७ प्र] भगवन् ! (अनेक) वृत्त-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते हैं ? इत्यादि पृच्छा।

[५७ उ] गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते है, किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ या कल्योज-प्रदेशावगाढ होते हैं। विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ भी हैं, त्र्योज-प्रदेशावगाढ़ भी हैं, किन्तु द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ नही है, हाँ, कल्योज-प्रदेशावगाढ है।

५८. तंसा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्म० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा; विहाणादेसेण कडजुम्मपदेसोगाढा वि, तेयोगपएसोगाढा वि, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, कलियोगपएसोगाढा वि।

[५८ प्र] भगवन् ! (अनेक) त्र्यस्र-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[५८ उ] गौतम ! ओघादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है किन्तु न तो त्र्योज-प्रदेशावगाढ होते है, न द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ होते है और न ही कल्योज-प्रदेशावगाढ होते है।

५९. चउरंसा जहा वट्टा।

[५९] चतुरस्र-संस्थानो के विषय मे वृत्त-संस्थानो के समान कहना चाहिए।

६०. आयता णं भंते ! संठाणा० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलिओगपदेसोगाढा; विहाणादेसेण कडजुम्मपदेसोगाढा वि जाव कलियोगपएसोगाढा वि।

[६० प्र] भगवन् ! (अनेक) आयत-संस्थान कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[६० उ] गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते है किन्तु न तो त्र्योज-प्रदेशावगाढ होते हैं, न ही द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ होते है और न कल्योज-प्रदेशावगाढ होते है। विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ भी होते हैं, यावत कल्योज-प्रदेशावगाढ भी होते है।

विवेचन—परिमण्डलादि संस्थानो का अवगाहनसम्बन्धी निरूपण—अवगाह के विषय मे कथन करते हुए परिमण्डल-संस्थान बीस प्रदेशावगाढ बताया गया है। बीस मे चार का अपहार करते हुए चार शेष रहते है, अत वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होता है। इसी प्रकार आगे भी कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ और कल्योज-प्रदेशावगाढ के विषय मे भी यथायोग्य समझना चाहिए।

परिमण्डल आदि संस्थानो का पहले एकवचन-सम्बन्धी विचार किया गया है, बाद मे बहुवचन-सम्बन्धी निरूपण है। उसमे भी ओघादेश और विधानादेश—ये दो भेद किए गए है। सामान्यत सर्व-समुदायरूप कथन '**ओघादेश**' है और पृथक्-पृथक् विचार '**विधानादेश**' है। इसके कथन मे जो कृतयुग्म आदि का परिमाण बनता है, वह वस्तुस्वरूप होने से उस-उस प्रकार का कृतयुग्म, त्र्योज आदि का परिमाण बनता है।[1]

---

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३१३७-३८

इस प्रकरण के सू ५१ से ६० तक मे एकवचन-बहुवचन की अपेक्षा से पच सस्थानो का क्षेत्र सम्बन्धी विचार किया गया है।

परिमण्डलादि संस्थानों में कृतयुग्मादि समयस्थिति की प्ररूपणा

६१. परिमंडले ण भते ! संठाणे किं कडजुम्मसमयट्ठितीए, तेयोगसमयट्ठितीए, दावरजुम्मसमयट्ठितीए, कलियोगसमयट्ठितीए ?

गोयमा ! सिय कडजुम्मसमयट्ठितीए जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीए ।

[६१ प्र] भगवन् ! परिमण्डल-सस्थान कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है, त्र्योज-समय की स्थिति वाला है, द्वापरयुग्म-समय की स्थिति वाला है या कल्योज-समय की स्थिति वाला है ?

[६१ उ] गौतम ! कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है, यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाला है ।

६२. एवं जाव आयते ।

[६२] इस प्रकार यावत् आयत-सस्थान पर्यन्त जानना ।

६३. परिमंडला ण भते ! सठाणा किं कडजुम्मसमयट्ठितीया० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेण सिय कडजुम्मसमयट्ठितीया जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीया; विहाणादेसेण कडजुम्मसमयट्ठितीया वि जाव कलियोगसमयट्ठितीया वि ।

[६३ प्र] भगवन् ! (अनेक) परिमण्डल-सस्थान कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले है ? इत्यादि प्रश्न ?

[६३ उ] गौतम ! वे ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थति वाले है यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाले है। विधानादेश से कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले भी हैं, यावत् कल्योज-समय की स्थिति वाले भी हैं।

६४. एवं जाव आयता ।

[६४] इसी प्रकार आयत-सस्थान तक जानना चाहिए ।

विवेचन - परिमण्डलादि संस्थानो का काल की अपेक्षा विचार—आशय यह है कि परिमण्डलादि सस्थानो से परिणत स्कन्ध कितने काल तक ठहरते है और उन समयो मे चतुष्कादि का अपहार करने पर कितने शेष बचते है, जिससे वे कृतयुग्मादि सख्या वाले बनते है।[1]

पांच संस्थानों में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श की अपेक्षा कृतयुग्मादि प्ररूपणा

६५. परिमडले ण भंते ! संठाणे कालवण्णपज्जवेहिं कि कडजुम्मे जाव कलियोगे ?

गोयमा ! सिय कडजुम्मे, एव एएणं अभिलावेण जहेव ठितीए ।

[६५ प्र] भगवन् ! परिमण्डल-सस्थान के काले वर्ण के पर्याय क्या कृतयुग्म है, यावत् कल्योज रूप हैं ?

---

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३२३८

[६५ उ.] गौतम ! वे कदाचित् कृतयुग्मरूप होते हैं, इत्यादि जिस प्रकार पूर्वोक्त पाठ से स्थिति के सम्बन्ध मे कहा है, उसी प्रकार यहाँ कहना ।

६६. एवं नीलवण्णपज्जवेहि वि ।

[६६] इसी प्रकार नीलवर्ण के पर्यायो के विषय मे समझना चाहिए ।

६७. एवं पचहि वण्णेहिं, दोहिं गंधेहिं, पचेहिं, रसेहिं, अट्ठहिं फासेहिं जाव लुक्खफास-पज्जवेहि ।

[६७] इसी प्रकार पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श के विषय मे रूक्ष स्पर्श-पर्याय तक कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत दो सूत्रो (६५-६६) मे पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस और आठ स्पर्श, इन बीस बोलो की अपेक्षा से कृतयुग्म आदि का विचार किया गया है ।

विविध दिग्वर्ती श्रेणियों की द्रव्यार्थ से यथायोग्य संख्यात-असंख्यात अनन्तता की प्ररूपणा

६८. सेढीओ णं भते ! दव्वट्ठयाए किं सखेज्जाओ, असखेज्जाओ अणंताओ ?

गोयमा ! नो सखेज्जाओ, नो असखेज्जाओ, अणंताओ ।

[६८ प्र] भगवन् ! (आकाश-प्रदेश की) श्रेणिया द्रव्यार्थरूप से सख्यात हैं, असख्यात है या अनन्त है ?

[६८ उ] गौतम ! वे सख्यात नही, असख्यात भी नही, किन्तु अनन्त हैं ।

६९. पाईणपडीणायताओ णं भंते ! सेढीओ दव्वट्ठयाए० ?

एवं चेव ।

[६९ प्र] भगवन् ! पूर्व और पश्चिम दिशा मे लम्बी श्रेणिया द्रव्यार्थरूप मे सख्यात है ? इत्यादि प्रश्न ।

[६९ उ] गौतम ! वे पूर्ववत् (अनन्त) है ।

७०. एवं दाहिणुत्तरायताओ वि ।

[७०] इसी प्रकार दक्षिण और उत्तर मे लम्बी श्रेणियो के विषय मे भी जानना चाहिए ।

७१. एवं उड्ढमहायताओ वि ।

[७१] इसी प्रकार ऊर्ध्व और अधो दिशा मे लम्बी श्रेणियो के विषय मे भी जानना चाहिए ।

७२. लोयागाससेढीओ णं भते ! दव्वट्ठताए किं सखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, अणंताओ ?

गोयमा ! नो संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, नो अणंताओ ।

[७२ प्र] भगवन् ! लोकाकाश की श्रेणियाँ द्रव्यार्थ रूप से सख्यात हैं, असख्यात हैं या अनन्त हैं ?

[७२ उ.] गौतम ! वे सख्यात नही, अनन्त भी नही, किन्तु असंख्यात हैं ।

७३. पाईणपडीणायताओ णं भंते ! लोयागाससेढीओ दव्वट्ठताए किं संखेज्जाओ० ?

एवं चेव ।

[७३ प्र] भगवन् ! पूर्व और पश्चिम मे लम्बी लोकाकाश की श्रेणियाँ द्रव्यार्थरूप से संख्यात है ? इत्यादि प्रश्न ।

[७३ उ] गौतम ! पूर्ववत् (असख्यात) है ।

७४ एवं दाहिणुत्तरायताओ वि ।

[७४] इसी प्रकार दक्षिण और उत्तर मे लम्बी लोकाकाश की श्रेणियो के विषय मे समझना चाहिए ?

७५. एव उड्ढमहायताओ वि ।

[७५] इसी प्रकार ऊर्ध्व और अधो दिशा मे लम्बी लोकाकाश की श्रेणियो के सम्बन्ध मे जानना ।

७६. अलोयागाससेढीओ ण भंते ! दव्वट्ठताए किं सखेज्जाओ असखेज्जाओ० पुच्छा ।

गोयमा ! सखेज्जाओ, नो असखेज्जाओ, अणताओ ।

[७६ प्र] भगवन् ! अलोकाकाश की श्रेणियाँ द्रव्यार्थरूप मे सख्यात है, असख्यात है या अनन्त हैं ?

[७६ उ] गौतम ! वे सख्यात नही, असख्यात भी नही, किन्तु अनन्त है ।

७७. एवं पाईणपडीणायताओ वि ।

[७७] इसी प्रकार पूर्व और पश्चिम मे लम्बी अलोकाकाश-श्रेणियो के विषय मे भी समझना चाहिए ।

७८. दाहिणुत्तरायताओ वि ।

[७८] दक्षिण और उत्तर मे लम्बी अलोकाकाश-श्रेणियो सम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार है ।

७९. एवं उड्ढमहायताओ वि ।

[७९] ऊर्ध्व और अधोदिशा मे लम्बी अलोकाकाश की श्रेणियाँ भी इसी प्रकार है ।

विवेचन—श्रेणी : स्वरूप, प्रकार और संख्यातादि निरूपण—यद्यपि श्रेणी पक्तिमात्र को कहते हैं, तथापि यहाँ श्रेणी शब्द से आकाशप्रदेश की पक्तियाँ विवक्षित है । श्रेणी के सामान्यतया यहाँ चार प्रकार बताए है—(१) लोकाकाश या अलोकाकाश की विवक्षा किये बिना सामान्य श्रेणी (२) पूर्व और पश्चिम मे, दक्षिण और उत्तर मे तथा ऊर्ध्व और अधोदिशा मे लम्बी श्रेणी, (३) लोकाकाश-सम्बन्धी पूर्वोक्त चार श्रेणियाँ और (४) अलोकाकाश-सम्बन्धी पूर्वोक्त चार प्रकार की श्रेणियाँ । द्रव्यार्थरूप से सामान्य आकाशप्रदेश की श्रेणियाँ अनन्त है। लोकाकाश की श्रेणियाँ असख्यात है,

क्योकि लोकाकाश असख्यात-प्रदेशात्मक ही है। अलोकाकाश की श्रेणियां अनन्त है, क्योकि अलोकाकाश अनन्त-प्रदेशात्मक है।[1]

श्रेणियों तथा लोक-अलोकाकाशश्रेणियों में प्रदेशार्थ से यथायोग्य संख्यातादि प्ररूपणा

८०. सेढीओ ण भते ! पएसट्ठयाए किं सखेज्जाओ० ?

जहा दव्वट्ठयाए तहा पदेसट्ठयाए वि जाव उड्ढमहायताओ, सव्वाओ अणताओ।

[८० प्र] भगवन् ! आकाश की श्रेणियां प्रदेशार्थरूप से सख्यात है, असख्यात है अथवा अनन्त है ?

[८० उ] गौतम ! द्रव्यार्थता की वक्तव्यता के ममान प्रदेशार्थता की वक्तव्यता, यावत् ऊर्ध्व और अधोदिशा मे लम्बी सभी श्रेणियां अनन्त है, यहाँ तक कहना चाहिए।

८१. लोयागाससेढीओ, ण भते ! पदेसट्ठयाए कि सखेज्जाओ० पुच्छा।

गोयमा ! सिय असखेज्जाओ, सिय असखेज्जाओ, नो अणताओ।

[८१ प्र] भगवन् ! लोकाकाश की श्रेणियां प्रदेशार्थरूप से सख्यात है ? इत्यादि प्रश्न।

[८१ उ] गौतम ! वे कदाचित् सख्यात और कदाचित् असख्यात है, किन्तु अनन्त नही है।

८२. एवं पादीणपडीणायताओ वि, दाहिणुत्तरायताओ वि।

[८२] पूर्व और पश्चिम मे लम्बी श्रेणियाँ तथा उत्तर और दक्षिण मे लम्बी श्रेणियां भी इसी प्रकार है।

८३. उड्ढमहायताओ नो सखेज्जाओ, असखेज्जाओ, नो अणताओ।

[८३] ऊर्ध्व और अधो दिशा मे लम्बी लोकाकाश की श्रेणियां सख्यात नही और अनन्त भी नही, किन्तु असख्यात है।

८४. अलोयागाससेढीओ णं भते ! पएसट्ठयाए० पुच्छा।

गोयमा ! सिय सखेज्जाओ, सिय असखेज्जाओ, सिय अणताओ।

[८४ प्र] भगवन् ! अलोकाकाश की श्रेणियां प्रदेशार्थरूप से सख्यात है ? इत्यादि प्रश्न।

[८४ उ] गौतम ! वे कदाचित् सख्यात हैं, कदाचित् असख्यात है और कदाचित् अनन्त है।

८५ पाईणपडीणायताओ ण भते ! अलोयागाससेढीओ० पुच्छा।

गोयमा ! नो सखेज्जाओ, नो असखेज्जाओ, अणताओ।

[८५ प्र] भगवन् ! पूर्व और पश्चिम मे लम्बी अलोकाकाश की श्रेणियां (प्रदेशार्थ रूप से) सख्यात है ? इत्यादि प्रश्न।

[८५ उ] गौतम ! वे सख्यात नही, असख्यात भी किन्तु नही अनन्त है।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६५

८६. एवं दाहिणुत्तरायताओ वि ।

[८६] इसी प्रकार दक्षिण और उत्तर मे लम्बी (अलोकाकाश-श्रेणियाँ प्रदेशार्थ रूप से) समझनी चाहिए ।

८७. उड्ढमहायताओ० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय संखेज्जाओ, सिय असखेज्जाओ, सिय अणंताओ ।

[८७ प्र] भगवन् ! ऊर्ध्व और अधोदिशा मे लम्बी (अलोकाकाश-श्रेणियाँ प्रदेशार्थ रूप से) संख्यात है ? इत्यादि प्रश्न ।

[८७ उ] गौतम ! वे कदाचित् सख्यात है, कदाचित् असख्यात है और कदाचित् अनन्त है ।

विवेचन— प्रदेशार्थरूप से श्रेणियो के प्रदेश—सू ८१-८२ मे पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण मे लम्बी **लोकाकाश की** श्रेणियाँ प्रदेशार्थरूप से संख्यात तथा असख्यात है, इस विषय मे चूर्णिकार का आशय यह है कि वृत्ताकार लोक के दन्तक, जो अलोक मे गए हुए है, उनकी श्रेणियाँ सख्यात-प्रदेशात्मक है तथा अन्य श्रेणियाँ असख्यात-प्रदेशात्मक है। प्राचीन टीकाकार का कथन है कि लोकाकाश वृत्ताकार होने से पर्यन्तवर्ती श्रेणियाँ सख्यात-प्रदेश की होता है । वे अनन्त नही, क्योकि लोकाकाश के प्रदेश अनन्त नही है ।

लोकाकाश की ऊर्ध्वलोक से अधोलोक-पर्यन्त ऊर्ध्व और अधो लम्बी श्रेणी असख्यात प्रदेश की है, किन्तु सख्यात या अनन्त प्रदेश की नही है । अधोलोक के कोण से या ब्रह्मदेवलोक के तिरछे प्रान्त भाग से जो श्रेणियाँ निकलती है, वे भी इस सूत्र के कथनानुसार सख्यात प्रदेश की नही होती किन्तु असख्यात प्रदेश की ही होती है।

अलोकाकाश की सख्यात और असख्यात प्रदेश की जो श्रेणियाँ कही है, वे लोकमध्यवर्ती क्षुल्लक प्रतर के निकट आई हुई, ऊर्ध्व अधो लम्बी अधोलोक की श्रेणियो की अपेक्षा से समझनी चाहिए । इनमे से जो प्रारम्भ मे आई हुई श्रेणियाँ है, वे सख्यात-प्रदेशी है और उसके पश्चात् आई हुई श्रेणियाँ असख्यात-प्रदेशी है । तिरछी लम्बी अलोकाकाश की श्रेणियाँ तो अनन्तप्रदेशात्मक ही होती हैं ।[1]

सामान्य श्रेणियों तथा लोक-अलोकाकाशश्रेणियों में यथायोग्य सादि-सान्तादि प्ररूपणा

८८ सेढीओ णं भंते ! किं सादीयाओ सपज्जवसियाओ, सादीयाओ अपज्जवसिताओ, अणादीयाओ सपज्जवसियाओ, अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ?

गोयमा ! नो सादीयाओ सपज्जवसियाओ, नो सादीयाओ अपज्जवसियाओ, नो अणादीयाओ सपज्जवसियाओ, अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ।

[८८ प्र] भगवन् ! क्या श्रेणियाँ सादि-सपर्यवसित (आदि और अन्त-सहित) है, अथवा सादि-अपर्यवसित (आदि-सहित और अन्त-रहित) है या वे अनादि-सपर्यवसित (आदि-रहित और अन्तसहित) है, अथवा अनादि-अपर्यवसित (आदि और अन्त से रहित) है ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६५ (ख) श्रीमद्भगवतीसूत्रम् (गुज अनु) खण्ड ४, पृ २११-१२

[८८ उ.] गौतम ! वे न तो सादि-सपर्यवसित है, न सादि-अपर्यवसित हैं और न अनादि-सपर्यवसित हैं, किन्तु अनादि-अपर्यवसित है।

८९. एवं जाव उड्ढमहायताओ।

[८९] इसी प्रकार का कथन यावत् ऊर्ध्व और अधो दिशा मे लम्बी श्रेणियो के विषय मे भी जानना चाहिए।

९० लोयागाससेढीओ णं भंते ! किं सादीयाओ सपज्जवसियाओ० पुच्छा।

गोयमा ! सादीयाओ सपज्जवसियाओ, नो सादीयाओ अपज्जवसियाओ, नो अणादीयाओ सपज्जवसियाओ, नो अणादीयाओ अपज्जवसियाओ।

[९० प्र.] भगवन् ! लोकाकाश का श्रेणियाँ सादि-सपर्यवसित है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[९० उ] गौतम ! वे सादि-सपर्यवसित (आदि-अन्त सहित) है, किन्तु न तो सादि-अपर्यवसित है, न अनादि-सपर्यवसित है और न ही अनादि-अपर्यवसित है।

९१. एवं जाव उड्ढमहायताओ।

[९१] इसी प्रकार का कथन यावत् ऊर्ध्व और अधो लबी लोकाकाश-श्रेणियो के विषय मे समझना चाहिए।

९२. अलोयागाससेढीओ ण भते ! किं सादीयाओ० पुच्छा।

गोयमा ! सिय सादीयाओ सपज्जवसियाओ, सिय सादीयाओ अपज्जवसियाओ, सिय अणादीयाओ सपज्जवसियाओ, सिय अणादीयाओ अपज्जवसियाओ।

[९२ प्र] भगवन् ! अलोकाकाश की श्रेणियाँ सादि-सपर्यवसित है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[९२ उ.] गौतम ! वे कदाचित् सादि-सपर्यवसित है, कदाचित् सादि-अपर्यवसित है, कदाचित् अनादि-सपर्यवसित है और कदाचित् अनादि-अपर्यवसित है।

९३. पाईणपडीणायताओ दाहिणुत्तरायताओ य एवं चेव, नवरं नो सादीयाओ सपज्जवसियाओ, सिय सादीयाओ अपज्जवसियाओ, सेस त चेव।

[९३] पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा दक्षिण-उत्तर लम्बी अलोकाकाश-श्रेणियाँ भी इसी प्रकार समझनी चाहिए। किन्तु इनमे विशेषता यह है कि ये सादि-सपर्यवसित नही है और कदाचित् सादि-अपर्यवसित है। शेष सब पूर्ववत् है।

९४. उड्ढमहायताओ जहा ओहियाओ तहेव चउभंगो।

[९४] ऊर्ध्व और अधो लम्बी श्रेणियो के औघिक श्रेणियो के समान चार भग जानने चाहिए।

विवेचन—श्रेणियो मे सादि-अनादित्व प्ररूपणा—किसी भी प्रकार के विशेषण से रहित सामान्य श्रेणियो मे चार भगो मे से अनादि-अपर्यवसित भग पाया जाता है, शेष तीन भग नही पाए जाते। लोकाकाश की श्रेणियो मे 'सादि-सपर्यवसित' भग पाया जाता है, क्योकि लोकाकाश परिमित

है। अलोकाकाश की श्रेणियो में चारो भगो का सद्भाव बताया गया है। वह यो घटित हो सकता है—मध्यलोकवर्ती क्षुल्लकप्रतर के समीप आई हुई ऊर्ध्व-अधो लम्बी श्रेणियो की अपेक्षा प्रथम भग—'सादि-सान्त' बनता है। लोकान्त से प्रारम्भ होकर चारो ओर जाती हुई श्रेणियो की अपेक्षा द्वितीय भग—'सादि-अनन्त' बनता है। लोकान्त के निकट सभी श्रेणियो का अन्त होने से उनकी अपेक्षा तृतीय भग—'अनादि-सान्त' घटित होता है। लोक को छोडकर जो श्रेणियाँ हैं, उनकी अपेक्षा चतुर्थ भग—'अनादि-अनन्त' घटित होता है।[1]

अलोक मे तिरछी श्रेणियो का सादित्व होने पर भी सपर्यवसितत्व (सान्त) न होने से प्रथम भग घटित नही होता, शेष तीन भग घटित होते है।

सामान्य श्रेणियों तथा लोक-अलोकाकाशश्रेणियों में द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से कृतयुग्मादि-प्ररूपणा

९५. सेढीओ ण भते ! दव्वट्ठयाए कि कडजुम्माओ, तेओयाओ० पुच्छा।

गोयमा ! कडजुम्माओ, नो तेयोयाओ, नो दावरजुम्माओ, नो कलियोगाओ।

[९५ प्र] भगवन् ! आकाश की श्रेणियाँ द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म है, त्र्योज हैं, द्वापरयुग्म है अथवा कल्योज हैं ?

[९५ उ] गौतम ! वे कृतयुग्म हैं, किन्तु न तो त्र्योज है, न द्वापरयुग्म है और न ही कल्योज है।

९६ एव जाव उड्ढमहायताओ।

[९६] इसी प्रकार ऊर्ध्व और अधो लम्बी श्रेणियो तक के विषय मे कहना चाहिए।

९७. लोयागाससेढीओ एव चेव।

[९७] लोकाकाश की श्रेणियाँ भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

९८. एव अलोयागाससेढीओ वि।

[९८] इसी प्रकार अलोकाकाश की श्रेणियो के विषय मे भी जानना चाहिए।

९९. सेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए कि कडजुम्माओ० ?

एव चेव।

[९९ प्र] भगवन् ! आकाश की श्रेणियाँ प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[९९ उ.] पूर्ववत् जानना चाहिए।

१००. एव जाव उड्ढमहायताओ।

[१००] इसी प्रकार यावत् ऊर्ध्व और अधो लम्बी श्रेणियो तक के विषय मे कहना चाहिए।

१०१. लोयागाससेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए० पुच्छा।

गोयमा ! सिय कडजुम्माओ, नो तेयोयाओ, सिय दावरजुम्माओ, नो कलिओयाओ।

1. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६६

[१०१ प्र] भगवन् ! लोकाकाश की श्रेणियाँ प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१०१ उ] गौतम ! वे कदाचित् कृतयुग्म हैं और कदाचित् द्वापरयुग्म है, किन्तु न तो त्र्योज हैं और न कल्योज ही है।

१०२. एवं पादीणपडीणायताओ वि, दाहिणुत्तरायताओ वि।

[१०२] इसी प्रकार पूर्व-पश्चिम लम्बी तथा दक्षिण-उत्तर लम्बी लोकाकाश की श्रेणियो के विषय मे भी समझना चाहिए।

१०३. उड्ढमहायताओ णं० पुच्छा।

गोयमा ! कडजुम्माओ, नो तेयोगाओ, नो दावरजुम्माओ, नो कलियोगाओ।

[१०३ प्र] भगवन् ! ऊर्ध्व और अधो लम्बी लोकाकाश की श्रेणियाँ कृतयुग्म है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१०३ उ] गौतम ! वे कृतयुग्म है, किन्तु न तो त्र्योज है, न द्वापरयुग्म है और न ही कल्योज है।

१०४. अलोयागाससेढीओ ण भंते ! पदेसट्ठताए० पुच्छा।

गोयमा ! सिय कडजुम्माओ जाव सिय कलियोयाओ।

[१०४ प्र] भगवन् ! अलोकाकाश की श्रेणियाँ प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१०४ उ] गौतम ! वे कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज है।

१०५. एवं पाईणपडीणायताओ वि।

[१०५] इसी प्रकार पूर्व-पश्चिम लम्बी अलोकाकाश श्रेणियो के विषय मे समझना चाहिए।

१०६. एवं दाहिणुत्तरायताओ वि।

[१०६] दक्षिण-उत्तर लम्बी श्रेणियाँ भी इसी प्रकार है।

१०७. उड्ढमहायताओ वि एवं चेव, नवर नो कलियोयाओ, सेसं त चेव।

[१०७] ऊर्ध्व और अधो लम्बी अलोकाकाश श्रेणियाँ भी इसी प्रकार है किन्तु वे कल्योज रूप नही है, शेष सब पूर्ववत् है।

विवेचन—श्रेणियो मे कृतयुग्मादि प्ररूपणा—रुचक प्रदेशो से प्रारम्भ होकर जो पूर्व और दक्षिण गोलार्द्ध है, वह पश्चिम और उत्तर गोलार्द्ध के बराबर है। इसलिए पूर्व-पश्चिम श्रेणियाँ और दक्षिण-उत्तर श्रेणियाँ समसख्यक प्रदेशो वाली है। उनमे से कोई कृतयुग्म प्रदेशो वाली है तथा कोई द्वापरयुग्म प्रदेशो वाली है, किन्तु त्र्योज और कल्योज प्रदेशो वाली नही है। इसके लिए प्रदेशो की असद्भाव-स्थापना बता कर इसी बात को स्पष्ट कर दिया है।

अलोकाकाश की श्रेणियो के प्रदेशो मे कृतयुग्मादि चारो भेद पाए जाते है। इसमे वस्तुस्वभाव ही मुख्य है।[1]

श्रेणी के प्रकारान्तर से सात भेद

१०८. कति णं भंते ! सेढीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—उज्जुआयता, एगतोवंका, दुहतोवंका, एगओखहा, दुहतोखहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला।

[१०८ प्र] भगवन् ! श्रेणियाँ कितनी कही है ?

[१०८ उ] गौतम ! श्रेणियाँ सात कही है। यथा-(१) ऋज्वायता, (२) एकतोवक्रा, (३) उभयतोवक्रा, (४) एकत खा, (५) उभयत खा, (६) चक्रवाल और (७) अर्द्धचक्रवाल।

विवेचन -श्रेणी : उसके प्रकार और स्वरूप—श्रेणियो का वर्णन इससे पूर्व किया जा चुका है। किन्तु यहाँ प्रकारान्तर से श्रेणियो का वर्णन किया गया है। यहाँ उनके सात भेद बताए है। जिसके अनुसार जीव और पुद्गलो की गति होती है, उस आकाशप्रदेश की पंक्ति को श्रेणी कहते है। जीव और पुद्गल एक स्थान से दूसरे स्थान पर श्रेणी के अनुसार ही जाते है, विश्रेणी (विरुद्ध श्रेणी) से गति नही होती।

१. ऋज्वायता—जिस श्रेणी से जीव ऊर्ध्वलोक आदि से अधोलोक आदि मे सीधे चले जाते है, उसे ऋज्वायता श्रेणी कहा जाता है। इस श्रेणी से जाने वाला जीव एक ही समय मे गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है। रेखाचित्र [—] इस प्रकार है।

२. एकतोवक्रा—जिस श्रेणी से जीव पहले सीधा जाए और फिर वक्रगति प्राप्त करके दूसरी श्रेणी मे प्रवेश करे, उसे एकतोवक्रा कहते है। इस श्रेणी से जाने वाले जीव को दो समय लगते है। रेखाचित्र √ इस प्रकार है।

३. उभयतोवक्रा—जिस श्रेणी से जाने वाला जीव दो वार वक्रगति करे, उसे उभयतोवक्रा कहते है। इस श्रेणी से गति करने वाले जीव को तीन समय लगते है। यह श्रेणी ऊर्ध्वलोक की आग्नेयी (पूर्व और दक्षिण के मध्यकोण) विदिशा से अधोलोक की वायव्य (उत्तर-पश्चिम-कोण) विदिशा मे उत्पन्न होने वाले जीव की होती है। यह पहले समय के आग्नेयी विदिशा से तिरछा पश्चिम की ओर दक्षिण दिशा के नैर्ऋत्य कोण की ओर जाता है। फिर दूसरे समय मे वहाँ से तिरछा होकर उत्तर-पश्चिम वायव्य कोण की ओर जाता है और तीसरे समय मे नीचे वायव्यकोण की ओर जाता है। यह तीन समय की गति त्रसनाडी अथवा उससे बाहर के भाग मे होती है।

४. एकतःखा—जिस श्रेणी से जीव या पुद्गल त्रसनाडी के बाये पक्ष से त्रसनाडी मे प्रविष्ट होते है, फिर त्रसनाडी से जाकर उसके बायी ओर वाले भाग मे उत्पन्न होते है उसे एकत.खा श्रेणी कहा जाता है। इस श्रेणी के एक ओर त्रसनाडी के बाहर का 'ख' अर्थात् आकाश आया हुआ होता

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६७

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३२४७

है, इसलिए इसे एकत:खा कहते हैं। इस श्रेणी मे दो, तीन अथवा चार समय की वक्रगति होने पर भी क्षेत्र की दृष्टि से इसे पृथक् कहा गया है। रेखाचित्र इस प्रकार है—|꠰|

५. **उभयत खा**—जिस श्रेणी से जीव, त्रसनाडी के बाहर से बाये पक्ष मे प्रविष्ट हो कर त्रसनाडी से जाते हुए दाहिने पक्ष मे उत्पन्न होते है, उस श्रेणी को उभयत:खा कहते हैं, क्योकि इस श्रेणी को त्रसनाडी के बाहर बाँई ओर दाहिनी ओर के आकाश का स्पर्श होता है। रेखाचित्र इस प्रकार है—|∽|

६. **चक्रवाल** जिस श्रेणी से परमाणु आदि गोल चक्कर लगाकर उत्पन्न होते हैं, उसे चक्रवाल-श्रेणी कहते है। रेखाचित्र इस प्रकार है—|○

७. **अर्द्धचक्रवाल**—जिस श्रेणी से परमाणु आदि आधा चक्कर लगाकर उत्पन्न होते हैं, उसे अर्द्ध-चक्रवाल श्रेणी कहते हैं।[१] रेखाचित्र यो है—|◡|

परमाणु-पुद्गल तथा द्विप्रदेशिकादि स्कन्धों की चौवीस दण्डकों में अनुश्रेणि-गतिप्ररूपणा

१०९. **परमाणुपोग्गलाणं भंते ! किं अणुसेढिं गती पवत्तति, विसेढिं गती पवत्तति ?**

गोयमा ! अणुसेढिं गती पवत्तति, नो विसेढिं गती पवत्तति ।

[१०९ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गलो की गति अनुश्रेणि (—आकाश-प्रदेशो की श्रेणी के अनुसार) होती है या विश्रेणि (—आकाश-प्रदेशो की श्रेणी के विपरीत) होती है ?

[१०९ उ] गौतम ! परमाणु-पुद्गलो की गति अनुश्रेणी (—श्रेणी के अनुसार) होती है, विश्रेणि गति (—श्रेणी के बिना) नही होती।

११०. **दुपएसियाण भंते ! खंधाण किं अणुसेढिं गती पवत्तति, विसेढिं गती पवत्तति ?**

एवं चेव ।

[११० प्र] भंते ! द्विप्रदेशिक स्कन्धो की गति अनुश्रेणि होती है या विश्रेणि (श्रेणी के बिना) होती है ?

[११० उ] पूर्वोक्त कथनानुसार जानना।

१११. **एवं जाव अणंतपएसियाणं खंधाणं ।**

[१११] इसी प्रकार यावत् अनन्त-प्रदेशिक स्कन्ध-पर्यन्त जानना।

११२. **नेरइयाण भंते ! किं अणुसेढिं गती पवत्तति, विसेढिं गती पवत्तति ?**

एवं चेव ।

[११२ प्र] भगवन् ! नैरयिको की गति अनुश्रेणि होती है या विश्रेणि ?

[११२ उ] गौतम ! पूर्ववत् समझना।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६८

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ ३२४९-३२५०

११३. एवं जाव वेमाणियाणं।

[११३] इसी प्रकार वैमानिक-पर्यन्त जानना।

विवेचन—श्रेणि और विश्रेणि—जीव और पुद्गल एक स्थान से दूसरे स्थान में श्रेणी के अनुसार (अनुश्रेणि) ही जाते हैं, विश्रेणी से (श्रेणी के विपरीत) नहीं। वृत्तिकार के अनुसार अनुकूल यानी पूर्वादि दिशा के अभिमुख आकाशप्रदेश की श्रेणि को अनुश्रेणि और विरुद्ध यानी विदिशा के आश्रित जो श्रेणि हो उसे विश्रेणि कहते हैं।[1]

चौवीस दण्डकों की आवाससंख्या-प्ररूपणा

११४. इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता ?

गोयमा ! तीसं निरयावाससयसहस्सा पन्नत्ता। एव जहा पढमसते पचमुद्देसए (स० १ उ० ५ सु० २-५) जाव अणुत्तरविमाण त्ति।

[११४ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी मे कितने लाख नरकावास कहे है ?

[११४ उ] गौतम ! उसमे तीस लाख नरकावास कहे है, इत्यादि प्रथम शतक के पाचवे उद्देशक (के सू. २ से ५ तक) मे कहे अनुसार यावत् अनुत्तर-विमान तक जानना चाहिए।

द्वादशविध गणिपिटकों का अतिदेश पूर्वक निर्देश

११५. कतिविधे णं भंते ! गणिपिडए पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुवालसंगे गणिपिडए पन्नत्ते, त जहा आयारो जाव दिट्ठिवाओ।

[११५ प्र] भगवन् ! गणिपिटक कितने प्रकार का कहा है ?

[११५ उ] गौतम ! गणिपिटक बारह-अगरूप (द्वादशाग रूप) कहा है। यथा - आचाराग यावत् दृष्टिवाद।

११६. से किं तं आयारो ?

आयारे ण समणाणं निग्गथाणं आयारगो० एव अगपरूवणा भाणियव्वा जहा नंदीए। जाव

सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्तिमीसओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो एस विही होइ अणुयोगे ॥ १ ॥

[११६ प्र] भगवन् ! आचाराग किसे कहते है ?

[११६ उ] आचाराग-सूत्र मे श्रमण-निर्ग्रन्थो के आचार, गोचर-विधि (भिक्षाविधि) आदि चारित्र-धर्म की प्ररूपणा की गई है। नन्दीसूत्र के अनुसार सभी अग-सूत्रो का वर्णन जानना चाहिए, यावत्—सुत्तत्थो खलु पढमो (गाथार्थ—) सर्वप्रथम सूत्र का अर्थ कहना चाहिए। दूसरे मे निर्युक्ति-मिश्रित अर्थ कहना चाहिए और फिर तीसरे मे निरवशेष अर्थात् सम्पूर्ण अर्थ का कथन करना चाहिए। यह अनुयोग (सूत्रानुसार अर्थ प्रदान करने) की विधि है ॥ १ ॥

१. (क) श्रीमद् भगवतीसूत्रम्, खण्ड ४, पृ २१४
(ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८६८

विवेचन—गणिपिटक : स्वरूप और अंग—गणि अर्थात् आचार्य के लिए, जो पिटक अर्थात् रत्नो के करण्डक के समान पिटारा हो, उसे **'गणिपिटक'** कहते हैं। गणिपिटक के आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक बारह अंगरूप भेद कहे है। नन्दीसूत्र मे आचारांग आदि मे वर्णित विषयो का कथन है। जैसे कि—आचारांगसूत्र मे श्रमण-निर्ग्रन्थो के अनेकविध आचार, गोचर (भिक्षाविधि) विनय, विनयफल, ग्रहणशिक्षा, आसेवनशिक्षा आदि का वर्णन किया है। इसी प्रकार अन्य अंगशास्त्रो का वर्णन भी नन्दीसूत्र से जान लेना चाहिए।[1]

नन्दीसूत्र-वर्णित अनुयोगविधि—यहाँ मूलपाठ मे **'सुत्तत्थो खलु पढमो'** इत्यादि गाथा द्वारा नन्दीसूत्र मे वर्णित अनुयोगविधि अर्थात्—गुरुदेव द्वारा शिष्य को दी जाने वाली वाचना की विधि बताई गई है। वह इस प्रकार है—(१) सर्वप्रथम मूलसूत्र और उसका अर्थ मात्र कहना चाहिए। नवदीक्षित या नवागत शिष्यो को मतिविभ्रम न हो जाए, इसलिए पहले-पहल उन्हे विस्तृत विवेचन न करके केवल सूत्रार्थमात्र कहना उचित है। (२) इसके पश्चात् सूत्रस्पर्शिक (सूत्रानुसारिणी) निर्युक्ति (टीका आदि व्याख्या) सहित अर्थ कहना चाहिए। यह द्वितीय अनुयोग है। (३) तदनन्तर प्रसंगानुप्रसंग के कथन से समग्र व्याख्या कहनी चाहिए। यह तृतीय अनुयोग है। मूलसूत्र को अनुकूल अर्थ के साथ संयोजित करना 'अनुयोग' है। अनुयोग की यह विधि है।[2]

नैरयिकादि सेन्द्रियादि, सकायिकादि, आयुष्य-बन्धक-अबन्धकों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा

११७. एएसि णं भंते ! नेरतियाणं जाव देवाणं सिद्धाण य पंचगतिसमासेणं कयरे कतरेहिंतो० पुच्छा ।

गोयमा ! अप्पाबहुयं जहा बहुवत्तव्वताए अट्ठगइसमासऽप्पाबहुगं च ।

[११७ प्र] भगवन् ! नैरयिक यावत् देव और सिद्ध इन पांचो गतियो (गति-समूह) के जीवो मे कौन जीव किन जीवो से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[११७ उ] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के तीसरे बहुवक्तव्यता-पद के अनुसार तथा आठ गतियो के समुदाय का भी अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

११८. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं एगिंदियाण जाव अणिंदियाण य कतरे कतरेहिंतो० ?

एयं पि जहा बहुवत्तव्वयाए तहेव ओहियं पयं भाणितव्वं ।

[११८ प्र] भगवन् ! सइन्द्रिय, एकेन्द्रिय यावत् अनिन्द्रिय जीवो मे कौन जीव, किन जीवो से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[११८ उ] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के तीसरे बहुवक्तव्यता-पद के अनुसार औघिक पद कहना चाहिए।

११९. सकाइयअप्पाबहुगं तहेव ओहियं भाणितव्वं ।

[११९] सकायिक जीवो का अल्पबहुत्व भी औघिक पद के अनुसार जानना चाहिए।

---

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ ३२६२

२ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८६९

१२०. एएसि णं भंते ! जीवाणं पोग्गलाणं जाव सव्वपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो० ?
जहा बहुवत्तव्वयाए ।

[१२० प्र.] भगवन् ! इन जीवो और पुद्गलो, यावत् सर्वपर्यायो मे कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[१२० उ] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के तृतीय बहुवक्तव्यता पद के अनुसार जानना चाहिए ।

१२१. एएसि णं भंते ! जीवाण आउयस्स कम्मगस्स बधगाणं अबंधगाणं० ?
जहा बहुवत्तव्वयाए जाव आउयस्स कम्मगस्स अबधगा विसेसाहिया ।
सेवं भंते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। पचवीसइमे सए : ततिओ उद्देसो समत्तो ।।

[१२१ प्र] भगवन् ! आयुकर्म के बन्धक और अबन्धक जीवो मे कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[१२१ उ.] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के तीसरे बहुवक्तव्यता पद के अनुसार, यावत् आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं तक कहना चाहिए ।

विवेचन—पांच के अल्पबहुत्व का अतिदेश -नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और सिद्ध, इन पाचो के अल्पबहुत्व के लिए यहाँ प्रज्ञापनासूत्र के तीसरे पद का अतिदेश किया गया है। प्रज्ञापना-कथित वक्तव्यता का सक्षिप्त सार निम्नोक्त गाथा मे बताया गया है -

नर-नेरइया देवा सिद्धा, तिरिया कमेण इय होती ।।
थोवमसख-असखा, अणतगुणिया अणंतगुणा ।।

अर्थात्—सबसे थोडे मनुष्य है। उनसे नैरयिक असख्यातगुणे है, उनसे देव असख्यातगुणे हैं, और उनसे सिद्ध अनन्तगुणे है, तथा उनसे तिर्यञ्च अनन्तगुणे है।[1]

आठ गतियाँ और उनका अल्पबहुत्व- आठ गतियो के नाम एक गाथा के अनुसार इस प्रकार है—

नरकगतिस्तथातिर्यक् नरामरगतयः ।
स्त्री-पुरुषभेदाद्द्वेधा सिद्धिगतिश्चेत्यष्टौ ।।

अर्थात्--(१) नरकगति, (२) पुरुष-तिर्यञ्च, (३) स्त्री-तिर्यञ्च, (तिर्यञ्चनी) (४) पुरुष-मनुष्यगति, (५) स्त्री-मनुष्यगति, (६) पुरुष-देवगति, (७) स्त्री-देवगति और (८) सिद्धगति ।

इन आठो गतियो का अल्पबहुत्व इस प्रकार है--सबसे अल्प मनुष्यिनी (स्त्रियाँ) है, उनसे मनुष्य असख्यातगुणे है, उनसे नैरयिक असख्यातगुणे है, उनसे तिर्यञ्चिनी असख्यातगुणे है, उनसे

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६९

देव असख्यातगुणे है, उनसे देवियाँ सख्यातगुणी है, उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं और उनसे तिर्यञ्च अनन्तगुणे है।[1]

सइन्द्रिय आदि का अल्पबहुत्व—सइन्द्रिय, एकेन्द्रिय आदि का अल्पबहुत्व एक गाथा मे बताया गया है। इसके लिए भी प्रज्ञापनासूत्र के तीसरे पद का अतिदेश किया है। उसका साराश इस प्रकार है—

पण-चउ-ति-दुय-अणिदिय-एगिंदि-सइंदिया कमा हुंति।
थोवा तिण्णि य अहिया, दो णतगुणा विसेसाहिया॥

अर्थात्– सबसे अल्प पचेन्द्रिय जीव है, उनसे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक है उनसे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक है, उनसे अनिन्द्रिय अनन्तगुणे है उनसे एकेन्द्रिय अनन्तगुणे है और उनसे सइन्द्रिय विशेषाधिक है।[2]

सकायिक जीवो का अल्पबहुत्व—सकायिक जीवो का अल्पबहुत्व भी प्रज्ञापनासूत्र के अतिदेश पूर्वक बताया गया है। उसका साराश इस प्रकार है—

तस-तेउ-पुढवि-जल-वाउ-काय-अकाय-वणस्सइ-सकाया।
थोव असखयातगुणाहिय तिण्णि उ दो णतगुण अहिया॥

अर्थात्—सबसे अल्प त्रसकायिक है, उनसे तेजस्कायिक जीव असख्यातगुणे है, उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक, उत्तरोत्तर विशेषाधिक है, उनसे अकायिक अनन्तगुणे हैं, उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे है और उनसे सकायिक विशेषाधिक है।[3]

जीव, पुद्गल आदि का अल्पबहुत्व--अन्त मे जीव, पुद्गल, अद्धा-समय, सर्वद्रव्य, सर्वप्रदेश और सर्व-पर्याया का अल्पबहुत्व बताया गया है। वह सक्षेप मे इस प्रकार है—

जीवा पोग्गल-समया, दव्व-पएसा य पज्जवा चेव।
थोवा णंताणता विसेसा अहिया दुवेऽणंता॥

अर्थात् – सबसे थोडे जीव है, उनसे पुद्गल अनन्तगुणे है, उनसे अद्धा समय अनन्तगुणे है, उससे सर्वद्रव्य विशेषाधिक है, उनसे सर्वप्रदेश अनन्तगुणे है और उनसे सर्व-पर्याय अनन्तगुणे है।[4]

आयुकर्म के बधक अबधक आदि का अल्पबहुत्व—इसके पश्चात् सबसे अन्त मे बन्धक, अबन्धक, पर्याप्त-अपर्याप्त, सुप्त-जाग्रत, समवहत-(समुद्घात को प्राप्त)-असमवहत, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयोगयुक्त (इन्द्रियो के उपयोग वाले)—नो इन्द्रियोपयोगयुक्त, साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त, इन जीवो के अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। इसके लिए भी प्रज्ञापनासूत्र के तृतीय पद का अतिदेश किया गया है।[5]

॥ पच्चीसवाँ शतक : तृतीय उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८६९
२ वही, पत्र ८६९
३. वही, पत्र ८६९
४ वही, पत्र ८६९
५ वही, पत्र ८७०

चउत्थो उद्देसओ : जुम्म

चतुर्थ उद्देशक : युग्म-प्ररूपणा

चार युग्म और उनके अस्तित्व का कारण

१. [१] कति णं भंते ! जुम्मा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि जुम्मा पन्नत्ता, तजहा—कडजुम्मे जाव कलियोए ।

[१-१ प्र] भगवन् ! युग्म कितने कहे है ?

[१-१ उ] गौतम ! युग्म चार प्रकार के कहे है, यथा - कृतयुग्म यावत् कल्योज ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—चत्तारि जुम्मा पन्नत्ता तंजहा कडजुम्मे० ?

जहा अट्ठारसमसते चउत्थे उद्देसए (स० १८ उ० ४ सु० [२]) तहेव जाव से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ० ।

[१-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि युग्म चार है, कृतयुग्म (से लेकर) यावत् कल्योज ।

[१-२ उ] गौतम ! अठारहवे शतक के चतुर्थ उद्देशक (के सू ४-२) मे कहे अनुसार यहाँ जानना, यावत् इसीलिए हे गौतम ! इस प्रकार कहा है ।

विवेचन—कृतयुग्म आदि का स्वरूप—राशि अथवा सख्या को युग्म कहते है । जिस राशि मे से चार-चार का अपहार करने पर अन्त मे चार बाकी रहे, उस राशि को 'कृतयुग्म' कहते हे, तीन शेष रहे, उसे त्र्योज', दो शेष रहे, उसे 'द्वापरयुग्म' और एक शेष रहे उसे 'कल्योज' कहते हे ।[1]

चौवीस दण्डकों और सिद्धो में युग्मभेद-निरूपण

२. [१] नेरतियाणं भंते ! कति जुम्मा० ?

गोयमा ! चत्तारि जुम्मा पन्नत्ता, तजहा—कडजुम्मे जाव कलियोए ।

[२-१ प्र] भगवन् ! नैरयिको मे कितने युग्म कहे गये है ?

[२-१ उ] गौतम ! उनमे चार युग्म कहे है । यथा—कृतयुग्म यावत् कल्योज ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चई—नेरतियाणं चत्तारि जुम्मा पन्नत्ता, तंजहा—कडजुम्मे० ?

अट्ठो तहेव ।

---

१ श्रीमद् भगवतीसूत्र, खण्ड ४, पृ २१५

[२-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि नैरयिको में चार युग्म होते हैं, यथा—कृतयुग्म इत्यादि ।

[२-२ उ] वही पूर्वोक्त कारण यहाँ कहना चाहिए ।

३. एवं जाव वाउकाइयाणं ।

[३] इसी प्रकार यावत् वायुकायिक पर्यन्त जानना ।

४. [१] वणस्सतिकाइयाणं भंते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! वणस्सतिकाइया सिय कडजुम्मा, सिय तेयोया, सिय दावरजुम्मा, सिय कलियोया ?

[४-१ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिको मे कितने युग्म कहे हैं ?

[४-१ उ] गौतम ! वनस्पतिकायिक कदाचित् कृतयुग्म होते हैं, कदाचित् त्र्योज होते हैं, कदाचित् द्वापरयुग्म और कदाचित् कल्योज होते है ।

[२] से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ— वणस्सइकाइया जाव कलियोगा ?

गोयमा ! उववायं पडुच्च, से तेणट्ठेणं०, त चेव ।

[४-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते हैं कि वनस्पतिकायिक कदाचित् कृतयुग्म यावत् कल्योज होते हैं ?

[४-२ उ] गौतम ! उपपात (जन्म) की अपेक्षा ऐसा कहा है कि वनस्पतिकायिक कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज होते है ।

५ बेंदियाणं जहा नेरतियाणं ।

[५] द्वीन्द्रिय जीवो की वक्तव्यता नैरयिको के समान है।

६. एव जाव वेमाणियाणं ।

[६] इसी प्रकार (त्रीन्द्रिय से लेकर) यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए ।

७. सिद्धाणं जहा वणस्सतिकाइयाण ।

[७] सिद्धो का कथन वनस्पतिकायिको के समान है ।

विवेचन—निष्कर्ष और कारण वनस्पतिकायिको और सिद्धो को छोडकर शेष सर्व जीवो मे कृतयुग्म आदि चारो युग्म पाये जाते है । वनस्पतिकायिक जीव अनन्त है, इसलिए वे स्वाभाविक रूप से कृतयुग्म ही होते है । तथापि दूसरी गति से आकर उनमे एक-दो इत्यादि जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिए वे जीव कृतयुग्म आदि चारो राशि रूप कहे गए है । इसी कारण से यहाँ कहा गया है कि "वणस्सइकाइया सियकडजुम्मा उववाय पडुच्च" । यद्यपि वनस्पतिकायिक जीव मरण की अपेक्षा भी कृतयुग्मादि चारो राशि रूप होते है, किन्तु उसकी यहाँ विवक्षा नही की है ।[1]

१. (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मू पा टि), पृ ९८८

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७३

षट् द्रव्य और उनमें द्रव्यार्थ तथा प्रदेशार्थ रूप से युग्मभेद निरूपण

८. कतिविधा णं भंते ! सव्वदव्वा पन्नत्ता ?

गोयमा ! छव्विहा सव्वदव्वा पन्नत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाये अधम्मत्थिकाये जाव अद्धासमये ।

[८ प्र] भगवन् ! सर्व द्रव्य कितने प्रकार के कहे है ?

[८ उ] गौतम ! सर्व द्रव्य छह प्रकार के कहे है। यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत अद्धासमय (काल)।

९. धम्मत्थिकाये णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोगे ?

गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, कलियोए ।

[९ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय क्या द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म यावत् कल्योज रूप है ?

[९ उ] गौतम ! धर्मास्तिकाय द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म नही, त्र्योज भी नही है और द्वापर-युग्म भी नही है, किन्तु कल्योज रूप है।

१०. एव अधम्मत्थिकाये वि ।

[१०] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के विषय मे समझना चाहिए।

११. एवं आगासत्थिकाये वि ।

[११] आकाशास्तिकाय विषयक कथन भी इसी प्रकार है।

१२. जीवत्थिकाए णं० पुच्छा ।

गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, नो कलियोए ।

[१२ प्र] भगवन् ! जीवास्तिकाय द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[१२ उ] गौतम ! वह द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नही है।

१३ पोग्गलत्थिकाये ण भंते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मे, जाव सिय कलियोए ।

[१३ प्र] भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[१३ उ] गौतम ! वह द्रव्यार्थ रूप से कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज रूप है।

१४. अद्धासमये जहा जीवत्थिकाये ।

[१४] अद्धा-समय (काल) का कथन जीवास्तिकाय के समान है।

१५. धम्मत्थिकाये णं भंते ! पएसट्ठताए किं कडजुम्मे० पुच्छा ।

गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे ।

[१५ प्र.] भगवन् ! धर्मास्तिकाय प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[१५ उ] गौतम ! (वह प्रदेशार्थरूप से) कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं है।

१६. एवं जाव श्रद्धासमये।

[१६] इसी प्रकार यावत् अद्धा-समय तक जानना चाहिए।

विवेचन—निष्कर्ष और विश्लेषण—धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्यरूप से एक-एक हैं। इसलिए उनमे चार-चार का अपहार नही होता, केवल एक ही अवस्थित रहता है। इसलिये ये तीनो कल्योजरूप है। जीवास्तिकाय अनन्त होने से कृतयुग्म है। पद्गलास्तिकाय यद्यपि अनन्त है, तथापि उसके सघात (मिलने) और भेद (पृथक् होने) के कारण उसकी अनन्तता अनवस्थित है, इसलिए वह कृतयुग्मादि चारो राशिरूप होता है। अद्धासमय (काल) मे अतीत-अनागतकाल मे अवस्थित अनन्तता होने से कृतयुग्मता है।

प्रदेशार्थरूप मे सभी द्रव्य कृतयुग्म है, क्योकि इनमे यथायोग्य असख्यातता और अनन्तता अवस्थित है।[1]

धर्मास्तिकायादि षट्द्रव्यों में अल्पबहुत्व का प्रज्ञापनासूत्रातिदेशपूर्वक निरूपण

१७. एएसि ण भते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय जाव अद्धासमयाणं दव्वट्ठयाए० ?

एएसि अप्पाबहुगं जहा बहुवत्तव्वयाए तहेव निरवसेस।

[१७ प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत् अद्धासमय, इन षट् द्रव्यो मे द्रव्यार्थरूप से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य तथा विशेषाधिक है ?

[१७ उ] गौतम ! इन सबका अल्पबहुत्व प्रज्ञापनासूत्र के तृतीय बहुवक्तव्यतापद के अनुसार समझना चाहिए।

विवेचन—बहुवक्तव्यतापद का अतिदेश—प्रज्ञापनासूत्र के बहुवक्तव्यतापद के अनुसार द्रव्यो का अल्पबहुत्व इस प्रकार समझना धर्मास्तिकायादि तीन एक-एक द्रव्य होने से द्रव्यार्थरूप से तुल्य है और दूसरे द्रव्यो की अपेक्षा अल्प है। उनसे जीवास्तिकाय अनन्तगुण है। उनसे पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय उत्तरोत्तर अनन्तगुणे है। प्रदेशार्थरूप से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असख्यात हैं, वे परस्पर तुल्य है और दूसरे प्रदेशो की अपेक्षा अल्प है। उनमे जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय और आकाशास्तिकाय के उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हैं।[2]

धर्मास्तिकायादि में यथायोग्य अवगाढ-अनवगाढ प्ररूपणा

१८. धम्मत्थिकाये णं भते ! किं ओगाढे, अणोगाढे ?

गोयमा ! ओगाढे, नो अणोगाढे।

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७३, ८७४

२ प्रज्ञापना, तृतीय पद, सू २७०-७३ [पण्णवणासुत्त भा १, पृ १०० (मूलपाठ-टिप्पण)]

[१८ प्र.] भगवन् ! धर्मास्तिकाय अवगाढ है या अनवगाढ है ?
[१८ उ] गौतम ! वह अवगाढ है, अनवगाढ नही।

१९. जदि ओगाढे किं संखेज्जपएसोगाढे, असखेज्जपएसोगाढे, अणंतपएसोगाढे ?

गोयमा ! नो संखेज्जपएसोगाढे असखेज्जपएसोगाढे, नो अणंतपएसोगाढे।

[१९ प्र] भगवन् ! यदि वह (धर्मास्तिकाय) अवगाढ है, तो सख्यात-प्रदेशावगाढ है, असख्यात-प्रदेशावगाढ है अथवा अनन्त-प्रदेशावगाढ है ?

[१९ उ] गौतम ! वह सख्यात-प्रदेशावगाढ नही और अनन्त-प्रदेशावगाढ भी नही, किन्तु असख्यात-प्रदेशावगाढ है।

२० जदि असंखेज्जपएसोगाढे किं कडजुम्मपदेसोगाढे० पुच्छा।

गोयमा ! कडजुम्मपएसोगाढे, नो तेयोग०, नो दावरजुम्म०, नो कलियोगपएसोगाढे।

[२० प्र] भगवन् ! यदि वह असख्यात-प्रदेशावगाढ है, तो क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है ? इत्यादि प्रश्न।

[२० उ] गौतम ! वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, किन्तु न तो त्र्योज-प्रदेशावगाढ है, न द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ है और न कल्योज-प्रदेशावगाढ है।

२१. एवं अधम्मत्थिकाये वि।

[२१] इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के विषय मे समझना चाहिए।

२२. एव आगासत्थिकाये वि।

[२२] आकाशास्तिकाय के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

२३. जीवत्थिकाये पोग्गलत्थिकाये अद्धासमये एव चेव।

[२३] जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय (काल) के विषय मे भी यही वक्तव्यता है।

२४. इमा ण भते ! रयणप्पभापुढवी किं ओगाढा, अणोगाढा ?

जहेव धम्मत्थिकाये।

[२४ प्र] भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी अवगाढ है या अनवगाढ है।
[२४ उ] गौतम ! धर्मास्तिकाय के समान इसकी वक्तव्यता कहनी चाहिए।

२५. एवं जाव अहेसत्तमा।

[२५] इसी प्रकार (शर्कराप्रभा से ले कर) अध सप्तमपृथ्वी तक जानना चाहिए।

२६. सोहम्मे एवं चेव।

[२६] सौधर्म देवलोक के विषय मे भी यही कथन करना चाहिए।

२७. एवं जाव ईसिपब्भारा पुढवी ।

[२७] इसी प्रकार [ईशान देवलोक से लेकर] ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक के विषय में समझना चाहिए ।

विवेचन—धर्मास्तिकाय आदि की कृतयुग्मता—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि सभी अस्तिकाय लोकप्रमाण होने से वे लोकाकाश के असख्यात-प्रदेशो मे अवगाढ है । लोक असख्यात-प्रदेशो मे अवस्थित है, इसलिए इन सबमे कृतयुग्मता ही घटित होती है । इसी प्रकार दूसरे सभी अस्तिकाय भी लोकप्रमाण होने से उनमे भी कृतयुग्मता है, किन्तु आकाशास्तिकाय के अवस्थित अनन्तप्रदेश होने से तथा आत्मावगाही होने से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढता है तथा अद्धासमय अवस्थित असख्येय-प्रदेशात्मक मनुष्यक्षेत्रावगाही होने से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है ।[1]

जीव एवं चौवीस दण्डकों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप युग्मभेदनिरूपण

२८. जीवे णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे० पुच्छा ।

गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, कलियोए ।

[२८ प्र] भगवन् ! (एक) जीव द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२८ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म, त्र्योज या द्वापरयुग्म नही, किन्तु कल्योजरूप है ।

२९. एव नेरइए वि ।

[२९] इसी प्रकार (एक) नैरयिक के विषय में जानना चाहिए ।

३०. एव जाव सिद्धे ।

[३०] इसी प्रकार सिद्ध-पर्यन्त जानना ।

३१ जीवा ण भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेण कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावर०, नो कलियोगा; विहाणादेसेण नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, कलियोगा ।

[३१ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[३१ उ] गौतम ! वे ओघादेश से (सामान्यत.) कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योजरूप नही है । विधानादेश (प्रत्येक की अपेक्षा) से वे कृतयुग्म, त्र्योज तथा द्वापरयुग्म नही है, किन्तु कल्योजरूप है ।

३२. नेरइया णं भंते ! दव्वट्ठताए० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेण सिय कडजुम्मा, जाव सिए कलियोगा; विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, कलियोगा ।

[३२ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८७४

[३२ उ] गौतम ! ओघादेश (सामान्य की अपेक्षा) से कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज हैं, विधानादेश (प्रत्येक की अपेक्षा) से वे न तो कृतयुग्म है, न त्र्योज है और न द्वापरयुग्म हैं, किन्तु कल्योज है।

३३. एवं जाव सिद्धा।

[३३] इसी प्रकार सिद्धपर्यन्त जानना चाहिए।

३४. जीवे ण भंते ! पएसट्ठताए किं कड० पुच्छा।

गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावर०, नो कलियोगे; सरीरपएसे पडुच्च सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे।

[३४ प्र.] भगवन् ! (एक) जीव प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न।

[३४ उ] गौतम ! जीव प्रदेशार्थ से कृतयुग्म है, त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नही है। शरीरप्रदेशो की अपेक्षा जीव कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज भी होता है।

३५. एव जाव वेमाणिए।

[३५] इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना।

३६. सिद्धे ण भंते ! पएसट्ठताए किं कडजुम्मे० पुच्छा।

गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे।

[३६ प्र.] भगवन् ! सिद्ध भगवान् प्रदेशार्थरूप (आत्मप्रदेशो की अपेक्षा) से कृतयुग्म है ? इत्यादि पृच्छा।

[३६ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नही।

३७. जीवा ण भंते ! पदेसट्ठताए किं कडजुम्मा० पुच्छा।

गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा; सरीरपएसे पडुच्च ओघादेसेण सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा, विहाणादेसेण कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि।

[३७ प्र] भगवन् ! जीव प्रदेशो की अपेक्षा क्या कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[३७ उ] गौतम ! (अनेक) जीव आत्मप्रदेशो की अपेक्षा ओघादेश और विधानादेश से भी कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नही है। शरीरप्रदेशो की अपेक्षा जीव ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज हैं। विधानादेश से वे कृतयुग्म भी है यावत् कल्योज भी है।

३८. एव नेरइया वि।

[३८] इसी प्रकार नैरयिक भी जानना चाहिए।

३९. एव जाव वेमाणिया।

[३९] वैमानिको तक इसी प्रकार जानना।

४०. सिद्धा णं भंते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा ।

[४० प्र.] भगवन् ! (अनेक) सिद्ध आत्मप्रदेशो की अपेक्षा से कृतयुग्म हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[४० उ.] गौतम ! वे ओघादेश से और विधानादेश से भी कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नही हैं ।

विवेचन—जीव का कृतयुग्मादि निरूपण--जीव द्रव्यरूप से एक द्रव्य है, इसलिए वह कल्योज है, किन्तु समस्त जीव द्रव्यरूप से अनन्त अवस्थित होने से कृतयुग्म है और विधानादेश से, अर्थात् प्रत्येक की अपेक्षा वे कल्योज है । आत्मप्रदेशो की अपेक्षा समस्त जीवो के प्रदेश असंख्यात होने से चार-चार का अपहार करने पर अन्त मे चार ही शेष रहते हैं, अत. कृतयुग्म होते हैं । शरीरप्रदेशो की अपेक्षा –सामान्यत सभी जीवो के शरीरप्रदेश सघात और भेद से अनवस्थित अनन्त होने से भिन्न-भिन्न समय मे उनमे कृतयुग्मादि चारो राशियाँ बन सकती हैं । विशेष मे प्रत्येक जीव शरीर के प्रदेशो मे एक समय मे भी चारो राशियाँ पाई जा सकती हैं, क्योकि किसी जीवशरीर के प्रदेश कृतयुग्म होते है तो किसी अन्य जीवशरीर के प्रदेश त्र्योजादि राशि होते हैं । इस प्रकार चारो राशियाँ पाई जाती हैं ।[1]

सामान्य जीव एवं चौवीस दण्डकों में अवगाहनापेक्षया कृतयुग्मादि प्ररूपणा

४१. जीवे ण भते ! किं कडजुम्मपएसोगाढे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे जाव सिय कलियोगपएसोगाढे ।

[४१ प्र] भगवन् ! जीव कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४१ उ] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होता है, यावत् कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ होता है ।

४२. एवं जाव सिद्धे ।

[४२] इसी प्रकार (एक) सिद्धपर्यन्त जानना चाहिए ।

४३. जीवा णं भते ! किं कडजुम्मपएसोगाढा० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोग०, नो दावर०, नो कलियोग०; विहाणादेसेण कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव कलियोगपएसोगाढा वि ।

[४३ प्र] भगवन् ! (बहुत) जीव कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[४३ उ] गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज प्रदेशावगाढ नही है । विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ हैं ।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७५

४४. नेरतिया णं० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मपएसोगाढा जाव सिय कलियोगपएसोगाढा; विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव कलियोगपएसोगाढा वि ।

[४४ प्र.] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४४ उ] गौतम ! वे ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ यावत् कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ हैं । विधानादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ भी है ।

४५ एव एगिदिय-सिद्धवज्जा सव्वे वि ।

[४५] एकेन्द्रिय जीवो और सिद्धो को छोड कर शेष सभी (असुरकुमार से लेकर वैमानिको तक के) जीव इसी प्रकार नैरयिक के समान कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ आदि होते है ।

४६. सिद्धा एगिंदिया य जहा जीवा ।

[४६] सिद्धो और एकेन्द्रिय जीवो का कथन सामान्य जीवो के समान है ।

विवेचन—कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ आदि की प्ररूपणा—सामान्यतया एक जीव की अपेक्षा तथा नैरयिक से लेकर सिद्ध जीव तक कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ भी होता है, कदाचित् द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ भी होता है, कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ होता है, इस प्रकार के कथन का कारण औदारिक आदि शरीरो की विचित्र अवगाहना है । सामान्य जीव के कथन के समान ही नैरयिक से लेकर सिद्ध पर्यन्त जानना चाहिए ।

अनेक जीव सामान्यतः कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, क्योकि समस्त जीवो द्वारा अवगाढ प्रदेशो के लोक-प्रमाण अवस्थित असख्यात होने से उनमे कृतयुग्मता होती है, त्र्योजादि नही । विधान (एक-एक) की अपेक्षा से जो एक काल मे चारो प्रकार के होने का कथन किया गया है, उसका कारण अवगाहना की विचित्रता है ।[1]

जीव एवं चौवीस दण्डकों में कृतयुग्मादि समय-स्थिति की प्ररूपणा

४७ जीवे ण भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठितीए० पुच्छा ।

गोयमा ! कडजुम्मसमयट्ठितीए, नो तेयोग०, नो दावर०, नो कलियोगसमयट्ठितीये ।

[४७ प्र] भगवन् ! (एक) जीव कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है ? इत्यादि प्रश्न ।

[४७ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है, किन्तु त्र्योज-समय, द्वापरयुग्म-समय अथवा कल्योज-समय की स्थिति वाला नही है ।

४८. नेरइए ण भते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मसमयट्ठितीये जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीए ।

[४८ प्र] भगवन् ! (एक) नैरयिक कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है ? इत्यादि प्रश्न ।

---

१ भगवती. प्रमेयचन्द्रिका टीका, भा १५, पृ ७७०

[४८ उ] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है, यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाला है।

४९. एवं जाव वेमाणिए।

[४९] इसी प्रकार (असुरकुमार से लेकर) यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए।

५०. सिद्धे जहा जीवे।

[५०] सिद्ध का कथन (औघिक) जीव के समान है।

५१. जीवा ण भंते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मसमयट्ठितीया, नो तेयोग०, नो दावर०, नो कलिओग०।

[५१ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले है ? इत्यादि प्रश्न।

[५१ उ] गौतम ! वे ओघादेश से तथा विधानादेश से भी कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले है, किन्तु त्र्योज-समय, द्वापरयुग्म-समय अथवा कल्योज-समय की स्थिति वाले नही है।

५२. नेरइया ण० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेण सिय कडजुम्मसमयट्ठितीया जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीया; विहाणादेसेण कडजुम्मसमयट्ठितीया वि जाव कलियोगसमयट्ठितीया वि।

[५२ प्र] भगवन् ! (अनेक) नैरयिक कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[५२ उ] गौतम ! ओघादेश से वे कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं, यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाले है। विधानादेश से कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं, यावत् कल्योज-समय की स्थिति वाले हैं।

५३. एवं जाव वेमाणिया।

[५३] (असुरकुमारो से लेकर) वैमानिको तक इसी प्रकार जानना चाहिए।

५४. सिद्धा जहा जीवा।

[५४] सिद्धो का कथन सामान्य जीवो के समान है।

विवेचन—जीव-स्थिति : कृतयुग्मादि समय रूपों मे—सामान्य जीव की स्थिति सर्व-काल मे शाश्वत और सर्व-काल-नियत, अनन्त समयात्मक होने से 'जीव' (सामान्य) कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है। नैरयिक से लेकर वैमानिक तक की स्थिति भिन्न-भिन्न होने से किसी समय कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला होता है तो किसी समय यावत् कल्योज-समय की स्थिति वाला होता है।

सामान्यादेश और विधानादेश से जीवो की स्थिति अनादि-अनन्त काल की होने से वे कृत-युग्म-समय की स्थिति वाले है।

सभी नैरयिकादि जीवो की स्थिति के समयो को एकत्रित किया जाय और उनमे से चार-चार का अपहार किया जाए तो सभी नैरयिक सामान्यादेश से कृतयुग्म-समय यावत् कल्योज-समय की स्थिति वाले होते हैं और विशेषादेश से एक समय मे कृतयुग्मादि चारो प्रकार के हैं।[1]

सामान्य जीव एवं चौवीस दण्डकों में वर्णादि पर्यायापेक्षया कृतयुग्मादि प्ररूपणा

५५. जीवे णं भंते ! कालवण्णपज्जवेहिं किं कडजुम्मे० पुच्छा।

गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च नो कडजुम्मे जाव नो कलियोगे; सरीरपएसे पडुच्च सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे।

[५५ प्र] भगवन् ! जीव काले वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म है ? इत्यादि पृच्छा।

[५५ उ] गौतम ! जीव (आत्म-) प्रदेशो की अपेक्षा न तो कृतयुग्म है और यावत् न कल्योज है, किन्तु शरीरप्रदेशो की अपेक्षा कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज है।

५६. एवं जाव वेमाणिए।

[५६] (यहाँ से लेकर) यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिए।

५७. सिद्धो ण चेव पुच्छिज्जति।

[५७] यहाँ सिद्ध के विषय मे प्रश्न नही करना चाहिए, (क्योकि वे अरूपी हैं)।

५८. जीवा णं भंते ! कालवण्णपज्जवेहिं० पुच्छा।

गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि नो कडजुम्मा जाव नो कलियोगा; सरीरपएसे पडुच्च ओघादेसेण सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा, विहाणादेसेण कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि।

[५८ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव काले वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[५८ उ] गौतम ! जीव-(आत्म-) प्रदेशो की अपेक्षा ओघादेश से भी और विधानादेश से भी न तो कृतयुग्म है यावत् न कल्योज हैं। शरीरप्रदेशो की अपेक्षा ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज है, विधानादेश से वे कृतयुग्म भी है, यावत् कल्योज भी है।

५९. एवं जाव वेमाणिया।

[५९] (यहाँ से लेकर) वैमानिको तक इसी प्रकार का कथन समझना चाहिए।

६० एवं नीलवण्णपज्जवेहिं वि दंडओ भाणियव्वो एगत्त-पुहत्तेणं।

[६०] इसी प्रकार एकवचन और बहुवचन से नीले वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा भी वक्तव्यता कहनी चाहिए।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७५-८७६

६१. एवं जाव लुक्खफासपज्जवेहिं ।

[६१] इसी प्रकार यावत् (शेष वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के) रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा भी पूर्ववत् कथन करना चाहिए ।

विवेचन—वर्णादि पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्मादि निरूपण—जीव-प्रदेश अमूर्त-अरूपी होते हैं, इसलिए उनमे कालादि वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्याय नही होते, परन्तु शरीर-विशिष्ट जीव का ग्रहण होने से शरीर के वर्णादि की अपेक्षा सामान्य एव विशिष्ट जीव मे कृतयुग्मादि चारो प्रकार की राशियो का व्यवहार हो सकता है। यहाँ सिद्ध-जीव के विषय मे कृतयुग्मादि प्रश्न का निषेध किया गया है, उसका कारण यह है कि सिद्ध अमूर्त-अरूपी हैं। अतएव उनमे वर्णादि चारो होते ही नही हैं।[1]

जीव, चौबीस दण्डकों और सिद्धों में ज्ञान-अज्ञान-दर्शनपर्यायों की अपेक्षा एकत्व-बहुत्वदृष्टि से कृतयुग्मादि प्ररूपणा

६२. जीवे णं भंते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे० पुच्छा ।
गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे ।

[६२ प्र] भगवन् ! (एक) जीव आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[६२ उ] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित कल्योज है ।

६३. एवं एगिंदियवज्ज जाव वेमाणिए ।

[६३] इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोडकर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

६४. जीवा णं भंते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं० पुच्छा ।
गोयमा ! ओघादेसेण सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा, विहाणादेसेण कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि ।

[६४ प्र] भगवन् ! (बहुत) जीव आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[६४ उ] गौतम ! ओघादेश से वे कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज हैं। विधानादेश से कृतयुग्म भी है, यावत् कल्योज भी है ।

६५. एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिया ।

[६५] इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोडकर वैमानिको तक कहना चाहिए ।

६६. एव सुयनाणपज्जवेहि वि ।

[६६] इसी प्रकार श्रुतज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा भी कथन करना चाहिए ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७६

६७. ओहिनाणपज्जवेहि वि एवं चेव, नवरं विगलिंदियाणं नत्थि ओहिनाणं ।

[६७] अवधिज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा भी यही वक्तव्यता जाननी चाहिए। विशेष यह है कि विकलेन्द्रियो में अवधिज्ञान नही होता है।

६८. मणपज्जवनाणं पि एवं चेव, नवरं जीवाणं मणुस्साण य, सेसाणं नत्थि ।

[६८] मनःपर्यवज्ञान के पर्यायो के विषय मे भी यही कथन करना चाहिए, किन्तु वह औधिक जीवो और मनुष्यो को ही होता है, शेष दण्डको मे नही पाया जाता।

६९. जीवे णं भंते ! केवलनाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे० पुच्छा ।

गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, णो कलियोए ।

[६९ प्र] भगवान् ! (एक) जीव केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[६९ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नही है।

७०. एवं मणुस्से वि ।

[७०] इसी प्रकार मनुष्य के विषय मे भी जानना।

७१. एवं सिद्धे वि ।

[७१] सिद्ध के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

७२. जीवा णं भंते ! केवलनाण० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावर०, नो कलियोगा ।

[७२ प्र] भगवन् ! (अनेक) जीव केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[७२ उ] गौतम ! ओघादेश से और विधानादेश से भी वे कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नही है।

७३. एवं मणुस्सा वि ।

[७३] इसी प्रकार (अनेक) मनुष्यो के विषय मे भी समझना चाहिए।

७४. एवं सिद्धा वि ।

[७४] इसी प्रकार सिद्धो के विषय मे कहना चाहिए।

७५. जीवे णं भंते ! मतिअन्नाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे० ?

जहा आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं तहेव दो दंडगा ।

[७५ प्र] भगवन् ! (एक) जीव मतिअज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[७५ उ] आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायो के समान यहाँ भी दो दण्डक कहने चाहिए।

७६. एवं सुयअन्नाणपज्जवेहि वि ।

[७६] इसी प्रकार श्रुतअज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा भी कथन करना चाहिए ।

७७. एवं विभंगनाणपज्जवेहि वि ।

[७७] विभगज्ञान के पर्यायो का कथन भी इसी प्रकार है ।

७८. चक्खुदसण-अचक्खुदसण-ओहिदंसणपज्जवेहि वि एव चेव, नवरं जस्स जे अत्थि तं भाणियव्व ।

[७८] चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए, किन्तु जिसमे जो पाया जाता है, वह कहना चाहिए ।

७९. केवलदसणपज्जवेहि जहा केवलनाणपज्जवेहि ।

[७९] केवलदर्शन के पर्यायो का कथन केवलज्ञान के पर्यायो के समान जानना चाहिए ।

विवेचन—ज्ञान, अज्ञान और दर्शन के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्मादि निरूपण—आवरण के क्षयोपशम की विचित्रता के कारण आभिनिबोधिकज्ञान की विशेषताओ को तथा उसके सूक्ष्म अविभाज्य अशो को 'आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय' कहते है । वे अनन्त है, किन्तु क्षयोपशम की विचित्रता के कारण उनका अनन्तत्व अवस्थित नही है । अतएव भिन्न-भिन्न समय की अपेक्षा वे चारो राशि रूप होते है । यही बात अन्य ज्ञान, अज्ञान और दर्शन के विषय मे जाननी चाहिए । एकेन्द्रिय जीव मे सम्यक्त्व न होने से उनमे आभिनिबोधिक, श्रुत एव अवधिज्ञान नही होता, न विकलेन्द्रियो मे अवधिज्ञान होता है । इसलिए आभिनिबोधिक एव श्रुतज्ञान के विषय मे एकेन्द्रिय का और अवधिज्ञान के विषय मे विकलेन्द्रिय का निषेध किया गया है ।

सभी जीवो की अपेक्षा आभिनिबोधिकज्ञान के सभी पर्यायो को एकत्रित किया जाए तो सामान्यादेश से भिन्न-भिन्न काल की अपेक्षा वे चारो राशिरूप होते है, क्योकि क्षयोपशम की विचित्रता के कारण उसके पर्याय अनन्त होने पर भी अवस्थित होते है । विशेषादेश से एक काल मे भी चारो राशिरूप होते है । केवलज्ञान के पर्यायो का अनन्तत्व अवस्थित होने से वे कृतयुग्म-राशिरूप ही होते है । केवलज्ञान के पर्याय अविभाग-परिच्छेद (अविभाज्य-अश) रूप होते हैं । इसलिए वे एक ही प्रकार के है । उनमे विशेषता नही होती ।[1]

प्रज्ञापनासूत्र के अतिवेशपूर्वक शरीर सम्बन्धी विवरण

८०. कति ण भते ! सरीरगा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पच सरीरगा पन्नत्ता, त जहा—ओरालिय जाव कम्मए । एत्थ सरीरगपदं निरवसेस भाणियव्व जहा पण्णवणाए ।[2]

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७६, ८७७

२ पण्णवणासुत्त भाग १, सू ९०१-२४, पृ २२३-२८ (श्री महावीर जैन विद्यालय से प्रकाशित)

[८० प्र.] भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के कहे है ?

[८० उ.] गौतम ! शरीर पाच प्रकार के कहे है, यथा--औदारिक, वैक्रिय, यावत् कार्मण-शरीर। यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का बारहवाँ शरीरपद समग्र कहना चाहिए।

जीव तथा चौवीस दण्डकों में सकम्प-निष्कम्प तथा देशकम्प-सर्वकम्प प्ररूपणा

८१. [१] जीवा णं भंते ! किं सेया, निरेया ?

गोयमा ! जीवा सेया वि, निरेया वि ?

[८१-१ प्र.] भगवन् ! जीव सेज (सकम्प) हैं अथवा निरेज (निष्कम्प) है ?

[८१-१ उ.] गौतम ! जीव सकम्प भी हैं और निष्कम्प भी हैं।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—जीवा सेया वि, निरेया वि ?

गोयमा ! जीवा दुविहा पन्नत्ता, त जहा- संसारसमावन्नगा य, असंसारसमावन्नगा य। तत्थ णं जे ते असंसारसमावन्नगा ते ण सिद्धा, सिद्धा ण दुविहा पन्नत्ता, त जहा - अणंतरसिद्धा य, परंपरसिद्धा य, तत्थ णं जे ते परंपरसिद्धा ते णं निरेया। तत्थ णं जे ते अणतरसिद्धा ते ण सेया।

[८१-२ प्र.] भगवन् ! किस कारण से कहते है कि जीव सकम्प भी है और निष्कम्प भी हैं ?

[८१-२ उ] गौतम ! जीव दो प्रकार के कहे है यथा—ससार-समापन्नक और असंसार-समापन्नक। उनमे से जो असंसार-समापन्नक है, वे सिद्ध जीव है। सिद्ध जीव दो प्रकार के कहे हे। यथा – अनन्तर-सिद्ध और परम्पर-सिद्ध। जो परम्पर-सिद्ध है, वे निष्कम्प है, और जो अनन्तर-सिद्ध है, वे सकम्प हे।

८२. ते णं भंते ! किं देसेया, सव्वेया।

गोयमा ! नो देसेया, सव्वेया।

[८२ प्र] भगवन् ! (अनन्तरसिद्ध, जो सकम्प हे) वे देशकम्पक हे या सर्व-कम्पक हे ?

[८२ उ] गौतम ! वे देशकम्पक नही, सर्व-कम्पक हे।

८३. तत्थ णं जे ते ससारसमावन्नगा ते दुविहा पन्नत्ता, त जहा- सेलेसिपडिवन्नगा य, असेलेसिपडिवन्नगा य। तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवन्नगा ते ण निरेया। तत्थ ण जे ते असेलेसिपडिवन्नगा ते ण सेया।

[८३] जो ससार-समापन्नक जीव हे, वे दो प्रकार के कहे है। यथा—शैलेशी-प्रतिपन्नक और अशैलेशी-प्रतिपन्नक। जो शैलेशी-प्रतिपन्नक है, वे निष्कम्प है, किन्तु जो अशैलेशी-प्रतिपन्नक हैं, वे सकम्प हे।

८४. ते ण भंते ! किं देसेया, सव्वेया ?

गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि। से तेणट्ठेण जाव निरेया वि।

[८४ प्र.] भगवन् ! वे (अशैलेशी-प्रतिपन्नक) देशकम्पक हैं या सर्वकम्पक ?

[८४ उ] गौतम ! वे देशकम्पक भी है और सर्वकम्पक भी हैं ?

इस कारण से हे गौतम ! यावत् वे निष्कम्प भी है, यह कहा गया है।

८५. [१] नेरइया णं भंते ! किं देसेया, सव्वेया ?

गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि।

[८५-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक देशकम्पक है या सर्वकम्पक हैं ?

[८५-१ उ.] गौतम ! वे देशकम्पक भी हे और सर्वकम्पक भी है।

[२] से केणट्ठेणं जाव सव्वेया वि ?

गोयमा ! नेरइया दुविहा पन्नत्ता, त जहा—विग्गहगतिसमावन्नगा य, अविग्गहगतिसमावन्नगा य। तत्थ णं जे ते विग्गहगतिसमावन्नगा ते णं सव्वेया, तत्थ णं जे ते अविग्गहगतिसमावन्नगा ते ण देसेया, से तेणट्ठेणं जाव सव्वेया वि।

[८५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से कहा जाता है कि नैरयिक देशकम्पक भी है और सर्वकम्पक भी है ?

[८५-२ उ.] गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे है। यथा—विग्रहगति-समापन्नक और अविग्रहगति-समापन्नक । उनमे से जो विग्रहगति-समापन्नक है, वे सर्वकम्पक हैं और जो अविग्रहगति-समापन्नक है, वे देशकम्पक हैं।

इस कारण से यह कहा जाता है कि नैरयिक देशकम्पक भी है और सर्वकम्पक भी है।

८६. एव जाव वेमाणिया।

[८६] इसी प्रकार (असुरकुमार से लेकर) वैमानिको तक जानना चाहिए।

विवेचन—जीवो और चौवीस दण्डको मे सकम्पता-निष्कम्पता—सिद्धत्व-प्राप्ति के प्रथम समयवर्ती जीव 'अनन्तर-सिद्ध' कहलाते है, क्योकि उस समय एक समय का भी अन्तर नही होता, अतएव सिद्धत्व के प्रथम समय मे वर्तमान सिद्धजीवो मे कम्पन होता है। उसका कारण यह है कि सिद्धिगमन का और सिद्धत्व-प्राप्ति का समय एक ही होने से और सिद्धिगमन के समय गमनक्रिया होने से वे सकम्प होते है। जिन्हे सिद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् दो-तीन आदि समय का अन्तर पड जाता है, वे 'परम्पर-सिद्ध' कहलाते है। वे सर्वथा निष्कम्प होते है।

मोक्षगमन के पूर्व जो जीव शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते है, वे योगो का सर्वथा निराध कर देते हैं, अत उस समय वे निष्कम्प होते है। जो जीव मर कर ईलिका-गति से उत्पत्तिस्थान मे जाते हैं, वे देशत: सकम्प होते है, क्योकि उनका पूर्वशरीर मे रहा हुआ अश गतिक्रिया-रहित होने से निष्कम्प (निश्चल) होता है और जो अश गतिक्रिया-सहित है, वह सकम्प है। इस कारण वह देशत· सकम्प कहा गया है।

विग्रहगति को प्राप्त जो जीव अर्थात् मर कर अन्त गति मे (उत्पत्तिस्थान को) जाता हुआ जीव—गेद की गति के समान सर्वप्रदेशो से उत्पन्न होता है, वह सर्वत: सकम्प होता है। जो

जीव विग्रहगति को प्राप्त नही है, वे दो प्रकार के है, *यथा*—ऋजुगति वाले **और अवस्थित**। यहाँ केवल **अवस्थित** ही ग्रहण किये है, ऐसा सम्भावित है। शरीर मे रहते हुए मरणसमुद्घात करके ईलिकागति से उत्पत्ति-क्षेत्र को अशत स्पर्श करते है, इसलिए वे देशत कम्पक होते है। अथवा स्वक्षेत्र मे रहे हुए जीव अपने हाथ-पैर आदि अवयवो को इधर-उधर चलाते है, इस कारण वे देशत. सकम्पक हैं।'

कठिन शब्दार्थ—सेय—चलन-कम्पन के सहित—सैज। **निरेय**—निश्चल—निष्कम्प।

परमाणु-पुद्गलों से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक की अनन्तता

८७. परमाणुपोग्गला ण भंते ! किं सखेज्जा, असखेज्जा, अणंता ?

गोयमा ! नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता।

[८७ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल सख्यात है, असख्यात हैं अथवा अनन्त है ?

[८७ उ] गौतम ! सख्यात नही, असख्यात भी नही, किन्तु अनन्त है।

८८. एव जाव अणतपदेसिया खधा।

[८८] इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक जानना।

एक प्रदेशावगाढ़ से असंख्येय प्रदेशावगाढ़ पुद्गलो की अनन्तता

८९. एगपएसोगाढा ण भंते ! पोग्गला किं सखेज्जा, असखेज्जा, अणता ?

एव चेव।

[८९ प्र] भगवन् ! आकाश के एक प्रदेश मे रहे हुए पुद्गल सख्यात है, असख्यात है या अनन्त है ?

[८९ उ] गौतम ! पूर्ववत् (अनन्त) है।

९०. एव जाव असंखेज्जपदेसोगाढा।

[९०] इसी प्रकार यावत् असखयेय प्रदेशो मे रहे हुए पुद्गलो तक जानना चाहिए।

एक समय से लेकर असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलो की अनन्तता

९१. एगसमयट्ठितीया ण भते ! पोग्गला किं सखेज्जा, असखेज्जा० ?

एवं चेव।

[९१ प्र] भगवन् ! एक समय की स्थिति वाले पुद्गल सख्यात है, असख्यात है या अनन्त है ?

[९१ उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना।

९२. एव जाव असखेज्जसमयट्ठितीया।

[९२] इसी प्रकार यावत् असख्यात-समय की स्थिति वाले पुद्गलो के विषय मे भी कहना चाहिए।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७७

वर्ण-गन्धादि वाले पुद्गलों की अनन्तता

९३. एगगुणकालगा णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा० ?

एवं चेव ।

[९३ प्र] भगवन् ! एकगुण काले पुद्गल सख्यात है ? इत्यादि प्रश्न ।

[९३ उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना ।

९४ एवं जाव अणंतगुणकालगा ।

[९४] इसी प्रकार यावत् अनन्तगुण काले पुद्गलो के विषय मे जानना ।

९५. एव अवसेसा वि वण्ण-गंध-रस-फासा नेयव्वा जाव अणंतगुणलुक्ख त्ति ।

[९५] इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलो के विषय मे भी अनन्तगुण रूक्ष पर्यन्त जानना ।

परमाणु-पुद्गल से अनन्तप्रदेशी स्कन्धो तक की द्रव्य-प्रदेशार्थ से यथायोग्य बहुत्व प्ररूपणा

९६. एएसि ण भते ! परमाणुपोग्गलाणं दुपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया ?

गोयमा ! दुपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए बहुगा ।

[९६ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल और द्विप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[९६ उ] गौतम ! द्विप्रदेशी स्कन्धो से परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थ से बहुत हैं ।

९७. एएसि ण भते ! दुपएसियाण तिपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुगा ?

गोयमा ! तिपएसिएहिंतो खंधेहिंतो दुपएसिया खधा दव्वट्ठयाए बहुगा ।

[९७ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशी और त्रिप्रदेशी स्कन्धो मे द्रव्यार्थ से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[९७ उ] गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध से द्विप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से बहुत है ।

९८. एवं एएणं गमएण जाव दसपएसिएहिंतो खधेहिंतो नवपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया ।

[९८] इस गमक (पाठ) के अनुसार यावत् दशप्रदेशी स्कन्धो से नवप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से बहुत हैं ।

९९. एएसि ण भते ! दसपदे० पुच्छा ।

गोयमा ! दसपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो सखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया ।

[९९ प्र] भगवन्! दशप्रदेशी स्कन्धो और सख्यातप्रदेशी स्कन्धो में द्रव्यार्थ से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[९९ उ] गौतम! दशप्रदेशिक स्कन्धो से सख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से बहुत हैं।

१००. एएसि णं संखेज्ज० पुच्छा।

गोयमा! संखेज्जपएसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया।

[१०० प्र] भगवन्! इन सख्यातप्रदेशी स्कन्धो और असख्यातप्रदेशी स्कन्धो मे द्रव्यार्थ से कौन किससे अल्प है? इत्यादि प्रश्न।

[१०० उ] गौतम! सख्यातप्रदेशी स्कन्धो से असख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से बहुत हैं।

१०१. एएसि णं भंते! असंखेज्ज० पुच्छा।

गोयमा! अणंतपएसिएहिंतो खधेहिंतो असखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया।

[१०१ प्र.] भगवन्! असख्यातप्रदेशी स्कन्धो और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो मे द्रव्यार्थ से कौन किससे अल्प हैं? इत्यादि प्रश्न।

[१०१ उ] गौतम! अनन्तप्रदेशी स्कन्धो से असख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से बहुत हैं।

१०२. एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाणं दुपएसियाण य खंधाणं पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया?

गोयमा! परमाणुपोग्गलेहिंतो दुपएसिया खंधा पएसट्ठयाए बहुया।

[१०२ प्र] भगवन्! परमाणु-पुद्गल और द्विप्रदेशी स्कन्धो मे प्रदेशार्थरूप से कौन किससे बहुत हैं?

[१०२ उ] गौतम! परमाणु-पुद्गलो से द्विप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से बहुत हैं।

१०३. एवं एएणं गमएण जाव नवपएसिएहिंतो खंधेहिंतो दसपएसिया खधा पएसट्ठयाए बहुया।

[१०३] इस प्रकार इस गमक (पाठ) के अनुसार यावत् नवप्रदेशी स्कन्धो से दशप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से बहुत है।

१०४. एव सव्वत्थ पुच्छियव्व। दसपएसिहिंतो खधेहिंतो सखेज्जपएसिया खंधा पएसट्ठयाए बहुया। सखेज्जपएसिएहिंतो असखेज्जपएसिया खधा पदेसट्ठयाए बहुया।

[१०४] इस प्रकार सर्वत्र प्रश्न करना चाहिए। दशप्रदेशी स्कन्धो से सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से बहुत है। सख्यातप्रदेशी स्कन्धो से असख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से बहुत हैं।

१०५. एएसि ण भंते! असखेज्जपएसियाणं० पुच्छा।

गोयमा! अणंतपएसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्जपएसिया खधा पएसट्ठयाए बहुया।

[१०५ प्र.] भगवन्! असख्यातप्रदेशी स्कन्धो और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो मे कौन किससे बहुत हैं?

[१०५ उ.] गौतम ! अनन्तप्रदेशी स्कन्धो से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ रूप से बहुत हैं।

विवेचन—परमाणु-पुद्गलों से अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों तक का अल्पबहुत्व—द्व्यणुको से परमाणु सूक्ष्म तथा एक होने के कारण बहुत हैं और द्विप्रदेशी स्कन्ध परमाणुओ से स्थूल होने से थोडे हैं, इसी प्रकार आगे-आगे के सूत्रो के विषय मे जानना चाहिए। पूर्व-पूर्व की सख्या बहुत है और पीछे-पीछे की सख्या थोडी है। दशप्रदेशी स्कन्धो से सख्यातप्रदेशी स्कन्ध बहुत हैं, क्योकि सख्यात के स्थान बहुत हैं। सख्यातप्रदेशी स्कन्धो से असख्यातप्रदेशी स्कन्ध बहुत हैं, क्योकि सख्यातप्रदेशी स्कन्धो की अपेक्षा असख्यात के स्थान बहुत हैं, परन्तु असख्यातप्रदेशी स्कन्धो से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अल्प हैं, क्योकि उनका तथाविध सूक्ष्म-परिणाम होता है।

प्रदेशार्थ से विचार करते हुए बताया गया है कि परमाणुओ से द्विप्रदेशी स्कन्ध बहुत हैं। कल्पना करो कि द्रव्यरूप से परमाणु सौ और द्विप्रदेशी स्कन्ध साठ है, तो प्रदेशार्थरूप से परमाणु तो सौ ही हैं, परन्तु द्व्यणुक १२० हैं। इस प्रकार द्व्यणुक बहुत हैं। यही विचारणा आगे भी समझनी चाहिए।

१०६. एएसि णं भंते ? एगपएसोगाढाणं दुपएसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

गोयमा ! दुपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया।

[१०६ प्र] भगवन् ! एकप्रदेशावगाढ और द्विप्रदेशावगाढ पुद्गलो मे, द्रव्यार्थ से कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं ?

[१०६ उ] गौतम ! द्विप्रदेशावगाढ पुद्गलो से एक प्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से विशेषाधिक है।

१०७. एव एएणं गमएण तिपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया जाव दसपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो नवपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया। दसपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो सखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया। संखेज्जपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो असखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया पुच्छा सव्वत्थ भाणियव्वा।

[१०७] इसी गमक (पाठ) के अनुसार त्रिप्रदेशावगाढ पुद्गलो से द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से विशेषाधिक हैं, यावत् दशप्रदेशावगाढ पुद्गलो से नवप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से विशेषाधिक हैं। दशप्रदेशावगाढ पुद्गलो से सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से बहुत है। सख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गलो से असख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल द्रव्यार्थ से बहुत हैं। पृच्छा सर्वत्र समझ लेनी चाहिए।

१०८. एएसि णं भंते ! एगपएसोगाढाणं दुपएसोगाढाण य पोग्गलाण पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

गोयमा ! एगपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए विसेसाहिया।

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७९
   (ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा. ७, पृ. ३२८५

[१०८ प्र.] भगवन् ! एकप्रदेशावगाढ और द्विप्रदेशावगाढ पुद्गलो मे प्रदेशार्थ-रूप से कौन किससे यावत् विशेषाधिक है ?

[१०८ उ.] गौतम ! एकप्रदेशावगाढ पुद्गलो से द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेशार्थरूप से विशेषाधिक हैं ?

१०९. एवं जाव नवपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दसपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए विसेसाहिया। दसपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए बहुया। संखेज्जपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए बहुया।

[१०९] इसी प्रकार यावत् नवप्रदेशावगाढ पुद्गलो से दशप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेशार्थ से विशेषाधिक हैं। दशप्रदेशावगाढ पुद्गलो से सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेशार्थ से बहुत हैं। सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलो से असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेशार्थ से बहुत हैं।

११०. एएसि णं भंते ! एगसमयट्ठितीयाणं दुसमयट्ठितीयाण य पोग्गलाण दव्वट्ठयाए० ?

जहा ओगाहणाए वत्तव्वया एवं ठितीए वि।

[११० प्र] भगवन् ! एक समय की स्थिति वाले और दो समय की स्थिति वाले पुद्गलो मे द्रव्यार्थरूप से कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं ?

[११० उ] गौतम ! अवगाहना की वक्तव्यता के अनुसार स्थिति की वक्तव्यता जाननी चाहिए।

विवेचन—एकप्रदेशावगाढ़—परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक एकप्रदेशावगाढ होते है। **द्विप्रदेशावगाढ़—**द्व्यणुक से लेकर अनन्त-अणुकस्कन्ध तक द्विप्रदेशावगाढ होते है। **त्रिप्रदेशावगाढ़**—त्रिप्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक **त्रिप्रदेशावगाढ़** होते है। इस प्रकार चतुष्प्रदेशावगाढ से लेकर असख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्ध तक जान लेना चाहिए।[1]

एक गुण काले आदि वर्ण तथा गन्ध-रस-स्पर्श वाले पुद्गलों की वक्तव्यता

१११ एएसि णं भंते ! एगगुणकालगाणं दुगुणकालगाण य पोग्गलाण दव्वट्ठयाए० ?

एएसिं जहा परमाणुपोग्गलादीण तहेव वत्तव्वया निरवसेसा।

[१११ प्र] भगवन् ! एकगुण काले और द्विगुण काले पुद्गलो मे द्रव्यार्थरूप से कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?

[१११ उ] गौतम ! परमाणु पुद्गल आदि की वक्तव्यता के अनुसार इनकी सम्पूर्ण वक्तव्यता जाननी चाहिए।

११२. एवं सव्वेसिं वण्ण-गंध-रसाणं।

[११२] इसी प्रकार सभी वर्णों, गन्धो और रसो के विषय मे वक्तव्यता जाननी चाहिए।

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८७९

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३२८५

एकादिगुण कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलों की द्रव्यार्थ प्रदेशार्थ से विशेषाधिकतादि प्ररूपणा

११३. एएसि णं भंते ! एगगुणकक्खडाणं दुगुणकक्खडाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया ?

गोयमा ! एगगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया ।

[११३ प्र] भगवन् ! एकगुण कर्कश और द्विगुण कर्कश पुद्गलो मे द्रव्यार्थ रूप से कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं ?

[११३ उ] गौतम ! एकगुण कर्कश पुद्गलो से द्विगुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थरूप से विशेषाधिक हैं।

११४. एव जाव नवगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो दसगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया । दसगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो सखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया । सखेज्जगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया । असंखेज्जगुण-कक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो अणंतगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया ।

[११४] इसी प्रकार यावत् नवगुण-कर्कश पुद्गलो से दशगुण-कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थरूप से विशेषाधिक हैं। दशगुण-कर्कश पुद्गलो से सख्यातगुण-कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ रूप से बहुत है। सख्यात-गुण-कर्कश पुद्गलो से असख्यातगुण-कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थरूप से बहुत है । असख्यातगुण-कर्कश पुद्गलो से अनन्तगुण-कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थरूप से बहुत है ।

११५. एव पएसट्ठयाए वि । सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा ।

[११५] प्रदेशार्थरूप से समग्र वक्तव्यता भी इसी प्रकार जाननी चाहिए । सर्वत्र प्रश्न करना चाहिए ।

११६. जहा कक्खडा एवं मउय-गरुय-लहुया वि ।

[११६] कर्कश स्पर्श सम्बन्धी वक्तव्यता के अनुसार मृदु (कोमल), गुरु (भारी) और लघु (हलके) स्पर्श के विषय मे समझना चाहिए ।

११७. सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खा जहा वण्णा ।

[११७] शीत, उष्ण, स्निग्ध (चिकना) और रूक्ष स्पर्श के विषय मे वर्णो की वक्तव्यता के अनुसार जानना चाहिए ।

विवेचन —स्पर्श-विशिष्ट पुद्गलो मे अल्पबहुत्व—वर्णादिभावविशिष्ट पुद्गलो के अल्पबहुत्व को विचारणा के सन्दर्भ मे कर्कशादि चार स्पर्शो से युक्त पुद्गलो मे पूर्व-पूर्व से उत्तर-उत्तर वाले पुद्गल द्रव्यार्थरूप से तथाविध स्वभाव के कारण बहुत कहने चाहिए । शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शो से युक्त पुद्गलो मे काले आदि वर्णविशेषो के समान दश गुणो तक उत्तर-उत्तर वालो से पूर्व-पूर्व वाले बहुत कहने चाहिए ।[1] शेष मूल पाठ से स्पष्ट है ।

---

१ भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ८७९

११८. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाण, संखेज्जपदेसियाणं असंखेज्जपएसियाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा । पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा पएसट्ठयाए, परमाणुपोग्गला अपएसट्ठयाए अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा । दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए, ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठअपएसट्ठयाए अणंतगुणा, संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ।

[११८ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल, सख्यात-प्रदेशी, असख्यात-प्रदेशी और अनन्त-प्रदेशी स्कन्धो मे द्रव्यार्थरूप से, प्रदेशार्थरूप से तथा द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से कौन-से पुद्गल-स्कन्ध किन पुद्गल-स्कन्धो से यावत् विशेषाधिक है ।

[११८ उ] गौतम ! द्रव्यार्थ रूप से – सबसे अल्प अनन्तप्रदेशी स्कन्ध है, उनसे द्रव्यार्थ से परमाणु-पुद्गल अनन्तगुणे है । उनसे असख्यातप्रदेशी स्कन्ध सख्यातगुणे है, उनसे द्रव्यार्थरूप से असख्यातप्रदेशी स्कन्ध असख्यातगुणे है, प्रदेशार्थरूप से— सबसे थोडे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं । उनसे अप्रदेशार्थरूप से परमाणु-पुद्गल अनन्तगुणे है । उनसे सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से सख्यातगुणे हैं । उनसे असख्यातप्रदेशी-स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से असख्यात-गुणे है । द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से—सबसे अल्प अनन्तप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से है । इनसे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से अनन्तगुण हैं । उनसे परमाणुपुद्गल द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थरूप से अनन्तगुण है । उनसे सख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सख्यातगुण हैं । उनसे सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से सख्यातगुणे है । उनसे असख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । उनसे असख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे है ।

विवेचन परमाणु की अप्रदेशार्थता का आशय – प्रदेशार्थता के प्रकरण मे परमाणु के लिए जो 'अप्रदेशार्थता' कही है, उसका आशय यह है कि परमाणु के प्रदेश नही होते । इसलिए अप्रदेशार्थरूप से परमाणु को अनन्तगुण कहा है । द्रव्य की विवक्षा मे परमाणु द्रव्य है और प्रदेश की विवक्षा मे उसके प्रदेश नही होने से अप्रदेश है । इस प्रकार परमाणु की द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थता कही है ।[1]

एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशी पुद्गलों की अवगाहना एवं स्थिति को लेकर अल्पबहुत्वचर्चा

११९. एएसि णं भंते । एगपएसोगाढाणं संखेज्जपएसोगाढाण असंखेज्जपएसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा । पएसट्ठयाए—

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८०

सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला अपएसट्ठयाए, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा। दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठअपएसट्ठयाए, संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

[११९ प्र] भगवन् ! एकप्रदेशावगाढ़, सख्यातप्रदेशावगाढ़, और असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलो मे, द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से कौन-से पुद्गल किनसे यावत् विशेषाधिक है ?

[११९ उ] गौतम ! द्रव्यार्थ से- एकप्रदेशावगाढ पुद्गल सबसे थोडे है। उनसे सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से सख्यातगुण है । उनसे असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से असख्यातगुण है। प्रदेशार्थ से—एकप्रदेशावगाढ पुद्गल अप्रदेशार्थ से सबसे थोड़े है। उनसे सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेशार्थ से सख्यातगुण है। उनसे असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेशार्थ से असख्यातगुण है। द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से—एकप्रदेशावगाढ़ पुद्गल द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थ से सबसे अल्प है। उनसे सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से सख्यातगुण है । उनसे सख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल प्रदेशार्थ से सख्यातगुण है। उनसे असख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल द्रव्यार्थ से असख्यातगुण है। उनसे असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेशार्थ से असख्यातगुण है।

१२०. **एएसि ण भंते ! एगसमयट्ठितीयाणं सखेज्जसमयट्ठितीयाणं असंखेज्जसमयट्ठितीयाण य पोग्गलाणं० ?**

जहा ओगाहणाए तहा ठितीए वि भाणियव्वं अप्पाबहुगं।

[१२० प्र] भगवन् ! एकसमय की स्थिति वाले, सख्यातसमय की स्थिति वाले और असख्यातसमय की स्थिति वाले पुद्गलो मे कौन किससे यावत् विशेषाधिक है ?

[१२० उ] गौतम ! अवगाहना के अल्पबहुत्व के समान स्थिति का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

विवेचन—क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों का अल्पबहुत्व—क्षेत्राधिकार मे क्षेत्र की प्रधानता है। अतएव परमाणु पुद्गल तथा द्विप्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी किसी विवक्षित एक क्षेत्र में अवगाढ कहे जाते है। यहाँ आधार और आधेय मे अभेद की विवक्षा करने से वे एकप्रदेशावगाढ़ कहे जाते है। इसलिए एकप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थ से सबसे थोड़े है, क्योकि वे लोकाकाश के प्रदेशप्रमाण ही है। कोई भी ऐसा आकाशप्रदेश नही है, जो एक प्रदेशावगाही परमाणु आदि को अवकाश-प्रदानरूप परिणाम से परिणत न हो। इसी प्रकार आगे सख्यात-प्रदेशावगाढ़ आदि पुद्गलो के विषय मे भी विचार कर लेना चाहिए।[1]

१. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ८८०

एक-संख्येय-असंख्येय-अनन्तगुण वर्ण-गन्धादि वाले पुद्गलों की द्रव्यार्थ प्रदेशार्थरूप से अल्प-बहुत्वचर्चा

१२१. एएसि णं भंते ! एगगुणकालगाणं संखेज्जगुणकालगाणं असंखेज्जगुणकालगाणं अणंतगुणकालगाण य पोग्गलाण दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए० ?

एएसिं जहा परमाणुपोग्गलाण अप्पाबहुगं तहा एतेसिं पि अप्पाबहुगं।

[१२१ प्र.] भगवन् ! एकगुण काला, सख्यातगुण काला, असख्यातगुण काला और अनन्त-गुण काला, इन पुद्गलो मे द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से कौन पुद्गल किन पुद्गलो से यावत् विशेषाधिक है ?

[१२१ उ.] गौतम ! जिस प्रकार परमाणु-पुद्गलो का अल्पबहुत्व बताया गया है, उसी प्रकार इनका भी अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

१२२. एवं सेसाण वि वण्ण-गंध-रसाणं।

[१२२] इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध और रस सम्बन्धी अल्पबहुत्व के विषय मे कहना चाहिए।

१२३. एएसि णं भंते ! एगगुणकक्खडाणं संखेज्जगुणकक्खडाण असंखेज्जगुणकक्खडाण अणंतगुणकक्खडाण य पोग्गलाण दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए, संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, अणंतगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा। पएसट्ठयाए एवं चेव, नवरं संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सेसं तं चेव। दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठपएसट्ठयाए, संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जगुण-कक्खडा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा। अणंतगुणकक्खडा दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा।

[१२३ प्र.] भगवन् ! एकगुण कर्कश, सख्यातगुण कर्कश, असख्यातगुण कर्कश और अनन्तगुण कर्कश पुद्गलो मे द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से कौन पुद्गल किन पुद्गलो से यावत् विशेषाधिक हैं ?

[१२३ उ.] गौतम ! एकगुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ से सबसे थोडे है। उनसे सख्यातगुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ से सख्यातगुण है। उनसे असख्यातगुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ से असख्यात गुण है। उनसे अनन्तगुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ से अनन्तगुण हैं। प्रदेशार्थ से भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि सख्यातगुण कर्कश-पुद्गल प्रदेशार्थ से असख्यातगुण है। शेष कथन पूर्ववत्। द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से—एक गुणकर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यातगुण कर्कश

पुद्गल द्रव्यार्थ से संख्यातगुण हैं। उनसे संख्यातगुण कर्कश पुद्गल प्रदेशार्थ से संख्यातगुण है। उनसे असंख्यातगुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ से असंख्यातगुण हैं। उनसे असंख्यातगुण कर्कश पुद्गल प्रदेशार्थ से असंख्यातगुण हैं। उनसे अनन्तगुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ से अनन्तगुण हैं। इसी प्रकार उनसे अनन्तगुण कर्कश पुद्गल प्रदेशार्थ से अनन्तगुण हैं।

१२४. एवं मउय-गरुय-लहुयाण वि अप्पाबहुयं।

[१२४] इसी प्रकार मृदु, गुरु और लघु स्पर्श के अल्पबहुत्व के विषय मे कहना चाहिए।

१२५. सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खाणं जहा वण्णाणं तहेव।

[१२५] शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शो-सम्बन्धी अल्पबहुत्व वर्णों के अल्पबहुत्व के समान है।

विवेचन—वर्णादि चारो का द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से अल्पबहुत्व—एक-गुण काले आदि वर्णों से लेकर रूक्षस्पर्श वाले पुद्गलो तक का द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ एव द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ रूप से अल्पबहुत्व का यथोचित तथा क्रमश कथन किया गया है।[1]

१२६. परमाणुपोग्गले ण भंते! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे, तेयोए, दावर०, कलियोगे?

गोयमा! नो कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावर०, कलियोए।

[१२६ प्र] भगवन्! एक परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म है, त्र्योज, द्वापरयुग्म है या कल्योज है?

[१२६ उ] गौतम! वह न तो कृतयुग्म है, न त्र्योज है और न द्वापरयुग्म है, किन्तु कल्योज है।

१२७. एवं जाव अणंतपएसिए खधे।

[१२७] इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक जानना चाहिए।

१२८. परमाणुपोग्गला णं भंते! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा० पुच्छा।

गोयमा! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा। विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावर०, कलियोगा।

[१२८ प्र.] भगवन्! (बहुत) परमाणुपुद्गल द्रव्यार्थ से कृतयुग्म हैं? इत्यादि प्रश्न।

[१२८ उ] गौतम! ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म, यावत् कल्योज हैं, किन्तु विधानादेश से कृतयुग्म, त्र्योज या द्वापरयुग्म नही हैं, कल्योज हैं।

१२९. एवं जाव अणंतपएसिया खधा।

[१२९] इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धो पर्यन्त जानना चाहिये।

१३० परमाणुपोग्गले णं भंते! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मे० पुच्छा।

गोयमा! नो कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावर० कलियोए।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा. २, पृ १०००

[१३० प्र.] भगवन् ! परमाणुपुद्गल प्रदेशार्थ से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१३० उ.] गौतम ! वह कृतयुग्म नही, त्र्योज नही तथा द्वापरयुग्म भी नही है, किन्तु कल्योज है ।

१३१. दुपएसिए पुच्छा ।

गोयमा ! नो कड०, नो तेयोए, दावर०, नो कलियोगे ।

[१३१ प्र.] भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध ?

[१३१ उ.] गौतम ! वह कृतयुग्म, त्र्योज या कल्योज नही है, किन्तु द्वापरयुग्म है ।

१३२. तिपएसिए पुच्छा ।

गोयमा ! नो कडजुम्मे, तेयोए, नो दावर०, नो कलियोए ।

[१३२ प्र.] भगवन् ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध ?

[१३२ उ.] गौतम ! वह कृतयुग्म, द्वापरयुग्म और कल्योज नही है, किन्तु त्र्योज है ।

१३३. चउप्पएसिए पुच्छा ।

गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावर०, नो कलियोए ।

[१३३ प्र.] भगवन् ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध ?

[१३३ उ.] गौतम ! वह कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नही है ।

१३४. पंचपदेसिए जहा परमाणुपोग्गले ।

[१३४] पचप्रदेशी स्कन्ध की वक्तव्यता परमाणुपुद्गल के कथन के समान जानना ।

१३५. छप्पदेसिए जहा तिपदेसिए ।

[१३५] षट्प्रदेशी की वक्तव्यता द्विप्रदेशीस्कन्ध के समान जानना ।

१३६. सत्तपदेसिए जहा तिपदेसिए ।

[१३६] सप्तप्रदेशी स्कन्ध का कथन त्रिप्रदेशी स्कन्ध के समान है ।

१३७. अट्ठपएसिए जहा चउपदेसिए ।

[१३७] अष्टप्रदेशी स्कन्ध का कथन परमाणुपुद्गल के समान जानना चाहिए ।

१३८. नवपदेसिए जहा परमाणुपोग्गले ।

[१३८] नवप्रदेशी स्कन्ध का कथन परमाणुपुद्गल के समान जानना चाहिए ।

१३९. दसपदेसिए जहा दुपदेसिए ।

[१३९] दशप्रदेशी स्कन्ध का कथन द्विप्रदेशिक के समान है ।

१४०. संखेज्जपएसिए णं भंते ! पोग्गले० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मे, जाव सिय कलियोगे ।

[१४० प्र.] भगवन् ! संख्यातप्रदेशी पुद्गल ?

[१४० उ.] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज है।

१४१. एवं असंखेज्जपदेसिए वि, अणंतपदेसिए वि।

[१४१] इसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी जानना चाहिए।

१४२. परमाणुपोग्गला णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कड० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा; विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोया, नो दावर०, कलियोगा।

[१४२ प्र.] भगवन् ! (बहुत) परमाणुपुद्गल प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[१४२ उ.] गौतम ! ओघादेश से वे कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज है। विधानादेश से कृतयुग्म, त्र्योज और द्वापरयुग्म नहीं है, किन्तु कल्योज है।

१४३. दुप्पएसिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा, नो तेयोया, सिय दावरजुम्मा, नो कलियोगा; विहाणादेसेण नो कडजुम्मा, नो तेयाया, दावरजुम्मा, नो कलियोगा।

[१४३ प्र.] भगवन् ! (अनेक) द्विप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[१४३ उ.] गौतम ! ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म है, कदाचित् द्वापरयुग्म है, किन्तु त्र्योज और कल्योज नहीं है।

१४४. तिपएसिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा; विहाणादेसेण नो कडजुम्मा, तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा।

[१४४ प्र.] भगवन् ! (अनेक) त्रिप्रदेशी स्कन्ध, प्रदेशार्थ से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[१४४ उ.] गौतम ! ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज है। विधानादेश से वे कृतयुग्म, द्वापरयुग्म या कल्योज नहीं है, किन्तु त्र्योज है।

१४५. चउप्पएसिया णं० पुच्छा।

गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेयोगा नो दावर०, नो कलियोगा।

[१४५ प्र.] भगवन् ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध, प्रदेशार्थ से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[१४५ उ.] गौतम ! ओघादेश से और विधानादेश से भी वे कृतयुग्म हैं, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं हैं।

१४६. पंचपएसिया जहा परमाणुपोग्गला।

[१४६] पचप्रदेशी स्कन्धो की वक्तव्यता परमाणुपुद्गल के समान है।

१४७. छप्पएसिया जहा दुपएसिया ।

[१४७] षट्प्रदेशी स्कन्धो का कथन द्विप्रदेशी स्कन्धो के समान है।

१४८. सत्तपएसिया जहा तिपएसिया ।

[१४८] सप्तप्रदेशी स्कन्ध त्रिप्रदेशी स्कन्धवत् जानना चाहिए।

१४९. अट्ठपएसिया जहा चउपएसिया ।

[१४९] अष्टप्रदेशी स्कन्ध की वक्तव्यता चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के समान है।

१५०. नवपएसिया जहा परमाणुपोग्गला ।

[१५०] नवप्रदेशी स्कन्ध का कथन परमाणु-पुदगलो के समान है।

१५१. दसपएसिया जहा दुपएसिया ।

[१५१] दशप्रदेशी स्कन्ध की वक्तव्यता द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान जानना।

१५२. सखेज्जपएसिया णं० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा; विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि ।

[१५२ प्र] भगवन् ! (अनेक) सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न।

[१५२ उ] गौतम ! ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज हैं। विधानादेश से कृतयुग्म भी हैं यावत् कल्योज भी है।

१५३. एवं असंखेज्जपएसिया वि, अणतपएसिया वि ।

[१५३] इसी प्रकार (अनेक) असख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो की वक्तव्यता जानना।

विवेचन—परमाणु-पुद्गलों में कृतयुग्मादि—परमाणु-पुद्गल अनन्त होने पर भी उनमें सघात और भेद के कारण अनवस्थित-स्वरूप होने से वे ओघादेश से कृतयुग्मादि होते है। विधानादेश से अर्थात् प्रत्येक की अपेक्षा तो वे कल्योज ही होते हैं। इसी प्रकार आगे के सूत्रो मे कृतयुग्मादि सख्या को स्वयमेव घटित कर लेना चाहिए।[1]

अवगाहना, स्थिति, वर्णगन्धादि पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्मादि प्ररूपणा

१५४. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं कडजुम्मपएसोगाढे० पुच्छा ।

गोयमा ! नो कडजुम्मपएसोगाढे, नो तेयोय०, नो दावरजुम्म०, कलियोगपएसोगाढे ।

[१५४ प्र] भगवन् ! (एक) परमाणु-पुद्गल कृतयुग्मप्रदेशावगाढ है ? इत्यादि पृच्छा।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८२

[१५४ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़, त्र्योज-प्रदेशावगाढ़, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ नहीं है, किन्तु कल्योज-प्रदेशावगाढ है ।

१५५. दुपएसिए णं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो कडजुम्मपएसोगाढे, णो तेयोग०, सिय दावरजुम्मपएसोगाढे, सिय कलियोग-पएसोगाढे ।

[१५५ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१५५ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ नहीं है, त्र्योज-प्रदेशावगाढ भी नहीं है, कदाचित् द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ़ और कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ है ।

१५६. तिपएसिए ण० पुच्छा ।

गोयमा ! नो कडजुम्मपएसोगाढे, सिय तेयोगपएसोगाढे, सिय दावरजुम्मपएसोगाढे, सिय कलियोगपएसोगाढे ।

[१५६ प्र] भगवन् ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध के लिए प्रश्न है ।

[१५६ उ] गौतम ! वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ नहीं है किन्तु कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ, कदाचित् द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ और कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ है ।

१५७. चउपएसिए णं० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे जाव सिय कलियोगपएसोगाढे ।

[१५७ प्र] भगवन् ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कैसा है ?

[१५७ उ] गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, यावत् कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ है ।

१५८. एवं जाव अणंतपएसिए ।

[१५८] इसी प्रकार (यहाँ से लेकर) अनन्तप्रदेशी स्कन्धावगाढ तक जानना चाहिए ।

१५९. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं कड० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोय०, नो दावर०, नो कलियोग०, विहाणादेसेण नो कडजुम्मपएसोगाढा, णो तेयोग०, नो दावर०, कलियोगपएसोगाढा ।

[१५९ प्र] भगवन् ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है । इत्यादि प्रश्न ।

[१५९ उ.] गौतम ! ओघादेश से (वे) कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ और कल्योज-प्रदेशावगाढ नहीं है । विधानादेश से वे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ, त्र्योज-प्रदेशावगाढ तथा द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ नहीं हैं, किन्तु कल्योज-प्रदेशावगाढ है ।

१६०. दुपएसिया णं० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोग०, नो दावर०, नो कलियोग०,

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोगपएसोगाढा, दावरजुम्मपएसोगाढा वि, कलियोगपए-सोगाढा वि।

[१६० प्र.] भगवन्! (बहुत) द्विप्रदेशीस्कन्ध कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है? इत्यादि प्रश्न।

[१६० उ.] गौतम! ओघादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ अथवा कल्योज-प्रदेशावगाढ नही है। विधानादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ तथा त्र्योज-प्रदेशावगाढ नही है, किन्तु द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ एव कल्योज-प्रदेशावगाढ है।

१६१ तिपएसिया ण० पुच्छा।

गोयमा! ओघादेसेण कडजुम्मपसोएगाढा, नो तेयोय० नो दावर०, नो कलि०, विहाणादेसेणं नो कडजुम्मपएसोगाढा, तेयोगपएसोगाढा वि, दावरजुम्मपएसोगाढा वि, कलियोगपएसोगाढा वि।

[१६१ प्र] भगवन्! त्रिदेशीस्कन्ध-कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं? इत्यादि प्रश्न।

[१६१ उ.] गौतम! ओघादेश मे वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाट है, किन्तु त्र्योज, प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशवागाढ और कल्योज-प्रदेशावगाढ नही है, विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ नही हैं किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ भी है, द्वापरयुग्मप्रदेशावगाढ भी है और कल्योज-प्रदेशावगाढ भी है।

१६२ चउपएसिया णं० पुच्छा।

गोयमा! ओघादेसेण कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेयोय०, नो दावर, नो कलिओग०, विहाणादेसेण कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव कलियोगपएसोगाढा वि।

[१६२ प्र] भगवन्! चतुष्प्रदेशीस्कन्ध कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है? इत्यादि प्रश्न।

[१६२ उ] गौतम! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है, किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ तथा कल्योज प्रदेशावगाढ नही है। विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ, भी हैं, यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ भी है।

१६३. एव जाव अणतपएसिया।

[१६३] इसी प्रकार (पचप्रदेशीस्कन्ध से लेकर) अनन्तप्रदेशीस्कन्ध तक जानना चाहिए।

१६४ परमाणुपोग्गले ण भते! किं कडजुम्मसमयट्ठितीए० पुच्छा।

गोयमा! सिय कडजुम्मसमयट्ठितीए जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीए।

[१६४ प्र] भगवन्! (एक) परमाणु-पुद्गल कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है? इत्यादि प्रश्न।

[१६४ उ] गौतम! वह कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है, यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाला है।

१६५ एवं जाव अणतपएसिए।

[१६५] इसी प्रकार (द्विप्रदेशीस्कन्ध से लेकर) अनन्तप्रदेशीस्कन्ध तक जानना चाहिए।

१६६. परमाणु पोग्गला ण भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठितीया० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मसमयट्ठितीया जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीया; विहाणादेसेणं कडजुम्मसमयट्ठितीया वि जाव कलियोगसमयट्ठितीया वि ।

[१६६ प्र] भगवन् ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१६६ उ] गौतम ! ओघादेश से वे कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं, यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाले है, विधानादेश से वे कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले भी हैं, यावत् कल्योज-समय की स्थिति वाले भी हैं ।

१६७. एव जाव अणतपएसिया ।

[१६७] इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशीस्कन्ध तक जानना चाहिए ।

१६८. परमाणुपोग्गले ण भंते ! कालवण्णपज्जवेहिं कि कडजुम्मे, तेयोगे० ?

जहा ठितीए वत्तव्वया एव वण्णेसु वि सव्वेसु, गधेसु वि ।

[१६८ प्र] भगवन् ! (एक) परमाणु-पुद्गल काले वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म है अथवा त्र्योज है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१६८ उ] गौतम ! जिस प्रकार स्थिति सम्बन्धी वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार वर्णों एव सभी गन्धो की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

१६९. एव चेव रसेसु वि जाव महुरो रसो त्ति ।

[१६९] इसी प्रकार सभी रसो की मधुररस तक की वक्तव्यता जाननी चाहिए ।

१७०. अणतपएसिए० णं भंते ! खंधे कक्खडफासपज्जवेहिं कि कडजुम्मे पुच्छा ।

गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे ।

[१७० प्र] भगवन् ! (एक) अनन्तप्रदेशीस्कन्ध कर्कशस्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१७० उ.] वह कदाचित् कृतयुग्म है, यावत् कदाचित् कल्योज है ।

१७१. अणंतपएसिया ण भंते ! खंधा कक्खडफासपज्जवेहिं कि कडजुम्मा० पुच्छा ।

गोयमा ! ओघादेसेणं सिया कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा; विहाणादेसेण कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि ।

[१७१ प्र] भगवन् ! (अनेक) अनन्तप्रदेशीस्कन्ध कर्कशस्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा कृतयुग्म हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१७१ उ] गौतम ! ओघादेश से वे कदाचित् कृतयुग्म हैं, यावत् कदाचित् कल्योज है तथा विधानादेश से कृतयुग्म भी हैं, यावत् कल्योज भी है ।

१७२. एवं मउय-गरुय-लहुया वि भाणियव्वा ।

[१७२] इसी प्रकार मृदु (कोमल), गुरु (भारी) एव लघु (हलके) स्पर्श के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए।

१७३. सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खा जहा वण्णा ।

[१७३] शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों की वक्तव्यता वर्णों के समान है ।

विवेचन—क्षेत्रापेक्षया पुद्गलचिन्तन परमाणु कल्योजप्रदेशावगाढ ही होता है, क्योकि वह एक होता है । द्विप्रदेशीस्कन्ध परिणाम विशेष के कारण कभी द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ होता है, कभी कल्योज-प्रदेशावगाढ होता है । इसी प्रकार अन्यत्र भी स्वय चिन्तन कर लेना चाहिए । बहुत से परमाणु ओघन (सामान्यापेक्षा) सकल लोकव्यापी होने के कारण कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ होते हैं । सकल लोक के प्रदेश असख्यात है और वे अवस्थित है, इसलिए उनमे चतुरग्रता घटित होती है। विधानत (एक-एक परमाणु की अपेक्षा) सभी परमाणु एक-एक आकाशप्रदेश मे अवगाढ होने मे कल्योज-प्रदेशावगाढ है । द्विप्रदेशावगाढ स्कन्ध सामान्यता पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार चतुरग्र (कृतयुग्म) है । विधान (प्रत्येक) की अपेक्षा जो द्विप्रदेशावगाढ है, वे द्वापरयुग्म है और जो एक प्रदेशावगाढ हैं, वे कल्योज हैं । इसी प्रकार अन्यत्र भी विचार कर लेना चाहिए ।[1]

स्पर्शविषयक अतिदेश का आशय – यहाँ कर्कशस्पर्श के अधिकार मे अनन्तप्रदेशीस्कन्ध के विषय मे ही कृतयुग्मादि-सम्बन्धी प्रश्न किया गया है, इसका कारण यह है कि बादर-अनन्तप्रदेशी स्कन्ध ही कर्कश आदि चार स्पर्शों वाला होता है, परमाणु पुद्गल आदि नही । शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श के विषय मे जो वर्णो का अतिदेश किया गया है, उसका कारण यह है कि परमाणु आदि भी शीत-स्पर्शादि वाले होते हैं । इसीलिए मूलपाठ मे कहा गया है—**'सीय उसिण-निद्ध-लुक्खा जहा वण्णा ।'**[2]

परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशीस्कन्ध तक यथायोग्य सार्द्ध-अनर्द्ध प्ररूपणा

१७४. परमाणुपोग्गले ण भंते ! किं सड्ढे अणड्ढे ?

गोयमा ! नो सड्ढे, अणड्ढे ।

[१७४ प्र] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल सार्द्ध (आधे भाग-सहित) है या अनर्द्ध (आधे भाग से रहित) है ?

[१७४ उ] गौतम ! वह सार्द्ध नही है, अनर्द्ध है ।

१७५. दुपएसिए० पुच्छा० ।

गोयमा ! सड्ढे, नो अणड्ढे ।

[१७५ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध सार्द्ध है या अनर्द्ध है ?

[१७५ उ] गौतम ! वह सार्द्ध है, अनर्द्ध नही ।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८३

२. वही, अ वृत्ति, पत्र ८८३

१७६. तिपएसिए जहा परमाणुपोग्गले।

[१७६] त्रिप्रदेशीस्कन्ध का कथन परमाणु-पुद्गल के समान है।

१७७. चउपएसिए जहा दुपएसिए।

[१७७] चतुष्प्रदेशीस्कन्ध-सम्बन्धी कथन द्विप्रदेशीस्कन्ध के समान है।

१७८. पंचपएसिए जहा तिपएसिए।

[१७८] पचप्रदेशीस्कन्ध की वक्तव्यता त्रिप्रदेशीस्कन्धवत् है।

१७९. छप्पएसिए जहा दुपएसिए।

[१७९] षट्प्रदेशीस्कन्ध-विषयक कथन द्विप्रदेशीस्कन्ध के समान जानना।

१८०. सत्तपएसिए जहा तिपएसिए।

[१८०] सप्तप्रदेशीस्कन्ध-सम्बन्धी कथन त्रिप्रदेशीस्कन्ध के समान है।

१८१. अट्ठपएसिए जहा दुपएसिए।

[१८१] अष्टप्रदेशीस्कन्ध-विषयक वक्तव्यता द्विप्रदेशीस्कन्ध जैसी है।

१८२. नवपएसिए जहा तिपएसिए।

[१८२] नवप्रदेशीस्कन्ध का कथन त्रिप्रदेशीस्कन्ध जैसा है।

१८३ दसपएसिए जहा दुपएसिए।

[१८३] दशप्रदेशीस्कन्ध-सम्बन्धी कथन द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान जानना चाहिए।

१८४. संखेज्जपएसिए णं भंते ! खंधे पुच्छा।

गोयमा ! सिय सड्ढे, सिय अणड्ढे।

[१८४ प्र] भगवन् ! सख्यातप्रदेशीस्कन्ध सार्द्ध है या अनर्द्ध है ?

[१८४ उ] गौतम ! कदाचित् सार्द्ध है और कदाचित् अनर्द्ध है।

१८५. एवं असंखेज्जपएसिए वि।

[१८५] इसी प्रकार असख्यातप्रदेशीस्कन्ध के विषय मे कहना चाहिए।

१८६. एव अणंतपएसिए वि।

[१८६] अनन्तप्रदेशीस्कन्ध का कथन भी इसी प्रकार है।

१८७. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं सड्ढा, अणड्ढा ?

गोयमा ! सड्ढा वा अणड्ढा वा।

[१८७ प्र] भगवन् ! (अनेक) परमाणु-पुद्गल सार्द्ध हैं या अनर्द्ध हैं ?

[१८७ उ] गौतम ! वे सार्द्ध भी हैं और अनर्द्ध भी हैं।

१८८. एवं जाव अणंतपएसिया।

[१८८] इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक जानना चाहिए।

विवेचन—पुद्गलो की सार्द्धता-अनर्द्धता का रहस्य—समसख्या वाले (परमाणुओ) प्रदेशो के जो स्कन्ध होते है, वे सार्द्ध होते है, उनके बराबर दो भाग हो सकते है और विषमसख्या वाले प्रदेशो के जो स्कन्ध होते है, वे अनर्द्ध होते हैं, क्योकि उनके दो बराबर भाग नही हो सकते। जब बहुत-से परमाणु समसख्या वाले होते है, तब सार्द्ध होते है और जब वे विषमसख्या वाले होते हैं, तब अनर्द्ध होते है, क्योंकि सघात (मिलने) और भेद (पृथक् होने) से उनकी सख्या अवस्थित नही होती। इसलिए वे सार्द्ध और अनर्द्ध दोनो प्रकार के होते है।[1]

परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक सकम्पता-निष्कम्पता प्ररूपणा

१८९. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सेए, निरेए ?

गोयमा ! सिय सेए, सिय निरेए।

[१८९ प्र] भगवन् ! (एक) परमाणु-पुद्गल सैज (सकम्प) होता है या निरेज (निष्कम्प) ?

[१८९ उ] गौतम ! वह कदाचित् सकम्प होता है और कदाचित् निष्कम्प होता है।

१९०. एवं जाव अणंतपएसिए।

[१९०] इसी प्रकार (द्विप्रदेशी स्कन्ध से लेकर) अनन्तप्रदेशी स्कन्धपर्यन्त जानना चाहिए।

१९१. परमाणुपोग्गला ण भंते ! किं सेया, निरेया ?

गोयमा ! सेया वि, निरेया वि।

[१९१ प्र] भगवन् ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल सकम्प होते हैं या निष्कम्प ?

[१९१ उ] गौतम ! वे सकम्प भी होते हैं और निष्कम्प भी होते है।

१९२. एवं जाव अणंतपएसिया।

[१९२] इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक जानना चाहिए।

विवेचन—सैज और निरेज का आशय—सैज का अर्थ है—कम्पन, स्पन्दन या चलनादि धर्म युक्त तथा निरेज का अर्थ है कम्पन, स्पन्दन या चलनादि धर्म से रहित। परमाणु की प्राय· निष्कम्पदशा होती है, उसकी सकम्पदशा कादाचित्क होती है, सदा नही। इसी आशय से परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध को सकम्प और निष्कम्प दोनो बताया है।[2]

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८३

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८६

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३३२५

(ग) भगवती प्रमेयचन्द्रिकाटीका, भाग १५, पृ ८९५

सकम्प निष्कम्प परमाणु-पुद्गल से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक की स्थिति तथा कालान्तर प्ररूपणा

१९३. परमाणुपुग्गले णं भंते ! सेए कालग्रो केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं ग्रावलियाए ग्रसंखेज्जइभागं ।

[१९३ प्र.] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल सकम्प कितने काल तक रहता है ?

[१९३ उ.] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट ग्रावलिका के ग्रसख्यातवे भाग तक सकम्प रहता है।

१९४. परमाणुपोग्गले णं भंते ! निरेए कालग्रो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं ग्रसंखेज्जं कालं ।

[१९४ प्र.] भगवन् ! परमाणु-पुद्गल निष्कम्प कितने काल तक रहता है ?

[१९४ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रसख्यात काल तक निष्कम्प रहता है।

१९५. एवं जाव ग्रणंतपएसिए ।

[१९५] इसी प्रकार यावत् ग्रनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक जानना चाहिए।

१९६. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सेया कालग्रो केवचिरं होंति ?

गोयमा ! सव्वद्धं ।

[१९६ प्र] भगवन् ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कितने काल तक सकम्प रहते है ?

[१९६ उ] गौतम ! वे सर्वाद्धा (सदा काल) सकम्प रहते है।

१९७. परमाणुपोग्गला णं भंते ! निरेया कालग्रो केवचिरं होंति ?

गोयमा ! सव्वद्धं ।

[१९७ प्र.] भगवन् ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कितने काल तक निष्कम्प रहते है ?

[१९७ उ] गौतम ! वे सदा काल निष्कम्प रहते है।

१९८. एव जाव ग्रणतपएसिया ।

[१९८] इसी प्रकार यावत् ग्रनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक (सकम्प-निष्कम्प-विषयक काल) जानना चाहिए।

१९९. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! सेयस्स केवतियं कालं अंतरं होति ?

गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेण ग्रसंखेज्ज काल; परट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं ग्रसंखेज्जं कालं ।

[१९९ प्र] भगवन् ! (एक) सकम्प परमाणु-पुद्गल का कितने काल का ग्रन्तर होता है ?

[१९९ उ] गौतम ! स्वस्थान की ग्रपेक्षा जघन्य एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रसख्येय काल का तथा परस्थान की ग्रपेक्षा जघन्य एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रसख्यात काल का ग्रन्तर होता है।

२००. निरेयस्स केवतियं कालं अंतर होइ ?

गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्क समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जतिभागं; परट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।

[२०० प्र] भगवन् ! निष्कम्प परमाणु-पुद्गल का कितने काल तक का अन्तर होता है ?

[२०० उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग का अन्तर होता है तथा परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर होता है ।

२०१. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स सेयस्स० पुच्छा ।

गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्क समय, उक्कोसेण असखेज्ज काल; परट्ठाणतर पडुच्च जहन्नेण एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणतं कालं ।

[२०१ प्र] भगवन् ! सकम्प द्विप्रदेशी स्कन्ध का कितने काल का अन्तर होता है ?

[२०१ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असख्यात काल का अन्तर होता है तथा परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अनन्त काल का अन्तर होता है ।

२०२. निरेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! सट्ठाणंतर पडुच्च जहन्नेण एक्क समयं, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जतिभाग; परट्ठाणतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेण अणत काल ।

[२०२ प्र] भगवन् ! निष्कम्प द्विप्रदेशी स्कन्ध का कितने काल का अन्तर होता है ?

[२०२ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग का अन्तर होता है तथा परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अनन्त काल का अन्तर होता है ।

२०३. एवं जाव अणंतपएसियस्स ।

[२०३] इसी प्रकार यावत् (सकम्प और निष्कम्प) अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के (काल का) अन्तर समझना चाहिए ।

२०४. परमाणुपोग्गलाणं भंते ! सेयाण केवतिय काल अंतर होइ ?

गोयमा ! नत्थंतरं ।

[२०४ प्र] भगवन् ! सकम्प (बहुत) परमाणु-पुद्गलो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२०४ उ] गौतम ! उनमे अन्तर नही होता ।

२०५. निरेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ ?

नत्थंतरं ।

[२०५ प्र.] भगवन् ! निष्कम्प परमाणु-पुद्गलों का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२०५ उ.] गौतम ! उनका भी अन्तर नहीं होता।

२०६. एवं जाव अणंतपएसियाण खंधाणं।

[२०६] इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का अन्तर समझ लेना चाहिए।

विवेचन—परमाणु की सकम्प निष्कम्प दशा—परमाणु की निष्कम्पदशा औत्सर्गिक स्वाभाविक) है। इसलिए उसका उत्कृष्ट (स्थायित्व) काल असंख्यात है। उसकी सकम्पदशा आपवादिक (अस्वाभाविक) है, कभी-कभी होने वाली है। इसलिए वह उत्कृष्टत. आवलिका के असंख्यातवें भाग मात्र काल-पर्यन्त ही रहती है। बहुत से परमाणुओं की अपेक्षा सकम्पदशा सर्वकाल रहती है, क्योंकि भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों में कोई भी ऐसा समय न था, न है और न होगा, जिसमें सभी परमाणु निष्कम्प रहते हों। यही बात (अनेक परमाणुओं की) निष्कम्प दशा के लिए जाननी चाहिए। सभी परमाणु सदा काल के लिए निष्कम्प रहते हों, ऐसी बात भी नहीं है। कोई न कोई परमाणु उस समय सकम्प रहता ही है।[1]

स्वस्थान और परस्थान की अपेक्षा अन्तर का आशय—अन्तर के विषय में जो स्वस्थान और परस्थान का कथन किया है, उसका अभिप्राय यह है कि जब परमाणु, परमाणु-अवस्था में स्कन्ध से पृथक् रहता है, तब वह 'स्वस्थान' में कहलाता है और स्कन्ध-अवस्था में होता है तब 'परस्थान' में कहलाता है। एक परमाणु एक समय तक चलन-क्रिया से रुक कर फिर चलता है, तब स्वस्थान की अपेक्षा अन्तर जघन्य एक समय का होता है और उत्कृष्टत वही परमाणु असंख्यातकाल तक किसी स्थान में स्थित रह कर फिर चलता है, तब अन्तर असंख्यात काल का होता है। जब परमाणु द्वि-प्रदेशादि स्कन्ध के अन्तर्गत होता है और जघन्यत एक समय चलन-क्रिया से निवृत्त रह कर फिर चलित होता है, तब परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का अन्तर होता है। परन्तु जब वह परमाणु असंख्यातकाल तक द्वि-प्रदेशादि स्कन्धरूप में रह कर पुन· उस स्कन्ध से पृथक् होकर चलित होता है, तब परस्थान की अपेक्षा उत्कृष्टत अन्तर असंख्यातकाल का होता है।

जब परमाणु निश्चल (स्थिर) होकर एक समय तक परिस्पन्दन करके पुनः स्थिर होता है और उत्कृष्टत आवलिका के असंख्यातवें भागरूप काल (असंख्य समय) तक परिस्पन्दन करके पुन· स्थिर होता है, तब स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग का अन्तर होता है। परमाणु निश्चल होकर स्वस्थान से चलित होता है और जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक द्वि-प्रदेश आदि स्कन्ध के रूप में रह कर पुन. निश्चल हो जाता है या उससे पृथक् होकर स्थिर हो जाता है, तब वह अन्तर जघन्य और उत्कृष्ट होता है।

द्वि-प्रदेशी स्कन्ध चलित होकर अनन्तकाल तक उत्तरोत्तर अन्य अनन्त-पुद्गलों के साथ सम्बद्ध होता हुआ और पुन उसी परमाणु के साथ सम्बद्ध होकर पुन. चलित हो, तब परस्थान की अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल का होता है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८६-८८७
(ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ७, पृ ३३२५

सकम्प परमाणु-पुद्गल लोक मे सदैव पाये जाते हैं। इसलिए उनका अन्तर नही होता है।[1]

परमाणु से अनन्तप्रदेशी सकम्प-निष्कम्प स्कन्ध तक के अल्पबहुत्व की चर्चा

२०७. एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाण सेयाण निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा परमाणुपोग्गला सेया, निरेया असखेज्जगुणा।

[२०७ प्र] भगवन्! इन (पूर्वोक्त) सकम्प और निष्कम्प परमाणुपुद्गलो मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक होते है?

[२०७ उ] गौतम! सबसे थोडे सकम्प परमाणुपुद्गल होते हैं। उनसे निष्कम्प परमाणु-पुद्गल असख्यातगुण हैं।

२०८. एवं जाव असंखिज्जपएसियाण खधाण।

[२०८] इसी प्रकार यावत् असख्यात-प्रदेशी स्कन्धो के अल्पबहुत्व के विषय मे जानना चाहिए।

२०९. एएसि णं भंते! अणतपएसियाणं खंधाणं सेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा निरेया, सेया अणतगुणा।

[२०९ प्र] भगवन्! इन (पूर्वोक्त) अनन्त-प्रदेशी सकम्प और निष्कम्प स्कन्धो मे कौन किन से यावत् विशेषाधिक होते है?

[२०९ उ] गौतम! सबसे थोडे अनन्त-प्रदेशी निष्कम्प स्कन्ध है। उनसे सकम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुण हैं।

विवेचन—सकम्प परमाणुपुद्गल सबसे कम है, उनसे असंख्यातगुणे निष्कम्प परमाणुपुद्गल हैं तथा सबसे अल्प अनन्तप्रदेशी निष्कम्प स्कन्ध है, उनसे अनन्तगुणे सकम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध हैं।

परमाणु से अनन्तप्रदेशी सकम्प-निष्कम्प स्कन्धों की द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ, द्रव्यप्रदेशार्थ से अल्पबहुत्व की चर्चा

२१०. एएसि ण भंते! परमाणुपोग्गलाणं, संखेज्जपएसियाणं असंखेज्जपएसियाणं अणतपएसियाण य खधाण सेयाणं निरेयाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे हिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा अणतपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए १, अणंतपएसिया खधा सेया दव्वट्ठयाए अणतगुणा २, परमाणुपोग्गला सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा ३, संखेज्जपएसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ४, असखेज्जपएसिया खधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ५, परमाणु-

---

१ (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७ पृ ३३२६

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८६-८८७

पोग्गला निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ६, संखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा ७, असंखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ८।

पएसट्ठयाए एवं चेव, नवरं परमाणुपोग्गला अपएसट्ठयाए भाणियव्वा। संखेज्जपएसिया खंधा निरेया पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सेसं तं चेव। दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए १, ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा २, अणंतपएसिया खधा सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा ३, ते चेव पएसट्ठयाए अणतगुणा ४, परमाणुपोग्गला सेया दव्वट्ठअपएसट्ठयाए अणंतगुणा ५, सखेज्जपएसिया खधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ६, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ७, असखेज्जपएसिया खधा सेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ८, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ९, परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठअपएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा १०, संखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ११, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा १२, असंखेज्जपएसिया खधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा १३, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा १४।

[२१० प्र] भगवन्! सकम्प और निष्कम्प परमाणुपुद्गल, सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध, असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध और अनन्त-प्रदेशी स्कन्धो मे द्रव्यार्थ, प्रदेशार्थ और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से कौन पुद्गल, किन पुद्गलो से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

[२१० उ] गौतम! (१) निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सबसे अल्प है। (२) उनसे सकम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है (३) उनसे सकम्प परमाणु-पुद्गल द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है। (४) उनसे सकम्प सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सख्यातगुणे हैं। (५) उनसे सकम्प असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है। (६) उनसे निष्कम्प परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है। (७) उनसे निष्कम्प सख्यात-प्रदेशीस्कन्ध द्रव्यार्थ से सख्यातगुणे हैं। (८) और उनसे निष्कम्प असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे हैं।

जिस प्रकार द्रव्यार्थ से उपर्युक्त आठ बोल कहे है, उसी प्रकार प्रदेशार्थ से भी आठ बोल जानने चाहिए, किन्तु परमाणु-पुद्गल मे प्रदेशार्थ के बदले 'अप्रदेशार्थ' कहना चाहिए तथा निष्कम्प सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से सख्यातगुणे जानने चाहिए। शेष सब पूर्ववत्।

द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से—(१) निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सबसे अल्प हैं। (२) उनसे निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से अनन्तगुणे हैं। (३) सकम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है। (४) उनसे सकम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से अनन्तगुणे है। (५) उनसे सकम्प परमाणु-पुद्गल द्रव्यार्थ से अप्रदेशार्थरूप से अनन्तगुणे है। (६) उनसे सकम्प सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे हैं। (७) उनसे सकम्प सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे हैं। (८) उनसे सकम्प असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे हैं। (९) उनसे सकम्प असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे है। (१०) उनसे निष्कम्प परमाणु-पुद्गल द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थ रूप से असख्यातगुणे है। (११) उनसे निष्कम्प संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असंख्यातगुणे है। (१२) उनसे निष्कम्प सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यात-

गुणे हैं । (१३) उनसे निष्कम्प असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे हैं और (१४) उनसे निष्कम्प असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे हैं ।

विवेचन—पुद्गलो से अल्पबहुत्व की मीमांसा—परमाणु पुद्गल तथा सख्यात-प्रदेशी, असंख्यात-प्रदेशी और अनन्त-प्रदेशी स्कन्धो की सकम्पता और अकम्पता को लेकर द्रव्यार्थ से अल्पबहुत्व के आठ पद होते हैं । इसी प्रकार प्रदेशार्थ से भी आठ पद होते हैं । किन्तु द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से उभयपक्ष मे चौदह पद होते हैं, क्योकि सकम्प और निष्कम्प परमाणु-पुद्गलो के द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता इन दो पदो के स्थान मे 'द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थता' यह एक ही पद कहना चाहिए । इसलिए यहाँ १६ बोलो के बदले १४ बोल ही होते हैं ।[1]

द्रव्यार्थता सूत्र मे निष्कम्प सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध, निष्कम्प परमाणुओ से सख्यात-गुण कहे गए हैं और प्रदेशार्थ सूत्र मे वे परमाणओ से असख्यातगुणे कहे गए हैं, क्योकि निष्कम्प परमाणुओ से निष्कम्प सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सख्यातगुणे होते हैं । उनमे से बहुत से स्कन्धो मे उत्कृष्ट सख्या वाले प्रदेश होने से वे निष्कम्प परमाणुओ से प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे होते हैं, क्योकि उत्कृष्ट सख्या मे एक सख्या की वृद्धि होने पर वे असख्यात हो जाते हैं ।[2]

परमाणु से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक देशकम्प-सर्वकम्प-निष्कम्पता की प्ररूपणा

२११ परमाणुपोग्गले ण भते ! किं देसेए, सव्वेए, निरेए ?

गोयमा ! नो देसेए, सिय सव्वेए, सिय निरेये ।

[२११ प्र] भगवन् ! परमाणु पुद्गल देशकम्पक (कुछ अश मे कम्पित होने वाला) है, सर्वकम्पक (पूर्णतया कम्पित होने वाला) है या निष्कम्पक है ?

[२११ उ.] गौतम ! परमाणु-पुद्गल देशकम्पक नही है, वह कदाचित् सर्वकम्पक है, कदाचिद् निष्कम्पक है ।

२१२. दुपदेसिए ण भते ! खधे० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय देसेए, सिय सव्वेए, सिय निरेये ।

[२१२ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध देशकम्पक है, सर्वकम्पक है या निष्कम्पक ?

[२१२ उ] गौतम ! वह कदाचित् देशकम्पक, कदाचित् सर्वकम्पक और कदाचित् निष्कम्पक होता है ।

२१३. एव जाव अणतपदेसिए ।

[२१३] इसी प्रकार यावत् अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध तक जानना चाहिए ।

२१४ परमाणुपोग्गला ण भते ! कि देसेया, सव्वेया, निरेया ?

गोयमा ! नो देसेया, सव्वेया वि, निरेया वि ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८७

२. वही, पत्र ८८७

[२१४ प्र] भगवन् ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल देशकम्पक हैं, सर्वकम्पक हैं या निष्कम्पक हैं ?

[२१४ उ.] गौतम ! वे देशकम्पक नही हैं, किन्तु सर्वकम्पक है और निष्कम्पक भी हैं।

२१५. दुपदेसिया णं भंते ! खंधा० पुच्छा।

गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि, निरेया वि।

[२१५ प्र] भगवन् ! (बहुत) द्विप्रदेशी-स्कन्ध देशकम्पक है, सर्वकम्पक है या निष्कम्पक है ?

[२१५ उ] गौतम ! वे देशकम्पक भी है, सर्वकम्पक भी है और निष्कम्पक भी है।

२१६. एवं जाव अणंतपएसिया।

[२१६] इसी प्रकार यावन् (बहुत) अनन्त-प्रदेशी स्कन्धो (की देशकम्पकता आदि) के विषय मे जानना चाहिए।

विवेचन—परमाणु-पुद्गल (एक हो या बहुत) देशकम्पक नही होते, परन्तु द्विप्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध कदाचित् देशकम्पक, कदाचित् सर्वकम्पक और कदाचित् निष्कम्पक भी होते है।

परमाणु से अनन्त-प्रदेशी देशकम्प-सर्वकम्प-निष्कम्प स्कन्धों की स्थिति एवं कालान्तर की प्ररूपणा

२१७. परमाणुपोग्गले ण भंते ! सव्वेए कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेण आवलियाए असंखेज्जइभाग।

[२१७ प्र.] भगवन् ! (एक) परमाणु पुद्गल सर्वकम्पक कितने काल तक रहता है ?

[२१७ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग तक (सर्वकम्पक रहता है।)

२१८. निरेये कालओ केवचिर होति ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्क समयं, उक्कोसेण असखेज्जं कालं।

[२१८ प्र] भगवन् (एक) परमाणु-पुद्गल निष्कम्पक कितने काल तक रहता है।

[२१८ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल तक निष्कम्प रहता है।

२१९. दुपएसिए ण भंते ! खधे देसेए कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्क समयं, उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइभाग।

[२१९ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशी-स्कन्ध देशकम्पक कितने काल तक रहता है ?

[२१९ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग तक देशकम्पक रहता है।

२२०. सव्वेए कालग्रो केवचिरं होति ?

जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं ग्रावलियाए ग्रसंखेज्जइभागं ।

[२२० प्र.] भगवन् ! (द्वि-प्रदेशी स्कन्ध) सर्वकम्पक कितने काल तक रहता है ?

[२२० उ.] वह जघन्य एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रावलिका के ग्रसख्यातवे भाग तक सर्व-कम्पक रहता है ।

२२१. निरेए कालग्रो केवचिर होति ?

जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं ग्रसंखेज्जं कालं ।

[२२१ प्र.] भगवन् ! (द्वि-प्रदेशी स्कन्ध) निष्कम्पक कितने काल तक रहता है ?

[२२१ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय ग्रौर उत्कृष्ट ग्रसख्यात काल तक निष्कम्पक रहता है ।

२२२. एवं जाव ग्रणतपदेसिए ।

[२२२] इसी प्रकार यावत् ग्रनन्त-प्रदेशी स्कन्ध तक (के कम्पनादि-काल के विषय मे जानना ।)

२२३. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सव्वेया कालग्रो केवचिरं होति ?

गोयमा ! सव्वद्धं ।

[२२३ प्र] भगवन् ! (ग्रनेक) परमाणु-पुद्गल सर्वकम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

[२२३ उ] गौतम ! (वे) सदा काल (सर्वकम्पक रहते हैं ।)

२२४. निरेया कालग्रो केवचिरं ?

सव्वद्धं ।

[२२४ प्र] भगवन् ! (ग्रनेक परमाणु-पुद्गल) निष्कम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

[२२४ उ] गौतम ! (वे) सदा काल (निष्कम्पक रहते हैं ।)

२२५ दुप्पदेसिया ण भंते ! खंधा देसेया कालग्रो केवचिरं होंति ?

सव्वद्धं ।

[२२५ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध देशकम्पक कितने काल तक रहते हे ?

[२२५ उ.] गौतम ! (वे) सर्वकाल (देशकम्पक रहते हे ।)

२२६. सव्वेया कालग्रो केवचिरं ?

सव्वद्धं ।

[२२६ प्र] भगवन् ! वे कितने काल तक सर्वकम्पक रहते हे ?

[२२६ उ] गौतम ! (वे) सदा काल (सर्वकम्पक रहते हे ।)

२२७. निरेया कालतो केवच्चिरं ?

सव्वद्धं ।

[२२७ प्र] भगवन् ! (द्विप्रदेशी स्कन्ध) निष्कम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

[२२७ उ] सदा काल ।

२२८. एवं जाव अणंतपदेसिया ।

[२२८] इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक का कालमान जानना चाहिए ।

२२९. परमाणुपोग्गलस्स ण भते सव्वेयस्स केवतियं० कालं अंतर होति ?

सट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेण एक्क समयं, उक्कोसेणं असंखेज्ज कालं; परट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एव चेव ।

[२२९ प्र] भगवन् ! सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गल का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२२९ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असख्यात काल का अन्तर होता है । परस्थान की अपेक्षा भी जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असख्यातकाल का अन्तर होता है ।

२३०. निरेयस्स केवतियं अंतर होइ ? सट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असखेज्जतिभागं; परट्ठाणतर पडुच्च जहन्नेण एक्क समयं उक्कोसेण असंखेज्जं काल ।

[२३० प्र.] भगवन् ! निष्कम्पक (परमाणु-पुद्गल) का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३० उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग का अन्तर होता है। परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असख्यात काल का अन्तर होता है ।

२३१. दुपएसियस्स णं भते ! खधस्स देसेयस्स केवतियं काल अंतरं होइ ?

सट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेण असंखेज्ज काल; परट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंत काल ।

[२३१ प्र] भगवन् ! देशकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३१ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असख्यातकाल का होता है ।

२३२. सव्वेयस्स केवतियं कालं० ?

एवं चेव जहा देसेयस्स ।

[२३२ प्र] भगवन् ! सर्वकम्पक (द्विप्रदेशी स्कन्ध) का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३२ उ.] गौतम ! जिस प्रकार देशकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर कहा है, उसी प्रकार सर्वकम्पक का भी जानना चाहिए ।

२३३. निरेयस्स केवतियं० ?

सट्ठाणंतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेण आवलियाए असंखेज्जतिभागं; परट्ठाणतरं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंत काल।

[२३३ प्र.] भगवन् ! निष्कम्पक (द्विप्रदेशी स्कन्ध) का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३३ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट आवलिका के असख्यातवे भाग का अन्तर होता है। परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट अनन्तकाल का अन्तर होता है।

२३४. एव जाव अणतपएसियस्स।

[२३४] इसी प्रकार अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध तक के अन्तर के विषय मे जानना चाहिए।

२३५. परमाणुपोग्गलाण भते ! सव्वेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ ?

नत्थंतर।

[२३५ प्र] भगवन् ! (अनेक) सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गलो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३५ उ] गौतम ! (उनका) अन्तर नही होता।

२३६. निरेयाण केवतियं० ?

नत्थतर।

[२३६ प्र] भगवन् ! निष्कम्प (परमाणु-पुद्गलो) का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३६ उ] गौतम ! (उनका भी) अन्तर नही होता।

२३७ दुपएसियाण भते ! खंधाण देसेयाणं केवतियं कालं० ?

नत्थतरं।

[२३७ प्र] भगवन् ! (बहुत-से) देशकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्धो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३७ उ] गौतम ! (उनका) अन्तर नही होता।

२३८. सव्वेयाण केवतियं कालं० ?

नत्थतरं।

[२३८ प्र] भगवन् ! सर्वकम्पक (द्विप्रदेशी स्कन्धो) का अन्तर कितने काल का (होता है ?)

[२३८ उ] गौतम ! (उनका) अन्तर नही होता।

२३९. निरेयाणं केवतियं काल० !

नत्थतरं।

[२३९ प्र.] भगवन् ! निष्कम्प (द्विप्रदेशी स्कन्धो) का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२३९ उ] गौतम ! (उनका) अन्तर नही होता ।

२४०. एवं जाव अणंतपएसियाणं ।

[२४०] इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धो तक के अन्तर का कथन जानना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत २४ सूत्रो (२१७ से २४० तक) मे परमाणु-पुद्गल से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के एकत्व और बहुत्व की अपेक्षा देशकम्प, सर्वकम्प और निष्कम्प की दृष्टि से जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति तथा अन्तर दोनो की प्ररूपणा की गई है ।[1]

सर्व-देशकम्पक-निष्कम्पक परमाणु से अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का अल्पबहुत्व

२४१. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं सव्वेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा परमाणुपोग्गला सव्वेया, निरेया असखेज्जगुणा ।

[२४१ प्र] भगवन् ! इन (पूर्वोक्त) सर्वकम्पक और निष्कम्पक परमाणु-पुद्गलो मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हे ?

[२४१ उ] गौतम ! सबसे थोडे सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गल होते हे । उनसे निष्कम्पक परमाणु-पुद्गल असख्यातगुणे है ।

२४२. एएसि णं भंते ! दुपएसियाणं खंधाणं देसेयाणं सव्वेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा दुपएसिया खंधा सव्वेया, देसेया असखेज्जगुणा, निरेया असंखेज्जगुणा ।

[२४२ प्र] भगवन् ! देशकम्पक, सर्वकम्पक और निष्कम्पक द्विप्रदेशी स्कन्धो मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हे ?

[२४२ उ] गौतम ! सबसे थोडे सर्वकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध है, उनसे देशकम्पक और उनसे निष्कम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध उत्तरोत्तर क्रमश असख्यात-असख्यातगुण हें ।

२४३. एव जाव असखेज्जपएसियाण खधाण ।

[२४३] इसी प्रकार यावत् असख्यात-प्रदेशी स्कन्धो तक अल्पबहुत्व के विषय मे जानना चाहिए ।

२४४ एएसि णं भते ! अणंतपएसियाणं खधाणं देसेयाणं सव्वेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा सव्वेया निरेया अणंतगुणा, देसेया अणंतगुणा ।

[२४४ प्र] भगवन् ! देशकम्पक, सर्वकम्पक और निष्कम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्धो मे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हे ?

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त, भाग २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. १००८-९

[२४४ उ] गौतम ! सबसे थोडे सर्वकम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध है। उनसे निष्कम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुण हैं और देशकम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुण है।

विवेचन—निष्कर्ष—सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गल सबसे अल्प हैं, उनसे निष्कम्पक परमाणु-पुद्गल असख्यातगुण हैं। द्विप्रदेशी स्कन्धो से असख्यातप्रदेशी स्कन्धो तक मे सर्वकम्पक सबसे अल्प है, उनसे देशकम्पक असंख्यातगुण है, उनसे निष्कम्पक असख्यातगुण है। अनन्तप्रदेशी स्कन्धो मे सर्वकम्पक सबसे अल्प है, निष्कम्प अनन्तगुण है और उनसे देशकम्पक अनन्तगुण है।

सर्व-देश-निष्कम्प परमाणुओं से अनन्त प्रदेशीस्कन्ध तक के अल्पबहुत्व की चर्चा

२४५. एएणि णं भते ! परमाणुपोग्गलाणं, संखेज्जपएसियाणं असंखेज्जपएसियाणं अणत-पएसियाण य खंधाणं देसेयाणं सव्वेयाण निरेयाण दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खधा सव्वेया दव्वट्ठयाए १, अणंतपएसिया खधा निरेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा २, अणतपएसिया खधा देसेया दव्वट्ठयाए अणतगुणा ३, असखेज्ज-पएसिया खधा सव्वेया दव्वट्ठयाए अणतगुणा ४, सखेज्जपएसिया खधा सव्वेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ५, परमाणुपोग्गला सव्वेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ६, संखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ७, असखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ८, परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ९, सखेज्जपएसिया खधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा १०, असखेज्जपएसिया खधा निरेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ११।

पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणतपदेसिया। एवं पएसट्ठयाए वि, नवर परमाणुपोग्गला अपएसट्ठयाए भाणियव्वा। सखेज्जपएसिया खधा निरेया पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा सेसं त चेव।

दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खधा सव्वेया दव्वट्ठयाए १, ते चेव पए-सट्ठयाए अणतगुणा २, अणतपएसिया खधा निरेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा ३, ते चेव पएसट्ठयाए अणतगुणा ४, अणतपएसिया खधा देसेया दव्वट्ठयाए अणतगुणा ५, ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा ६, असंखेज्जपएसिया खधा सव्वेया दव्वट्ठयाए अणतगुणा ७, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ८, संखेज्जपएसिया खधा सव्वेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ९, ते चेव पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा १०, परमाणुपोग्गला सव्वेया दव्वट्ठअपएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ११, संखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगणा १२, ते चेव पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा १३, असखेज्जपएसिया खधा देसेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा १४, ते चेव पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा १५, परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठ-अपएसट्ठयाए असखेज्जगुणा १६, सखेज्जपएसिया खधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा १७, ते चेव पएसट्ठयाए सखेज्जगुणा १८, असंखेज्जपएसिया खधा निरेया दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा १९, ते चेव पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा २०।

[२४५ प्र.] भगवन् ! इन देशकम्पक, सर्वकम्पक और निष्कम्पक परमाणु-पुद्गलों, संख्यात-प्रदेशी, असख्यात-प्रदेशी और अनन्त-प्रदेशी स्कन्धो मे, द्रव्यार्थ से, प्रदेशार्थ तथा द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ से कौन किससे यावत् विशेषाधिक है ?

[२४५ उ.] गौतम ! (१) सर्वकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सबसे थोडे है, (२) उनसे निष्कम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है, (३) उनसे देशकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है, (४) उनसे सर्वकम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है । (५) उनसे सर्वकम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे हैं, (६) उनसे सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गल द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है, (७) देशकम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (८) उनसे निष्कम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (९) उनसे निष्कम्पक परमाणु-पुद्गल द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (१०) उनसे निष्कम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सख्यातगुणे है और (११) उनसे निष्कम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है ।

प्रदेशार्थरूप से—सबसे थोडे (सर्वकम्पक) अनन्त प्रदेशी स्कन्ध है । इस प्रकार प्रदेशार्थ से भी (पूर्ववत्) अल्पबहुत्व जानना चाहिए । विशेष यह है कि परमाणु-पुद्गल के लिए 'अप्रदेशार्थ' कहना चाहिए तथा निष्कम्प सख्यात-प्रदेशी, स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुण है, यह कहना चाहिए । शेष सब पूर्ववत् ।

द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थरूप से—(१) सर्वकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सबसे थोडे है । (२) उनसे सर्वकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से अनन्तगुणे है । (३) उनसे निष्कम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है । (४) उनसे निष्कम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से अनन्तगुणे है । (५) उनसे देशकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनन्तगुणे है । (६) उनसे देशकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ स अनन्तगुणे है, (७) उनसे सर्वकम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (८) उनसे सर्वकम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे है । (९) उनसे सर्वकम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (१०) उनसे सर्वकम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे है । (११) उनसे देशकम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (१२) उनसे देशकम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (१३) उनसे दशकम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे है । (१४) उनसे देशकम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है । (१५) उनसे देशकम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे है । (१६) उनसे निष्कम्पक परमाणु-पुद्गलद्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थ रूप से असख्यातगुणे है । (१७) उनसे निष्कम्पक सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से सख्यातगुणे है । (१८) उनसे निष्कम्पक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से सख्यातगुणे है । (१९) उनसे निष्कम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्यार्थ से असख्यातगुणे है और (२०) उनसे निष्कम्पक असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशार्थ से असख्यातगुणे है ।

विवेचन—परमाणु-पुद्गल आदि सभी के अल्पबहुत्व अधिकार मे द्रव्यार्थ की विचारणा में परमाणु-पुद्गल के साथ सर्वकम्पक और निष्कम्पक ये दो विशेषण लगाये गए है, जबकि, सख्यात-प्रदेशी, असख्यात-प्रदेशी और अनन्तप्रदेशी इन तीन स्कन्धों के साथ देशकम्पक, सर्वकम्पक और

निष्कम्प, ये तीन विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं। इस प्रकार ये ११ पद होते हैं । प्रदेशार्थविषयक विचारणा मे भी ये ही ११ पद होते हैं। किन्तु द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ उभय की विचारणा मे बाईस पद न बताकर बीस ही पद बताये गए है। इसका कारण यह है कि सकम्प और निष्कम्प परमाणुओ के द्रव्यार्थ और प्रदेशार्थ, इन दो पक्षो के बदले द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थ, यह एक ही पद बनता है। इस प्रकार द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ इस उभयपक्ष के बीस ही पद घटित होते है।[1]

धर्मास्तिकायादि के मध्यप्रदेशो की संख्या का निरूपण

२४६. कति णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स मज्झपएसा पन्नत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ धम्मत्थिकायस्स मज्झपएसा पन्नत्ता।

[२४६ प्र.] भगवन् ! धर्मास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे हैं ?

[२४६ उ] गौतम ! धर्मास्तिकाय के मध्य-प्रदेश आठ कहे है।

२४७ कति ण भंते ! अधम्मत्थिकायस्स मज्झपएसा पन्नत्ता ?

एव चेव।

[२४७ प्र] भगवन् ! अधर्मास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे है ?

[२४७ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) आठ कहे हैं।

२४८. कति णं भंते ! आगासत्थिकायस्स मज्झपएसा पन्नता ?

एव चेव।

[२४८ प्र] भगवन् ! आकाशास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे हैं ?

[२४८ उ] गौतम ! पूर्ववत् आठ कहे हैं।

२४९ कति णं भंते ! जीवत्थिकायस्स मज्झपएसा पन्नत्ता ?

गोयमा ! अट्ठ जीवत्थिकायस्स मज्झपएसा पन्नत्ता।

[२४९ प्र] भगवन् ! जीवास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कितने कहे है ?

[२४९ उ] गौतम ! जीवास्तिकाय के मध्य-प्रदेश आठ कहे है।

विवेचन—मध्य-प्रदेश आठ ही क्यो और कहाँ-कहाँ चूर्णिकार के मतानुसार धर्मास्तिकाय के आठ मध्य (बीच के) प्रदेश आठ रुचक-प्रदेशवर्ती होते है। यद्यपि धर्मास्तिकाय आदि तीनो लोक-प्रमाण होने से उनका मध्य-भाग रुचक-प्रदेशो से असख्यात योजन दूर रत्नप्रभा-पृथ्वी के अवकाशान्तर मे अवस्थित है, ठीक रुचकवर्ती नही है, तथापि रुचकप्रदेश दिशाओ और विदिशाओ के उत्पत्ति स्थान होने से उनकी धर्मास्तिकाय आदि के मध्यरूप से विवक्षा हो, ऐसा सम्भव है।

प्रत्येक जीव के आठ रुचक-होते हैं। वे उस जीव के शरीर को सर्व-अवगाहना के ठीक मध्यवर्ती भाग मे होते है। इसलिए उन्हे मध्यप्रदेश कहते है।[2]

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८७

२ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८७

जीवास्तिकाय-मध्यप्रदेश तथा आकाशास्तिकायप्रदेशों की अवगाहना की प्ररूपणा

२५०. एए णं भंते ! अट्ठ जीवत्थिकायस्स मज्झपएसा कतिसु आगासपएसेसु ओगाहंति ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कसि वा दोहि वा तीहि वा चउहिं वा पंचहिं वा छहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठसु, नो चेव णं सत्तसु ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।

।। पंचवीसइमे सए : चउत्थो उद्देसओ समत्तो ।। २५-४ ।।

[२५० प्र.] भगवन् ! जीवास्तिकाय के ये आठ मध्य-प्रदेश कितने आकाशप्रदेशों को अवगाहित कर (में समा) सकते है ?

[२५० उ] गौतम ! वे जघन्य एक, दो, तीन, चार, पाच या छह तथा उत्कृष्ट आठ आकाशप्रदेशों मे अवगाहित हो (समा) सकते है, किन्तु सात प्रदेशो मे नही समाते ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—मध्यप्रदेशो का अवगाहन—जीव (आत्म-) प्रदेशो का धर्म सकोच और विकास (विस्तार) होन से उनके आठ मध्य-प्रदेश एक आकाशप्रदेश से लेकर आठ आकाशप्रदेशो मे रह (समा) सकते है, किन्तु सात आकाशप्रदेशो मे नही रहते (समाते), क्योकि वस्तुस्वभाव ही कुछ ऐसा है ।[1]

।। पच्चीसवां शतक . चतुर्थ उद्देशक सम्पूर्ण ।।

---

१. भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८८७

पंचमो उद्देसओ : 'पज्जव'

पंचम उद्देशक : 'पर्यव' (आदि)

पर्यव-भेद एवं उसके विशिष्ट पहलुओं के विषय में पर्यवपद : अतिदेश

१. कतिविहा णं भंते ! पज्जवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पज्जवा पन्नत्ता, त जहा—जीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य। पज्जवपयं निरवसेस भाणियव्वं जहा पण्णवणाए।

[१ प्र] भगवन् ! पर्यव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ] गौतम ! पर्यव दो प्रकार के कहे हैं। यथा—जीवपर्यव और अजीवपर्यव। यहाँ प्रज्ञापनासूत्र का पाचवाँ पर्यव पद कहना चाहिए।

विवेचन—पर्यव के एकार्थक शब्द—पर्यव, गुण, धर्म, विशेष, पर्यय और पर्याय, ये सब पर्यव शब्द के पर्यायवाची (समानार्थक) शब्द है। जीवपर्यव और अजीवपर्यव के लिये प्रज्ञापनासूत्र के पाचवे पद का यहाँ अतिदेश किया गया है। जीव के अनन्त पर्यव होते हैं और अजीव के भी सब मिलाकर अनन्त पर्यव होते है।[1]

आवलिका से लेकर सर्वकालपर्यन्त कालभेदों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा समयसंख्या प्ररूपणा

२. आवलिया णं भंते ! किं संखेज्जा समया, असखेज्जा समया, अणता समया ?

गोयमा ! नो सखेज्जा समया, असखेज्जा समया, नो अणता समया।

[२ प्र] भगवन् ! क्या आवलिका सख्यात समय की, असख्यात समय की या अनन्त समय की होती है ?

[२ उ] गौतम ! वह न तो सख्यात समय की होती है और न अनन्त समय की होती है, किन्तु असख्यात समय की होती है।

३. आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जा० ?

एव चेव।

[३ प्र.] भगवन् ! आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) सख्यात समय का होता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[३ उ] गौतम ! पूर्ववत् (असंख्यात समय का) होता है।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८९

४. थोवे णं भंते ! किं संखेज्जा० ?

एवं चेव ।

[४ प्र.] भगवन् ! स्तोक सख्यात समय का होता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[४ उ] गौतम ! पूर्ववत् (असख्यात समय का) जानना चाहिए ।

५ एवं लवे वि, मुहुत्ते वि । एव अहोरत्ते । एवं पक्खे मासे उडू अयणे संवच्छरे जुगे वाससते वाससहस्से वाससयसहस्से पुव्वंगे पुव्वे, तुडियंगे तुडिए, अडडंगे अडडे, अववंगे अववे, हूहुयंगे हूहुए, उप्पलंगे उप्पले, पउमगे पउमे, नलिणगे नलिणे, अत्थनिऊरंगे अत्थनिऊरे, अउयंगे अउये, नउयंगे नउए, पउयंगे पउए, चूलियंगे, चूलिए, सीसपहेलियगे, सीसपहेलिया, पलिग्रोवमे, सागरोवमे, ओसप्पिणी एवं उस्सप्पिणी वि ।

[५] इसी प्रकार लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, सवत्सर, युग, वर्षशत (सो वर्ष), वर्षसहस्र (हजार वर्ष), वर्षशत-सहस्र (लाख वर्ष), पूर्वाग, पूर्व, त्रुटिताग, त्रुटित, अटटाग, अटट, अववाग, अवव, हूहूकाग, हूहूक, उत्पलाग, उत्पल, पद्माग पद्म, नलिनाग, नलिन, अक्ष-निपूराग, अक्षनिपूर, अयुताग, अयुत, नयुताग, नयुत, प्रयुताग, प्रयुत, चूलिकाग, चूलिका, शीर्ष-प्रहेलिकाग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, इन सबके भी समय (पूर्वोक्त कथनानुसार) जानने चाहिए । अर्थात् इनमे से प्रत्येक के असख्यात समय होते है ।

६. पोग्गलपरियट्टे णं भते ! किं सखेज्जा समया असखेज्जा समया० पुच्छा ।

गोयमा ! नो सखेज्जा समया, नो असंखेज्जा समया, अणंता समया ।

[६ प्र] भगवन् ! पुद्गलपरिवर्तन सख्यात समय का होता है, असख्यात समय का या अनन्त समय का होता है ?

[६ उ] गौतम ! वह सख्यात समय का या असख्यात समय का नही होता, किन्तु अनन्त समय का होता है ।

७. एवं तीतद्धा-अणागयद्धा-सव्वद्धा ।

[७] इसी प्रकार भूतकाल, भविष्यत्काल तथा सर्वकाल भी समझना चाहिए ।

८ आवलियाओ ण भते ! किं संखेज्जा समया० पुच्छा ।

गोयमा ! नो संखेज्जा समया, सिय असंखेज्जा समया, सिय अणंता समया ।

[८ प्र] भगवन् ! क्या (बहुत) आवलिकाएँ सख्यात समय की होती है ? इत्यादि प्रश्न ।

[८ उ] गौतम ! वह सख्यात समय की नही होती, किन्तु कदाचित् असख्यात समय की और कदाचित् अनन्त समय की होती हैं ।

९. आणापाणू णं भंते ! कि संखेज्जा समया० ?

एव चेव ।

[९ प्र] भगवन् ! क्या (अनेक) आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) संख्यात समय के होते हैं ?

[९ उ] गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए।

१०. थोवा णं भंते ! किं संखेज्जा समया० ?

एवं चेव।

[१० प्र] भगवन् ! (अनेक) स्तोक संख्यात समयरूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[१० उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना।

११. एवं जाव उस्सप्पिणीओ त्ति।

[११] इसी प्रकार (लव से लेकर) यावत् अवसर्पिणीकाल तक समझना चाहिए।

१२. पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जा समया० पुच्छा।

गोयमा ! नो संखेज्जा समया, नो असंखेज्जा समया, अणंता समया।

[१२ प्र.] भगवन् ! क्या पुद्गल-परिवर्त्तन संख्यातसमय के होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[१२ उ] गौतम ! वह संख्यात समय के या असंख्यात समय के नही होते, किन्तु अनन्त समय के होते है।

विवेचन—कालमान-प्ररूपणा—समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक ४६ भेद है। यहाँ तक का काल-परिमाण गणना के योग्य है। शीर्षप्रहेलिका मे १९४ अंको की संख्या आती है। काल-परिमाण तो इसके आगे भी बताया गया है, परन्तु वह उपमेयकाल है, गणनीय काल नही। समय से लेकर शीर्षप्रहेलिका तक की संख्या का अर्थ पहले लिखा जा चुका है। इसी प्रकार पल्योपम, सागरोपम आदि उपमाकाल का अर्थ भी पहले अंकित किया जा चुका है।

आवलिका से पुद्गलपरिवर्तन तक का समयगत कालमान आवलिका से उत्सर्पिणी तक का कालमान संख्यात और अनन्त समय का नही अपितु असंख्यात समय का है। किन्तु पुद्गल-परिवर्तन या भूत, भविष्य या सर्वकाल का मान अनन्त समय का बताया गया है। आवलिकाएँ, आन-प्राण, स्तोक से लेकर अवसर्पिणियो (बहुवचन) तक कदाचित् असंख्यात समय की और कदाचित् अनन्त समय की है। परन्तु पुद्गलपरिवर्तन (बहुवचन) अनन्त समय के है।

इसमे दूसरे से लेकर सातवे सूत्र तक एकवचनपरक सूत्र हैं और आठवे से बारहवें सूत्र तक बहुवचनपरक सूत्र है।[२]

आनप्राणादि कालों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से आवलिका : संख्या-प्ररूपणा

१३. आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ० पुच्छा।

गोयमा ! संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, नो अणंताओ आवलियाओ।

---

१. भगवती (हिन्दी विवेचन) भाग ७, पृ ३३४१

२. वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ १०१२-१३

[१३ प्र.] भगवन् ! आनप्राण क्या सख्यात आवलिकारूप है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१३ उ] गौतम ! (आनप्राण) सख्यात आवलिकारूप है, किन्तु असख्यात आवलिकारूप या अनन्त आवलिकारूप नही है ।

१४. एवं थोवे वि ।

[१४] इसी प्रकार स्तोक के सम्बन्ध मे जानना ।

१५. एवं जाव सीसपहेलिय त्ति ।

[१५] यावत्--शीर्षप्रहेलिका तक भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१६. पलिओवमे ण भंते ! किं सखेज्जाओ० पुच्छा ।

गोयमा ! नो सखेज्जाओ आवलियाओ, असंखेज्जाओ आवलियाओ, नो अणंताओ आवलियाओ ।

[१६ प्र.] भगवन् ! पल्योपम सख्यात आवलिकारूप है ? इत्यादि प्रश्न ?

[१६ उ] गौतम ! वह सख्यात आवलिकारूप अथवा अनन्त आवलिकारूप नही है, किन्तु असख्यात आवलिकारूप है ।

१७. एवं सागरोवमे वि ।

[१७] इसी प्रकार सागरोपम के सम्बन्ध मे जानना ।

१८. एव ओसप्पिणीए वि, उस्सप्पिणीए वि ।

[१८] इसी प्रकार अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल के सम्बन्ध मे जानना चाहिए ।

१९. पोग्गलपरियट्टे पुच्छा ।

गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, अणंताओ आवलियाओ ।

[१९ प्र] (भगवन् !) पुद्गलपरिवर्तन संख्यात आवलिकारूप है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१९ उ] गौतम ! वह न तो सख्यात आवलिकारूप है और न असख्यात आवलिकारूप है, किन्तु अनन्त आवलिकारूप है ।

२०. एवं जाव सव्वद्धा ।

[२०] इसी प्रकार यावत् सर्वकाल (सर्वाद्धा) तक जानना चाहिए ।

२१. आणपाणू [? ओ] ण भते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय संखेज्जाओ आवलियाओ, सिय असखेज्जाओ, सिय अणंताओ ।

[२१ प्र.] भगवन् ! क्या (बहुत) आनप्राण सख्यात आवलिकारूप है ? इत्यादि प्रश्न !

[२१ उ.] गौतम ! वे कदाचित् सख्यात आवलिकारूप है, कदाचित् असख्यात आवलिकारूप है और कदाचित् अनन्त आवलिकारूप हैं ।

२२. एवं जाव सीसपहेलियाओ ।

[२२] इस प्रकार यावत् शीर्षप्रहेलिका तक जानना ।

२३. पलिओवमा णं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, सिय असंखेज्जाओ आवलियाओ, सिय अणंताओ आवलियाओ ।

[२३ प्र] भगवन् ! क्या पल्योपम सख्यात आवलिकारूप है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२३ उ] गौतम ! वे सख्यात आवलिकारूप नही है, किन्तु कदाचित् असख्यात आवलिकारूप है और कदाचित् अनन्त आवलिकारूप है ।

२४. एव जाव उस्सप्पिणीओ ।

[२४] इस प्रकार यावत् उत्सर्पिणी पर्यन्त समझना चाहिए ।

२५. पोग्गलपरियट्टा णं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ,नो असंखेज्जाओ आवलियाओ,अणंताओ आवलियाओ ।

[२५ प्र] भगवन् ! क्या पुद्गलपरिवर्त्तन सख्यात आवलिकारूप है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२५ उ] गौतम ! वे न तो सख्यात आवलिकारूप है और न ही असख्यात आवलिकारूप है, किन्तु अनन्त आवलिकारूप है ।

विवेचन—आनप्राण से लेकर पुद्गलपरिवर्त्तन तक आवलिकागत कालमान—आनप्राण से शीर्षप्रहेलिका तक कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त आवलिकारूप है । पल्योपम से लेकर उत्सर्पिणी तक सख्यात आवलिकरूप नही, किन्तु कदाचित् असख्यात आवलिकारूप और कदाचित् अनन्त आवलिकारूप है तथा पुद्गलपरिवर्तन सख्यात-असख्यात आवलिकारूप नही, किन्तु अनन्त आवलिकारूप है । यह काल सख्यात वहुत्व की अपेक्षा से है ।[1]

स्तोकादि कालों में एकत्व-बहुत्वदृष्टि से आनप्राणादि से शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त संख्या-निरूपण

२६. थोवे ण भते ! कि सखेज्जाओ० आणापाणूओ, असंखेज्जाओ ?

जहा आवलियाए वत्तव्वया एव आणापाणूओ वि निरवसेसा ।

[२६ प्र] भगवन् ! स्तोक क्या सख्यात आनप्राणरूप है या असख्यात आनप्राणरूप है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२६ उ] जिस प्रकार आवलिका के सम्बन्ध मे वक्तव्यता है, उसी प्रकार आनप्राण से सम्बन्धित समग्र वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

२७ एवं एएणं गमएण जाव सीसपहेलिया भाणियव्वा ।

[२७] इस प्रकार पूर्वोक्त (इस) गम (पाठ) के अनुसार यावत् शीर्षप्रहेलिका तक कहना चाहिए ।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) पृ १०१३-१०१४

विवेचन—आनप्राणरूप कालमान से लेकर शीर्षप्रहेलिकारूप कालमान तक—प्रस्तुत दो सूत्रो मे अवालिकारूप कालमान के अतिदेशपूर्वक स्तोक आदि का आनप्राण से शीर्षप्रहेलिका तक के कालमान की प्ररूपणा की गई है।

सागरोपमादि कालों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से पल्योपम-संख्या निरूपण

२८. सागरोवमे णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा० पुच्छा।

गोयमा ! संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, नो अणंता पलिओवमा।

[२८ प्र.] भगवन् ! सागरोपम क्या सख्यात पल्योपमरूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[२८ उ.] गौतम ! वह सख्यात पल्योपमरूप है, किन्तु असख्यात पल्योपमरूप या अनन्त पल्योपमरूप नही है।

२९. एवं ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि।

[२९] इसी प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

३०. पोग्गलपरियट्टे णं० पुच्छा।

गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा।

[३०प्र.] भगवन् ! पुद्गलपरिवर्तन क्या सख्यात पल्योपमरूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[३० उ.] गौतम ! वह सख्यात पल्योपमरूप नही है और न असख्यात पल्योपमरूप है, किन्तु अनन्त पल्योपमरूप है।

३१. एव जाव सव्वद्धा।

[३१] इसी प्रकार सर्वकाल (सर्वाद्धा) तक जानना।

३२. सागरोवमा णं भते ! किं संखेज्जा पलिओवमा० पुच्छा।

गोयमा ! सिय संखेज्जा पलिओवमा, सिय असखेज्जा पलिओवमा, सिय अणंता पलिओवमा।

[३२ प्र.] भगवन् ! सागरोपम क्या सख्यात पल्योपमरूप हे ? इत्यादि प्रश्न।

[३२ उ.] गौतम ! वे कदाचित् सख्यात पल्योपमरूप है, कदाचित् असख्यात पल्योपमरूप हे और कदाचित् अनन्त पल्योपमरूप हे।

३३. एवं जाव ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि।

[३३] इसी प्रकार यावत् अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

३४. पोग्गलपरियट्टा णं० पुच्छा।

गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा।

[३४ प्र.] भगवन् ! पुद्गलपरिवर्तन क्या सख्यात पल्योपमरूप होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३४ उ] गौतम ! वे सख्यात पल्योपमरूप अथवा असख्यात पल्योपमरूप नही है किन्तु अनन्त पल्योपमरूप हैं।

विवेचन—सागरोपम से सर्वकाल तक एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से पल्योपमरूप कालमान— एकवचन की दृष्टि से सागरोपम से उत्सर्पिणीकाल तक सख्यात पल्योपमरूप है। पुद्गलपरिवर्तन से सर्वाद्धा (सर्वकाल) तक अनन्त पल्योपमरूप है। बहुवचन की दृष्टि से सागरोपम से लेकर उत्सर्पिणी तक कदाचित् सख्यात, असख्यात या अनन्त पल्योपम रूप हैं, किन्तु पुद्गलपरिवर्तन अनन्त-पल्योपम रूप हैं।

उत्सर्पिणी आदि कालों में एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा से सागरोपम-संख्या-प्ररूपणा

३५. ओसप्पिणी णं भंते ! किं सखेज्जा सागरोवमा० ?

जहा पलिओवमस्स वत्तव्वया तहा सागरोवमस्स वि।

[३५ प्र] भगवन् ! अवसर्पिणी क्या सख्यात सागरोपम रूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[३५ उ] गौतम ! जैसे पल्योपम की वक्तव्यता कही थी, वैसे सागरोपम की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

पुद्गलपरिवर्तनादि कालों में एकत्व-बहुत्व दृष्टि से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की संख्या की प्ररूपणा

३६. पोग्गलपरियट्टे ण भते ! किं सखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ० पुच्छा।

गोयमा ! नो सखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सपिणीओ, नो असखिज्जाओ अणताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।

[३६ प्र] भगवन् ! पुद्गलपरिवर्तन क्या सख्यात अवसर्पिणीरूप-उत्सर्पिणीरूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[३६ उ] गौतम ! वह न तो सख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप है और न ही असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप है, किन्तु अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप है।

३७. एवं जाव सव्वद्धा।

[३७] इसी प्रकार यावत् सर्वाद्धा (सर्वकाल) तक जानना चाहिए।

३८. पोग्गलपरियट्टा णं भते ! किं सखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सपिणीओ० पुच्छा।

गोयमा ! नो सखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, नो असंखेज्जाओ, अणताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ।

[३८ प्र] भगवन् ! पुद्गलपरिवर्तन क्या सख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप हैं। इत्यादि प्रश्न।

[३७ उ] गौतम ! वे सख्यात या असख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप नही है किन्तु अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप हैं।

विवेचन—**पुद्गलपरिवर्तन से सर्वाद्धा तक एकत्व-बहुत्वदृष्टि से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप कालमान**—पुद्गलपरिवर्तन आदि एक हो या अनेक, वे अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप हैं।

भूत-भविष्यत् तथा सर्वकाल में पुद्गलपरिवर्तन की अनन्तता

३९. तीतद्धा णं भंते ! किं संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा० पुच्छा।

गोयमा ! नो संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, नो असंखेज्जा, अणंता पोग्गलपरियट्टा।

[३९ प्र] भगवन् ! अतीताद्धा (भूतकाल) क्या सख्यात पुद्गलपरिवर्तनरूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[३९ उ] गौतम ! न तो वह सख्यात पुद्गलपरिवर्तनरूप है और न असख्यात पुद्गल-परिवर्तनरूप है, किन्तु अनन्त पुद्गलपरिवर्तनरूप है।

४०. एवं अणागतद्धा वि।

[४०] इसी प्रकार अनागताद्धा (भविष्यत्काल) के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

४१. एवं सव्वद्धा वि।

[४१] इसी प्रकार सर्वाद्धा (सर्वकाल) के विषय मे जानना।

विवेचन निष्कर्ष—भूतकाल, भविष्यत्काल और सर्वकाल तीनो अनन्त पुद्गलपरिवर्तन-रूप है।

अनागतकाल की अतीतकाल से समयाधिकता

४२. अणागतद्धा ण भंते ! किं सखेज्जाओ तीतद्धाओ, असंखेज्जाओ, अणताओ ?

गोयमा ! नो सखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो असखेज्जाओ, तीतद्धाओ, नो अणताओ तीतद्धाओ, अणागयद्धा ण तीतद्धाओ समयाहिया; तीतद्धा णं अणागयद्धाओ समयूणा।

[४२ प्र] भगवन् ! अनागतकाल क्या सख्यात अतीतकालरूप है अथवा असख्यात या अनन्त अतीतकालरूप है ?

[४२ उ] गौतम ! वह न तो सख्यात अतीतकालरूप है, न असख्यात और अनन्त अतीत-कालरूप है, किन्तु अतीताद्धाकाल से अनागताद्धाकाल एक समय अधिक है और अनागताद्धाकाल से अतीताद्धाकाल एक समय न्यून है।

विवेचन—अनागतकाल का भूतकालरूप कालमान—प्रस्तुत सूत्र (४२) मे बताया गया है कि अनागतकाल सख्यात-असख्यात-अनन्त अतीतकालरूप नही है, किन्तु वह अतीतकाल से एक समय अधिक है। अर्थात् भूतकाल से भविष्यत्काल एक समय अधिक है, क्योकि भूतकाल और भविष्यकाल दोनो अनादित्व और अनन्तत्व की दृष्टि से समान है। इसके बीच मे श्री गौतमस्वामी के प्रश्न का समय है। वह अविनष्ट होने से भूतकाल मे समाविष्ट नही किया जा सकता; किन्तु अविनष्ट धर्म की

साधर्म्यता से उसका समावेश भविष्यत्काल मे होता है। इसलिए भविष्यत्काल, भूतकाल से एक समय अधिक है और भूतकाल, भविष्यकाल से एक समय न्यून है।[1]

सर्वाद्धा की अतीत तथा अनागतकाल के समय से न्यूनाधिकता

४३. सव्वद्धा ण भते ! नो सखेज्जाओ तीतद्धाओ० पुच्छा।

गोयमा ! नो सखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो असखेज्जाओ, णो अणताओ तीतद्धाओ, सव्वद्धा ण तीयद्धाओ सातिरेगदुगुणा, तीतद्धा ण सव्वद्धाओ थोवूणए अद्धे।

[४३ प्र] भगवन् ! सर्वाद्धा (सर्वकाल) क्या सख्यात अतीताद्धाकालरूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[४३ उ] गौतम ! वह सख्यात-असंख्यात-अनन्त अतीताद्धाकालरूप नही है, किन्तु अतीताद्धाकाल से सर्वाद्धा (सर्वकाल) कुछ अधिक द्विगुण है और अतीताद्धाकाल, सर्वाद्धा से कुछ कम अर्द्ध-भाग है।

४४. सव्वद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ अणागयद्धाओ० पुच्छा।

गोयमा ! नो संखेज्जाओ, अणागयद्धाओ, नो असंखेज्जाओ अणागयद्धाओ, नो अणताओ अणागयद्धाओ, सव्वद्धा ण अणागयद्धाओ थोवूणगदुगुणा, अणागयद्धा णं सव्वद्धातो सातिरेगे अद्धे।

[४४ प्र] भगवन् ! सर्वाद्धा (सर्वकाल) क्या सख्यात अनागताद्धाकालरूप है ? इत्यादि प्रश्न।

[४४ उ] गौतम ! वह सख्यात-असख्यात-अनन्त अनागताद्धाकालरूप नही, किन्तु सर्वाद्धा, अनागत-अद्धाकाल से कुछ कम दुगुना है और अनागताद्धाकाल सर्वाद्धा से सातिरेक (कुछ अधिक) अर्द्धभाग है।

विवेचन—सर्वकाल से अतीत और अनागतकाल की न्यूनाधिकता का परिमाण—सर्वाद्धा अर्थात्—सर्वकाल, भूतकाल से वर्तमान (एक) समय अधिक दुगुना है और भूतकाल, सर्वाद्धाकाल से एक समय कम अर्धभागरूप है। इसी प्रकार सर्वाद्धाकाल अनागतकाल से कुछ कम दुगुना है और अनागतकाल सर्वाद्धाकाल से सातिरेक अर्द्धभागरूप है।[2]

शका-समाधान—इस सम्बन्ध मे कोई आचार्य कहते है—भूतकाल से भविष्यकाल अनन्तगुणा है। जैसा कि कहा है—

"तेऽणंता तीअद्धा, अणागयद्धा अणतगुणा।"

अर्थात्—अतीताद्धा (भूतकाल) अनन्त पुद्गलपरावर्तनरूप है। उससे अनन्तगुणा अनागताद्धा (भविष्यत्काल) है।

शका—यदि वर्तमान समय मे भूतकाल और भविष्यत्काल दोनो समान हो तो वर्तमान समय व्यतीत हो जाने पर भविष्यत्काल एक समय कम हो जाएगा तथा इसके बाद दो, तीन, चार इत्यादि

---

१. (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा २, पृ १०१५
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८९

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त भाग २, पृ १०१६

समय कम हो जाने पर भूतकाल और भविष्यत्काल की समानता नही रहेगी। इसलिए ये दोनो काल समान नही हैं, परन्तु भूतकाल से भविष्यत्काल अनन्तगुणा है, क्योंकि अनन्तकाल व्यतीत हो जाने पर भी उसका क्षय नही होता। ऐसी स्थिति मे शका होती है कि अतीत और अनागत, दोनो की समानता पूर्वोक्त कथनानुसार कहाँ रही ?

समाधान—इसका समाधान यह है कि अतीत और अनागतकाल की जो समानता बताई जाती है, वह अनादित्व और अनन्तत्व की अपेक्षा से है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस प्रकार अतीतकाल की आदि नही है, वह अनादि है, इसी प्रकार भविष्यत्काल का भी अन्त नही है, वह भी अनन्त है। अत अनादित्व और अनन्तत्व की अपेक्षा अतीतकाल और अनागतकाल की समानता विवक्षित है।[1]

निगोद के भेद-प्रभेदों का निरूपण

४५. कतिविधा णं भंते ! णिओवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा णिओवा पन्नत्ता, त जहा—णिओया य णिओयजीवा य।

[४५ प्र] भगवन् ! निगोद कितने प्रकार के कहे गए है ?

[४५ उ] गौतम ! निगोद दो प्रकार के कहे गए है। यथा—निगोद और निगोदजीव।

४६. णिओवा णं भते ! कतिविधा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, त जहा सुहुमनिगोवा य, बायरनियोया य। एव नियोया भाणियव्वा जहा जीवाभिगमे तहेव निरवसेस।

[४६ प्र] भगवन् ! ये निगोद कितने प्रकार के कहे हैं ?

[४६ उ.] गौतम ! ये दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—सूक्ष्मनिगोद और बादरनिगोद। इस प्रकार निगोद के विषय मे समग्र वक्तव्यता जीवाभिगमसूत्र के अनुसार कहनी चाहिए।

विवेचन—**निगोद : स्वरूप और प्रकार**—अनन्तकायिक जीवो के शरीर को **'निगोद'** और अनन्तकायिक जीवो को **'निगोद के जीव'** कहते है।

निगोद दो प्रकार के होते है—सूक्ष्मनिगोद और बादरनिगोद। जिनके असख्य शरीर एकत्रित होने पर चर्मचक्षुओ से दिखाई दे सकं, वे **बादरनिगोद** कहलाते हैं और कितने ही शरीर इकट्ठे होने पर भी जो चर्मचक्षुओ से दिखाई न दे, उन्हे **सूक्ष्मनिगोद** कहते है।

निगोदजीव साधारणनामकर्म-उदयवर्ती कहलाते है। जीवाभिगम के अतिदेश से सूचित किया गया है कि सूक्ष्मनिगोद दो प्रकार के कहे है। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक इत्यादि।[2]

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८८९ (ख) भगवती (हिन्दीविवेचन) भा ७, पृ ३३४१
(ग) श्रीमद्भगवतीसूत्रम् खण्ड ४ (प भगवानदासजी कृत गुजराती अनुवाद), पृ २३८

२ (क) भगवती (हिन्दीविवेचन) भाग ७, पृ ३३४२
(ख) श्रीमद्भगवतीसूत्रम् (चतुर्थ खण्ड) गुजराती अनुवाद, पृ २३९ (ग) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९०
(प्र) सुहुमनिगोदा ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
(उ) गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त०—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य इत्यादि।
(घ) जीवाभिगमसूत्र, प्रतिपत्ति ५, उ. २, सू. २३८-३९, पत्र ४२३/२

औदयिकादि छह भावों का अतिदेशपूर्वक प्ररूपण

४७. कतिविधे णं भंते ! णामे पन्नत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे नामे पन्नत्ते, त जहा—उदइए जाव सन्निवातिए ।

[४७ प्र] भगवन् ! नाम (भाव) कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[४७ उ] गौतम ! नाम छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा—औदयिक (से लेकर) सान्निपातिक पर्यन्त ।

४८. से कि त उदइए नामे ?

उदइए णामे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—उदए य उदयनिप्फन्ने य । एवं जहा सत्तरसमसते पढमे उद्देसए (स० १७ उ० १ सु० २९) भावो तहेव इह वि, नवर इम नामनाणत्तं । सेसं तहेव जाव सन्निवातिए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। पंचवीसइमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ।। २५-५ ।।

[४८ प्र] भगवन् ! वह औदयिक नाम (भाव) किस (कितने) प्रकार का है ?

[४८ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा है । यथा—उदय और उदयनिष्पन्न । सत्रहवें शतक के प्रथम उद्देशक (सू २९) मे जैसे भाव के सम्बन्ध मे कहा है, वैसे ही यहाँ कहना । विशेष यही है कि वहाँ 'भाव' के सम्बन्ध मे कहा है, जबकि यहाँ 'नाम' के विषय मे है । शेष सब सान्निपातिक-पर्यन्त उसी प्रकार कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं ।

विवेचन—औदयिकादि छह भावो की अतिदेशपूर्वक प्ररूपणा—नमन, नाम, परिणाम, भाव आदि शब्द एकार्थक (पर्यायवाची) है । भाव ६ है—(१) औदयिक, (२) औपशमिक, (३) क्षायोपशमिक, (५) पारिणामिक और (६) सान्निपातिक ।

वहाँ भाव, यहाँ नाम—भगवतीसूत्र के ही १७वे शतक, प्रथम उद्देशक के २९वे सूत्र मे औदयिक आदि का 'भाव' शब्द से वर्णन है, जबकि यहाँ 'नाम' शब्द के रूप मे । वस्तुत कोई अन्तर नही है ।[1]

।। पच्चीसवाँ शतक : पचम उद्देशक समाप्त ।।

---

१ (क) भगवती शतक १७, उ. १, सू २९, पृ ३२ (गुजराती अनुवाद)
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९०

छट्ठो उद्देसओ : नियंठ

छठा उद्देशक : निर्ग्रन्थों के छत्तीस द्वार

छठे उद्देशक की छत्तीस द्वार-निरूपक गाथाएँ

१. पण्णवण १ वेद २ रागे ३ कप्प ४ चरित्त ५ पडिसेवणा ६ णाणे ७।
तित्थे ८ लिंग ९ सरीरे १० खेत्ते ११ काल १२ गति १३ संजम १४ निकासे १५ ॥१॥
जोगुवओग १६-१७ कसाए १८ लेस्सा १९ परिणाम २० बंध २१ वेए य २२।
कम्मोदीरण २३ उवसंपजहण २४ सन्ना य २५ आहारे २६ ॥२॥
भव २७ आगरिसे २८ कालंतरे य २९-३० समुघाय ३१ खेत्त ३२ फुसणा य ३३।
भावे ३४ परिमाणे ३५ खलु अप्पाबहुयं ३६ नियंठाणं ॥३॥

[१ गाथार्थ-] (छठे उद्देशक मे) निर्ग्रन्थो के विषय मे ३६ द्वार है। यथा—(१) प्रज्ञापन, (२) वेद, (३) राग, (४) कल्प, (५) चारित्र, (६) प्रतिसेवना, (७) ज्ञान, (८) तीर्थ, (९) लिंग, (१०) शरीर, (११) क्षेत्र, (१२) काल, (१३) गति, (१४) सयम, (१५) निकाशर्ष (सन्निकर्ष-पुलाकादि का परस्पर सयोजन), (१६) योग, (१७) उपयोग, (१८) कषाय, (१९) लेश्या, (२०) परिणाम, (२१) बन्ध, (२२) वेद, (वेदन), (२३) कर्मों की उदीरणा, (२४) उपसपत्-हान, (२५) सज्ञा, (२६) आहार, (२७) भव, (२८) आकर्ष, (२९) काल, (३०) अन्तर, (३१) समुद्घात, (३२) क्षेत्र, (३३) स्पर्शना, (३४) भाव, (३५) परिमाण और (३६) अल्पबहुत्व।

विवेचन—बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ—परिग्रह से रहित को निर्ग्रन्थ, श्रमण या साधु कहते है। निर्ग्रन्थो के प्रकार, उनमे वेद, राग, कल्प, चारित्र आदि कितने और किस प्रकार के पाए जाते है? इत्यादि ३६ पहलुओ से निर्ग्रन्थो के जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है।[1]

प्रथम प्रज्ञापनाद्वार : निर्ग्रन्थों के भेद-प्रभेद

२. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[२] राजगृह नगर मे गौतमस्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

३. कति णं भंते ! नियंठा पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंच नियठा पन्नत्ता, तं जहा—पुलाए बउसे कुसीले नियंठे सिणाए।

[३ प्र] भगवन्! निर्ग्रन्थ कितने प्रकार के कहे हैं?

[३ उ] गौतम! निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के बताए हैं। यथा—(१) पुलाक, (२) बकुश, (३) कुशील, (४) निर्ग्रन्थ और (५) स्नातक।

---

१ भगवती-उपक्रम (संयोजक—प मुनि श्री जनकरायजी म) पृ ६०१

४. पुलाए णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविधे पन्नत्ते, त जहा—नाणपुलाए दसणपुलाए चरित्तपुलाए लिंगपुलाए अहासुहुमपुलाए नाम पचमे ।

[४ प्र] भगवन् ! पुलाक कितने प्रकार के कहे है ?

[४ उ] गौतम ! पुलाक पाच प्रकार के कहे है । यथा—(१) ज्ञानपुलाक, (२) दर्शनपुलाक, (३) चारित्रपुलाक, (४) लिंगपुलाक (५) यथासूक्ष्मपुलाक ।

५ बउसे णं भते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविधे पन्नत्ते, त जहा—आभोगबउसे, अणाभोगबउसे संवुडबउसे असंवुडबउसे अहासुहुमबउसे नाम पंचमे ।

[५ प्र.] भगवन् ! बकुश कितने प्रकार के कहे है ?

[५ उ] गौतम ! वे पाच प्रकार के कहे है । यथा—(१) आभोगबकुश, (२) अनाभोग-बकुश, (३) सवृतबकुश, (४) असवृतबकुश और (५) यथासूक्ष्मबकुश ।

६. कुसीले णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—पडिसेवणाकुसीले य, कसायकुसीले य ।

[६ प्र] भगवन् ! कुशील कितने प्रकार के कहे है ?

[६ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के होते है । यथा—प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील ।

७. पडिसेवणाकुसीले ण भते कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविधे पन्नत्ते, तं जहा—नाणपडिसेवणाकुसीले दसणपडिसेवणाकुसीले चरित्त-पडिसेवणाकुसीले लिंगपडिसेवणाकुसीले अहासुहुमपडिसेवणाकुसीले णाम पचमे ।

[७ प्र] भगवन् ! प्रतिसेवनाकुशील कितने प्रकार के कहे है ?

[७ उ] गौतम ! प्रतिसेवनाकुशील पाच प्रकार के कहे गये हैं । यथा—(१) ज्ञानप्रति-सेवनाकुशील, (२) दर्शनप्रतिसेवनाकुशील, (३) चारित्रप्रतिसेवनाकुशील, (४) लिंगप्रतिसेवना-कुशील और (५) यथासूक्ष्मप्रतिसेवनाकुशील ।

८. कसायकुसीले णं भते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पचविधे पन्नत्ते, तं जहा—नाणकसायकुसीले दंसणकसायकुसीले चरित्तकसायकुसीले लिंगकसायकुसीले, अहासुहुमकसायकुसीले णाम पचमे ।

[८ प्र] भगवन् ! कषायकुशील कितने प्रकार के कहे है ?

[८ उ] गौतम ! कषायकुशील भी पाच प्रकार के कहे है । यथा—(१) ज्ञानकषायकुशील, (२) दर्शनकषायकुशील, (३) चारित्रकषायकुशील, (४) लिंगकषायकुशील और पाचवे (५) यथा-सूक्ष्मकषायकुशील ।

९. नियंठे णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविधे पन्नत्ते, तं जहा—पढमसमयनियंठे अपढमसमयनियंठे चरिमसमयनियंठे अचरिमसमयनियंठे अहासुहुमनियंठे णामं पंचमे।

[९ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितने प्रकार के कहे हैं ?

[९ उ.] गौतम ! वे पाच प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) प्रथम-समय-निर्ग्रन्थ, (२) अप्रथम-समय-निर्ग्रन्थ, (३) चरम-समय-निर्ग्रन्थ (४) अचरम-समय-निर्ग्रन्थ और पाचवे (५) यथासूक्ष्म-निर्ग्रन्थ।

१०. सिणाए णं भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! पंचविधे पन्नत्ते, त जहा—अच्छवी १ असबले २ अकम्मंसे ३ संसुद्धनाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली ४ अपरिस्सावी ५। [दारं १]।

[१० प्र.] भगवन् ! स्नातक कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१० उ.] गौतम ! स्नातक पाच प्रकार के कहे हैं। यथा- (१) अच्छवि, (२) असबल, (३) अकर्मांश, (४) सशुद्ध-ज्ञान-दर्शनधर अर्हन्त जिन केवली एव (५) अपरिस्रावी ॥ [द्वार-१]

विवेचन—निर्ग्रन्थ : प्रकार स्वरूप और भेद—सभी निर्ग्रन्थ यद्यपि सर्वविरति चारित्र अगीकार किये हुए होते हैं, तथापि चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षयोपशम की विभिन्नता-विचित्रता के कारण निर्ग्रन्थ के मूलत ५ प्रकार होते हैं। यथा—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक।

पुलाक का लक्षण—पुलाक का अर्थ है नि सार धान्यकण। पुलाक की तरह सयम-साररहित को यहाँ पुलाकश्रमण कहा जाता है। सयमवान् होते हुए भी वह किसी छोटे-से दोष के कारण सयम को किंचित् असार कर देता है, इस कारण वह पुलाक कहलाता है। पुलाक के मुख्यतया दो भेद हैं—लब्धिपुलाक और आसेवनापुलाक। लब्धिपुलाक लब्धिविशेष का धनी होता है। सघ आदि के विशेष कार्य के निमित्त से अथवा कोई चक्रवर्ती आदि जिनशासन तथा साधु-साध्वियो की आशातना करे, ऐसी स्थिति मे उसकी सेना आदि को दण्ड देने हेतु लब्धिप्रयोग करे, वह **लब्धिपुलाक** कहलाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि जो ज्ञानपुलाक होता है, उसी को ऐसी लब्धि होती है, अतः वही लब्धिपुलाक होता है। उसके सिवाय अन्य कोई लब्धिपुलाक नही होता। परन्तु यहाँ मूल मे **आसेवनापुलाक** के ही भेदो का प्रतिपादन किया गया है। **ज्ञानपुलाक** वह है, जो स्खलना, विस्मरण, विराधना, आशातना आदि दूषणो के ज्ञान की किंचित् विराधना करता है। **दर्शनपुलाक** वह है, जो शकादि दूषणो से सम्यक्त्व की विराधना करता है। मूल-उत्तर-गुण की विराधना से जो चारित्र को दूषित करता है, वह **चारित्रपुलाक** कहलाता है। जो साधक अकारण ही अन्य लिंग धारण कर लेता है, वह **लिंगपुलाक** है। जो साधक आकल्पित – सेवन करने के अयोग्य दोषो का मन से सेवन करता है, वह यथासूक्ष्मपुलाक कहलाता है। यहाँ पुलाक साधक सयम को निस्सार कर देता है, वह समय की अपेक्षा से थोडे समय के लिए करता है।

बकुश का लक्षण—बकुश कहते हैं शबल या कर्बुर, अर्थात् चितकबरे को। बकुश की तरह संयम भी जिसका चितकबरा हो गया हो। इसके मुख्यतया दो भेद हैं—उपकरणबकुश और शरीर-

बकुश । जो वस्त्र-पात्रादि उपकरणो को विभूषित-शृ गारित करने के स्वभाववाला हो, वह उपकरण-बकुश होता है तथा जो हाथ-पैर, मु ह नख आदि शरीर के अगोपागो को सुशोभित किया करता है, वह शरीरबकुश होता है । दोनो प्रकार के बकुशो के पाच भेद है—(१) **आभोगबकुश**—साधुओ के लिए शरीर, उपकरण आदि को सुशोभित करना अयोग्य है, यो जानते हुए भी जो दोष लगाता है । (२) **अनाभोगबकुश**—जो न जानते हुए दोष लगाता हो, वह **अनाभोगबकुश** है । (३) मूल और उत्तर गुणो मे प्रकट रूप से दोष लगाए, वह **असंवृतबकुश** है । (४) जो छिपकर या गुप्त रूप से दोष लगाता है, वह **सवृतबकुश** है । (५) जो हाथ मु ह धोता है, आँखो मे अजन लगाता है, वह **यथासूक्ष्मबकुश** है ।

कुशील : लक्षण और प्रकार—जिसका शील अर्थात् चारित्र कुत्सित हो, वह कुशील कहलाता है । इसके मुख्य दो भेद है—प्रतिसेवना-कुशील और कषाय-कुशील । सेवना का अर्थ है सम्यक् आराधना, उसका प्रतिपक्ष है प्रतिसेवना । उसके कारण जो साधक कुशील हो, वह प्रतिसेवना-कुशील है । कषायो के कारण जिसका शील (चारित्र) कुत्सित हो गया हो, वह कषायकुशील श्रमण है । जो साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र और लिग को लेकर आजीविका करता हो, वह क्रमश **ज्ञानप्रति-सेवना-कुशील, दर्शनप्रतिसेवना-कुशील, चारित्रप्रतिसेवना-कुशील** एव **लिगप्रतिसेवना-कुशील** कहलाता है । 'यह तपस्वी है, क्रियापात्र है' इत्यादि प्रकार की प्रशसा से प्रसन्न होता है तथा तपस्या आदि के फल की इच्छा करता है और देवादि-पद की वाछा करता है वह **यथासूक्ष्मप्रतिसेवना-कुशील** निर्ग्रन्थ है । ज्ञान, दर्शन और चारित्र को लेकर जो क्रोध, मान आदि कषायो के उदय से ऊँच-नीच परिणाम लाए और ज्ञानादि मे दोष लगाए अथवा ज्ञानादि का क्रोधादि कषायो मे उपयोग करे वह क्रमश **ज्ञानकषायकुशील, दर्शनकषायकुशील एवं चारित्रकषायकुशील** है । जो कषायपूर्वक वेष-परिवर्तन करता है, वह **लिगकषायकुशील** है । जो कषायवश किसी को शाप देता है, वह भी चारित्रकषायकुशील है तथा जो मन से क्रोधादि कषाय का सेवन करता है, वह **यथासूक्ष्मकषाय-कुशील** है ।

निर्ग्रन्थ : प्रकार और स्वरूप—निर्ग्रन्थ के पाच प्रकार है—(१) **प्रथम-समय-निर्ग्रन्थ** दसवे गुणस्थान से आगे ११वे उपशान्तमोह अथवा १२वे क्षीणमोहगुणस्थान के काल (जो कि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है) के प्रथम समय मे वर्तमान हो । (२) **अप्रथम-समय-निर्ग्रन्थ**—११वे या १२वे गुणस्थान मे जिसे दो समय से अधिक हो गया हो, वह । (३) **चरम-समय-निर्ग्रन्थ** जिसकी छद्मस्थता केवल एक समय की बाकी रही हो (४) **अचरम-समय-निर्ग्रन्थ**—जिसकी छद्मस्थता दो समय से अधिक बाकी रही हो । (५) **यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थ**—जो सामान्य निर्ग्रन्थ, प्रथम आदि समय की विवक्षा से भिन्न हो ।

स्नातक पाच प्रकार और स्वरूप—पूर्णतया शुद्ध, अखण्ड एव सुगन्धित चावल के समान शुद्ध अखण्ड चारित्रवाले निर्ग्रन्थ स्नातक कहलाते है । स्नातक के पाच प्रकार है- (१) **अच्छवि**—छवि अर्थात् शरीर, इस दृष्टि से अच्छवि का अर्थ होता है - योग के निरोध के कारण जिसमे छवि (शरीर) भाव बिलकुल न हो वह । अथवा घातिकर्मचतुष्टयक्षपण के बाद कोई क्षपण शेष न रहा हो, वह अक्षपी होता है । (२) **अशबल**—एकान्तविशुद्धचारित्र वाला, अर्थात्—जिसमे अतिचाररूपी पक बिलकुल न हो । (३) **अकर्म्मांश**—घातिकर्मों से रहित । (४) **सशुद्ध**—विशुद्ध-ज्ञान-दर्शनधारक, केवलज्ञान-दर्शनधारक अर्हन्, जिन, केवली आदि और (५) **अपरिस्रावी**—कर्मबन्ध के प्रवाह से

रहित । सम्पूर्ण काययोग का सर्वथा निरोध कर लेने पर स्नातक सर्वथा निष्कम्प एव क्रियारहित हो जाता है, अत उसके कर्मबन्ध का प्रवाह सर्वथा रुक जाता है । इस कारण वह अपरिस्रावी होता है । किसी भी वृत्तिकार ने स्नातक के इन अवस्थाकृत भेदो की व्याख्या नही की है, इसलिए सम्भव है कि इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि के समान इनके ये भेद केवल शब्दकृत हैं ।[1]

द्वितीय वेदद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थो में स्त्रीवेदादि प्ररूपणा

११ [१] पुलाए णं भंते ! किं सवेयए होज्जा ?

गोयमा ! सवेयए होज्जा, नो अवेयए होज्जा ।

[११-१ प्र] भगवन् ! पुलाक सवेदी होता है, अथवा अवेदी होता है ?

[११-१ उ] गौतम ! वह सवेदी होता है, अवेदी नही ।

[२] जइ सवेयए होज्जा, किं इत्थिवेयए होज्जा, पुरिसवेयए, होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए होज्जा ?

गोयमा । नो इत्थिवेयए होज्जा, पुरिसवेयए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए वा होज्जा ।

[११-२ प्र] भगवन् ! यदि पुलाक सवेदी होता है, तो क्या वह स्त्रीवेदी होता है, पुरुषवेदी होता है या पुरुष-नपुंसकवेदी होता है ?

[११-२ उ] गौतम ! वह स्त्रीवेदी नही होता, या तो वह पुरुषवेदी होता है, या पुरुष-नपुंसकवेदी होता है ।

१२. [१] बउसे णं भंते ! किं सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा ?

गोयमा ! सवेयए होज्जा, नो अवेयए होज्जा ।

[१२-१ प्र] भगवन् ! बकुश सवेदी होता है, या अवेदी होता है ?

[१२-१ उ] गौतम ! बकुश सवेदी होता है, अवेदी नही होता है ।

[२] जइ सवेयए होज्जा किं इत्थिवेयए होज्जा, पुरिसवेयए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए होज्जा ? गोयमा ! इत्थिवेयए वा होज्जा, पुरिसवेयए वा होज्जा, पुरिसनपुंसगवेयए वा होज्जा ।

[१२-२ प्र] भगवन् ! यदि बकुश सवेदी होता है, तो क्या वह स्त्रीवेदी होता है, पुरुषवेदी होता है, अथवा पुरुष-नपुंसकवेदी होता है ?

[१२-२ उ] गौतम ! वह स्त्रीवेदी भी होता है, पुरुषवेदी भी अथवा पुरुष-नपुंसकवेदी भी होता है ।

१३. एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।

[१३] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय में जानना चाहिए ।

१ (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८९१-८९२

(ख) श्रीमद्भगवतीसूत्रम् चतुर्थखण्ड (गुजराती अनुवाद), पृ २४०-२४१

(ग) भगवती-उपक्रम, पृ ६०१, ६०२, ६०३

१४. [१] कसायकुसीले णं भंते ! किं सवेयए० पुच्छा ?

गोयमा ! सवेयए वा होज्जा, अवेयए वा होज्जा ।

[१४-१ प्र.] भगवन् ! कषायकुशील सवेदी होता है, या अवेदी होता है ?

[१४-१ उ.] गौतम ! वह सवेदी भी होता है और अवेदी भी होता है ।

[२] जइ अवेयए किं उवसंतवेयए, खीणवेयए होज्जा ?

गोयमा ! उवसंतवेयए वा, खीणवेयए वा होज्जा ।

[१४-२ प्र] भगवन् ! यदि वह अवेदी होता है तो क्या वह उपशान्तवेदी होता है, अथवा क्षीणवेदी होता है ?

[१४-२ उ] गौतम ! वह उपशान्तवेदी भी होता है, और क्षीणवेदी भी होता है ।

[३] जति सवेयए होज्जा किं इत्थिवेदए० होज्जा० पुच्छा ?

गोयमा ! तिसु वि जहा बउसो ।

[१४-३ प्र.] भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है तो क्या स्त्रीवेदी होता है ? इत्यादि (पूर्ववत्) प्रश्न ।

[१४-३ उ] गौतम ! बकुश के समान तीनो ही वेदो मे होते है ।

१५. [१] णियंठे णं भंते ! किं सवेयए० पुच्छा ?

गोयमा ! नो सवेयए होज्जा, अवेदए होज्जा ।

[१५-१ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ सवेदी होता है, या अवेदी होता है ?

[१५-१ उ] गौतम ! वह सवेदी नही होता, किन्तु अवेदी होता है ।

[२] जइ अवेयए वा होज्जा किं उवसंत० पुच्छा ?

गोयमा ! उवसंतवेयए वा होज्जा, खीणवेयए वा होज्जा ।

[१५-२ प्र] भगवन् ! यदि निर्ग्रन्थ अवेदी होता है, तो क्या वह उपशान्तवेदी होता है, या क्षीणवेदी होता है ?

[१५-२ उ] गौतम ! वह उपशान्तवेदी भी होता है और क्षीणवेदी भी होता है ।

१६ सिणाए णं भंते ! किं सवेयए होज्जा० ?

जहा नियंठे तहा सिणाए वि, नवरं नो उवसंतवेयए होज्जा, खीणवेयए होज्जा । [दारं २] ।

[१६ प्र] भगवन् ! स्नातक सवेदी होता है, या अवेदी होता है ? इत्यादि(पूर्ववत् दोनो) प्रश्न ।

[१६ उ.] गौतम ! निर्ग्रन्थ के समान स्नातक भी अवेदी होता है, किन्तु वह उपशान्तवेदी नही होता , क्षीणवेदी होता है । [द्वितीय द्वार]

विवेचन—पांचो प्रकार के निर्ग्रन्थो मे वेद का विचार—पुलाक, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील मे उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी नही होती इसलिए वे अवेदी नही होते । पुलाकलब्धि स्त्री को नही होती,

पुरुष को या पुरुष-नपुसक साधक को होता है। कषायकुशील सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान तक होते हैं। अत. वे प्रमत्त, अप्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थान मे सवेदी होते है तथा अनिवृत्तिबादर एव सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान मे वेद का उपशम या क्षय होने से अवेदी होते है।

निर्ग्रन्थ उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी दोनो मे होते है। अत. वे उपशान्तवेदी या क्षीणवेदी होते है, किन्तु स्नातक क्षपकश्रेणी मे ही होते हैं, इसलिए वे क्षीणवेदी ही होते हैं, उपशान्तवेदी नही।

पुरुष-नपुसकवेदक—पुरुष होते हुए भी जो लिंग-छेद आदि के कारण नपुसकवेदक हो जाता है, ऐसे कृत्रिमनपुसक को यहाँ पुरुष-नपुसक कहा है, स्वरूपत: अर्थात् जो जन्म से नपुसकवेदी है, उसे यहाँ ग्रहण नही किया गया है।[1]

तृतीय रागद्वार : पंचविधनिर्ग्रन्थों में सरागत्व-वीतरागत्व-प्ररूपणा

१७. पुलाए णं भंते ! किं सरागे होज्जा, वीयरागे होज्जा ?

गोयमा ! सरागे होज्जा, नो वीयरागे होज्जा।

[१७ प्र] भगवन् ! पुलाक सराग होता है या वीतराग ?

[१७ उ] गौतम ! वह सराग होता है, वीतराग नही होता है।

१८. एव जाव कसायकुसीले।

[१८] इसी प्रकार कषायकुशील तक जानना।

१९. [१] णियठे णं भंते ! किं सरागे होज्जा० पुच्छा।

गोयमा ! नो सरागे होज्जा, वीयरागे होज्जा।

[१९-१ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ सराग होता है या वीतराग होता है ?

[१९-१ उ] गौतम ! वह सराग नही होता, अपितु वीतराग होता है।

[२] जइ वीयरागे होज्जा किं उवसंतकसायवीयरागे होज्जा, खीणकसायवीयरागे० ?

गोयमा ! उवसंतकसायवीतरागे वा होज्जा, खीणकसायवीतरागे वा होज्जा।

[१९-२ प्र] (भगवन् !) यदि वह वीतराग होता है तो क्या उपशान्तकषायवीतराग होता है या क्षीणकषायवीतराग होता है ?

[१९-२ उ.] गौतम ! वह उपशान्तकषायवीतराग भी होता है और क्षीणकषायवीतराग भी होता है।

२०. सिणाए एवं चेव, नवरं नो उवसंतकसायवीयरागे होज्जा, खीणकसायवीयरागे होज्जा। [दारं ३]।

[२०] स्नातक के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु वह उपशान्तकषाय-वीतराग नही होता किन्तु क्षीणकषायवीतराग होता है [तृतीय द्वार]

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९३

विवेचन—पंचविध निर्ग्रन्थों में तीन सराग, दो वीतराग—सराग का अर्थ है—सकषाय । कषाय दसवे गुणस्थान तक रहता है । इसलिए आदि के पुलाक, बकुश और कुशील (प्रतिसेवनाकुशील तथा कषायकुशील), ये तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ सराग होते हैं, वीतराग नही । शेष निर्ग्रन्थ और स्नातक, ये दोनो प्रकार के निर्ग्रन्थ वीतराग होते हैं। निर्ग्रन्थ मे उपशान्तकषायवीतरागता एव क्षीणकषाय-वीतरागता दोनो होती हैं, जबकि स्नातक मे एकमात्र क्षीणकषायवीतरागता होती है ।[1]

पंचविध निर्ग्रन्थों में स्थितकल्पादि-जिनकल्पादि-प्ररूपणा : चतुर्थ कल्पद्वार

२१. पुलाए णं भंते ! किं ठियकप्पे होज्जा, अठियकप्पे होज्जा ?

गोयमा ! ठियकप्पे वा होज्जा, अठियकप्पे वा होज्जा ।

[२१ प्र] भगवन् ! पुलाक स्थितकल्प मे होता है, अथवा अस्थितकल्प मे होता है ?

[२१ उ] गौतम ! वह स्थितकल्प मे भी होता है और अस्थितकल्प मे भी होता है ।

२२. एव जाव सिणाए ।

[२२] इसी प्रकार (बकुश से लेकर) यावत् स्नातक तक जानना ।

२३. पुलाए णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा ?

गोयमा ! नो जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, नो कप्पातीते होज्जा ।

[२३ प्र] भगवन् ! पुलाक जिनकल्प मे होता है, स्थविरकल्प मे होता है अथवा कल्पातीत मे होता है ?

[२३ उ] गौतम ! वह न तो जिनकल्प मे होता है और न कल्पातीत होता है, किन्तु स्थविरकल्प मे होता है ।

२४. बउसे ण० पुच्छा ।

गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा, नो कप्पातीते होज्जा ।

[२४ प्र] भगवन् ! बकुश जिनकल्प मे होता है ? इत्यादि पृच्छा ।

[२४ उ] गौतम ! वह जिनकल्प मे भी होता है, स्थविरकल्प मे भी होता है, किन्तु कल्पातीत में नही होता ।

२५. एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।

[२५] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे समझना चाहिए ।

२६. कसायकुसीले ण० पुच्छा ।

गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा, कप्पातीते वा होज्जा ।

[२६ प्र] भगवन् ! कषायकुशील जिनकल्प मे होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९४

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त भाग २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. १०२०

[२६ उ.] गौतम ! वह जिनकल्प में भी होता है, स्थविरकल्प में भी और कल्पातीत मे भी होता है।

२७. नियठे णं० पुच्छा।

गोयमा ! नो जिणकप्पे होज्जा, नो थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा।

[२७ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ जिनकल्प मे होता है, स्थविरकल्प मे या कल्पातीत होता है ?

[२७ उ.] गौतम ! वह न तो जिनकल्प मे होता है और न ही स्थविरकल्प मे, किन्तु वह कल्पातीत होता है।

२८. एव सिणाए वि। [दारं ४]।

[२८] इसी प्रकार स्नातक के विषय मे भी जानना चाहिए। [चतुर्थ द्वार]

विवेचन—स्थितकल्प और अस्थितकल्प ? क्या और किनमे—कल्प कहते हैं—मर्यादा, अथवा साधना की मौलिक आचारसीमा को। ये कल्प शास्त्र मे दस प्रकार के बताए हैं—(१) आचेलक, (२) औद्देशिक, (३) राजपिण्ड, (४) शय्यातर, (५) मासकल्प, (६) चातुर्मासिक, (७) व्रत, (८) प्रतिक्रमण, (९) कृतिकर्म और (१०) पुरुष-ज्येष्ठ।

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधु-साध्वी दस कल्प मे स्थित होते है, क्योंकि इन दस कल्पो का पालन उनके लिए अनिवार्य होता है। इस कारण उनका कल्प स्थितकल्प कहलाता है। शेष २२ तीर्थकरो के शासन मे अस्थितकल्प होता है। क्योकि मध्यगत तीर्थकरो के साधुवर्ग मे अस्थित-कल्प होता है, क्योकि वे कभी कल्प मे स्थित होते है, कभी नही होते, क्योकि उपर्युक्त सभी कल्पो का पालन उनके लिए आवश्यक नही होता। उपर्युक्त दस कल्पो मे से ४, ७, ९, १० ये चार स्थितकल्प है और १, २, ३, ५, ६, ८ ये ६ कल्प अस्थितकल्प है। मध्यम के २२ तीर्थकरो के साधुओ मे अस्थितकल्प होता है। पुलाक आदि मे दोनो प्रकार के कल्प होते है।[१]

जिनकल्प, स्थविरकल्प और कल्पातीत क्या और किनमे ?—दूसरी अपेक्षा से कल्प के दो भेद किये गए है—जिनकल्प और स्थविरकल्प। जिनकल्प का पालन करने वाले सघ मे नही रहते, न ही किसी को दीक्षा देते या शिष्य बनाते है। वे एकाकी वन मे या पर्वतीय गुफा आदि मे रहते है, निर्भय, निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त होते है। वे जघन्य दो और उत्कृष्ट १२ उपकरण रखते हैं। स्थविर-कल्पी सघ मे, उपाश्रयादि मे रहते है, शिष्य बनाते है, दीक्षा देते हैं, साधु प्राय कम से कम दो और साध्वी कम से कम तीन साथ-साथ विचरण करते हैं। वे शास्त्रोक्त मर्यादानुसार प्रमाणोपेत वस्त्र-पात्रादि रखते है। कल्पातीत वे होते है, जो इन दोनो से परे होते है। ऐसे कल्पातीत केवलज्ञानी, तीर्थंकर, मन पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वधर, श्रुतकेवली एव जातिस्मरणज्ञानी होते हैं।

पुलाक तो केवल स्थविरकल्पी होते हैं, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील जिनकल्पी और स्थविरकल्पी दोनो होते है। कषायकुशील जिनकल्पी, स्थविरकल्पी और कल्पातीत भी होते है।

---

१ (क) भगवती-उपक्रम, पृ ६०४
(ख) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ८९४

क्योकि छद्‌मस्थ तीर्थंकर सकषायी होने से कल्पातीत होने से हुए भी कषायकुशील होते है। निर्ग्रन्थ और स्नातक ये दोनो कल्पातीत ही होते है, उनमे जिनकल्प या स्थविरकल्पधर्म नही होते।[1]

पंचम चारित्रद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में चारित्र-प्ररूपणा

२९. पुलाए णं भंते! किं सामाइयसंजमे होज्जा, छेदोवट्ठावणियसजमे होज्जा, परिहार-विसुद्धियसंजमे होज्जा, सुहुमसंपरायसजमे होज्जा, अहक्खायसंजमे होज्जा?

गोयमा! सामाइयसजमे वा होज्जा, छेदोवट्ठावणियसंजमे वा होज्जा, नो परिहारविसुद्धि-संजमे होज्जा, नो सुहुमसपरायसजमे होज्जा, नो अहक्खायसंजमे होज्जा।

[२९ प्र] भगवन्! पुलाक सामायिकसयम मे, छेदोपस्थापनिकसयम, परिहारविशुद्धि-सयम, सूक्ष्मसम्परायसयम मे अथवा यथाख्यातसयम मे होता है?

[२९ उ] गौतम! वह सामायिकसयम मे या छेदोपस्थापनिकसयम मे होता है, किन्तु परिहारविशुद्धिसयम, सूक्ष्मसम्परायसयम या यथाख्यातसयम मे नही होता।

३०. एव बउसे वि।

[३०] बकुश के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

३१. एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[३१] और इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे समझना चाहिए।

३२. कसायकुसीले ण० पुच्छा।

गोयमा! सामाइयसजमे वा होज्जा जाव सुहुमसपरायसजमे वा होज्जा, नो अहक्खायसजमे होज्जा।

[३२ प्र] भगवन्! कषायकुशील पाच सयमो मे से किन-किन सयमो मे होता है?

[३२ उ] गौतम! वह सामायिक से लेकर यावत् सूक्ष्मसम्परायसयम तक मे होता है, किन्तु यथाख्यातसयम मे नही होता।

३३. नियठे णं० पुच्छा।

गोयमा! णो सामाइयसजमे होज्जा जाव णो सुहुमसंपरायसजमे होज्जा, अहक्खायसंजमे होज्जा।

[३३ प्र] भगवन्! निर्ग्रन्थ किस सयम मे होता है?

[३३ उ] गौतम! वह सामायिकसयम से लेकर सूक्ष्मसम्पराय तक मे नही होता, एकमात्र यथाख्यातसयम मे होता है।

३४. एव सिणाए वि। [दार ५]।

[३४] इसी प्रकार स्नातक के विषय मे समझना चाहिए। [पचम द्वार]

---

१ (क) भगवती-उपक्रम, पृ ६०४

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३३५७-३३५८

विवेचन—किसमें कौन-सा संयम ?—पाच प्रकार के निर्ग्रन्थों मे से पुलाक, बकुश एवं कषाय-कुशील सामायिक और छेदोपस्थापनिक इन दो प्रकार के सयम (चारित्र) मे, कषायकुशील सामायिक से लेकर सूक्ष्मसम्पराय तक मे, निर्ग्रन्थ एव स्नातक दोनो एकमात्र यथाख्यातसयम (चारित्र) मे होते हैं।[1]

छठा प्रतिसेवनाद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में मूल-उत्तरगुणप्रतिसेवन-अप्रतिसेवन-प्ररूपणा

३५. [१] पुलाए ण भंते ! किं पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा ?

गोयमा ! पडिसेवए होज्जा, नो अपडिसेवए होज्जा।

[३५-१ प्र.] भगवन् ! पुलाक प्रतिसेवी (दोषो का सेवन करने वाला) होता है या अप्रतिसेवी होता है ?

[३५-१ उ] गौतम ! पुलाक प्रतिसेवी होता है, अप्रतिसेवी नही होता है।

[२] जवि पडिसेवए होज्जा किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ?

गोयमा ! मूलगुणपडिसेवए वा होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए वा होज्जा। मूलगुणपडिसेवमाणे पंचण्हं आसवाणं अन्नयरं पडिसेवेज्जा, उत्तरगुणपडिसेवमाणे दसविहस्स पच्चक्खाणस्स अन्नयरं पडिसेवेज्जा।

[३५-२ प्र.] भगवन् ! यदि वह प्रतिसेवी होता है, तो क्या वह मूलगुण-प्रतिसेवी होता है, या उत्तरगुण-प्रतिसेवी होता है ?

[३५-२ उ] गौतम ! वह मूलगुण-प्रतिसेवी भी होता है, उत्तरगुण-प्रतिसेवी भी। यदि वह मूलगुणो का प्रतिसेवी होता है तो पाच प्रकार के आश्रवो मे से किसी एक आश्रव का प्रतिसेवन करता है और उत्तरगुणो का प्रतिसेवी होता है तो दस प्रकार के प्रत्याख्यानो मे से किसी एक प्रत्याख्यान का प्रतिसेवन करता है।

३६. [१] बउसे ण० पुच्छा।

गोयमा ! पडिसेवए होज्जा, नो अपडिसेवए होज्जा।

[३६-१ प्र] भगवन् ! बकुश प्रतिसेवी होता है या अप्रतिसेवी होता है ?

[३६-१ उ.] गौतम ! वह प्रतिसेवी होता है, अप्रतिसेवी नही होता है।

[२] जइ पडिसेवए होज्जा किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ?

गोयमा ! नो मूलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा। उत्तरगुणपडिसेवमाणे दसविहस्स पच्चक्खाणस्स अन्नयरं पडिसेवेज्जा।

[३६-२ प्र] भगवन् ! यदि वह प्रतिसेवी होता है, तो क्या मूलगुण-प्रतिसेवी होता है या उत्तरगुण-प्रतिसेवी होता है ?

[३६-२ उ] गौतम ! वह मूलगुणो का प्रतिसेवी नही होता, किन्तु उत्तरगुण-प्रतिसेवी होता

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि.) भा २, पृ १०२१

है। जब वह उत्तरगुणों का प्रतिसेवी होता है तो दस प्रकार के प्रत्याख्यानो मे से किसी एक प्रत्याख्यान का प्रतिसेवी होता है।

३७. पडिसेवणाकुसीले जहा पुलाए।

[३७] प्रतिसेवनाकुशील का कथन पुलाक के समान जानना चाहिए।

३८. कसायकुसीले० पुच्छा।

गोयमा ! नो पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा।

[३८ प्र] भगवन् ! कषायकुशील प्रतिसेवी होता है या अप्रतिसेवी होता है ?

[३८ उ] गौतम ! वह प्रतिसेवी नही होता, अप्रतिसेवी होता है।

३९. एव नियंठे वि।

[३९] इसी प्रकार निर्ग्रन्थ के विषय मे जानना चाहिए।

४०. एव सिणाए वि। [दारं ६]।

[४०] इसी प्रकार स्नातक-सम्बन्धी वक्तव्यता समझना चाहिए। [छठा द्वार]

विवेचन—**प्रतिसेवी-अप्रतिसेवी : लक्षण**—सज्वलनकषाय के उदय से जो सयम-विरुद्ध आचरण करता है, वह प्रतिसेवी (प्रतिसेवक) है और जो किसी भी दोष का सेवन नही करता, वह अप्रतिसेवी है।

मूलगुण-उत्तरगुण—प्राणातिपातविरमणादिरूप पाच महाव्रत साधुवर्ग केलिए मूलगुण कहलाते हैं और अनागत, प्रतिक्रान्त, कोटि सहित, इत्यादि इस प्रकार के प्रत्याख्यान एव उपलक्षण से पिण्डविशुद्धि, नौकारसी, पौरसी आदि उत्तरगुण कहलाते हैं। इनमे दोष लगाने वाला साधुवर्ग क्रमश. मूलगुणप्रतिसेवी और उत्तरगुणप्रतिसेवी कहलाता है।[1]

निष्कर्ष—पुलाक और प्रतिसेवनाकुशील, मूल-उत्तरगुणप्रतिसेवी, बकुश उत्तरगुणप्रतिसेवी तथा कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक अप्रतिसेवी होते है।[2]

सप्तम ज्ञानद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थो में ज्ञान और श्रुताध्ययन की प्ररूपणा

४१. पुलाए ण भंते ! कतिसु नाणेसु होज्जा ?

गोयमा ! दोसु वा तिसु वा होज्जा। दोसु होमाणे दोसु आभिणिबोहियनाण-सुयनाणेसु होज्जा, तिसु होमाणे तिसु आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा।

[४१ प्र] भगवन् ! पुलाक मे कितने ज्ञान होते हैं ?

[४१ उ] गौतम ! पुलाक मे दो या तीन ज्ञान होते हैं। यदि दो ज्ञान हों तो आभिनिबोधिक-

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९४

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा. ७, पृ. ३३६१

२ वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ (मू पा टि), पृ १०२२

ज्ञान और श्रुतज्ञान होते है। यदि तीन ज्ञान हो तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते हैं।

४२. एवं बउसे वि।

[४२] इसी प्रकार बकुश के विषय मे जानना चाहिए।

४३. एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[४३] प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे भी यही वक्तव्यता जाननी चाहिए।

४४. कसायकुसीले णं० पुच्छा।

गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा होज्जा। दोसु होमाणे दोसु आभिनिबोहियनाण-सुयनाणेसु होज्जा। तिसु होमाणे तिसु आभिनिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु अहवा तिसु आभिनिबोहियनाण-सुयनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा। चउसु होमाणे चउसु आभिनिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा।

[४४ प्र] भगवन् ! कषायकुशील मे कितने ज्ञान होते हैं ?

[४४ उ] गौतम ! कषायकुशील मे दो, तीन या चार ज्ञान होते हैं। यदि दो ज्ञान हो तो आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं, तीन ज्ञान हो तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होते है, अथवा आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मन:पर्यवज्ञान होते है। यदि चार ज्ञान हो तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पर्यवज्ञान होते है।

४५. एवं नियंठे वि।

[४५] इसी प्रकार निर्ग्रन्थ के विषय मे जानना चाहिए।

४६. सिणाए णं० पुच्छा।

गोयमा ! एगम्मि केवलनाणे होज्जा।

[४६ प्र] भगवन् ! स्नातक मे कितने ज्ञान होते हैं ?

[४६ उ] गौतम ! स्नातक मे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है।

४७. पुलाए ण भंते ! केवतियं सुयं अहिज्जेज्जा ? गोयमा ! जहन्नेणं नवमस्स पुव्वस्स ततियं आयारवत्थुं, उक्कोसेणं नव पुव्वाइं अहिज्जेज्जा।

[४७ प्र.] भगवन् ! पुलाक कितने श्रुत का अध्ययन करता है ?

[४७ उ] गौतम ! वह जघन्यत. नौवे पूर्व की तृतीय आचारवस्तु तक का और उत्कृष्टत: पूर्ण नो पूर्वों का अध्ययन करता है।

४८. बउसे० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं अट्ठ पवयणमायाओ, उक्कोसेणं दस पुव्वाइं अहिज्जेज्जा।

[४८ प्र] भगवन् ! बकुश कितने श्रुत पढ़ता है ?

[४८ उ.] गौतम ! वह जघन्यत अष्ट प्रवचनमाता का और उत्कृष्ट दस पूर्व तक का अध्ययन करता है।

४९. एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[४९] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे समझना चाहिए।

५०. कसायकुसीले० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं अट्ठ पवयणमायाओ, उक्कोसेण चोद्दस पुव्वाइ अहिज्जेज्जा।

[५० प्र.] भगवन् ! कषायकुशील कितने श्रुत का अध्ययन करता है ?

[५० उ] गौतम ! वह जघन्य अष्ट प्रवचनमाता का और उत्कृष्ट चौदह पूर्वों का अध्ययन करता है।

५१. एवं नियंठे वि।

[५१] इसी प्रकार निर्ग्रन्थ के विषय मे भी जानना चाहिए।

५२. सिणाये० पुच्छा।

गोयमा ! सुयवतिरित्ते होज्जा। [दारं ७]।

[५२ प्र] भगवन् ! स्नातक कितने श्रुत का अध्ययन करता है ?

[५२ उ] गौतम ! स्नातक श्रुतव्यतिरिक्त होते हैं। [सप्तम द्वार]

विवेचन—किसमे कितने ज्ञान, कितना श्रुताध्ययन ?—पुलाक, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील मे दो या तीन ज्ञान तथा कषायकुशील और निर्ग्रन्थ मे उत्कृष्ट चार ज्ञान तक पाए जाते हैं। स्नातक मे एक केवलज्ञान ही होता है। श्रुत भी ज्ञान विशेषत श्रुतज्ञान के अन्तर्गत होने से इसी (सप्तम) द्वारा के अन्तर्गत उसकी चर्चा की गई है। स्नातक मे परिपूर्ण ज्ञान—केवलज्ञान होने मे वे श्रुतव्यतिरिक्त कहलाते हैं। वे श्रुतज्ञानी नही होते।[1]

प्रवचनमाता का अध्ययन : क्या और क्यो ? पांच समिति और तीन गुप्ति ये आठ प्रवचनमाताएँ कहलाती हैं। इनके पालन के रूप मे चारित्र होता है। इसलिए चारित्र का पालन करने वाले को कम से कम अष्ट प्रवचनमाता का अध्ययन करना तथा ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक है। क्योंकि चारित्र ज्ञानपूर्वक होता है, इसलिए बकुश को कम से कम (जघन्यत.) इतना श्रुतज्ञान तो अवश्य होना चाहिए, शेष स्पष्ट है।[2]

आठवाँ तीर्थद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में तीर्थ-अतीर्थ-प्ररूपणा

५३. पुलाए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा ?

गोयमा ! तित्थे होज्जा, नो अतित्थे होज्जा।

---

१. भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३३६२

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९४

[५३ प्र.] भगवन् ! पुलाक तीर्थ मे होता है या अतीर्थ मे होता है ?
[५३ उ.] गौतम ! वह तीर्थ मे होता है, अतीर्थ मे नही होता है।

५४. एवं बउसे वि, पडिसेवणाकुसीले वि।

[५४] इसी प्रकार बकुश एव प्रतिसेवनाकुशील का कथन भी समझ लेना चाहिए।

५५. [१] कसायकुसीले० पुच्छा।

गोयमा ! तित्थे वा होज्जा, अतित्थे वा होज्जा।

[५५-१ प्र.] भगवन् ! कषायकुशील तीर्थ मे होता है या अतीथ मे होता है ?
[५५-१ उ.] गौतम ! वह तीर्थ मे भी होता है और अतीर्थ मे भी होता है।

[२] जति अतित्थे होज्जा किं तित्थयरे होज्जा, पत्तेयबुद्धे होज्जा ?

गोयमा ! तित्थगरे वा होज्जा पत्तेयबुद्धे वा होज्जा।

[५५-२ प्र.] भगवन् ! यदि वह अतीर्थ मे होता है तो क्या तीर्थकर होता है या प्रत्येक-बुद्ध होता है ?

[५५-२ उ.] गौतम ! वह तीर्थकर भी होता है, प्रत्येकबुद्ध भी होता है।

५६. एव नियठे वि।

[५६] इसी प्रकार निर्ग्रन्थ के विषय मे भी जानना चाहिए।

५७ एव सिणाए वि। [दार ८]।

[५७] स्नातक के विषय मे भी इसी प्रकार समझना। [अष्टम द्वार]

विवेचन—कषायकुशील अतीर्थ में क्यो और कैसे ? तीर्थकर जब छद्मस्थ अवस्था मे होते है, तब कषायकुशील होते है, इस अपेक्षा से यहाँ कहा गया है कि कषायकुशील अतीर्थ मे भी होते हैं, अथवा जब तीर्थ का विच्छेद हो जाता है, तब दूसरे तीर्थ (अतीर्थ—स्वतीर्थ के अतिरिक्त तीर्थ) मे भी अन्यतीर्थीय साधु भी कषायकुशील होता है। इस अपेक्षा से कषायकुशील का अतीर्थ मे होना बतलाया गया है।[1]

नौवाँ लिंगद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में स्वलिंग-अन्यलिंग-गृहीलिंग-प्ररूपणा

५८. पुलाए ण भते ! किं सलिंगे होज्जा, अन्नलिंगे होज्जा, गिहिलिंगे होज्जा ?

गोयमा ! दव्वलिंग पडुच्च सलिंगे वा होज्जा, अन्नलिंगे वा होज्जा, गिहिलिंगे वा होज्जा। भावलिंगं पडुच्च नियमं सलिंगे होज्जा।

[५८ प्र.] भगवन् ! पुलाक स्वलिंग मे होता है, अन्यलिग मे या गृहीलिंग मे होता है ?
[५८ उ.] गौतम ! द्रव्यलिंग की अपेक्षा वह स्वलिंग मे, अन्यलिंग मे या गृहीलिंग मे होता है, किन्तु भावलिंग की अपेक्षा नियम से स्वलिंग मे होता है।

---

१. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ८९४

५९. एव जाव सिणाए। [दारं ९]।

[५९] इसी प्रकार (बकुश से लेकर) स्नातक तक कहना चाहिए। [नौवां द्वार]

विवेचन—लिंग : प्रकार और लक्षण—लिंग दो प्रकार के होते हैं—द्रव्यलिंग और भावलिंग। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भावलिंग है। यह भावलिंग आर्हत्‌धर्म (केवलिप्ररूपित धर्म) का पालन करने वालो मे ही होता है। इस कारण वह (इस अपेक्षा से) स्वलिंग कहलाता है। द्रव्यलिंग के दो भेद है– स्वलिंग और अन्य (पर) लिंग। रजोहरणादि रखना इत्यादि द्रव्य से स्वलिंग है। परलिंग के दो भेद हैं—कुतीर्थिकलिंग और गृहस्थलिंग। पुलाक मे तीनो प्रकार के लिंग पाए जा सकते है, क्योकि चारित्र का परिणाम किसी एक ही द्रव्यलिंग की अपेक्षा नही रखता।[1]

दसवाँ शरीरद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों मे शरीर-भेद-प्ररूपणा

६०. पुलाए ण भंते ! कतिसु सरीरेसु होज्जा ?

गोयमा ! तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा।

[६० प्र] भगवन् ! पुलाक कितने शरीरो मे होता है ?

[६० उ] गौतम ! वह औदारिक, तैजस और कार्मण, इन तीन शरीरो मे होता है।

६१. बउसे ण भंते !० पुच्छा।

गोयमा ! तिसु वा चउसु वा होज्जा। तिसु होमाणे तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा, चउसु होमाणे चउसु ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मएसु होज्जा।

[६१ प्र] भगवन् ! बकुश कितने शरीरो मे होता है ?

[६१ उ] गौतम ! वह तीन या चार शरीरो मे होता है। यदि तीन शरीरो मे हो तो औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर मे होता है, और चार शरीरो मे हो तो औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीरो मे होता है।

६२ एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[६२] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे समझना चाहिए।

६३. कसायकुसीले० पुच्छा।

गोयमा ! तिसु वा चउसु वा पंचसु वा होज्जा। तिसु होमाणे तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा, चउसु होमाणे चउसु ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मएसु होज्जा, पचसु होमाणे पचसु ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेयग-कम्मएसु होज्जा।

[६३ प्र] भगवन् ! कषायकुशील कितने शरीरो मे होता है ?

[६३ उ] गौतम ! वह तीन, चार या पाच शरीरो मे होता है। यदि तीन शरीरो मे हो तो औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर मे होता है, चार शरीरो मे हो तो औदारिक, वैक्रिय, तैजस

---

१ श्रीमद्‌भगवतीसूत्रम् खण्ड ४, पृ २८५ (गुजराती अनुवाद सहित)

और कार्मण शरीर मे होता है और पाच शरीरो मे हो तो औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर मे होता है।

६४. णियंठे सिणाते य जहा पुलाश्रो। [दारं १०]।

[६४] निर्ग्रन्थ और स्नातक का शरीरविषयक कथन पुलाक के समान जानना चाहिए। [दसवां द्वार]

विवेचन - शरीर किसमे कितने? प्रस्तुत शरीरद्वार मे, पुलाक मे तथा निर्ग्रन्थ और स्नातक मे औदारिकादि तीन शरीर, बकुश तथा प्रतिसेवनाकुशील मे तीन या चार शरीर (वैक्रिय अधिक) तथा कषायकुशील मे तीन, चार या पाच (आहारकशरीर अधिक) शरीर होते है।[1]

ग्यारहवां क्षेत्रद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में कर्मभूमि-अकर्मभूमि-प्ररूपणा

६५. पुलाए णं भंते! किं कम्मभूमीए होज्जा, अकम्मभूमीए होज्जा?

गोयमा! जम्मण-संतिभावं पडुच्च कम्मभूमीए होज्जा, नो अकम्मभूमीए होज्जा।

[६५ प्र] भगवन्! पुलाक कर्मभूमि मे होता है या अकर्मभूमि मे होता है?

[६५ उ] गौतम! जन्म और सद्भाव (अस्तित्व) की अपेक्षा कर्मभूमि मे होता है, अकर्मभूमि मे नही होता है।

६६. बउसे णं० पुच्छा।

गोयमा! जम्मण-संतिभावं पडुच्च कम्मभूमीए होज्जा, नो अकम्मभूमीए होज्जा। साहरणं पडुच्च कम्मभूमीए वा होज्जा, अकम्मभूमीए वा होज्जा।

[६६ प्र] बकुश के विषय मे पृच्छा?

[६६ उ] गौतम! जन्म और सद्भाव से कर्मभूमि मे होता है, अकर्मभूमि मे नही होता है। संहरण की अपेक्षा कर्मभूमि मे भी और अकर्मभूमि मे भी होता है।

६७. एवं जाव सिणाए। [दारं ११]।

[६७] इसी प्रकार (बकुश से लेकर) स्नातक तक कहना चाहिए। [ग्यारहवाँ द्वार]

विवेचन - जहाँ असि, मसि और कृषि द्वारा आजीविका की जाती हो तथा जहाँ तप, संयम आदि आध्यात्मिक अनुष्ठान होते है, उसे 'कर्मभूमि' कहते है, तथा जहाँ असि, मसि, कृषि आदि द्वारा जीविकोपार्जन न किया जाता हो और जहाँ तप, संयमादि आध्यात्मिक साधना न की जाती हो, उसे अकर्मभूमि कहते है। पाच भरत, पाच ऐरवत और पाच महाविदेह, ये १५ क्षेत्र कर्मभूमिक है और ५ हैमवत, ५ हिरण्यवत, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक्वर्ष, ५ देवकुरु और ५ उत्तरकुरु, ये कुल तीस क्षेत्र अकर्मभूमिक है। इनमे असि, मसि आदि व्यापार नही होता। इन क्षेत्रो मे १० प्रकार के कल्पवृक्षो से जीवननिर्वाह होता है। आजीविका के लिए कृषि आदि कर्म न करने से और कल्पवृक्षो द्वारा भोग प्राप्त होने से इन क्षेत्रो को भोगभूमि भी कहते है। यहाँ के मनुष्यो को 'भोगभूमिज' तथा जोडे से जन्म लेने के कारण यौगलिक (जुगलिया) कहते है।[2]

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा २, पृ १०२८

२ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३३६९

जन्म, सद्भाव और संहरण—जन्म और सद्भाव (चारित्रभाव के अस्तित्व) की अपेक्षा पुलाक कर्मभूमि मे होते है, अर्थात् पुलाक की उत्पत्ति कर्मभूमि मे ही होती है और चारित्र अगीकार करके वह यही विचरता है। वह अकर्मभूमि मे उत्पन्न नही होता, क्योकि वहाँ पैदा हुए मनुष्य को चारित्र (सयम) की प्राप्ति नही होती। अतएव वहाँ उसका सद्भाव (चारित्र का अस्तित्व) भी नही होता। सहरण (देवादि द्वारा एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर ले जाने) की अपेक्षा भी वह अकर्मभूमि मे नही होता, क्योकि पुलाकलब्धि वाले का देवादि कोई भी सहरण नही कर सकते। बकुश अकर्मभूमि मे जन्म से नही होता, न ही स्वकृतविहार से होता है, परकृत विहार (सहरण) की अपेक्षा वह कर्मभूमि मे भी होता है, अकर्मभूमि मे भी होता है।[1]

बारहवाँ कालद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीकालादि-प्ररूपणा

६८ [१] पुलाए णं भंते ! किं ओसप्पिणिकाले होज्जा, उस्सप्पिणिकाले होज्जा, नोओसप्पिणिनोउस्सप्पिणिकाले होज्जा ?

गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा, नोओसप्पिणिनोउस्सप्पिणिकाले वा होज्जा।

[६८-१ प्र.] भगवन् ! पुलाक अवसर्पिणीकाल मे होता है, उत्सर्पिणीकाल मे होता है, अथवा नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल मे होता है ?

[६८-१ उ] गौतम ! पुलाक अवसर्पिणीकाल मे भी होता है, उत्सर्पिणीकाल मे भी होता है तथा नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल मे भी होता है।

[२] जदि ओसप्पिणिकाले होज्जा किं सुसमसुसमाकाले होज्जा, सुसमाकाले होज्जा, सुसमदुस्समाकाले होज्जा, दुस्समसुसमाकाले होज्जा, दुस्समाकाले होज्जा, दुस्समदुस्समाकाले होज्जा ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च नो सुसमसुसमाकाले होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा, सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, नो दुस्समाकाले होज्जा, नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा। संतिभावं पडुच्च नो सुसमसुसमाकाले होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा, सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, दुस्समाकाले वा होज्जा, नो दूसमदूसमाकाले होज्जा।

[६८-२ प्र] यदि पुलाक अवसर्पिणीकाल मे होता है, तो क्या वह सुषम-सुषमाकाल मे होता है अथवा सुषमाकाल मे, सुषम-दुःषमाकाल मे, दुःषम-सुषमाकाल मे, दुःषमकाल मे होता है अथवा दुःषम-दुःषमाकाल मे होता है ?

[६८-२ उ] गौतम ! (पुलाक) जन्म की अपेक्षा सुषम-सुषमा और सुषमाकाल मे नही होता, किन्तु सुषम-दुःषमा और दुःषम-सुषमाकाल मे होता है तथा दुःषमाकाल एव दुःषम-दुःषमाकाल मे वह नही होता। सद्भाव की अपेक्षा वह सुषम-सुषमा, सुषमा तथा दुःषम-दुःषमाकाल मे नही होता, किन्तु सुषम-दुःषमा, दुःषम-सुषमा एव दुःषमाकाल मे होता है।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९६

[३] जदि उस्सप्पिणिकाले होज्जा किं दुस्समदुस्समाकाले होज्जा, दुस्समाकाले होज्जा, दुस्समसुसमाकाले होज्जा, सुसमादुस्समाकाले होज्जा, सुसमाकाले होज्जा, सुसमसुसमाकाले होज्जा ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च णो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा, दुस्समाकाले वा होज्जा, दुस्सम-सुसमाकाले वा होज्जा, सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा, नो सुसमसुसमाकाले होज्जा। संतिभावं पडुच्च नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा, नो दुस्समाकाले होज्जा, दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा, नो सुसमसुसमाकाले होज्जा।

[६८-३ प्र] भगवन् ! यदि पुलाक उत्सर्पिणीकाल मे होता है, तो क्या दु षम-दु षमाकाल मे होता है अथवा दु षमाकाल मे, दु षम-सुषमाकाल मे, सुषम-दु.षमाकाल मे, सुषमाकाल मे या सुषम-सुषमाकाल मे होता है ?

[६८-३ उ] गौतम ! जन्म की अपेक्षा (पुलाक) दु षम-दुषमाकाल मे नही होता, वह दु षमाकाल मे, दु.षम-सुषमाकाल मे या सुषम-दु षमाकाल मे होता है, किन्तु सुषमाकाल मे तथा सुषम-सुषमाकाल मे नही होता। सद्भाव की अपेक्षा वह दु षम-दु षमाकाल मे, दु षमाकाल मे, सुषमाकाल मे तथा सुषम-सुषमाकाल मे नही होता, किन्तु दु षम-सुषमाकाल मे या सुषम-दु षमाकाल मे होता है।

[४] जति नोओसप्पिणिनोउस्सप्पिणिकाले होज्जा किं सुसमसुसमापलिभागे होज्जा, सुसमापलिभागे होज्जा, सुसमदुस्समापलिभागे होज्जा, दुस्समसुसमापलिभागे होज्जा ?

गोयमा ! जम्मण-संतिभाव पडुच्च नो सुसमसुसमापलिभागे होज्जा, नो सुसमापलिभागे होज्जा, नो सुसमदुस्समापलिभागे होज्जा, दुस्समसुसमापलिभागे होज्जा।

[६८-४ प्र] भगवन् ! यदि (पुलाक) नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल मे होता है तो क्या वह सुषम-सुषम-समानकाल मे, सुषमा-समानकाल मे, सुषम-दु षमा-समानकाल मे या दु षम-सुषमा-समानकाल मे होता है ?

[६८-४ उ] गौतम ! जन्म और सद्भाव की अपेक्षा वह सुषम-सुषमा-समानकाल मे, सुषमा-समानकाल म तथा सुषम-दु षम-समानकाल मे नही होता, किन्तु दु षम-सुषमा-समानकाल मे होता है।

६९ [१] बउसे ण० पुच्छा।

गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा, नोओसप्पिणिनोउस्सप्पिणिकाले वा होज्जा।

[६९-१ प्र.] भगवन् ! बकुश (अवसर्पिणी आदि मे से) किस काल मे होता है ?

[६९-१ उ] गौतम ! वह अवसर्पिणीकाल मे, उत्सर्पिणीकाल मे अथवा नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल मे होता है।

[२] जति ओसप्पिणिकाले होज्जा किं सुसमसुसमाकाले होज्जा० पुच्छा।

गोयमा ! जम्मण-संतिभावं पडुच्च नो सुसमसुसमाकाले होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा,

सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, दुस्समाकाले वा होज्जा, नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा। साहरण पडुच्च अन्नयरे समाकाले होज्जा।

[६९-२ प्र] भगवन्! यदि बकुश अवसर्पिणीकाल मे होता है तो क्या सुषम-सुषमाकाल मे होता है? इत्यादि प्रश्न।

[६९-२ उ] गौतम! जन्म और सद्भाव की अपेक्षा (वह) सुषम-सुषमाकाल मे, सुषमाकाल मे तथा दु षम-दु षमाकाल मे नही होता, किन्तु सुषम-दु षमाकाल मे, दु षम-सुषमाकाल मे या दु.षमाकाल मे होता है। सहरण की अपेक्षा (वह इनमे से) किसी भी (आरे के) काल मे होता है।

[३] जति उस्सप्पिणिकाले होज्जा कि दुस्समदुस्समाकाले होज्जा० पुच्छा।

गोयमा! जम्मण पडुच्च नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा जहेव पुलाए। सतिभाव पडुच्च नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा०, एव सतिभावेण वि जहा पुलाए जाव नो सुसमसुसमाकाले होज्जा। साहरण पडुच्च अन्नयरे समाकाले होज्जा।

[६९-३ प्र] भगवन्! यदि (बकुश) उत्सर्पिणीकाल मे होता है तो क्या दु षम-दु षमाकाल मे होता है? इत्यादि प्रश्न।

[६९-३ उ] गौतम! जन्म की अपेक्षा वह दु षम-दु षमाकाल मे नही होता (इत्यादि सब कथन) पुलाक के समान जानना। सद्भाव की अपेक्षा वह दु षम-दु षमाकाल मे नही होता, इत्यादि समग्र वक्तव्यता पुलाक के समान सुषम-सुषमाकाल मे नही होता, तक कहनी चाहिए। सहरण की अपेक्षा (वह इन आरो मे से) किसी भी काल मे होता है।

[४] जदि नोओसप्पिणिनोउस्सप्पिणिकाले होज्जा० पुच्छा।

गोयमा! जम्मण-सतिभाव पडुच्च नो सुसमसुसमापलिभागे होज्जा, जहेव पुलाए जाव दुस्समसुसमापलिभागे होज्जा। साहरण पडुच्च अन्नयरे पलिभागे होज्जा जहा बउसे।

[६९-४ प्र] भगवन्! यदि बकुश नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल मे होता है तो (छह आरो मे से) किस आरे मे होता है?

[६९-४ उ] गौतम! जन्म और सद्भाव की अपेक्षा (वह) सुषम-सुषमा-समानकाल मे नही होता, इत्यादि सब पुलाक के समान दु षम-सुषमा-समानकाल मे होता है, तक कहना चाहिए।

७० एव पडिसेवणाकुसीले वि।

[७०] इसी प्रकार (बकुश के समान) प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे कहना चाहिए।

७१ एव कसायकुसीले वि।

[७१] कषायकुशील के विषय मे भी (यही वक्तव्यता है।)

७२ नियठो सिणातो य जहा पुलाए, नवरं एएसिं अब्भहियं साहरणं भाणियव्वं। सेसं तं चेव। [दारं १२]।

[७२] निर्ग्रन्थ और स्नातक का कथन भी पुलाक के समान है। विशेष यह है कि इनका संहरण अधिक कहना चाहिए, अर्थात् संहरण की अपेक्षा ये सर्वकाल मे होते है। शेष पूर्ववत्।

[बारहवाँ द्वार]

विवेचन—तीन काल : स्वरूप, प्रकार और अवस्थिति जैनदृष्टि से काल के तीन पारिभाषिक विभाग है—(१) अवसर्पिणीकाल, (२) उत्सर्पिणीकाल और (३) नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल। जिस काल मे जीवो के आयुष्य, बल, शरीर आदि का उत्तरोत्तर ह्रास होता जाए, उसे अवसर्पिणीकाल कहते है। जिस काल मे जीवो के आयुष्य, बल, शरीर आदि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाए, उसे उत्सर्पिणीकाल कहते है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दोनो मे से प्रत्येक काल दस कोटाकोटि सागरोपम का होता है। यह दोनो प्रकार का काल पाच भरत और पाच ऐरवत क्षेत्र मे होता है। जिस काल मे भावो की हानि-वृद्धि न होती हो, सदा एक-से परिणाम रहते हो, उस काल को नो-अवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल कहते हैं। यह काल पाँच महाविदेह तथा पाच हैमवत आदि यौगलिक क्षेत्रो मे होता है।

अवसर्पिणीकाल के ६ आरे होते है। यथा (१) सुषम-सुषमा, (२) सुषमा, (३) सुषम-दुःषमा, (४) दुःषम-सुषमा, (५) दुःषमा और (६) दुःषम-दुःषमा।

उत्सर्पिणीकाल के भी विपरीत क्रम मे ये ही ६ आरे होते है (१) दुःषम-दुःषमा, (२) दुःषम, (३) दुःषम-सुषमा, (४) सुषम-दुःषमा, (५) सुषमा और (६) सुषमा-सुषमा।[1]

पुलाक—जन्म की अपेक्षा अवसर्पिणीकाल के तीसरे और चौथे आरे मे तथा सद्भाव की अपेक्षा तीसरे, चौथे और पाँचवे आरे मे होता है। तीसरे और चौथे आरे मे जन्म और सद्भाव दोनो होते है तथा इनमे से जो चौथे आरे मे जन्मा हुआ है, उसका सद्भाव (चारित्र-परिणाम) पाँचवे आरे मे भी होता है। उत्सर्पिणीकाल मे जन्म की अपेक्षा पुलाक दूसरे, तीसरे और चौथे आरे मे होता है। अर्थात् दूसरे आरे के अन्त मे जन्म होता है और तीसरे आरे मे वह चारित्र अंगीकार करता है। अतः तीसरे और चौथे आरे मे जन्म और सद्भाव दोनो होते है। अर्थात् सद्भाव की अपेक्षा पुलाक तीसरे और चौथे आरे मे ही होता है, क्योकि इन्ही आरो मे चारित्र की प्रतिपत्ति (अंगीकार) होती है। देवकुरु और उत्तरकुरु मे सुषम-सुषमा के समान काल होता है। हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष क्षेत्रो मे सुषमा के समान काल होता है। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रो मे सुषम-दुःषमा के समान काल होता है और महाविदेहक्षेत्र मे दुःषम-सुषमा के समान काल होता है। पुलाक का संहरण नही होता, जबकि निर्ग्रन्थ और स्नातक का संहरण हो सकता है। इसलिए संहरण की अपेक्षा निर्ग्रन्थ और स्नातक का सद्भाव सर्वकाल मे होता है। तात्पर्य यह है कि पहले संहरण किये हुए मनुष्य को निर्ग्रन्थ और स्नातकत्व की प्राप्ति होती है, क्योकि निर्ग्रन्थ और स्नातक वेदरहित होते है और वेदरहित होते मुनियो का संहरण नही होता है। जैसा एक प्राचीन गाथा मे कहा गया है—

समणीमवगयवेयं परिहार-पुलायमप्पमत्तं च।
चोद्दसपुव्वि आहारयं च, ण य कोइ संहरइ॥

१. (क) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३३७४
(ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ८९७

अर्थात्—श्रमणी (साध्वी), वेदरहित, परिहार-विशुद्धि-चारित्री, पुलाक, अप्रमत्त-सयत (सप्तम-गुणस्थानवर्ती), चौदह पूर्वधारी और आहारक-लब्धिमान्, इनका कोई सहरण नही करता।

कठिन-शब्दार्थ—पलिभागे—समानकाल मे। **अब्भहिय** अधिक अत्यधिक।[1]

तेरहवाँ गतिद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों की गति, पदवी तथा स्थिति की प्ररूपणा

७३. [१] पुलाए णं भंते ! कालगए समाणे कं गतिं गच्छति ?

गोयमा ! देवगतिं गच्छति।

[७३-१ प्र] भगवन् ! पुलाक मरण पाकर किस गति मे जाता है ?

[७३-१ उ] गौतम ! वह देवगति मे जाता है।

[२] देवगतिं गच्छमाणे किं भवणवासीसु उववज्जेज्जा, वाणमंतरेसु उववज्जेज्जा, जोतिस-वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! नो भवणवासीसु, नो वाणमंतरेसु, नो जोतिसेसु, वेमाणिएसु, उववज्जेज्जा। वेमाणिएसु उववज्जमाणे जहन्नेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेण सहस्सारे कप्पे उववज्जेज्जा।

[७३-२ प्र] भगवन् ! यदि वह देवगति मे जाता है तो क्या भवनपतियो मे उत्पन्न होता है या वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवो मे उत्पन्न होता है ?

[७३-२ उ] गौतम ! वह भवनपतियो, वाणव्यन्तरो तथा ज्योतिष्क देवो मे उत्पन्न नही होता, किन्तु वैमानिक देवो मे उत्पन्न होता है। वैमानिक देवो मे उत्पन्न होता हुआ पुलाक जघन्य सौधर्मकल्प मे और उत्कृष्ट सहस्रारकल्प मे उत्पन्न होता है।

७४. बउसे णं० ?

एवं चेव, नवरं उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे।

[७४] बकुश के विषय मे भी इसी प्रकार जानना, किन्तु वह उत्कृष्टत अच्युतकल्प मे उत्पन्न होता है।

७५. पडिसेवणाकुसीले जहा बउसे।

[७५] प्रतिसेवना-कुशील की वक्तव्यता भी बकुश के समान जाननी चाहिए।

७६. कसायकुसीले जहा पुलाए, नवरं उक्कोसेण अणुत्तरविमाणेसु।

[७६] कषायकुशील की वक्तव्यता पुलाक के समान है, विशेष यह है कि वह उत्कृष्टत. अनुत्तरविमानो मे उत्पन्न होता है।

७७ णियंठे ण भंते ! ० ?

एवं चेव जाव वेमाणिएसु उववज्जमाणे अजहन्नमणुक्कोसेण अणुत्तरविमाणेसु उववज्जेज्जा।

[७७ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ मर कर किस गति मे जाता है ?

---

१. (क) वही, पत्र ८९७

(ख) भगवती. (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ. ३३७५

[७७ उ.] गौतम ! इसका कथन भी पूर्ववत् यावत् वैमानिको मे उत्पन्न होता हुआ अजघन्य अनुत्कृष्ट अनुत्तर विमानो मे उत्पन्न होता है, यहाँ तक कहना चाहिए।

७८. सिणाए णं भंते ! कालगते समाणे कं गतिं गच्छति ?

गोयमा ! सिद्धिगतिं गच्छइ।

[७८ प्र.] भगवन् ! स्नातक मृत्यु प्राप्त कर किस गति में जाता है ?

[७८ उ] गौतम ! वह सिद्धिगति मे जाता है।

७९ पुलाए णं भंते ! देवेसु उववज्जमाणे किं इंदत्ताए उववज्जेज्जा, सामाणियत्ताए उववज्जेज्जा, तायत्तीसगत्ताए उववज्जेज्जा, लोगपालत्ताए उववज्जेज्जा, अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अविराहणं पडुच्च इंदत्ताए उववज्जेज्जा, सामाणियत्ताए उववज्जेज्जा, तायत्तीसगत्ताए उववज्जेज्जा, लोगपालगत्ताए उववज्जेज्जा, नो अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा। विराहण पडुच्च अन्नयरेसु उववज्जेज्जा।

[७९ प्र] भगवन् ! देवो मे उत्पन्न होता हुआ पुलाक क्या इन्द्ररूप मे उत्पन्न होता है या सामानिकदेवरूप मे, त्रायस्त्रिंशरूप मे लोकपालरूप मे, अथवा अहमिन्द्ररूप मे उत्पन्न होता है ?

[७९ उ] गौतम ! अविराधना की अपेक्षा वह इन्द्ररूप मे, सामानिकरूप मे, त्रायस्त्रिंशरूप मे अथवा लोकपाल के रूप में उत्पन्न होता है, किन्तु अहमिन्द्ररूप मे उत्पन्न नही होता। विराधना की अपेक्षा अन्यतर देव मे (अर्थात् भवनपति आदि किसी भी देव मे) उत्पन्न होता है।

८०. एव बउसे वि।

[८०] इसी प्रकार बकुश के विषय मे समझना चाहिए।

८१. एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[८१] प्रतिसेवनाकुशील के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार जानना।

८२. कसायकुसीले० पुच्छा।

गोयमा ! अविराहणं पडुच्च इंदत्ताए वा उववज्जेज्जा जाव अहमिंदत्ताए वा उववज्जेज्जा। विराहणं पडुच्च अन्नयरेसु उववज्जेज्जा।

[८२ प्र] भगवन् ! कषायकुशील क्या इन्द्ररूप मे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न।

[८२ उ] गौतम ! अविराधना की अपेक्षा वह इन्द्ररूप मे उत्पन्न होता है यावत् अहमिन्द्ररूप मे उत्पन्न होता है। विराधना की अपेक्षा अन्यतरदेव (किसी भी देव) मे उत्पन्न होता है।

८३. नियंठे० पुच्छा।

गोयमा ! अविराहणं पडुच्च नो इंदत्ताए उववज्जेज्जा जाव नो लोगपालत्ताए उववज्जेज्जा, अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा। विराहणं पडुच्च अन्नयरेसु उववज्जेज्जा।

[८३ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ क्या इन्द्ररूप मे उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न।

[८३ उ.] गौतम ! अविराधना की अपेक्षा वह इन्द्ररूप मे यावत् लोकपालरूप मे उत्पन्न नही होता, किन्तु (एकमात्र) अहमिन्द्ररूप मे उत्पन्न होता है। विराधना की अपेक्षा वह किसी भी देवरूप मे उत्पन्न होता है।

८४. पुलायस्स णं भंते ! देवलोगेसु उववज्जमाणस्स केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं पलियोवमपुहत्तं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं।

[८४ प्र.] भगवन् ! देवलोको मे उत्पन्न होते हुए पुलाक की स्थिति कितने काल की कही है ?

[८४ उ.] गौतम ! पुलाक की स्थिति जघन्य पल्योपमपृथक्त्व की और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की है।

८५. बउसस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं पलियोवमपुहत्तं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

[८५ प्र] भगवन् ! (देवलोक मे उत्पन्न होते हुए) बकुश की स्थिति कितने काल की कही है ?

[८५ उ] गौतम ! बकुश की स्थिति जघन्य पल्योपमपृथक्त्व की और उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की है।

८६. एवं पडिसेवणाकुसीलस्स वि।

[८६] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे जानना।

८७. कसायकुसीलस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण पलियोवमपुहत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[८७ प्र] भगवन् ! देवलोक मे उत्पन्न होते हुए कषायकुशील की स्थिति कितने काल की है ?

[८७ उ] गौतम ! उसकी स्थिति जघन्य पल्योपमपृथक्त्व की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

८८. णियठस्स० पुच्छा।

गोयमा ! अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। [दारं १३]।

[८८ प्र] भगवन् ! देवलोक मे उत्पन्न होते हुए निर्ग्रन्थ की स्थिति कितने काल की होती है ?

[८८ उ.] गौतम ! उसकी स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है। [तेरहवाँ द्वार]

विवेचन—पंचविध निर्ग्रन्थो में पुलाकादि चार प्रकार के निर्ग्रन्थ वैमानिक देवो में उत्पन्न होते हैं। उक्त चारों जघन्यत. सौधर्मदेवलोक में, उत्कृष्टत. क्रमश. सहस्रार, अच्युत, अनुत्तरविमान एवं अजघन्यानुत्कृष्ट अनुत्तर विमान मे उत्पन्न होते हैं। स्नातक सीधे सिद्धगति में जाते हैं।[1]

पदों का प्रश्न—इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल और अहमिन्द्र, इन पाँच पदो मे से पुलाक, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील अविराधना की अपेक्षा अहमिन्द्र को छोड़कर इन्द्रादि शेष चार पदो मे उत्पन्न होता है। कषायकुशील एकमात्र अहमिन्द्र के रूप मे उत्पन्न होता है। स्नातक की तो केवल सिद्धगति है, अत वहाँ इन्द्रादि पदो का प्रश्न ही नही है। पुलाक आदि के विषयो में इन्द्रादि देवपदवी का जो प्रतिपादन किया है वह ज्ञानादि की विराधना और लब्धि का प्रयोग न करने वाले पुलाकादि की अपेक्षा समझना चाहिए। अविराधक ही इन्द्रादि के रूप मे उत्पन्न होता है। विराधना करके तो पुलाक आदि भवनपति आदि देवो मे भी उत्पन्न होते हैं। पहले पुलकादि की देवोत्पत्ति के विषय मे किए गए प्रश्न के उत्तर मे जो एकमात्र वैमानिको मे उत्पाद कहा है, वह सयम की अविराधना की अपेक्षा से जानना चाहिए, क्योकि सयमादि की विराधना करने वालो का उत्पाद तो भवनपति आदि मे ही होता है, वैमानिको मे नही। यह भी ध्यान रहे कि यहाँ पुलकादि पाच का जो देवो मे उत्पाद बताया है, वह देवलोक-विषयक प्रश्न होने से देवो मे उत्पन्न होने का बताया है, अन्यथा विराधक पुलाक आदि तो चारो ही गतियो मे उत्पन्न हो सकते है।

स्नातक के विषय मे गति, पदवी एव स्थिति का प्रश्न नही किया गया है, क्योकि उसकी एकमात्र मोक्षगति है। जहाँ प्रत्येक मुक्तजीव की स्थिति 'सादि-अनन्त' होती है।[2]

चौदहवां संयमद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों के संयमस्थान और उनका अल्पबहुत्व

८९. पुलागस्स ण भंते ! केवतिया संजमठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जा संजमठाणा पन्नत्ता।

[८९ प्र] भगवन् ! पुलाक के सयमस्थान कितने कहे हैं ?

[८९ उ.] गौतम ! उसके सयमस्थान असख्यात कहे हैं।

९०. एवं जाव कसायकुसीलस्स।

[९०] इसी प्रकार यावत् कषायकुशील तक कहना चाहिए।

९१. नियंठस्स णं भंते ! केवतिया सजमठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! एगे अजहन्नमणुक्कोसए संजमठाणे पन्नत्ते।

[९१ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ के सयमस्थान कितने कहे है ?

[९१ उ] गौतम ! उसके एक ही अजघन्य-अनुत्कृष्ट सयमस्थान कहा है।

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा २ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ. १०२६-२७

२ (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३३८०

(ख) विशेष स्पष्टीकरण के लिए देखिए—भगवती उपक्रम, परिशिष्ट न ३, पृ ६२२

९२. एव सिणायस्स वि ।

[९२] इसी प्रकार स्नातक के विषय मे समझना चाहिए ।

९३. एएसि णं भंते ! पुलाग-बउस-पडिसेवणा-कसायकुसील-नियंठ-सिणायाणं संजमठाणाणं कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे नियठस्स सिणायस्स य एगे अजहन्नमणुक्कोसए सजमठाणे । पुलागस्स सजमठाणा असखेज्जगुणा । बउसस्स सजमठाणा असखेज्जगुणा । पडिसेवणाकुसीलस्स सजमठाणा असखेज्जगुणा । कसायकुसीलस्स सजमठाणा असंखेज्जगुणा । [दारं १४] ।

[९३ प्र] भगवन् ! पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक, इनके सयमस्थानो मे, किसके सयमस्थान किसके सयमस्थानो से अल्प, बहुल, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[९३ उ] गौतम ! निर्ग्रन्थ और स्नातक का सयमस्थान अजघन्य-अनुत्कृष्ट एक ही है और सबसे अल्प है । इनसे पुलाक के सयमस्थान असख्यातगुणा है । उनसे बकुश के सयमस्थान असख्यातगुणा है, उनसे प्रतिसेवनाकुशील के सयमस्थान असख्यातगुणा हैं और उनसे कषायकुशील के सयमस्थान असख्यातगुणा हैं । [चौदहवाँ द्वार]

विवेचन—संयमस्थानो की गणना और अल्पबहुत्व पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील के सयमस्थान असख्यात है । सयमस्थान कहते है—चारित्र के स्थान अर्थात् शुद्धि की प्रकर्षता-अप्रकर्षता-कृत भेद को । वे असख्य होते है । उनमे प्रत्येक सयमस्थान के समस्त आकाशप्रदेशो को सर्व आकाशप्रदेशो से गुणा करने पर जितने अनन्तानन्त पर्याय (अश) होते हैं, उतने एक सयमस्थान के पर्याय होते है । पुलाक के ऐसे सयमस्थान असख्य होते है, क्योकि चारित्र-मोहनीय का क्षयोपशम विचित्र होता है । इसी प्रकार बकुश, प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील के सयमस्थानो के विषय मे भी जानना चाहिए । निर्ग्रन्थ और स्नातक का सयमस्थान तो एक ही होता है, क्योकि कषाय का परिपूर्ण क्षय या उपशम एक ही प्रकार का होता है । अत उसकी शुद्धि भी एक ही प्रकार की होती है । एक होने के कारण ही उसका सयमस्थान भी एक ही होता है । अत सयमस्थान के अल्पबहुत्व-सूत्र मे कहा गया है कि निर्ग्रन्थ और स्नातक का सयमस्थान एक ही होने से सबसे अल्प है । पुलाक आदि के सयमस्थान क्रमश क्षयोपशम की विचित्रता के कारण उत्तरोत्तर असख्य-असख्यगुणे होते है ।[1]

पन्द्रहवाँ निष्कर्ष (सन्निकर्ष) द्वार : पांचों प्रकार के निर्ग्रन्थों में अनन्तचारित्रपर्याय

९४. पुलागस्स णं भते ! केवतिया चरित्तपज्जवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! अणता चरित्तपज्जवा पन्नत्ता ।

[९४ प्र] भगवन् ! पुलाक के चारित्र-पर्यव कितने होते हैं ?

[९४ उ] गौतम ! पुलाक के चारित्र-पर्यव अनन्त होते है ।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ८९८

९५. एवं जाव सिणायस्स ।

[९५] इसी प्रकार (बकुश से लेकर) स्नातक तक कहना चाहिए ।

विवेचन—चारित्र-पर्याय : क्या और कितने ? चारित्र अर्थात् सर्वविरतिरूप परिणाम, उसके पर्यव या पर्याय अर्थात् तरतमताजनित भेद या अंश को चारित्र-पर्याय कहते हैं । बुद्धिकृत या विषयकृत अविभागपरिच्छेद रूप (जिसके फिर विभाग न हो सकें) होते हैं । ऐसे चारित्र-पर्याय अनन्त होते हैं । पुलाक से स्नातक तक के चारित्र-पर्याय अनन्त होते हैं ।[1]

पंचविध निर्ग्रन्थों के स्व-पर-स्थान-सन्निकर्ष चारित्रपर्यायों से हीनत्वादि प्ररूपणा

९६. पुलाए णं भंते ! पुलागस्स सट्ठाणसन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए । जदि हीणे अणंतभागहीणे वा असंखेज्जइभागहीणे वा, संखेज्जइभागहीणे वा, संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अणंतगुणहीणे वा । अह अब्भहिए अणंतभागमब्भहिए वा, असंखेज्जइभागमब्भहिए वा, संखेज्जइभागमब्भहिए वा, संखेज्जगुणमब्भहिए वा, असंखेज्जगुणमब्भहिए वा, अणंतगुणमब्भहिए वा ।

[९६ प्र] भगवन् ! एक पुलाक, दूसरे पुलाक के स्वस्थान-सन्निकर्ष से चारित्र-पर्यायों से हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

[९६ उ] गौतम ! वह कदाचित् हीन होता है, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो अनन्तभागहीन, असंख्यातभागहीन तथा संख्यातभागहीन होता है एवं संख्यातगुणहीन, असंख्यातगुणहीन और अनन्तगुणहीन होता है । यदि अधिक हो तो अनन्तभाग-अधिक असंख्यातभाग-अधिक और संख्यातभाग-अधिक होता है, तथैव संख्यातगुण-अधिक, असंख्यातगुण-अधिक और अनन्तगुण-अधिक होता है ।

९७. पुलाए णं भंते ! बउसस्स परट्ठाणसन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए; अणंतगुणहीणे ।

[९७ प्र] भगवन् ! पुलाक अपने चारित्र-पर्यायों से, बकुश के परस्थान-सन्निकर्ष (विजातीय चारित्र-पर्यायों के परस्पर संयोजन) की अपेक्षा हीन है, तुल्य हैं या अधिक है ?

[९७ उ] गौतम ! वे हीन होते है, तुल्य या अधिक नहीं होते । अनन्तगुणहीन होते है ।

९८. एवं पडिसेवणाकुसीलस्स वि ।

[९८] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे कहना चाहिए ।

९९. कसायकुसीलेण समं छट्ठाणपडिए जहेव सट्ठाणे ।

[९९] कषायकुशील से पुलाक के स्वस्थान के समान षट्स्थानपतित कहना चाहिए ।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९००

१००. नियंठस्स जहा बउसस्स ।

[१००] बकुश के समान निर्ग्रन्थ के विषय मे भी कहना चाहिए ।

१०१. एवं सिणायस्स वि ।

[१०१] स्नातक का कथन भी बकुश के समान है ।

१०२. बउसे ण भंते ! पुलागस्स परट्ठाणसन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए; अणंतगुणमब्भहिए ।

[१०२ प्र.] भगवन् ! बकुश, पुलाक के परस्थान-सन्निकर्ष से चारित्र-पर्यायो की अपेक्षा हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

[१०२ उ] गौतम ? वह हीन भी नही और तुल्य भी नही, किन्तु अधिक है, अनन्तगुण-अधिक है ।

१०३. बउसे ण भते ! बउसस्स सट्ठाणसन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं० पुच्छा ।

गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए । जवि हीणे छट्ठाणवडिए ।

[१०३ प्र.] भगवन् ! बकुश, दूसरे बकुश के स्वस्थान-सन्निकर्ष से (सजातीय-पर्यायो से) चारित्रपर्यायो (की अपेक्षा) से हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

[१०३ उ.] गौतम ! वह कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो (यावत्) षट्स्थान-पतित होता है ।

१०४. बउसे णं भंते ! पडिसेवणाकुसीलस्स परट्ठाणसन्निगासेण चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे० ?

छट्ठाणवडिए ।

[१०४ प्र.] भगवन् ! बकुश, प्रतिसेवनाकुशील के परस्थान-सन्निकर्ष से, चारित्र-पर्यायो से हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

[१०४ उ.] गौतम ! वह षट्स्थानपतित होता है ।

१०५. एवं कसायकुसीलस्स वि ।

[१०५] इसी प्रकार कषायकुशील की अपेक्षा से भी जान लेना चाहिए ।

१०६ बउसे णं भंते ! नियंठस्स परट्ठाणसन्निकासेण चरित्तपज्जवेहिं० पुच्छा ।

गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए; अणंतगुणहीणे ।

[१०६ प्र.] भगवन् ! बकुश निर्ग्रन्थ के परस्थान-सन्निकर्ष से चारित्र-पर्यायो से हीन, तुल्य या अधिक होते है ?

[१०६ उ] गौतम ! वे हीन होते हैं, न तो तुल्य होते हैं और न अधिक होते हैं । अनन्त-गुण-हीन होते हैं ।

१०७. एवं सिणायस्स वि ।

[१०७] इसी प्रकार स्नातक की अपेक्षा भी जानना चाहिए ।

१०८. पडिसेवणाकुसीलस्स एवं चेव बउसवत्तव्वया भाणियव्वा ।

[१०८] प्रतिसेवनाकुशील के लिये भी इसी प्रकार बकुश की वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

१०९. कसायकुसीलस्स एस चेव बउसवत्तव्वया, नवरं पुलाएण वि समं छट्ठाणपडिते ।

[१०९] कषायकुशील के लिए भी यही बकुश की वक्तव्यता जाननी चाहिए । विशेष यह है कि पुलाक के साथ (तदपेक्षया) षट्स्थानपतित कहना चाहिए ।

११०. णियंठे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाणसन्निगासेणं चरित्तपज्जवेहिं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए; अणंतगुणमब्भहिए ।

[११० प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ, पुलाक के परस्थान-सन्निकर्ष से, चारित्रपर्यायो से हीन है, तुल्य है या अधिक है ?

[११० उ] गौतम ! वह हीन नही, तुल्य भी नही, किन्तु अधिक है, अनन्तगुण-अधिक है ।

१११. एव जाव कसायकुसीलस्स ।

[१११] इसी प्रकार यावत् कषायकुशील की अपेक्षा से भी जान लेना चाहिए ।

११२. नियंठे ण भंते ! नियंठस्स सट्ठाणसन्निगासेणं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए ।

[११२ प्र] भगवन् ! एक निर्ग्रन्थ, दूसरे निर्ग्रन्थ के स्वस्थान-सन्निकर्ष से चारित्र-पर्यायो से हीन है या अधिक है ?

[११२ उ.] गौतम ! वह हीन नही और अधिक भी नही, किन्तु तुल्य होता है ।

११३. एवं सिणायस्स वि ।

[११३] इसी प्रकार स्नातक के साथ भी जानना चाहिए ।

११४ सिणाए णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाणसन्नि० ?

एवं जहा नियंठस्स वत्तव्वया तहा सिणायस्स वि भाणियव्वा जाव—

[११४ प्र] भगवन् ! स्नातक पुलाक के परस्थान-सन्निकर्ष से चारित्र-पर्यायो से हीन, तुल्य अथवा अधिक है ?

[११४ उ.] गौतम ! जिस प्रकार निर्ग्रन्थ की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार स्नातक की वक्तव्यता भी जाननी चाहिए ।

११५. सिणाए णं भंते ! सिणायस्स सट्ठाणसन्निगासेणं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए ।

[११५ प्र] भगवन् ! एक स्नातक दूसरे स्नातक के स्वस्थान-सन्निकर्ष से चारित्र-पर्यायो से हीन, तुल्य या अधिक है ?

[११५ उ.] गौतम ! वह न तो हीन है और न अधिक है, किन्तु तुल्य है।

पंचविध निर्ग्रन्थों के जघन्य-उत्कृष्ट चारित्रपर्यायों का अल्पबहुत्व

११६. एएसि णं भंते ! पुलाग-बकुस-पडिसेवणाकुसील-कसायकुसील-नियंठ-सिणायाणं जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाण कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! पुलागस्स कसायकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला सव्वत्थोवा। पुलागस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा। बउसस्स पडिसेवणाकुसीलस्स य एएसि णं जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा। बउसस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा। पडिसेवणाकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा। कसायकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा। नियठस्स सिणायस्स य एएसि णं अजहन्नमणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा। [दारं १५]।

[११६ प्र] भगवन् ! पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक, इनके जघन्य और उत्कृष्ट चारित्र-पर्यायो मे किसके चारित्र-पर्याय किनके चारित्र-पर्यायो से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[११६ उ] गौतम ! (१) पुलाक और कषायकुशील इन दोनो के जघन्य चारित्र-पर्याय परस्पर तुल्य हैं और सबसे अल्प हैं। (२) उनसे पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुण है। (३) उनसे बकुश और प्रतिसेवनाकुशील इन दोनो के जघन्य चारित्र-पर्याय परस्पर तुल्य हैं और अनन्तगुणे है। (४) उनसे बकुश के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणे है। (५) उनसे प्रतिसेवना-कुशील के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुण हैं। (६) उनसे कषायकुशील के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुण हैं और (७) उनसे निर्ग्रन्थ और स्नातक, इन दोनो के अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुण हैं और परस्पर तुल्य हैं। [पन्द्रहवाँ द्वार]

विवेचन स्वस्थान-सन्निकर्ष और परस्थान-सन्निकर्ष पुलाक आदि का पुलाक आदि स्व-स्व के साथ सन्निकर्ष – सयोजन को 'स्वस्थान-सन्निकर्ष' कहते है। पुलाक का बकुश आदि पर के साथ सन्निकर्ष को परस्थान-सन्निकर्ष कहते है।[1]

चारित्र-पर्याय : हीन, तुल्य और अधिक—विशुद्ध सयम सम्बन्धी विशुद्धतर (चारित्र) पर्यायो की अपेक्षा अविशुद्ध सयम सम्बन्धी अविशुद्धतर (चारित्र) पर्याय 'हीन' कहलाते है। गुण और गुणी के अभेद सम्बन्ध से उन न्यून पर्यायो वाला साधु भी 'हीन' कहलाता है। शुद्ध पर्यायो की

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९००

समानता के कारण चारित्रपर्याय परस्पर 'तुल्य' कहलाते हैं और विशुद्धतर पर्यायों के सम्बन्ध से 'अधिक' (चारित्रपर्याय) कहलाते है।[1]

सजातीय चारित्रपर्यायों से षट्स्थानपतित : कैसे और क्यों ?—एक पुलाक, दूसरे पुलाक के साथ सजातीय चारित्र-पर्यायो से षट्स्थानपतित होता है। षट्स्थानहीन यथा—(१) अनन्तभाग-हीन (२) असख्यातभागहीन, (३) सख्यातभागहीन, (४) सख्यातगुणहीन, (५) असख्यातगुण-हीन और (६) अनन्तगुणहीन।

इसी प्रकार अधिक के भी षटस्थानपतित होते है। यथा (१) अनन्तभाग-अधिक (२) असख्यातभाग-अधिक, (३) सख्यातभाग-अधिक, (४) सख्यातगुण-अधिक, (५) असख्यातगुण-अधिक और (६) अनन्तगुण-अधिक।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—प्रत्येक चारित्र के अनन्त पर्याय होते है। एक ही चारित्र का पालन करने वाले अनेक व्यक्ति होते है। यथाख्यातचारित्र के सिवाय दूसरे चारित्र के पालन करने वाले साधुओ के परिणामो मे समानता और असमानता—दोनो ही हो सकती है। असमानता के स्वरूप को समझाने के लिए षट्गुणहानि-वृद्धि की प्ररूपणा की गई है। यथा—

(१) अनन्तवां भाग-हीन—चारित्र पालने वाले दो साधुओ मे एक के जो चारित्र-पर्याय हैं, उनके अनन्त विभाग किये जाएँ, उनसे दूसरे साधु के चारित्रपर्याय एक विभाग कम हैं तो वह कमी (न्यूनता) अनन्तवे भाग-हीन कहलाती है।

(२) असंख्यातवाँ भाग-हीन—इसी प्रकार चारित्रपालक दो साधुओ मे से एक साधु के चारित्र के असख्यात विभाग किए जाएँ, उससे यदि दूसरे साधुओ का चारित्र-पर्याय एक भाग कम हो तो वह कमी असख्यातभाग-हीन मानी जाती है।

(३) संख्यातवें भाग-हीन—उपर्युक्त रीति से एक मुनि के चारित्र के सख्यात भाग किये जाएँ, उससे दूसरे साधु का चारित्र एक भाग कम हो तो वह 'सख्यातवाँ भाग-हीन' कहलाता है।

(४) संख्यातगुण-हीन—उपर्युक्त रीति से एक साधु के जितने चारित्र-पर्याय है, उनको सख्यातगुणा किया जाए, तब वह पहले साधु के बराबर हो सके तो उस दूसरे साधु का चारित्र सख्यात-गुण-हीन होता है।

(५) असंख्यातगुण-हीन—दो साधुओ मे से दूसरे साधु के जितने चारित्र-पर्याय है, उन्हे असख्यातगुणा किया जाए, तब वह पहले साधु के बराबर हो तो उसका चारित्र असख्यातगुण-हीन कहा जाता है।

(६) अनन्तगुण-हीन—दो साधुओ मे से दूसरे साधु के जितने चारित्र-पर्याय हैं, उनको अनन्तगुणा किया जाए, तब वह पहले साधु के बराबर हो, तो वह अनन्तगुण-हीन कहलाता है।

इसी प्रकार वृद्धि (अधिक) के भी षट्स्थानपतित का क्रम समझना चाहिए।

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९००

चारित्र-पर्याय की न्यूनाधिकता का मापदण्ड—सामायिक-चारित्र के अनन्त पर्याय है। किसी के सामायिकचारित्र के अनन्त पर्याय अधिक है और किसी के कम हैं, परन्तु सभी सामायिक-चारित्र के पालने वालो के अनन्त पर्याय हैं ही। इनको समझाने के लिए जिसके सामायिकचारित्र के सबसे अधिक पर्याय हैं, वे भी हैं तो अनन्त ही और सभी आकाश-प्रदेशो से अनन्तगुण अधिक हैं। असत्कल्पना से उदाहरण द्वारा समझाने के लिए सर्वाधिक सयम-पर्याय वाले सयमी के अनन्त पर्यायो को दस हजार के रूप में मान लिया जाय। लोक मे जीव भी अनन्त है, किन्तु असत्कल्पना से सभी जीवो को एक सौ मान लिया जाए, लोकाकाश के प्रदेश असख्य है, उन्हे असत्कल्पना से पचास मान लिया जाए और उत्कृष्ट सख्यात-राशि को असत्कल्पना से दस मान लिया जाए। जैसे कि सामायिकचारित्र के सबसे अधिक पर्याय अनन्त हैं। असत्कल्पना से उन्हे १००० मान लिया जाए। जीव अनन्त हैं। उन्हे असत्कल्पना से १०० मान लिया जाए।

१—अनन्तभाग-हीन—अब १०००० मे १०० का भाग दिया जाए, क्योकि एक तो पूर्ण पर्याय वाला है और दूसरा अनन्तवाँ भाग हीन है। अत १०००० मे १०० का भाग देने पर लब्धाक १०० आते हैं। अर्थात् —१०००० - १०० = ९९०० उसके चारित्र-पर्याय हैं। यह १०० पर्याय (अनन्तवाँ भाग-हीन) ही अनन्तवाँ भाग होता है।

२—असंख्यातभाग-हीन—एक के तो पूर्ण अनन्तपर्याय है, जिन्हे असत्कल्पना से १०००० माना है। दूसरे साधु के चारित्र-पर्याय उससे असख्यातवाँ भाग-हीन है। असख्यात को असत्कल्पना से ५० माना है। १०००० मे ५० का भाग देने पर लब्धाक २०० आते हैं। इस प्रकार १००००—२०० = ९८०० पर्याय हैं। यह २०० पर्याय असख्यातवाँ भाग-हीन हैं।

३—संख्यातभाग-हीन—एक साधु के तो पूर्ण चारित्रपर्याय अनन्त हैं, जिन्हे असत्कल्पना से १०००० मान लीजिए। दूसरे साधक के चारित्र-पर्याय उससे सख्यातवाँ भाग हीन है। असत्कल्पना से सख्यात को १० माना है। १०००० मे १० का भाग देने पर लब्धाक १००० आते हैं। अत उसके १०००० मे से १००० शेष निकालने पर ९००० पर्याय शेष रहते है। पहले से इसके १००० पर्याय (संख्यातभाग) हीन हैं।

४—संख्यातगुण-हीन—जो सख्यातगुण-हीन है, उसके १००० पर्याय हैं। सख्यात को असत्कल्पना से १० माना है। पहले के चारित्र-पर्याय अनन्त है, दूसरे के १००० पर्याय को सख्यात-गुण—यानी १० से गुणा करने पर वह पहले वाले (अर्थात् जिसके अनन्त पर्याय हैं और जिन्हे असत्कल्पना से १०००० माना है) के बराबर होता है।

५—असख्यातगुण-हीन—जो असख्यातगुण-हीन है, जिसके २०० पर्याय हैं। पहले के तो अनन्तपर्याय है (जिन्हे असत्कल्पना से १०००० माना है)। अत २०० पर्याय को असत्कल्पना से ५०वाँ भाग माना है। अत २०० को ५० से गुणा कर तब वह पहले के बराबर होता है।

६—अनन्तगुण-हीन—जिसके अनन्तगुण-हीन पर्याय है, उसके १०० पर्याय माने है। पहले के तो अनन्त पर्याय अर्थात् असत्कल्पित १०००० पर्याय है। अत इसके १०० पर्यायो को १०० से गुणा किया जाए तब वह पहले वाले के बराबर होता है। अत इसके पर्याय अनन्तगुण-हीन हैं।

इसका रेखाचित्र इस प्रकार है—

पूर्ण पर्याय पालने वाले	**अपूर्ण पर्याय पालने वाले**
१०००० प्रतियोगी	९९०० अनन्तवाँ भाग-हीन
१०००० प्रतियोगी	९८०० असख्यातवाँ भाग-हीन
१०००० प्रतियोगी	९००० सख्यातवाँ भाग-हीन
१०००० प्रतियोगी	१००० सख्यातगुण-हीन
१०००० प्रतियोगी	२०० असख्यातगुण-हीन
१०००० प्रतियोगी	१०० अनन्तगुण-हीन

जिस प्रकार षट्स्थानपतित हीन का निरूपण किया गया है, उसी प्रकार षट्स्थानपतित अधिक (वृद्धि) का भी समझना चाहिए।

यह सामायिकचारित्र-पर्याय के षट्स्थानपतित का उदाहरण है। इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय आदि चारित्रो पर तथा पुलाक आदि निर्ग्रन्थो पर घटित कर लेना चाहिए।[1]

परस्थान के साथ षट्स्थानपतित—परस्थान का अर्थ है—विजातीय। जैसे कि पुलाक, पुलाक के साथ तो सजातीय है, किन्तु बकुश आदि के साथ विजातीय है। पुलाक तथाविध विशुद्धि के अभाव से बकुश से हीन है। जिस प्रकार पुलाक को पुलाक के साथ षट्स्थानपतित कहा है, उसी प्रकार कषायकुशील की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित समझना चाहिए। पुलाक, कषायकुशील से अविशुद्ध सयमस्थान मे रहने के कारण कदाचित् हीन भी होता है। समान-सयमस्थान मे रहने पर कदाचित् समान भी होता है, अथवा शुद्धतर सयमस्थान मे रहने पर कदाचित् अधिक भी होता है।

पुलाक और कषायकुशील के सर्वजघन्य सयमस्थान सबसे नीचे है। वहाँ से वे दोनो असख्य सयमस्थानो तक साथ-साथ जाते है, क्योकि वहाँ तक उन दोनो के समान अध्यवसाय होते है। तत्पश्चात् पुलाक हीनपरिणाम वाला होने से आगे के सयमस्थानो मे नही जाता, किन्तु वहाँ रुक जाता है। तत्पश्चात् कषायकुशील असख्य सयमस्थानो तक ऊपर जाता है। वहाँ से कषाय-कुशील, प्रतिसेवनाकुशील और बकुश, ये तीनो साथ-साथ असख्यसयमस्थानो तक जाते है। फिर वहाँ बकुश रुक जाता है। इसके बाद प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील, ये दोनो असख्य सयमस्थानो तक जाते हैं। वहाँ जाकर प्रतिसेवनाकुशील रुक जाता है। फिर कषायकुशील उससे आगे असख्य सयमस्थानो तक जाता है। फिर वहाँ जाकर वह भी रुक जाता है। तदनन्तर निर्ग्रन्थ और स्नातक, ये दोनो उससे आगे एक सयमस्थान तक जाते हैं। इस प्रकार पुलाक एव कषायकुशील के अतिरिक्त शेष सभी निर्ग्रन्थो के चारित्र-पर्यायो से अनन्तगुणहीन होता है।

बकुश, पुलाक से विशुद्धतर परिणाम वाला होने से अनन्तगुण अधिक होता है। बकुश, बकुश के साथ विचित्र परिणामवाला होने से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील से भी इसी प्रकार हीनादि होता है। निर्ग्रन्थ और स्नातक से तो वह हीन ही होता है। प्रतिसेवनाकुशील की वक्तव्यता बकुश के समान है। कषायकुशील

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९००-९०१

भी बकुश के समान है। पुलाक से बकुश अधिक कहा है, किन्तु यहाँ पर कषायकुशील, पुलाक के साथ हीनादि षट्स्थानपतित कहना चाहिए। क्योंकि उसके परिणाम पुलाक की अपेक्षा हीन, तुल्य और अधिक होते है।

सोलहवाँ योगद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में योगो की प्ररूपणा

११७. पुलाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा।

[११७ प्र] भगवन् ! पुलाक सयोगी होता है या अयोगी होता है ?

[११७ उ.] गौतम ! वह सयोगी होता है, अयोगी नही होता है।

११८. जति सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा, वइजोगी होज्जा, कायजोगी होज्जा ?

गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा।

[११८ प्र] भगवन् ! यदि वह सयोगी होता है तो क्या वह मनोयोगी होता है, वचनयोगी होता है या काययोगी होता है ?

[११८ उ] गौतम ! वह मनोयोगी भी होता है, वचनयोगी भी होना है, काययोगी भी होता है।

११९. एवं जाव नियठे।

[११९] इसी प्रकार यावत् निर्ग्रन्थ तक जानना चाहिए।

१२०. सिणाए णं० पुच्छा।

गोयमा ! सजोगी वा होज्जा, अजोगी वा होज्जा।

[१२० प्र] भगवन् ! स्नातक सयोगी होता है या अयोगी होता है ?

[१२० उ] गौतम ! वह सयोगी भी होता है और अयोगी भी होता है।

१२१. जति सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा० ?

सेस जहा पुलागस्स। [दार १६]।

[१२१ प्र] भगवन् ! यदि वह सयोगी होता है तो क्या मनोयोगी होता है ? इत्यादि प्रश्न।

[१२१ उ] इसका समाधान पुलाक के समान है। [सोलहवाँ द्वार]

विवेचन—निष्कर्ष - पुलाक से लेकर निर्ग्रन्थ तक सयोगी - विशेषत तीनो योग वाले होते हैं, जबकि स्नातक सयोगी और अयोगी दोनो प्रकार के होते है। शैलेशी अवस्था के पहले तक वे सयोगी होते है तथा शैलेशी अवस्था मे अयोगी बन जाते है।[२]

सत्तरहवाँ उपयोगद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थ में उपयोग-प्ररूपणा

१२२ पुलाए णं भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०१

२ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३३९३

[१२२ प्र.] भगवन् ! पुलाक साकारोपयोगयुक्त होता है या अनाकारोपयोगयुक्त होता है ?

[१२२ उ] गौतम ! वह साकारोपयोगयुक्त भी होता है और अनाकारोपयोगयुक्त भी होता है।

१२३. एवं जाव सिणाए। [दारं १७]।

[१२३] इसी प्रकार यावत् स्नातक तक कहना चाहिए। [सत्तरहवाँ द्वार]

अठारहवाँ कषायद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में कषाय-प्ररूपणा

१२४. पुलाए णं भंते कि सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

[१२४ प्र] भगवन् ! पुलाक सकषायी होता है या अकषायी होता है ?

[१२४ उ] गौतम ! वह सकषायी होता है, अकषायी नही होता है।

१२५ जइ सकसायी से ण भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! चउसु, कोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा।

[१२५ प्र] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है, तो कितने कषायो मे होता है ?

[१२५ उ] गौतम ! वह क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारो कषायो मे होता है।

१२६ एव बउसे वि।

[१२६] इसी प्रकार बकुश के विषय म भी जानना चाहिए।

१२७. एव पडिसेवणाकुसीले वि।

[१२७] यही कथन प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे समझना चाहिए।

१२८. कसायकुसीले ण० पुच्छा।

गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

[१२८ प्र] भगवन् ! कषायकुशील सकषायी होता है या अकषायी होता है ?

[१२८ उ] गौतम ! वह सकषायी होता है, अकषायी नही होता है।

१२९. जति सकसायी होज्जा से णं भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! चउसु वा, तिसु वा, दोसु वा, एगम्मि वा होज्जा। चउसु होमाणे चउसु संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा, तिसु होमाणे तिसु संजलणमाण-माया-लोभेसु होज्जा, दोसु होमाणे संजलणमाया-लोभेसु होज्जा, एगम्मि होमाणे एगम्मि संजलणे लोभे होज्जा।

[१२९ प्र] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है, तो कितने कषायो मे होता है ?

[१२९ उ.] गौतम ! वह चार, तीन, दो या एक कषाय मे होता है। चार कषायो मे होने पर सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ मे होता है। तीन कषाय मे होने पर सज्वलन मान, माया और लोभ मे होता है। दो कषायो मे होने पर सज्वलन माया और लोभ मे होता है और एक कषाय मे होने पर सज्वलन लोभ मे होता है।

१३०. नियंठे णं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ।

[१३० प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ सकषायी होता है या अकषायी होता है ?

[१३० उ] गौतम ! वह सकषायी नही होता, किन्तु अकषायी होता है ।

१३१. जदि अकसायी होज्जा किं उवसंतकसायी होज्जा, खीणकसायी होज्जा ?

गोयमा ! उवसंतकसायी वा होज्जा, खीणकसायी वा होज्जा ?

[१३१ प्र] भगवन् ! यदि निर्ग्रन्थ अकषायी होता है तो क्या उपशान्तकषायी होता है, अथवा क्षीणकषायी होता है ?

[१३१ उ] गौतम ! वह उपशान्तकषायी भी होता है और क्षीणकषायी भी होता है ।

१३२. सिणाए एवं चेव, नवर नो उवसंतकसायी होज्जा, खीणकसायी होज्जा । [दारं १८] ।

[१३२] स्नातक के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष यह है कि वह उपशान्तकषायी नही होता, किन्तु क्षीणकषायी होता है । [अठारहवाँ द्वार]

विवेचन—सकषायी या अकषायी ?—पुलाक से लेकर प्रतिसेवनाकुशील तक क्रोधादि चारो कषायो से युक्त होते हैं, क्योकि उनके कषायो का उपशम या क्षय नही होता। कषायकुशील मे जो चार, तीन, दो और एक कषाय का कथन किया है, उसका तात्पर्य यह है कि जब वह चार कषाय मे होता है, तब उसके सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चारो कषाय होते हैं। उपशम-श्रेणी या क्षपकश्रेणी मे जब सज्वलनक्रोध का उपशम या क्षय हो जाता है, तब उसके तीन कषाय होते है। जब सज्वलन मान का उपशम या क्षय हो जाता है तब दो कषाय होते है और जब सज्वलन माया का उपशम या क्षय हो जाता है, तब सूक्ष्मसम्पराय नामक दसवे गुणस्थान मे एक मात्र सज्वलन लोभ ही शेष रह जाता है। निर्ग्रन्थ और स्नातक दोनो अकषायी होते है।[1]

उन्नीसवाँ लेश्याद्वार : लेश्याओं की प्ररूपणा

१३३. पुलाए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ?

गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा ।

[१३३ प्र.] भगवन् ! पुलाक सलेश्य होता है या अलेश्य होता है ?

[१३३ उ.] गौतम ! वह सलेश्य होता है अलेश्य नही होता है ।

१३४. जदि सलेस्से होज्जा से ण भते ! कतिसु लेसासु होज्जा ?

गोयमा ! तिसु विसुद्धलेसासु होज्जा, तं जहा—तेउलेसाए, पम्हलेसाए, सुक्कलेसाए ।

[१३४ प्र] भगवन् ! यदि वह सलेश्य होता है तो कितनी लेश्याओ मे होता है ?

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०१

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भाग ७, पृ. ३३८९

[१३४ उ.] गौतम ! वह तीन विशुद्ध लेश्याओ मे होता है, यथा—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में।

१३५. एवं बउसस्स वि।

[१३५] इसी प्रकार बकुश के विषय मे भी कहना चाहिए।

१३६. एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[१३६] प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे भी यही वक्तव्यता जाननी चाहिए।

१३७. कसायकुसीले० पुच्छा।

गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

[१३७ प्र] भगवन् ! कषायकुशील सलेश्य होता है, अथवा अलेश्य होता है ?

[१३७ उ] गौतम ! वह सलेश्य होता है, अलेश्य नही होता है।

१३८. जति सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कतिसु लेसासु होज्जा ?

गोयमा ! छसु लेसासु होज्जा, तं जहा - कण्हलेसाए जाव सुक्कलेसाए।

[१३८ प्र] भगवन् ! यदि वह सलेश्य होता है, तो कितनी लेश्याओ मे होता है ?

[१३८ उ] गौतम ! वह छहो लेश्याओ मे होता है, यथा कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या मे।

१३९ नियंठे ण भंते !० पुच्छा।

गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा।

[१३९ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ सलेश्य होता है या अलेश्य होता है ?

[१३९ उ] गौतम ! वह सलेश्य होता है, अलेश्य नही होता है।

१४० जदि सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कतिसु लेसासु होज्जा ?

गोयमा ! एक्काए सुक्कलेसाए होज्जा।

[१४० प्र.] भगवन् ! यदि निर्ग्रन्थ सलेश्य होता है, तो उसमे कितनी लेश्याए पाई जाती हैं ?

[१४० उ.] गौतम ! निर्ग्रन्थ एकमात्र शुक्ललेश्या में होता है।

१४१. सिणाए० पुच्छा।

गोयमा ! सलेस्से वा होज्जा, अलेस्से वा होज्जा।

[१४१ प्र.] भगवन् ! स्नातक सलेश्य होता है अथवा अलेश्य होता है ?

[१४१ उ.] गौतम ! वह सलेश्य भी होता है, और अलेश्य भी होता है।

१४२. जति सलेस्से होज्जा से णं भंते ! कतिसु लेसासु होज्जा ?

गोयमा ! एगाए परमसुक्काए लेसाए होज्जा [दार १९]।

[१४२ प्र.] भगवन् ! यदि स्नातक सलेश्य होता है, तो वह कितनी लेश्याओ मे होता है ?

[१४२ उ] गौतम ! वह एक परम शुक्ललेश्या मे होता है। [उन्नीसवां द्वार]

विवेचन—पंचविध निर्ग्रन्थों में लेश्या का रहस्य—पुलाक, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील, ये तीनों तीन विशुद्ध लेश्याओं में होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भावलेश्या की अपेक्षा ये तीनों तीन प्रशस्त लेश्याओं (तेजो, पद्म और शुक्ल) में होते हैं।

कषायकुशील के विषय में मूलपाठ में छह लेश्याएँ बताई हैं। वृत्तिकार का मन्तव्य इस सम्बन्ध में यह है कि इनमें कृष्णादि तीन लेश्याएँ तो मात्र द्रव्यलेश्याएँ हैं, किन्तु इनमें द्रव्यलेश्या भी छह और भावलेश्या भी छह समझनी चाहिए। इनमें द्रव्य और भावरूप छहों लेश्याएँ किस प्रकार घटित होती हैं, इसका स्पष्टीकरण भगवती, प्रथम शतक के प्रथम और द्वितीय उद्देशक के विवेचन में किया गया है।

स्नातक में एकमात्र परम शुक्लध्यान बताया गया है, उसका आशय यह है कि शुक्लध्यान के तीसरे भेद के समय ही एक परम शुक्ललेश्या होती है, दूसरे समय में तो उसमें शुक्ललेश्या ही होती है, किन्तु वह शुक्ललेश्या दूसरे जीवों की शुक्ललेश्या की अपेक्षा परम शुक्ललेश्या होती है।[1]

बीसवाँ परिणामद्वार : वर्धमानादि परिणामों की प्ररूपणा

१४३. पुलाए णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, हायमाणपरिणामे होज्जा, अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे वा होज्जा, हायमाणपरिणामे वा होज्जा, अवट्ठियपरिणामे वा होज्जा।

[१४३ प्र.] भगवन् ! पुलाक, वर्द्धमानपरिणामी होता है, हीयमानपरिणामी होता है अथवा अवस्थितपरिणामी होता है ?

[१४३ उ.] वह वर्द्धमानपरिणामी भी होता है, हीयमाणपरिणामी भी और अवस्थितपरिणामी भी होता है ?

१४४. एवं जाव कसायकुसीले।

[१४४] इसी प्रकार यावत् कषायकुशील तक जानना चाहिए।

१४५. नियंठे० पुच्छा।

गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, नो हायमाणपरिणामे होज्जा, अवट्ठियपरिणामे वा होज्जा।

[१४५ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ किस परिणाम वाला होता है ? इत्यादि पृच्छा।

[१४५ उ.] गौतम ! वह वर्द्धमान और अवस्थित परिणाम वाला होता है, किन्तु हीयमान-परिणामी नहीं होता।

---

१. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९०२

१४६. एवं सिणाए वि।

[१४६] इसी प्रकार स्नातक के विषय मे भी जानना चाहिए।

१४७. [१] पुलाए ण भंते ! केवतियं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्कं समयं, उक्कोसेण अंतोमुहुत्तं।

[१४७-१ प्र] भगवन् ! पुलाक कितने काल तक वर्द्धमानपरिणाम मे होता है ?

[१४७-१ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक वर्द्धमानपरिणामी होता है।

[२] केवतियं काल हायमाणपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्क समय, उक्कोसेण अंतोमुहुत्त।

[१४७-२ प्र] भगवन् ! वह कितने काल तक हीयमानपरिणामी होता है ?

[१४७-२ उ] गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक होता है।

[३] केवइय काल अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेण सत्त समया।

[१४७-३ प्र] भगवन् ! वह कितने काल तक अवस्थितपरिणामी होता है ?

[१४७-३ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट सात समय तक होता है।

१४८. एवं जाव कसायकुसीले।

[१४८] इसी प्रकार कषायकुशील तक पूर्ववत् जानना चाहिए।

१४९. [१] नियंठे ण भंते ! केवतियं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[१४९-१ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितने काल तक वर्द्धमानपरिणामी होता है ?

[१४९-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक (वर्द्धमान-परिणामी होता है।)

[२] केवतियं काल अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्क समय, उक्कोसेण अंतोमुहुत्त।

[१४९-२ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितने काल तक अवस्थितपरिणामी होता है ?

[१४९-२ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (अवस्थित-परिणामी रहता है।)

१५०. [१] सिणाए ण भंते ! केवतिय काल वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[१५०-१ प्र.] भगवन् ! स्नातक कितने काल तक वर्द्धमानपरिणामी होता है ?

[१५०-१ उ.] गौतम ! वह जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (वर्द्धमानपरिणामी रहता है।)

[२] केवतियं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। [दारं २०]।

[१५०-२ प्र.] भगवन् ! स्नातक कितने काल तक अवस्थितपरिणामी रहता है ?

[१५०-२ उ.] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटिवर्ष तक अवस्थितपरिणामी रहता है। [बीसवाँ द्वार]

विवेचन—परिणाम : प्रकार, स्वरूप और कालावधि—चारित्रसम्बन्धी भावो को यहाँ 'परिणाम' कहा गया है। वे तीन प्रकार के माने जाते हैं—(१) वर्द्धमानपरिणाम, (२) हीयमानपरिणाम और (३) अवस्थितपरिणाम। वर्द्धमानपरिणाम का अर्थ है सयमशुद्धि की उत्कर्षता (वृद्धि) होना। हीयमानपरिणाम का आशय है—सयमशुद्धि की अपकर्षता (हीनता) होना और अवस्थितपरिणाम उसे कहते हैं, जिसमे सयमशुद्धि स्थिर रहे, उसमे न्यूनाधिकता (घट-बढ) न हो।

पुलाक से लेकर कषायकुशील तक तीनो ही प्रकार के परिणाम पाए जाते है। निर्ग्रन्थ और स्नातक, ये दोनो हीयमानपरिणाम वाले नही होते। निर्ग्रन्थ के परिणामो मे हीनता आती है तो वह 'कषायकुशील' कहलाता है। स्नातक के परिणामो मे हीनता होने का कारण ही नही है, क्योकि वहाँ राग, द्वेष, मोह और घातिकर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है।

पुलाक के परिणाम वृद्धिगत हो रहे हो, तब यदि वे कषाय से बाधित हो जाएँ तो वह एकादि समय तक वर्द्धमानपरिणाम का अनुभव करता है, इसलिए उसका काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होता है। इसी प्रकार बकुश, प्रतिसेवनाकुशील एव कषायकुशील के विषय मे समझना चाहिए। बकुशादि के जघन्य एक समय वर्द्धमानपरिणाम मरण की अपेक्षा भी घटित हो सकते है, लेकिन पुलाकपने मे मरण नही होता। मरण के समय पुलाक, कषायकुशीलादि रूप मे परिणत हो जाता है। पूर्वसूत्र मे पुलाक के मरण का कथन किया, वह भूतभाव की अपेक्षा से समझना चाहिए।

निर्ग्रन्थ जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक वर्द्धमानपरिणाम वाला होता है, जब केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब उसके परिणामान्तर हो जाते हैं। निर्ग्रन्थ के अवस्थितपरिणाम जघन्य एक समय, मरण की अपेक्षा घटित हो सकते है।

स्नातक जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक वर्द्धमानपरिणाम वाला होता है, क्योकि शैलेशी-अवस्था मे वर्द्धमानपरिणाम अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं। स्नातक के अवस्थितपरिणाम का काल भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद वह अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थित परिणाम वाला होकर फिर शैलेशी-अवस्था को स्वीकार करता है, इस अपेक्षा से यह काल घटित हो सकता है। अवस्थितपरिणाम का उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटिवर्ष इसलिए होता है कि पूर्वकोटिवर्ष की आयुवाले पुरुष को जन्म से जघन्य नौ वर्ष बीत जाने पर केवलज्ञान उत्पन्न हो तो नौ वर्ष न्यून

पूर्वकोटिवर्ष-पर्यन्त अवस्थितपरिणाम वाला होकर शैलेशी-अवस्था की प्राप्ति-पर्यन्त विचरण करता है और शैलेशी अवस्था मे वह वर्द्धमानपरिणामी हो जाता है।[1]

इक्कीसवां द्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में कर्मप्रकृति-बंध-प्ररूपणा

१५१. पुलाए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ बधति ?

गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बधति ।

[१५१ प्र] भगवन् ! पुलाक कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधता है ?

[१५१ उ] गौतम ! वह आयुष्यकर्म को छोडकर सात कर्मप्रकृतियाँ बाधता है।

१५२. बउसे० पुच्छा ।

गोयमा । सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा । सत्त बंधमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बधति, अट्ठ बंधमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ बधति ।

[१५२ प्र] भगवन् ! बकुश कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है ?

[१५२ उ.] गौतम ! वह सात अथवा आठ कर्मप्रकृतियाँ बांधता है। यदि सात कर्मप्रकृतियाँ बाधता है, तो आयुष्य को छोडकर शेष सात कर्मप्रकृतियाँ बांधता है और यदि आयुष्यकर्म बाधता है तो सम्पूर्ण आठ कर्मप्रकृतियो को बाधता है।

१५३ एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।

[१५३] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे भी समझना चाहिए।

१५४. कसायकुसीले० पुच्छा ।

गोयमा ! सत्तविहबधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा । सत्त बंधमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बधति, अट्ठ बधमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ बंधति, छ बंधमाणे आउय-मोहणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ बधति ।

[१५४ प्र] भगवन् ! कषायकुशील कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधता है ?

[१५४ उ] गौतम ! वह सात, आठ या छह कर्मप्रकृतियाँ बाधता है। सात बांधता हुआ आयुष्य के अतिरिक्त शेष सात कर्मप्रकृतियाँ बाधता है। आठ बाधता हुआ (आयुष्यकर्मसहित) परिपूर्ण आठ कर्मप्रकृतियाँ बाधता है और छह बाधता हुआ आयुष्य और मोहनीय कर्म को छोडकर शेष छह कर्मप्रकृतियाँ बाधता है।

१५५. नियंठे० पुच्छा ।

गोयमा ! एगं वेदणिज्जं कम्मं बंधति ।

[१५५ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधता है ?

[१५५ उ] गौतम ! वह एकमात्र वेदनीयकर्म बाधता है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०२-९०३

(ख) श्रीमद्‌भगवतीसूत्रम् चतुर्थखण्ड (गुजराती अनुवाद), पृ २५३-५४

१५६. सिणाए० पुच्छा।

गोयमा ! एगविहबंधए वा, अबंधए वा। एगं बंधमाणे एगं वेदणिज्जं कम्मं बंधति। [दारं २१]।

[१५६ प्र] भगवन् ! स्नातक कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधता है ?

[१५६ उ] गौतम ! वह एक कर्मप्रकृति बांधता है, अथवा अबन्धक होता है। एक कर्मप्रकृति बांधता है तो वेदनीयकर्म बांधता है। [इक्कीसवाँ द्वार]

विवेचन—निष्कर्ष कर्मप्रकृतियाँ आठ है—(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

पुलाक अवस्था मे आयुष्यकर्म का बन्ध नही होता, क्योकि उस अवस्था मे उसके आयुष्य-कर्म-बन्ध के योग्य अध्यवसाय नही होते हैं।

आयुष्य के दो भाग बीत जाने पर तीसरे भाग मे आयुष्य का बन्ध होता है, इसलिए आयुष्य के पहले के दो भागो मे आयुष्य का बन्ध नही होता। अतएव बकुश आदि सात या आठ कर्मप्रकृतियो को बांधते है। कषायकुशील सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान मे आयुष्य नहीं बांधता है, क्योकि आयुष्य का बध सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक ही होता है। कषायकुशील मे बादरकषायों के उदय का अभाव होने से वह मोहनीयकर्म नही बांधता। इस दृष्टि से कहा गया है कि कषायकुशील आयु और मोहनीय कर्म को छोडकर शेष छह कर्मप्रकृतियाँ बांधता है। निर्ग्रन्थ योगनिमित्तक एकमात्र वेदनीयकर्म को ही बांधता है, क्योकि कर्मबन्ध के हेतुओ मे उसके केवल योग का ही सद्भाव होता है। स्नातक के अयोगी गुणस्थान मे कर्मबन्ध के हेतु का अभाव होने से वह अबन्धक होता है।[1]

बाईसवाँ द्वार : निर्ग्रन्थों में कर्मप्रकृति-वेदन-निरूपण

१५७. पुलाए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेति ?

गोयमा ! नियमं अट्ठ कम्मप्पगडीओ वेदेति।

[१५७ प्र] भगवन् ! पुलाक कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

[१५७ उ] गौतम ! वह नियम से आठो कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है।

१५८. एवं जाव कसायकुसीले।

[१५८] इसी प्रकार कषायकुशील तक कहना चाहिए।

१५९. नियंठे० पुच्छा।

गोयमा ! मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ वेदेति।

[१५९ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

[१५९ उ] गौतम ! वह मोहनीयकर्म को छोडकर सात कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०३-९०४
(ख) श्रीमद्भगवतीसूत्रम् (गुजराती अनुवाद) चतुर्थखण्ड, पृ २५४

१६०. सिणाए णं भंते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! वेदणिज्जाऽऽउय-नाम-गोयाओ चत्तारि कम्मप्पगडीओ वेदेति । [दारं २२] ।

[१६० प्र.] भगवन् ! स्नातक कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है ?

[१६० उ.] गौतम ! वह वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र, इन चार कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है । [बाईसवां द्वार]

विवेचन—निष्कर्ष—पुलाक से लेकर कषायकुशील तक आठों कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं । निर्ग्रन्थ मोहनीय को छोड़कर सात कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं, क्योंकि उनका मोहनीय या तो उपशान्त हो जाता है या क्षीण हो जाता है । चार घातिकर्मों का क्षय हो जाने से स्नातक वेदनीयादि चार अघातिकर्मों का ही वेदन करते हैं ।[1]

तेईसवाँ कर्मोदीरणाद्वार : कर्मप्रकृति-उदीरणा-प्ररूपणा

१६१. पुलाए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ उदीरेइ ?

गोयमा ! आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेइ ।

[१६१ प्र.] भगवन् ! पुलाक कितनी कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करता है ?

[१६१ उ.] गौतम ! वह आयुष्य और वेदनीय के सिवाय शेष छह कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करता है ।

१६२. बउसे० पुच्छा ।

गोयमा ! सत्तविहउदीरए वा, अट्ठविहउदीरए वा, छव्विहउदीरए वा । सत्त उदीरेमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ उदीरेइ, अट्ठ उदीरेमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ उदीरेइ, छ उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेइ ।

[१६२ प्र.] भगवन् ! बकुश कितनी कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करता है ?

[१६२ उ.] गौतम ! वह सात, आठ या छह कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करता है । सात की उदीरणा करता हुआ आयुष्य को छोड़कर सात कर्मप्रकृतियों को उदीरता है, आठ की उदीरणा करता है तो परिपूर्ण आठ कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करता है तथा छह की उदीरणा करता है तो आयुष्य और वेदनीय को छोड़कर छह कर्मप्रकृतियों की उदीरणा करता है ।

१६३. पडिसेवणाकुसीले एवं चेव ।

[१६३] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय में जानना चाहिए ।

१६४. कसायकुसीले० पुच्छा ।

गोयमा ! सत्तविहउदीरए वा, अट्ठविहउदीरए वा छव्विहउदीरए वा, पंचविहउदीरए वा । सत्त उदीरेमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ उदीरेइ, अट्ठ उदीरेमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ

---

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ. ३४०६

कम्मप्पगडीओ उदीरेइ, छ उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेइ, पंच उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मप्पगडीओ उदीरेइ।

[१६४ प्र.] कषायकुशील की उदीरणा के विषय मे प्रश्न है।

[१६४ उ.] गौतम ! वह सात, आठ, छह या पाच कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है। सात की उदीरणा करता है तो आयुष्य को छोडकर सात कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है, आठ की उदीरणा करता है तो परिपूर्ण आठ कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है और छह की उदीरणा करता है तो आयुष्य और वेदनीय का छोडकर शेष छह कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है तथा पाच की उदीरणा करता है तो आयुष्य, वेदनीय और मोहनीय को छोडकर, शेष पाच कर्मप्रकृतियो को उदीरणा करता है।

१६५. नियंठे० पुच्छा।

गोयमा ! पचविहउदीरए वा, दुविहउदीरए वा। पच उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मप्पगडीओ उदीरेइ, दो उदीरेमाणे नाम च गोय च उदीरेइ।

[१६५ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितनी कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है ?

[१६५ उ.] गौतम ! वह या तो पाच कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है, अथवा दो कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है। जब वह पाच की उदीरणा करता है तब आयुष्य, वेदनीय और मोहनीय को छोड़कर शेष पाच कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है। दो की उदीरणा करता है तो नाम और गोत्र कर्म की उदीरणा करता है।

१६६. सिणाए० पुच्छा।

गोयमा ! दुविहउदीरए वा, अणुदीरए वा। दो उदीरेमाणे नाम च गोयं च उदीरेइ। [दारं २३]।

[१६६ प्र.] भगवन् ! स्नातक कितनी कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है ?

[१६६ उ] गौतम ! या तो वह दो की उदीरणा करता है अथवा बिलकुल उदीरणा नही करता। जब दो की उदीरणा करता है तो नाम और गोत्र कर्म की उदीरणा करता है। [तेईसवाँ द्वार]

विवेचन—कौन कितने कर्मों की उदीरणा करता है ?—पुलाक आयुष्य और वेदनीय कर्म की उदीरणा नही करता, क्योकि उसके उदीरणा करने योग्य तथाविध अध्यवसाय नही होते, किन्तु पहले वह इन दोनो कर्मों की उदीरणा करके बाद मे पुलाकत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार आगे जिन-जिन कर्मप्रकृतियो की उदीरणा का निषेध किया गया है, उन-उन कर्मप्रकृतियो की पहले उदीरणा करके पीछे बकुशादित्व को प्राप्त करता है। स्नातक सयोगी अवस्था मे नाम और गोत्र कर्म की उदीरणा करता है तथा आयुष्य और वेदनीय कर्म की उदीरणा तो सातवे गुणस्थान मे ही बन्द हो जाती है। अयोगी अवस्था मे तो वह अनुदीरक ही होता है।[1]

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०४
(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ. ३४०९

चौवीसवाँ उपसम्पद्-जहद् द्वार : स्वस्थानत्याग-परस्थानसम्प्राप्ति-निरूपण

१६७. पुलाए णं भंते ! पुलायत्तं जहमाणे किं जहति ? किं उवसंपज्जइ ?

गोयमा ! पुलायत्तं जहति; कसायकुसीलं वा असंजम वा उवसंपज्जइ ।

[१६७ प्र] भगवन् ! पुलाक, पुलाकपन को छोडता हुआ क्या छोडता है और क्या प्राप्त करता है ?

[१६७ उ] गौतम ! वह पुलाकपन का त्याग करता है और कषायकुशीलपन या असयम को प्राप्त करता है ।

१६८. बउसे णं भंते ! बउसत्तं जहमाणे किं जहति ? किं उवसंपज्जइ ?

गोयमा ! बउसत्तं जहति; पडिसेवणाकुसीलं वा, कसायकुसील वा, असजमं वा, संजमासंजमं वा उवसंपज्जइ ।

[१६८ प्र] भगवन् ! बकुश बकुशत्व का त्याग करता हुआ क्या छोड़ता है और क्या प्राप्त करता है ?

[१६८ उ] गौतम ! वह बकुशत्व का त्याग करता है और प्रतिसेवनाकुशीलत्व, कषाय-कुशीलत्व, असयम या सयमासयम को प्राप्त करता है ।

१६९. पडिसेवणाकुसीले ण भंते ! पडिसेवणाकुसीलत्त जहमाणे० पुच्छा ।

गोयमा ! पडिसेवणाकुसीलत्त जहति; बउस वा, कसायकुसीलं वा, असंजमं वा, सजमासंजमं वा उवसंपज्जइ ।

[१६९ प्र] भगवन् ! प्रतिसेवनाकुशील प्रतिसेवनाकुशीलत्व को छोडता हुआ क्या छोड़ता है और क्या पाता है ?

[१६९ उ] गौतम ! वह प्रतिसेवनाकुशीलत्व को छोडता है और बकुशत्व, कषायकुशीलत्व असयम या सयमासयम को पाता है ।

१७०. कसायकुसीले० पुच्छा ।

गोयमा ! कसायकुसीलत्तं जहइ; पुलाय वा, बउसं वा, पडिसेवणाकुसीलं वा, नियंठं वा, अस्संजमं वा, संजमासंजमं वा उवसपज्जइ ।

[१७० प्र] भगवन् ! कषायकुशील, कषायकुशीलत्व को छोडता हुआ क्या त्यागता है और क्या पाता है ?

[१७० उ] गौतम ! वह कषायकुशीलत्व को छोडता है और पुलाकत्व, बकुशत्व, प्रतिसेवनाकुशीलत्व, निर्ग्रन्थत्व, असयम अथवा सयमासयम को प्राप्त करता है ।

१७१. णियंठे० पुच्छा ।

गोयमा ! नियंठत्तं जहति; कसायकुसीलं वा, सिणायं वा, अस्संजमं वा उवसंपज्जइ ।

[१७१ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थता का त्याग करता हुआ क्या छोडता है और क्या प्राप्त करता है ?

[१७१ उ] **गौतम** ! वह निर्ग्रन्थता को छोडता है और कषायकुशीलत्व, स्नातकत्व या असयम को प्राप्त करता है ।

१७२. सिणाए० पुच्छा ।

गोयमा ! सिणायत्त जहति; सिद्धिगति उवसंपज्जइ । [दार २४] ।

[१७२ प्र] भगवन् ! स्नातक, स्नातकत्व का त्याग करता हुआ क्या छोडता है और क्या प्राप्त करता है ?

[१७२ उ] गौतम ! स्नातक, स्नातकत्व को छोडता है और सिद्धगति को प्राप्त करता है । [चौबीसवाँ द्वार]

विवेचन—कौन क्या त्यागता है, क्या प्राप्त करता है ?—पुलाक पुलाकत्व को छोडकर उसके तुल्य सयमस्थानो के सद्भाव से कषायकुशीलत्व को प्राप्त करता है । इसी प्रकार जिस सयत के जैसे सयमस्थान होते है, वह उसी भाव को प्राप्त होता है, किन्तु कषायकुशील अपने समान सयमस्थानभूत पुलाकादि भावो को प्राप्त करते हैं और अविद्यमान समान सयमस्थान रूप निर्ग्रन्थभाव को प्राप्त करते हैं । निर्ग्रन्थ कषायकुशीलभाव या स्नातकभाव को प्राप्त करते है और स्नातक तो सिद्धगति को ही प्राप्त करते हैं ।

निर्ग्रन्थ उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी करते हैं । उपशमश्रेणी करने वाले निर्ग्रन्थ श्रेणी से गिरते हुए कषायकुशीलता प्राप्त करते है और श्रेणी के शिखर पर मरण कर देवरूप से उत्पन्न होते हुए असयत होते हैं, किन्तु सयतासयत (देशविरत) नही होते । क्योकि देवो मे सयतासयतत्व नही होता । यद्यपि निर्ग्रन्थ श्रेणी से गिरकर सयतासयत भी होते है, परन्तु यहाँ उसकी विवक्षा नही की गई है, क्योकि श्रेणी से गिर कर वह सीधा सयतासयत नही होता । किन्तु कषायकुशील होकर सयतासयत होता है । स्नातक स्नातकत्व को छोडकर सीधे मोक्ष मे ही जाते है ।[1]

पच्चीसवाँ संज्ञाद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में संज्ञाओं की प्ररूपणा

१७३. पुलाए ण भंते ! कि सण्णोवउत्ते होज्जा, नोसण्णोवउत्ते होज्जा ।

गोयमा ! णोसण्णोवउत्ते होज्जा ।

[१७३ प्र.] भगवन् ! पुलाक सज्ञोपयुक्त (आहारादि सज्ञायुक्त) होता है अथवा नोसज्ञोपयुक्त (आहारादि-सज्ञा से रहित) होता है ?

[१७३ उ.] गौतम ! वह सज्ञोपयुक्त नही होना, नोसज्ञोपयुक्त होता है ।

१७४. बउसे ण भते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! सण्णोवउत्ते वा होज्जा, नोसण्णोवउत्ते वा होज्जा ।

[१७४ प्र.] भगवन् ! बकुश सज्ञोपयुक्त होता है अथवा नोसज्ञोपयुक्त होता है ?

[१७४ उ.] गौतम ! वह सज्ञोपयुक्त भी होता है और नोसज्ञोपयुक्त भी होता है ।

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०४

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४११-१२

१७५. एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।

[१७५] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे भी समझना चाहिए ।

१७६. कसायकुसीले वि ।

[१७६] कषायकुशील के सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१७७. *नियंठे सिणाए य जहा पुलाए* [दारं २५] ।

[१७७] निर्ग्रन्थ और स्नातक को पुलाक के समान नोसंज्ञोपयुक्त कहना चाहिए ।
[पच्चीसवाँ द्वार]

विवेचन—संज्ञोपयुक्त-नोसंज्ञोपयुक्त : स्वरूप और विश्लेषण—सज्ञा का अर्थ यहाँ आहार-भय-मैथुन-परिग्रह सज्ञा है, उसमे उपयुक्त अर्थात् आहारादि मे आसक्ति वाला सज्ञोपयुक्त होता है, जबकि आहारादि का उपभोग करने पर भी उनमे आसक्ति रहित जीव सज्ञोपयुक्त कहलाता है । पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक नोसज्ञोपयुक्त होते हैं, क्योकि उनको आहारादि मे आसक्ति नही होती । बकुश, प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील दोनो ही प्रकार के होते हैं। यहाँ शंका होती है कि निर्ग्रन्थ और स्नातक तो वीतराग होने से नोसज्ञोपयुक्त ही होते हैं, किन्तु पुलाक सराग होने से नोसज्ञोपयुक्त कैसे हो सकता है ? इसका समाधान यह है कि सराग होने पर भी आसक्तिरहितता सर्वथा नही होती, ऐसी बात नही है । बकुशादि सराग होने पर भी सज्ञा (आसक्ति)-रहित बताए गए है । चूर्णिकार के मतानुसार नोसज्ञा का अर्थ है—ज्ञानसज्ञा । इस दृष्टि से पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक नोसज्ञोपयुक्त हैं, अर्थात् ज्ञानप्रधान उपयोग वाले हैं, किन्तु आहारादि सज्ञोपयुक्त नही होते । बकुशादि तो नोसज्ञोपयुक्त और सज्ञोपयुक्त, दोनो प्रकार के होते हैं, क्योकि उनके इसी प्रकार के सयमस्थानो का सद्भाव होता है ।[1]

छब्बीसवाँ आहारद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में आहारक-अनाहारक-निरूपण

१७८. पुलाए णं भंते ! किं आहारए होज्जा, अणाहारए होज्जा ?

गोयमा ! आहारए होज्जा, नो अणाहारए होज्जा ।

[१७८ प्र] भगवन् ! पुलाक आहारक होता है अथवा अनाहारक होता है ?

[१७८ उ] गौतम ! वह आहारक होता है, अनाहारक नही होता है ।

१७९. एवं जाव नियंठे ।

[१७९] इसी प्रकार निर्ग्रन्थ तक कहना चाहिए ।

१८०. सिणाए० पुच्छा ।

गोयमा ! आहारए वा होज्जा, अणाहारए वा होज्जा । [दारं २६] ।

[१८० प्र] भगवन् ! स्नातक आहारक होता है, अथवा अनाहारक होता है ?

[१८० उ] गौतम ! वह आहारक भी होता है और अनाहारक भी होता है ।

[छब्बीसवाँ द्वार]

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०५

विवेचन — आहारक कौन, अनाहारक कौन ?—पुलाक से लेकर निर्ग्रन्थ तक मुनियो के विग्रह-गति आदि अनाहारकपन के कारण का अभाव होने से वे आहारक ही होते है। स्नातक केवलिसमुद्घात के तृतीय, चतुर्थ और पंचम समय मे तथा अयोगी-अवस्था मे अनाहारक होते हैं, शेष समय मे आहारक होते हैं।[1]

सत्ताईसवाँ भवद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में भवग्रहण-प्ररूपणा

१८१. पुलाए ण भंते ! कति भवग्गहणाइं होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं उक्कोसेणं तिन्नि।

[१८१ प्र] भगवन् ! पुलाक कितने भव ग्रहण करता है ?

[१८१ उ] गौतम ! वह जघन्य एक और उत्कृष्ट तीन भव ग्रहण करता है।

१८२. बउसे० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं, उक्कोसेणं अट्ठ।

[१८२ प्र] भगवन् ! बकुश कितने भव ग्रहण करता है ?

[१८२ उ] गौतम ! वह जघन्य एक और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

१८३. एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[१८३] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील का कथन है।

१८४. एवं कसायकुसीले वि।

[१८४] कषायकुशील की वक्तव्यता भी इसी प्रकार है।

१८५. नियंठे जहा पुलाए।

[१८५] निर्ग्रन्थ का कथन पुलाक के समान है।

१८६. सिणाए० पुच्छा।

गोयमा ! एक्कं। [दारं २७]।

[१८६ प्र] भगवन् ! स्नातक कितने भव ग्रहण करता है ?

[१८६ उ.] गौतम ! वह एक भव ग्रहण करता है। [सत्ताईसवाँ द्वार]

विवेचन — कौन कितने भव ग्रहण करता है ?—पुलाक जघन्यत: एक भव मे पुलाक होकर कषायकुशील आदि किसी भी सयतत्व को एक बार या अनेक बार उसी भव मे या अन्य भव मे करके सिद्ध होता है और उत्कृष्ट देवादिभव मे अन्तरित (बीच मे देवादि भव) करते हुए तीसरे भव मे पुलाकत्व को प्राप्त कर सकता है। बकुश, प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील के लिये जघन्य एक भव और उत्कृष्ट आठ भव कहे हैं, इसका आशय यह है कि कोई साधक एक भव मे बकुशत्व, प्रतिसेवनाकुशीलत्व या कषायकुशीलत्व को प्राप्त करके सिद्ध होता है कि कोई साधक एक भव मे बकुशादित्व प्राप्त करके भवान्तर मे बकुशादित्व को प्राप्त किए बिना ही सिद्ध होता

१. भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९०५

है। अतः बकुश आदि के लिए जघन्य एक भव और उत्कृष्ट आठ भव कहे हैं, क्योंकि उत्कृष्टतः आठ भवों तक चारित्र की प्राप्ति होती है। इनमें से कोई साधक तो आठ भव बकुशपन और उनमें अन्तिम भव सकषायत्वादियुक्त बकुशपन से पूरा करता है और कोई प्रत्येक भव प्रतिसेवनाकुशीलत्वादियुक्त बकुशपन से पूरा करता है और फिर उसी भव में मोक्ष चला जाता है।[1]

अट्ठाईसवाँ आकर्षद्वार : एकभव-नानाभवग्रहणीय आकर्ष-प्ररूपणा

१८७. पुलागस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवतिया आगरिसा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्को, उक्कोसेणं तिण्णि।

[१८७ प्र] भगवन् ! पुलाक के एकभव-ग्रहण-सम्बन्धी आकर्ष (चारित्र-प्राप्ति) कितने कहे हैं ?

[१८७ उ] गौतम ! उसके जघन्य एक और उत्कृष्ट तीन आकर्ष होते हैं।

१८८. बउसस्स ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण एक्को, उक्कोसेण सयग्गसो।

[१८८ प्र] भगवन् ! बकुश के एक भव में कितने आकर्ष होते हैं ?

[१८८ उ] गौतम ! जघन्य एक और उत्कृष्ट सैकड़ों (शत-पृथक्त्व) आकर्ष होते हैं।

१८९. एवं पडिसेवणाकुसीले वि, कसायकुसीले वि।

[१८९] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील के विषय में भी जानना चाहिए।

१९०. णियंठस्स ण० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण एक्को, उक्कोसेण दोन्नि।

[१९० प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ के एक भव में कितने आकर्ष होते हैं ?

[१९० उ] गौतम ! जघन्य एक और उत्कृष्ट दो आकर्ष होते हैं।

१९१. सिणायस्स ण० पुच्छा।

गोयमा ! एक्को।

[१९१ प्र] भगवन् ! स्नातक के एक भव में कितने आकर्ष होते हैं ?

[१९१ उ] गौतम ! उसके एक ही आकर्ष होता है।

१९२. पुलागस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवतिया आगरिसा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेण दोण्णि, उक्कोसेणं सत्त।

[१९२ प्र.] भगवन् ! पुलाक के नाना-भव-ग्रहण-सम्बन्धी आकर्ष कितने होते हैं ?

[१९२ उ] गौतम ! जघन्य दो और उत्कृष्ट सात आकर्ष होते हैं।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९०५

१९३. बउसस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं दोन्नि, उक्कोसेणं सहस्ससो।

[१९३ प्र.] भगवन् ! बकुश के अनेक-भव-ग्रहण-सम्बन्धी आकर्ष कितने होते है ?

[१९३ उ.] गौतम ! जघन्य दो और उत्कृष्ट सहस्रो (सहस्र-पृथक्त्व) आकर्ष होते हैं।

१९४. एवं जाव कसायकुसीलस्स।

[१९४] इसी प्रकार कषायकुशील तक कहना चाहिए।

१९५. नियंठस्स णं० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण दोन्नि, उक्कोसेण पंच।

[१९५ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ के नाना-भव-सम्बन्धी कितने आकर्ष होते है ?

[१९५ उ.] गौतम ! जघन्य दो और उत्कृष्ट पाच आकर्ष होते है।

१९६. सिणायस्स० पुच्छा।

गोयमा ! नत्थि एक्को वि। [दारं २८]।

[१९६ प्र.] भगवन् ! स्नातक के अनेक-भव-सम्बन्धी आकर्ष कितने होते है ?

[१९६ उ.] गौतम ! एक भी आकर्ष नही होता। [अट्ठाईसवाँ द्वार]

विवेचन—एकभवीय और अनेकभवीय आकर्ष—आकर्ष यहाँ पारिभाषिक शब्द है। उसका अर्थ है—चारित्र की प्राप्ति। प्रश्नो का आशय यह है कि पुलाकादि के एक भव या अनेक भवो मे कितने आकर्ष होते हैं, अर्थात्—एक भव या अनेक भवो मे पुलाक आदि सयम (चारित्र) कितनी बार आ सकता है ?

पुलाक के जघन्य एक, उत्कृष्ट तीन आकर्ष कहे हैं, अर्थात् एक भव मे पुलाकचारित्र तीन बार आ सकता है। बकुश के जघन्य एक और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व आकर्ष होते है। निर्ग्रन्थ के एक भव मे जघन्य एक आकर्ष और दो बार उपशमश्रेणी करने से उत्कृष्ट दो आकर्ष होते हैं।

पुलाक के एक भव मे एक और दूसरे भव मे पुन एक, इस प्रकार अनेक भवो मे जघन्य दो आकर्ष होते हैं और उत्कृष्ट सात आकर्ष होते हैं। इनमे से एक भव मे उत्कृष्ट तीन आकर्ष होते है। प्रथम भव मे एक आकर्ष और दूसरे दो भवो मे तीन-तीन आकर्ष होते है। इत्यादि विकल्प से सात आकर्ष होते हैं। बकुशपन के उत्कृष्ट आठ भव होते हैं। इनमे से प्रत्येक भव मे उत्कृष्ट शतपृथक्त्व आकर्ष हो सकते हैं। जबकि आठ भवो मे से प्रत्येक भव मे उत्कृष्ट नौ सौ-नौ सौ आकर्ष हो तो उनको आठगुणा करने पर ७२०० आकर्ष होते हैं। इस प्रकार बकुश के अनेकभव की अपेक्षा सहस्र-पृथक्त्व आकर्ष हो सकते है।

निर्ग्रन्थपन के उत्कृष्ट तीन भव होते है। उनमे से प्रथम भव में दो आकर्ष और दूसरे भव मे दो और तीसरे भव मे एक आकर्ष, यो पाच आकर्ष होते हैं। क्षपक निर्ग्रन्थपन का आकर्ष करके सिद्ध होता है। इस प्रकार अनेक भवो मे निर्ग्रन्थपन के पाच आकर्ष होते है। स्नातक तो उसी भव मे सिद्ध हो जाते है। इसलिए उनके अनेक भव और आकर्ष नही होते।[1]

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०५-९०६

कठिन शब्दार्थ—आगरिसा—आकर्ष—चारित्रप्राप्ति। **सयग्गसो**—सैकड़ों, शत-पृथक्त्व। **सहस्सग्गसो**—सहस्रो, सहस्रपृथक्त्व।[1]

उनतीसवाँ कालद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में स्थितिकाल-निरूपण

१९७. पुलाए ण भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[१९७ प्र] भगवन् ! पुलाकत्व काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है।

[१९७ उ] गौतम ! वह जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

१९८ बउसे० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

[१९८ प्र] भगवन् ! बकुशत्व कितने काल तक रहता है ?

[१९८ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटिवर्ष तक रहता है।

१९९. एवं पडिसेवणाकुसीले वि, कसायकुसीले वि।

[१९९] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील के विषय मे भी समझना चाहिए।

२००. नियंठे० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेण अंतोमुहुत्तं।

[२०० प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थत्व कितने काल तक रहता है ?

[२०० उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

२०१. सिणाए० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

[२०१ प्र] भगवन् ! स्नातकत्व कितने काल तक रहता है ?

[२०१ उ] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटिवर्ष तक रहता है।

२०२ पुलाया ण भते ! कालओ केवचिरं होंति ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्क समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

[२०२ प्र] भगवन् ! पुलाक (बहुत) कितने काल तक रहते है ?

[२०२ उ] गौतम ! वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहते है।

२०३. बउसा णं भते !० पुच्छा।

गोयमा ! सव्वद्धं।

[२०३ प्र] भगवन् ! बकुश (बहुत) कितने काल तक रहते हैं ?

[२०३ उ] गौतम ! वे सर्वाद्धा—सर्वकाल रहते है।

---

१ भगवतीसूत्र (हिन्दी विवेचन) भाग ७, पृ. ३४१५-१६

२०४. एवं जाव कसायकुसीला ।

[२०४] इसी प्रकार कषायकुशीलो तक जानना चाहिए ।

२०५. नियठा जहा पुलागा ।

[२०५] निर्ग्रन्थो का कथन पुलाको के समान जानना चाहिए ।

२०६ सिणाया जहा बउसा । [दारं २९] ।

[२०६] स्नातको की वक्तव्यता बकुशो के समान है । [उनतीसवां द्वार]

विवेचन—पुलाकादि भाव कितने काल तक ?—पुलाकत्व को प्राप्त मुनि एक अन्तर्मुहूर्त पूर्ण न हो, तब तक न तो पुलाकत्व से मरते है और न गिरते हैं । अर्थात्—कषायकुशीलपन मे अन्तर्मुहूर्त से पहले जाते नही और पुलाकपन मे मरते ही नही हैं । इसलिए उनका काल अन्तर्मुहूर्त का ही होता है ।

बकुशपन की प्राप्ति होने के साथ ही तुरत मरण सम्भव होने से जघन्य एक समय तक बकुशपन रहता है । यदि पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला सातिरेक आठ वर्ष की वय मे सयम स्वीकार करे तो उसकी अपेक्षा उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि वर्ष होता है । निर्ग्रन्थ का जघन्यकाल एक समय है, क्योकि उपशान्तमोहगुणस्थानवर्ती निग्रन्थ प्रथम समय मे भी मरण को प्राप्त हो सकते है । निर्ग्रन्थ का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त का है, क्योकि निर्ग्रन्थपन इतने काल तक ही रहता है । स्नातक का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त इसलिए है कि आयु के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे केवलज्ञान उत्पन्न होने मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त के बाद वे मोक्ष मे जा सकते है । उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटिवर्ष है ।

काल-परिमाण : एकत्व-बहुत्व सम्बन्धी—पुलाक आदि का एकवचन और बहुवचन सम्बन्धी काल-परिमाण इन सूत्रो मे बताया गया है । एक पुलाक अपने अन्तर्मुहूर्त के अन्तिम समय मे वर्तमान है, उसी समय मे दूसरा मुनि पुलाकपन को प्राप्त करे तब दोनो पुलाको का एक समय मे सद्भाव होता । इस प्रकार अनेक पुलाको (दो पुलाक हो तो भी वे भी अनेक कहलाते हैं) मे जघन्य-काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योकि पुलाक एक समय मे उत्कृष्ट सहस्र-पृथक्त्व (दो हजार से नौ हजार तक) हो सकते है । बहुत हो तो भी उनका काल अन्तर्मुहूर्त होता है । किन्तु एक पुलाक की स्थिति के अन्तर्मुहूर्त से अनेक पुलाको की स्थिति का अन्तर्मुहूर्त बडा होता है । बकुशादि का स्थितकाल तो सर्वकाल होता है, क्योकि वे सदैव रहते हैं ।[1]

तीसवां अन्तरद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में काल के अन्तर का निरूपण

२०७. पुलागस्स णं भंते ! केवतियं कालं अतर होइ ?

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं अणंतं काल—अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

[२०७ प्र.] भगवन् ! (एक) पुलाक का अन्तर कितने काल का होता है ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०६

[२०७ उ.] गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का होता है। (अर्थात्) काल की अपेक्षा—अनन्त अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल का और क्षेत्र की अपेक्षा देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन का अन्तर होता है।

२०८. एवं जाव नियंठस्स।

[२०८] इसी प्रकार निर्ग्रन्थ तक जानना।

२०९. सिणायस्स० पुच्छा।

गोयमा ! नत्थंतरं।

[२०९ प्र.] भगवन् ! स्नातक का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२०९ उ.] गौतम ! उसका अन्तर नही होता।

२१०. पुलागाणं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वासाइं।

[२१० प्र.] भगवन् ! (अनेक) पुलाको का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२१० उ.] गौतम ! उनका अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट संख्यात वर्षों का होता है।

२११. बउसाणं भंते !० पुच्छा।

गोयमा ! नत्थंतरं।

[२११ प्र.] भगवन् ! बकुशो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२११ उ.] गौतम ! उनका अन्तर नहीं होता।

२१२. एवं जाव कसायकुसीलाणं।

[२१२] इसी प्रकार कषायकुशीलो तक का कथन जानना चाहिए।

२१३. नियंठाण० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

[२१३ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[२१३ उ.] गौतम ! उनका अन्तर जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट छह मास का होता है।

२१४. सिणायाणं जहा बउसाणं। [दारं ३०]।

[२१४] स्नातको के अन्तर का कथन बकुशो के कथन के समान जानना चाहिए।

[तीसवाँ द्वार]

विवेचन—अन्तर : काल और क्षेत्र की अपेक्षा से—अन्तर का स्वरूप यह है कि पुलाक आदि पुन. कितने काल पश्चात् पुन. पुलाकत्व को प्राप्त होता है/होते हैं ? पुलाक, पुलाकत्व को छोड़ कर जघन्यत अन्तर्मुहूर्त मे पुन· पुलाक हो सकता है और उत्कृष्टतः अनन्तकाल मे पुलाकत्व

को प्राप्त होता है। वह कालत: अनन्तकाल अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीरूप अन्तर समझना चाहिए तथा क्षेत्रत: देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन का अन्तर जानना चाहिए।

क्षेत्रतः पुद्गलपरावर्तन का स्वरूप—कोई जीव आकाश के प्रत्येक प्रदेश पर मृत्यु को प्राप्त हो। इस प्रकार मरण से जितने काल मे समस्त लोक को व्याप्त करे, उतना काल 'क्षेत्र-पुद्गल-परावर्तन' कहलाता है। यहाँ पुलाक आदि का अन्तर देशोन अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन काल बतलाया है।

बकुश से लेकर कषायकुशील तक एव स्नातक का अन्तर नही होता, क्योकि इनका पतन नही होता, इसलिए इनका अन्तर नही पडता।[1]

इकतीसवां समुद्घातद्वार : समुद्घातों की प्ररूपणा

२१५. पुलागस्स णं भंते ! कति समुग्घाया पन्नत्ता ?

गोयमा ! तिन्नि समुग्घाया पन्नत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणतिय-समुग्घाए।

[२१५ प्र.] भगवन् ! पुलाक के कितने समुद्घात कहे है ?

[२१५ उ] गौतम ! उसके तीन समुद्घात कहे है, यथा—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात।

२१६ बउसस्स णं भंते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! पंच समुग्घाता पन्नत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए जाव तेयासमुग्घाए।

[२१६ प्र] भगवन् ! बकुश के कितने समुद्घात कहे हैं ?

[२१६ उ] गौतम ! उसके पाच समुद्घात कहे हैं, यथा—वेदनासमुद्घात से लेकर तैजससमुद्घात तक।

२१७. एवं पडिसेवणाकुसीले वि।

[२१७] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे समझना चाहिए।

२१८. कसायकुसीलस्स० पुच्छा।

गोयमा ! छ समुग्घाया पन्नत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए जाव आहारगसमुग्घाए।

[२१८ प्र] भगवन् ! कषायकुशील के कितने समुद्घात कहे है ?

[२१८ उ] गौतम ! उसमे छह समुद्घात कहे हैं, यथा—वेदनासमुद्घात से लेकर आहारकसमुद्घात तक।

२१९. नियंठस्स णं० पुच्छा।

गोयमा ! नत्थि एक्को वि।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०६

[२१९ प्र.] भगवन् ! निर्ग्रन्थ के कितने समुद्घात कहे हैं ?

[२१९ उ] गौतम ! उसमे एक भी समुद्घात नही होता ।

२२०. सिणायस्स० पुच्छा ।

गोयमा ! एगे केवलिसमुग्घाते पन्नते । [दारं ३१] ।

[२२० प्र] भगवन् ! स्नातक के कितने समुद्घात कहे हैं ?

[२२० उ.] गौतम ! उसमे केवल एक केवलिसमुद्घात होता है । [इकतीसवां द्वार] ।

विवेचन—किसमे कितने समुद्घात और क्यों ?—सात समुद्घातो मे से पुलाक मे तीन समुद्घात होते हैं। मुनियो मे सज्वलनकषाय के उदय से कषायसमुद्घात पाया जाता है । इस कारण पुलाक मे वेदनासमुद्घात के बाद कषायसमुद्घात भी सम्भव है । यद्यपि पुलाक-अवस्था मे मरण नही होता, तथापि पुलाक मे मारणान्तिकसमुद्घात होता है, क्योकि मारणान्तिकसमुद्घात से निवृत्त होने पर कषायकुशीलत्वादि परिणाम के सद्भाव मे उसका मरण होता है । अत. पुलाक मे मारणान्तिकसमुद्घात का सद्भाव कहा गया है । निर्ग्रन्थ मे एक भी समुद्घात नही होता, क्योकि उसका स्वभाव ही ऐसा है । पहले समुद्घात किया हुआ हो तो वह निर्ग्रन्थपने मे आकर काल कर सकता है । स्नातक केवली होने से उनमे केवलिसमुद्घात ही पाया जाता है ।[1]

बत्तीसवां क्षेत्रद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में अवगाहनाक्षेत्र-प्ररूपण

२२१ पुलाए णं भंते ! लोगस्स किं संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, सव्वलोए होज्जा ?

गोयमा ! नो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो सव्वलोए होज्जा ।

[२२१ प्र] भगवन् ! पुलाक लोक के सख्यातवे भाग मे होते हैं, असख्यातवें भाग मे होते हैं, सख्यातभागो मे होते हैं, असख्यातभागो मे होते हैं या सम्पूर्ण लोक मे होते हैं ?

[२२१ उ] गौतम ! वह लोक के सख्यातवे भाग मे नही होते, किन्तु असख्यातवे भाग मे होते हैं, सख्यातभागो मे असख्यातभागो मे या सम्पूर्ण लोक मे नही होते हैं ।

२२२. एवं जाव नियंठे ।

[२२२] इसी प्रकार निर्ग्रन्थ तक समझ लेना चाहिए ।

२२३. सिणाए णं भंते ! ० पुच्छा ।

गोयमा ! णो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, सव्वलोए वा होज्जा । [दारं ३२] ।

[२२३ प्र.] भगवन् ! स्नातक लोक के सख्यातवे भाग मे होता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

---

१ (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४२५

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०७

[२२३ उ] गौतम ! वह लोक के सख्यातवे भाग मे और सख्यातभागो मे नही होता, किन्तु असख्यातवे भाग मे, असख्यात भागो मे या सर्वलोक मे होता है ।　　　[बत्तीसवाँ द्वार]

विवेचन—क्षेत्रद्वार का अर्थ और क्षेत्रावगाहन कितना और क्यो ?—क्षेत्राद्वार मे क्षेत्र का अर्थ यहाँ अवगाहना-क्षेत्र है । प्रश्न का आशय यह है कि पुलाक आदि का शरीर लोक के कितने भाग (प्रदेश) को अवगाहित करता है ? इसके उत्तर मे कहा गया है कि पुलाक से लेकर निर्ग्रन्थ तक का शरीर लोक के असख्यातवे भाग को अवगाहित करता है । स्नातक केवलिसमुद्घात-अवस्था मे जब शरीरस्थ होता है या दण्ड-कपाटकरण-अवस्था मे होता है, तब लोक के असख्यातवे भाग मे रहता है । क्योकि केवली भगवान् का शरीर इतने क्षेत्र-परिमाण ही होता है । मन्थानक-काल मे केवली भगवान् के प्रदेशो से लोक का अधिकाश भाग व्याप्त हो जाता है और थोडा-सा भाग अव्याप्त रहता है । अत: वह उस समय लोक के असख्यात-भागो मे रहता है । जब वह समग्रलोक को व्याप्त कर लेता है, तब सम्पूर्ण लोक मे होता है ।[1]

तेतीसवाँ स्पर्शनाद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में क्षेत्रस्पर्शना-प्ररूपण

२२४. पुलाए ण भंते ! लोगस्स किं संखेज्जतिभाग फुसइ, असखेज्जतिभाग फुसइ० ?

एव जहा ओगाहणा भणिया तहा फुसणा वि भाणियव्वा जाव सिणाये । [दार ३३] ।

[२२४ प्र] भगवन् ! पुलाक लोक के सख्यातवे भाग को स्पर्श करता है या असख्यातवे भाग को ? इत्यादि (क्षेत्रावगाहनावत्) प्रश्न ।

[२२४ उ] (गौतम !) जिस प्रकार अवगाहना का कथन किया है, उसी प्रकार स्पर्शना के विषय मे भी यावत् स्नातक तक जानना चाहिए । [तेतीसवाँ द्वार]

विवेचन क्षेत्रावगाहनाद्वार और क्षेत्र-स्पर्शनाद्वार मे अन्तर—(क्षेत्र) स्पर्शद्वार मे कहा गया है कि यह द्वार क्षेत्रावगाहनाद्वार के समान है । प्रश्न होता है कि जब दोनो द्वार एक-सरीखे है, तब ये पृथक्-पृथक् क्यो कहे गए ? इसका समाधान यह है कि जितने प्रदेशो को शरीर अवगाहित करके रहता है, उतने क्षेत्र को क्षेत्रावगाहना कहते है तथा अवगाढ क्षेत्र (अर्थात् शरीर जितने क्षेत्र को अवगाहित करके रहा हुआ है, वह क्षेत्र) और उसका पार्श्ववर्ती क्षेत्र जिसके साथ शरीरप्रदेशो का स्पर्श हो रहा है, वह क्षेत्र भी स्पर्शनाक्षेत्र कहलाता है । यह क्षेत्रावगाहना और क्षेत्रस्पर्शना मे अन्तर है ।[2]

चोतीसवाँ भावद्वार : औपशमिकादि भावों का निरूपण

२२५. पुलाए णं भंते ! कयरम्मि भावे होज्जा ?

गोयमा ! खयोवसमिए भावे होज्जा ।

[२२५ प्र] भगवन् ! पुलाक किस भाव मे होता है ?

[२२५ उ] गौतम ! वह क्षायोपशमिक भाव मे होता है ।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०७

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०८

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४२७

२२६. एवं जाव कसायकुसीले।

[२२६ प्र] इसी प्रकार यावत् कषायकुशील तक जानना।

२२७. नियंठे० पुच्छा।

गोयमा ! ओवसमिए वा खइए वा भावे होज्जा।

[२२७ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ किस भाव मे होता है ?

[२२७ उ] गौतम ! वह औपशमिक या क्षायिक भाव मे होता है।

२२८. सिणाये० पुच्छा। गोयमा ! खइए भावे होज्जा। [दारं ३४]।

[२२८ प्र.] भगवन् ! स्नातक किस भाव मे होता है ?

[२२८ उ] गौतम ! वह क्षायिक भाव मे होता है। [चौतीसवाँ द्वार]

विवेचन -निष्कर्ष—पुलाक से लेकर कषायकुशील तक क्षायोपशमिक भाव मे होते है, निर्ग्रन्थ औपशमिक अथवा क्षायिक भाव मे और स्नातक एकमात्र क्षायिक भाव मे होते हैं।[1]

पंतीसवां परिमाणद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थो का एक समय का परिमाण

२२९. पुलाया ण भंते ! एगसमएण केवतिया होज्जा ?

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जति अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सयपुहत्त। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च सिय अत्थि, सिय णत्थि। जति अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सहस्सपुहत्त।

[२२९ प्र] भगवन् ! पुलाक एक समय मे कितने होते है ?

[२२९ उ] गौतम ! प्रतिपद्यमान (पुलाकत्व को प्राप्त होते हुए) की अपेक्षा पुलाक कदाचित् होते है और कदाचित् नही होते। यदि होते है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व होते है। पूर्वप्रतिपन्न (पहले ही उस अवस्था को प्राप्त किये हुए) की अपेक्षा भी पुलाक कदाचित् होते है और कदाचित् नहीं होते। यदि होते है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते है।

२३०. बउसा ण भंते ! एगसमएण० पुच्छा।

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जदि अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेण सयपुहत्त। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च जहन्नेण कोडिसयपुहत्त, उक्कोसेण वि कोडिसयपुहत्तं।

[२३० प्र] भगवन् ! बकुश एक समय मे कितने होते है ?

[२३० उ] गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा बकुश कदाचित् होते है और कदाचित् नहीं भी होते। यदि होते है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व होते है। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा बकुश जघन्य और उत्कृष्ट कोटिशतपृथक्त्व होते है।

---

1 भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४२८

२३१. एव पडिसेवणाकुसीला वि।

[२३१] इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय मे जानना चाहिए।

२३२. कसायकुसीला णं पुच्छा।

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जदि अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च जहन्नेणं कोडिसहस्सपुहत्तं, उक्कोसेण वि कोडिसहस्सपुहत्तं।

[२३२ प्र] भगवन् ! कषायकुशील एक समय मे कितने होते है ?

[२३२ उ] गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा कषायकुशील कदाचित् होते हैं, कदाचित् नही भी होते। यदि होते है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते हैं। पूर्व-प्रतिपन्न की अपेक्षा कषायकुशील जघन्य और उत्कृष्ट कोटिसहस्रपृथक्त्व (दो हजार करोड से नौ-हजार करोड तक) होते है।

२३३. नियंठा णं० पुच्छा।

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जदि अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं बावट्ठं सयं—अट्ठसतं खवगाणं, चउप्पण्णं उवसामगाणं। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जति अत्थि जहन्नेण एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं।

[२३३ प्र] भगवन् ! निर्ग्रन्थ एक समय मे कितने होते है ?

[२३३ उ.] गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा कदाचित् होते है और कदाचित् नही भी होते। यदि होते है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट एक सो बासठ होते है। उनमे से क्षपकश्रेणी वाले १०८ और उपशमश्रेणी वाले ५४, यो दोनो मिलाकर १६२ होते हैं। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा निर्ग्रन्थ कदाचित् होते हैं और कदाचित् नही होते। यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व होते है।

२३४. सिणाया णं० पुच्छा।

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जदि अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं अट्ठसयं। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च जहन्नेणं कोडिपुहत्तं, उक्कोसेण वि कोडिपुहत्त। [दार ३५]।

[२३४ प्र] भगवन् ! स्नातक एक समय मे कितने होते है ?

[२३४ उ] गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वे कदाचित् होते हैं और कदाचित् नही होते। यदि होते है तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट एक सौ आठ होते हैं। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा स्नातक जघन्य और उत्कृष्ट कोटिपृथक्त्व होते हैं। [पैंतीसवाँ द्वार]

विवेचन—**शंका-समाधान**—सुनते हैं, सर्व सयतो (साधुओ) का परिमाण (सख्या) कोटि-सहस्र-पृथक्त्व है और यहाँ तो शास्त्रकार ने केवल कषायकुशील मुनियों का ही इतना (कोटि-सहस्र-पृथक्त्व) परिमाण बताया है, उनमे पुलाक आदि की सख्या को मिलाने से तो कोटि-सहस्र-पृथक्त्व से अधिक सख्या हो जाएगी तो क्या वह पूर्वोक्त परिमाण से विरोध नही ? इसका समाधान यह है कि कषायकुशील सयतो का जो कोटि-सहस्र-पृथक्त्व परिमाण बताया है, वह दो, तीन कोटि सहस्र-पृथक्त्वरूप जानना चाहिए। उसमे पुलाक, बकुशादि की सख्या को मिला देने पर भी समस्त सयतो की जो सख्या बतायी है उससे अधिक नही होगी। अर्थात् सर्व सयतो का परिमाण भी कोटि-सहस्र-पृथक्त्व ही होगा।[1]

छत्तीसवाँ अल्पबहुत्वद्वार : पंचविध निर्ग्रन्थों में अल्पबहुत्व प्ररूपण

२३५. एएसि णं भंते ! पुलाग-बउस-पडिसेवणाकुसील-कसायकुसील-नियठ-सिणायाणं कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा नियंठा, पुलागा संखेज्जगुणा, सिणाया संखेज्जगुणा, बउसा संखेज्जगुणा, पडिसेवणाकुसीला संखेज्जगुणा, कसायकुसीला सखेज्जगुणा। [दारं ३६]।

सेवं भते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।

॥ पंचवीसइमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥

[२३५ प्र] भगवन् ! पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक, इनमे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[२३५ उ] गौतम ! सबसे थोडे निर्ग्रन्थ है, उनसे पुलाक सख्यात-गुणे हैं, उनसे स्नातक सख्यात-गुणे है, उनसे बकुश सख्यात-गुणे है, उनसे प्रतिसेवनाकुशील सख्यात-गुणे हैं और उनसे कषायकुशील सख्यात-गुणे हैं। [छत्तीसवाँ द्वार]।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यो कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—**अल्पबहुत्व की सगति**—निर्ग्रन्थ सबसे अल्पसख्यक है क्योकि उनकी उत्कृष्ट सख्या शत-पृथक्त्व है। उनसे पुलाक और स्नातक क्रमश. उत्तरोत्तर सख्यातगुण हैं, क्योकि इन दोनो की उत्कृष्ट सख्या क्रमश सहस्रपृथक्त्व और कोटिपृथक्त्व है। उनसे बकुश और प्रतिसेवनाकुशील दोनो क्रमश. उत्तरोत्तर सख्यातगुण है, क्योकि इन दोनो की उत्कृष्ट सख्या कोटिशतपृथक्त्व है और प्रतिसेवनाकुशील से कषायकुशील की सख्या सख्यातगुणी है, क्योकि कषायकुशील की उत्कृष्ट सख्या कोटिसहस्रपृथक्त्व है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०८
(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४३१

शंका समाधान—पूर्वसूत्रो मे बकुश और प्रतिसेवनाकुशील, इन दोनो का परिमाण एक-सा—कोटिशतपृथक्त्वरूप कहा है, जबकि यहा अल्पबहुत्व मे बकुश से प्रतिसेवनाकुशील को सख्यातगुणा अधिक बताया है, ऐसी स्थिति मे यहाँ मूलपाठ के साथ कैसे सगति होगी ? इस शका का समाधान यह है कि बकुश का परिमाण जो कोटिशतपृथक्त्व कहा है, वह तीन कोटिशतरूप जानना चाहिए और प्रतिसेवनाकुशील का जो कोटिशतपृथक्त्व परिमाण बताया है, वह चार-छह कोटिरूप जानना चाहिए।

इस प्रकार पूर्वोक्त अल्पबहुत्व मे किसी प्रकार का परस्पर विरोध नही आता।[1]

॥ पच्चीसवाँ शतक : छठा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९०९

सत्तमो उद्देसओ : 'समणा'

सप्तम उद्देशक : 'श्रमण' (संयत सम्बन्धी)

प्रथम प्रज्ञापनाद्वार : संयतों के भेद-प्रभेद का निरूपण

१. कति णं भंते ! संजया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पच संजया पन्नत्ता तं जहा सामाइयसजए छेदोवट्ठावणियसंजए परिहारविसुद्धिय-संजए सुहुमसपरायसजए अहक्खायसजए ।

[१ प्र] भगवन् ! सयत कितने प्रकार के कहे है ?

[१ उ] गौतम ! सयत पाच प्रकार के कहे है । यथा—(१) सामायिक-सयत, (२) छेदोप-स्थापनिक-सयत, (३) परिहारविशुद्धि-सयत, (४) सूक्ष्मसम्पराय-सयत और (५) यथाख्यात-सयत ।

२. सामाइयसजए ण भंते ! कतिविधे पन्नत्ते ?

गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, त जहा--इत्तिरिए य, आवकहिए य ।

[२ प्र] भगवन् ! सामायिक-सयत कितने प्रकार का कहा है ?

[२ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है । यथा—इत्वरिक और यावत्कथिक ।

३. छेदोवट्ठावणियसजए णं० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, त जहा—सातियारे य, निरतियारे य ।

[३ प्र] भगवन् ! छेदोपस्थापनिक-सयत कितने प्रकार का कहा गया है ?

[३ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है । यथा—सातिचार और निरतिचार ।

४. परिहारविसुद्धियसजए० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, त जहा –णिव्विसमाणए य, निव्विट्ठकाइए य ।

[४ प्र] भगवन् ! परिहारविशुद्धिक-सयत कितने प्रकार का कहा गया है ?

[४ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है । यथा—निर्विशमानक और निर्विष्टकायिक ।

५. सुहुमसंपराग० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—संकिलिस्समाणए य, विसुज्झमाणए य ।

[५ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मसम्पराय-सयत कितने प्रकार का कहा गया है ?

[५ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है । यथा सक्लिश्यमानक और विशुद्धयमानक ।

६. अहक्खायसंजए० पुच्छा ।

गोयमा ! दुविहे पन्नत्ते, तं जहा--छउमत्थे य, केवली य ।

[६ प्र] भगवन् ! यथाख्यात-सयत कितने प्रकार का कहा गया है ?

[६ उ] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है । यथा—छद्मस्थ और केवली ।

संयत-स्वरूप

७. सामाइयम्मि उ कए चाउज्जाम अणुत्तरं धम्मं ।
तिविहेण फासयंतो सामाइयसंजयो स खलु ॥१॥

८. छेत्तूण य परियागं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
धम्मम्मि पंचजामे छेदोवट्ठावणो स खलु ॥२॥

९ परिहरति जो विसुद्धं तु पंचजामं अणुत्तर धम्म ।
तिविहेण फासयतो परिहारियसंजयो स खलु ॥३॥

१०. लोभाणु वेदेंतो जो खलु उवसामओ व खवओ वा ।
सो सुहुमसपराओ अहखाया ऊणओ किंचि ॥४॥

११. उवसते खीणम्मि व जो खलु कम्मम्मि मोहणिज्जम्मि ।
छउमत्थो व जिणो वा अहखाओ संजओ स खलु ॥५॥ [दार १] ।

सामायिक-चारित्र को अगीकार करने के पश्चात् चातुर्याम-(चार महाव्रत-) रूप अनुत्तर (प्रधान) धर्म का जो मन, वचन और काया से त्रिविध (तीन करण से) पालन करता है, वह 'सामा-यिक-सयत' कहलाता है ॥ १ ॥

प्राचीन (पूर्व) पर्याय को छेद करके जो अपनी आत्मा को पचयाम-(पचमहाव्रत-) रूप धर्म मे स्थापित करता है, वह 'छेदोपस्थापनीय-सयत' कहलाता है ॥२॥

जो पचमहाव्रतरूप अनुत्तर धर्म को मन, वचन और काया से त्रिविध पालन करता हुआ (अमुक) आत्म-विशुद्धि (कारक तपश्चर्या) धारण करता है, वह परिहारविशुद्धिक-सयत कहलाता है ॥३॥

जो सूक्ष्म लोभ का वेदन करता हुआ (चारित्रमोहनीय कर्म का) उपशमक (उपशमकर्त्ता) होता है, अथवा क्षपक (क्षयकर्ता) होता है, वह सूक्ष्मसम्पराय-सयत होता है । यह यथाख्यात-सयत से कुछ हीन होता है ॥ ४ ॥

मोहनीय कर्म के उपशान्त या क्षीण हो जाने पर जो छद्मस्थ या जिन होता है, वह यथाख्यात-सयत कहलाता है ॥ ५ ॥ [प्रथम द्वार]

विवेचन—पंचविध संयत : स्वरूप, प्रकार और विश्लेषण—शास्त्र मे चारित्र के सामायिक आदि ५ भेद बताए हैं । अत. जो सामायिक आदि चारित्रो के पालक हैं, वे सामायिक आदि 'सयत' कहलाते हैं । सामायिक का प्रस्तुत में अर्थ है—सामायिक नामक चारित्र-विशेष, उससे युक्त अथवा वह जिसमे प्रधान रूप से है, वह सयमी पुरुष सामायिकसंयत कहलाता है । सामायिकचारित्री दो प्रकार के होते हैं—इत्वरिक और यावत्कथिक । इत्वर का अर्थ है—अल्पकाल । चारित्र (दीक्षा) ग्रहण करने के बाद भविष्य मे उक्त (नव) दीक्षित साधु में जब तक महाव्रतो का आरोपण नही होता तब तक तथा

छेदोपस्थापनीय सयतत्व का व्यवहार किया जाता है, अर्थात् उसे इत्वरिक सामायिक-सयत कहते हैं। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के शासन (तीर्थ) में उक्त नवदीक्षित साधु के इत्वरकालिक सामायिक समझनी चाहिए। परम्परा से यह जघन्य ७ दिन, मध्यम ४ मास और उत्कृष्ट ६ मास की (कच्ची दीक्षा) होती है। यावज्जीवन की सामायिक यावत्कथिक सामायिक कहलाती है। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर भगवान् से अतिरिक्त मध्य के २२ तीर्थंकरो एव महाविदेह क्षेत्र के २० विहरमान तीर्थंकरो के तीर्थ मे सामायिक चारित्र लेने के पश्चात् पुन दूसरा व्यपदेश नही होता। अतएव वे यावत्कथिक सामायिक-सयत ही कहलाते हैं।

जिस चारित्र मे पूर्वपर्याय का छेद और महाव्रतो का उपस्थापन (आरोपण) होता है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र भारतक्षेत्र और ऐरवतक्षेत्र के प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरो के तीर्थ मे ही होता है। मध्यवर्ती तीर्थंकरो के तीर्थ मे नही होता। इसके दो भेद हैं—सातिचार और निरतिचार। इत्वर-सामायिक वाले साधु के तथा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ मे जाने वाले साधु के जो महाव्रतो का आरोपण होता है, वह निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र है।

मूलगुणो का घात करने वाले साधु का पुन महाव्रतो मे आरोपण होता है, वह सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र है।[1]

जिस चारित्र मे परिहार (तप-विशेष) से कर्मनिर्जरारूप शुद्धि होती है, उसे **'परिहारविशुद्धि-चारित्र'** कहते है। इसे अगीकार करने वाले साधुगण **'परिहारविशुद्धिक-सयत'** कहलाते हैं। नौ साधुओ का गण गुरु-आज्ञा से आत्मशुद्धि के हेतु परिहारविशुद्धि-चारित्र अगीकार करता है। उन नौ साधुओ मे से चार साधु ६ मास तक तप करते हैं, चार साधु सबकी वैयावृत्य करते है और एक साधु व्याख्यान वाचता है। दूसरे छह मास मे ४ वैयावच्ची मुनि तप करते है और तप करने वाले वैयावृत्य करते है तथा एक साधु व्याख्यान वाचता है। तीसरे छह मास मे उक्त व्याख्यानी साधु तप करता है, एक व्याख्यान वाचता है और सात साधु सबकी वैयावृत्य करते है। तपश्चर्या मे ग्रीष्मऋतु मे एकान्तर उपवास, शीतऋतु मे छट्ठ-छट्ठ (बेले-बेले) उपवास और चौमासे मे अट्ठम-अट्ठम (तेले-तेले) उपवास करते है। इस प्रकार १८ मास तप करके जिनकल्पी बन जाते है अथवा पुन गुरुकुलवास स्वीकार करते है।[2]

जिस चारित्र मे सूक्ष्मसम्पराय (सज्वलन लोभ का सूक्ष्म अश) ही शेष रहता है, उसे सूक्ष्म-सम्परायचारित्र कहते हैं। इसके सक्लिश्यमानक और विशुद्धयमानक, ये दो भेद हैं। उपशमश्रेणी से गिरते हुए मुनि के परिणाम सक्लेशसहित होते हैं, इसलिए उसका चारित्र सक्लिश्यमान-सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहलाता है। क्षपकश्रेणी या उपशमश्रेणी पर आरूढ होने वाले साधु के परिणाम उत्तरोत्तर विशुद्ध रहने से उसका चारित्र विशुद्धयमान-सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहलाता है। ऐसे चारित्र से युक्त मुनि को 'सूक्ष्मसम्परायसयत' कहते हैं।

कषाय का सर्वथा उदय न होने से अतिचार-रहित पारमार्थिक रूप से प्रसिद्ध चारित्र यथाख्यातचारित्र अथवा अकषायी साधु का निरतिचार यथार्थ चारित्र यथाख्यातचारित्र कहलाता है।

१ (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९०९ (ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४३६

२. (क) वही, पृ. ३४३७

यथाख्यातचारित्र के छद्मस्थ और केवली ये दो भेद हैं। छद्मस्थ यथाख्यातचारित्र के उपशान्तमोह और क्षीणमोह अथवा प्रतिपाती और अप्रतिपाती, ये दो भेद होते हैं। केवली-यथाख्यातचारित्र के दो भेद हैं—सयोगीकेवली का और अयोगीकेवली का। यथाख्यातचारित्र से युक्त साधु यथाख्यातसयत कहलाता है।[1]

द्वितीय वेदद्वार : पंचविध संयतों में सवेदी-अवेदी प्ररूपणा

१२. सामाइयसंजये णं भंते ! किं सवेयए होज्जा, अवेयए होज्जा ?

गोयमा ! सवेयए वा होज्जा, अवेयए वा होज्जा। जति सवेयए एवं जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० २४) तहेव निरवसेसं।

[१२ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत सवेदी होता है या अवेदी ?

[१२ उ] गौतम ! वह सवेदी भी होता है और अवेदी भी होता है। यदि वह सवेदी होता है, आदि सभी कथन (उ ६, सू १४ मे कथित) कषायकुशील की वक्तव्यता के अनुसार कहना चाहिए।

१३. एवं छेदोवट्ठावणियसंजए वि।

[१३] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी जानना चाहिए।

१४. परिहारविसुद्धियसंजओ जहा पुलाओ (उ० ६ सु० ११)।

[१४] परिहारविशुद्धिकसयत का कथन (उ ६ सू ११ मे उक्त) पुलाक के समान है।

१५. सुहुमसंपरायसंजओ अहक्खायसंजओ य जहा नियंठो (उ० ६ सु० १५)। [दारं २]।

[१५] सूक्ष्मसम्परायसयत और यथाख्यातसयत का कथन (उ ६ सू १५ मे उक्त) निर्ग्रन्थ के समान है। [द्वितीय द्वार]

विवेचन—पंचविध संयतो में सवेदी-अवेदी—सामायिकसयत सवेदी भी होते हैं और अवेदी भी। सामायिक चारित्र नौवें गुणस्थान पर्यन्त होता है। नौवें गुणस्थान मे तो वेद का उपशम या क्षय हो जाता है, इसलिए वहाँ सामायिक-चारित्री अवेदी होता है। या तो वह उपशान्तवेदी होता है या फिर क्षीणवेदी। नौवें गुणस्थान से पूर्व वह सवेदी होता है। उसमे तीनो ही वेद पाये जाते है। छेदोपस्थापनीयसयत मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए। परिहारविशुद्धिसयत, पुलाक के समान पुरुषवेदी या पुरुष-नपुसकवेदी होता है। किन्तु सूक्ष्मसम्परायसयत और यथाख्यातसयत, दोनो ही क्रमश उपशान्तवेदी एव क्षीणवेदी होने से अवेदी होते हैं।[2]

तृतीय रागद्वार : पंचविध संयतों में सरागता-वीतरागता-निरूपण

१६. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सरागे होज्जा, वीयरागे होज्जा ?

गोयमा ! सरागे होज्जा, नो वीयरागे होज्जा।

[१६ प्र.] भगवन् ! सामायिकसयत सराग होता है या वीतराग होता है ?

[१६ उ.] गौतम ! वह सराग होता है, वीतराग नही होता है।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९१० (ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४३६

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९११

१७. एवं सुहुमसंपरायसंजए।

[१७] इसी प्रकार सूक्ष्मसम्परायसयत-पर्यन्त कहना चाहिए।

१८. अहक्खायसंजए जहा नियंठे (उ० ६ सु० १९)। [दारं ३]।

[१८] यथाख्यातसयत का कथन (उ. ६ सू १९ में कथित) निर्ग्रन्थ के समान जानना चाहिए। [तृतीय द्वार]

विवेचन—निष्कर्ष—सामायिकसयत आदि चार प्रकार के सयत सरागी होते हैं, अन्तिम यथाख्यातसयत वीतरागी होता है।

चतुर्थ कल्पद्वार : पचविध संयतो में स्थितकल्पादि प्ररूपणा

१९. सामाइयसंजए णं भते! किं ठियकप्पे होज्जा, अठियकप्पे होज्जा?

गोयमा! ठियकप्पे वा होज्जा, अठियकप्पे वा होज्जा।

[१९ प्र] भगवन्! सामायिकसयत स्थितकल्प मे होता है या अस्थितकल्प मे होता है?

[१९ उ] गौतम! वह स्थितकल्प मे भी होता है और अस्थितकल्प मे भी होता है।

२०. छेदोवट्ठावणियसजए० पुच्छा।

गोयमा! ठियकप्पे होज्जा, नो अठियकप्पे होज्जा।

[२० प्र] भगवन्! छेदोपस्थापनिकसयत स्थितकल्प मे होता है या अस्थितकल्प मे होता है?

[२० उ] गौतम! वह स्थितकल्प मे होता है, अस्थितकल्प मे नही होता है।

२१. एव परिहारविसुद्धियसंजए वि।

[२१] इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसयत के विषय मे भी समझना चाहिए।

२२. सेसा जहा सामाइयसजए।

[२२] शेष दो—सूक्ष्मसम्परायसयत और यथाख्यातसयत का कथन सामायिकसयत के समान जानना चाहिए।

२३. सामाइयसंजए ण भंते! किं जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा?

गोयमा! जिणकप्पे वा होज्जा जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० २६) तहेव निरवसेस।

[२३ प्र] भगवन्! सामायिकसयत जिनकल्प मे होता है, स्थविरकल्प मे होता है या कल्पातीत मे होता है?

[२३ उ] गौतम! वह जिनकल्प मे होता है, इत्यादि समग्र कथन (उ ६ सू २६ मे उक्त) कषायकुशील के समान जानना चाहिए।

२४. छेदोवट्ठावणिओ परिहारविसुद्धिओ य जहा बउसो (उ० ६ सु० २४)।

[२४] छेदोपस्थापनिक और परिहारविशुद्धिक-सयत के सम्बन्ध मे (उ ६, सू २४ मे उक्त) बकुश के समान वक्तव्यता जानना।

२५. सेसा जहा नियंठे (उ० ६ सु० २७) [दारं ४]।

[२५] शेष दो—सूक्ष्मसम्परायसयत और यथाख्यातसयत का कथन (उ ६, सू २७ मे उक्त) 'निर्ग्रन्थ' के समान समझना चाहिए। [चतुर्थ द्वार]

विवेचन - **अस्थितकल्प और स्थितकल्प**—मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो के तीर्थ मे और महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरो के तीर्थ मे अस्थितकल्प होता है। वहाँ छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धिचारित्र नही होता, इसलिए छेदोपस्थापनीयसयत और परिहारविशुद्धिकसयत अस्थितकल्प मे नही होते।[1]

पंचम चारित्रद्वार : पंचविध संयतों में पुलाकादि-प्ररूपणा

२६. सामाइयसंजए णं भंते ! किं पुलाए होज्जा, बउसे जाव सिणाए होज्जा ?

गोयमा ! पुलाए वा होज्जा, बउसे जाव कसायकुसीले वा होज्जा, नो नियंठे होज्जा, नो सिणाए होज्जा।

[२६ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत पुलाक होता है, अथवा बकुश, यावत् स्नातक होता है ?

[२६ उ] गौतम ! वह पुलाक, बकुश यावत् कषायकुशील होता है, किन्तु 'निर्ग्रन्थ' और स्नातक नही होता है।

२७. एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

[२७] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय के विषय मे जानना चाहिए।

२८. परिहारविसुद्धियसंजते णं भंते !० पुच्छा।

गोयमा ! नो पुलाए, नो बउसे, नो पडिसेवणाकुसीले होज्जा, कसायकुसीले होज्जा, नो नियंठे होज्जा, नो सिणाए होज्जा।

[२८ प्र] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयत क्या पुलाक होता है, यावत् स्नातक होता है ?

[२८ उ] गौतम ! वह पुलाक, बकुश प्रतिसेवनाकुशील, निर्ग्रन्थ या स्नातक नही होता, किन्तु कषायकुशील होता है।

२९. एवं सुहुमसपराए वि।

[२९] इसी प्रकार सूक्ष्मसम्परायसयत के विषय मे भी समझना चाहिए।

३०. अहक्खायसंजए० पुच्छा।

गोयमा ! नो पुलाए होज्जा, जाव नो कसायकुसीले होज्जा, नियठे वा होज्जा, सिणाए वा होज्जा। [दारं ५]।

[३० प्र] भगवन् ! यथाख्यातसयत क्या पुलाक यावत् स्नातक होता है ?

[३० उ.] गौतम ! वह पुलाक यावत् कषायकुशील नही होता, किन्तु निर्ग्रन्थ या स्नातक होता है। [पचमद्वार]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९११

विवेचन चारित्रद्वार में पुलाकादि का कथन क्यों ?—सामायिक से लेकर यथाख्यात तक अपने आप में चारित्र ही है, किन्तु पुलाकादि का कथन चारित्रद्वार में करने का कारण यह है कि पुलाक आदि का परिणाम चारित्ररूप ही है।[1]

छठा प्रतिसेवनाद्वार : पंचविध संयतों में प्रतिसेवन-अप्रतिसेवनप्ररूपणा

३१. [१] सामाइयसंजए णं भंते ! किं पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा ?

गोयमा ! पडिसेवए वा होज्जा, अपडिसेवए वा होज्जा।

[३१-१ प्र] भगवन् ! सामायिकसंयत प्रतिसेवी होता है या अप्रतिसेवी होता है ?

[३१-१ उ.] गौतम ! वह प्रतिसेवी भी होता है और अप्रतिसेवी भी होता है ?

[२] जइ पडिसेवए होज्जा किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा० ?

सेसं जहा पुलागस्स (उ० ६ सु० ३५ [२])।

[३१-२ प्र] भगवन् ! यदि वह प्रतिसेवी होता है तो क्या मूलगुणप्रतिसेवी होता है ? इत्यादि प्रश्न।

[३१-२ उ] गौतम ! इस विषय में अवशिष्ट समग्र कथन (उ ६, सू. ३५-२ में उक्त) पुलाक के समान जानना चाहिए।

३२. जहा सामाइयसंजए एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

[३२] सामायिकसंयत के समान छेदोपस्थापनिकसंयत का कथन जानना चाहिए।

३३. परिहारविसुद्धियसंजए० पुच्छा।

गोयमा ! नो पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा।

[३३ प्र.] भगवन् ! परिहारविशुद्धिसंयत प्रतिसेवी होता है या अप्रतिसेवी होता है ?

[३३ उ] गौतम ! वह प्रतिसेवी नहीं होता, अप्रतिसेवी होता है।

३४. एवं जाव अहक्खायसंजए। [दारं ६]।

[३४] इसी प्रकार यथाख्यातसंयत तक कहना चाहिए। [छठा द्वार]

विवेचन—सामायिक और छेदोपस्थापनीय संयत प्रतिसेवी भी होते हैं और अप्रतिसेवी भी, किन्तु परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात संयत अप्रतिसेवी ही होते हैं।

सप्तम ज्ञानद्वार : पंचविध संयतों में ज्ञान और श्रुताध्ययन की प्ररूपणा

३५. सामाइयसंजए णं भंते ! कतिसु नाणेसु होज्जा ?

गोयमा ! दोसु वा, तिसु वा, चतुसु वा नाणेसु होज्जा। एवं जहा कसायकुसीलस्स (उ० ६ सु० ४४) तहेव चत्तारि नाणाइं भयणाए।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९११

[३५ प्र.] भगवन् ! सामायिकसयत मे कितने ज्ञान होते है ?

[३५ उ] गौतम ! उसमे दो, तीन या चार ज्ञान होते है। इस प्रकार जैसे (उ ६, सू. ४४ मे उक्त) कषायकुशील मे कहा है, वैसे ही यहाँ चार ज्ञान भजना (विकल्प) से समझने चाहिए।

३६. एव जाव सुहुमसपराए।

[३६] इसी प्रकार सूक्ष्मसम्परायसयत तक जानना चाहिए।

३७. अहक्खायसंजतस्स पंच नाणाइ भयणाए जहा नाणुद्देसए (स० ८ उ० २ सु० १०६)।

[३७] यथाख्यातसयत मे ज्ञानोद्देशक (शतक ८, उ २) के अनुसार पाच ज्ञान विकल्प (भजना) से होते है।

३८. सामाइयसजते ण भते ! केवतिय सुयं अहिज्जेज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण अट्ठ पवयणमायाओ जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० ५०)।

[३८ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कितने श्रुत का अध्ययन करता है ?

[३८ उ.] गौतम ! वह जघन्य आठ प्रवचनमाता का अध्ययन करता है, इत्यादि (उ ६, सू ५० मे उक्त) कषायकुशील के वर्णन के समान जानना चाहिए।

३९. एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

[३९] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी कहना चाहिए।

४०. परिहारविसुद्धियसजए० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण नवमस्स पुव्वस्स तइय आयारवत्थु, उक्कोसेण असंपुण्णाइं दस पुव्वाइ अहिज्जेज्जा।

[४० प्र] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयत कितने श्रुत का अध्ययन करता है ?

[४० उ] गौतम ! वह जघन्य नौवे पूर्व की तीसरी आचारवस्तु तक तथा उत्कृष्ट दस पूर्व असम्पूर्ण तक अध्ययन करता है।

४१. सुहुमसंपरायसंजए जहा सामाइयसंजए।

[४१] सूक्ष्मसम्परायसयत की वक्तव्यता सामायिकसयत के समान जानना।

४२. अहक्खायसंजए० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण अट्ठ पवयणमायाओ, उक्कोसेण चोद्दसपुव्वाइ अहिज्जेज्जा, सुतवतिरित्ते वा होज्जा। [दार ७]।

[४२ प्र.] भगवान् ! यथाख्यातसयत कितने श्रुत का अध्ययन करता है ?

[४२ उ.] गौतम ! वह जघन्य अष्ट प्रवचनमाता का और उत्कृष्ट चौदहपूर्व तक का अध्ययन करता है अथवा वह श्रुतव्यतिरिक्त (केवली) होता है। [सप्तम द्वार]

विवेचन—यथाख्यातसंयत में पांच ज्ञान विकल्प से : क्यों और कैसे ?—यथाख्यातसयत मे पाच ज्ञान भजना से इसलिए कहे गए हैं कि यथाख्यातसयत दो प्रकार के होते हैं—केवली और छद्मस्थ । केवली यथाख्यातसयत मे एकमात्र केवलज्ञान ही होता है । किन्तु छद्मस्थ यथाख्यातसयत मे दो, तीन या चार ज्ञान होते हैं। इसके लिए आठवे शतक के द्वितीय उद्देशक (के सू १०६) का अतिदेश किया गया है ।[1]

यथाख्यातसंयत का श्रुताध्ययन—यथाख्यातसयत यदि 'निर्ग्रन्थ' होते है तो उनके जघन्य अष्ट प्रवचनमाता का और उत्कृष्ट चौदह पूर्व का श्रुत पढा हुआ होता है । यदि वे स्नातक होते हैं तो वे श्रुतातीत-केवली होते हैं ।[2]

अष्टम तीर्थद्वार : पंचविध संयतों में तीर्थ-अतीर्थ-प्ररूपणा

४३ सामाइयसजए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा ?

गोयमा ! तित्थे वा होज्जा, अतित्थे वा होज्जा जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० ५५) ।

[४३ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत तीर्थ मे होता है अथवा अतीर्थ मे होता है ?

[४३ उ] गौतम ! वह तीर्थ मे भी होता है और अतीर्थ मे भी, इत्यादि सब वर्णन (उ ६, सू ५५ मे कथित) कषायकुशील के समान कहना चाहिए ।

४४. छेदोवट्ठावणिए परिहारविसुद्धिए य जहा पुलाए (उ० ६ सु० ५३) ।

[४४] छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धिकसयत का कथन (उ ६, सू ५३ मे उक्त) पुलाक के समान जानना चाहिए ।

४५. सेसा जहा सामाइयसंजए । [दारं ८]

[४५] शेष सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत की वक्तव्यता सामायिकसयत के समान जानना चाहिए । [आठवाँ द्वार]

विवेचन—सामायिक, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत तीर्थ और अतीर्थ दोनो मे होते हैं । तीर्थंकर के तीर्थ का विच्छेद हो जाने पर दूसरे साधु अतीर्थ मे होते हैं तथा कई तीर्थंकर या प्रत्येकबुद्ध तीर्थ के बिना सामायिकचारित्र का पालन करते हैं। वे भी अतीर्थ मे होते है। छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धिक सयत तीर्थ मे होते है ।

नौवाँ लिंगद्वार : पंचविध संयतों में स्व-अन्य-गृहिलिंग-प्ररूपणा

४६. सामाइयसंजए ण भंते ! किं सलिंगे होज्जा, अन्नलिंगे होज्जा, गिहिलिंगे होज्जा ?

जहा पुलाए (उ० ६ सु० ५८) ।

[४६ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत स्वलिंग मे होता है, अन्य लिंग मे या गृहस्थलिंग मे होता है ?

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९११

२ वही, पत्र ९११

[४६ उ.] गौतम ! इसका सभी कथन (उ ६, सू. ४८ मे उक्त) पुलाक के समान जानना।

४७. एवं छेदोवट्ठावणिए वि ।

[४७] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी जानना चाहिए।

४८. परिहारविसुद्धियसजए णं भंते ! कि० पुच्छा ।

गोयमा ! दव्वलिग पि भावलिगं पि पडुच्च सलिगे होज्जा, नो अन्नलिगे होज्जा, नो गिहिलिगे होज्जा ।

[४८ प्र] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयत स्वलिग में होता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[४८ उ] गौतम ! वह द्रव्यलिंग और भावलिग की अपेक्षा स्वलिग मे ही होता है, अन्यलिग या गृहस्थलिग मे नही होता।

४९ सेसा जहा सामाइयसंजए। [दारं ९]।

[४९] शेष (सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत का) कथन सामायिकसयत के समान जानना चाहिए। [नौवाँ द्वार]

विवेचन -सामायिकसयत, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत सम्बन्धी लिग-विषयक प्रश्न मे पुलाक का अतिदेश किया गया है, परिहारविशुद्धिकसयत द्रव्य-भावलिग की अपेक्षा स्वलिग मे ही होता है।

दसवाँ शरीरद्वार : पंचविध संयतों में शरीरभेद-प्ररूपणा

५०. सामाइयसंजए णं भंते ! कतिसु सरीरेसु होज्जा ?

गोयमा ! तिसु वा चतुसु वा पंचसु वा जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० ६३)।

[५० प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कितने शरीरो मे होता है ?

[५० उ] गौतम ! वह तीन, चार या पाच शरीरो मे होता है, इत्यादि सब कथन (उ. ६, सू ६३ मे उक्त) कषायकुशील के समान जानना चाहिये।

५१. एवं छेदोवट्ठावणिए वि ।

[५१] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी जानना चाहिए।

५२. सेसा जहा पुलाए (उ० ६ सु० ६०)। [दारं १०]।

[५२] शेष परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत का शरीर-विषयक कथन (उ ६ सू ६० मे कथित) पुलाक के समान जानना। [दसवाँ द्वार]

ग्यारहवाँ क्षेत्रद्वार : पंचविध संयतों मे कर्म-अकर्मभूमि की प्ररूपणा

५३. सामाइयसंजए णं भंते ! कि कम्मभूमीए होज्जा, अकम्मभूमीए होज्जा ?

गोयमा ! जम्मणं संतिभावं च पडुच्च जहा बउसे (उ० ६ सु० ६६)।

[५३ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कर्मभूमि मे होता है या अकर्मभूमि में ?

[५३ उ] गौतम ! जन्म और सद्भाव की अपेक्षा से (वह कर्मभूमि में होता है, अकर्म-भूमि में नहीं, इत्यादि सब कथन उ ६, सू ६६ मे कथित) बकुश के समान जानना चाहिए।

५४. एवं छेदोवट्ठावणिए वि ।

[५४] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत का कथन है।

५५. परिहारविसुद्धिए य जहा पुलाए (उ० ६ सु० ६५) ।

[५५] परिहारविशुद्धिकसयत के विषय मे (उ. ६, सू ६५ मे उक्त) पुलाक के समान जानना।

५६ सेसा जहा सामाइयसंजए। [दारं ११] ।

[५६] शेष (सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत) के विषय मे सामायिकसयत के समान जानना। [ग्यारहवाँ द्वार]

बारहवाँ कालद्वार : पंचविध संयतों में अवसर्पिणीकालादि की प्ररूपणा

५७ सामाइयसंजए ण भंते ! किं ओसप्पिणिकाले होज्जा, उस्सप्पिणिकाले होज्जा, नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले होज्जा ?

गोयमा ! ओसप्पिणिकाले जहा बउसे (उ० ६ सु० ६९) ।

[५७ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत अवसर्पिणीकाल मे होता है, उत्सर्पिणीकाल मे होता है, या नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल मे होता है ?

[५७ उ] गौतम ! वह अवसर्पिणीकाल मे होता है, इत्यादि सब कथन (उ. ६ सू. ६९ मे उक्त) बकुश के समान है।

५८. एव छेदोवट्ठावणिए वि, नवरं जम्मण-संतिभावं पडुच्च चउसु वि पलिभागेसु नत्थि, साहरणं पडुच्च अन्नयरे पलिभागे होज्जा। सेसं तं चेव।

[५८] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी समझना चाहिए। विशेष यह है कि जन्म और सद्भाव की अपेक्षा चारो पलिभागो (सुषम-सुषमा, सुषमा, सुषम-दुःषमा और दुःषम-सुषमा) मे नही होता, सहरण की अपेक्षा किसी भी पालिभाग मे होता है। शेष पूर्ववत् है।

५९. [१] परिहारविसुद्धिए० पुच्छा।

गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा, नोओसप्पिणि-नोउस्स-प्पिणिकाले नो होज्जा।

[५९-१ प्र.] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयत अवसर्पिणीकाल मे होता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[५९-१ उ.] गौतम ! वह अवसर्पिणीकाल मे होता है, उत्सर्पिणीकाल मे भी होता है, किन्तु नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणीकाल मे नही होता।

[२] जवि ओसप्पिणिकाले होज्जा जहा पुलाओ (उ० ६ सु० ६८ [२])।

[५९-२] यदि अवसर्पिणीकाल में होता है, तो (उ ६, सूत्र ६८-२ में कहे अनुसार) पुलाक के समान होता है।

[३] उस्सप्पिणिकाले वि जहा पुलाओ (उ० ६ सु० ६८ [३])।

[५९-३] उत्सर्पिणीकाल मे होता है, तो (उ ६, सू ६८-३ मे कहे अनुसार) पुलाक के समान होता है।

६०. सुहुमसपराओ जहा नियंठो (उ० ६ सु० ७२)।

[६०] सूक्ष्मसम्परायसयत का कथन (उ ६, सू ७२ के अनुसार) निर्ग्रन्थ के समान समझना चाहिए।

६१. एवं अहक्खाओ वि [दार १२]।

[६१] इसी प्रकार यथाख्यातसयत का (काल-विषयक कथन) निर्ग्रन्थ के समान जानना।

विवेचन—स्पष्टीकरण—सामायिकसयत का काल बकुश के समान बताया गया है। अर्थात् अवसर्पिणीकाल के तीसरे, चौथे और पाचवे आरे मे उसका जन्म और सद्भाव (सयम-विचरण) होता है तथा उत्सर्पिणीकाल के दूसरे, तीसरे और चौथे मे उसका जन्म और तीसरे, चौथे आरे मे उसका सदभाव होता है। महाविदेहक्षेत्र मे भी होता है। सहरण की अपेक्षा अन्य क्षेत्र (३० अकर्म-भूमियो) मे भी होता है। छेदोपस्थापनीयसयत, सामायिकसयतवत् जानना, किन्तु महाविदेहक्षेत्र मे वह नही होता। परिहारविशुद्धिकसयत का अवसर्पिणीकाल के तीसरे-चौथे आरे मे एव उत्सर्पिणी-काल के दूसरे-तीसरे आरे मे जन्म और तीसरे-चौथे आरे मे सद्भाव होता है। सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत का अवसर्पिणी के तीसरे-चौथे आरे मे जन्म और सद्भाव तथा उत्सर्पिणीकाल के दूसरे-तीसरे-चौथे आरे मे जन्म और तीसरे, चौथे आरे मे सद्भाव होता है। यह महाविदेहक्षेत्र मे भी होता है तथा इसका सहरण अन्यत्र भी होता है।[1]

सामायिकसयत का नोअवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणी के सुषमादि-समान तीन प्रकार के काल मे (देवकुरु आदि मे) बकुश के समान जन्म और सद्भाव का निषेध किया है तथा दु.षम-दु षमा-समान काल मे (महाविदेह क्षेत्र मे) सद्भाव कहा है। छेदोपस्थापनीयसयत का चारो पलिभाग मे (अर्थात् देवकुरु आदि मे) तथा महाविदेह क्षेत्र मे निषेध किया है।[2]

तेरहवाँ गतिद्वार : पंचविध संयतों में गतिप्ररूपणादि

६२ [१] सामाइयसंजए णं भंते ! कालगते समाणे कं गतिं गच्छति ?

गोयमा ! देवगतिं गच्छति।

[६२-१ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कालधर्म (मृत्यु) प्राप्त कर किस गति मे जाता है ?

[६२-१ उ] गौतम ! वह देवगति मे जाता है।

---

१ भगवती उपक्रम, पृष्ठ ६३५

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१३

[२] देवगतिं गच्छमाणे किं भवणवासीसु उववज्जेज्जा जाव वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! नो भवणवासीसु उववज्जेज्जा जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० ७६)

[६२-२ प्र.] भगवन् ! वह देवगति मे जाता हुआ (सामायिकसयत) भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको मे से किन देवो मे उत्पन्न होता है ?

[६२-२ उ] गौतम ! वह (उ ६, सू. ७६ मे कथित) कषायकुशील के समान भवनपति मे उत्पन्न नही होता, इत्यादि सब कहना ।

६३. एवं छेदोवट्ठावणिए वि ।

[६३] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी समझना चाहिए ।

६४. परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए (उ० ६ सु० ७३) ।

[६४] परिहारविशुद्धिकसयत की गति (उ ६, सू ७३ मे उल्लिखित) पुलाक के समान जानना चाहिए ।

६५. सुहुमसंपराए जहा नियठे (उ० ६ सु० ७६) ।

[६५] सूक्ष्मसम्परायसयत की गति (उ ६, सू ७७ मे कथित) निर्ग्रन्थ के समान जानना चाहिए ।

६६. अहक्खाते० पुच्छा ।

गोयमा ! एव अहक्खायसजए वि जाव अजहन्नमणुक्कोसेण अणुत्तरविमाणेसु उववज्जेज्जा, अत्थेगइए सिज्झति जाव अत करेति ।

[६६ प्र] भगवन् ! यथाख्यातसयत कालधर्म प्राप्त कर किस गति मे जाता है ?

[६६ उ] गौतम ! यथाख्यातसयत भी पूर्वकथनानुसार अजघन्यानुत्कृष्ट अनुत्तरविमान मे उत्पन्न होता है और कोई सिद्ध हो जाता है, यावत् सर्व दु खो का अन्त करता है ।

६७. सामाइयसजए ण भते ! देवलोगेसु उववज्जमाणे किं इंदत्ताए उववज्जति० पुच्छा ।

गोयमा ! अविराहण पडुच्च एव जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० ८२) ।

[६७ प्र] भगवन् ! देवलोको मे उत्पन्न होता हुआ सामायिकसयत क्या इन्द्ररूप से उत्पन्न होता है ? इत्यादि प्रश्न ।

[६७ उ.] गौतम ! अविराधना की अपेक्षा (उ. ६, सू ८२ मे कथित) कषायकुशील के समान जानना ।

६८. एवं छेदोवट्ठावणिए वि ।

[६८] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे जानना ।

६९. परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए (उ० ६ सु० ७९) ।

[६९] परिहारविशुद्धिकसयत का कथन पुलाक के समान जानना चाहिए ।

७०. सेसा जहा नियंठे (उ० ६ सु० ८३)।

[७०] शेष (सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत) के विषय मे निर्ग्रन्थ के समान (उ ६, सू. ८३ के अनुसार) जानना।

७१. सामाइयसंजयस्स ण भंते! देवलोगेसु उववज्जमाणस्स केवतियं कालं ठिती पन्नत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं दो पलिओवमाइ, उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइं।

[७१ प्र.] भगवन्! देवलोक मे उत्पन्न होते हुए सामायिकसयत की कितने काल की स्थिति कही गई है?

[७१ उ] गौतम! जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है।

७२. एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

[७२] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत की स्थिति भी समझना चाहिए।

७३. परिहारविसुद्धियस्स पुच्छा।

गोयमा! जहन्नेण दो पलिओवमाइ, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइ।

[७३ प्र] भगवन्! देवलोक मे उत्पन्न होते हुए परिहारविशुद्धिकसयत की स्थिति कितने काल की होती है?

[७३ उ.] गौतम! उसकी स्थिति जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की होती है।

७४. सेसाणं जहा नियंठस्स (उ० ६ सु० ८८)। [दारं १३]।

[७४] शेष दो सयतो (सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत) को स्थिति (उ ६, सू ८८ मे कथित) निर्ग्रन्थ के समान जानना चाहिए। [तेरहवां द्वार]।

विवेचन—गति, उत्पत्ति और स्थिति—सामायिक और छेदोपस्थापनीय सयत देवगति मे वैमानिक देवो मे जघन्य सौधर्मकल्प मे और उत्कृष्ट अनुत्तरविमान मे उत्पन्न होते है तथा इन दोनो सयतो की स्थिति जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है। परिहारविशुद्धि-सयत देवगति मे, वैमानिक देवो मे जघन्य सौधर्मकल्प मे और उत्कृष्ट सहस्रार देवलोक मे उत्पन्न होता है। सूक्ष्मसम्पराय देवगति मे, वैमानिक देवो मे अजघन्यानुत्कृष्ट अनुत्तरविमान मे उत्पन्न होते हैं, जिनकी स्थिति अजघन्यानुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है। यथाख्यातसयत देवगति मे वैमानिक देवो मे अजघन्यानुत्कृष्ट अनुत्तरविमानो मे उत्पन्न होते हैं, कोई-कोई सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होते हैं।[1]

चौदहवां संयमद्वार : पंचविध संयतों में अल्पबहुत्वसहित संयमस्थानप्ररूपण

७५. सामाइयसजयस्स ण भंते! केवतिया सजमठाणा पन्नत्ता?

गोयमा! असंखेज्जा सजमठाणा पन्नत्ता।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू पा टि) भा २, पृ १०४७-१०४८

[७५ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत के कितने सयमस्थान कहे हैं ?

[७५ उ.] गौतम ! उसके असख्येय सयमस्थान कहे हैं।

७६. एव जाव परिहारविसुद्धियस्स।

[७६] इसी प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिकसयत तक के संयमस्थान होते हैं।

७७. सुहुमसपरायसजयस्स० पुच्छा।

गोयमा ! असंखेज्जा अतोमुहुत्तिया संजमठाणा पन्नत्ता।

[७७ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसयम के कितने सयमस्थान कहे है ?

[७७ उ] गौतम ! उनके असख्येय अन्तर्मुहूर्त के समय बराबर सयमस्थान कहे है।

७८. अहक्खायसजयस्स० पुच्छा।

गोयमा ! एगे अजहन्नमणुक्कोसए सजमठाणे।

[७८ प्र] भगवन् ! यथाख्यातसयत के सयमस्थान कितने कहे है ?

[७८ उ] गौतम ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट एक ही सयमस्थान कहा है।

७९. एएसि ण भते ! **सामाइय-छेदोवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिय-सुहुमसंपराय-अहक्खाय-सजयाण सजमठाणाणं कयरे कयरेहितो जाव विसेसाहिया वा ?**

गोयमा ! सव्वत्थोवे अहक्खायसंजयस्स एगे अजहन्नमणुक्कोसए सजमट्ठाणे, सुहुमसपराग-संजयस्स अतोमुहुत्तिया सजमठाणा असखेज्जगुणा, परिहारविसुद्धियसंजयस्स सजमठाणा असखेज्जगुणा, सामाइयसजयस्स छेदोवट्ठावणियसजयस्स य एएसि णं सजमठाणा दोण्ह वि तुल्ला असखेज्जगुणा। [दार १४]।

[७९ प्र] भगवन् ! सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयत, इनके सयमस्थानो मे किसके सयमस्थान किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[७९ उ] गौतम ! इनमे से यथाख्यातसयत का एक अजघन्यानुत्कृष्ट सयमस्थान है और वही सबसे अल्प है, उससे सूक्ष्मसम्परायसयत के अन्तर्मुहूर्त-सम्बन्धी सयमस्थान असख्यातगुणे है। उनसे परिहारविशुद्धिसयत के सयमस्थान असख्येयगुणे है। उनसे सामायिकसयत और छेदोपस्थापनीय सयत (इन दोनो के) सयमस्थान तुल्य है और असख्येयगुणे हैं। [चौदहवां द्वार]

विवेचन—सयमस्थान के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण—सूक्ष्मसम्परायसयत की स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। उसके चारित्रविशुद्धि के परिणाम समय-समय मे विशिष्ट-विशिष्ट होने से असख्यात होते हैं, किन्तु यथाख्यातसयत का सयमस्थान तो एक ही होता है। सयमस्थान के अल्प-बहुत्व का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

असद्भावस्थापन से सभी सयमस्थान यदि २१ मान लिये जाएँ तो उनमे से सर्वोपरि जो एक है, वह यथाख्यातसयत का सयमस्थान है। उसके पश्चात् सूक्ष्मसम्परायसयत के ४ सयमस्थान है। वे उस एक की अपेक्षा असख्येयगुणे समझने चाहिए। तदनन्तर परिहारविशुद्धिकसयत के सयमस्थान

८ हैं। वे पहले वाले से असख्यातगुणे समझने चाहिए। उसके बाद आते है सामायिक और छेदोपस्थापनीय सयत के संयमस्थान, वे चार-चार समझने चाहिए, जो परस्पर तुल्य है और पूर्व से असंख्येयगुणे हैं।[1]

पन्द्रहवाँ निष्कर्ष (चारित्रपर्यव) द्वार : चारित्रपर्यव-प्ररूपणा

८०. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! केवतिया चरित्तपज्जवा पन्नत्ता ?

गोयमा ! अणंता चरित्तपज्जवा पन्नत्ता।

[८० प्र.] भगवन् ! सामायिकसयत के चारित्रपर्यव कितने कहे है ?

[८० उ] गौतम ! उसके अनन्त चारित्रपर्यव कहे है।

८१. एव जाव अहक्खायसंजयस्स।

[८१] इसी प्रकार यथाख्यातसयत तक के चारित्रपर्यव के विषय मे जानना चाहिए।

पंचविध संयतों मे स्वस्थान-परस्थान-चारित्रपर्यवों की अपेक्षा हीन-तुल्य-अधिक-प्ररूपणा

८२. सामाइयसंजए ण भंते ! सामाइयसजयस्स सट्ठाणसन्निगासेण चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे, तुल्ले, अब्भहिए ?

गोयमा ! सिय हीणे०, छट्ठाणवडिए।

[८२ प्र.] भगवन् ! एक सामायिकसयत, दूसरे सामायिकसयत के स्वस्थानसन्निकर्ष (सजातीय चारित्रपर्यवो) की अपेक्षा क्या हीन होता है, तुल्य होता है अथवा अधिक होता है ?

[८२ उ] गौतम ! वह कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। वह हीनाधिकता मे षट्स्थानपतित होता है।

८३. सामाइयसजए णं भंते ! छेदोवट्ठावणियसजयस्स पराट्ठाणसन्निगासेण चरित्तपज्जवेहिं० पुच्छा।

गोयमा ! सिय हीणे०, छट्ठाणवडिए।

[८३ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत, छेदोपस्थानीयसयत के परस्थानसन्निकर्ष (विजातीय चारित्रपर्यवो) की अपेक्षा क्या हीन, तुल्य या अधिक होता है।

[८३ उ] गौतम ! वह भी कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। वह भी हीनाधिकता मे षट्स्थानपतित होता है।

८४. एवं परिहारविसुद्धियस्स वि।

[८४] इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक सयत के विषय मे जानना चाहिए।

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१३

८५. सामाइयसंजए णं भंते ! सुहुमसंपरायसंजयस्स परट्ठाणसन्निगासेणं चरित्तपज्जवे० पुच्छा।

गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए; अणंतगुणहीणे।

[८५ प्र.] भगवन् ! सामायिकसंयत, सूक्ष्मसम्परायसयत के परस्थानसन्निकर्ष की अपेक्षा क्या हीन, तुल्य या अधिक होता है ?

[८५ उ] गौतम ! वह हीन होता है, किन्तु तुल्य या अधिक नही होता। वह अनन्तगुण-हीन होता है।

८६. एवं अहक्खायसंजयस्स वि।

[८६] इसी प्रकार यथाख्यातसयत के विषय मे जानना।

८७ एवं छेदोवट्ठावणिए वि। हेट्ठिल्लेसु तिसु वि समं छट्ठाणवडिए, उवरिल्लेसु दोसु तहेव हीणे।

[८७] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत भी नीचे के तीनो सयतो (परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्म-सम्पराय और यथाख्यात) के साथ षट्स्थानपतित होता है और ऊपर के दो सयतो के साथ उसी प्रकार अनन्तगुणहीन होता है।

८८. जहा छेदोवट्ठावणिए तहा परिहारविसुद्धिए वि।

[८८] परिहारविशुद्धिकसयत का कथन छेदोपस्थापनीयसयत के समान जानना चाहिए।

८९. सुहुमसपरायसजए णं भंते ! सामाइयसजयस्स परट्ठाण० पुच्छा।

गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए—अणतगुणमब्भहिए।

[८९ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसयत, सामायिकसयत के परस्थानसन्निकर्ष (विजातीय चारित्रपर्यवो) की अपेक्षा हीन, तुल्य या अधिक होता है ?

[८९ उ.] गौतम ! वह हीन और तुल्य नही, किन्तु अधिक होता है, अनन्तगुण अधिक होता है।

९०. एवं छेदोवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिएसु वि समं। सट्ठाणे सिय हीणे, नो तुल्ले, सिय अब्भहिए। जदि हीणे अणंतगुणहीणे। अह अब्भहिए अणतगुणमब्भहिए।

[९०] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धिकसयत के साथ भी जानना। स्वस्थानसन्निकर्ष (अपने सजातीय चारित्रपर्यवो) की अपेक्षा से कदाचित् हीन और कदाचित् अधिक होते हैं, किन्तु तुल्य नही होते। यदि हीन होते हैं तो अनन्तगुण हीन और अधिक होते हैं तो अनन्त-गुण अधिक होते।

९१. सुहुमसंपरायसंजयस्स अहक्खायसंजयस्स य परट्ठाण० पुच्छा।

गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए; अणंतगुणहीणे।

[९१ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसयत, सामायिकसयत के परस्थानसन्निकर्ष (विजातीय चारित्रपर्यवो) की अपेक्षा क्या हीन, तुल्य अथवा अधिक होता है ?

[९१ उ] गौतम ! वह हीन होता है, किन्तु तुल्य या अधिक नही होता। वह अनन्तगुण हीन होता है।

९२ अहक्खाए हेट्ठिल्लाण चउण्ह वि नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए—अणंतगुणमब्भहिए। सट्ठाणे नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए।

[९२] यथाख्यातसयत नीचे के चार सयतो की अपेक्षा हीन भी नही तथा तुल्य भी नही, किन्तु अधिक होता है। वह अनन्तगुण अधिक होता है। स्वस्थानसन्निकर्ष (सजातीय) चारित्रपर्यवो की अपेक्षा वह हीन भी नही और अधिक भी नही, किन्तु तुल्य होता है।

९३. एएसि णं भंते ! सामाइय-छेदोवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिय-सुहुमसंपराय-अहक्खाय-सजयाण जहन्नुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सामाइयसंजयस्स छेदोवट्ठावणियसजयस्स य एएसि ण जहन्नगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला सव्वत्थोवा, परिहारविसुद्धियसजस्य जहन्नगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा, तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणतगुणा। सामाइयसंजयस्स छेदोवट्ठावणियसजयस्स य, एएसि ण उक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा। सुहुमसंपरायसजयस्स जहन्नगा चरित्तपज्जवा अणतगुणा, तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा। अहक्खायसंजयस्स अजहन्न-मणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणतगुणा। [दार १५]।

[९३ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत, छेदोपस्थापनीयसयत, परिहारविशुद्धिकसयत, सूक्ष्म-सम्परायसयत और यथाख्यातसयत, उनके जघन्य और उत्कृष्ट चारित्रपर्यवो मे से किसके चारित्र-पर्यव किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[९३ उ] गौतम ! सामायिकसयत और छेदोपस्थापनीयसयत, इन दोनो के जघन्य चारित्र-पर्यव परस्पर तुल्य और सबसे अल्प है। उनसे परिहारविशुद्धिकसंयत के जघन्य चारित्रपर्यव अनन्तगुणे हैं। उनसे परिहारविशुद्धिक सयत के उत्कृष्ट चारित्रपर्यव अनन्तगुणे है। उनसे सामायिकसयत और छेदोपस्थापनीयसयत के उत्कृष्ट चारित्रपर्यव अनन्तगुणे है और परस्पर तुल्य हैं। उनसे सूक्ष्मसम्परायसयत के जघन्य चारित्रपर्यव अनन्तगुणे है, उनसे सूक्ष्मसम्परायसयत के उत्कृष्ट चारित्रपर्यव अनन्तगुणे है। उनसे यथाख्यातसयत के अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्रपर्यव अनन्त-गुणे हैं। [पन्द्रहवाँ द्वार]

विवेचन—चारित्रपर्यवो की हीनाधिक-तुल्यता का कारण—सामायिकसयत के सयमस्थान असख्यात होते है। उनमे से जब एक सयत हीन शुद्धि वाला होता है और दूसरा सयत कुछ अधिक शुद्धि वाला होता है, तब उन दोनो सामायिकसयतो मे से एक (चारित्रपर्यवो से) हीन और दूसरा (चारित्रपर्यवो से) अधिक कहलाता है। इस हीनाधिकता मे षट्स्थान-पतितता होती है। जब दोनो के सयमस्थान समान होते हैं तब तुल्यता होती है।[1]

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१३

सोलहवाँ योगद्वार : पंचविध संयतों में योग-प्ररूपणा

९४. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा, अजोगी होज्जा ?

गोयमा ! सजोगी जहा पुलाए (उ० ६ सु० ११७)।

[९४ प्र] भगवन् ! सामायिकसंयत सयोगी होता है अथवा अयोगी होता है ?

[९४ उ] गौतम ! वह सयोगी होता है, इत्यादि सब कथन (उ ६, सू ११७ में उक्त) पुलाक के समान जानना चाहिए।

९५. एवं जाव सुहुमसंपरायसंजए।

[९५] इसी प्रकार सूक्ष्मसम्परायसंयत तक समझना चाहिए।

९६. अहक्खाए जहा सिणाए। (उ० ६ सु० १२०) [दारं १६]।

[९६] यथाख्यातसंयत का कथन (उ. ६, सू १२० में कथित) स्नातक के समान है। [सोलहवाँ द्वार]

सत्तरहवाँ उपयोगद्वार : पंचविध संयतों में उपयोग-निरूपण

९७. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा, अणागारोवउत्ते होज्जा ?

गोयमा ! सागारोवउत्ते जहा पुलाए (उ० ६ सु० १२२)।

[९७ प्र] भगवन् ! समायिकसंयत साकारोपयोगयुक्त होता है या अनाकारोपयोगयुक्त होता है ?

[९७ उ.] गौतम ! वह साकारोपयोगयुक्त होता है, इत्यादि कथन पुलाक के समान जानना।

९८. एवं जाव अहक्खाए, नवरं सुहुमसंपराए सागारोवउत्ते होज्जा, नो अणागारोवउत्ते होज्जा [दारं १७]।

[९८] इसी प्रकार यथाख्यातसंयत-पर्यन्त कहना चाहिए, किन्तु सूक्ष्मसम्पराय केवल साकारोपयोगयुक्त ही होता है, अनाकारोपयोगयुक्त नहीं। [सत्तरहवाँ द्वार]

विवेचन—उपयोग : किसमें कौन सा ?—सामायिक आदि चार संयतों में साकारोपयोग और अनाकारोपयोग दोनों ही उपयोग होते हैं, किन्तु सूक्ष्मसम्परायसंयत में एकमात्र साकारोपयोग ही होता है, क्योंकि सूक्ष्मसम्परायसंयत साकारोपयोग में ही दसवें गुणस्थान में प्रविष्ट होता है और साकारोपयोग का समय पूर्ण होने से पूर्व ही वह दसवें गुणस्थान को छोड़ देता है। इस गुणस्थान का स्वभाव ही ऐसा है।[1]

अठारहवाँ कषायद्वार : पंचविध संयतों में कषाय-प्ररूपणा

९९. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ?

गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा, जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० १२९)।

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९१४

[९९ प्र.] भगवन् ! सामायिकसंयत सकषायी होता है अथवा अकषायी होता है ?

[९९ उ.] गौतम ! वह सकषायी होता है, अकषायी नहीं, इत्यादि (उ. ६, सू. १२९ में कथित) कषायकुशील के समान जानना चाहिए।

१००. एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

[१००] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय भी समझना।

१०१. परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए (उ० ६ सु० १२४)।

[१०१] परिहारविशुद्धिकसंयत का कथन (उ. ६, सू. १२४ में उक्त) पुलाक के समान है।

१०२. सुहुमसंपरागसंजए० पुच्छा।

गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा।

[१०२ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसंयत सकषायी होता है अथवा अकषायी होता है ?

[१०२ उ.] गौतम ! वह सकषायी होता है, किन्तु अकषायी नहीं होता।

१०३. जदि सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

गोयमा ! एगंसि संजलणे लोभे होज्जा।

[१०३ प्र.] भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है तो उसमें कितने कषाय होते हैं ?

[१०३ उ.] गौतम ! उसमें एकमात्र संज्वलनलोभ होता है।

१०४. अहक्खायसंजए जहा नियंठे (उ० ६ सु० १३०)। [दारं १८]।

[१०४] यथाख्यातसंयत का कथन (उ. ६, सू. १३० में उक्त) निर्ग्रन्थ के समान है। [अठारहवाँ द्वार]

विवेचन—निष्कर्ष—यथाख्यातसंयत के सिवाय सभी संयत सकषायी होते हैं। सूक्ष्मसम्परायसंयत सकषायी तो होता है किन्तु उसमें एकमात्र संज्वलन लोभ होता है। यथाख्यातसंयत अकषायी होता है। उनमें कई उपशान्तकषाय होते हैं, कई क्षीणकषाय होते हैं।[1]

उन्नीसवाँ लेश्याद्वार : पंचविध संयतों में लेश्याप्ररूपण

१०५. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा, अलेस्से होज्जा ?

गोयमा ! सलेस्से होज्जा, जहा कसायकुसीले (उ० ६ सु० १३७)।

[१०५ प्र.] भगवन् ! सामायिकसंयत सलेश्य होता है अथवा अलेश्य होता है ?

[१०५ उ.] गौतम ! वह सलेश्य होता है, इत्यादि वर्णन (उ. ६, सू. १३७ में कथित) कषायकुशील के समान जानना।

१०६. एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

[१०६] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीसंयत के विषय में कहना चाहिए।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मू. पा. टि.), पृ. १०५१

१०७. परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए (उ० ६ सु० १३३)।

[१०७] परिहारविशुद्धिकसयत का कथन (उ ६, सू १३३ मे उल्लिखित) पुलाक के समान है।

१०८. सुहुमसंपराए जहा नियंठे (उ० ६ सु० १३९)।

[१०८] सूक्ष्मसम्परायसयत की वक्तव्यता (उ ६, सू १३९ मे कथित) निर्ग्रन्थ के समान है।

१०९. अहक्खाए जहा सिणाए (उ० ६ सु० १४१), नवरं जइ सलेस्से होज्जा एगाए सुक्कलेसाए होज्जा। [दार १९]।

[१०९] यथाख्यातसयत का कथन (उ ६ सू १४१ मे कथित) स्नातक के समान है। किन्तु यदि वह सलेश्य होता है तो एकमात्र शुक्ललेश्यी होता है। [उन्नीसवाँ द्वार]

विवेचन-निष्कर्ष—सामायिक से लेकर छेदोपस्थानीयसयत तक सलेश्यी होते है। परिहारविशुद्धिक पुलाकवत् तथा सूक्ष्मसम्पराय निर्ग्रन्थ के समान होते हैं। यथाख्यातसयत का कथन स्नातक के समान है। वह सलेश्य भी होता है, अलेश्य भी। यदि सलेश्य होता है तो स्नातक परमशुक्ललेश्यायुक्त होता है, किन्तु यथाख्यातसयत शुक्ललेश्या वाला ही होता है।[1]

बीसवाँ परिणामद्वार : वर्द्धमानादि-परिणाम-प्ररूपणा

११०. सामाइयसजए णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, हायमाणपरिणामे, अवट्ठियपरिणामे ?

गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे, जहा पुलाए (उ० ६ सु० १४३)।

[११० प्र] भगवन् ! सामायिकसयत वर्द्धमान परिणाम वाला होता है, हीयमान परिणाम वाला होता है, अथवा अवस्थित परिणाम वाला होता है ?

[११० उ] गौतम ! वह वर्द्धमान परिणाम वाला होता है, इत्यादि वर्णन (उ ६, सू १३४ मे कथित) पुलाक के समान जानना।

१११. एवं जहा परिहारविसुद्धिए।

[१११] इसी प्रकार परिहारविशुद्धिकसयत पर्यन्त कहना।

११२ सुहुमसंपराय० पुच्छा।

गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे वा होज्जा, हायमाणपरिणामे वा होज्जा, नो अवट्ठियपरिणामे होज्जा।

[११२ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मसम्पराय वर्द्धमान परिणाम वाला होता है ? इत्यादि प्रश्न।

[११२ उ] गौतम ! वह वर्द्धमान परिणाम वाला होता है या हीयमान परिणाम वाला होता है, किन्तु अवस्थित परिणाम वाला नही होता।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्तं भा २ (मू पा टिप्पणयुक्त), पृ १०५१

११३. अहक्खाते जहा नियंठे (उ० ६ सु० १४५)।

[११३] यथाख्यातसयत का कथन (उ ६, सू १४५ मे कथित) निर्ग्रन्थ के समान है।

११४. सामाइयसंजए ण भते ! केवतिय काल वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समय, जहा पुलाए (उ० ६ सु० १४७)।

[११४ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कितने काल तक वर्द्धमान परिणामयुक्त रहता है ?

[११४ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय तक (वर्द्धमान परिणामयुक्त) रहता है, इत्यादि वर्णन (उ ६, सू १४७ मे कथित) पुलाक के समान है।

११५. एवं जाव परिहारविसुद्धिए।

[११५] इसी प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिकसयत तक कहना चाहिए।

११६ [१] सुहुमसंपरागसंजए णं भते ! केवतिय कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समय, उक्कोसेण अतोमुहुत्तं।

[११६-१ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसयत कितने काल तक वर्द्धमान परिणामयुक्त रहता है ?

[११६-१ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक वर्द्धमान परिणाम वाला रहता है।

[२] केवतियं कालं हायमाणपरिणामे ?

एवं चेव।

[११६-२ प्र] भगवन् ! वह कितने काल तक हीयमान परिणाम वाला रहता है ?

[११६-२ उ.] गौतम ! वह पूर्ववत् (जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक अन्तर्मुहूर्त तक) जानना चाहिए।

११७. [१] अहक्खातसजए ण भते ! केवतिय काल वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं।

[११७-१ प्र] भगवन् ! यथाख्यातसयत कितने काल वर्द्धमान परिणाम वाला रहता है ?

[११७-१ उ] गौतम ! वह जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक (वर्द्धमान परिणामी रहता है।)

[२] केवतियं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी। [दार २०]।

[११७-२ प्र] वह कितने काल तक अवस्थितपरिणाम वाला होता है ?

[११७-२ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटिवर्ष तक (अवस्थितपरिणामी रहता है।) [बीसवां द्वार]

विवेचन—सूक्ष्मसम्परायसयत के परिणाम—सूक्ष्मसम्परायसयत जब श्रेणो चढते हैं तब वर्द्धमान परिणाम वाले होते हैं और जब श्रेणी से गिरते हैं तब हीयमान परिणाम वाले होते हैं। इस गुणस्थान का स्वभाव ही ऐसा होता है कि उसमे अवस्थित परिणाम नही होते। सूक्ष्मसम्परायसयत का वर्द्धमान परिणाम जघन्य एक समय मृत्यु की अपेक्षा से होता है। वर्द्धमान परिणाम को प्राप्त करने के एक समय बाद ही उसका मरण हो जाए तो उसका जघन्य परिणाम होता है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त वर्द्धमान परिणाम तो उस गुणस्थान की स्थिति ही है। इसी प्रकार हीयमान परिणाम के विषय मे समझना चाहिए।

यथाख्यातसंयत के परिणाम जो यथाख्यातसयत केवलज्ञान को प्राप्त करते है और जो शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते है उनका वर्द्धमान परिणाम जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होता है। उसके बाद उसका व्यवच्छेद हो जाता है। अवस्थित परिणाम जघन्य एक समय का उस अपेक्षा से घटित होता है, जबकि उपशम अवस्था की प्राप्ति के प्रथम समय के बाद ही उसका मरण हो जाए। उत्कृष्ट अवस्थित परिणाम देशोन पूर्वकोटि उस अपेक्षा से घटित होता है, जबकि पूर्वकोटिवर्ष की आयु वाला सातिरेक आठ वर्ष की आयु मे सयम अगीकार करके शीघ्र ही केवलज्ञान प्राप्त कर ले।[1]

इक्कीसवाँ बन्धद्वार:कर्म- प्रकृति-बन्ध-प्ररूपणा

११८. सामाइयसजए ण भते ! कति कम्मपगडीओ बंधइ ?

गोयमा ! सत्तविहबधए वा, अट्ठविहबंधए वा, एव जहा बउसे (उ० ६ सु० १५२)।

[११८ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधता है ?

[११८ उ] गौतम ! वह सात या आठ कर्मप्रकृतियो को बाधता है, इत्यादि (उ ६, सू १५२ मे उल्लिखित) बकुश के समान जानना।

११९ एव जाव परिहारविसुद्धिए।

[११९] इसी प्रकार परिहारविशुद्धिकसयत पर्यन्त कहना चाहिए।

१२०. सुहुमसंपरागसजए० पुच्छा।

गोयमा ! आउय-मोहणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ बधइ।

[१२० प्र] भगवन् ? सूक्ष्मसम्परायसयत कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधता है ?

[१२० उ] गौतम ! वह आयुष्य और मोहनीय कर्म को छोड कर शेष छह कर्मप्रकृतियाँ बांधता है।

१२१. अहक्खायसजए जहा सिणाए (उ० ६ सु० १५६) [दारं २१]।

[१२१] यथाख्यातसयत का कथन (उ ६, सू १५६ मे सूचित) स्नातक के समान है। [इक्कीसवाँ द्वार]

विवेचन - सूक्ष्मसम्परायसंयत के ६ कर्मों का ही बन्ध क्यों ?— आयुष्यकर्म का बन्ध सातवे अप्रमत्त-गुणस्थान तक होता है। सूक्ष्मसम्परायसयत दसवे गुणस्थानवर्ती होते हैं, इसलिए वे आयुष्य-

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१४

कर्म का बन्ध नही करते तथा बादर कषाय का उदय न होने से मोहनीयकर्म का बन्ध भी नही करते। अत: इन दो के अतिरिक्त शेष छह कर्मप्रकृतियो का बन्ध होता है।[1]

१२२. सामाइयसंजए ण भंते! कति कम्मप्पगडीओ वेदेति ?

गोयमा! नियमं अट्ठ कम्मप्पगडीओ वेदेति।

[१२२ प्र] भगवन्! सामायिकसयत कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

[१२२ उ] गौतम! वह नियम से आठ कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है।

१२३. एव जाव सुहुमसपराग।

[१२३] इसी प्रकार यावत् सूक्ष्मसम्परायसयत के विषय मे जानना।

बाईसवाँ वेदनद्वार : कर्मप्रकृतिवेदन की प्ररूपणा

१२४. अहक्खाए० पुच्छा।

गोयमा! सत्तविहवेदए वा, चउव्विहवेदए वा। सत्त वेदेमाणे मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ वेदेति। चत्तारि वेदेमाणे वेदणिज्जाऽऽउय-नाम-गोयाओ चत्तारि कम्मप्पगडीओ वेदेति। [दार २२]।

[१२४ प्र] भगवन्! यथाख्यातसयत कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ?

[१२४ उ] गौतम! वह या तो सात कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है या फिर चार का वेदन करता है। यदि सात कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है तो मोहनीयकर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है। यदि चार का वेदन करता है तो वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र, इन चार कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है। [बाईसवाँ द्वार]

विवेचन—यथाख्यातसंयत के कर्मप्रकृतियो का वेदन—यथाख्यातसयत के निर्ग्रन्थदशा मे मोहनीयकर्म का क्षय या उपशम हो जाने से वह मोहनीय को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है और स्नातक-अवस्था मे चार घाती कर्मों (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय) का क्षय हो जाने से वह शेष चार अघाती कर्मों का ही वेदन करता है।[2]

तेईसवाँ कर्मोदीरणद्वार : कर्मों की उदीरणा की प्ररूपणा

१६५. सामाइयसंजए णं भते। कति कम्मप्पगडीओ उदीरेति ?

गोयमा! सत्तविह० जहा बउसो (उ० ६ सु० १६२)।

[१२५ प्र] भगवन्! सामायिकसयत कितनी कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है ?

[१२५ उ] गौतम! वह सात कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है, इत्यादि वर्णन (उ. ६, सू १६२ मे कथित) बकुश के समान जानना।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१५

२. भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९१५

१२६. एवं जाव परिहारविसुद्धिए।

[१२६] इसी प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिकसयत पर्यन्त कहना चाहिए।

१२७. सुहुमसंपराए० पुच्छा।

गोयमा ! छव्विहउदीरए वा, पंचविहउदीरए वा। छ उदीरेमाणे आउय-वेदणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेइ। पच उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मप्पगडीओ उदीरेति।

[१२७ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसयत कितनी कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है ?

[१२७ उ] गौतम ! वह छह या पाच कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है। यदि छह की उदीरणा करता है तो आयुष्य और वेदनीय को छोड कर शेष छह कर्मप्रकृतियो को उदीरता है, यदि पाच की उदीरणा करता है तो आयुष्य, वेदनीय और मोहनीय को छोडकर शेष पाच कर्मप्रकृतियो को उदीरता है।

१२८. अहक्खातसजए० पुच्छा।

गोयमा ! पचविहउदीरए वा, दुविहउदीरए वा, अणुदीरए वा। पंच उदीरेमाणे आउय-वेदणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पच उदीरेति। सेस जहा नियंठस्स (उ० ६ सु० १६५)। [दार २३]।

[१२८ प्र] भगवन् ! यथाख्यातसयत कितनी कर्म-प्रकृतियो की उदीरणा करता है ?

[१२८ उ] गौतम ! वह पाच या दो कर्मप्रकृतियो की उदीरणा करता है या अनुदीरक होता है। यदि वह पाच की उदीरणा करता है तो आयुष्य, वेदनीय और मोहनीय को छोड कर शेष पाच कर्मप्रकृतियो को उदीरता है, इत्यादि शेष वर्णन (उ ६, सू १६५ के कथित) निर्ग्रन्थ के समान जानना चाहिए। [तेईसवां द्वार]

विवेचन—सामायिक से लेकर परिहारविशुद्धिकसयत तक बकुश की तरह सात, आठ या छह कर्मप्रकृतियो का उदीरक होता है। सात मे आयुष्यकर्म को छोडकर और छह मे आयुष्य और वेदनीय को छोड कर शेष छह कर्मप्रकृतियो का उदीरक होता है। सूक्ष्मसम्परायसयत छह या पाच का उदीरक होता है, यह मूल मे स्पष्ट है। यथाख्यातसयत आयु, वेदनीय और मोहनीय, इन तीन को छोड कर शेष पाच का उदीरक होता है अथवा नाम और गोत्र इन दो कर्मप्रकृतियो का उदीरक होता है अथवा किसी का भी उदीरक नही होता।[1]

चौवीसवां हान-उपसम्पद्-द्वार : पंचविध संयतों के स्वस्थान-त्याग परस्थान-प्राप्ति-प्ररूपणा

१२९. सामाइयसजए णं भंते ! सामाइयसंजयत्तं जहमाणे किं जहति ? किं उवसंपज्जइ ?

गोयमा ! सामाइयसंजयत्तं जहति; छेदोवट्ठावणियसंजयं वा सुहुमसंपरायसंजयं वा असंजम वा संजमासंजमं वा उवसंपज्जति।

१ भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका, भा १६, पृ. ३१६-३१७

[१२९ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत, सामायिकसयतत्व त्यागते हुए किसको छोडता है ग्रौर किसे ग्रहण करता है ?

[१२९ उ] गौतम ! वह सामायिकसयतत्व (सयम) को छोडता है ग्रौर छेदोपस्थापनीयसयम, सूक्ष्मसम्परायसयम, ग्रसयम ग्रथवा सयमासयम को ग्रहण करता है।

१३०. छेदोवट्ठावणिए० पुच्छा।

गोयमा ! छेदोवट्ठावणियसजयत्त जहति; सामाइयसजम वा परिहारविसुद्धियसंजम वा ग्रसंजम वा संजमासजम वा उवसपज्जति।

[१३० प्र] भगवन् ! छेदोपस्थापनीयसयत छेदोपस्थापनीयसयतत्व को छोडते हुए किसे छोडता है ग्रौर किसे ग्रहण करता है ?

[१३० उ] गौतम ! वह छेदोपस्थापनीयसयतत्व का त्याग करता है ग्रौर सामायिकसयम, परिहारविशुद्धिकसयम, सूक्ष्मसम्परायसयम, ग्रसयम या सयमासयम को प्राप्त करता है।

१३१. परिहारविसुद्धिए० पुच्छा।

गोयमा ! परिहारविसुद्धियसजयत्त जहति; छेदोवट्ठावणियसंजमं वा ग्रसंजम वा उपसपज्जइ।

[१३१ प्र] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयत परिहारविशुद्धिकसयतत्व को छोडता हुग्रा किसका त्याग करता है ग्रौर किसको ग्रहण करता है ?

[१३१ उ] गौतम ! वह परिहारविशुद्धिकसयतत्व का त्याग करता है ग्रौर छेदोपस्थापनीयसयम या ग्रसयम को ग्रहण करता है।

१३२. सुहुमसंपराए० पुच्छा।

गोयमा ! सुहुमसंपरागसंजयत्त जहति; सामाइयसंजमं वा छेदोवट्ठावणियसजमं वा ग्रहक्खायसजमं वा ग्रसंजम वा उवसपज्जइ।

[१३२ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसयत सूक्ष्मसम्परायसयतत्व को छोडता हुग्रा किसका त्याग करता है ग्रौर किसको ग्रहण करता है ?

[१३२ उ] गौतम ! वह सूक्ष्मसम्परायसयतत्व को छोडता है ग्रौर सामायिकसयम, छेदोपस्थापनीयसयम, सूक्ष्मसम्परायसयम, ग्रसयम ग्रथवा सयमासयम को ग्रहण करता है।

१३३ ग्रहक्खायसंजए० पुच्छा।

गोयमा ! ग्रहक्खायसजयत्तं जहति; सुहुमसपरागसंजम वा ग्रस्संजमं वा सिद्धिगति वा उवसंपज्जति। [दार २४]।

[१३३ प्र.] भगवन् ! यथाख्यातसयत यथाख्यातसयतत्व को त्याग कर किसे त्यागता यावत् किसे प्राप्त करता है ? इत्यादि प्रश्न।

[१३३ उ] गौतम ! वह यथाख्यातसयतत्व का त्याग करता है ग्रौर सूक्ष्मसम्परायसंयम, ग्रसयम या सिद्धिगति को प्राप्त करता है। [चोवीसवां द्वार]

विवेचन—पांचो प्रकार के सयतों द्वारा त्याग और ग्रहण : एक विश्लेषण—(१) सामायिकसयत सामायिकसयम को छोड कर छेदोपस्थापनीयसयम तब ग्रहण करता है जब या तो वह तेईसवें तीर्थंकर के तीर्थ से चौवीसवे तीर्थंकर के शासन (तीर्थ) मे आता है, तब वह चातुर्याम धर्म से पंच-महाव्रतरूप धर्म का स्वीकार करता है अथवा जब प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर का शासनवर्ती शिष्य शिष्य-अवस्था से महाव्रतारोपण-अवस्था मे प्रवेश करता है तब भी वह सामायिकसयम से छेदोपस्थापनीय सयम प्राप्त करता है और जब श्रेणी पर आरोहण करता है तब सामायिकसयम से आगे बढकर सूक्ष्मसम्परायसयम प्राप्त करता है अथवा जब सयम के परिणामो से गिर जाने से सयमासयम अथवा असयम-अवस्था को प्राप्त करता है।

(२) छेदोपस्थानीयसयत अपना सयम छोडते हुए सामायिकसयम स्वीकार करता है, उदाहरणार्थ प्रथम तीर्थंकर का शासनवर्ती साधु, दूसरे तीर्थंकर के शासन को स्वीकार करते समय छेदोपस्थापनीयसयम को छोडकर सामायिकसयम स्वीकार करता है। अथवा छेदोपस्थापनीयसयम को छोडते हुए साधु परिहारविशुद्धिसयम स्वीकार करते हैं, क्योंकि छेदोपस्थापनीयसयत ही परिहारविशुद्धिसयम स्वीकार करने के योग्य होते है, इत्यादि।

(३) परिहारविशुद्धिकसयत परिहारविशुद्धिसयम को छोड कर पुन गच्छ (सघ) मे आने के कारण छेदोपस्थापनीयसयम स्वीकार करता है अथवा उस अवस्था मे कालधर्म को प्राप्त हो जाए तो वह देवो मे उत्पन्न होने के कारण असयम को प्राप्त करता है।

(४) सूक्ष्मसम्परायसयत श्रेणी से गिरते हुए सूक्ष्मसम्परायसयम को छोड कर यदि वह पहले सामायिकसयत हो तो सामायिकसयम प्राप्त करता है और यदि वह पहले छेदोपस्थापनीयसयत हो तो छेदोपस्थापनीयसयम प्राप्त करता है। यदि श्रेणी ऊपर चढे तो यथाख्यातसयम प्राप्त करता है और यदि वह काल करे तो देव होकर असयम को प्राप्त होता है।

(५) उपशमश्रेणी पर आरूढ होने वाला यथाख्यातसयत, श्रेणी से प्रतिपतित हो तो यथाख्यातसयम को छोडता हुआ सूक्ष्मसम्परायसयम को प्राप्त करता है और उस समय उसकी मृत्यु हो जाए तो देवो मे उत्पन्न होने के कारण असयम को प्राप्त करता है और यदि वह स्नातक हो तो सिद्धिगति को प्राप्त करता है।[1]

पच्चीसवाँ संज्ञाद्वार : पंचविध संयतों में संज्ञा की प्ररूपणा

१३४. सामाइयसजए ण भंते ! किं सण्णोवउत्ते होज्जा, नोसण्णोवउत्ते होज्जा ?

गोयमा ! सण्णोवउत्ते जहा बउसो (उ० ६ सु० १७४)।

[१३४ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत सज्ञोपयुक्त (आहारादि सज्ञा मे आसक्त) होता है या नोसज्ञोपयुक्त होता है ?

[१३४ उ] गौतम ! वह सज्ञोपयुक्त होता है, इत्यादि सब कथन (उ ६, सू १७४ मे लिखित) बकुश के समान जानना।

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१५

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन), भ. ७, पृ ३४६९-७०

१३५. एवं जाव परिहारविसुद्धिए।

[१३५] इसी प्रकार का कथन परिहारविशुद्धिकसयत पर्यन्त जानना चाहिए।

१३६. सुहुमसंपराए अहक्खाए य जहा पुलाए (उ० ६ सु० १७३)। [दारं २५]।

[१३६] सूक्ष्मसम्परायसयत और यथाख्यातसयत का कथन (उ ६, सू १७३ मे उक्त) पुलाक के समान जानना चाहिए। [पच्चीसवाँ द्वार]

छब्बीसवाँ आहारद्वार : पंचविध संयतों में आहारक-अनाहारक-प्ररूपणा

१३७. सामाइयसजए ण भंते ! किं आहारए होज्जा ?

जहा पुलाए (उ० ६ सु० १७८)।

[१३७ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत आहारक होता है या अनाहारक होता है ?

[१३७ उ] गौतम ! इसके विषय मे (उ ६, सू १७८ मे उक्त) पुलाक के समान जानना।

१३८. एवं जाव सुहुमसंपराए।

[१३८] इसी प्रकार सूक्ष्मसम्परायसयत तक जानना।

१३९. अहक्खाए जहा सिणाए (उ० ६ सु० १८०)। [दारं २६]।

[१३९] यथाख्यातसयत का कथन (उ ६, सू १८० मे कथित) स्नातक के समान जानना। [छब्बीसवाँ द्वार]

सत्ताईसवाँ भवग्रहणद्वार

१४०. सामाइयसंजए णं भंते ! कति भवग्गहणाइं होज्जा ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं, उक्कोसेणं अट्ठ।

[१४० प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कितने भव ग्रहण करता है ? (अर्थात् कितने भवो मे सामायिकसयम आता है ?)

[१४० उ] गौतम ! वह जघन्य एक भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

१४१. एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

[१४१] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी जानना।

१४२. परिहारविसुद्धिए० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं, उक्कोसेणं तिन्नि।

[१४२ प्र] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयत कितने भव ग्रहण करता है ?

[१४२ उ] गौतम ! वह जघन्य एक और उत्कृष्ट तीन भव ग्रहण करता है।

१४३. एवं जाव अहक्खाते। [दारं २७]।

[१४३] इसी प्रकार यावत् यथाख्यातसयत तक कहना चाहिए। [सत्ताईसवाँ द्वार]

विवेचन—भवग्रहण—सामायिक और छेदोपस्थापनीयसयत जघन्य एक और उत्कृष्ट आठ

भव तथा परिहारविशुद्धिकसयत से यथाख्यातसयत तक जघन्य एक और उत्कृष्ट तीन भव ग्रहण करते हैं।

अट्ठाईसवाँ आकर्षद्वार : पंचविध संयतों के एक भव एवं नाना भवों की अपेक्षा आकर्ष की प्ररूपणा

१४४. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवतिया आगरिसा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं० जहा बउसस्स (उ० ६ सु० १८८)।

[१४४ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत के एक भव मे कितने आकर्ष (चारित्रग्रहण) होते है ?

[१४४ उ] गौतम ! उसके जघन्य और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व आकर्ष होते हैं, इत्यादि वर्णन (उ ६, सू १८८ मे उक्त) बकुश के समान जानना।

१४५. छेदोवट्ठावणियस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण एक्को, उक्कोसेणं वीसपुहत्तं।

[१४५ प्र] भगवन् ! छेदोपस्थापनीयसयत का एक भव मे कितने आकर्ष होते हैं।

[१४५ उ] गौतम ! उसके जघन्य एक और उत्कृष्ट बीस-पृथक्त्व (दो बीसी से छह बीसी तक) आकर्ष होते है।

१४६. परिहारविसुद्धियस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं एक्को, उक्कोसेणं तिन्नि।

[१४६ प्र.] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयत के एक भव मे कितने आकर्ष होते हैं ?

[१४६ उ] गौतम ! जघन्य एक और उत्कृष्ट तीन आकर्ष होते हैं।

१४७. सुहुमसंपरायस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं एक्को, उक्कोसेणं चत्तारि।

[१४७ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मसम्परायसयत के एक भव मे कितने आकर्ष होते है ?

[१४७ उ] गौतम ! जघन्य एक और उत्कृष्ट चार आकर्ष होते है।

१४८. अहक्खायस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण एक्को, उक्कोसेण दोन्नि।

[१४८ प्र.] भगवन् ! यथाख्यातसयत के एक भव मे कितने आकर्ष होते है ?

[१४८ उ] गौतम ! जघन्य एक और उत्कृष्ट दो आकर्ष होते है।

१४९. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवतिया आगरिसा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जहा बउसे (उ० ६ सु० १९३)।

[१४९ प्र.] भगवन् ! सामायिकसयन के अनेक भवो मे कितने आकर्ष होते है ?

[१४९ उ] गौतम ! (उ ६, सू १९३ मे उक्त) बकुश के समान उसके आकर्ष होते हैं।

१५०. छेदोवट्ठावणियस्स० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण दोन्नि, उक्कोसेण उवरिं नवण्हं सयाणं अंतोसहस्सस्स।

[१५० प्र] भगवन् ! छेदोपस्थापनीयसयत के अनेक भवो मे कितने आकर्ष होते है ?

[१५० उ] गौतम ! उसके जघन्य दो और उत्कृष्ट नौ सौ से ऊपर और एक हजार के अन्दर आकर्ष होते है।

१५१ परिहारविसुद्धियस्स जहन्नेण दोन्नि, उक्कोसेण सत्त।

[१५१] परिहारविशुद्धिकसयत के जघन्य दो और उत्कृष्ट सात आकर्ष कहे है।

१५२. सुहुमसपरागस्स जहन्नेण दोन्नि, उक्कोसेण नव।

[१५२] सूक्ष्मसम्परायसयत के जघन्य दो और उत्कृष्ट नौ आकर्ष होते है।

१५३. अहक्खायस्स जहन्नेण दोन्नि, उक्कोसेण पच। [दार २८]।

[१५३] यथाख्यातसयत के जघन्य दो और उत्कृष्ट पाच आकर्ष होते है। [अट्ठाईसवाँ द्वार]

विवेचन—पचविध सयतो के आकर्ष—आकर्ष का यहाँ अर्थ है- चारित्र (सयम) की प्राप्ति। अर्थात् एक भव मे या अनेक भवो मे अमुक सयत कितनी बार उक्त सयम को प्राप्त कर सकता है ? यह प्रश्न का आशय है। कतिपय सयतो के विषय मे कथन स्पष्ट है।

छेदोपस्थापनीयसयत के उत्कृष्ट आकर्ष एक भव मे बीस पृथक्त्व कहे है, उसका मतलब है—छह वीसी यानी १२० बार उक्त चारित्र प्राप्त होता है। परिहारविशुद्धिसयम एक भव मे उत्कृष्ट तीन बार प्राप्त हो सकता है। सूक्ष्मसम्परायसयत के एक भव मे दो बार उपशमश्रेणी की सम्भावना होने से तथा प्रत्येक श्रेणी मे सक्लिश्यमान और विशुद्धयमान ये दो प्रकार होने से, एक भव मे उत्कृष्ट चार बार सूक्ष्मसम्परायत्व की प्राप्ति घटित होती है। यथाख्यातसयत के दो बार उपशमश्रेणी की सम्भावना होने से दो आकर्ष (दो बार चारित्र-प्राप्ति) हो सकते है।

छेदोपस्थापनीयसयत के अनेक भवो मे उत्कृष्ट नौ सौ से ऊपर और एक हजार से कम आकर्ष होते है। वे इस प्रकार घटित होते है—छेदोपस्थापनीयसयत के उत्कृष्ट आठ भव होते हैं। उसके एक भव मे छह बीसी (अर्थात् १२० बार) आकर्ष होते है। इस दृष्टि से आठ भवो मे १२० × ८ = ९६० आकर्ष हो जाते है। यह अपेक्षा सम्भावना-मात्र की अपेक्षा से बताई गई है। इसके अतिरिक्त अन्य रीति से ९०० से ऊपर सख्या घटित हो जाए, इस प्रकार घटित कर लेना चाहिए।

परिहारविशुद्धिकसयत के एक भव मे उत्कृष्ट तीन बार परिहारविशुद्धिसयम की प्राप्ति हो सकती है। यह सयम (चारित्र) तीन भव तक प्राप्त हो सकता है। इसलिए एक भव मे तीन बार, दूसरे भव मे दो बार और तीसरे भव मे दो बार, इत्यादि विकल्प से उसके अनेक भव मे सात आकर्ष घटित होते हैं।

सूक्ष्मसम्पराय के एक भव मे चार आकर्ष होते है और उसकी प्राप्ति तीन भव तक हो सकती है । इस दृष्टि से उसके एक भव में चार बार, दूसरे भव मे चार बार और तीसरे भव मे एक बार, इस प्रकार अनेक भवो मे नौ आकर्ष होते है । यथाख्यातसयत के एक भव मे दो, दूसरे भव मे दो और तीसरे भव में एक आकर्ष होने से तीन भवो मे पाच आकर्ष होते है ।[1]

उनतीसवाँ काल (स्थिति)-द्वार : एकवचन और बहुवचन से स्थिति-प्ररूपणा

१५४. सामाइयसजए ण भते ! कालतो केवचिर होति ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्क समय, उक्कोसेण देसूणएहि नवहि वासेहि ऊणिया पुव्वकोडी ।

[१५४ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत कितने काल तक रहता है ? (अर्थात् उसकी स्थिति कितनी है ?)

[१५४ उ] गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन नौ वर्ष कम पूर्वकोटिवर्ष पर्यन्त रहता है ।

१५५. एव छेदोवट्ठावणिए वि ।

[१५५] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी कहना चाहिए ।

१५६. परिहारविसुद्धिए जहन्नेण एक्क समय, उक्कोसेण देसूणएहि एक्कूणतीसाए वासेहि ऊणिया पुव्वकोडी ।

[१५६] परिहारविशुद्धिकसयत जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन २९ वर्ष कम पूर्वकोटिवर्ष पर्यन्त रहता है ।

१५७. सुहुमसपराए जहा नियठे (उ० ६ सु० २००) ।

[१५७] सूक्ष्मसम्परायसयत के विषय मे (उ ६, सू २०२ मे उक्त) निर्ग्रन्थ के अनुसार कहना चाहिए ।

१५८. अहक्खाए जहा सामाइयसजए ।

[१५८] यथाख्यातसयत का कथन सामायिकसयत के समान जानना ।

१५९. सामाइयसंजया णं भंते ! कालतो केवचिर होंति ?

गोयमा ! सव्वद्ध ।

[१५९ प्र] भगवन् ! (अनेक) सामायिकसयत कितने काल तक रहते है ?

[१५९ उ] गौतम ! वे सर्वाद्धा (सदाकाल) रहते है ।

१६०. छेदोवट्ठावणिएसु पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेण अड्ढाइज्जाइं वाससयाइ, उक्कोसेण पन्नासं सागरोवमकोडिसयसहस्साइ ।

1 (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१६
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४७४-३४७५

[१६० प्र.] भगवन् ! (अनेक) छेदोपस्थापनीयसयत कितने काल तक रहते है ?

[१६० उ.] गौतम ! जघन्य अढाई सौ वर्ष और उत्कृष्ट पचास लाख करोड सागरोपम तक होते हैं।

१६१. परिहारविसुद्धिए पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेण देसूणाइ दो वाससयाइं, उक्कोसेण देसूणाओ दो पुव्वकोडीओ।

[१६१ प्र.] भगवन् ! (अनेक) परिहारविशुद्धिकसयत कितने काल तक रहते हैं ?

[१६१ उ.] गौतम ! वह जघन्य देशोन दो सौ वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पूर्वकोटिवर्ष तक होते हैं।

१६२. सुहुमसपरागसंजया० पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं एक्क समय, उक्कोसेण अतोमुहुत्तं।

[१६२ प्र.] भगवन् ! (अनेक) सूक्ष्मसम्परायसयत कितने काल तक रहते है ?

[१६२ उ.] गौतम ! वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहते है।

१६३. अहक्खायसजया जहा सामाइयसजया। [दारं २९]।

[१६३] (बहुत) यथाख्यातसयतो का कथन (सू १५९ मे उक्त) सामायिकसयतो के समान जानना चाहिए।

विवेचन—सामायिक आदि सयतो की स्थिति · स्पष्टीकरण—सामायिकचारित्र (सयम) की प्राप्ति के बाद तुरन्त ही मृत्यु हो जाए तो उसकी अपेक्षा से सामायिकसयत का काल जघन्य एक समय होता है और उत्कृष्ट देशोन नौ वर्ष कम पूर्वकोटिवर्ष होता है। यह काल गर्भ के समय से गिनना चाहिए।

परिहारविशुद्धिकसयत का जघन्यकाल एक समय मरण की अपेक्षा से है और उत्कृष्ट देशोन उनतीस वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होता है। क्योंकि पूर्वकोटिवर्ष की आयु वाला कोई मनुष्य यदि देशोन नौ वर्ष की उम्र मे दीक्षा ग्रहण करता है तो वह बीस वर्ष की दीक्षापर्याय होने पर दृष्टिवाद का ज्ञान प्राप्त करके पश्चात् परिहारविशुद्धिसयम (चारित्र) को अगीकार कर सकता है। यद्यपि परिहारविशुद्धिचारित्र का कालपरिमाण अठारह मास का है तथापि उन्ही अविच्छिन्न परिणामो से वह उसे जीवनपर्यन्त पाले तो उनतीस वर्ष कम पूर्वकोटिवर्षपर्यन्त रहता है।

यथाख्यातसयत का कालपरिमाण उपशम अवस्था मे मरण की अपेक्षा जघन्य एक समय तथा स्नातक अवस्था वाले सयत की अपेक्षा देशोन पूर्वकोटिवर्ष है।

उत्सर्पिणीकाल मे प्रथम तीर्थंकर के तीर्थ तक छेदोपस्थापनीयचारित्र होता है और उनका तीर्थ (शासन) अढाई सौ वर्ष चलता है। इसलिए छेदोपस्थापनीय सयतो का काल जघन्य अढाई सौ वर्ष होता है। अवसर्पिणीकाल मे प्रथम तीर्थंकर के तीर्थ तक छेदोपस्थापनीयचारित्र होता है और उनका तीर्थ पचास लाख करोड सागरोपम तक होता है। इसलिए उत्कृष्ट इतने काल तक छेदोपस्थापनीयसयत होते हैं।

परिहारविशुद्धिकसंयतो का काल जघन्य अट्ठावन वर्ष कम, देशोन दो सौ वर्ष होता है। यथा—उत्सर्पिणीकाल में प्रथम तीर्थंकर के समीप सौ वर्ष की आयु वाले कोई मुनि परिहारविशुद्धिचारित्र अगीकार करे और उसके जीवन के अन्त मे उसके पास सौ वर्ष की आयु वाला दूसरा कोई मुनि परिहारविशुद्धिचारित्र अगीकार करे, परन्तु उनके पास फिर कोई तीसरा मुनि परिहारविशुद्धिचारित्र अगीकार नही करता। इस प्रकार दो सौ वर्ष होते हैं। परन्तु परिहारविशुद्धिसयम अगीकार करने वाला २९ वर्ष की आयु हो जाने पर ही यह चारित्र अगीकार कर सकता है। इस प्रकार दो व्यक्तियो के ५८ वर्ष कम दो सौ वर्ष होते है, अर्थात् जघन्यकाल १४२ वर्ष होता है। वृत्तिकार की इस व्याख्या के अनुसार ही चूर्णिकार ने भी इस प्रकार की व्याख्या की है। किन्तु वह अवसर्पिणीकाल के अन्तिम तीर्थंकर की अपेक्षा से की है। दोनो व्याख्याओ की सगति एक ही प्रकार से है। उत्कृष्टकाल देशोन दो पूर्वकोटिवर्ष होता है। जैसे कि अवसर्पिणीकाल के प्रथम तीर्थंकर के समीप पूर्वकोटिवर्ष आयु वाला मुनि परिहारविशुद्धिचारित्र अगीकार करे और उसके जीवन के अन्त में उतनी ही आयु वाला दूसरा मुनि इसी चारित्र को अगीकार करे। इस प्रकार दो पूर्वकोटिवर्ष होते है। उनमे से उक्त दोनो मुनियो की २९-२९ वर्ष की आयु कम करने पर ५८ वर्ष कम देशोन दो पूर्वकोटिवर्ष होते हैं।[1]

तीसवाँ अन्तरद्वार : पंचविध संयतों मे काल का अन्तर

१६४ सामाइयसजयस्स ण भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं० जहा पुलागस्स (उ० ६ सु० २०७)।

[१६४ प्र] भगवन् ! (एक) सामायिकसयत का अन्तर कितने काल का होता है ?

[१६४ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त इत्यादि वर्णन (उ ६, सू २०७ मे उक्त) पुलाक के समान जानना।

१६५. एवं जाव अहक्खायसंजयस्स।

[१६५] इसी प्रकार का कथन यथाख्यातसयत तक समझना चाहिए।

१६६. सामाइयसंजयाण भंते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! नत्थतरं।

[१६६ प्र] भगवन् ! (अनेक) सामायिकसयतो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[१६६ उ] गौतम ! उनका अन्तर नही होता।

१६७. छेवोवट्ठावणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं तेवट्ठिं वाससहस्साइ, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ।

[१६७ प्र] भगवन् ! (अनेक) छेदोपस्थापनीयसयतो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[१६७ उ.] गौतम ! उनका अन्तर जघन्य तिरेसठ हजार वर्ष और उत्कृष्ट (कुछ कम) अठारह कोडाकोडी सागरोपम काल का होता है।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१६-९१८

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भ ७, पृ. ३४७८

१६८. परिहारविसुद्धियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं चउरासीतिं वाससहस्साइं, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ।

[१६८ प्र] भगवन् ! परिहारविशुद्धिकसयतो का अन्तर कितने काल का होता है ?

[१६८ उ] गौतम ! उनका अन्तर जघन्य चौरासी हजार वर्ष और उत्कृष्ट (देशोन) अठारह कोड़ाकोडी सागरोपम का है।

१६९. सुहुमसपरागाण जहा नियठाण (उ० ६ सु० २१३)।

[१६९] सूक्ष्मसम्परायसयतो का अन्तर (उ ६, सू २१३ के उक्त) निर्ग्रन्थो के समान है।

१७०. अहक्खायाण जहा सामाइयसजयाण। [दार ३०]।

[१७०] यथाख्यातसयतो का अन्तर सामायिकसंयतो के समान है। [तीसवाँ द्वार]

विवेचन - सयतो का अन्तरकाल : छेदोपस्थापनीयसयत एव सयतो का अन्तर अन्तरद्वार मे छेदोपस्थापनीयसयत का जो अन्तरकाल बताया है, उसे यो समझना चाहिए कि अवसर्पिणीकाल के दु षमा नामक पचम आरे तक छेदोपस्थापनीयचारित्र रहता है। उसके बाद दु षम-दु षमा नामक इक्कीस हजार वर्ष के छठे आरे मे तथा उत्सर्पिणीकाल के इक्कीस हजार वर्ष-परिमित प्रथम आर मे तथा इक्कीस हजार वर्ष-परिमित द्वितीय आरे मे छेदोपस्थापनीयचारित्र का अभाव होता है। इस प्रकार २१+२१+२१=६३००० वर्ष का जघन्य अन्तरकाल छेदोपस्थापनीयसयतो का होता है। और इसी का उत्कृष्ट अन्तरकाल अठारह कोटाकोटि सागरोपम का होता है। वह इस प्रकार है उत्सर्पिणीकाल के चौवीसवे तीर्थंकर के तीर्थ तक छेदोपस्थापनीयचारित्र होता है। उसके बाद दो कोटाकोटि-प्रमाण चतुर्थ आरे मे, तीन कोटाकोटि-प्रमाण पचम आरे मे और चार कोटाकोटि-प्रमाण छठे आरे मे तथा इसी प्रकार अवसर्पिणीकाल के चार कोटाकोटि-सागरोपम-प्रमाण प्रथम आरे मे, तीन कोटाकोटि सागरोपम-प्रमाण दूसरे आरे मे और दो कोटाकोटि-सागरोपम-प्रमाण तीसरे आरे मे छेदोपस्थापनीयचारित्र नही होता। परन्तु उसके पश्चात् अवसर्पिणीकाल के तृतीय आरे के पिछले भाग मे प्रथम तीर्थंकर के तीर्थ मे छेदोपस्थापनीयचारित्र होता है। इस दृष्टि से छेदोपस्थापनीय-सयतो का उत्कृष्ट अन्तरकाल १८ कोटाकोटि सागरोपम होता है। इसमे थोडा-सा काल कम रहता है और जघन्य अन्तर मे थोडा काल बढता है, परन्तु वह अत्यल्प होने से उसकी यहाँ विवक्षा नही की है।

अवसर्पिणीकाल के पाचवे और छठे आरे तथा उत्सर्पिणीकाल का पहला और दूसरा आरा इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष का होता है। इन चारो मे परिहारविशुद्धिचारित्र नही होता। इसलिए परिहारविशुद्धिकसयतो का जघन्य अन्तरकाल चौरासी हजार वर्ष का है। यहाँ अन्तिम तीर्थंकर के पश्चात् पाचवे आरे मे परिहारविशुद्धिचारित्र का काल कुछ अधिक और अवसर्पिणीकाल के तीसरे आरे मे परिहारविशुद्धिचारित्र अगीकार करने से पूर्व का काल अल्प होने से उसकी यहाँ विवक्षा नही की गई है। परिहारविशुद्धिचारित्र का उत्कृष्ट अन्तर १८ कोटाकोटि सागरोपम का होता है। उसकी सगति छेदोपस्थापनीयचारित्र के समान जाननी चाहिए।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१८

इकतीसवाँ समुद्घातद्वार : पंचविध संयतों में समुद्घात की प्ररूपणा

१७१. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! कति समुग्घाया पन्नत्ता ?

गोयमा ! छ समुग्घाया पन्नत्ता, जहा कसायकुसीलस्स (उ० ६ सु० २१८) ।

[१७१ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत के कितने समुद्घात कहे हैं ?

[१७१ उ] गौतम ! छह समुद्घात कहे है, इत्यादि वर्णन (उ. ६, सू. २१८ मे उक्त) कषाय-कुशील के समान समझना ।

१७२. एव छेदोवट्ठावणियस्स वि ।

[१७२] इसी प्रकार छेदोपस्थापनीयसयत के विषय मे भी जानना ।

१७३. परिहारविसुद्धियस्स जहा पुलागस्स (उ० ६ सु० २१५) ।

[१७३] परिहारविशुद्धिकसयत का कथन (उ. ६, सू २१५ मे उक्त) पुलाक के समान जानना ।

१७४. सुहुमसंपरायस्स जहा नियंठस्स (उ० ६ सु० २१९) ।

[१७४] सूक्ष्मसम्परायसयत का कथन (उ ६, सू २१९ मे उक्त) निर्ग्रन्थ के समान जानना ।

१७५. अहक्खायस्स जहा सिणायस्स (उ० ६ सु० २२०) । [दार ३१] ।

[१७५] यथाख्यातसयत की वक्तव्यता (उ ६, सू २२० मे उक्त) स्नातक के समान जानना ।

[इकतीसवाँ द्वार]

बत्तीसवाँ क्षेत्रद्वार : पंचविध संयतों के अवगाहन क्षेत्र को प्ररूपणा

१७६. सामाइयसजए ण भते ! लोगस्स किं सखेज्जतिभागे होज्जा, असखेज्जइभागे० पुच्छा ।

गोयमा ! नो सखेज्जति० जहा पुलाए (उ० ६ सु० २२१) ।

[१७६ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत लोक के सख्यातवे भाग मे होता है या असख्यातवे भाग मे होता है ?

[१७६ उ] गौतम ! वह लोक के सख्यातवे भाग मे नही होता, इत्यादि कथन (उ ६, सू २२१ मे कथित) पुलाक के समान जानना चाहिए ।

१७७. एवं जाव सुहुमसपराए ।

[१७७] इसी प्रकार का कथन सूक्ष्मसम्परायसयत तक जानना चाहिए ।

१७८. अहक्खायसंजते जहा सिणाए (उ० ६ सु० २२३) । [दारं ३२] ।

[१७८] यथाख्यातसयत का कथन (उ ६, सू २२३ मे उक्त) स्नातक के अनुसार जानना चाहिए । [बत्तीसवाँ द्वार]

तेतीसवाँ स्पर्शनाद्वार : पंचविध संयतों की क्षेत्रस्पर्शना-प्ररूपणा

१७९. सामाइयसंजए णं भंते ! लोगस्स किं संखेज्जतिभागं फुसति ?

जहेव होज्जा तहेव फुसति वि। [दार ३३]।

[१७९ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत क्या लोक के सख्यातवे भाग का स्पर्श करता है ? इत्यादि प्रश्न।

[१७९ उ] गौतम ! जिस प्रकार क्षेत्र-अवगाहना कही है, उसी प्रकार क्षेत्र-स्पर्शना भी जाननी चाहिए। [तेतीसवाँ द्वार]

चौतीसवाँ भावद्वार : पचविध संयतो में औपशमिकादि भावो की प्ररूपणा

१८०. सामाइयसजए ण भते ! कयरम्मि भावे होज्जा ?

गोयमा ! खओवसमिए भावे होज्जा।

[१८० प्र] भगवन् ! सामायिकसयत किस भाव मे होता है ?

[१८० उ] गौतम ! वह क्षायोपशमिक भाव मे होता है।

१८१ एव जाव सुहुमसपराए।

[१८१] इसी प्रकार का कथन सूक्ष्मसम्परायसयत तक जानना चाहिए।

१८२. अहक्खायसजए० पुच्छा।

गोयमा ! ओवसमिए वा खइए वा भावे होज्जा। [दार ३४]।

[१८२ प्र] भगवन् ! यथाख्यातसयत किस भाव मे होता है ?

[१८२ उ] गौतम ! वह औपशमिकभाव या क्षायिक भाव मे होता है। [चौतीसवाँ द्वार]

विवेचन—अतिदेश- समुद्घातद्वार से लेकर भावद्वार तक (लोकस्पर्श, क्षेत्रद्वार, स्पर्शनाद्वार एव भावद्वार आदि) के लिए छठे उद्देशक मे उक्त पुलाक आदि का अतिदेश किया है, जिसे वहाँ से समझ लेना चाहिए।

पैतीसवाँ परिमाणद्वार : पंचविध संयतों के एक समयवर्ती परिमाण की प्ररूपणा

१८३. सामाइयसजया ण भते ! एगसमएण केवतिया होज्जा ?

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च जहा कसायकुसीला (उ० ६ सु० २३२) तहेव निरवसेसं।

[१८३ प्र] भगवन् ! सामायिकसयत एक समय मे कितने होते हैं ?

[१८३ उ.] गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा समग्र कथन (उ ६, सू २३२ मे उक्त) कषाय-कुशील के समान जानना चाहिए।

१८४. छेदोवट्ठावणिया० पुच्छा।

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जइ अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जदि अत्थि जहन्नेणं कोडिसयपुहत्त, उक्कोसेण वि कोडिसयपुहत्तं।

[१८४ प्र.] भगवन् ! छेदोपस्थापनीयसंयत एक समय में कितने होते हैं ?

[१८४ उ.] गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वे कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शत-पृथक्त्व होते हैं। पूर्वप्रतिपन्न कदाचित् नहीं भी होते। यदि होते हैं तब जघन्य कोटिशतपृथक्त्व तथा उत्कृष्ट भी कोटिशतपृथक्त्व होते हैं।

१८५. परिहारविसुद्धिया जहा पुलागा (उ० ६ सु० २२९)।

[१८५] परिहारविशुद्धिकसंयतों की संख्या (उ. ६, सू. २२९ में उक्त) पुलाक के समान है।

१८६. सुहुमसंपरागा जहा नियंठा (उ० ६ सु० २३३)।

[१८६] सूक्ष्मसम्परायसंयतों की संख्या (उ. ६, सू. २३३ में उक्त) निर्ग्रन्थों के अनुसार होती है।

१८७. अहक्खायसंजता णं० पुच्छा।

गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि। जदि अत्थि जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिन्नि वा, उक्कोसेणं बावट्ठं सयं अट्ठुत्तरसयं खवगाणं, चउप्पन्नं उवसामगाणं। पुव्वपडिवन्नए पडुच्च जहन्नेणं कोडिपुहत्तं, उक्कोसेण वि कोडिपुहत्तं। [दारं ३५]।

[१८७ प्र.] भगवन् ! यथाख्यातसंयत एक समय में कितने होते हैं ?

[१८७ उ.] गौतम ! प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वे कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट १६२ (एक सौ बासठ) होते हैं, जिनमें से १०८ क्षपक और ५४ उपशमक होते हैं। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट कोटिपृथक्त्व होते हैं।

विवेचन—संयतों की संख्या-विषयक स्पष्टीकरण—परिमाणद्वार में छेदोपस्थापनीयसंयतों का जो उत्कृष्ट परिमाण बताया है, वह प्रथम तीर्थंकर के तीर्थ की अपेक्षा सम्भवित होता है। किन्तु जघन्य परिमाण यथार्थरूप से समझ में नहीं आता, क्योंकि पंचम आरे के अन्त में भरतादि दस क्षेत्रों में से प्रत्येक क्षेत्र में दो-दो संयत होने से जघन्य बीस छेदोपस्थापनीयसंयत होते हैं। किसी आचार्य का मत है कि जघन्य परिमाण भी प्रथम तीर्थंकर की अपेक्षा से समझना चाहिए, ऐसा टीकाकारों का अभिप्राय है। जघन्य परिमाण यहाँ जो कोटिशतपृथक्त्व बताया है उसका परिमाण अल्प है और जो उत्कृष्ट कोटिशतपृथक्त्व परिमाण बताया है उसका परिमाण अधिक समझना चाहिए।

प्रतिपद्यमान यथाख्यातसंयत एक समय में उत्कृष्ट १६२ होते हैं उनमें से १०८ क्षपक होते हैं। क्षपकश्रेणी वाले सभी मोक्ष जाते हैं एक समय में १०८ से अधिक मोक्ष नहीं जा सकते और एक समय में क्षपक यथाख्यातसंयतों की उत्कृष्ट संख्या १०८ ही होती है। उसी समय उपशमक यथाख्यातसंयतों की संख्या ५४ होती है, क्योंकि जीव का स्वभाव ही ऐसा है। इस प्रकार एक समय में यथाख्यातसंयतों की उत्कृष्ट संख्या १६२ घटित होती है।[1]

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९१८

छत्तीसवाँ अल्पबहुत्वद्वार : पंचविध संयतों का अल्पबहुत्व

१८८. एएसि णं भंते ! सामाइय-छेदोवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिय-सुहुमसपराय-अहक्खायसजयाणं कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमसपरायसजया, परिहारविसुद्धियसजया सखेज्जगुणा, अहक्खायसजया सखेज्जगुणा, छेदोवट्ठावणियसजया सखेज्जगुणा, सामाइयसजया सखेज्जगुणा। [दार ३६]।

[१८८ प्र] भगवन् ! इन सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिक, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात सयतो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[१८८ उ] गौतम ! सूक्ष्मसम्परायसयत सबसे थोडे होते है; उनसे परिहारविशुद्धिकसयत सख्यातगुणे है, उनसे यथाख्यातसयत सख्यातगुणे है, उनसे छेदोपस्थापनीयसयत सख्यातगुणे है और उनसे सामायिकसयत सख्यातगुणे है। [छत्तीसवां द्वार]

विवेचन—सयतो का अल्पबहुत्व : स्पष्टीकरण—अल्पबहुत्वद्वार मे सबसे थोडे सूक्ष्मसम्पराय-सयत बताए है, क्योकि उनका काल अत्यल्प है और वे निर्ग्रन्थ के तुल्य होने से एक समय मे शत-पृथक्त्व होते हैं। उनसे परिहारविशुद्धिकसयत सख्यातगुणे है, क्योकि उनका काल सूक्ष्मसम्परायसयतो से अधिक है और वे पुलाक के समान सहस्रपृथक्त्व होते है। उनसे यथाख्यात-सयत सख्यातगुणे है, क्योकि उनका परिमाण कोटिपृथक्त्व है। उनसे छेदोपस्थापनीयसयत सख्यातगुणे है, क्योकि उनका परिमाण कोटिशतपृथक्त्व होता है। उनसे सामायिकसयत सख्यातगुणे होते हैं, क्योकि उनका परिमाण कषायकुशील के समान कोटिसहस्रपृथक्त्व होता है।[1]

प्रतिसेवना-दोषालोचनादि छह द्वार

१८९. पडिसेवण १ दोसालोयण य आलोयणारिहे ३ चेव।
तत्तो सामायारी ४ पायच्छित्ते ५ तवे ६ चेव॥ ६॥

[१८९ गाथार्थ] (१) प्रतिसेवना, (२) दोषालोचना, (३) आलोचनार्ह, (४) समाचारी, (५) प्रायश्चित्त और (६) तप॥ ६॥

विवेचन विशेषार्थ—ये छह द्वार प्राय प्रायश्चित्त से सम्बन्धित है। प्रथम प्रतिसेवनाद्वार मे यह देखा जाता है कि किया गया दोष किस प्रकार का है ? द्वितीयद्वार है—आलोचना के दोष। उसका आशय यह है कि लगे हुए दोषो की आलोचना शुद्ध है या किसी दोष से युक्त है ? यदि दोषयुक्त है तो किस प्रकार के दोष से युक्त है ? तृतीयद्वार मे आलोचना करने वाले और सुनने वाले दोनो के गुणो का प्रतिपादन है। चतुर्थद्वार है—समाचारी। उसका आशय यह है कि साधु को किस प्रकार की समाचारी से युक्त होना चाहिए, ताकि सयम मे दोष न लगे। पचमद्वार है—प्रायश्चित्त। जिसका आशय यह है कि आलोचना के बाद दोषसेवन करने वाले साधु को किस प्रकार का प्रायश्चित्त आता है, इसका निर्णय करना चाहिए। छठा द्वार है—तप। प्रायश्चित्त मे अमुक तप-विशेष भी दिया जाता है, इसलिए तप का १२ भेदो सहित वर्णन किया गया है।

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१८-९१९

प्रथम प्रतिसेवनाद्वार : प्रतिसेवना के दस भेद

१९०. दसविहा पडिसेवणा पन्नत्ता, त जहा—

दप्प १ प्पमाद-ऽणाभोगे २-३ आउरे ४ आवती ५ ति य।
संकिण्णे ६ सहसक्कारे ७ भय ८ प्पदोसा ९ य वीमंसा १० ॥७॥ [दारं १]।

[१९०] प्रतिसेवना दस प्रकार की कही है, यथा [गाथार्थ]—(१) दर्पप्रतिसेवना, (२) प्रमादप्रतिसेवना, (३) अनाभोगप्रतिसेवना, (४) आतुरप्रतिसेवना, (५) आपत्प्रतिसेवना, (६) संकीर्णप्रतिसेवना, (७) सहसाकारप्रतिसेवना, (८) भयप्रतिसेवना, (९) प्रद्वेषप्रतिसेवना और (१०) विमर्शप्रतिसेवना ॥ ७ ॥ [प्रथम द्वार]

विवेचन—प्रतिसेवना के प्रकार और स्वरूप—पाप या दोषो के सेवन से होने वाली चारित्र की विराधना को **'प्रतिसेवना'** कहते है। उसके मुख्य दस भेद हैं—(१) **दर्पप्रतिसेवना**—अभिमान (अहंकार) पूर्वक होने वाली संयम की विराधना। (२) **प्रमादप्रतिसेवना**—अष्टविध मदजनित या मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा आदि प्रमादो के सेवन से होनेवाली संयमविराधना। (३) **अनाभोगप्रतिसेवना**—अनजान मे हो जाने वाली संयमविराधना। (४) **आतुरप्रतिसेवना**—भूख, प्यास, रोग-व्याधि आदि किसी पीडा से व्याकुलतावश की गई संयम की स्खलना। (५) **आपत्प्रतिसेवना—**किसी आफत, संकट या विपत्ति के आने पर की गई संयम की विराधना। आपत्ति चार प्रकार की होती है। द्रव्य-आपत्ति—प्रासुक, दोषरहित आहारादि न मिलना। क्षेत्र-आपत्ति—मार्ग भूल जाने से भयंकर अटवी आदि मे भटक जाना, अथवा उक्त क्षेत्र मे दुर्भिक्ष, भूकम्प या अन्य क्षेत्रीय संकट आ पडना। काल-आपत्ति—दुर्भिक्ष, दुर्दिन आदि और भाव-आपत्ति—रोगातंक से शरीर अस्वस्थ-अशक्त हो जाना। (६) **संकीर्णप्रतिसेवना**—स्वपक्ष और परपक्ष से होने वाली स्थान की तंगी के कारण संयम मर्यादा का अतिक्रमण करना। अर्थात् छोटे-छोटे क्षेत्रो मे साधु, साध्वियो तथा भिक्षाचरो के अधिक संख्या मे इकट्ठे हो जाने से संयम मे दोष लगना। **शंकितप्रतिसेवना**—ग्रहणयोग्य आहारादि मे किसी दोष की आशंका होने पर भी उसे लेना। अथवा निशीथसूत्रानुसार आहारादि के न मिलने पर खेदपूर्वक वचन बोलना तितिणप्रतिसेवना है। (७) **सहसाकारप्रतिसेवना**—हठात् या अकस्मात् पहले से बिना सोचे-विचारे, अथवा बिना प्रतिलेखना किये कोई दोषयुक्त प्रवृत्ति करना। यथा—पहले बिना देखे सहसा भूमि पर पैर आदि रखना और पीछे देखना। (८) **भयप्रतिसेवना**—सिंह आदि के भय से संयम की विराधना करना। (९) **प्रद्वेषप्रतिसेवना**—किसी के प्रति द्वेष, ईर्ष्या या क्रोधादिकषाय के वश संयम की विराधना करना और (१०) **विमर्शप्रतिसेवना**—शिष्य की परीक्षा आदि के लिए विचारपूर्वक की गई संयम की विराधना।

इन दस कारणो मे से किसी भी कारण से संयम की विराधना की जाती या हो जाती है। आलोचना करते समय गुरु इसका निर्णय करते है।[1]

द्वितीय आलोचनाद्वार : आलोचना के दस दोष

१९१. दस आलोयणादोसा पन्नत्ता, त जहा—

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९१९
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७ पृष्ठ ३४८६-३४८७

आकंपइत्ता १ अणुमाणइत्ता २ जं दिट्ठ ३ बायर व ४ सुहुम वा ५ ।
छन्न ६ सद्दाउलय ७ बहुजण ८ अव्वत्त ९ तस्सेवी १० ॥८॥ [बारं २] ।

[१९१] आलोचना के दस दोष कहे है। वे इस प्रकार है—यथा—[गाथार्थ] (१) आकम्प्य, (२) अनुमान्य, (३) दृष्ट, (४) बादर, (५) सूक्ष्म, (६) छन्न-प्रच्छन्न (७) शब्दाकुल, (८) बहुजन, (९) अव्यक्त और (१०) तत्सेवी ॥ ८ ॥ [द्वितीय द्वार]।

विवेचन - आलोचना के दस दोष—जाने या अनजाने लगे हुए दोषों का पहले स्वय मन मे विचार करना, फिर उचित प्रायश्चित्त कर लेने के लिए गुरु, आचार्य या बडे (गीतार्थ) साधु के समक्ष निवेदन करना 'आलोचना' है। वैसे सामान्यतया आलोचना का अर्थ है अपने दोषो को भलीभाति देखना। आलोचना के दस दोष है। साधक को उनका त्याग करके शुद्ध हृदय से आलोचना करनी चाहिए। वे दोष इस प्रकार हैं—**(१) आकपयित्ता आकम्प्य** प्रसन्न होने पर गुरुदेव मुझे थोडा प्रायश्चित्त देंगे, ऐसा सोचकर उन्हें सेवा आदि से प्रसन्न करके फिर आलोचना करना। अथवा कापते हुए आलोचना करना, ताकि गुरुदेव समझे कि यह दोष का नाम लेते हुए कापता है, मन मे दोष न करने का खटका है। यह अर्थ भी सम्भव है। **(२) अणुमाणइत्ता** अनुमान्य या अणुमान्य बिलकुल छोटा अपराध बताने से गुरुदेव मुझे बहुत थोडा प्रायश्चित्त देंगे, ऐसा अनुमान करके अपने अपराध को बहुत ही छोटा (अणु) करके बताना। **(३) दिट्ठ (दृष्ट)** जिस दोष को गुरु आदि ने सेवन करते देख लिया, उसी की आलोचना करना। **(४) बायर (बादर)** केवल बडे-बडे अपराधो की आलोचना करना और छोटे अपराधो की आलोचना न करना बादर दोष है। **(५) सुहुमं—सूक्ष्म**—जो अपने छोटे-छोटे अपराधो की आलोचना करता है, वह बडे-बडे अपराधो की आलोचना करना कैसे छोड सकता है? इस प्रकार का विश्वास उत्पन्न कराने हेतु केवल छोटे-छोटे अपराधो की आलोचना करना। **(६) छण्ण छन्न**—अधिक लज्जा के कारण आलोचना के समय अव्यक्त-शब्द बोलते हुए इस प्रकार से आलोचना करना कि जिसके पास आलोचना करे वह भी सुन न सके। **(७) सद्दाउलयं**—शब्दाकुल होकर दूसरे अगीतार्थ व्यक्तिगण सुन सके, इस प्रकार से उच्चस्वर मे बोलना। **(८) बहुजण बहुजन**—एक ही दोष या अतिचार की अनेक साधुओ के पास आलोचना करना। **(९) अव्वत्त (अव्यक्त)** अगीतार्थ (जिस साधु को पूरा ज्ञान नही है कि किस अपराध का, कैसी परिस्थिति मे किए हुए दोष का कितना प्रायश्चित्त दिया जाता है) के समक्ष आलोचना करना। **(१०) तस्सेवी (तत्सेवी)** - जिस दोष की आलोचना करनी हो, उसे उसी दोष के सेवन करने वाले आचार्य या बडे साधु के समक्ष आलोचना करना।

ये आलोचना के दस दोष है, जिन्हे त्याज्य समझना चाहिए।[1]

तृतीय आलोचनाद्वार : आलोचना करने तथा सुनने योग्य साधको के गुण

१९२. दर्साह ठाणेहिं सपन्ने अणगारे अरिहति अत्तदोसं आलोएत्तए, तं जहा—जातिसपन्ने १ कुलसंपन्ने २ विणयसंपन्ने ३ णाणसपन्ने ४ दसणसंपन्ने ५ चरित्तसपन्ने ६ खंते ७ दंते ८ अमायी ९ अपच्छाणुतावी १० ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९१९-९२०
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४८८

[१९२] दस गुणो से युक्त अनगार अपने दोषो की आलोचना करने योग्य होता है। यथा-- (१) जातिसम्पन्न, (२) कुलसम्पन्न, (३) विनयसम्पन्न, (४) ज्ञानसम्पन्न, (५) दर्शनसम्पन्न, (६) चारित्रसम्पन्न, (७) क्षान्त (क्षमाशील), (८) दान्त, (९) अमायी और (१०) अपश्चात्तापी।

१९३. अट्ठहि ठाणेहि संपन्ने अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा आयारवं १ आहारव २ ववहारव ३ उव्वीलए ४ पकुव्वए ५ अपरिस्सावी ६ निज्जवए ७ अवायदसी ८। [दार ३]।

[१९३] आठ गुणो से सम्पन्न अनगार आलोचना देने (सुनने और सुनकर प्रायश्चित्त देने) के योग्य होते है। यथा (१) आचारवान्, (२) आधारवान्, (३) व्यवहारवान्, (४) अपव्रीडक, (५) प्रकुर्वक, (६) अपरिस्रावी, (७) निर्यापक और (८) अपायदर्शी। [तृतीय द्वार]

विवेचन -आलोचना करने योग्य अनगार : दस गुणों से सम्पन्न -(१) **जातिसम्पन्न** --मातृपक्ष के कुल को जाति कहते हैं। उत्तम जाति (मातृकुल) वाला बुरा कार्य नही करता। कदाचित् उससे भूल हो भी जाती है तो वह शुद्ध हृदय से आलोचना कर लेता है। (२) **कुलसम्पन्न**--(पितृवश) को कुल कहते है। उत्तम कुल (पितृवश) मे पैदा हुआ व्यक्ति स्वीकृत प्रायश्चित्त, को सम्यक् प्रकार पूर्ण करता है। (३) **विनयसम्पन्न**--विनयवान् साधु, बडो की बात मानकर पवित्र हृदय से आलोचना करता है। (४) **ज्ञानसम्पन्न**-- सम्यग्ज्ञानवान् साधु मोक्षमार्ग की आराधना करने के लिए क्या करना उचित है और क्या नही ? इस बात को भलीभाति समझ कर आलोचना करता है। (५) **दर्शनसम्पन्न** --श्रद्धावान् साधक भगवान् के वचनो पर श्रद्धा होने के कारण शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त से होने वाली शुद्धि को मानता और श्रद्धापूर्वक आलोचना करता है। (६) **चारित्रसम्पन्न**--उत्तम अथवा विशुद्ध चारित्र पालन करने वाला साधक चारित्र को शुद्ध रखने के लिए दोषो की आलोचना करता है। (७) **क्षान्त**--क्षमावान्। किसी दोष के कारण गुरु से उपालम्भ आदि मिलने पर वह क्रोध नही करता और सहिष्णुतापूर्वक समभाव से दिया हुआ प्रायश्चित्त सहन करता है, अपना दोष स्वीकार करके आलोचना करता है। (८) **दान्त**- इन्द्रियो को वश मे रखने वाला। इन्द्रिय विषयो के प्रति अनासक्त साधक कठोर से कठोर प्रायश्चित्त को स्वीकार कर लेता है। वह पापो की आलोचना भी शुद्ध चित्त से करता है। (९) **अमायी**--छल-कपट और दम्भ से रहित। अपने पाप को बिना छिपाए वह स्वच्छ हृदय से आलोचना करता है। (१०) **अपश्चात्तापी**--आलोचना करने के बाद पश्चात्ताप नही करने वाला साधक। ऐसा व्यक्ति आराधक होता है।

आलोचना सुनने (सुनकर योग्य प्रायश्चित्त देने) योग्य अनगार आठ गुणो से युक्त होते हैं। यथा (१) **आचारवान्** --ज्ञानादि पाच प्रकार के आचार से युक्त, (२) **आधारवान्** - बताए हुए अतिचारो (दोषो) को मन मे धारण करने वाले, (३) **व्यवहारवान्**--आगमव्यवहार, श्रुतव्यवहार, धारणाव्यवहार, जीतव्यवहार आदि पाच प्रकार के व्यवहार के ज्ञाता। (४) **अपव्रीडक**--लज्जा से अपने दोषो को छिपाने वाले शिष्य की लज्जा मीठे वचनो से दूर करके भलीभाँति आलोचना कराने वाले। (५) **प्रकुर्वक** - आलोचना किए हुए दोष का योग्य प्रायश्चित्त देकर अतिचारो की शुद्धि कराने मे समर्थ। (६) **अपरिस्रावी**--आलोचना करने वाले के दोषो को दूसरे के समक्ष प्रकाशित नही करने वाले। (७) **निर्यापक**--अशक्ति या किसी अन्य कारण से एक साथ पूरा प्रायश्चित्त

लेने में असमर्थ साधु को थोडा-थोडा प्रायश्चित्त देकर निर्वाह कराने वाले । (८) अपायदर्शी— आलोचना नही लेने से परलोक का भय तथा दूसरे दोष बताकर भलीभाति आलोचना करने वाले ।

आलोचना सुनने वाले के यहाँ उपर्युक्त आठ गुण बताये है, किन्तु स्थानागसूत्र मे दस गुण बताए हैं, जिनमें (९) प्रियधर्मी और (१०) दृढधर्मी—ये दो गुण अधिक है ।

चतुर्थ समाचारीद्वार : समाचारी के १० भेद

१९४. दसविहा सामायारी पन्नत्ता, त जहा—

इच्छा १ मिच्छा २ तहक्कारो ३ आवस्सिया य ४ निसीहिया ५ ।

आपुच्छणा य ६ पडिपुच्छा ७ छदणा य ८ निमतणा ९ ।

उपसपया य काले १०, सामायारी भवे दसहा ।।९।। [दार ४] ।

[१९४] समाचारी दस प्रकार की कही है, यथा—[गाथार्थ] (१) इच्छाकार, (२) मिथ्याकार, (३) तथाकार, (४) आवश्यकी, (५) नैषेधिकी, (६) आपृच्छना, (७) प्रतिपृच्छना, (८) छन्दना, (९) निमत्रणा और (१०) उपसम्पदा ।।९।। [चतुर्थ द्वार]

विवेचन—इच्छाकार आदि की परिभाषा—(१) इच्छाकार 'यदि आपकी इच्छा हो, तो आप मेरा अमुक कार्य करें, अथवा 'आपकी आज्ञा हो तो मै आपका यह कार्य करू'— इस प्रकार पूछना 'इच्छाकार' है । इस समाचारी से किसी भी कार्य मे किसी की विवशता नही रहती । इस समाचारी के अनुसार एक साधु, दूसरे साधु से उसकी इच्छा जान कर ही कार्य करे, अथवा दूसरा साधु अपने गुरु या बडे साधु की इच्छा जानकर स्वय वह कार्य करे ।

(२) **मिथ्याकार**—सयमपालन करते हुए कोई विपरीत आचरण हो गया हो, तो उस पाप के लिए पश्चात्ताप करता हुआ साधु स्वय यह उद्गार निकालता है कि 'मिच्छा मि दुक्कड' — अर्थात् मेरा यह दुष्कृत-पाप मिथ्या (निष्फल) हो, इसे मिथ्याकार-समाचारी कहते हैं ।

(३) **तथाकार**—सूत्रादि आगम-वाचना या व्याख्या के मध्य गुरु से कुछ पूछने पर जब वे उत्तर दे तब अथवा व्याख्यान दे तब 'तहत्ति' अर्थात् आप कहते है, वह यथार्थ है कहना 'तथाकार' समाचारी है ।

(४) **आवश्यकी**—आवश्यक कार्य के लिए उपाश्रय से बाहर निकलते समय 'आवस्सइ-आवस्सइ' कहे । अर्थात् मै आवश्यक कार्य के लिए बाहर जाता हूँ, ऐसा कहना 'आवश्यकी' समाचारी है ।

(५) **नैषेधिकी**—बाहर से लौट कर उपाश्रय मे प्रवेश करते समय 'निसीहि-निसीहि' कहे । अर्थात् जिस कार्य के लिए मैं बाहर गया था, उस कार्य से निवृत्त होकर आ गया हूँ, इस प्रकार उस कार्य का निषेध करना 'नैषेधिकी' समाचारी है ।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३४८९-३४९०

(६) **आपृच्छना**--किसी कार्य मे प्रवृत्त होने से पूर्व गुरुदेव से पूछना—'भगवन् ! मैं यह कार्य करू ?' यह 'आपृच्छना' समाचारी है।

(७) **प्रतिपृच्छना**—गुरुमहाराज ने पहले जिस कार्य का निषेध किया, उसी कार्य मे आवश्यकतानुसार प्रवृत्त होना हो तो गुरुदेव से पूछना—'भगवन् ! आपने पहले इस कार्य के लिए निषेध किया था, किन्तु अब यह कार्य करना आवश्यक है। आप अनुज्ञा दे तो करू' इस प्रकार पुन: पूछना 'प्रतिपृच्छना' समाचारी है।

(८) **छन्दना**—लाये हुए आहार के लिए दूसरे साधुओ को आमत्रण देना कि यदि आपके उपयोग मे आ सके तो इस आहार को ग्रहण कीजिए, इत्यादि 'छन्दना' समाचारी है।

(९) **निमत्रणा**—आहार लाने के लिए दूसरे साधुओ को निमत्रण देना या उनसे पूछना कि क्या आपके लिए आहार लाऊँ ? यह 'निमत्रणा' समाचारी है।

(१०) **उपसम्पदा**-ज्ञानादि प्राप्त करने के लिए गुरु की आज्ञा प्राप्त कर अपना गण छोडकर किसी विशेष आगमज्ञ गुरु के या आचार्य के सान्निध्य मे रहना, 'उपसम्पद' समाचारी है।

यह दस प्रकार की समाचारी साधु के सयम-पालन मे उपयोगी आचार-पद्धति है।[1]

पंचम प्रायश्चित्तद्वार : प्रायश्चित्त के दस भेद

१९५ दसविहे पायच्छित्ते पन्नत्ते, त जहा आलोयणारिहे १ पडिक्कमणारिहे २ तदुभयारिहे ३ विवेगारिहे ४ विउसग्गारिहे ५ तवारिहे ६ छेदारिहे ७ मूलारिहे ८ अणवट्ठप्पारिहे ९ पारंचियारिहे १०। [दारं ५]।

[१९५] दस प्रकार का प्रायश्चित्त कहा है। यथा—(१) आलोचनार्ह, (२) प्रतिक्रमणार्ह, (३) तदुभयार्ह, (४) विवेकार्ह, (५) व्युत्सर्गार्ह, (६) तपार्ह, (७) छेदार्ह, (८) मूलार्ह, (९) अनवस्थाप्यार्ह और (१०) पाराचिकार्ह। [पचम द्वार]

विवेचन—प्रायश्चित्त और उसके दस भेदो का स्वरूप-यहाँ प्राय शब्द अपराध या पाप अथवा अतिचार अर्थ मे और चित्त शब्द उसकी विशुद्धि के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। पाप-दोषो की विशुद्धि या आत्मशुद्धि के लिए गुरु या विश्वस्त आचार्य के समक्ष अपने दोषो को प्रकट करना और उनके द्वारा प्रदत्त आलोचनादि रूप प्रायश्चित्त को स्वीकार करना प्रायश्चित्त का हार्द है। प्रायश्चित्त दस प्रकार का है, जो गुरु आदि द्वारा दोषी साधु को स्वेच्छा से आलोचनादि करने पर दिया जाता है।

(१) **आलोचनार्ह**—सयम मे लगे हुए दोष को गुरु आदि के समक्ष स्पष्ट वचनो से सरलता-पूर्वक प्रकट करना 'आलोचना' है। ऐसा दोष जिसकी शुद्धि आलोचना-मात्र से हो जाए, उसे आलोचनार्ह प्रायश्चित्त कहते है।

---

१ (क) भगवती प्रमेयचन्द्रिका टीका भा १६, पृ ४१५-१६
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४९१-९२

(२) **प्रतिक्रमणार्ह** – प्रतिक्रमण के योग्य। अर्थात्—जिस पाप या दोष की शुद्धि केवल प्रतिक्रमण से हो जाए। प्रतिक्रमणार्ह प्रायश्चित्त मे गुरु के समक्ष आलोचना करने की आवश्यकता नही रहती।

(३) **तदुभयार्ह**—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो के योग्य। जिस दोष की शुद्धि आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो से हो उसे तदुभयार्ह प्रायश्चित्त कहते है।

(४) **विवेकार्ह**—अशुद्ध आहारादि आ गया हो तो उसे पृथक् कर देने से अथवा आधाकर्मादि दोषयुक्त आहारादि का विवेक यानी त्याग कर देने से जिस दोष की शुद्धि हो उसे विवेकार्ह प्रायश्चित्त कहते हैं।

(५) **व्युत्सर्गार्ह**—कायोत्सर्ग के योग्य। शरीर की चेष्टा को रोक कर ध्येय वस्तु मे उपयोग लगाने से जिस दोष की शुद्धि होती हो, उसे व्युत्सर्गार्ह प्रायश्चित्त कहते है।

(६) **तपार्ह**—जिस दोष की शुद्धि तप से हो, उसे तपार्ह प्रायश्चित्त कहते है।

(७) **छेदार्ह**—दीक्षापर्याय मे छेद यानी कटौती करने के योग्य। जिस अपराध की शुद्धि दीक्षापर्याय का छेद करने से हो, उसे छेदार्ह प्रायश्चित्त कहते है।

(८) **मूलार्ह** - मूल अर्थात् मूलगुणो - महाव्रतो को पुन ग्रहण करने यानी फिर से दीक्षा लेने से दोषशुद्धि होने योग्य। ऐसा प्रबल दोष, जिसके सेवन करने पर पूर्वगृहीत सयम छोड कर दूसरी बार नई दीक्षा लेनी पड़े, वह मूलार्ह प्रायश्चित्त है। मूलार्ह-प्रायश्चित्त मे पहले का सयम बिलकुल नही गिना जाता, दोषी को उस समय से पहले दीक्षित सभी साधुओ को वन्दना करनी पडती है।

(९) **अनवस्थाप्यार्ह**—अमुक प्रकार का विशिष्ट तप न कर ले, तब तक महादोषी साधु वेष या महाव्रतो मे रखने योग्य नही होता, इस प्रकार का अनवस्थान अर्थात् अनिश्चित काल तक साधु-जीवन मे स्थापित न करने के कारण, ऐसा प्रायश्चित्त 'अनवस्थाप्य' कहलाता है। अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त मे दोषी को अमुक निश्चित तप करने तथा गृहस्थ का वेष पहनाने के बाद दूसरी बार दीक्षा देने के बाद ही शुद्धि होती है।

(१०) **पारांचिकार्ह**—जिस गम्भीर दोष के सेवन करने पर साधु को गच्छ से बाहर निकलने तथा स्वक्षेत्र-त्याग करने योग्य प्रायश्चित्त दिया जाए, उसे पारांचिकार्ह प्रायश्चित्त कहते हैं। यह प्रायश्चित्त रानी या साध्वी आदि का शील-भग या किसी विशिष्ट व्यक्ति की हत्या आदि महादोष सेवन करने पर दिया जाता है। इस प्रायश्चित्त मे दोषी को साधुवेष और स्वक्षेत्र का त्याग करके जिनकल्पी के समान महातप का आचरण करना पडता है।

ऐसी पारम्परिक धारणा है कि पारांचिकार्ह प्रायश्चित्त महासत्त्वशाली आचार्य को ही दिया जाता है। इस प्रायश्चित्त द्वारा दोषशुद्धि के लिए छह महीने से लेकर बारह वर्ष तक गच्छ छोड कर जिनकल्पी के समान कठोर तपश्चरण करना पडता है। उपाध्याय के लिए नौवे प्रायश्चित्त तक का विधान है और सामान्य साधु के लिए आठवे मूलार्ह तक का विधान है। जहाँ तक चतुर्दशपूर्वधारी और वज्रऋषभनाराचसहननी होते हैं, वही तक दसो प्रायश्चित्त होते है। उनका विच्छेद होने के पश्चात् मूलार्ह तक आठो ही प्रायश्चित्त होते हैं।

अन्य आगमों में आचार्य, उपाध्याय के अतिरिक्त दूसरे साधुओं के लिए भी दसों प्रायश्चित्तों का विधान मिलता है।[1]

छठा तपोद्वार : तप के भेद-प्रभेद

१९६. दुविधे तवे पन्नत्ते, त जहा—बाहिरए य, अब्भितरए य।

[१९६] तप दो प्रकार का कहा गया है। यथा—बाह्य और आभ्यन्तर।

१९७. से किं तं बाहिरए तवे ?

बाहिरए तवे छव्विधे पन्नत्ते, त जहा—अणसणोमोयरिया १-२ भिक्खायरिया ३ य रसपरिच्चाओ ४। कायकिलेसो ५ पडिसंलीणया ६।

[१९७ प्र] (भगवन् !) वह बाह्य तप किस प्रकार का है ?

[१९७ उ] (गौतम !) बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है—(१) अनशन, (२) अवमौदर्य, (३) भिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश और (६) प्रतिसंलीनता।

विवेचन—तप और उसके भेद—शरीर, आत्मा, कर्म या विकारों को जिससे तपाया जाए, उसे तप कहते हैं। जैसे—अग्नि में तप्त होकर सोना विशुद्ध और मलरहित हो जाता है, वैसे ही तपस्या रूपी अग्नि में तपी हुई आत्मा कर्ममल, विकार या पाप आदि से रहित होकर निर्मल और विशुद्ध हो जाती है। वह तप दो प्रकार का है - बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप शरीर और इन्द्रियों आदि से विशेष सम्बन्ध रखता है, जबकि आभ्यन्तर तप मन और आत्मा से सम्बद्ध है। इनके प्रत्येक के छह-छह भेद हैं।[2]

अनशन तप के भेद-प्रभेद

१९८. से किं तं अणसणे ?

अणसणे दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—इत्तरिए य आवकहिए य।

[१९८ प्र] भगवन् ! अनशन कितने प्रकार का है ?

[१९८ उ.] गौतम ! अनशन दो प्रकार का कहा है, यथा—इत्वरिक और यावत्कथिक।

१९९. से किं तं इत्तरिए ?

इत्तरिए अणेगविधे पन्नत्ते, त जहा—चउत्थे भत्ते, छट्ठे भत्ते, अट्ठमे भत्ते, दसमे भत्ते, दुवालसमे भत्ते, चोद्दसमे भत्ते, अद्धमासिए भत्ते, मासिए भत्ते, दोमासिए भत्ते। जाव छम्मासिए भत्ते। से तं इत्तरिए।

[१९९ प्र] भगवन् ! इत्वरिक अनशन कितने प्रकार का कहा है ?

[१९९ उ] इत्वरिक अनशन अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा—चतुर्थभक्त (उपवास),

---

१ (क) भगवती (प्रमेयचन्द्रिकाटीका) भा १६, पृ. ४२४-४२५

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३४१३-१४

२ भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४९५

षष्ठभक्त (बेला), अष्टम-भक्त (तेला), दशम-भक्त (चौला), द्वादशभक्त (पचौला), चतुर्दशभक्त (छह-उपवास), अर्द्धमासिक (१५ दिन के उपवास), मासिकभक्त (मासखमण—एक महीने के उपवास) - द्विमासिकभक्त, त्रिमासिकभक्त यावत् षाण्मासिकभक्त। यह इत्वरिक अनशन है।

२००. से किं तं आवकहिए ?

आवकहिए दुविधे पन्नत्ते तं जहा—पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य।

[२०० प्र.] भगवन् ! यावत्कथिक अनशन कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२०० उ.] गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है। यथा —पादोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान।

२०१. से किं तं पाओवगमणे ?

पाओवगमणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अनीहारिमे य, नियमं अपडिकम्मे। से त्तं पाओवगमणे।

[२०१ प्र.] भगवन् ! पादोपगमन कितने प्रकार का कहा गया है ?

[२०१ उ.] गौतम ! पादपोपगमन दो प्रकार का कहा गया है। यथा- निर्हारिम और अनिर्हारिम। ये दोनो नियम से अप्रतिकर्म होते है। यह है —पादपोपगमन।

२०२. से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ?

भत्तपच्चक्खाणे दुविधे पन्नत्ते, तं जहा- नीहारिमे य, अनीहारिमे य, नियमं सपडिक्कम्मे। से त्तं आवकहिए। से त्तं अणसणे।

[२०२ प्र.] भगवन् ! भक्तप्रत्याख्यान अनशन क्या है ?

[२०२ उ.] भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है, यथा निर्हारिम और अनिर्हारिम। यह नियम से सप्रतिकर्म होता है। इस प्रकार यावत्कथिक अनशन और साथ ही अनशन का निरूपण पूरा हुआ।

विवेचन—अनशन के कतिपय प्रकारो की सज्ञा और उनके विशेषार्थ अनशन का सामान्यतया अर्थ है आहार का त्याग करना। इसके दो भेदो मे इत्वरिक अनशन का अर्थ है—अल्पकाल के लिए किया जाने वाला अनशन। प्रथम तीर्थंकर के शासन मे एक वर्ष, मध्य के बाईस तीर्थंकरो के शासन मे आठ मास और अन्तिम तीर्थंकर के शासन मे उत्कृष्ट ६ मास तक का इत्वरिक अनशन होता है। इसके चतुर्थभक्त आदि अनेक भेद है। चतुर्थभक्त उपवास की, षष्ठभक्त बेले की, अष्टमभक्त तेले की (तीन उपवास की) सज्ञा है। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

यावत्कथिक अनशन यावज्जीवन का होता है। उसके दो भेद है पादपोपगमन और भक्त-प्रत्याख्यान।

पादोपगमन का अर्थ है कटे हुए वृक्ष की तरह अथवा वृक्ष की कटी डाली के समान शरीर के किसी भी अग को किञ्चित् मात्र भी नही हिलाते हुए अशन-पान-खादिम-स्वादिम रूप चारो प्रकार के आहार का त्याग करके निश्चलरूप से सथारा करना।

पादपोपगमन अनशन मे हाथ-पैर हिलाने का भी आगार नही है। साधक संथारा करके जिस स्थान मे जिस रूप मे एक बार लेट जाता है, फिर उसी स्थान मे उसी स्थिति मे लेटे रहना और अन्तिम समय तक निश्चल होकर मृत्यु का सद्भावना से वरण करना पादपोपगमन है।

तीनो या चारो प्रकार के आहार का त्याग करके जो संथारा किया जाता है, उसे भक्त-प्रत्याख्यान अनशन कहते है, इसे 'भक्तपरिज्ञा' भी कहते है।

पादपोपगमन और भक्तप्रत्याख्यान के निर्हारिम और अनिर्हारिम, ऐसे दो-दो भेद होते हैं। जिस साधक का संथारा ग्राम आदि मे रहते हुए हुआ हो और उसके मृतशरीर को ग्रामादि से बाहर ले जाया जाए, उसे 'निर्हारिम' कहते है और ग्रामादि से बाहर किसी पर्वत की गुफा आदि मे जो संथारा (अनशन) किया जाए, उसे 'अनिर्हारिम' कहते है। पादपोपगमन अप्रतिकर्म होता है, उसमे संथारे की स्थिति मे किसी दूसरे से किसी प्रकार की सेवा नही ली जाती। भक्तप्रत्याख्यान अनशन सप्रतिकर्म होता है। इसमे दूसरे मुनियो से सेवा कराई जा सकती है।[1]

अवमौदर्य तप के भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा

२०३ से किं तं ओमोदरिया ?

ओमोदरिया दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—दव्वोमोदरिया य भावोमोदरिया य।

[२०३ प्र] भगवन् ! अवमोदरिका (ऊनोदरी) तप कितने प्रकार का है ?

[२०३ उ] गौतम ! अवमोदरिका तप दो प्रकार का कहा गया है। यथा—द्रव्य-अवमोदरिका और भाव-अवमोदरिका।

२०४. से किं तं दव्वोमोदरिया ?

दव्वोमोदरिया दुविहा पन्नत्ता, तं जहा उवगरणदव्वोमोदरिया य, भत्तपाणदव्वोमोयरिया य।

[२०४ प्र] भगवन् ! द्रव्य-अवमोदरिका कितने प्रकार का कहा है ?

[२०४ उ] गौतम ! द्रव्य-अवमोदरिका दो प्रकार का कहा है। यथा—उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका और भक्तपानद्रव्य-अवमोदरिका।

२०५. से किं तं उवगरणदव्वोमोदरिया ?

उवगरणदव्वोमोयरिया—एगे वत्थे एगे पादे चियत्तोवगरणसातिज्जणया। से त्तं उवगरण-दव्वोमोयरिया।

[२०५ प्र] भगवन् ! उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका कितने प्रकार का कहा है ?

[२०५ उ] गौतम ! उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका (तीन प्रकार का है, यथा—) एक वस्त्र, एक पात्र और त्यक्तोपकरण-स्वदनता। यह हुआ उपकरणद्रव्य-अवमोदरिका।

---

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३४९७-३४९८

२०६. से किं तं भत्त-पाणदव्वोमोदरिया ?

भत्त-पाणदव्वोमोदरिया अट्ठकुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहार आहारेमाणस्स अप्पाहारे, दुवालस० जहा सत्तमसए पढमुद्देसए (स० ७ उ० १ सु० १९) जाव नो पकामरसभोती ति वत्तव्वं सिया। से त्तं भत्त-पाणदव्वोमोदरिया। से त्तं दव्वोमोदरिया।

[२०६ प्र] भगवन्! भक्तपानद्रव्य-अवमोदरिका कितने प्रकार का है ?

[२०६ उ.] गौतम! (मुर्गी) के अण्डे के प्रमाण के आठ कवल आहार करना अल्पाहार-अवमोदरिका है तथा बारह कवल प्रमाण आहार करना अवड्ढ-अवमोदरिका है, इत्यादि वर्णन सातवें शतक के प्रथम उद्देशक के (सू १९ के) अनुसार यावत् वह प्रकाम-रसभोजी नहीं होता, ऐसा कहा जा सकता है, यहाँ तक जानना चाहिए। यह भक्तपान-अवमोदरिका का वर्णन हुआ। इस प्रकार द्रव्य-अवमोदरिका का वर्णन पूर्ण हुआ।

२०७. से किं तं भावोमोदरिया ?

भावोमोदरिया अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा—अप्पकोहे, जाव अप्पलोभे, अप्पसद्दे, अप्पझंझे, अप्पतुमंतुमे, से त्तं भावोमोदरिया। से त्तं ओमोयरिया।

[२०७ प्र] भगवन्! भाव-अवमोदरिका कितने प्रकार का है ?

[२०७ उ] गौतम! भाव-अवमोदरिका अनेक प्रकार का कहा है। यथा—अल्पक्रोध यावत् अल्पलोभ, अल्पशब्द, अल्पझंझा (थोड़ी झंझट) और अल्प तुमन्तुमा। यह हुई भाव-अवमोदरिका। इस प्रकार अवमोदरिका का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—अवमोदरिका : लक्षण, प्रकार और स्वरूप—अवमोदरिका का दूसरा प्रचलित नाम ऊनोदरी है। भोजन, वस्त्र, उपकरण आदि का तथा क्रोधादि भावों का आवेश कम करना 'ऊनोदरी' तप है। इसके दो भेद हैं—द्रव्य-ऊनोदरी और भाव-ऊनोदरी। भण्ड-उपकरण और आहारादि का जो परिमाण शास्त्रों में साधुवर्ग के लिए बताया है, उसमें कमी करना अर्थात् कम से कम उपकरणादि का उपयोग करना तथा सरस और पौष्टिक आहार का त्याग करना द्रव्य-ऊनोदरी है। द्रव्य-ऊनोदरी के मुख्य दो भेद हैं, यथा—उपकरण-द्रव्य-ऊनोदरी और भक्त-पान-द्रव्य-ऊनोदरी। उपकरण-द्रव्य-ऊनोदरी के तीन भेद हैं एकपात्र, एकवस्त्र और जीर्ण उपधि। शास्त्र में चार पात्र तक रखने का विधान है। उससे कम रखना पात्र-ऊनोदरी है। इसी प्रकार शास्त्र में साधु को ७२ हाथ (चौरस) और साध्वी के लिए ९६ हाथ वस्त्र रखने का विधान है। इससे कम रखना वस्त्र-ऊनोदरी है। तीसरा भेद है **चियत्तोवगरणसातिज्जणया**—जिसका संस्कृत रूपान्तर होता है—**त्यक्तोपकरण-स्वदनता**। त्यक्त अर्थात् संयतों के त्यागे हुए उपकरणों की स्वदनता अर्थात् परिभोग करना। यह अर्थ वृत्तिकार-सम्मत है। चूर्णिकार ने अर्थ किया है—साधु के पास जो वस्त्र हो, उन पर ममत्वभाव न रखे, दूसरा कोई (सांभोगिक) साधु मांगे तो उसे उदारतापूर्वक दे दे। ये सभी ऊनोदरी के विशेषार्थ है, जो अवमोदरिका के अर्थ में घटित होते हैं। **भक्तपानद्रव्य-ऊनोदरी** के सामान्यतया **५ भेद हैं**। यथा—आठ कवल (कौर)-प्रमाण आहार करना **अल्पाहार-ऊनोदरी** है, बारह कौर-प्रमाण आहार-करना **अपार्द्ध ऊनोदरी** है, सोलह कवल-प्रमाण आहार करना **अर्द्ध-ऊनोदरी** है। **चौवीस कवल-**

प्रमाण आहार करना **'प्राप्त ऊनोदरी'** है। अर्थात् चार विभाग में से तीन विभाग आहार है और एक भाग ऊनोदरी है। इकतीस कवल-प्रमाण आहार करना **'किंचित् ऊनोदरी'** है और पूरे बत्तीस कवल-प्रमाण आहार करना **'प्रमाणोपेत ऊनोदरी'** है। पूर्ण आहार तप नहीं माना जाता। उसमें से एक कौर भी आहार कम करे वहाँ तक थोड़ा तप अवश्य है। इस प्रकार ऊनोदरी तप करने वाला साधु 'प्रकामरसभोजी' नहीं है, ऐसा कहा जाता है। इस ऊनोदरी तप का विशेष विवेचन सातवें शतक के प्रथम उद्देशक में किया गया है।

भाव-ऊनोदरी के अनेक भेद कहे हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ के आवेश को कम करना, अल्प वचन बोलना, क्रोध के वश यद्वा-तद्वा न बोलना (झंझा न करना) तथा हृदयस्थ कषाय (तुमन्तुम) को शान्त करना (मन में कुढ़ना-चिढ़ना नहीं) **'भाव-ऊनोदरी'** है।[1]

भिक्षाचर्या, रसपरित्याग एवं कायक्लेश तप की प्ररूपणा

२०८. से किं त भिक्खायरिया ?

भिक्खायरिया अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा—दव्वाभिग्गहचरए, खेत्ताभिग्गहचरए, जहा उववातिए जाव सुद्धेसणिए, संखादत्तिए। से त्तं भिक्खायरिया।

[२०८ प्र.] भगवन्! भिक्षाचर्या कितने प्रकार की है?

[२०८ उ.] गौतम! भिक्षाचर्या अनेक प्रकार की कही है। यथा—द्रव्याभिग्रहचरक भिक्षाचर्या, क्षेत्राभिग्रहचरक भिक्षाचर्या, इत्यादि वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार शुद्धैषणिक, सख्यादत्तिक, यहाँ तक कहना। यह भिक्षाचर्या का वर्णन हुआ।

२०९. से किं त रसपरिच्चाए ?

रसपरिच्चाए अणेगविधे पन्नत्ते, तं जहा—निव्वितिए, पणीतरसविवज्जए जहा उववाइए जाव लूहाहारे। से त्तं रसपरिच्चाए।

[२०९ प्र.] भगवन्! रस-परित्याग के कितने प्रकार हैं?

[२०९ उ.] गौतम! रस-परित्याग अनेक प्रकार का कहा गया है। यथा—निर्विकृतिक, प्रणीतरस-विवर्जक, इत्यादि औपपातिकसूत्र में कथित वर्णन के अनुसार यावत् रूक्षाहार-पर्यन्त कहना चाहिए।

२१०. से किं त कायकिलेसे ?

कायकिलेसे अणेगविधे पन्नत्ते, तं जहा—ठाणातीए, उक्कुडुयासणिए, जहा उववातिए जाव सव्वगायपडिकम्मविप्पमुक्के। से त्तं कायकिलेसे।

[२१० प्र.] भगवन्! कायक्लेश तप कितने प्रकार का है?

[२१० उ.] गौतम! कायक्लेश तप अनेक प्रकार का कहा है। यथा—स्थानातिग, उत्कुटुकासनिक इत्यादि औपपातिकसूत्र के अनुसार यावत् सर्वगात्रप्रतिकर्मविप्रमुक्त तक कहना चाहिए।

१. (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९२४

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भाग ७, पृ. ३५००-३५०१

विवेचन—भिक्षाचर्या का स्वरूप और प्रकार—विविध प्रकार के अभिग्रह लेकर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से भिक्षा सकोच करते हुए चर्या (अटन) करना—भिक्षाचर्या-तप कहलाता है। अभिग्रह-पूर्वक भिक्षाचरी करने से वृत्ति-सकोच होता है, इसलिए इसे 'वृत्तिसक्षेप' कहते हैं। औपपातिकसूत्र मे द्रव्याभिग्रहचरक, क्षेत्राभिग्रहचरक, कालाभिग्रहचरक, भावाभिग्रहचरक इत्यादि कई भेद किये हैं। शुद्ध एषणा, अर्थात् शकितादि दोषो का परित्याग करते हुए शुद्ध पिण्ड ग्रहण करना शुद्धैषणिकभिक्षा है तथा पाच, छह अथवा सात आदि दत्तियो की गणनापूर्वक भिक्षा करना सख्यादत्तिक भिक्षा है। इसके अतिरिक्त भिक्षा के आचाम्ल (आयबिल), आयाम-सिक्थभोजी, अरसाहार इत्यादि अनेक भेद औपपातिकसूत्र मे बताए है।[1]

रसपरित्याग : स्वरूप और प्रकार—दुग्ध, दधि, घृत, तेल और मिष्ठान्न ये पाचो रस विकृति-जनक होने से इन्हे विकृति (विग्गई) कहा जाता है। इन पाचो विकृतिजनक रसो (विकृतियो) का तथा प्रणीत, स्निग्ध, गरिष्ठ एव स्वादिष्ट खाद्य-पेय वस्तुओ के रस (स्वाद) का त्याग करना रस-परित्याग कहलाता है। यह एक प्रकार का अस्वादव्रत है। इसमे छहो रसो (तिक्त, कटु, मधुर, कसैला, खट्टा आदि) का तथा विकृतिजनक पदार्थों का त्याग किया जाता है। इसीलिए इसके निर्विकृतिक, प्रणीतरसविवर्जक, रूक्षाहारक आदि अनेक भेद औपपातिकसूत्र मे वर्णित है।[2]

कायक्लेश : परिभाषा तथा प्रकार—आध्यात्मिक तप, जप, सयम आदि की साधना एव धर्म-पालन के लिए काय यानी शरीर को शास्त्रसम्मत-रीति से समभाव पूर्वक क्लेश (कष्ट) पहुँचाना कायक्लेशतप है। इसके वीरासन, उत्कुटुकासन, दण्डासन आदि आसनो का सेवन करना, लोच करना, शरीर की शोभा-शुश्रूषा-शृगारादि परिकर्म का त्याग करना इत्यादि अनेक प्रकार औपपातिकसूत्र मे बताए हैं। इसके स्थान-स्थितिक, स्थानातिग, प्रतिमास्थायी, नैषधिक इत्यादि और भी अनेक भेद हैं।[3]

प्रतिसंलीनता तप के भेद एवं स्वरूप का निरूपण

२११. से किं तं पडिसलीणया ?

पडिसंलीणया चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहा— इंदियपडिसंलीणया कसायपडिसलीणया जोगपडि-संलीणया विवित्तसयणासणसेवणया।

[२११ प्र.] (भगवन् !) प्रतिसलीनता कितने प्रकार की कही है ?

[२११ उ] (गौतम !) प्रतिसलीनता चार प्रकार की कही है। यथा—(१) इन्द्रियप्रति-सलीनता, (२) कषायप्रतिसलीनता, (३) योगप्रतिसलीनता और (४) विविक्तशय्यासनप्रतिसलीनता।

---

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९२४
   (ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५०१
२. (क) वही, भा ७, पृ. ३५०२
   (ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९२४
३. (क) वही, पत्र ९२४
   (ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५०३

२१२. से किं तं इंदियपडिसंलीणया ?

इंदियपडिसंलीणया पंचविहा पन्नत्ता, तं जहा—सोइंदियविसयपयारणिरोहो वा, सोतिंदियविसयप्पत्तेसु वा अत्थेसु राग-द्दोसविणिग्गहो; चक्खिदियविसय०, एवं जाव फासिंदियविसयपयारणिरोहो वा, फासिंदियविसयप्पत्तेसु वा अत्थेसु राग-द्दोसविणिग्गहो। से त्तं इंदियपडिसंलीणया।

[२१२ प्र] भगवन्! इन्द्रियप्रतिसंलीनता कितने प्रकार की है?

[२१२ उ] गौतम! इन्द्रियप्रतिसंलीनता पांच प्रकार की कही है। यथा—(१) श्रोत्रेन्द्रियविषय-प्रचारनिरोध अथवा श्रोत्रेन्द्रियविषयप्राप्त अर्थों में रागद्वेषविनिग्रह, (२) चक्षुरिन्द्रियविषयप्रचारनिरोध अथवा चक्षुरिन्द्रियविषयप्राप्त अर्थों में रागद्वेषविनिग्रह, इसी प्रकार यावत् स्पर्शनेन्द्रियविषयप्रचारनिरोध अथवा स्पर्शनेन्द्रियविषयप्राप्त अर्थों में रागद्वेषविनिग्रह। यह इन्द्रियप्रतिसंलीनता का वर्णन हुआ।

२१३. से किं तं कसायपडिसंलीणया ?

कसायपडिसंलीणया चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहा—कोहोदयनिरोहो वा, उदयप्पत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरणं; एवं जाव लोभोदयनिरोहो वा उदयपत्तस्स वा लोभस्स विफलीकरणं। से त्तं कसायपडिसंलीणया।

[२१३ प्र] भगवन्! कषायप्रतिसंलीनता कितने प्रकार की है?

[२१३ उ] गौतम! कषायप्रतिसंलीनता चार प्रकार की कही है। यथा—(१) क्रोधोदयनिरोध अथवा उदयप्राप्त क्रोध का विफलीकरण, यावत् (४) लोभोदयनिरोध अथवा उदयप्राप्त लोभ का विफलीकरण। यह हुआ कषायप्रतिसंलीनता का वर्णन।

२१४. से किं तं जोगपडिसंलीणया ?

जोगपडिसंलीणया तिविहा पन्नत्ता, तं जहा—मणजोगपडिसंलीणया वइजोगपडिसंलीणया कायजोगपडिसंलीणया य। से किं तं मणजोगपडिसंलीणया? मणजोगपडिसंलीणया—अकुसलमणनिरोहो वा, कुसलमणउदीरणं वा, मणस्स वा एगत्तीभावकरणं। से त्तं मणजोगपडिसंलीणया। से किं तं वइजोगपडिसंलीणया? वइजोगपडिसंलीणया अकुसलवइनिरोहो वा, कुसलवइउदीरणं वा, वईए वा एगत्तीभावकरणं।

[२१४ प्र] भगवन्! योगप्रतिसंलीनता कितने प्रकार की है?

[२१४ उ] गौतम! योगप्रतिसंलीनता तीन प्रकार की कही है। यथा—(१) मनोयोगप्रतिसंलीनता, (२) वचनयोगप्रतिसंलीनता और (३) काययोगप्रतिसंलीनता।

[प्र] मनोयोगप्रतिसंलीनता किस प्रकार की है?

[उ] मनोयोगप्रतिसंलीनता इस प्रकार की है—अकुशल मन का निरोध, कुशलमन की उदीरणा और मन को एकाग्र करना। यह मनोयोगप्रतिसंलीनता का स्वरूप है।

[प्र.] वचनयोगप्रतिसलीनता किस प्रकार की है ?

[उ.] वचनयोगप्रतिसलीनता इस प्रकार की है—अकुशल वचन का निरोध, कुशल वचन की उदीरणा और वचन की एकाग्रता करना। यह वचनयोगप्रतिसलीनता है।

२१५. से किं त कायपडिसलीणया ?

कायपडिसलीणया ज ण सुसमाहियपसंतसाहरियपाणि-पाए कुम्मो इव गुत्तिदिए अल्लीणे पल्लीणे चिट्ठइ। से त्तं कायपडिसलीणया। से त्त जोगपडिसलीणया।

[२१५ प्र] कायप्रतिसलीनता किसे कहते हैं ?

[२१५ उ] कायप्रतिसलीनता है—सम्यक् प्रकार से समाधिपूर्वक प्रशान्तभाव से हाथ-पैरों को सकुचित करना (सिकोडना), कछुए के समान इन्द्रियो का गोपन करके आलीन-प्रलीन (स्थिर) होना। यह हुआ योगप्रतिसलीनता का वर्णन।

२१६ से किं त विवित्तसयणासणसेवणता ?

विवित्तसयणासणसेवणया ज ण आरामेसु वा उज्जाणेसु वा जहा सोमिलुद्देसए (स० १८ उ० १० सु० २३) **जाव सेज्जासथारग उवसपज्जित्ताणं विहरति। से त्त विवित्तसयणासणसेवणया। से त्त पडिसलीणया। से त्त बाहिरए तवे।**

[२१६ प्र] विविक्तशय्यासनसेवनता किसे कहते हैं ?

[२१६ उ.] विविक्त (स्त्री, पशु और नपु सक से रहित) स्थान मे अर्थात्—आराम (बगीचो) अथवा उद्यानो आदि मे, (अठारहवे शतक के दसवे सोमिल-उद्देशक के सू २३) के अनुसार, यावत् निर्दोष शय्यासस्तारक आदि उपकरण लेकर रहना विविक्तशय्यासनसेवनता है। यह हुई विविक्तशय्यासनसेवनता। इस प्रकार प्रतिसलीनता का वर्णन पूर्ण हुआ। साथ ही बाह्यतप का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रतिसंलीनता : विशेषार्थ, उद्देश्य और प्रकार—प्रतिसलीनता का सामान्य अर्थ है—गोपन करना अथवा तल्लीन हो जाना। इसका विशेषार्थ है - इन्द्रिय, कषाय और योगो की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना, शुभ योग मे प्रवृत्त होना, शुभ योग मे एकाग्र होना। मुख्यरूप से इसके चार भेद है—इन्द्रियप्रतिसलीनता, कषायप्रतिसलीनता, योगप्रतिसलीनता और विविक्तशय्यासनसेवनता। इन्द्रियप्रतिसलीनता के पाच, कषायप्रतिसलीनता के चार और योगप्रतिसलीनता के तीन भेद, ये कुल बारह और तेरहवाँ विविक्तशय्यासनसेवनता, ये सभी मिलाने से तेरह भेद होते है। इनके विशेषार्थ मूलपाठ मे स्पष्ट हैं। इन प्रतिसलीनताओं के उद्देश्य भी मूल मे स्पष्ट है।[1]

ये बाह्यतप क्यो और किसलिए ? — अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रतिसलीनता, ये छह बाह्यतप कहलाते है। ये बाह्य द्रव्यादि की अपेक्षा रखते है और प्राय. बाह्य-

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९२३

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा २ की टिप्पणी (मू पा टि), पृ.१०५३

(ग) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५०६

शरीर को तपाते हैं, अर्थात्—शरीर पर इनका अधिक प्रभाव पड़ता है। इन तपश्चर्याओं को करने वाला लोकव्यवहार में 'तपस्वी' के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है। अन्यतीर्थिकजन भी स्वाभिप्रायानुसार इन तपश्चर्याओं को अपनाते है, इन और ऐसे कारणों से ये तपश्चरण बाह्यतप कहलाते है। ये बाह्यतप मोक्षप्राप्ति के बाह्य अंग हैं।[1]

षड्विध आभ्यन्तर तप के नाम-निर्देश

२१७. से किं तं अब्भितरए तवे ?

अब्भितरए तवे छव्विहे पन्नत्ते, तंजहा—पायच्छित्त १ विणओ २ वेयावच्चं ३ सज्झायो ४ झाणं ५ विओसग्गो ६।

[२१७ प्र] (भगवन् !) वह आभ्यन्तर तप कितने प्रकार का है ?

[२१७ उ] (गौतम !) आभ्यन्तर तप छह प्रकार का कहा है। यथा—(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान और (६) व्युत्सर्ग।

विवेचन—आभ्यन्तर तप का स्वरूप—जिस तप का सम्बन्ध आत्मा के भावों (आन्तरिक परिणामों) के साथ हो, उसे आभ्यन्तर तप कहा गया है। उपर्युक्त छह आभ्यन्तर तपों का आत्मा के परिणामों के साथ सीधा सम्बन्ध है।

प्रायश्चित्त तप के दश भेद

२१८. से किं तं पायच्छित्ते ?

पायच्छित्ते दसविधे पन्नत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे जाव पारंचियारिहे। से त्तं पायच्छित्ते।

[२१८ प्र] (भगवन् !) प्रायश्चित्त कितने प्रकार का है ?

[२१८ उ] (गौतम !) प्रायश्चित्त दस प्रकार का कहा है। यथा—आलोचनार्ह (से लेकर) यावत् पारांचिकार्ह। यह हुआ प्रायश्चित्त तप।

विवेचन—प्रायश्चित्त : स्वरूप और तद्विषयक ५० बोल—मूलगुण और उत्तरगुण-विषयक अतिचारों से मलिन हुई आत्मा जिस अनुष्ठान से शुद्ध हो, अथवा जिस अनुष्ठान से पाप की शुद्धि हो, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। कहा भी है—

'प्रायः पापं विजानीयात्, चित्तं तस्य विशोधनम्।'

प्राय का अर्थ है—पाप और चित्त का अर्थ है—उसकी विशुद्धि। **प्रायश्चित्त से सम्बन्धित पचास बोल** इस प्रकार है—आलोचनार्ह आदि दस प्रकार का प्रायश्चित्त, आकम्प्य आदि आलोचना के दस दोष, दर्प, प्रमाद आदि प्रायश्चित्त-सेवन से दस कारण, फिर प्रायश्चित्त देने वाले के आचारवान् आदि दस गुण और प्रायश्चित्त लेने वाले के जातिसम्पन्नता, कुलसम्पन्नता आदि दस गुण, इस प्रकार कुल मिला कर प्रायश्चित्त सम्बन्धी पचास बोल होते है।[2]

---

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५०७

२. वही, भा. ७, पृ ३५०८

विनय तप के भेद-प्रभेदों का निरूपण

२१९. से किं त विणए ?

विणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा--नाणविणए १ दंसणविणए २ चरित्तविणए ३ मणविणए ४ वउविणए ५ कायविणए ६ लोगोवयारविणए ७ ।

[२१९ प्र] (भगवन् !) विनय कितने प्रकार का है ?

[२१९ उ] (गौतम !) विनय सात प्रकार का कहा है । यथा—(१) ज्ञानविनय, (२) दर्शन-विनय, (३) चारित्रविनय, (४) मनविनय, (५) वचनविनय, (६) कायविनय और (७) लोकोपचार विनय ।

२२०. से कि त नाणविणए ?

नाणविणए पचविधे पन्नत्ते, त जहा—आभिनिबोहियनाणविणए जाव केवलनाणविणए । से त्त नाणविणए ।

[२२० प्र] (भगवन् !) ज्ञानविनय कितने प्रकार का है ?

[२२० उ] (गौतम !) ज्ञानविनय पाँच प्रकार का कहा है । यथा—आभिनिबोधिकज्ञान-विनय यावत् केवलज्ञानविनय । यह है ज्ञानविनय ।

२२१. से किं त दसणविणए ?

दसणविणए दुविधे पन्नत्ते, त जहा - सुस्सूसणाविणए य अणच्चासायणाविणए य ।

[२२१ प्र] (भगवन् !) दर्शनविनय कितने प्रकार का है ?

[२२१ उ] (गौतम !) दर्शनविनय दो प्रकार का कहा है । यथा—शुश्रूषाविनय और अनाशातनाविनय ।

२२२. से किं त सुस्सूसणाविणए ?

सुस्सूसणाविणए अणेगविधे पन्नत्ते, त जहा—सक्कारेति वा सम्माणेति वा जहा चोद्दसमसए ततिए उद्देसए (स० १४ उ० ३ सु० ४) जाव पडिसंसाहणया । से त्तं सुस्सूसणाविणए ।

[२२२ प्र] (भगवन् !) शुश्रूषाविनय कितने प्रकार का है ?

[२२२ उ] (गौतम !) शुश्रूषाविनय अनेक प्रकार का कहा है । यथा—सत्कार, सम्मान इत्यादि सब वर्णन चौदहवें शतक के तीसरे उद्देशक (के सूत्र ४) के अनुसार यावत् प्रतिससाधनता तक जानना चाहिए ।

२२३ से कि तं अणच्चासादणाविणए ?

अणच्चासादणाविणए पणयालीसतिविधे पन्नत्ते, त जहा--अरहंताणं अणच्चासायणया, अरहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स अणच्चासायणया २ आयरियाण अणच्चासायणया ३ उवज्झायाणं अणच्चासायणया ४ थेराणं अणच्चासायणया ५ कुलस्स अणच्चासायणया ६ गणस्स अणच्चासा-यणया ७ संघस्स अणच्चासायणया ८ किरियाए अणच्चासायणया ९ संभोगस्स अणच्चासायणया १०

आभिणिबोहियनाणस्स अणच्चासायणया ११ जाव केवलनाणस्स अणच्चासायणया १२-१३-१४-१५, एएसिं चेव भत्तिबहुमाणे णं १५ एएसिं चेव वण्णसंजलणया १५,=४५। से त्तं अणच्चासायणाविणए। से त्तं दंसणविणए।

[२२३ प्र.] (भगवन्!) अनाशातनाविनय कितने प्रकार का है?

[२२३ उ.] (गौतम!) अनाशातनाविनय पैंतालीस प्रकार का कहा है। यथा—(१) अरिहन्तो की अनाशातना, (२) अरिहन्तप्रज्ञप्त धर्म की अनाशातना, (३) आचार्यों की अनाशातना, (४) उपाध्यायो की अनाशातना, (५) स्थविरो की अनाशातना, (६) कुल की अनाशातना, (७) गण की अनाशातना, (८) सघ की अनाशातना, (९) क्रिया की अनाशातना, (१०) साम्भोगिक (साधर्मिक साधु-साध्वीगण) की अनाशातना, (११ से १५ तक) आभिनिबोधिकज्ञान से लेकर केवलज्ञान तक की अनाशातना। इन पन्द्रह की (१) भक्ति करना, (२) बहुमान करना और (३) इनका गुण-कीर्तन करना, इस प्रकार कुल १५×३=४५ भेद अनाशातनाविनय के हुए। यह हुआ अनाशातनाविनय का वर्णन। साथ ही दर्शनविनय का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

२२४. **से किं त चरित्तविणए?**

चरित्तविणए पचविधे पन्नत्त, तं जहा-सामाइयचरित्तविणए जाव अहक्खायचरित्तविणए। से त चरित्तविणए।

[२२४ प्र.] (भगवन्!) चारित्रविनय कितने प्रकार का है?

[२२४ उ.] (गौतम!) चारित्रविनय पाच प्रकार का है। यथा—सामायिकचारित्रविनय (से लेकर) यावत् यथाख्यातचारित्रविनय। इस प्रकार चारित्रविनय का वर्णन हुआ।

२२५. **से किं तं मणविणए?**

मणविणए दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—पसत्थमणविणए य अप्पसत्थमणविणए य।

[२२५ प्र.] वह मनोविनय कितने प्रकार का है?

[२२५ उ.] मनोविनय दो प्रकार का कहा है। यथा—प्रशस्तमनोविनय और अप्रशस्तमनोविनय।

२२६. **से किं तं पसत्थमणविणए?**

पसत्थमणविणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—अपावए, असावज्जे, अकिरिय, निरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे, अभूयाभिसंकणे। से त्तं पसत्थमणविणए।

[२२६ प्र.] वह प्रशस्तमनोविनय कितने प्रकार का है?

[२२६ उ.] प्रशस्तमनोविनय सात प्रकार का बताया है। यथा—(१) अपापक (पापरहित,) (२) असावद्य (क्रोधादि सावद्य—पापो से रहित), (३) अक्रिय (कायिकी आदि क्रियाओ से रहित), (४) निरुपक्लेश—(शोकादि उपक्लेशो से रहित), (५) अनाश्रवकर (आश्रवो से रहित), (६) अच्छविकर (स्वपर को पीडा न देने वाला) और (७) अभूताभिशकित (जीवो को शकित या भयभीत न करने वाला)।

२२७. से किं तं अप्पसत्थमणविणए ?

अप्पसत्थमणविणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—पावए सावज्जे सकिरिए सउवक्केसे अण्हयकरे छविकरे भूयाभिसंकणे। से त्तं अप्पसत्थमणविणए। से त्तं मणविणए।

[२२७ प्र] अप्रशस्तमनोविनय कितने प्रकार का है ?

[२२७ उ] (गौतम !) अप्रशस्तमनोविनय भी सात प्रकार का कहा गया है। यथा—पापक (पापकारी), सावद्य, सक्रिय (कायिकी आदि क्रियाओ से युक्त), सोपक्लेश, आश्रवकारी, छविकारी (प्राणियो को या स्वपर को पीडा उत्पन्न करने वाला) और भूताभिशंकित (प्राणियो के मन मे भय उत्पन्न करने वाला)।

यह हुआ अप्रशस्तमनोविनय का वर्णन।

२२८. से किं तं वइविणए ?

वइविणए दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—पसत्थवइविणए य अप्पसत्थवइविणए य।

[२२८ प्र] (भगवन् !) वचनविनय कितने प्रकार का है ?

[२२८ उ] (गौतम !) वचनविनय दो प्रकार का है। यथा—प्रशस्तवचनविनय और अप्रशस्तवचनविनय।

२२९. से किं तं पसत्थवइविणए ?

पसत्थवइविणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—अपावए जाव अभूयाभिसंकणे। से त्तं पसत्थवइविणए।

[२२९ प्र] वह प्रशस्तवचनविनय कितने प्रकार का है ?

[२२९ उ] (गौतम !) प्रशस्तवचनविनय सात प्रकार का कहा है। यथा—अपापक (पाप-रहित), असावद्य यावत् अभूताभिशंकित।

२३०. से किं तं अप्पसत्थवइविणए ?

अप्पसत्थवइविणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—पावए सावज्जे जाव भूयाभिसंकणे। से त्तं अप्पसत्थवइविणए। से त्तं वइविणए।

[२३० प्र] (भगवन् !) अप्रशस्तवचनविनय कितने प्रकार का है ?

[२३० उ.] (गौतम !) अप्रशस्तवचनविनय सात प्रकार का कहा है। यथा—पापक, सावद्य यावत् भूताभिशंकित।

२३१. से किं तं कायविणए ?

कायविणए दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—पसत्थकायविणए य अप्पसत्थकायविणए य।

[२३१ प्र] (भगवन् !) कायविनय कितने प्रकार का है ?

[२३१ उ.] (गौतम !) कायविनय दो प्रकार का कहा है। यथा—प्रशस्तकायविनय और अप्रशस्तकायविनय।

२३२. से किं तं पसत्थकायविणए ?

पसत्थकायविणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—आउत्तं गमणं, आउत्तं ठाणं, आउत्तं निसीयणं, आउत्तं तुयट्टणं, आउत्तं उल्लंघणं, आउत्तं पल्लंघणं, आउत्तं सव्विदियजोगजुंजणया। से त्तं पसत्थकायविणए।

[२३२ प्र.] (भगवन् !) प्रशस्त कायविनय कितने प्रकार का है ?

[२३२ उ.] (गौतम !) प्रशस्त कायविनय सात प्रकार का कहा है। यथा—आयुक्त गमन (यतनापूर्वक गमन), आयुक्त स्थान (यतनापूर्वक ठहरना या खडे रहना), आयुक्त निषीदन (सावधानी पूर्वक करवट बदलना, लेटना या सोना), आयुक्त उल्लंघन (सावधानीपूर्वक लांघना), आयुक्त प्रलंघन (सावधानी से बार-बार या जोर से लाँघना) और आयुक्त सर्वेन्द्रिययोगयुंजनता (सभी इन्द्रियों और योगों की सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करना)। यह हुआ प्रशस्तकायविनय का वर्णन।

२३३. से किं तं अप्पसत्थकायविणए ?

अप्पसत्थकायविणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—अणाउत्तं गमणं, जाव अणाउत्तं सव्विदियजोगजुंजणया। से त्तं अप्पसत्थकायविणए। से त्तं कायविणए।

[२३३ प्र.] (भगवन् !) अप्रशस्त कायविनय कितने प्रकार का है ?

[२३३ उ.] (गौतम !) अप्रशस्त कायविनय सात प्रकार का कहा है। यथा—अनायुक्त गमन यावत् अनायुक्त सर्वेन्द्रिययोगयुंजनता (असावधानी से सभी इन्द्रियों और योगों की प्रवृत्ति करना)। यह हुआ अप्रशस्तकायविनय का वर्णन। साथ ही कायविनय का वर्णन पूर्ण हुआ।

२३४. से किं तं लोगोवयारविणए ?

लोयोवयारविणए सत्तविधे पन्नत्ते, तं जहा—अब्भासवत्तियं, परछंदाणुवत्तियं, कज्जहेतुं, कयपडिकतया, अत्तगवेसणया, देसकालण्णया, सव्वत्थेसु अपडिलोमया। से त्तं लोगोवयारविणए। से त्तं विणए।

[२३४ प्र.] (भगवन् !) लोकोपचारविनय के कितने प्रकार हैं ?

[२३४ उ.] (गौतम !) लोकोपचारविनय सात प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) अभ्यासवृत्तिता (गुरु आदि के सान्निध्य में रहना, अथवा अभ्यास (अध्ययन) में चित्तवृत्ति को एकाग्र करना), (२) परच्छन्दानुवर्तिता (गुरु आदि बडों के अधीनस्थ (आज्ञापरायण) होकर कार्य करना), (३) कार्य-हेतु (गुरु आदि द्वारा किये हुए ज्ञानदानादि कार्य के लिए उन्हें विशेष मानना तथा उन्हें आहारादि लाकर देना), (४) कृत-प्रतिक्रिया (अपने पर किये हुए उपकार के बदले प्रत्युपकार करना, बदला चुकाना, अथवा आहारादि द्वारा गुरु की सेवा-शुश्रूषा करने से वे प्रसन्न होंगे और उससे वे मुझे ज्ञान सिखायेंगे, ऐसा समझ कर उनकी विनय-भक्ति करना), (५) आर्त्तगवेषणता (रुग्ण, अशक्त एवं पीडित साधुओं की सार-संभाल करना), (६) देश-कालज्ञता (देश और काल देख कर कार्य करना) और (७) सर्वार्थ-अप्रतिलोमता (सभी कार्यों में गुरुदेव के अनुकूल प्रवृत्ति करना)।

विवेचन—विनय के भेद-प्रभेद और स्वरूप—जिसके द्वारा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों का विनयन—विनाश हो, उसे 'विनय' कहते हैं। लोकव्यवहार मे अपने से बडे और गुरुजनो का देश-काल के अनुसार सत्कार-सम्मान एव भक्ति-बहुमान करना 'विनय' कहलाता है। कहा है—

'कर्मणा द्राग् विनयनाद्, विनयो विदुषां मतः।'
अपवर्ग-फलाढ्यस्स, मूल धर्मतरोरयम्॥

अर्थात् ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों का शीघ्र विनाशक होने से यह 'विनय' कहलाता है। विद्वानो का मत है कि मोक्ष-रूपी फल से समृद्ध धर्मतरु का यह मूल है। सामान्यतया विनय के ७ भेद हैं, जिनका उल्लेख मूल मे किया गया है। इन सातो के अवान्तरभेद १३४ होते है। जैसे—ज्ञानविनय के ५ भेद, दर्शनविनय के ५५ भेद, चारित्रविनय के ५ भेद, मनविनय के २४, वचन-विनय के २४ और कायविनय के १४ भेद तथा लोकोपचारविनय के ७ भेद, यो कुल मिला कर १३४ भेद हुए।

१—ज्ञानविनय—ज्ञान और ज्ञानी के प्रति श्रद्धा-भक्ति रखना, उनके प्रति बहुमान दिखाना, उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वो पर सम्यक् चिन्तन-मनन करना तथा विधिपूर्वक नम्र होकर ज्ञान ग्रहण करना, शास्त्रीय तथा तात्त्विक ज्ञान का अभ्यास करना **'ज्ञान-विनय'** है। इसके ५ भेद है—(१) मतिज्ञानविनय, (२) श्रुतज्ञानविनय, (३) अवधिज्ञानविनय, (४) मनःपर्यवज्ञानविनय और (५) केवलज्ञानविनय।

२—दर्शनविनय—अरिहन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवलिभाषित सद्धर्म, इन तीन तत्त्वो पर श्रद्धा रखना दर्शनविनय है। अथवा सम्यग्दर्शन-गुण मे अधिक (आगे बढे हुए) साधको की शुश्रूषादि करना तथा सम्यग्दर्शन के प्रति विनय-भक्ति और श्रद्धा रखना **दर्शनविनय** है। **दर्शनविनय** के सामान्यतया दो भेद है—शुश्रूषा-विनय और अनाशातना-विनय। शुश्रूषा-विनय के दस भेद है, यथा—(१) **अभ्युत्थान** - गुरुदेव या अपने से दीक्षा मे ज्येष्ठ रत्नाधिक सन्त पधार रहे हो, तब उन्हे देखते ही खडे हो जाना, (२) **आसनाभिग्रह**—उन्हे इस प्रकार आसन-ग्रहण के लिए आमन्त्रित करना कि पधारिये, आसन पर विराजिये, (३) **आसन-प्रदान**—बैठने के लिए आसन देना, (४) **सत्कार,** (५) **सम्मान,** (६) **कीर्ति-कर्म** — उनके गुणगान करना, (७) **अंजलि**— उन्हे करबद्ध हो कर प्रणाम करना, (८) **अनुगमनता**—लौटते समय कुछ दूर तक पहुचाने जाना, (९) **पर्युपासना**—उनकी पर्युपासना (सेवा) करना और (१०) **प्रतिससाधनता**—उनके वचन को शिरोधार्य करना। (१) अरिहन्त, (२) अरिहन्त-प्ररूपित धर्म, (३) आचार्य, (४) उपाध्याय, (५) स्थविर, (६) कुल, (७) गण, (८) सघ, (९) क्रिया और (१०) साधर्मिक का विनय, प्रकारान्तर से शुश्रूषाविनय के ये दस भेद भी किये गये है। आत्मा, परलोक, मोक्ष आदि है, ऐसी प्ररूपणा करना क्रियाविनय है।

अनाशातना-दर्शनविनय सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शनी की आशातना न करना, अनाशातना-विनय है। इसके ४५ भेद हैं। अरिहन्त भगवान, अर्हत्प्ररूपित धर्म, आचार्य, उपाध्याय आदि पन्द्रह की आशातना न करना अर्थात् (१) इनकी विनय करना, (२) भक्ति करना और (३) गुणगान करना, पूर्वोक्त १५ के प्रति तीन कार्यो के करने से ४५ भेद होते है। हाथ जोडना आदि बाह्य आचारो को 'भक्ति', हृदय मे श्रद्धा और प्रीति रखने को 'बहुमान' तथा गुणकीर्त्तन करने व गुण-ग्रहण करने को 'गुणानुवाद' (वर्णवाद) कहते है।

चारित्रविनय—चारित्र और चारित्रवानो का विनय करना । चारित्रविनय के पांच भेद मूलपाठ मे बता दिये गए हैं ।

मनोविनय एवं वचनविनय—आचार्य का मन से विनय करना, मन के अशुभ व्यापारो को रोकना, उसे शुभ प्रवृत्ति मे लगाना मनोविनय है । इसके प्रशस्त और अप्रशस्त, ये दो भेद किये हैं । मन में प्रशस्तभाव लाना 'प्रशस्तमनोविनय' है और अप्रशस्त मनोभावो को मन मे न आने देना 'अप्रशस्तमनोविनय' है । मनोविनय के समान वचनविनय के भी चौवीस भेद हैं । आचार्य आदि का वचन से विनय करना, वचन की अशुभ-प्रवृत्ति को रोकना तथा शुभ-प्रवृत्ति में लगाना 'वचन-विनय' है ।

कायविनय—आचार्य आदि का काया से विनय करना, काया की अशुभ प्रवृत्ति रोकना और शुभ प्रवृत्ति करना कायविनय है । इसके भी प्रशस्त और अप्रशस्त, इस प्रकार दो भेद बताए हैं । यतनापूर्वक गमन करना, खडे रहना, बैठना, सोना, उल्लघन एव प्रलघन करना तथा इन्द्रियो और योगो की प्रवृति सावधानी से करना 'प्रशस्त कायविनय' है तथा उपर्युक्त क्रियाओ मे अप्रशस्तता—असावधानी को रोकना 'अप्रशस्त कायविनय' है ।

इस प्रकार कायविनय के ७+७=१४ भेद हुए ।

लोकोपचारविनय : विशेषार्थ एवं भेद—दूसरे सार्धमिको को सुख-शाति प्राप्त हो, इस प्रकार का व्यवहार एव बाह्य चेष्टाएँ करना **'लोकोपचारविनय'** है । इसके ७ भेद हैं, जिनका उल्लेख मूलपाठ मे किया गया है । इस प्रकार विनय के कुल मिला कर १३४ भेद होते है ।

प्रकारान्तर से बावन भेद—अन्यत्र विनय के ५२ भेद भी किये गए है । वे इस प्रकार हैं—तीर्थंकर, सिद्ध, कुल, गण, सघ, क्रिया, धर्म, ज्ञान, ज्ञानी, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर और गणी, इन तेरह को—(१) आशातना न करना, (२) भक्ति करना, (३) बहुमान करना (इनके प्रति पूज्यभाव रखना) और (४) इनके गुणो की प्रशसा करना । इन चार प्रकारो से इन तेरह का विनय करना, यो १३×४=५२ भेद विनय के होते हैं ।[1]

वैयावृत्य और स्वाध्याय तप का निरूपण

२३५. से किं त वेयावच्चे ?

वेयावच्चे दसविधे पन्नत्ते, तं जहा—आयरियवेयावच्चे उवज्झायवेयावच्चे थेरवेयावच्चे तवस्सिवेयावच्चे गिलाणवेयावच्चे सेहवेयावच्चे कुलवेयावच्चे संघवेयावच्चे साहम्मियवेयावच्चे । से त्तं वेयावच्चे ।

[२३५ प्र] (भगवन् !) वैयावृत्य कितने प्रकार का है ?

[२३५ उ] (गौतम !) वैयावृत्य दस प्रकार का कहा गया है । यथा—(१) आचार्यवैयावृत्य, (२) उपाध्यायवैयावृत्य, (३) स्थविरवैयावृत्य, (४) तपस्वीवैयावृत्य, (५) ग्लानवैयावृत्य,

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९२४-९२५

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ ३५१६-१७-१८

(ग) भगवती प्रमेयचन्द्रिकाटीका, भा १६, पृ ४५३ से ४६८ तक

(६) शैक्ष (नव-दीक्षित)-वैयावृत्य, (७) कुलवैयावृत्य, (८) गणवैयावृत्य, (९) संघवैयावृत्य और (१०) साधर्मिकवैयावृत्य। यह वैयावृत्य का वर्णन है।

२३६. से किं तं सज्झाए ?

सज्झाए पंचविधे पन्नत्ते, तं जहा—वायणा पडिपुच्छणा परियट्टणा अणुप्पेहा धम्मकहा। से त्तं सज्झाए।

[२३६ प्र] (भगवन् !) स्वाध्याय कितने प्रकार का है ?

[२३६ उ] (गौतम !) स्वाध्याय पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) वाचना, (२) प्रतिपृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) अनुप्रेक्षा और (५) धर्मकथा। यह हुआ स्वाध्याय का वर्णन।

विवेचन—वैयावृत्य : प्रकार और स्वरूप—वैयावृत्य जैन शास्त्रों का पारिभाषिक शब्द है। यह मुख्यतया सेवा-शुश्रूषा या परिचर्या के अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत में वैयावृत्य के उत्तम पात्रों के अनुसार १० भेद किये है। आचार्य (गुरु), तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित आदि को विधिपूर्वक आहारादि लाकर देना, परिचर्या करना, सेवा करना आदि वैयावृत्य है।[1]

स्वाध्याय : स्वरूप और प्रकार—अस्वाध्याय-काल को या अस्वाध्याय-दशा को छोड कर मर्यादा-पूर्वक शास्त्रों का अध्ययन, वाचन या अध्यापन करना स्वाध्याय है। स्वाध्याय के पांच भेद है—(१) **वाचना**—शिष्य को या जिज्ञासु साधक को शास्त्र और उनका अर्थ पढाना, वाचना देना या स्वयं वाचना करना। (२) **पृच्छना**—वाचना करने या वाचना लेने के बाद उसमें सन्देह होने पर या समझ में न आने पर अथवा पहले सीखे हुए शास्त्रीय ज्ञान या तात्त्विक ज्ञान में शंका होने पर योग्य अधिकारी से प्रश्न करना—पूछना पृच्छना है। (३) **परिवर्त्तना**—पढा या सीखा हुआ ज्ञान विस्मृत न हो जाए, इसलिए उसकी बार-बार आवृत्ति करना। (४) **अनुप्रेक्षा**—सीखे हुए शास्त्र का अर्थ विस्मृत न हो जाए, इसलिए उसका बार-बार मनन-चिन्तन एवं स्मरण करना। (५) **धर्मकथा**—उपर्युक्त चारों प्रकारों से शास्त्रों का अच्छा अध्ययन हो जाने पर श्रोताओं को शास्त्रों का व्याख्यान सुनाना, प्रवचन करना।[2]

ध्यान : प्रकार और भेद-प्रभेद

२३७. से किं तं झाणे ?

झाणे चउव्विधे पन्नत्ते, तं जहा—अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे।

[२३७ प्र] (भगवन् !) ध्यान कितने प्रकार का है ?

[२३७ उ] (गौतम !) ध्यान चार प्रकार का कहा है, यथा—(१) आर्त्तध्यान, (२) रौद्रध्यान, (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान।

---

१. (क) वियाहपण्णत्तिसुत्तं, भा २ (मू. पा टि), पृ १०६६
(ख) भगवतीसूत्र (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५१८

२ (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ ३५१९
(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ ९, सू २४-२५

२३८. अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अमणुण्णसंपयोगसंपउत्ते तस्स विप्पयोग-सतिसमन्नागते यावि भवति १, मणुण्णसंयोगसंपउत्ते तस्स अविप्पयोगसतिसमन्नागते यावि भवति २, आयंकसंपयोगसंपउत्ते तस्स विप्पयोगसतिसमन्नागते यावि भवति ३, परिभुसियकामभोगसंपउत्ते तस्स अविप्पयोगसतिसमन्नागते यावि भवति ४।

[२३८] आर्त्तध्यान चार प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) अमनोज्ञ वस्तुओ की प्राप्ति होने पर उनके वियोग की चिन्ता करना, (२) मनोज्ञ वस्तुओ की प्राप्ति होने पर उनके अवियोग की चिन्ता करना, (३) आतक (रोग-विपत्ति आदि कष्ट) प्राप्त होने पर उसके वियोग की चिन्ता करना और (४) परिसेवित या प्रीति-उत्पादक कामभोगो आदि की प्राप्ति होने पर उनके अवियोग की चिन्ता करना।

२३९. अट्टस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, तं जहा—कंदणया सोयणया तिप्पणया परिदेवणया।

[२३९] आर्त्तध्यान के चार लक्षण कहे है, यथा—(१) क्रन्दनता (रोना), (२) सोचनता (चिन्ता या शोक करना), (३) तेपनता (बार-बार अश्रुपात करना) और (४) परिदेवनता (विलाप करना)।

२४०. रोद्दे झाणे चउव्विधे पन्नत्ते, त जहा—हिंसाणुबंधी, मोसाणुबंधी, तेयाणुबंधी, सारक्खणाणुबंधी।

[२४०] रौद्रध्यान चार प्रकार का कहा है, यथा—(१) हिंसानुबन्धी, (२) मृषानुबन्धी, (३) स्तेयानुबन्धी और (४) सरक्षणाऽनुबन्धी।

२४१. रोद्दस्स झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, तं जहा—उस्सन्नदोसे बहुदोसे अण्णाणदोसे आमरणतदोसे।

[२४१] रौद्रध्यान के चार लक्षण कहे है, यथा—(१) ओसन्नदोष, (२) बहुलदोष, (३) अज्ञानदोष और (४) आमरणान्तदोष।

२४२ धम्मे झाणे चउव्विहे चउपडोयारे पन्नत्ते, त जहा—आणाविजये, अवायविजये, विवागविजये, संठाणविजये।

[२४२] धर्मध्यान चार प्रकार का और चतुष्प्रत्यवतार कहा है, यथा—(१) आज्ञाविचय, (२) अपायविचय, (३) विपाकविचय और (४) सस्थानविचय।

२४३. धम्मस्स ण झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, त जहा—आणारुयी निसग्गरुयी सुत्तरुयी ओगाढरुयी।

[२४३] धर्मध्यान के चार लक्षण बताए है, यथा—(१) आज्ञारुचि, (२) निसर्गरुचि, (३) सूत्ररुचि और (४) अवगाढ़रुचि।

२४४. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पन्नत्ता, तं जहा— वायणा पडिपुच्छणा परियट्टणा धम्मकहा।

[२४४] धर्मध्यान के चार आलम्बन कहे है, यथा—(१) वाचना, (२) प्रतिपृच्छना, (३) परिवर्तना और (४) धर्मकथा।

२४५. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुपेहाओ पन्नत्ताओ, तं जहा— एगत्ताणुपेहा अणिच्चाणुपेहा असरणाणुपेहा संसाराणुपेहा।

[२४५] धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ कही है, यथा—(१) एकत्वानुप्रेक्षा, (२) अनित्यानुप्रेक्षा, (३) अशरणानुप्रेक्षा और (४) संसारानुप्रेक्षा।

२४६. सुक्के झाणे चउव्विधे चउपडोयारे पन्नत्ते, तं जहा—पुहत्तवियक्के सवियारी, एगत्तवियक्के अवियारी, सुहुमकिरिए अनियट्टी, समोछिन्नकिरिए अप्पडिवाई।

[२४६] शुक्लध्यान चार प्रकार का है और चतुष्प्रत्यवतार कहा गया है, यथा—(१) पृथक्त्ववितर्क-सविचार, (२) एकत्ववितर्क-अविचार, (३) सूक्ष्मक्रिया-अनिवर्ती और (४) समुच्छिन्नक्रिया-अप्रतिपाती।

२४७. सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पन्नत्ता, तं जहा— खंती मुत्ती अज्जवे मद्दवे।

[२४७] शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे हैं, यथा— (१) क्षान्ति (क्षमा), (२) मुक्ति (निर्लोभता या अनासक्ति), (३) आर्जव (सरलता) और (४) मार्दव (मृदुता या नम्रता)।

२४८. सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पन्नत्ता, तं जहा—अव्वहे असम्मोहे विवेगे विओसग्गे।

[२४८] शुक्लध्यान के चार आलम्बन कहे गए है, यथा—(१) अव्यथा, (२) असम्मोह, (३) विवेक और (४) व्युत्सर्ग।

२४९. सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुपेहाओ पन्नत्ताओ, तं जहा- अणंतवत्तियाणुप्पेहा विप्परिणामाणुप्पेहा असुभाणुपेहा अवायाणुपेहा। से त्तं झाणे।

[२४९] शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाए कही है। यथा —(१) अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा, (२) विपरिणामानुप्रेक्षा, (३) अशुभानुप्रेक्षा और (४) अपायानुप्रेक्षा।

यह हुआ ध्यान का समग्र वर्णन।

विवेचन—ध्यान : स्वरूप और प्रकार—मन को किसी एक वस्तु मे एकाग्र करना ध्यान है। छद्मस्थो का ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक का होता है। उत्तम संहनन वालो का ध्यान अन्तर्मुहूर्त से अधिक रह सकता है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु मे ध्यान के संक्रमण होने पर तो ध्यान का प्रवाह चिरकाल तक भी रह सकता है। अर्हन्तो के लिए तो योगो का निरोध करना ही ध्यानरूप हो जाता है। ध्यान के चार प्रकार है।

आर्त्तध्यान : प्रकार और स्वरूप—दु ख या पीडा अथवा अत्यधिक चिन्ता के निमित्त से होने वाला दु खी प्राणी का निरन्तर चिन्तन आर्त्तध्यान कहलाता है। मनोज्ञ वस्तु के वियोग और अमनोज्ञ वस्तु के सयोग आदि कारणो से चित्त चिन्ताकुल हो जाता है, तब आर्त्तध्यान होता है। अथवा मोहवश राज्य, शय्या, आसन, वस्त्राभूषण, रत्न, पचेन्द्रिय सम्बन्धी मनोज्ञ विषय अथवा स्त्री, पुत्र आदि स्वजनो के प्रति अत्यधिक इच्छा, तृष्णा, लालसा एव आसक्ति होने से भी आर्त्तध्यान होता है। आर्त्तध्यान के ४ भेद हैं—अमनोज्ञ-वियोगचिन्ता, मनोज्ञ-अवियोगचिन्ता, रोगादि-वियोगचिन्ता एव भोगो का निदान। इनमे से पहले और तीसरे आर्त्तध्यान का कारण द्वेष है और दूसरे व चौथे का कारण राग है। आर्त्तध्यान का मूल कारण अज्ञान है। ज्ञानी तो कर्मबन्धन को काटने का ही सदा उपाय करता है। वह कर्मबन्धन को गाढ करने के कारण को नही अपनाता। आर्त्तध्यान ससार को बढाने वाला है और सामान्यतया तिर्यञ्चगति मे ले जाता है। मूलपाठ मे आर्त्तध्यान के क्रन्दनता आदि जो चार लक्षण बताए है, वे इष्टवियोग, अनिष्टसयोग और वेदना के निमित्त से होते हैं।

रौद्रध्यान : स्वरूप और प्रकार—हिसा, असत्य, चोरी तथा धन आदि की रक्षा मे अहर्निश चित्त को जोडना 'रौद्रध्यान' है। रौद्रध्यान मे हिसा आदि के प्रति क्रूर परिणाम होते है। अथवा हिसा मे प्रवृत्त आत्मा द्वारा दूसरो को रुलाने या पीडित करने वाले व्यापार का चिन्तन करना भी रौद्रध्यान है। अथवा छेदन, भेदन, काटना, मारना, पीटना, वध करना, प्रहार करना, दमन करना इत्यादि क्रूर कार्यों मे जो राग रहता है, जिसमे अनुकम्पाभाव नही है, उस व्यक्ति का ध्यान भी रौद्रध्यान कहलाता है। रौद्रध्यान के हिसानुबन्धी आदि चार भेद हैं।

हिसानुबन्धी प्राणियो पर चाबुक आदि से प्रहार करना, नाक-कान आदि को कील से बीध देना, रस्सी, लोहे की शृ खला (साकल) आदि से बाँधना, आग मे झोक देना, डाम लगाना, शस्त्रादि से प्राणवध करना, अगभग कर देना आदि तथा इनके जैसे क्रूर कर्म करते हुए अथवा न करते हुए भी क्रोधवश होकर निर्दयतापूर्वक ऐसे हिसाजनक कुकृत्यो का सतत चिन्तन करना तथा हिंसाकारी योजनाएँ मन मे बनाते रहना हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान है।

मृषानुबन्धी—दूसरो को छलने, ठगने, धोखा एव चकमा देने तथा छिप कर पापाचरण करने, झूठा प्रचार करने, झूठी अफवाहे फैलाने, मिथ्या-दोषारोपण करने की योजना बनाते रहना, ऐसे पापाचरणी को अनिष्टसूचक वचन, असभ्य वचन, असत् अर्थ का प्रकाशन, सत्य अर्थ का अपलाप, एक के बदले दूसरे पदार्थ आदि के कथनरूप असत्य वचन बोलने तथा प्राणियो का उपघात करने वाले वचन कहने का निरन्तर चिन्तन करना मृषानुबन्धी रौद्रध्यान है।

स्तेयानुबन्धी (चौर्यानुबन्धी)—तीव्र लोभ एव तीव्र काम, क्रोध से व्याप्त चित्त वाले पुरुष की प्राणियो के उपघातक, परनारीहरण तथा परद्रव्यवहरण आदि कुकृत्यो मे निरन्तर चित्तवृत्ति का होना स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान है।

सरक्षणानुबन्धी—शब्दादि पाच विषयो के साधनभूत धन की रक्षा करने की चिन्ता करना और 'न मालूम दूसरा क्या करेगा ?' इस आशका से दूसरो का उपघात करने की कषाययुक्त चित्त-वृत्ति रखना सरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान है।

रागद्वेष से व्याकुल अज्ञानी जीव के उपर्युक्त चारो प्रकार का रौद्रध्यान होता है। यह कुध्यान ससार को बढाने वाला और प्रायः नरकगति मे ले जाने वाला होता।

रौद्रध्यान के चार लक्षण हैं। **ओसन्नदोष**—हिंसा आदि से निवृत्त न होने के कारण रौद्रध्यानी बहुधा हिंसादि मे से किसी एक मे प्रवृत्ति करता है। **बहुलदोष**—रौद्रध्यानी हिंसादि सभी दोषो मे प्रवृत्त होता है। **अज्ञानदोष**—अज्ञानवश या कुशास्त्रो के सस्कारवश नरकादि के कारणभूत अधर्मस्वरूप हिंसादि मे धर्मबुद्धि से उन्नति के लिए प्रवृत्ति करना 'अज्ञानदोष' है। अथवा **'नानादोष'**—हिंसादि के विविध उपायो मे अनेक बार प्रवृत्ति करना 'नानादोष' है। **आमरणान्तदोष**—मरणपर्यन्त हिंसादि क्रूर कार्यों मे अनुताप (पश्चात्ताप) न होना तथा हिंसादि मे प्रवृत्ति करते रहना आमरणान्तदोष है। जैसे—कालसौकरिक (कसाई)। जो रौद्रध्यानी कठोर एव सक्लिष्ट परिणाम वाला होता है, वह दूसरे के दु.ख, कष्ट एव सकट मे तथा पापकार्य करने मे प्रसन्न होता है, उसे इहलोक-परलोक का भय नही होता, उसके मन मे दयाभाव बिलकुल नही होता। कुकृत्य करने का पछतावा भी नही होता।

धर्म और शुक्ल ध्यान को चतुष्प्रत्यवतार कहा गया है, जिसका अर्थ है—भेद, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा, इन चार लक्षणो से जिसका विचार किया जाए।

धर्मध्यान—श्रुत-चारित्ररूप धर्मसहित ध्यान धर्मध्यान है अथवा धर्म अर्थात् जिनाज्ञायुक्त पदार्थ के स्वरूपपर्यालोचन मे मन को एकाग्र करना धर्मध्यान है या सूत्रार्थ की साधना करने, महाव्रतादि को ग्रहण करने, बन्ध-मोक्ष, गति-आगति आदि हेतुओ के विचार करने मे चित्त को एकाग्र करना तथा पचेन्द्रिय-विषयो से निवृत्ति एव प्राणियो के प्रति अनुकम्पाभाव आदि धर्मों मे मन को एकाग्र करना धर्मध्यान है। इसके ४ भेद है।

आज्ञाविचय—जिनाज्ञा को सत्य मानकर उसके प्रति पूर्ण श्रद्धा रखना, जिनोक्त शास्त्रो मे प्ररूपित तत्त्वो का चिन्तन-मनन करना, वीतराग-प्रज्ञप्त कोई तत्त्व समझ मे न आए तो भी यह विचार करे कि चाहे मुझे मदबुद्धिवश समझ मे न आए, किन्तु वीतराग सर्वज्ञ कथित होने से यह वचन सर्वथा सत्य ही है, इसके असत्य होने का कोई कारण नही है। इस प्रकार वीतराग वचनो का सतत चिन्तन-मनन करना, सदेहरहित होकर मन को उनमे एकाग्र करना आज्ञाविचय नामक धर्मध्यान है।

अपायविचय—राग-द्वेष, कषाय, विषयासक्ति, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, अशुभयोग और क्रियाओ आदि मे होने वाली इहलौकिक-पारलौकिक हानियो तथा कुपरिणामो का विचार एव चिन्तन करना अपायविचय है। इन अपायो दोषो से होने वाले दुष्परिणामो का चिन्तन करने वाला जीव इनसे अपनी आत्मा की रक्षा करने मे तत्पर रहता है, इनसे दूर रह कर स्वपरकल्याण की साधना करता है।

विपाकविचय—शुद्ध आत्मा ज्ञान-दर्शन और सुखादिरूप है, किन्तु कर्मों के कारण आत्मा के ये निजगुण दबे हुए है। कर्मों के वशीभूत होकर जीव चारो गतियो मे भ्रमण करता है। सुख-दुःख सौभाग्य-दुर्भाग्य, सम्पत्ति-विपत्ति आदि जीवो के पूर्वकृत कर्मों के ही फल हैं। अपने द्वारा उपार्जित कर्मों के सिवाय जीव को दूसरा कोई भी सुख-दु ख देने वाला नही है। इस प्रकार कर्मविषयक चिन्तन मे मन को एकाग्र करना विपाकविचय धर्मध्यान है।

संस्थानविचय—धर्मास्तिकायादि ६ द्रव्य, उनकी पर्याय, जीव-अजीव के आकार, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, लोकस्वरूप, पृथ्वी, द्वीप, सागर, नरक, स्वर्ग आदि का आकार, लोकस्थिति,

जीव की गति-आगति, जीवन-मरण आदि शास्त्रोक्त पदार्थों का चिन्तन-मनन करना तथा इस अनादि-अनन्त जन्म-मरणप्रवाहरूप ससार-सागर से पार करने वाली ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप अथवा सवर-निर्जरारूप धर्मनौका का विचार करना, ऐसे धर्मचिन्तन मे मन को एकाग्र करना सस्थानविचय धर्मध्यान है।

धर्मध्यान के आज्ञारुचि आदि ४ लक्षण हैं। रुचि का अर्थ श्रद्धा है। अवगाढरुचि को दूसरे शब्दो मे उपदेशरुचि भी कह सकते हैं। अथवा द्वादशागी के विस्तारपूर्वक ज्ञान करने से जिनोक्त तत्त्वो पर जो श्रद्धा होती है, वह भी अवगाढरुचि है। अथवा साधु-साध्वियो के शास्त्रानुकूल उपदेश से जो श्रद्धा होती है, वह भी अवगाढरुचि है।

वस्तुत देव-गुरु-धर्म के गुणो का कथन करने, उनकी भक्तिपूर्वक प्रशसा एव स्तुति करने तथा गुरु आदि का विनय करने से एव श्रुत, शील, सयम एव तप में अनुराग रखने से धर्मध्यानी पहचाना जाता है।

वाचनादि चार अवलम्बन धर्मध्यान के हैं। एकत्व, अनित्यत्व, अशरणत्व एव ससार, ये चारो धर्मध्यान की अनुप्रेक्षाएँ हैं।

पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ये चार प्रकार के ध्यान भी धर्मध्यान के अन्तर्गत है।

शुक्लध्यान : स्वरूप और प्रकार– परावलम्बनरहित शुक्ल यानी निर्मल आत्मस्वरूप का तन्मयतापूर्वक चिन्तन करना शुक्लध्यान है। इसमे पूर्वादि-विषयक श्रुत के आधार से मन अत्यन्त स्थिर होकर योगो का निरोध हो जाता है। इस ध्यान मे विषयो का इन्द्रियो एव मन से सम्बन्ध होने पर भी वैराग्य बल से चित्त बाह्यविषयो की ओर नही जाता, शरीर का छेदन-भेदनादि होने पर भी चित्त ध्यान से जरा भी नही हटता। यह ध्यान इष्टवियोग-अनिष्टसयोगजनित शोक को जरा भी फटकने नही देता, इसीलिए इसे शुक्लध्यान कहते है। आत्मा पर लगे हुए अष्टविध कर्ममल को दूर करके उसे शुक्ल उज्ज्वल बनाता है, इस कारण भी यह शुक्लध्यान कहलाता है। इसके चार प्रकार हैं—

१ पृथक्त्व-वितर्क-सविचार—एकद्रव्यविषयक अनेक पर्यायो का पृथक्-पृथक् विश्लेषणपूर्वक विस्तार से तथा पूर्वगत श्रुत के अनुसार द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक आदि नयो से चिन्तन करना पृथक्त्व-वितर्क-सविचार शुक्लध्यान है। यह ध्यान विचारसहित होता है। विचार का विशेषार्थ यहाँ है– अर्थ, व्यञ्जन (शब्द) और योगो मे सक्रमण। इस ध्यान मे शब्द से अर्थ मे, शब्द से शब्द मे, अर्थ से अर्थ मे एव एक योग से दूसरे योग मे सक्रमण होना। प्राय यह ध्यान-पूर्वधारो को होता है, किन्तु मरुदेवी माता के समान जो पूर्वधारी नही है, उन्हे भी अर्थ, व्यञ्जन और योगो मे संक्रमणरूप यह शुक्लध्यान होता है। यह ध्यान तीनो योग वाले को होता है।

२. एकत्व-वितर्क-अविचार—पूर्वगत श्रुत का आधार लेकर उत्पाद आदि पर्यायो के एकत्व (अभेद) रूप से किसी एक पदार्थ या पर्याय का स्थिर चित्त से चिन्तन करना एकत्व-वितर्क-अविचार शुक्लध्यान है। यह विचाररहित (अर्थ, व्यञ्जन एव योगो के सक्रमण से रहित) होता है। जिस प्रकार एकान्त निर्वात स्थान मे दीपक को लौ स्थिर रहती है, उसी प्रकार इस ध्यान मे चित्त निर्विचार एव स्थिर रहता है। यह ध्यान किसी एक ही योग मे होता है।

३. सूक्ष्मक्रिया-अनिवर्ती—मोक्षगमन से पूर्व केवली भगवान् मन और वचन इन दो योगो का तथा अर्द्धकाययोग का भी निरोध करते हैं। उस समय केवली के उच्छ्वास आदि कायिकी सूक्ष्मक्रिया ही रहती है। विशेष चढते परिणाम रहने के कारण केवलज्ञानी भगवान् उससे पीछे नही हटते। यह तृतीय 'सूक्ष्मक्रिया-अनिवर्ती' शुक्लध्यान है। यह केवल काययोग मे होता है।

४. समुच्छिन्नक्रिया-अप्रतिपाती—शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली भगवान् सभी योगो का निरोध कर देते है। योगो के निरोध से सभी क्रियाओ का अभाव हो जाता है। इस ध्यान मे लेशमात्र भी क्रिया शेष नही रहती, इसलिए इसे समुच्छिन्नक्रिया-अप्रतिपाती शुक्लध्यान कहते हैं। यह ध्यान अयोगी अवस्था मे ही होता है।

शुक्लध्यान के चार लक्षणो का स्वरूप इस प्रकार है—प्रथम लक्षण क्षान्ति है अर्थात् क्रोध न करना और उदय मे आए हुए क्रोध को विफल कर देना, इस प्रकार क्रोध का त्याग करना क्षमा (क्षान्ति) है। दूसरा लक्षण मुक्ति—लोभ का त्याग है। उदय मे आए हुए लोभ को विफल कर देना मुक्ति है। तीसरा लक्षण है—आर्जव (सरलता)। माया को उदय मे नही आने देना एव उदय मे आई हुई माया को विफल कर देना आर्जव है। चौथा लक्षण है मार्दव (कोमलता)। मान न करना, उदय मे आए हुए मान को निष्फल कर देना, मान का त्याग करना मार्दव है।

शुक्लध्यान के चार अवलम्बन—(१) **अव्यथ**—शुक्लध्यानी परिषहो और उपसर्गों से डर कर ध्यान से विचलित नही होता। (२) **असम्मोह**—शुक्लध्यानी को देवादिकृत माया मे अथवा अत्यन्त गहन सूक्ष्मविषयो मे सम्मोह नही होता। (३) **विवेक**—शुक्लध्यानी शरीर से आत्मा को भिन्न तथा शरीर-सम्बन्धित सभी सयोगो को आत्मा से भिन्न समझता है। (४) **व्युत्सर्ग**—वह अनासक्तभाव से देह और सभी सयोगो को आत्मा से भिन्न समझता है।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ—(१) **अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा**—अनन्त-भवपरम्परा का अनुप्रेक्षण (अनुचिन्तन) करना। जैसे—यह जीव अनादिकाल से ससाररूपी अटवी मे परिभ्रमण कर रहा है। इस ससाररूपी महासागर से पार होना अत्यन्त दुष्कर हो रहा है। यह जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एव देव भवो मे एक के बाद दूसरे मे सतत अविरत परिभ्रमण कर रहा है। इस प्रकार की भावना से शुक्लध्यानी ससार से शीघ्र छूटने का तीव्रता से उपाय करता है।

(२) **विपरिणामानुप्रेक्षा**—वस्तुओ के विपरिणमन पर विचार करना। जैसे—सभी स्थान अशाश्वत है, परिणमित होते रहते है। मनुष्यलोक एव देवलोक के स्थान तथा यहाँ और वहाँ की ऋद्धियाँ एव सुखभोग सभी अस्थायी हैं। इस प्रकार की भावना विपरिणामानुप्रेक्षा है।

(३) **अशुभानुप्रेक्षा**—ससार के अशुभ-स्वरूप या देह के घिनौने रूप पर विचार करना। जैसे—धिक्कार है इस ससार को, जिसमे सुन्दर रूपवान् अभिमानी मानव मर कर अपने ही मृत देह मे कृमिरूप मे पैदा हो जाता है। यह शरीर कितना अशुचि से भरा है, जिस पर अभिमान करके मनुष्य नाना पापकर्म करता है, इत्यादि भावना करना अशुभानुप्रेक्षा है।

(४) **अपायानुप्रेक्षा**—जीव जिन कारणो से दु खी होता है, उन अपायो का चिन्तन करना। जैसे—वश मे नही किये हुए क्रोध और मान तथा वृद्धिगत माया और लोभ संसार के मूल को सींचने

और बढ़ाने वाले हैं। इन्हीं से जीव विविध प्रकार के दुःख भोगता है, इत्यादि आश्रवों से होने वाले अपायों का चिन्तन करना, 'अपायानुप्रेक्षा' है।

ध्यान के भेद तथा प्रशस्त-अप्रशस्त-विवेक—इस प्रकार चारो ध्यानों के कुल मिलाकर ४८ भेद होते हैं। आर्त्तध्यान के ८, रौद्रध्यान के ८, धर्मध्यान के १६ और शुक्लध्यान के १६, यों कुल मिलाकर ४८ भेद हुए।

चारो ध्यानो मे धर्मध्यान और शुक्लध्यान प्रशस्त हैं, शुभ हैं, निर्जरा के कारण है तथा आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान अप्रशस्त हैं, अशुभ हैं, कर्मबन्ध और ससार की वृद्धि के कारण है, अतः त्याज्य हैं। तप के प्रकरण मे दो अप्रशस्त ध्यानो का वर्णन करने का कारण यह है कि प्रशस्त ध्यानो का आसेवन करने से और अप्रशस्त ध्यानो को छोडने से तप होता है। इसलिए त्याज्य होते हुए भी वर्णन किया गया है।[1]

व्युत्सर्ग के भेद-प्रभेदों का निरूपण

२५०. से किं त विओसग्गे ?

विओसग्गे दुविधे पन्नत्ते, तं जहा—दव्वविओसग्गे य भावविओसग्गे य।

[२५० प्र] (भंते!) व्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?

[२५० उ] (गौतम!) व्युत्सर्ग दो प्रकार का है। यथा—द्रव्यव्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग।

२५१. से किं त दव्वविओसग्गे ?

दव्वविओसग्गे चउव्विधे पन्नत्ते, तं जहा—गणविओसग्गे सरीरविओसग्गे उवधिविओसग्गे भत्त-पाणविओसग्गे। से त्तं दव्वविओसग्गे।

[२५१ प्र] (भगवन्!) द्रव्यव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?

[२५१ उ] (गौतम!) द्रव्यव्युत्सर्ग चार प्रकार का कहा है। यथा—गणव्युत्सर्ग, शरीर-व्युत्सर्ग, उपधिव्युत्सर्ग और भक्तपानव्युत्सर्ग। यह द्रव्यव्युत्सर्ग का वर्णन हुआ।

२५२. से किं तं भावविओसग्गे ?

भावविओसग्गे तिविहे पन्नत्ते, तं जहा—कसायविओसग्गे संसारविओसग्गे कम्मविओसग्गे।

[२५२ प्र] (भगवन्!) भावव्युत्सर्ग कितने प्रकार का कहा है ?

[२५२ उ.] (गौतम!) भावव्युत्सर्ग तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) कषायव्युत्सर्ग, (२) संसारव्युत्सर्ग और (३) कर्मव्युत्सर्ग।

२५३. से किं तं कसायविओसग्गे ?

कसायविओसग्गे चउव्विधे पन्नत्ते, तं जहा—कोहविओसग्गे माणविओसग्गे मायाविओसग्गे लोभविओसग्गे। से त्तं कसायविओसग्गे।

१. (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५२० से ३५३१
(ख) भगवती (प्रमेयचन्द्रिका टीका) भा. १६, पृ ४७५ से ४९०

[२५३ प्र.] (भगवन् !) कषायव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?

[२५३ उ] (गौतम !) कषायव्युत्सर्ग चार प्रकार का कहा गया है। यथा—क्रोधव्युत्सर्ग, मानव्युत्सर्ग, मायाव्युत्सर्ग और लोभव्युत्सर्ग। यह है कषायव्युत्सर्ग का वर्णन।

२५४. से किं तं संसारविओसग्गे ?

संसारविओसग्गे चउव्विधे पन्नत्ते, तं जहा—नेरइयसंसारविओसग्गे जाव देवसंसारविओसग्गे। से त्तं संसारविओसग्गे।

[२५४ प्र.] (भगवन् !) संसारव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?

[२५४ उ.] (गौतम !) संसारव्युत्सर्ग चार प्रकार का कहा है। यथा—नैरयिकसंसार-व्युत्सर्ग यावत् देवसंसारव्युत्सर्ग। यह हुआ संसारव्युत्सर्ग का वर्णन।

२५५ से किं तं कम्मविओसग्गे ?

कम्मविओसग्गे अट्ठविधे पन्नत्ते, तं जहा—णाणावरणिज्जकम्मविओसग्गे जाव अंतराइय-कम्मविओसग्गे। से त्तं कम्मविओसग्गे। से त्तं भावविओसग्गे। से त्तं अब्भितरए तवे।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ पणवीसइमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥ २५-७ ॥

[२५५ प्र] (भगवन् !) कर्मव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?

[२५५ उ] (गौतम !) कर्मव्युत्सर्ग आठ प्रकार का कहा गया है। यथा- ज्ञानावरणीय-कर्मव्युत्सर्ग यावत् अन्तरायकर्मव्युत्सर्ग। यह कर्मव्युत्सर्ग हुआ। साथ ही भावव्युत्सर्ग का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

इस प्रकार आभ्यन्तर तप का वर्णन पूर्ण हुआ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—व्युत्सर्ग : स्वरूप और प्रकार—किसी वस्तु पर से ममत्व का त्याग करना अथवा परभावों या विभावों का त्याग करना भी व्युत्सर्ग है। सामान्यतया व्युत्सर्ग दो प्रकार का है—द्रव्यव्युत्सर्ग और भावव्युत्सर्ग। द्रव्यव्युत्सर्ग के चार भेदों का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) **शरीरव्युत्सर्ग**—ममत्व रहित होकर शरीर का त्याग करना अथवा शरीर पर आसक्ति या मूर्च्छा को त्यागना।

(२) **गणव्युत्सर्ग**—अपने गण का त्याग करके 'जिनकल्प' अवस्था स्वीकार करना।

(३) **उपधिव्युत्सर्ग**—किसी कल्पविशेष में उपधि (भण्डोपकरण) का भी त्याग करना।

(४) **भक्तपानव्युत्सर्ग**—सदोष आहार-पानी का या यावज्जीव अनशन करके चतुर्विध आहार का त्याग करना।

भावव्युत्सर्ग के तीन भेदो का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) **कषायव्युत्सर्ग**—क्रोधादि कषायो का त्याग करना।

(२) **संसारव्युत्सर्ग**—नरकादि-आयुबन्ध के कारणभूत मिथ्यात्व आदि का त्याग करना।

(३) **कर्मव्युत्सर्ग**—कर्मबन्ध के कारणो का त्याग करना।

कही-कही भावव्युत्सर्ग के चार भेद बताए हैं। वहाँ चौथा भेद बताया है—योगव्युत्सर्ग। योगव्युत्सर्ग के मनोयोगव्युत्सर्ग, वचनयोगव्युत्सर्ग और काययोगव्युत्सर्ग, ये तीन भेद है।[1]

आभ्यन्तर तप का प्रभाव—मोक्षप्राप्ति का अन्तरग कारण आभ्यन्तर तप है। अन्तर्दृष्टि आत्मार्थी एव मुमुक्षु साधक ही आभ्यन्तर तप को अपनाता है और वही इन्हे तपरूप से श्रद्धापूर्वक मानता है। इस तप का प्रभाव बाह्य शरीर पर नही पडता, किन्तु अन्तरग राग-द्वेष, कषाय आदि पर पडता है।[2]

।। पच्चीसवां शतक : सप्तम उद्देशक सम्पूर्ण ।।

१ (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९२७

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भाग ७, पृ ३५३३-३४

२. वही भा ७, पृ ३५३४

अट्ठमो उद्देसओ : 'ओहे'

अष्टम उद्देशक : 'ओघ'

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों की उत्पत्ति का विविध पहलुओं से निरूपण

१. रायगिहे जाव एवं वयासी--

[१] राजगृह नगर मे गौतमस्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

२. नेरतिया णं भंते ! कहं उववज्जति ?

गोयमा ! से जहाणामए पवए पवमाणे अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले तं ठाणं विप्पजहित्ता पुरिम ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरति, एवामेव ते वि जीवा पवओ विव पवमाणा अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले त भव विप्पजहित्ता पुरिम भव उवसंपज्जित्ताणं विहरंति।

[२ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव किस प्रकार उत्पन्न होते है ?

[२ उ] गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ अध्यवसायनिर्वर्तित (निष्पन्न) क्रियासाधन द्वारा उस स्थान को छोड कर भविष्यत्काल मे अगले स्थान को प्राप्त होता है, वैसे ही जीव भी कूदने वाले की तरह कूदते हुए अध्यवसायनिर्वर्तित क्रियासाधन द्वारा अर्थात् कर्मो द्वारा उस (पूर्व) भव को छोड कर भविष्यत्काल मे उत्पन्न होने योग्य (आगामी) भव को प्राप्त होकर उत्पन्न होते हैं।

३. तेसि णं भते ! जीवाण कहं सीहा गती ? कह सीहे गतिविसए पन्नत्ते ?

गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे बलव एवं जहा चोद्दसमसए पढमुद्देसए (स० १४ उ० १ सु० ६) जाव तिसमइएण वा विग्गहेण उववज्जति। तेसि णं जीवाणं तहा सीहा गती, तहा सीहे गतिविसए पन्नत्ते।

[३ प्र] भगवन् ! उन (नारक) जीवो की शीघ्रगति और शीघ्रगति का विषय कैसा होता है ?

[३ उ.] गौतम ! जिस प्रकार कोई पुरुष तरुण और बलवान् हो, इत्यादि चौदहवे शतक के पहले उद्देशक [के सू. ६] के अनुसार यावत् तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होते हैं। उन जीवो की वैसी शीघ्र गति और वैसा शीघ्रगति का विषय होता है।

४. ते णं भंते ! जीवा कह परभवियाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! अज्झवसाणजोगनिव्वत्तिएणं करणोवाएण एव खलु ते जीवा परभवियाउयं पकरेंति।

[४ प्र.] भगवन् ! वे जीव परभव की आयु किस प्रकार बांधते हैं ?

[४ उ.] गौतम ! वे जीव अपने अध्यवसाय योग (अध्यवसायरूप मन आदि के व्यापार) से निष्पन्न करणोपाय (कर्मबन्ध के हेतु) द्वारा परभव की आयु बाधते हैं।

५. तेसि णं भंते ! जीवाणं कहं गती पवत्तइ ?

गोयमा ! आउक्खएणं भवक्खएण ठितिक्खएणं; एवं खलु तेसिं जीवाणं गती पवत्तति।

[५ प्र.] भगवन् ! उन जीवो की गति किस कारण से प्रवृत्त होती है ?

[५ उ] गौतम ! उन जीवो की आयु के क्षय होने से, भव का क्षय होने से और स्थिति का क्षय होने से उनकी गति प्रवृत्त होती है।

६. ते णं भंते ! जीवा किं आतिड्ढीए उववज्जति, परिड्ढीए उववज्जंति ?

गोयमा ! आतिड्ढीए उववज्जंति, नो परिड्ढीए उववज्जंति।

[६ प्र] भगवन् ! वे जीव आत्म-ऋद्धि (अपनी शक्ति) से उत्पन्न होते हैं या पर की ऋद्धि (दूसरो की शक्ति) से ?

[६ उ] गौतम ! वे जीव आत्म-ऋद्धि से उत्पन्न होते हैं, पर-ऋद्धि से नही।

७. ते णं भते ! जीवा किं आयकम्मुणा उववज्जति, परकम्मुणा उववज्जंति ?

गोयमा ! आयकम्मुणा उववज्जति नो परकम्मुणा उववज्जति।

[७ प्र] भगवन् ! वे जीव अपने कर्मों से उत्पन्न होते है या दूसरों के कर्मों से ?

[७ उ] गौतम ! वे जीव अपने कर्मों से उत्पन्न होते है, दूसरो के कर्मों से नही।

८. ते ण भते ! जीवा किं आयप्पयोगेण उववज्जति, परप्पयोगेणं उववज्जंति ?

गोयमा ! आयप्पयोगेणं उववज्जति, नो परप्पयोगेण उववज्जंति।

[८ प्र] भगवन् ! वे जीव अपने प्रयोग से उत्पन्न होते है या परप्रयोग से ?

[८ उ] गौतम ! वे अपने प्रयोग (व्यापार) से उत्पन्न होते है, परप्रयोग से नही।

९. असुरकुमारा ण भंते ! कह उववज्जति ?

जहा नेरतिया तहेव निरवसेसं जाव नो परप्पयोगेण उववज्जंति।

[९ प्र] भगवन् ! असुरकुमार कैसे उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[९ उ.] गौतम ! जिस प्रकार नैरयिको (के उत्पन्न होने आदि) का कहा, उसी प्रकार यहाँ भी 'आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते है, परप्रयोग से नही', तक कहना चाहिए।

१०. एवं एगिंदियवज्जा जाव वेमाणिया। एगिंदिया एवं चेव, नवरं चउसमइओ विग्गहो। सेसं तं चेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति।

॥ पंचवीसइमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥ २५-८ ॥

[१०] इसी प्रकार एकेन्द्रिय से अतिरिक्त, वैमानिक तक, (सभी जीवों के विषय में जानना)। एकेन्द्रियों के विषय में भी उसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि उनकी विग्रहगति उत्कृष्ट चार समय की होती है। शेष पूर्ववत्।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करते हैं।

विवेचन—निष्कर्ष—आठवें उद्देशक में १० सूत्रों द्वारा चौवीस दण्डकगत जीवों की उत्पत्ति, शीघ्रगति, गति का विषय, परभवायुष्यबन्ध, गति का कारण, आत्मकर्म एवं आत्मप्रयोग से उत्पत्ति आदि की प्ररूपणा की गई है।

अतिदेश—जीवों की उत्पत्ति, शीघ्र गति एवं शीघ्र गति के विषय में श. १४, उ. १, सू. ६ में विस्तृत विवेचन है, तदनुसार यहाँ भी समझ लेना चाहिए।[1]

कठिन शब्दार्थ—**सेयकाले**—भविष्यकाल में। **करणोवाएण**—क्रियाविशेषरूप उपाय अथवा कर्मरूपसाधन (हेतु) द्वारा। **पुरिमं भवं**—प्राप्तव्य भव। **पवए**—प्लवक—कूदने वाला। **पवमाणे**—कूदता हुआ।

।। पच्चीसवाँ शतक : आठवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ।।

---

१. (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९२८

(ख) वियाहपण्णत्तिसुत्त भा. २, पृ. १०६९

नवमो उद्देसओ : भविए

नौवाँ उद्देशक : भव्यों की उत्पत्ति

चौवीस दण्डकगत भव्य जीवों की उत्पत्ति का अतिदेशपूर्वक निरूपण

१. भवसिद्धियनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?

गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे०, अवसेसं तं चेव जाव वेमाणिए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। पणवीसइमे सते: नवमो उद्देसओ समत्तो ।। २५-९ ।।

[१ प्र] भगवन् ! भवसिद्धिक (भव्य) नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ इत्यादि अवशिष्ट (समस्त वर्णन) पूर्ववत् यावत् वैमानिक पर्यन्त (कहना चाहिए) ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। पच्चीसवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ।।

दसमो उद्देसओ : 'अभविए'

दसवां उद्देशक : अभव्य जीवों की उत्पत्ति

चौवीस दण्डकगत अभव्य जीवों की उत्पत्ति का अतिदेशपूर्वक निरूपण

१. अभवसिद्धियनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?

गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे०, अवसेस तं चेव जाव वेमाणिए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

।। पंचवीसइमे सते : दसमो उद्देसओ समत्तो ।। २५-१० ।।

[१ प्र] भगवन् ! अभवसिद्धिक (अभव्य) नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ, इत्यादि अवशिष्ट (समस्त वर्णन) पूर्ववत् यावत् वैमानिक पर्यन्त (कहना चाहिए) ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। पच्चीसवां शतक : दसवां उद्देशक समाप्त ।।

एगारसमो उद्देसओ : 'सम्म'

ग्यारहवाँ उद्देशक : सम्यग्दृष्टि की उत्पत्ति

चौवीस दण्डकगत सम्यग्दृष्टि जीवों की उत्पत्ति का अतिदेशपूर्वक निरूपण

१. सम्मदिट्ठिनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?

गोयमा ! जहानामए पवए पवमाणे०, अवसेसं तं चेव ।

२. एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिया ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। पंचवीसइमे सते : एगारसमो उद्देसओ समत्तो ।। २५-११ ।।

[१-२ प्र] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१-२ उ] गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ इत्यादि, अवशिष्ट (सब-वर्णन) एकेन्द्रिय को छोडकर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

।। पच्चीसवाँ शतक : ग्यारहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ।।

बारसमो उद्देसओ : 'मिच्छे'

बारहवाँ उद्देशक : मिथ्यादृष्टि की उत्पत्ति

चौवीस दण्डकगत मिथ्यादृष्टि जीवों की उत्पत्ति का अतिदेशपूर्वक निरूपण

१. मिच्छदिट्ठिनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?

गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे०, अवसेसं तं चेव ।

[१ प्र.] भगवन् ! मिथ्यादृष्टि नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ.] गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ इत्यादि अवशिष्ट (सब वर्णन) पूर्ववत् जानना ।

२. एवं जाव वेमाणिए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।

।। पंचवीसइमे सते : बारसमो उद्देसओ समत्तो ।। २५-१२ ।।

।। पचवीसतिमं सत समत्त ।।

[२] इसी प्रकार वैमानिक तक (कहना चाहिए ।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—पूर्वोक्त चारों उद्देशकों (९-१०-११-१२) का वर्णन प्रायः समान है, किन्तु भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि इन चार विशेषणों से युक्त चौवीस दण्डकों की उत्पत्ति के विषय में आठवें उद्देशक में वर्णित समस्त वर्णन का अतिदेश किया है । सम्यग्दृष्टि की उत्पत्ति में एकेन्द्रिय को छोड़ कर कहा गया है, वह इसलिए कि एकेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं ।

।। पच्चीसवाँ शतक : बारहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ।।

।। पच्चीसवाँ शतक समाप्त ।।

छव्वीसइमाइ-एगूणतीसइमाइं चउ-सयाइं

छव्वीसवें से उनतीसवें तक चार शतक

[प्राथमिक]

- भगवतीसूत्र के छव्वीसवे से लेकर उनतीसवे तक चार शतको का प्रतिपाद्य विषय प्राय समान होने से चारो का प्राथमिक एक साथ दिया जा रहा है ।

- इन शतको के नाम क्रमश इस प्रकार है—

  १—बंधिसय (छव्वीसवाँ शतक), २- करिसुसय (सत्ताईसवा शतक), ३—कम्म-समज्जण-सय (अट्ठाईसवाँ शतक), ४—कम्म-पट्ठवण-सय (उनतीसवाँ शतक) ।

- इनके प्रतिपाद्य विषय ही इनके अर्थ को सूचित करते है—(१) बंधीशतक मे त्रैकालिक पापकर्म-बन्ध और ज्ञानावरणीयादि अष्टकर्मबन्ध का, जीव आदि ग्यारह स्थानो (द्वारो) के माध्यम से ग्यारह उद्देशको मे प्ररूपण है ।

  (२) 'करिमुशतक' मे भी त्रैकालिक पापकर्म (क्रिया), करण और ज्ञानावरणीयादि कर्मकरण का पूर्वोक्त ग्यारह स्थानो के माध्यम से ग्यारह उद्देशको मे निरूपण है ।

  (३) कर्मसमर्जनशतक मे त्रैकालिक पापकर्म, अष्टविध कर्मो के समर्जन एव समाचरण का पूर्वोक्त ग्यारह स्थानो के माध्यम से ग्यारह उद्देशको मे निरूपण है ।

  (४) कर्मप्रस्थापनशतक मे जीव और चौवीस दण्डको मे सम-विषमकाल की अपेक्षा पापकर्म एव अष्टविधकर्मवेदन के प्रारम्भ और अन्त का ग्यारह उद्देशको मे निरूपण है ।

- चारो शतको मे प्रतिपाद्य विषय की प्ररूपणा चार भगो के रूप मे हुई है ।

- ग्यारह स्थान (द्वार) इस प्रकार है—(१) जीव, (२) लेश्या, (३) पाक्षिक (शुक्लपाक्षिक और कृष्णपाक्षिक), (४) दृष्टि, (५) अज्ञान, (६) ज्ञान, (७) सज्ञा, (८) वेद, (९) कषाय, (१०) योग और (११) उपयोग । प्रत्येक शतक मे ये ग्यारह उद्देशक हैं ।

- छव्वीसवे शतक के प्रथम उद्देशक मे सामान्य जीव तथा लेश्यादि-विशिष्ट जीव के त्रैकालिक पापकर्मबन्ध का तथा सामान्य नारक आदि तथा लेश्यादि-विशिष्ट नारक आदि का अष्टविध कर्मबन्ध का चार भगो के रूप मे निरूपण है ।

- दूसरे उद्देशक मे अनन्तरोपपन्नक नैरयिक आदि मे पूर्ववत् ग्यारह स्थानो के माध्यम से पापकर्म-बन्ध व कर्मबन्ध की चतुर्भंगी की प्ररूपणा है ।

  तीसरे उद्देशक में परम्परोपपन्नक नैरयिकादि मे चतुर्भंगी की प्ररूपणा है ।

चतुर्थ उद्देशक मे अनन्तरावगाढ नैरयिकादि मे,
पचम उद्देशक मे परम्परावगाढ नैरयिकादि मे,
छठे उद्देशक मे अनन्तराहारक नैरयिकादि मे,
सातवे उद्देशक मे परम्पराहारक नैरयिकादि मे,
आठवे उद्देशक मे अनन्तरपर्याप्तक नैरयिकादि मे,
नौवे उद्देशक मे परम्परपर्याप्तक नैरयिकादि मे,
दसवे उद्देशक मे चरम नैरयिकादि मे, और
ग्यारहवे उद्देशक मे अचरम नैरयिकादि मे पूर्ववत् ग्यारह स्थानो के माध्यम से पापकर्म एव अष्टविधकर्म के बन्ध की चतुर्भंगी के रूप मे प्ररूपणा है।

- इन्ही ग्यारह स्थानो के माध्यम से २७ वे शतक के ग्यारह उद्देशको मे त्रैकालिक पापकर्मकरण की चतुर्भंगी के रूप मे प्ररूपणा है।
- अट्ठाईसवे शतक के प्रथम उद्देशक मे सामान्य जीव (एक और अनेक) तथा नैरयिक से वैमानिक गति-योनि तक मे नरक, तिर्यञ्च आदि गतियो मे से पापकर्म एव अष्टकर्म का समर्जन और समार्जन एव समाचरण किया था, यह वर्णन है।
- द्वितीय उद्देशक मे इसी प्रकार अनन्तरोपपन्नक नैरयिकादि मे पापकर्म एव अष्टविधकर्म के समर्जन एव समाचरण का लेखाजोखा चतुर्विध भगो के रूप मे है।
- तीसरे से ग्यारहवे उद्देशक तक मे पूर्ववत् अचरम तक के ग्यारह स्थानो के माध्यम से निरूपण है।
- उनतीसवाँ कर्म-प्रस्थापन शतक है, जिसका अर्थ होता है पापकर्म या अष्टविधकर्म के वेदन का सम-विषमरूप से प्रारम्भ तथा अन्त। इसका प्ररूपण पूर्ववत् ग्यारह उद्देशको मे है।
- कुल मिलाकर चारो शतको मे कर्मबन्ध से लेकर कर्मफलभोग तक का विविध विशिष्ट जीवो सम्बन्धी प्ररूपण है।
- कर्मसिद्धान्त का इतनी सूक्ष्मता से विविध पहलुओ से सागोपाग प्ररूपण किया गया है कि अल्प-शिक्षित व्यक्ति भी इतना तो स्पष्टता से समझ सकता है कि जीव विभिन्न गतियो, योनियो तथा लेश्या आदि से युक्त होकर स्वयमेव कर्म करता है, स्वय ही शुभाशुभ कर्मबन्ध करता है, स्वय ही उन शुभाशुभकृत कर्मो का फल भोगता है। कोई जीव किसी रूप मे तो कोई किसी रूप मे फलभोग देर या सवेर से करता है, ईश्वर, देवी, देव या कोई अन्य व्यक्ति न तो उसके बदले मे शुभ या अशुभ कर्म कर सकता है, न ही कर्मो का बन्ध कर सकता है और न ही एक के बदले दूसरा कर्मफलभोग कर सकता है और न ही अपना शुभ फल या अशुभ फल दूसरे को दे सकता है। कुछ लोगो की यह मान्यता थी / है कि ईश्वर या कोई अन्य शक्ति किसी के आयुष्य को बढाने-घटाने मे समर्थ है, अल्पायु को अधिक आयु दी जा सकती है, अथवा आयुष्य की अदलाबदली हो सकती है, परन्तु जैनशास्त्रो मे प्रतिपादित इस अकाट्य सिद्धान्त से इस बात का खण्डन हो जाता है।
- इन चारो शतको से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि अगर किसी जीव के कर्म निकाचितरूप से न बधे हो और पापकर्म या अशुभकर्म का वेदन समभाव से करे तो वह स्वय के अशुभ या पाप-

कम को शुभ या पुण्यकर्म मे परिणत कर सकता है। समिति, गुप्ति, व्रताचरण, तपश्चर्या आदि द्वारा शुभ या अशुभ कर्मों को क्षीण कर सकता है। चतुर्भंगी बताने का एक उद्देश्य यह भी प्रतीत होता है कि कोई सम्यग्दृष्टि साधक चाहे तो तृतीय या चतुर्थ भग का (मोक्ष का) अधिकारी भी हो सकता है तथा अशुभ या पापकर्म करे तो नरकगति या तिर्यंचगति का पथिक भी हो सकता है।

- अट्ठाईसवे शतक के प्रथम उद्देशक के वर्णन से यह भी फलित होता है कि जीव ने पापकर्म का समर्जन या आचरण एक गति मे अज्ञानवश कर लिया हो तो दूसरी शुभगति मे उत्पन्न होकर और विवेकपूर्वक कृत पापाचरण की शुद्धि करना चाहे तो कर सकता है।
- इन चारो शतको की मुख्य प्रेरणा का स्वर यही है कि जीव को अपनी आत्मा की विशुद्धि एव पवित्रता के लिए कर्मबन्ध, चाहे किसी भी रूप मे हो, स्वयमेव समभाव से भोग कर छुटकारा पा लेना चाहिए।
- ग्यारह स्थानो मे से कई स्थान, (यथा—लेश्या, योग, अज्ञान, कषाय, वेद, सज्ञा, मिथ्यादृष्टि आदि) ऐसे है जो कर्मबन्ध के साक्षात् या परम्परा से कारण हैं, उन पर मनन-आलोचन करके उनको त्यागने का प्रयत्न करना चाहिए और अलेश्यत्व, अकषायत्व, अयोगित्व, अवेदकत्व, असज्ञित्व आदि प्राप्त करके आत्मा को निज-शुद्धस्वरूप मे रमण कराने का प्रयत्न करना चाहिए।
- कुल मिला कर ये चारो शतक एक दूसरे से सापेक्ष है, आत्मशुद्धि के प्रेरक हैं, जीवन की उच्चता—आध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त कराने मे मार्गदर्शक है।

छव्वीसइमं सयं : बंधिसयं

छव्वीसवां शतक : बन्धीशतक

छव्वीसवें शतक का मंगलाचरण

१. नमो सुयदेवयाए भगवतीए ।

[१] भगवती श्रुतदेवता को नमस्कार हो ।

विवेचन - मध्य-मंगलाचरण— भगवतीसूत्र का यह मध्य-मंगलाचरण-सूत्र है, जिसमे भगवती श्रुतदेवता (दूसरे शब्दो मे जिनवाणी) को नमस्कार किया गया है, ताकि यह महाशास्त्र निर्विघ्न परिपूर्ण हो ।

छव्वीसवें शतक के ग्यारह-उद्देशको में ग्यारह द्वारो का निरूपण

२. जीवा १ य लेस २ पक्खिय ३ दिट्ठी ४ अन्नाण ५ नाण ६ सन्नाओ ७ ।
वेय ८ कसाए ९ उवयोग १० योग ११ एक्कारस वि ठाणा ॥१॥

[२ गाथार्थ] इस शतक मे ग्यारह उद्देशक है और (इसके प्रत्येक उद्देशक मे) (१) जीव, (२) लेश्याएँ, (३) पाक्षिक (शुक्लपाक्षिक और कृष्णपाक्षिक), (४) दृष्टि, (५) अज्ञान, (६) ज्ञान, (७) सज्ञाएँ, (८) वेद, (९) कषाय, (१०) उपयोग और (११) योग, ये ग्यारह स्थान (विषय) है, जिनको लेकर बन्ध की वक्तव्यता कही जाएगी ।

विवेचन—ग्यारह स्थान ही ग्यारह द्वार—(१) प्रथम जीवद्वार, (२) द्वितीय : लेश्याद्वार, (३) तृतीय शुक्लपाक्षिक और कृष्णपाक्षिक द्वार, (४) चौथा दृष्टिद्वार, (५) पचम अज्ञानविषयकद्वार, (६) छठा ज्ञानद्वार, (७) सप्तम सज्ञाद्वार, (८) अष्टम स्त्री-पुरुष आदि वेदविषयकद्वार, (९) नौवाँ कषायद्वार, (१०) दसवाँ · उपयोगद्वार तथा (११) ग्यारहवाँ योगद्वार ।

प्रस्तुत शतक के ११ उद्देशको मे से प्रत्येक उद्देशक मे इन ग्यारह स्थानो, अर्थात् द्वारो से बन्ध-सम्बन्धी वक्तव्यता कही गई है ।[1]

---

१ भगवतीसूत्र प्रमेयचन्द्रिकाटीका, भा १६, पृ ५१७-१८

पढमो उद्देसओ : 'जीवादि-बंध'

प्रथम उद्देशक : जीवादि के बन्धसम्बन्धी

प्रथम स्थान : जीव को लेकर पापकर्मबन्ध-प्ररूपण

३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव एव वयासी—

[३] उस काल उस समय मे राजगृह नगर मे यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—

४. जीवे णं भते ! पावं कम्मं किं बंधी, बधति, बंधिस्सति; बधी, बंधति, न बंधिस्सति; बधी, न बधति, बंधिस्सति, बंधी, न बंधति, न बंधिस्सति ?

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, बंधति, बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, बंधति, न बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, न बधति, बंधिस्सइ; अत्थेगतिए बंधी, न बंधति, न बंधिस्सति।

[४ प्र] भगवन् (१) क्या जीव ने (भूतकाल मे) पापकर्म बाधा था, (वर्तमान मे) बाधता है और (भविष्य मे) बाधेगा ? (२) (अथवा क्या जीव ने पापकर्म) बाधा था, बाधता है और नही बाधेगा ? (३) (या जीव ने पापकर्म) बाधा था, नही बाधता है और बाधेगा ? (४) अथवा बाधा था, नही बाधता है और नही बाधेगा ?

[४ उ] गौतम ! (१) किसी जीव ने पापकर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा। (२) किसी जीव ने पापकर्म बाधा था, बाधता है, किन्तु आगे नही बाधेगा। (३) किसी जीव ने पापकर्म बाधा था, अभी नही बाधता है, किन्तु आगे बाधेगा। (४) किसी जीव ने पापकर्म बाधा था, अभी नही बाधता है आगे भी नही बाधेगा।

विवेचन - जीव के पापकर्मबन्धसम्बन्धी चतुर्भंगी - (१) इन चार भगो मे से प्रथम भग— 'पापकर्म बाधा था, बाधता है, बाधेगा'—अभव्य जीव की अपेक्षा से है। (२) 'बाधा था, बाधता है और नही बाधेगा' यह द्वितीय भग क्षपक-अवस्था को प्राप्त होने वाले भव्य जीव की अपेक्षा से है। (३) बाधा था, नही बाधता है, किन्तु आगे बाधेगा', यह तृतीय भग जिस जीव ने मोहनीय कर्म का उपशम किया है, उस भव्य जीव की अपेक्षा से है और (४) 'बाधा था, नही बाधता है और नही बाधेगा,' यह चतुर्थ भग क्षीण-मोहनीय जीव की अपेक्षा से है।

शका-समाधान—कोई यह शंका करे कि जिस प्रकार 'बाधा था' के चार भग बनते हैं, उसी प्रकार 'नही बाधा था' के भी चार भग क्यो नही बन सकते ? इसका समाधान यह है कि कोई भी जीव ऐसा नही है जिसने भूतकाल मे पापकर्म नही बाधा था। इसलिए 'नही बाधा था' ऐसा मूल भग ही नही बनता तो फिर चार भग बनने का तो प्रश्न ही नही है।[1]

१. (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९२९

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५४९

द्वितीय-स्थान : सलेश्य-अलेश्य जीवों की अपेक्षा पापकर्मबन्ध-निरूपण

५. सलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी, बंधति, बंधिस्सति; बंधी, बंधति, न बंधिस्सति० पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, बंधति, बंधिस्सति; अत्थेगतिए०, चउभंगो।

[५ प्र] भगवन् ! सलेश्य जीव ने क्या पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा ? अथवा बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा ? इत्यादि चारों प्रश्न।

[५ उ] गौतम ! किसी लेश्या वाले जीव ने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा, इत्यादि चारों भंग जानने चाहिए।

६ कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी०, पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, बंधति, बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, बंधति, न बंधिस्सति।

[६ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्यी जीव पहले पापकर्म बांधता था, बांधता है और बांधेगा ? इत्यादि चारों प्रश्न।

[६ उ] गौतम ! कोई (कृष्णलेश्यी जीव) पापकर्म बांधता था, बांधता है और बांधेगा, तथा कोई (कृष्णलेश्यी) जीव (पापकर्म) बांधता था, बांधता है, किन्तु आगे नहीं बांधेगा।

[७] एवं जाव पम्हलेस्से। सव्वत्थ पढम-बितिया भंगा।

[७] इसी प्रकार (नीललेश्यी से लेकर) पद्मलेश्या वाले जीव तक समझना चाहिए। सर्वत्र प्रथम और द्वितीय भंग जानना।

[८] सुक्कलेस्से जहा सलेस्से तहेव चउभंगो।

[८] शुक्ललेश्यी के सम्बन्ध में सलेश्यजीव के समान चारों भंग कहने चाहिए।

[९] अलेस्से णं भंते जीवे पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा।

गोयमा ! बंधी, न बंधति, न बंधिस्सति।

[९ प्र] भगवन् ! अलेश्यी जीव ने क्या पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[९ उ] गौतम ! उस जीव ने पूर्व में पापकर्म बांधा था, किन्तु वर्तमान में नहीं बांधता और बांधेगा भी नहीं।

विवेचन—स्पष्टीकरण—सलेश्य, कृष्णादिलेश्यायुक्त और अलेश्य इन तीनों प्रकार के जीवों के सम्बन्ध में त्रैकालिक पापकर्मबन्ध-सम्बन्धी वक्तव्यता इस द्वार में है।

सलेश्यी जीव में चारों भंग पाए जाते हैं, क्योंकि शुक्ललेश्यी जीव भी पापकर्म का बन्धक होता है। कृष्णादि पांच लेश्या वाले जीवों में पहला और दूसरा, ये दो भंग ही पाए जाते हैं, क्योंकि उन जीवों के वर्तमानकाल में मोहनीयरूप पापकर्म का क्षय या उपशम नहीं है, इसलिए

अन्तिम दो (तीसरा, चौथा) भग उनमें नही पाया जाता । कृष्णादि पाच लेश्यावाले जीवो मे दूसरा भग (बांधा था, बाधता है और नही बाधेगा) इसलिए सम्भव है कि कालान्तर मे क्षपकदशा प्राप्त होने पर वह नही बांधेगा । अलेश्यी जीव में सिर्फ एक चौथा भग ही पाया जाता है, क्योकि जीव अयोगीकेवली-अवस्था में अयोगी होता है तथा लेश्या के अभाव मे (अलेश्यी) जीव अवन्धक (पुण्य-पापकर्म का बन्ध न करने वाला) होता है ।[1]

तृतीय स्थान : कृष्ण-शुक्लपाक्षिक को लेकर पापकर्मबन्ध प्ररूपणा

१०. कण्हपक्खिय णं भते ! जीवे पावं कम्म० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी०, पढम-बितिया भंगा ।

[१० प्र] भगवन् ! क्या कृष्णपाक्षिक जीव ने पापकर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा ? इत्यादि प्रश्न ।

[१० उ] गौतम ! किसी जीव ने पापकर्म बांधा था, इत्यादि पहला और दूसरा भग (इस विषय मे) जानना चाहिए ।

११. सुक्कपक्खिए ण भंते ! जीवे० पुच्छा ।

गोयमा ! चउभंगो भाणियव्वो ।

[११ प्र] भगवन् ! क्या शुक्लपाक्षिक जीव ने पापकर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा ? इत्यादि प्रश्न ।

[११ उ] गौतम ! (इस विषय मे) चारो ही भग जानने चाहिए ।

विवेचन – कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक की परिभाषा—जिन जीवो का ससार-परिभ्रमण-काल अर्द्ध पुद्गल-परावर्तन-काल से अधिक है, वे कृष्णपाक्षिक कहलाते हैं और जिन जीवो का ससार-परिभ्रमण-काल अर्द्ध पुद्गल-परावर्तन-काल से अधिक नही है, जो अर्द्ध पुद्गल-परावर्तन-काल के भीतर ही मोक्ष चले जाएँगे, वे शुक्लपाक्षिक कहलाते हैं ।

कृष्णपाक्षिक जीवो मे प्रथम और द्वितीय ये दो भग पाए जाते हैं, क्योकि वर्तमानकाल मे उन जीवो मे पापकर्म की अबन्धकता नही है, इसलिए भविष्यत्काल मे भी उनके बध तो चालू रहेगा । प्रश्न होता है—कृष्णपाक्षिक जीवो मे 'बाधेगे नहीं', यह अश असम्भव प्रतीत होता है तथा शुक्ल-पाक्षिक जीवो मे 'बाधेगे नही' इस अश का अवश्य सम्भव होने से 'बांधेगे' इस अश से युक्त प्रथम भग क्यो नही घटित होता ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि शुक्लपाक्षिक जीवो मे प्रश्न-समय के अनन्तर (तुरन्त पश्चात्) समय की अपेक्षा प्रथम भग है तथा कृष्णपाक्षिक जीवो मे शेष समयो की अपेक्षा दूसरा भग घटित होता है ।

इस दृष्टि से शुक्लपाक्षिक जीवो मे चारो ही भगो की सम्भावना बताई गई है । प्रथम भग तो प्रश्न-समय के अनन्तर तात्कालिक (आसन्न) भविष्यत्काल की अपेक्षा घटित होता है । दूसरा भग भविष्यत्काल में क्षपक-अवस्था की प्राप्ति की अपेक्षा घटित होता है । तीसरा भग उन शुक्लपाक्षिक

---

१. (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९२९

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५४९

जीवो मे घटित होता है, जो मोहनीयकर्म का उपशम करके पीछे गिरने वाले हैं और चौथा भग क्षपक-अवस्था की प्राप्ति की अपेक्षा घटित होता है ।[1]

चतुर्थ स्थान : सम्यक्-मिथ्या-मिश्रदृष्टि जीव की अपेक्षा पापकर्मबन्ध निरूपण

१२. सम्मद्दिट्ठीणं चत्तारि भंगा ।

[१२] सम्यग्दृष्टि जीवो मे चारो भग जानना चाहिए ।

१३. मिच्छादिट्ठीणं पढम-बितिया ।

[१३] मिथ्यादृष्टि जीवो मे पहला और दूसरा भग जानना चाहिए ।

१४. सम्मामिच्छद्दिट्ठीणं एवं चेव ।

[१४] सम्यग्-मिथ्यादृष्टि जीवो मे भी इसी प्रकार पहला और दूसरा दो भग जानने चाहिए ।

विवेचन—सम्यग्दृष्टि आदि जीवो मे चतुर्भंगी प्ररूपणा—सम्यग्दृष्टि जीवो मे शुक्लपाक्षिक के समान चारो ही भग पाये जाते हैं । मिथ्यादृष्टि और मिश्रदष्टि जीवो मे पहला और दूसरा, ये दो भग पाये जाते हैं । उनके मोहनीयकर्म का बन्ध होने से अन्तिम दोनो भग उनमे घटित नही होते ।[2]

पंचम स्थान : ज्ञानी जीव की अपेक्षा पापकर्मबन्ध निरूपण

१५. नाणीणं चत्तारि भगा ।

[१५] ज्ञानी जीवो मे चारो भग पाये जाते हैं ।

१६. आभिणिबोहियनाणीणं जाव मणपज्जवणाणीण चत्तारि भगा ।

[१६] आभिनिबोधिकज्ञानी से (लेकर) मन पर्यवज्ञानी जीवो तक मे भी चारो ही भग जानने चाहिए ।

१७. केवलनाणीण चरिमो भंगो जहा अलेस्साण ।

[१७] केवलज्ञानी जीवो मे अन्तिम (चतुर्थ) एक भग अलेश्य जीवो के समान पाया जाता है ।

विवेचन—ज्ञानी जीवों में चतुर्भंगी प्ररूपणा—सामान्य ज्ञानी और आभिनिबोधिकज्ञानी से लेकर मन पर्यवज्ञानी तक छद्मस्थ होने से मोहकर्मबन्ध होने के कारण पहले के दो भग घटित होते हैं, शेष दो भग भी शुक्लपाक्षिक जीवो के समान इनमे भी घटित होते है ।

---

१. (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९२९
   (ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भाग ७, पृ ३५५०
२. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९३०

केवलज्ञानी जीवों के वर्तमान में तथा भविष्य में पापकर्म का बन्ध न होने से उनमें एकमात्र चतुर्थ भंग ही होता है।[1]

छठा स्थान : अज्ञानी जीव की अपेक्षा पापकर्मबंध निरूपण

१८. अन्नाणीणं पढम-बितिया।

[१८] अज्ञानी जीवों में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है।

१९. एवं मतिअन्नाणीणं, सुयअन्नाणीणं, विभंगनाणीण वि।

[१९] इसी प्रकार मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी में भी पहला और दूसरा भंग जानना चाहिए।

विवेचन—अज्ञानी जीवों में दो भंग ही क्यों?—अज्ञानी जीवों तथा मति-अज्ञानी आदि तीनों में प्रथम और द्वितीय ये दो भंग ही पाए जाते हैं, क्योंकि उनके मोहनीयकर्म का बन्ध होने से अन्तिम दो भंग घटित नहीं होते।[2]

सप्तम स्थान : आहारादि संज्ञी की अपेक्षा पापकर्मबन्ध प्ररूपणा

२०. आहारसन्नोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताणं पढम-बितिया।

[२०] आहार-सञ्ज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रह-सञ्ज्ञोपयुक्त जीवों में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है।

२१. नोसण्णोवउत्ताण चत्तारि।

[२१] नोसञ्ज्ञोपयुक्त जीवों में चारों भंग पाये जाते हैं।

विवेचन—आहारादि संज्ञा वाले जीवों में चतुर्भंगी-प्ररूपणा—आहारादि चारों संज्ञाओं वाले जीवों में क्षपकत्व और उपशमकत्व नहीं होने से पहला और दूसरा दो भंग ही होते हैं। नोसंज्ञा अर्थात् आहारादि की आसक्ति से रहित जीवों के मोहनीयकर्म का क्षय या उपशम सम्भव होने से उनमें चारों ही भंग पाये जाते है।[3]

अष्टम स्थान : सवेदक-अवेदक जीव को लेकर पापकर्मबंध प्ररूपणा

२२. सवेयगाण पढम-बितिया। एवं इत्थिवेयग-पुरिसवेयग-नपुंसगवेयगाण वि।

[२२] सवेदक जीवों में प्रथम और द्वितीय भंग पाये जाते है। इसी प्रकार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी में भी प्रथम और द्वितीय भंग पाये जाते है।

२३. अवेयगाणं चत्तारि।

[२३] अवेदक जीवों में चारों भंग पाये जाते है।

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९३०

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९३०

३. भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९३०

विवेचन—सवेदी-अवेदी में चतुर्भंगी की चर्चा—जब तक वेदोदय रहता है, तब तक जीव मोहनीयकर्म का क्षय और उपशम नही कर सकता, इसलिए पहले के दो भग ही पाये जाते हैं। अवेदी जीवो मे स्ववेद उपशान्त हो, किन्तु सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान की प्राप्ति न हो, तब तक वे मोहनीयकर्म को बाधते है और बाधेगे अथवा वहाँ से गिर कर भी बाधेगे। वेद क्षीण हो जाने पर पापकर्म बाधता है, किन्तु सूक्ष्मसम्परायादि अवस्था मे नही बाधता। उपशान्तवेदी जीव सूक्ष्मसम्परायादि अवस्था मे पापकर्म नही बाधता, किन्तु वहाँ से गिरने के बाद बाधता है। वेद का क्षय हो जाने पर सूक्ष्मसम्परायादि गुणस्थानो मे पापकर्म नही बांधता और आगे भी नही बाधेगा।[1]

नवम स्थान : सकषायी-अकषायी जीव को लेकर पापकर्मबन्ध प्ररूपणा

२४ **सकसाईणं चत्तारि।**

[२४] सकषायी जीवो मे चारो भग पाये जाते है।

२५. **कोहकसायीण पढम-बितिया।**

[२५] क्रोधकषायी जीवो मे पहला और दूसरा भग पाया जाता है।

२६. **एवं माणकसायिस्स वि, मायाकसायिस्स वि।**

[२६] इसी प्रकार मानकषायी तथा मायाकषायी जीवो मे भी ये दोनो भग पाये जाते है।

२७. **लोभकसायिस्स चत्तारि भंगा।**

[२७] लोभकषायी जीवो मे चारो भग पाये जाते है।

२८. **अकसायी णं भंते ! जीवे पाव कम्मं किं बधी० पुच्छा।**

गोयमा ! अत्थेगतिए बधी, न बंधति, बंधिस्सति। अत्थेगतिए बधी, न बंधति, न बधिस्सति।

[२८ प्र.] भगवन् ! क्या अकषायी जीव ने पापकर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा ? इत्यादि प्रश्न।

[२८ उ] गौतम ! किसी अकषायी जीव ने (भूतकाल मे पापकर्म) बाधा था, किन्तु अभी नही बाधता है, मगर भविष्य मे बाधेगा; तथा किसी जीव ने बाधा था, किन्तु अभी नही बांधता है और आगे भी नही बाधेगा।

विवेचन—सकषायी-अकषायी जीवों में चतुर्भंगी चर्चा—सकषायी जीवो मे पूर्वोक्त चारो भग पाये जाते है। उनमे से प्रथम भग अभव्यजीव की अपेक्षा से है। दूसरा भग उस भव्य जीव की अपेक्षा से है, जिसका मोहनीयकर्म क्षय होने वाला है तथा उपशमक सूक्ष्मसम्पराय जीव की अपेक्षा से तीसरा भग है और चौथा भग क्षपक सूक्ष्मसम्परायी जीव की अपेक्षा से है। इसी प्रकार लोभकषायी जीवो के विषय मे भी पूर्वोक्त अपेक्षा से इन चारो भगो की सभावना समझनी चाहिए। क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीवो मे पहला और दूसरा ये दो ही भंग पाये जाते है,

---

१ भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९३०

पहला भग अभव्य की अपेक्षा से है और दूसरा भग भव्यविशेष की अपेक्षा से है। उनमे तीसरा और चौथा भग नही पाया जाता, क्योकि क्रोधादि के उदय मे अबन्धकता नही होती। अकषायी जीवो मे तीसरा और चौथा, ये दो भग पाए जाते है। तीसरा भग उपशमक अकषायी मे और चौथा भंग क्षपक अकषायी मे पाया जाता है।[1]

दसवाँ स्थान : सयोगी-अयोगी जीव को लेकर पापकर्मबन्ध-प्ररूपणा

२९. **सजोगिस्स चउभंगो।**

[२९] सयोगी जीवो मे चारो भग घटित होते हैं।

३०. **एवं मणजोगिस्स वि, वइजोगिस्स वि, कायजोगिस्स वि।**

[३०] इसी प्रकार मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीव मे चारो भग पाये जाते है।

३१. **अजोगिस्स चरिमो।**

[३१] अयोगी जीव मे अन्तिम एक भग पाया जाता है।

विवेचन—सयोगी, त्रियोगी एवं अयोगी चातुर्भंगिक चर्चा—सयोगी मे भव्य, भव्य-विशेष, उपशमक और क्षपक की अपेक्षा क्रमशः चारो भग पाये जाते हैं। अयोगी के वर्तमान में पापकर्म का बध नही होना और न भविष्य मे होगा, इस दृष्टि से उसमे एकमात्र चौथा भग ही पाया जाता है।[2]

ग्यारहवाँ स्थान : साकार-अनाकारोपयुक्त जीव की अपेक्षा पापकर्मबन्ध-प्ररूपणा

३२. **सागारोवउत्ते चत्तारि।**

[३२] साकारोपयुक्त जीव मे चारो ही भग पाये जाते है।

३३. **अणागारोवउत्ते वि चत्तारि भगा।**

[३३] अनाकारोपयुक्त जीव मे भी उक्त चारो भग होते है।

विवेचन—साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी जीवों मे चतुर्भंगी—इन दोनो प्रकार के उपयोग वाले जीवो मे पूर्वोक्त चारो भग पाये जाते हे। इसका स्पष्टीकरण पूर्ववत् जानना चाहिए।[3]

चौबीस दण्डकों में ग्यारह स्थानों की अपेक्षा पापकर्मबन्ध की चातुर्भंगिक-प्ररूपणा

३४. **नेरतिए ण भंते ! पाव कम्मं किं बंधी, बंधति, बंधिस्सति० ?**

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी० पढम-बितिया।

[३४ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव ने पापकर्म बाधा था, बांधता है और बाधेगा ? इत्यादि (चतुर्भंगीयुक्त प्रश्न !)

[३४ उ] गौतम ! किसी नरयिक जीव ने पापकर्म बाधा था, बाधता है और बांधेगा, इस प्रकार पहला और (पूर्ववत्) दूसरा भग जानना चाहिए।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३०

२. भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९३०

३ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३०

३५. सलेस्से ण भंते ! नेरतिए पावं कम्मं० ?

एवं चेव ।

[३५ प्र] भगवन् ! क्या सलेश्य नैरयिक जीव ने पापकर्म बांधा था ? इत्यादि चतुर्भंगी-युक्त प्रश्न ।

[३५ उ] गौतम ! यहाँ भी पूर्ववत् पहला और दूसरा भग जानना ।

३६. एव कण्हलेस्से वि, नीललेस्से वि, काउलेस्से वि ।

[३६] इसी प्रकार कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले जीव मे भी प्रथम और द्वितीय भग पाया जाता है ।

३७. एव कण्हपक्खिए, सुक्कपक्खिए; सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छादिट्ठी; नाणी, आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी; अन्नाणी, मतिअन्नाणी, सुयअन्नाणी, विभगनाणी; आहारसन्नोवउत्ते जाव परिग्गहसन्नोवउत्ते; सवेयए, नपु सकवेयए, सकसायी जाव लोभकसायी; सयोगी, मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी; सागरोवउत्ते अणागारोवउत्ते । एएसु सव्वेसु पएसु पढम-बितिया भंगा भाणियव्वा ।

[३७] इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभगज्ञानी, आहारसज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त, सवेदी, नपु सकवेदी, सकषायी यावत् लोभकषायी, सयोगी, मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी, साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त, इन सब पदो मे प्रथम और द्वितीय भग कहना चाहिए ।

३८. एवं असुरकुमारस्स वि वत्तव्वया भाणियव्वा ।

नवर तेउलेस्सा, इत्थिवेयग-पुरिसवेयगा य अब्भहिया, नपु सगवेयगा न भण्णंति । सेस त चेव । सव्वत्थ पढम-बितिया भंगा ।

[३८] असुरकुमारो के विषय मे भी यही वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि इनमे तेजोलेश्या वाले स्त्रीवेदक और पुरुषवेदक अधिक कहने चाहिए । शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए । इन सबमे पहला और दूसरा भग जानना चाहिए ।

३९. एव जाव थणियकुमारस्स ।

[३९] इसी प्रकार स्तनितकुमार तक कहना चाहिए ।

४०. एव पुढविकाइयस्स वि, आउकाइयस्स वि जाव पंचिदियतिरिक्खजोणियस्स वि, सव्वत्थ वि पढम-बितिया भंगा । नवरं जस्स जा लेस्सा, दिट्ठी, नाण, अन्नाण, वेदो, जोगो य, ज जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्व । सेस तहेव ।

[४०] इसी प्रकार पृथ्वीकायिक, अप्कायिक से पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक तक भी सर्वत्र प्रथम और द्वितीय भग कहना चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि जहाँ जिसमे जो लेश्या, जो दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, वेद और योग हो, उसमे वही कहना चाहिए । शेष सब पूर्ववत् है ।

४१. मणूसस्स जच्चेव जीवपए वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा ।

[४१] मनुष्य के विषय मे जीवपद मे जो वक्तव्यता है, वही समग्र वक्तव्यता कहनी चाहिए।

४२. वाणमंतरस्स जहा असुरकुमारस्स ।

[४२] वाणव्यन्तर का कथन असुरकुमार के कथन के समान है।

४३. जोतिसिय-वेमाणियस्स एवं चेव, नवरं लेस्साओ जाणियव्वाओ, सेसं तहेव भाणियव्वं ।

[४३] ज्योतिष्क और वैमानिक के विषय मे भी कथन इसी प्रकार है, किन्तु जिसके जो लेश्या हो, वही कहनी चाहिए। शेष सब पूर्ववत् समझना।

विवेचन - चौवीस दण्डकवर्ती जीवों में त्रैकालिक पापकर्मबन्ध—नैरयिक जीव मे उपशम-श्रेणी या क्षपकश्रेणी नही होती, इसलिए उनमे तीसरा और चौथा भग नही पाया जाता, केवल पहला और दूसरा भग ही पाया जाता है। सलेश्य इत्यादि विशेषणयुक्त नैरयिकादि मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए। असुरकुमारादि मे भी इसी प्रकार प्रारम्भ के दो भग पाये जाते हैं।

औघिक जीव और सलेश्य आदि विशेषणयुक्त जीव के लिए जो चतुर्भंगी आदि वक्तव्यता कही है, मनुष्य के लिए भी वह उसी प्रकार कहनी चाहिए, क्योकि जीव और मनुष्य दोनो समानधर्मा है।[1]

जीव और चौवीस दण्डकों में ज्ञानावरणीय से लेकर मोहनीय-कर्मबन्ध तक की चतुर्भंगीय-प्ररूपणा ग्यारह स्थानों में

४४. जीवे णं भंते ! नाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी, बंधति, बंधिस्सति० ? एवं जहेव पावस्स कम्मस्स वत्तव्वया भणिया तहेव नाणावरणिज्जस्स वि भाणियव्वा, नवर जीवपए मणुस्सपए य सकसायिम्मि जाव लोभकसाइम्मि य पढम-बितिया भंगा । अवसेसं तं चेव जाव वेमाणिए ।

[४४ प्र] भगवन् ! क्या जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा? इत्यादि चातुर्भंगिक प्रश्न।

[४४ उ] गौतम ! जिस प्रकार पापकर्म की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म को वक्तव्यता कहनी चाहिए। परन्तु (औघिक) जीवपद और मनुष्यपद मे सकषायी (से लेकर) यावत् लोभकषायी मे प्रथम और द्वितीय भग ही कहना चाहिए। शेष सब कथन पूर्ववत् यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

४५. एव दरिसणावरणिज्जेण वि दंडगो भाणियव्वो निरवसेसं ।

[४५] ज्ञानावरणीयकर्म के समान दर्शनावरणीयकर्म के विषय मे भी समग्र दण्डक कहने चाहिए।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३१

४६. जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, बंधति, बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, बंधति, न बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, न बंधति, न बंधिस्सति ।

[४६ प्र] भगवन् ! क्या जीव ने वेदनीयकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[४६ उ] गौतम ! (१) किसी जीव ने (वेदनीयकर्म) बांधा था, बांधता है और बांधेगा, (२) किसी जीव ने बांधा था, बांधता है और नहीं बांधेगा तथा (३) किसी जीव ने (वेदनीयकर्म) बांधा था, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ।

४७. सलेस्से वि एवं चेव ततियविहूणा भंगा ।

[४७] सलेश्य जीव में भी तृतीय भंग को छोड़ कर शेष तीन भंग पाये जाते हैं ।

४८. कण्हलेस्से जाव पम्हलेस्से पढम-बितिया भंगा ।

[४८] कृष्णलेश्या वाले से लेकर पद्मलेश्या वाले जीव तक में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है ।

४९. सुक्कलेस्से ततियविहूणा भंगा ।

[४९] शुक्ललेश्या वाले में तृतीय भंग को छोड़कर शेष तीन भंग पाये जाते हैं ।

५०. अलेस्से चरिमो ।

[५०] अलेश्यजीव में अन्तिम (चतुर्थ) भंग पाया जाता है ।

५१. कण्हपक्खिए पढम-बितिया ।

[५१] कृष्णपाक्षिक में प्रथम और द्वितीय भंग जानना चाहिए ।

५२. सुक्कपक्खिए ततियविहूणा ।

[५२] शुक्लपाक्षिक में तृतीय भंग को छोड़ कर शेष तीनों भंग पाये जाते हैं ।

५३. एवं सम्मद्दिट्ठिस्स वि ।

[५३] इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि में भी ये ही तीनों भंग जानने चाहिए ।

५४. मिच्छद्दिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स य पढम-बितिया ।

[५४] मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि में प्रथम और द्वितीय भंग जानना ।

५५. णाणिस्स ततियविहूणा ।

[५५] ज्ञानी में तृतीय भंग को छोड़कर शेष तीनों भंग समझने चाहिए ।

५६. आभिनिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी पढम-बितिया ।

[५६] आभिनिबोधिकज्ञानी से लेकर मनःपर्यवज्ञानी तक में प्रथम और द्वितीय भंग जानना ।

५७. केवलनाणी ततियविहूणा ।

[५७] केवलज्ञानी मे तृतीय भग के सिवाय शेष तीनो भग पाये जाते हैं।

५८. एवं नोसन्नोवउत्ते, अवेदए, अकसायी, सागरोवउत्ते, अणागारोवउत्ते, एएसु ततियविहूणा ।

[५८] इसी प्रकार नोसज्ञोपयुक्त मे, अवेदी मे, अकषायी मे, साकारोपयुक्त एव अनाकारोपयुक्त में भी तृतीय भग को छोड कर शेष तीनो भग पाये जाते हैं।

५९. अजोगिम्मि य चरिमो ।

[५९] अयोगी मे अन्तिम (चतुर्थ) भग जानना चाहिए।

६०. सेसेसु पढम-बितिया ।

[६०] शेष सभी मे प्रथम और द्वितीय भग जानना चाहिए।

६१. नेरइए ण भंते ! वेयणिज्जं कम्म किं बंधी, बंधइ० ?

एव नेरइयाइया जाव वेमाणिय त्ति, जस्स जं अत्थि । सव्वत्थ वि पढम-बितिया, नवरं मणुस्से जहा जीवे ।

[६१ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव ने वेदनीयकर्म बाधा, बाधता है और बाधेगा ? इत्यादि (चातुर्भंगिक प्रश्न।)

[६१ उ] इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिक तक जिसके जो लेश्यादि हो, वे कहने चाहिए। इन सभी मे पहला और दूसरा भग पाया जाता है। विशेष यह है कि मनुष्य की वक्तव्यता सामान्य जीव के समान है।

६२. जीवे णं भंते ! मोहणिज्ज कम्म किं बधी, बधति० ?

जहेव पावं कम्म तहेव मोहणिज्ज पि निरवसेसं जाव वेमाणिए ।

[६२ प्र] भगवन् ! क्या जीव ने मोहनीयकर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[६२ उ] गौतम ! जिस प्रकार पापकर्मबन्ध के विषय मे कहा था, उसी प्रकार समग्र कथन मोहनीयकर्मबन्ध के विषय मे यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए।

विवेचन—ज्ञानावरणीय से मोहनीयकर्मबन्ध तक चतुर्भंगीचर्चा—जिस प्रकार औधिक जीव सहित पापकर्मबन्ध-सम्बन्धी पच्चीस दण्डक कहे, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म-बन्ध-सम्बन्धी पच्चीस दण्डक कहने चाहिए। किन्तु पापकर्मबन्ध के दण्डक मे जीवपद और मनुष्यपद मे सकषाय और लोभकषाय की अपेक्षा सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानवर्ती जीव मोहनीयकर्मरूप पापकर्म का अबन्धक होता है, इसलिए चारो भग कहे थे, क्योंकि सकषायी जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय का बन्धक अवश्य होता है, अबन्धक नही होता।

वेदनीयकर्मसम्बन्धी चर्चा—वेदनीयकर्म के बन्धक मे पहला भग अभव्यजीव की अपेक्षा से है, दूसरा भग—भविष्य मे मोक्ष जाने वाले भव्यजीव की अपेक्षा से है, तीसरा भंग यहाँ घटित

नही होता, क्योकि जो जीव वेदनीयकर्म का अबन्धक हो जाता है, वह फिर वेदनीयकर्म का बन्ध नही करता। चौथा भग अयोगीकेवली की अपेक्षा से है। इस प्रकार वेदनीयकर्मबन्ध मे तीसरे भग के सिवाय शेष तीन भग घटित होते हैं।

सलेश्यजीव मे यहाँ तीसरे भग को छोड़कर शेष तीन भग बताए हैं, किन्तु उसमे चौथा भग (वेदनीयकर्म बाधा था, नही बाधता है, नही बाधेगा) कैसे घटित होना सम्भव है, क्योकि लेश्या तेरहवे गुणस्थान तक होती है। अत. वहाँ तक सलेश्यजीव वेदनीयकर्म का बन्धक होता है, तब फिर अबन्धक कैसे हो सकता है? कतिपय आचार्य इसका समाधान यो करते हैं— इस सूत्र के प्रमाण (वचन) के अनुसार अयोगी-अवस्था के प्रथम समय मे 'घटालालान्यायेन' परम शुक्ललेश्या होती है, इसलिए सलेश्यी मे भी चतुर्थ भग घटित हो सकता है। तत्त्व केवलिगम्य है।

कृष्णादि पाच लेश्यावाले जीवो मे अयोगीपन का अभाव होने से वेदनीयकर्म के अबन्धक नही होते। अतएव उनमें पहले के दो भग ही पाये जाते हैं। शुक्ललेश्यी जीव मे सलेश्यी के समान पूर्वोक्त तीन भग ही होते हैं। अलेश्यीजीव तो केवली और सिद्ध होते हैं, अत उनमे केवल चतुर्थ भग ही पाया जाता है। कृष्णपाक्षिक जीवो मे अयोगीपन का अभाव होने से उनमे अन्तिम दो भग नही पाये जाते, प्रथम और द्वितीय, ये दो भग ही पाये जाते हैं। शुक्लपाक्षिक जीव अयोगी भी होता है, इसलिए उसमे तीसरे भग के सिवाय शेष तीनों भग पाए जाते है।

सम्यग्दृष्टिजीव मे अयोगीपन सम्भव होने से उसमे तीसरे भग को छोडकर शेष तीनो भग होते हैं। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि मे अयोगीपन का अभाव होने से वे वेदनीयकर्म के अबन्धक नही होते। अतएव उनमे पहले के दो भग ही पाये जाते है। ज्ञानी और केवलज्ञानी मे अयोगी-अवस्था मे चौथा भग पाया जाता है, अत उनमे तीसरे भग के अतिरिक्त शेष तीनो भग पाए जाते है। आभिनिबोधिक आदि ज्ञान वाले जीवो मे अयोगीपन का अभाव होने से उनमे चौथा भग नही पाया जाता। उनमे पहले के दो भग ही पाये जाते हैं। इस प्रकार सभी स्थानो मे यह समझ लेना चाहिए कि जहाँ अयोगी-अवस्था सम्भव है, वहाँ-वहाँ तीसरे भग के सिवाय शेष तीन भग पाए जाते हैं और जहाँ-जहाँ अयोगी-अवस्था सम्भव नही है, वहाँ-वहाँ पहला और दूसरा, ये दो भग ही पाए जाते हैं।

मोहनीयकर्मबन्ध-सम्बन्धी —मोहनीयकर्म एक प्रकार से पाप (अशुभ) कर्म ही है, इसलिए इसके ग्यारह स्थानो के वैमानिकदेव-पर्यन्त चौवीस दण्डको मे पापकर्म के समान सभी आलापक कहने चाहिए।[1]

जीव और चौवीस दण्डकों में आयुष्यकर्म की अपेक्षा चतुर्भंगीय-प्ररूपणा ग्यारह स्थानों में

६३. जीवे णं भंते ! आउयं कम्मं किं बंधी बंधति० पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी० चउभंगो।

[६३ प्र.] भगवन् ! क्या जीव ने आयुष्यकर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

---

१. (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भाग ७, पृ ३५५४-३५५६

(ख) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९३१-९३२

[६३ उ.] गौतम ! किसी जीव ने (आयुष्यकर्म) बाधा था, इत्यादि चारों भग पाये जाते हैं।

६४. सलेस्से जाव सुक्कलेस्से चत्तारि भंगा।

[६४] सलेश्य से लेकर यावत् शुक्ललेश्यी जीवों तक मे चारो भग पाए जाते हैं।

६५. अलेस्से चरिमो।

[६५] अलेश्य जीवो मे एकमात्र अन्तिम भग होता है।

६६ कण्हपक्खिए णं० पुच्छा।

गोयमा। अत्थेगतिए बंधी, बंधति, बंधिस्सति। अत्थेगतिए बंधी, न बंधति, बंधिस्सति।

[६६ प्र] भगवन् ! कृष्णपाक्षिक जीव ने (आयुष्यकर्म) बाधा था, इत्यादि प्रश्न।

[६६ उ] गौतम ! (१) किसी जीव ने (आयुष्यकर्म) बाधा था, बाधता है और बाधेगा तथा (२) किसी जीव ने बाधा था, नही बाधता है और बाधेगा, ये दो भग पाये जाते हैं।

६७ सुक्कपक्खिए सम्मद्दिट्ठी मिच्छादिट्ठी चत्तारि भगा।

[६७] शुक्लपाक्षिक सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि मे चारो भग पाये जाते हैं।

६८. सम्मामिच्छादिट्ठी० पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, न बंधति, बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, न बंधति, न बंधिस्सति।

[६८ प्र] भगवन् ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव ने आयुष्यकर्म बाधा था ? इत्यादि प्रश्न।

[६८ उ.] गौतम ! किसी जीव ने बाधा था, नही बाधता है और बाधेगा तथा किसी जीव ने बाधा था, नही बाधता और नही बाधेगा, ये (तीसरा और चौथा) दो भंग पाये जाते हैं।

६९. नाणी जाव ओहिनाणी चत्तारि भगा।

[६९] ज्ञानी (से लेकर) अवधिज्ञानी तक मे चारो भग पाये जाते है।

७०. मणपज्जवनाणी० पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, बंधति, बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, न बंधति, बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, न बंधति, न बंधिस्सति।

[७० प्र] भगवन् ! मन पर्यवज्ञानी जीव ने आयुष्यकर्म बाधा था ? इत्यादि (चातुर्भंगिक प्रश्न)।

[७० उ] गौतम ! किसी मन पर्यवज्ञानी ने आयुष्यकर्म बाधा था, बाधता है और बाधेगा, किसी मन·पर्यवज्ञानी ने आयुष्यकर्म बाधा था, नही बाधता है और बाधेगा तथा किसी मन पर्यवज्ञानी ने बाधा था, नही बाधता है और नही बाधेगा, ये तीन भग पाये जाते है।

७१. केवलनाणे चरिमो भगो ।

[७१] केवलज्ञानी मे एकमात्र चौथा भग पाया जाता है ।

७२. एव एएणं कमेणं नोसन्नोवउत्ते बितियाविहूणा जहेव मणपज्जवनाणे ।

[७२] इसी प्रकार इस क्रम से नोसज्ञोपयुक्त जीव मे द्वितीय भग के अतिरिक्त तीन भग मनःपर्यवज्ञानी के समान होते है ।

७३. अवेयए अकसाई य ततिय-चउत्था जहेव सम्मामिच्छत्ते ।

[७३] अवेदी और अकषायी मे सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान तीसरा और चौथा भग पाया जाता है ।

७४. अजोगिम्मि चरिमो ।

[७४] अयोगी केवली जीव मे एकमात्र चौथा (अन्तिम) भग पाया जाता है ।

७५ सेसेसु पएसु चत्तारि भगा जाव अणागारोवउत्ते ।

[७५] शेष पदो मे यावत् अनाकारोपयुक्त तक मे चारो भग पाय जाते है ।

७६. नेरतिए णं भंते ! आउयं कम्मं किं बधी० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिए० चत्तारि भगा । एव सव्वत्थ वि नेरइयाण चत्तारि भगा, नवरं कण्हलेस्से कण्हपक्खिए य पढम-ततिया भगा, सम्मामिच्छत्ते ततिय-चउत्था ।

[७६ प्र.] भगवन् ! क्या नैरयिक जीव ने आयुष्यकर्म बाधा था ? इत्यादि चातुर्भगिक प्रश्न ।

[७६ उ] गौतम ! किसी नैरयिक ने आयुष्यकर्म बाधा था इत्यादि चारो भग पाये जाते है । इसी प्रकार सभी स्थानो मे नैरयिक के चार भग कहने चाहिए, किन्तु कृष्णलेश्यी एव कृष्णपाक्षिक नैरयिक जीव मे पहला तथा तीसरा भग तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि मे तृतीय और चतुर्थ भग होता है ।

७७. असुरकुमारे एव चेव, नवर कण्हलेस्से वि चत्तारि भगा भाणियव्वा । सेस जहा नेरतियाण ।

[७७] असुरकुमार मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । किन्तु कृष्णलेश्यी असुरकुमार मे पूर्वोक्त चारो भग कहने चाहिए । शेष सभी नरयिको के समान कहना चाहिए ।

७८. एव जाव थणियकुमाराण ।

[७८] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए ।

७९. पुढविकाइयाण सव्वत्थ वि चत्तारि भगा, नवर कण्हपक्खिए पढम-ततिया भगा ।

[७९] पृथ्वीकायिको मे सभी स्थानो मे चारो भग होते है । किन्तु कृष्णपाक्षिक पृथ्वीकायिक मे पूर्वोक्त चार भगो मे से पहला और तीसरा भग पाया जाता है ।

८०. तेउलेस्से० पुच्छा ।

गोयमा ! बंधी, न बंधति, बंधिस्सति ।

[८० प्र.] भगवन् ! तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक जीव ने आयुष्यकर्म बांधा था ? इत्यादि प्रश्न ।

[८० उ.] गौतम ! (तेजो० पृ० ने) बांधा था, बांधता नहीं है और बांधेगा, यह केवल तृतीय भंग पाया जाता है ।

८१. सेसेसु सव्वेसु चत्तारि भंगा ।

[८१] शेष सभी स्थानों में चार-चार भंग कहने चाहिए ।

८२. एवं आउकाइय-वणस्सइकाइयाण वि निरवसेसं ।

[८२] इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के विषय में भी सब कहना चाहिए ।

८३. तेउकाइय-वाउकाइयाणं सव्वत्थ वि पढम-ततिया भंगा ।

[८३] तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग होते हैं ।

८४. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं पि सव्वत्थ वि पढम-ततिया भंगा, नवरं सम्मत्ते नाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे ततियो भंगो ।

[८४] द्वीन्द्रिय, तृतीय और चतुरिन्द्रिय जीवों के सभी स्थानों में प्रथम और तृतीय भंग होते हैं ।

विशेष यह है कि इनके सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान में एकमात्र तृतीय भंग होता है ।

८५. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हपक्खिए पढम-ततिया भंगा । सम्मामिच्छत्ते ततिय-चउत्था भंगा । सम्मत्ते नाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे ओहिनाणे, एएसु पंचसु वि पएसु बितियविहूणा भंगा । सेसेसु चत्तारि भंगा ।

[८५] पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक में तथा कृष्णपाक्षिक में प्रथम और तृतीय भंग पाये जाते हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव में तृतीय और चतुर्थ भंग होते हैं । सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान, इन पांचों पदों में द्वितीय भंग को छोड़ कर शेष तीन भंग पाये जाते हैं । शेष सभी पूर्ववत् (चार भंग) जानना ।

८६. मणुस्साणं जहा जीवाणं, नवरं सम्मत्ते, ओहिए नाणे, आभिनिबोहियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, एएसु बितियविहूणा भंगा; सेसं तं चेव ।

[८६] मनुष्यों का कथन औघिक जीवो के समान जानना। किन्तु इनके सम्यक्त्व, औघिक ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, इन पदो मे द्वितीय भग को छोड कर शेष तीन भंग पाये जाते हैं। शेष सब पूर्ववत् जानना।

८७. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

[८७] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो का कथन असुरकुमारो के समान है।

विवेचन—आयुष्यकर्मबन्ध की अपेक्षा से चतुर्भंगीय चर्चा—सामान्यजीव द्वारा आयुष्यकर्मबन्ध के विषय मे चार भग बताये हैं। उनमे प्रथम भग तो अभव्यजीव की अपेक्षा से है। जो जीव चरम-शरीरी होगा, उसकी अपेक्षा द्वितीय भग है। तृतीय भग उपशमक की अपेक्षा से है, क्योकि उसने पहले आयु बाधा था, वर्तमानकाल मे उपशम-अवस्था मे आयु नही बाधता और उपशम-अवस्था से गिरने पर फिर आयु बाधेगा। चतुर्थ भग क्षपक की अपेक्षा से है, उसने भूनकाल मे (जन्मान्तर मे) आयुष्य बाधा था, वर्तमान मे नही बाधता और न ही भविष्यत्काल मे आयुष्य बाधेगा।

सलेश्यी से लेकर शुक्ललेश्यी जीव तक मे चार भग बताए है। उनमे से प्रथम भग उसकी अपेक्षा से है जो निर्वाण को प्राप्त नही होगा। जो चरमशरीरीरूप से उत्पन्न होगा, उसकी अपेक्षा द्वितीय भग है। अबन्ध-समय की अपेक्षा तृतीय भग है और जो चरमशरीरी है, उसकी अपेक्षा चतुर्थ भग है।

इस प्रकार अन्य स्थानो मे भी यथायोग्यरूप से घटित कर लेना चाहिए। शैलेशी-अवस्था को प्राप्त जीव तथा सिद्ध भगवान् अलेश्यी होते है। उनमे एकमात्र चतुर्थ भग ही पाया जाता है, क्योकि वे वर्तमान मे आयुष्य का बन्ध नही करते और भविष्यत्काल मे भी नही करेंगे।

कृष्णपाक्षिक जीव मे प्रथम और तृतीय भग पाया जाता है, क्योकि अभव्यजीव की अपेक्षा से प्रथम भग और अबन्धकाल की अपेक्षा तृतीय भग है, क्योकि वह वर्तमानकाल मे आयुष्यकर्म नहीं बांधता, किन्तु भविष्यत्काल मे बाधेगा। तृतीय और चतुर्थ भग कृष्णपाक्षिक मे नही होते, क्योकि उसमे आयुष्यबन्ध का सर्वथा अभाव नही होता।

शुक्लपाक्षिक और सम्यग्दृष्टि मे चार भग होते है, क्योकि उसने पहले आयुष्य बाधा था, बन्धनकाल मे बांधता है और अबन्धकाल के बाद फिर बाधेगा। इस अपेक्षा से यहाँ प्रथम भग घटित होता है। चरमशरीरजीव की अपेक्षा द्वितीय, उपशम-अवस्था की अपेक्षा तृतीय और क्षपक-अवस्था की अपेक्षा चौथा भग होता है।

मिथ्यादृष्टि मे चार भग बताए हैं, अभव्य की अपेक्षा पहला भग, भविष्य मे चरमशरीर की प्राप्ति होने पर नही बाधेगा, अत दूसरा भग है। अबन्धकाल की अपेक्षा तीसरा भग और चरमशरीरी की अपेक्षा चौथा भग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि-अवस्था मे आयु नही बांधता और कोई जीव चरमशरीरी हो जाए तो आयुष्य बाधेगा भी नही। इसलिए इसमें तीसरा और चौथा भग घटित होता है।

ज्ञानी जीवो मे चार भग पाए जाते हैं, जिन्हे पूर्ववत् घटित कर लेना चाहिए। मन.पर्यवज्ञानी मे दूसरे भग को छोड कर शेष तीन भग पाये जाते हैं। उसने पहले आयु बाधा था, वर्तमान में

देवायु बांधता है और भविष्यत्काल में मनुष्यायु बांधेगा। इस अपेक्षा से प्रथम भंग घटित होता है। दूसरा भंग यहाँ सम्भव नहीं है, क्योंकि देवभव मे मनुष्यायु का बन्ध अवश्य करेगा। उपशम-अवस्था की अपेक्षा तीसरा भग और क्षपक-अवस्था की अपेक्षा चौथा भग होता है, क्योंकि क्षपक और केवलज्ञानी न तो आयु बाधते हैं, और न ही बाधेगे, इसलिए इनमे एक ही (चौथा) भग पाया जाता है।

नोसज्ञोपयुक्त जीव मे भी मन.पर्यवज्ञानी के समान तीन भग घटित कर लेने चाहिए। अवेदक और अकषायी जीव मे उपशम और क्षपक अवस्था की अपेक्षा तृतीय और चतुर्थ भग पाया जाता है। मति आदि तीन अज्ञान वाले, आहारादि चार सज्ञोपयुक्त, सवेदक (स्त्री-पुरुषादि तीन वेदो से युक्त), सकषाय (क्रोधादि चार कषायो से युक्त), सयोगी (मन-वचन-काया के तीन योगो सहित) तथा साकारोपयुक्त एव अनाकारोपयुक्त इन सभी जीवो मे चार-चार भग पाये जाते हैं।

नैरयिक जीवो में चार भग कहे हैं, क्योंकि नैरयिक जीव ने आयुष्य बाधा था, बन्धनकाल मे वर्तमान मे बाधता है और भवान्तर मे बाधेगा, इस प्रकार प्रथम भग घटित होता है। जो नैरयिक मोक्ष को प्राप्त होने वाला है, उसकी अपेक्षा से दूसरा भग घटित होता है। बन्धनकाल के अभाव तथा भावी बन्धनकाल की अपेक्षा तृतीय भग है। जिस नैरयिक ने परभव का (मनुष्यायुष्य) बाध लिया और जिसका आयुष्य बाधा है, वही उसका चरम भव है, उसकी अपेक्षा से चौथा भग है। इस प्रकार सर्वत्र घटित कर लेना चाहिए।

कृष्णलेश्यी नैरयिक मे पहला और तीसरा भग पाया जाता है। प्रथम भग तो प्रतीत ही है। कृष्णलेश्यी नैरयिक मे दूसरा भग नही होता, क्योंकि कृष्णलेश्यी नारक, तिर्यञ्च मे अथवा अचरम-शरीरी मनुष्य मे उत्पन्न होता है। कृष्णलेश्या पाचवी नरकपृथ्वी आदि मे होती है, वहाँ से निकला हुआ केवली या चरमशरीरी नहीं होता। इसलिए वहाँ से निकला हुआ नैरयिक अचरमशरीरी होने से फिर आयुष्य बाधेगा। कृष्णलेश्यी नैरयिक अबन्धकाल मे आयुष्य नही बांधता, बन्धनकाल मे आयुष्य बाधेगा, इस दृष्टि से उसमे तृतीय भग घटित होता है। वह आयु का अबन्धक नही होता, इसलिए उसमे चौथा भग घटित नही होता।

इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक नैरयिक के विषय मे भी पहला और तीसरा भग घटित कर लेना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकजीव आयु नही बाधता, इसलिए उसमे तीसरा और चौथा भग होता है। कृष्णलेश्यी असुरकुमार मे चारो भग पाये जाते हैं, क्योंकि वहाँ से निकल कर मनुष्यगति मे आकर वह सिद्ध हो सकता है। इस अपेक्षा से उसमे दूसरा और चौथा भग घटित होता है।

पृथ्वीकायिक जीवो मे सभी स्थानो मे चार भग पाये जाते है। किन्तु कृष्णपाक्षिक मे प्रथम और तृतीय भग ही होता है। तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक मे एकमात्र तृतीय भग ही होता है, क्योंकि जो तेजोलेश्यी देव पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होता है, वह अपर्याप्त अवस्था मे तेजोलेश्यी होता है तथा तेजोलेश्या का समय व्यतीत हो जाने के बाद आयुष्य बाधता है। अत. तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक ने पूर्वभव मे आयुष्य बाधा था, वह तेजोलेश्या के समय आयुष्य बन्ध नही करता, किन्तु तेजोलेश्या का समय बीत जाने पर आयुष्य बाधेगा, इस दृष्टि से तेजोलेश्यी पृथ्वीकायिक मे तीसरा भग घटित होता है।

इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवो मे पहला और तीसरा भग पाया जाता है तथा इनमे तेजोलेश्यायुक्त मे तीसरा भग होता है। दूसरे स्थानो मे चार भंग होते हैं।

तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवो मे सभी स्थानो मे पहला और तीसरा भंग ही होता है, क्योकि वहाँ से निकल कर उनकी उत्पत्ति मनुष्यो मे न होने से सिद्धिगमन का उनमे अभाव है। अत दूसरा और चौथा भग उनमे नही होता।

विकलेन्द्रिय जीवो मे सभी स्थानो मे पहला और तीसरा भग पाया जाता है, क्योकि इनमे से निकले हुए मनुष्य तो हो सकते हैं, किन्तु मोक्ष नही पा सकते। इसलिए वे अवश्य ही आयु का बन्ध करेंगे। इस कारण उनमे आयुष्यबन्ध का अभाव न होने से दूसरा और चौथा भग घटित नही होता। विकलेन्द्रियो मे इतने स्थानो मे विशेषता है—(१) सम्यक्त्व, (२) ज्ञान, (३) आभिनिबोधिकज्ञान, (४) श्रुतज्ञान। इन स्थानो मे केवल तृतीय भग ही पाया जाता है, क्योकि इनमे सम्यक्त्व आदि सास्वादनभाव से अपर्याप्त अवस्था मे ही होते हैं। इनके चले जाने पर आयुष्य का बन्ध होता है। इस दृष्टि से इन्होने पूर्वभव मे आयुष्य बाधा था, वर्तमान मे सम्यक्त्व आदि अवस्था मे नही बाधते, किन्तु उसके बाद आयुष्य बाधेगे, इस प्रकार इनमे एक मात्र तृतीय भग ही घटित होता है।

पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे कृष्णपाक्षिक पद मे पहला और तीसरा भग पाया जाता है, क्योकि कृष्णपाक्षिक आयु बाधे या न बाधे उसका अबन्धक अनन्तर ही होता है और मोक्ष मे जाने के लिए अयोग्य होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चपचेन्द्रिय मे आयुष्यबन्ध का अभाव होने से तीसरा और चौथा भग भी घटित होता है। पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, इन पाच स्थानो मे द्वितीय भग को छोड कर शेष तीन भग पाये जाते हैं। क्योकि सम्यग्दृष्टियुक्त पंचेन्द्रियतिर्यञ्च मर कर देवो मे ही उत्पन्न होता है। वहाँ वह आयुष्य बाधेगा, इसलिए दूसरा भग घटित नही होता। प्रथम और तृतीय भग पूर्ववत् घटित कर लेने चाहिए। चौथा भग इस प्रकार घटित होता है—जैसे कि किसी पचेन्द्रियतिर्यञ्च ने मनुष्यायु का बध कर लिया, इसके पश्चात् उसे सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति हुई, इसके बाद पूर्व प्राप्त मनुष्यभव मे ही वह मोक्ष चला जाए तो आयुष्य का बन्ध वह नही करेगा। इस प्रकार चौथा भग घटित हो जाता है।

मनुष्य के लिए भी सम्यक्त्व आदि पूर्वोक्त पाच पदो मे भी इन तीन भगो को इसी रीति से घटित कर लेना चाहिए।[1]

जीव और चौवीस दण्डकों मे नाम, गोत्र और अन्तरायकर्म की अपेक्षा ग्यारह स्थानों में चतुर्भंगी प्ररूपणा

८८. नामं गोयं अंतरायं च एयाणि जहा नाणावरणिज्जं।

सेवं भंते! सेव भते! त्ति जाव विहरति।

॥ छव्वीसइमे बंधिसए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ २६-१ ॥

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३० से ९३४
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भाग ७ पृ ३५६१ से ३५६४

[८८] नामकर्म, गोत्रकर्म और अन्तरायकर्म का (बन्ध-सम्बन्धी कथन) ज्ञानावरणीयकर्म के समान समझना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—उ १, सू ४४ मे ज्ञानावरणीय कर्मबन्ध की जिस प्रकार सभी स्थानो में चतुर्भंगी की चर्चा की है, उसी प्रकार इन तीनो कर्मों के बन्ध के विषय मे भी समझ लेना चाहिए।

।। छब्बीसवां शतक : प्रथम उद्देशक सम्पूर्ण ।।

बीओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

अनन्तरोपपन्नक को पापकर्मादिबन्ध

अनन्तरोपपन्नक नारकादि चौवीस दण्डकों में पापकर्मबन्ध की अपेक्षा ग्यारह स्थानों की प्ररूपणा

१. अणंतरोववन्नए णं भंते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा तहेव ।

गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी० पढम-बितिया भगा ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भंगीय प्रश्न ।

[१ उ.] गौतम ! किसी ने पापकर्म बाधा था, इत्यादि प्रथम और द्वितीय भग होता है ।

२. सलेस्से णं भंते ! अणतरोववन्नए नेरतिए पाव कम्म किं बधी० पुच्छा ।

गोयमा ! पढम-बितिया भगा, नवर कण्हपक्खिए ततिओ ।

[२ प्र.] भगवन् ! सलेश्यी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२ उ] गौतम ! इनमे सर्वत्र प्रथम और द्वितीय भग पाया जाता है । किन्तु कृष्णपाक्षिक मे तृतीय भग पाया जाता है ।

३. एवं सव्वत्थ पढम-बितिया भगा, नवर सम्मामिच्छत्त मणजोगो वइजोगो य न पुच्छिज्जइ ।

[३] इस प्रकार सभी पदो मे पहला और दूसरा भग कहना चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि सम्यग्मिथ्यात्व, मनोयोग और वचनयोग के विषय मे प्रश्न नही करना चाहिए ।

४. एव जाव थणियकुमाराण ।

[४] स्तनितकुमार पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिए ।

५. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं वइजोगो न भण्णति ।

[५] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में वचनयोग नही कहना चाहिए ।

६. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पि सम्मामिच्छत्तं ओहिनाणं विभंगनाणं मणजोगो वइजोगो, एयाणि पंच ण भण्णति ।

[६] पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको मे भी सम्यग्मिथ्यात्व, अवधिज्ञान, विभगज्ञान, मनोयोग और वचनयोग, ये पाच पद नही कहने चाहिए।

७. मणुस्साणं अलेस्स-सम्मामिच्छत्त-मणपज्जवनाण-केवलनाण-विभगनाण-नोसण्णोवउत्त-अवेयग-अकसायि-मणजोग-वइजोग-अजोगि, एयाणि एक्कारस पयाणि ण भण्णंति।

[७] मनुष्यो मे अलेश्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, विभगज्ञान, नोसज्ञोपयुक्त, अवेदक, अकषायी, मनोयोग, वचनयोग और अयोगी ये ग्यारह पद नही कहने चाहिए।

८. वाणमतर-जोतिसिय-वेमाणियाण जहा नेरतियाण तहेव तिण्णि न भण्णंति। सव्वेसि जाणि सेसाणि ठाणाणि सव्वत्थ पढम-बितिया भगा।

[८] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के विषय मे नैरयिको की वक्तव्यता के समान पूर्वोक्त तीन पद (सम्यग्मिथ्यात्व, मनायोग और वचनयोग) नही कहने चाहिए। इन सबके जो शेष स्थान हैं, उनमे सर्वत्र प्रथम और द्वितीय भग जानना चाहिए।

९. एगिंदियाणं सव्वत्थ पढम-बितिया भंगा।

[९] एकेन्द्रिय जीवो के सभी स्थानो मे प्रथम और द्वितीय भग कहना चाहिए।

विवेचन—अनन्तरोपपन्नक : स्वरूप और दण्डक—'अनन्तरोपपन्नक' उसे कहते हैं, जिसकी उत्पत्ति का प्रथम समय ही हो। इस दूसरे उद्देशक मे नैरयिक आदि चौवीस ही दण्डको मे उपर्युक्त ग्यारह द्वारो मे पापकर्म आदि के बन्ध की चातुर्भगिक दृष्टि से प्ररूपणा की गई है। प्रथम उद्देशक मे औघिक जीव और नारक आदि चौवीस, इस प्रकार पच्चीस दण्डक कहे है, किन्तु इस द्वितीय उद्देशक मे नैरयिक आदि चौवीस दण्डक ही कहने चाहिए, क्योकि औघिक जीव के साथ अनन्तरोपपन्नक आदि विशेषण नही लगाये जा सकते।

अनन्तरोपपन्नक मे पृच्छा के अयोग्यपद—अनन्तरोपपन्नक नैरयिक आदि मे प्रथम और द्वितीय, ये दो भग ही पाये जाते है, क्योकि उसमे मोहरूप पापकर्म के अबन्धक का अभाव है। अबन्धकत्व सूक्ष्मसम्परायादि गुणस्थानो मे होता है और वे गुणस्थान नैरयिक आदि के नही होते। लेश्यादि पद सामान्यतया नैरयिक आदि मे होते है। जो पद यद्यपि नारको मे उक्त सम्यग्मिथ्यात्व आदि तीनो पद होते है, किन्तु अनन्तरोपपन्नक नैरयिक आदि मे अपर्याप्त होने के कारण नही होते, अत उनके विषय मे प्रश्न नही करना चाहिए, यह कथन मूलपाठ मे यत्र-तत्र किया गया है। वे पद ये हैं—मिश्रदृष्टि, मनोयोग, वचनयोग। पचेन्द्रियतिर्यञ्च मे इन तीनो के अतिरिक्त अवधिज्ञान और विभगज्ञान, ये दो पद भी अप्रष्टव्य है। मनुष्यो मे अलेश्यत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, मन पर्यवज्ञान, केवलज्ञान, विभगज्ञान, नोसज्ञोपयुक्त, अवेदी, अकषायी, मनोयाग, वचनयोग और अयोगित्व, इन ग्यारह पदो के विषय मे नही कहा जाता। पर्याप्तक होने के बाद ये होते है।[1]

---

१. (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९३५
   (ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ ३५६७

ज्ञानावरणीयादि अष्टकर्मबन्ध की अपेक्षा अनन्तरोपपन्नक चौवीस दण्डकों में ग्यारह स्थानों की प्ररूपणा

१० जहा पावे एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडग्रो ।

[१०] जिस प्रकार पापकर्म के विषय मे कहा है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म के विषय मे भी (अनन्तरोपपन्नक-आश्रित) दण्डक कहना चाहिए।

११. एव ग्राउयवज्जेसु जाव अंतराइए दंडग्रो ।

[११] इसी प्रकार आयुष्यकर्म को छोड कर अन्तरायकर्म तक दण्डक कहना चाहिए ।

१२. ग्रणंतरोववन्नए णं भंते ! नेरतिए ग्राउयं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! बंधी, न बंधति, बंधिस्सति ।

[१२ प्र] भगवन् ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने आयुष्य कर्म बांधा था, बाधता है और बाधेगा ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भंगीय प्रश्न ।

[१२ उ] गौतम ! (उसमे केवल तृतीय भग ही पाया जाता है, अर्थात्--) उसने (पहले आयुष्यकर्म) बाधा था, वर्तमान मे नही बाधता और भविष्य मे बाधेगा ।

१३. सलेस्से णं भंते ! ग्रणतरोववन्नए नेरतिए ग्राउय कम्म किं बधी० ?

एवं चेव ततिग्रो भंगो ।

[१३ प्र] भगवन् ! सलेश्य अनन्तरोपपन्नक नैरयिक ने क्या आयुष्यकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१३ उ] गौतम ! उसी प्रकार (पूर्ववत्) तृतीय भग होता है ।

१४. एवं जाव ग्रणागारोवउत्ते । सव्वत्थ वि ततिग्रो भंगो ।

[१४] इसी प्रकार यावत् अनाकारोपयुक्त पद तक सर्वत्र तृतीय भग समझना चाहिए ।

१५. एवं मणुस्सवज्जं जाव वेमाणियाण ।

[१५] इसी प्रकार मनुष्यो के अतिरिक्त वैमानिको तक तृतीय भग होता है ।

१६. मणुस्साणं सव्वत्थ ततिय-चउत्था भगा, नवरं कण्हपक्खिएसु ततिग्रो भंगो । सव्वेसि णाणत्ताइं ताइं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ छव्वीसइमे बंधिसए : बितिग्रो उद्देसग्रो समत्तो ॥ २६-२ ॥

[१६] मनुष्यो मे सभी स्थानो मे तृतीय और चतुर्थ भग कहना चाहिए, किन्तु कृष्णपाक्षिक मनुष्यो मे तृतीय भग ही होता है। सभी स्थानो मे नानात्व (भिन्नता) पूर्ववत् वही समझनी चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—अनन्तरोपपन्नक की आयुष्यकर्मबन्ध-विषयक चतुर्भंगी चर्चा—अनन्तरोपपन्नक मनुष्य में आयुष्यकर्म के विषय में सभी स्थानो मे तीसरा और चौथा भग पाया जाता है, क्योकि अनन्तरोपपन्नक मनुष्य आयुष्य नही बाधता, वह बाद मे बाधेगा, इस अपेक्षा से उसमें तृतीय भग घटित होता है। यदि मनुष्य चरमशरीरी हो तो वर्तमान मे आयुष्यकर्म नही बाधता और न भविष्य मे बाधेगा। इस प्रकार चतुर्थ भग घटित होता है। कृष्णपाक्षिक अनन्तरोपपन्नक मनुष्य में केवल तीसरा भग ही होता है। आशय यह है कि आयुष्यकर्म की पृच्छा मे मनुष्य के अतिरिक्त शेष तेईस दण्डको मे एकमात्र तृतीय भग ही बताया गया है। मनुष्यो मे भी कृष्णपाक्षिक को छोड़ कर शेष अनन्तरोपपन्नक मनुष्यो मे पाये जाने वाले ३५ बोलों मे तीसरा और चौथा भंग बताया गया है।

सभी नैरयिक जीवो मे पापकर्मदण्डक मे जो भिन्नताएँ कही हैं, वे सभी आयुष्यदण्डक मे भी कहनी चाहिए।[1]

॥ छब्बीसवां शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

१. (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९३५
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३५६८

तितिओ उद्देसओ : तृतीय उद्देशक

परम्परोपपन्नक का पापकर्मादिबन्ध-सम्बन्धी

परम्परोपपन्नक चौवीस दण्डकों में पापकर्मादिबन्ध को लेकर ग्यारह स्थानों की निरूपणा

१. परपरोववन्नए णं भंते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिए०, पढम-बितिया ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या परम्परोपपन्नक नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! किसी ने बाधा था इत्यादि प्रथम और द्वितीय भग जानना चाहिए ।

२. एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव परंपरोववन्नएहि वि उद्देसओ भाणियव्वो नेरइयाइओ तहेव नवदंडगसगहितो । अट्ठण्ह वि कम्मपगडीणं जा जस्स कम्मस्स वत्तव्वया सा तस्स अहीणमतिरित्ता नेयव्वा जाव वेमाणिया अणागारोवउत्ता ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। छव्वीसइमे सए : ततिओ उद्देसओ समत्तो ।। २६-३ ।।

[२] जिस प्रकार प्रथम उद्देशक कहा, उसी प्रकार परम्परोपपन्नक नैरयिक के विषय मे पापकर्मादि नौ दण्डक सहित यह उद्देशक भी कहना चाहिए । आठ कर्मप्रकृतियो मे से जिसके लिए जिस कर्म की वक्तव्यता कही है, उसके लिए उस कर्म की वक्तव्यता अनाकारोपयुक्त वैमानिको तक अन्यूनाधिकरूप से कहनी चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—प्रथम उद्देशक का अतिदेश तथा विशेष जिस प्रकार प्रथम उद्देशक मे जीव और नैरयिकादि के विषय मे कहा गया है, उसी प्रकार यह तीसरा उद्देशक भी कहना चाहिए । विशेष इतना है कि प्रथम उद्देशक मे सामान्य जीव एव नैरयिकादि मिला कर पच्चीस दण्डक कहे है, किन्तु इस (तृतीय) उद्देशक मे नैरयिक आदि चौवीस दण्डक ही कहने चाहिये । क्योकि औघिक जीव के साथ अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक आदि विशेषण नही लग सकते ।

पापकर्म का यह पहला सामान्य दण्डक और आठ कर्मो के आठ दण्डक, यो नौ दण्डक प्रथम उद्देशक मे कहे है, वे ही नौ दण्डक इस उद्देशक मे कहने चाहिए ।[1]

।। छव्वीसवाँ शतक : तृतीय उद्देशक सम्पूर्ण ।।

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५७०

चउत्थो उद्देसओ : चतुर्थ उद्देशक

अनन्तरावगाढ़ नैरयिकादि के पापकर्मादिबन्ध-सम्बन्धी

अनन्तरावगाढ़ चौवीस दण्डकों में पापकर्मादि-बन्ध प्ररूपणा

१. अणंतरोगाढए णं भंते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिए०, एवं जहेव अणंतरोववन्नएहिं नवदंडगसगहितो उद्देसो भणितो तहेव अणंतरोगाढएहि वि अहीणमतिरित्तो भाणियव्वो नेरइयाईए जाव वेमाणिए ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। छव्वीसइमे सए चउत्थो उद्देसओ समत्तो ।। २६-४ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! क्या अनन्तरावगाढ नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भंगीय प्रश्न ।

[१ उ.] गौतम ! किसी ने पापकर्म बाधा था, इत्यादि क्रम से जिस प्रकार अनन्तरोपपन्नक के नौ दण्डको सहित (द्वितीय) उद्देशक कहा है, उसी प्रकार अनन्तरावगाढ नैरयिक आदि (से लेकर) वैमानिक तक उन्ही नौ दण्डको सहित इस उद्देशक को अन्यूनाधिकरूप से कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन - अनन्तरावगाढ़ : स्वरूप—जो जीव एक भी समय के अन्तर के विना उत्पत्ति-स्थान को अवलम्बित होकर रहता है, वह 'अनन्तरावगाढ' कहलाता है । परन्तु कुछ आचार्यों के मतानुसार ऐसा अर्थ करने से अनन्तरोपपन्नक और अनन्तरावगाढ के अर्थ मे कोई अन्तर नही रहता । अत इसका यह अर्थ करना चाहिए उत्पत्ति के एक समय बाद, फिर एक भी समय के अन्तर बिना उत्पत्तिस्थान की अपेक्षा करके जो रहता है, वह 'अनन्तरावगाढ' कहलाता है तथा उसके पश्चात् एक आदि समय का अन्तर हो, वह 'परम्परावगाढ' कहलाता है । दूसरे शब्दो मे कहे तो उत्पत्ति के द्वितीय समयवर्ती अनन्तरावगाढ कहलाता है और उत्पत्ति के तृतीयादि समयवर्ती 'परम्परावगाढ' कहलाता है, यही इन दोनो मे अन्तर है ।[१]

।। छव्वीसवाँ शतक · चतुर्थ उद्देशक समाप्त ।।

१ (क) भगवती अ वृत्ति,

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३५७२

पंचमो उद्देसओ : पांचवाँ उद्देशक

परम्परावगाढ़ नैरयिकादि को पापकर्मादि-बन्ध

परम्परावगाढ़ चौवीस दण्डकों में पापकर्मादिबन्ध-प्ररूपणा

१ परंपरोगाढए णं भंते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० ?

जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। छव्वीसइमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ।। २६-५ ।।

[१ प्र] भगवन् ! क्या परम्परावगाढ नैरयिक ने पापकर्म बांधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भंगीय प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक के विषय मे उद्देशक कहा है, उसी प्रकार परम्परावगाढ (नैरयिकादि) के विषय मे यह समग्र उद्देशक अन्यूनाधिक रूप से कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। छव्वीसवां शतक : पंचम उद्देशक समाप्त ।।

छट्ठो उद्देसओ : छठा उद्देशक

अनन्तराहारक नैरयिकादि को पापकर्मादि-बन्ध

अनन्तराहारक चौवीस दण्डकों में पापकर्मादिबन्ध की प्ररूपणा

१. अणंतराहारए ण भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा।

एव जहेव अणंतरोववन्नएहि उद्देसो तहेव निरवसेस।

सेव भते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। छब्बीसइमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ।। २६-६ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! क्या अनन्तराहारक नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भगात्मक प्रश्न।

[१ उ.] गौतम ! जिस प्रकार (पहले) अनन्तरोपपन्नक (द्वितीय) उद्देशक कहा गया है, उसी प्रकार यह समग्र अनन्तराहारक उद्देशक भी कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—अनन्तराहारक का स्वरूप—आहारकत्व के प्रथम समयवर्ती को अनन्तराहारक कहते हैं।

।। छब्बीसवाँ शतक : छठा उद्देशक समाप्त ।।

सत्तमो उद्देसओ : सातवाँ उद्देशक

परम्पराहारक नैरयिकादि को पापकर्मादि-बन्ध

परम्पराहारक चौवीस दण्डकों मे पापकर्मादिबन्ध की प्ररूपणा

१. परंपराहारए ण भंते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसो भाणियव्वो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। छव्वीसइमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ।। २६-७ ।।

[१ प्र] भगवन् ! क्या परम्पराहारक नैरयिक ने पापकर्म का बन्ध किया था ? इत्यादि पूर्ववत् समग्र प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक नैरयिकादि-सम्बन्धी उद्देशक कहा है, उसी प्रकार समग्र परम्पराहारक उद्देशक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन– परम्पराहारक का स्वरूप—आहारकत्व के द्वितीय आदि समयवर्ती को परम्पराहारक कहते हैं ।

।। छव्वीसवाँ शतक : सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

अट्ठमो उद्देसओ : आठवाँ उद्देशक

अनन्तरपर्याप्तक नैरयिकादि को पापकर्मादि-बन्ध

अनन्तरपर्याप्तक चौवीस दण्डकों में पापकर्मादिबन्ध की प्ररूपणा

१. अणंतरपज्जत्तए णं भंते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा।

गोयमा ! एवं जहेव अणंतरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेस।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। छव्वीसइमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ।। २६-८ ।।

[१ प्र] भगवन् ! क्या अनन्तरपर्याप्तक नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भंगात्मक प्रश्न।

[१ उ] गौतम ! अनन्तरोपपन्नक (नैरयिकादिसम्बन्धी) उद्देशक के समान यह सारा उद्देशक कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—अनन्तरपर्याप्तक का स्वरूप—पर्याप्तकत्व के प्रथम समयवर्ती को अनन्तरपर्याप्तक कहते है।

।। छब्बीसवां शतक : आठवां उद्देशक समाप्त ।।

नवमो उद्देसओ : नौवाँ उद्देशक

परम्परपर्याप्तक नैरयिकादि को पापकर्मादि-बन्ध

परम्परपर्याप्तक चौवोस दण्डकों में पापकर्मादिबन्ध-प्ररूपणा

१. परपरपज्जत्तए णं भते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा ?

गोयमा ! एव जहेव परपरोववन्नएहि उद्देसो तहेव निरवसेसो भाणियव्वो ।

सेव भते ! सेव भंते ! जाव विहरइ ।

।। छव्वीसइमे सए : नवमो उद्देसम्रो समत्तो ।। २६-९ ।।

[१ प्र] भगवन् ! क्या परम्परपर्याप्तक नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक (नैरयिकादि के पापकर्मबन्ध-सम्बन्धी) उद्देशक कहा है, उसी प्रकार परम्परपर्याप्तक नैरयिकादि के पापकर्मादि-सम्बन्धी उद्देशक समग्ररूप से कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। छव्वीसवाँ शतक : नौवाँ उद्देशक समाप्त ।।

दसमो उद्देसओ : दसवाँ उद्देशक

चरम नैरयिकादि को पापकर्माबिबन्ध

चरम चौवीस दण्डकों में पापकर्मादिबन्ध-प्ररूपणा

१. चरिमे णं भंते ! नेरतिए पावं कम्मं किं बंधी० पुच्छा।

गोयमा ! एव जहेव परपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव चरिमेहि वि निरवसेसं।

सेव भते ! सेव भते ! जाव विहरति।

॥ छव्वीसइमे सए : दसमो उद्देसओ समत्तो ॥ २६-१० ॥

[१ प्र] भगवन् ! क्या चरम नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भंगात्मक प्रश्न।

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार परम्परोपपन्नक उद्देशक कहा है, उसी प्रकार चरम नैरयिकादि के सम्बन्ध मे यह समग्र उद्देशक कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—चरम नैरयिक · स्वरूप और समाधान जिसका नरकभव चरम—अन्तिम है, अर्थात् जो नरक से निकल कर मनुष्यादि गति मे जाकर मोक्ष प्राप्त करेगा, किन्तु पुन लौटकर नरक मे नही जाएगा, वह 'चरम नैरयिक' कहलाता है। प्रस्तुत मे चरम नैरयिक के लिए परम्परोपपन्नक उद्देशक का अतिदेश किया है और परम्परोद्देशक के लिए प्रथम उद्देशक का अतिदेश किया है। फिर भी मनुष्य-पद की अपेक्षा आयुष्यकर्मबन्ध के विषय मे यह विशेषता है कि प्रथम उद्देशक से आयुष्यकर्मबन्ध के सामान्यत चार भग कहे हैं, परन्तु चरम मनुष्य के सम्बन्ध मे केवल चौथा भग ही घटित होता है, क्योकि जो चरम मनुष्य है, उसने पहले (पूर्वभव मे) आयुष्य बाधा था, वर्तमान समय में नही बाधता है और भविष्यत्काल मे भी नही बाधेगा। यदि ऐसा न हो तो उसकी चरमता ही घटित नही हो सकती। वृत्तिकार का यह कथन है। किन्तु यह मनुष्यभव की अपेक्षा चरम है। इसलिए वह नरक, तिर्यञ्च और देवगति मे तो नही जाएगा, किन्तु मनुष्य के उत्कृष्ट आठ भव तक करते हुए भी मनुष्य का चरमपन कायम रहता है और ऐसा होने पर उसको आयुष्य की अपेक्षा चारो भग घटित हो सकते है।[1]

॥ छव्वीसवां शतक दसवां उद्देशक समाप्त ॥

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३७

(ख) भगवती (हिन्दी विवेचन) भाग ७ पृ ३५७७-३५७८

एगारसमो उद्देसओ : ग्यारहवाँ उद्देशक

अचरम नैरयिकादि को पापकर्मादि-बन्ध

अचरम चौवीस दण्डकों में पापकर्मादिबन्ध-प्ररूपणा

१. अचरिमे णं भंते ! नेरतिए पाव कम्म किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगइए०, एव जहेव पढमुद्देसए तहेव पढम-बितिया भगा भाणियव्वा सव्वत्थ जाव पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या अचरम नैरयिक ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भगात्मक प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! किसी ने पापकर्म बाधा था, इत्यादि प्रथम उद्देशक मे कहे अनुसार यहाँ भी सर्वत्र प्रथम और द्वितीय भग पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक पर्यन्त कहना चाहिए ।

२. अचरिमे णं भंते ! मणुस्से पावं कम्म किं बधी० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगतिए बधी, बधति, बधिस्सति; अत्थेगतिए बधी, बधति, न बंधिस्सति; अत्थेगतिए बंधी, न बधति, बंधिस्सति ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या अचरम मनुष्य ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भगात्मक प्रश्न ।

[२ उ] गौतम ! (१) किसी मनुष्य ने बाधा था, बाधता है और बाधेगा, (२) किसी ने बाधा था, बाधता है और आगे नही बाधेगा, (३) किसी मनुष्य ने बाधा था, नही बाधता है और आगे बाधेगा । (इस प्रकार अचरम मनुष्य मे ये तीन भग होते हैं ।)

३. सलेस्से णं भंते ! अचरिमे मणुस्से पावं कम्म किं बधी० ?

एवं चेव तिन्नि भंगा चरिमविहूणा भाणियव्वा एवं जहेव पढमुद्देसए, नवरं जेसु तत्थ वीससु पदेसु चत्तारि भगा तेसु इह आदिल्ला तिन्नि भगा भाणियव्वा चरिमभगवज्जा; अलेस्से केवलनाणी य अजोगी य, एए तिन्नि वि न पुच्छिज्जंति । सेस तहेव !

[३ प्र] भगवन् ! क्या सलेश्यी अचरम मनुष्य ने पापकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[३ उ] गौतम ! पूर्ववत् अन्तिम भग को छोड कर शेष तीन भग प्रथम उद्देशक के समान यहाँ कहने चाहिए । विशेष यह है कि जिन बीस पदो मे वहाँ चार भग कहे हैं उन पदो मे से यहाँ अन्तिम भग को छोड कर आदि के तीन भग कहने चाहिए ।

यहाँ अलेश्यी, केवलज्ञानी और अयोगी के विषय मे प्रश्न नही करना चाहिए। शेष स्थानो मे पूर्ववत् जानना चाहिए।

४. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरतिए।

[४] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के विषय मे नैरयिक के समान कथन करना चाहिए।

विवेचन—अचरम : स्वरूप और भंगो की प्राप्ति का विश्लेषण—जो जीव जिस भव मे वर्तमान है, उस भव को पुन. कभी प्राप्त करेगा, वह भव की अपेक्षा 'अचरम' कहलाता है। अचरम उद्देशक मे पचेन्द्रिय तिर्यंच तक के पदो मे पापकर्म की अपेक्षा प्रथम और द्वितीय भग कहा गया है। मनुष्य मे अन्तिम भग को छोड कर शेष तीन भग होते है। मनुष्य मे चौथा भग इसलिए नही बताया कि यहाँ अचरम का प्रकरण है और चौथा भग चरमशरीरी मनुष्य मे पाया जाता है।

जिन बीस पदो मे, पहले उद्देशक मे चार भग बताए थे, उनमे यहाँ अन्तिम भग को छोड कर प्रथम के शेष तीन भग कहने चाहिए। वे बीस पद ये है— जीव, सलेश्यी, शुक्ललेश्यी, शुक्लपाक्षिक, सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी, मतिज्ञानी आदि चार, नोसज्ञोपयुक्त, सवेदी, सकषायी, लोभकषायी, सयोगी, मनोयोगी आदि तीन, साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त। इनमे सामान्यतया चार भग ही होते है, किन्तु जब ये बीस पद अचरम मनुष्य के साथ हो, तब चौथा भग इनमे नही होता, क्योकि चौथा भग चरम मनुष्य मे ही होता है। अलेश्यी, केवलज्ञानी और अयोगी, ये तीन पद चरम मे ही होते है, अचरम के साथ इनका प्रश्न सम्भव ही नही है, इस कारण इनके विषय मे अचरम-सम्बन्धी प्रश्न करने का निषेध किया गया है।[1]

अचरम चौवीस दण्डकों में ज्ञानावरणीयादि कर्मबन्ध-प्ररूपणा

५ अचरिमे ण भंते ! नेरइए नाणावरणिज्ज कम्म किं बधी० पुच्छा।

गोयमा ! एव जहेव पाव, नवर मणुस्सेसु सकसाईसु लोभकसायीसु य पढम-बितिया भगा सेसा अट्ठारस चरिमविहूणा।

[५ प्र] भगवन् ! क्या अचरम नैरयिक ने ज्ञानावरणीयकर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् चतुर्भंगात्मक प्रश्न।

[५ उ] गौतम ! जिस प्रकार पापकर्मबन्ध के विषय में कहा था, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि सकषायी और लोभकषायी मनुष्यो मे प्रथम और द्वितीय भग कहने चाहिए। शेष अठारह पदो मे अन्तिम भग के अतिरिक्त शेष तीन भग कहने चाहिए।

६. सेसं तहेव जाव वेमाणियाणं।

[६] शेष सर्वत्र वैमानिक पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए।

---

१ (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३५८२

(ख) भगवती अ वृत्ति पत्र ९३७

७. दरिसणावरणिज्जं पि एवं चेव निरवसेसं ।

[७] दर्शनावरणीयकर्म के विषय मे समग्र कथन इसी प्रकार समझना चाहिए ।

८. वेदणिज्जे सव्वत्थ वि पढम-बितिया भंगा जाव वेमाणियाणं, नवरं मणुस्सेसु अलेस्से केवली अजोगी य नत्थि ।

[८] वेदनीयकर्म के विषय मे सभी स्थानो मे वैमानिक तक प्रथम और द्वितीय भग कहना चाहिए । विशेष यह है कि अचरम मनुष्यो मे अलेश्यी, केवलज्ञानी और अयोगी नही होते ।

९. अचरिमे ण भंते ! नेरइए मोहणिज्जं कम्म किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! जहेव पाव तहेव निरवसेस जाव वेमाणिए ।

[९ प्र] भगवन् ! अचरम नैरयिक ने क्या मोहनीय कर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[९ उ] गौतम जिस प्रकार पापकर्मबन्ध के विषय मे कहा, उसी प्रकार यहाँ भी अचरम नैरयिक के विषय मे पापकर्म-सम्बन्धी समस्त कथन वैमानिक तक कहना चाहिए ।

१०. अचरिमे ण भंते ! नेरतिए आउयं कम्म किं बंधी० पुच्छा ।

गोयमा ! पढम-ततिया भंगा ।

[१० प्र] भगवन् ! क्या अचरम नैरयिक ने आयुष्य कर्म बाधा था ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१० उ] गौतम ! प्रथम और तृतीय भग जानना चाहिये ।

११. एवं सव्वपएसु वि नेरइयाण पढम-ततिया भगा, नवरं सम्मामिच्छत्ते तइयो भंगो ।

[११] इसी प्रकार नैरयिको के बहुवचन-सम्बन्धी समस्त पदो मे पहला और तीसरा भग कहना चाहिए । किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व मे केवल तीसरा भग कहना चाहिए ।

१२. एव जाव थणियकुमाराणं ।

[१२] इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक कहना चाहिए ।

१३ पुढविकाइय-आउकाइय-वणस्सइकाइयाण तेउलेसाए ततियो भंगो । सेसपएसु सव्वत्थ पढम-ततिया भंगा ।

[१३] पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक और तेजोलेश्या, इन सबमे तृतीय भग होता है । शेष पदो मे सर्वत्र प्रथम और तृतीय भग कहना चाहिए ।

१४. तेउकाइय-वाउकाइयाणं सव्वत्थ पढम-ततिया भगा ।

[१४] तेजस्कायिक और वायुकायिक के सभी स्थानो मे प्रथम और तृतीय भग कहना चाहिए ।

१५ बेइंदिए-तेइंदिए-चतुरिंदियाण एव चेव, नवर सम्मत्ते ओहिनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे, एएसु चउसु वि ठाणेसु ततियो भगो ।

[१५] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

विशेष यह है कि सम्यक्त्व, अवधिज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान इन चार स्थानो मे केवल तृतीय भग कहना चाहिए ।

१६. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मामिच्छत्ते ततियो भंगो । सेसपएसु सव्वत्थ पढम-ततिया भंगा ।

[१६] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको के सम्यग्मिथ्यात्व मे तीसरा भग पाया जाता है । शेष पदो मे सर्वत्र प्रथम और तृतीय भग जानना चाहिए ।

१७. मणुस्साणं सम्मामिच्छत्ते अवेयए अकसायिम्मि य ततियो भंगो, अलेस्स-केवलनाण-अजोगी य न पुच्छिज्जति, सेसपएसु सव्वत्थ पढम-ततिया भंगा ।

[१७] मनुष्यो के सम्यग्मिथ्यात्व, अवेदक और अकषाय मे तृतीय भग ही कहना चाहिए । अलेश्यी, केवलज्ञानी और अयोगी के विषय मे प्रश्न नही करना चाहिए । शेष पदो मे सभी स्थानो मे प्रथम और तृतीय भग होता है ।

१८. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरतिया ।

[१८] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो का कथन नैरयिको के समान समझना चाहिए ।

१९. नामं गोयं अंतराइयं च जहेव नाणावरणिज्जं तहेव निरवसेसं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति ।

।। छव्वीसइमे सए : एगारसमो उद्देसओ समत्तो ।। २६-११ ।।

।। छव्वीसइमं बंधिसयं समत्तं ।। २६ ।।

[१९] नाम, गोत्र और अन्तराय, इन तीन कर्मों का बन्ध ज्ञानावरणीय कर्मबन्ध के समान समग्ररूप से कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—स्पष्टीकरण - ज्ञानावरणीय कर्मबन्धक का दण्डक पापकर्मबन्ध के दण्डक के समान है, किन्तु पापकर्मदण्डक मे सकषाय और लोभकषाय मे प्रथम के तीन भग कहे है, जबकि यहाँ प्रथम के दो भग (पहला और दूसरा) ही कहने चाहिए, क्योकि ये ज्ञानवरणीयकर्म को बाधे बिना उसके पुनर्बन्धक नही होते और सकषायी जीव सदैव ज्ञानावरणीयकर्म के बन्धक होते ही है । अचरम होने से इनमे चौथा भग नही होता ।

वेदनीयकर्म मे सर्वत्र प्रथम और द्वितीय भग ही होता है । इसमे तीसरा और चौथा भग घटित नही हो सकता, क्योकि जो एक बार वेदनीयकर्म का अबन्धक हो जाता है, वह फिर वेदनीयकर्म कदापि नही बाधता । चौथा भग अयोगी-अवस्था मे होता है, इसलिए वह अचरम मे नही बनता ।

आयुकर्म-बन्ध के विषय मे नैरयिक मे पहला और तीसरा भग पाया जाता है। प्रथम भग का घटित होना स्पष्ट है। तीसरे भग की घटना इस प्रकार है—उसने आयुकर्म बाधा था, वर्तमान मे (अबन्धकाल मे) नही बाधता, परन्तु भविष्य मे बन्धकाल मे बाधेगा, क्योकि यह अचरम है। इसमे दूसरा और चौथा भग घटित नही हो सकता, क्योकि अचरम होने से आयु का बन्ध अवश्य करेगा, इसलिए दूसरा भग नही बनता अन्यथा उसका अचरमत्व ही नही हो सकता और इसी युक्ति से चौथा भग भी घटित नही होता। शेष पदो की घटना पूर्ववत् कर लेनी चाहिए।[1]

।। छव्वीसवाँ शतक : ग्यारहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ।।

।। छव्वीसवाँ बन्धीशतक समाप्त ।।

१ (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९३७-९३८
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५८३

सत्तावीसइमं सयं : करिंसुसयं

सत्ताईसवाँ शतक : 'किया था' इत्यादि शतक

प्रथम से लेकर ग्यारहवें उद्देशक तक

छव्वीसवें शतक की वक्तव्यतानुसार ज्ञानावरणीयादि पापकर्मकरण-प्ररूपणा

१. जीवे णं भंते ! पाव कम्म कि करिंसु, करेति, करिस्सति; करिंसु, करेति, न करेस्सति; करिंसु, न करेइ, करिस्सति; करिंसु, न करेइ, न करेस्सइ ?

गोयमा ! अत्थेगतिए करिंसु, करेति, करिस्सति; अत्थेगतिए करिंसु, करेति, न करिस्सति; अत्थेगतिए करिंसु, न करेति, करेस्सति; अत्थेगतिए करिंसु, न करेति, न करेस्सति ।

[१ प्र] भगवन् ! (१) क्या जीव ने पापकर्म किया था, करता है और करेगा ? (२) अथवा किया था, करता है और नही करेगा ? या (३) किया था, नही करता और करेगा ? (४) अथवा किया था, नही करता और नही करेगा ?

[१ उ] गौतम ! (१) किसी जीव ने पापकर्म किया था, करता है और करेगा ।

(२) किसी जीव ने किया था, करता है और नही करेगा ।

(३) किसी जीव ने किया था, नही करता है और करेगा ।

(४) किसी जीव ने किया था, नही करता है और नही करेगा ।

२ सलेस्से ण भते ! जीवे पाव कम्म० ?

एव एएण अभिलावेण जच्चेव बधिसते वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा, तह चेव नवदडगसंगहिया एक्कारस उद्देसगा भाणितव्वा ।

।। सत्तावीसइमस्स सयस्स एक्कारस उद्देसगा समत्ता ।। २७ । १-११ ।।

।। सत्तावीसइम सय : करिंसुसय समत्त ।। २७ ।।

[२ प्र] भगवन् ! सलेश्य जीव ने पापकर्म किया था ? इत्यादि पूर्वोक्त बन्धिशतकानुसार सभी प्रश्न ।

[२ उ] (गौतम !) बन्धीशतक (छब्बीसवे शतक) मे जो वक्तव्यता इस (पूर्वोक्त) अभिलाप (पाठ) द्वारा कही थी, वह सभी यहाँ कहनी चाहिए तथा उसी प्रकार नौ दण्डकसहित ग्यारह उद्देशक भी यहाँ कहने चाहिए ।

विवेचन— छव्वीसवें और सत्ताईसवें शतक में अन्तर--जिस प्रकार छव्वीसवे शतक मे प्रत्येक प्रश्न के प्रारम्भ मे 'बधी' शब्द का प्रयोग किया गया होने से वह 'बधीशतक' कहलाता है, किन्तु इस सत्ताईसवे शतक मे प्रत्येक प्रश्न के प्रारम्भ मे 'करिसु' पद प्रयुक्त हुआ है, इसलिए इसे 'करिसु-शतक' कहते है। सत्ताईसवे शतक के सभी प्रश्न और उनके उत्तर छव्वीसवे शतक के समान है— विषय मे थोडा अन्तर है, छव्वीसवे मे त्रैकालिक पापकर्मबन्ध-सम्बन्धी प्रश्न हैं, जबकि सत्ताईसवे शतक मे त्रैकालिक पापकर्मकरण-सम्बन्धी प्रश्न है।[1]

शंका—छव्वीसवे शतक मे प्रयुक्त 'बन्ध' और सत्ताईसवे शतक मे प्रयुक्त 'करण' मे क्या अन्तर है?

समाधान—यद्यपि बन्ध' और 'करण' मे कोई अन्तर नही है, तथापि यहाँ पृथक् शतक के रूप मे कथन करने का कारण यह है कि शास्त्रकार इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करना चाहते है कि जीव की जो कर्मबन्ध-क्रिया है, वह जीवकृत ही है, अर्थात्--वह कर्मबन्ध-क्रिया जीव के द्वारा ही हुई है, ईश्वरादिकृत नही। अथवा—'बन्ध' का अर्थ है--सामान्यरूप से कर्म को बाधना, जबकि 'कारण' का अर्थ है—कर्मो को निधत्तादिरूप से बाधना, जिससे विपाकादिरूप से उनका फल अवश्य भोगना पड, इत्यादि तथ्यो को व्यक्त करने के लिए 'बन्ध' और 'करण' का पृथक्-पृथक् कथन किया है।[2]

।। सत्ताईसवाँ शतक : ग्यारह उद्देशक समाप्त ।।

।। सत्ताईसवाँ 'करिसु' शतक सम्पूर्ण ।।

---

१ भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५८५

२ (क) वही (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३५८५-३५८६

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३८

अट्ठावीसइमं सयं : कम्मसमज्जणसयं

अट्ठाईसवां शतक : कर्मसमर्जन-शतक

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

छब्बीसवे शतक में निर्दिष्ट ग्यारह स्थानो से जीवादि के पापकर्म-समर्जन एवं समाचरण का निरूपण

१. जीवा णं भंते ! पाव कम्मं कहि समज्जिणिसु ? कहि समायरिसु ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा १, अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य होज्जा २, अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य होज्जा ३, अहवा तिरिक्खजोणिएसु य देवेसु य होज्जा ४, अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य मणुस्सेसु य होज्जा ५, अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य देवेसु य होज्जा ६, अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा ७, अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा ८।

[१ प्र] भगवन् ! जीवो ने किस गति मे पापकर्म का समर्जन (ग्रहण) किया था और किस गति मे आचरण किया था ?

[१ उ] गौतम ! (१) सभी जीव तिर्यञ्चयोनिको मे थे (२) अथवा (सभी जीव) तिर्यञ्चयोनिको और नैरयिको मे थे, (३) अथवा (सभी जीव) तिर्यञ्चयोनिको और मनुष्यो मे थे, (४) अथवा (सभी जीव) तिर्यञ्चयोनिको और देवो मे थे, (५) अथवा (सभी जीव) तिर्यञ्चयोनिको, नैरयिको और मनुष्यो मे थे, (६) अथवा (सभी जीव) तिर्यञ्चयोनिको, नैरयिको और देवो मे थे, (७) अथवा (सभी जीव) तिर्यञ्चयोनिको, मनुष्यो और देवो मे थे, (८) अथवा (सभी जीव) तिर्यञ्चयोनिको, नैरयिको, मनुष्यो और देवो मे थे। (अर्थात्—उन-उन गतियो-योनियो मे उन्होने पापकर्म का समर्जन और समाचरण किया था।

२ सलेस्सा ण भंते ! जीवा पाव कम्म कहि समज्जिणिसु ? कहि समायरिसु ?

एवं चेव।

[२ प्र] भगवन् ! सलेश्यी जीव ने किस गति मे पापकर्म का समर्जन और किस गति मे समाचरण किया था ?

[२ उ] गौतम ! पूर्ववत् (यहा सभी भग पाये जाते हैं)।

३. एवं कण्हलेस्सा जाव अलेस्सा।

[३] इसी प्रकार कृष्णलेश्यी जीवो (से लेकर) यावत् अलेश्यी जीवो तक के विषय मे भी कहना चाहिए।

४. कण्हपक्खिया, सुक्कपक्खिया एव जाव अणागारोवउत्ता ।

[४] कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक (से लेकर) अनाकारोपयुक्त तक इसी प्रकार का कथन करना चाहिए ।

५. नेरतिया ण भते ! पाव कम्म कहि समज्जिणिसु ? कहि समायरिसु ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा, एव चेव अट्ठ भगा भाणियव्वा ।

[५ प्र] भगवन् ! नैरयिको ने कहाँ (किस गति या योनि मे) पापकर्म का समर्जन और कहाँ समाचरण किया था ?

[५ उ] गौतम ! सभी जीव तिर्यञ्चयोनिको मे थे, इत्यादि पूर्ववत् आठो भग यहाँ कहने चाहिए ।

६. एव सव्वत्थ अट्ठ भगा जाव अणागारोवउत्ता ।

[६] इसी प्रकार सर्वत्र अनाकारोपयुक्त तक आठ-आठ भग कहने चाहिए ।

७. एव जाव वेमाणियाण ।

[७] इसी प्रकार (दण्डक के क्रम से) वैमानिक पर्यन्त प्रत्येक के आठ-आठ भग जानने चाहिए ।

८ एव नाणावरणिज्जेण वि दडओ ।

[८] इसी प्रकार ज्ञानावरणीय के विषय मे भी ८ भग समझने चाहिए ।

९. एव जाव अतराइएण ।

[९] (दर्शनावरणीय से लेकर) अन्तरायिक तक इसी प्रकार जानना चाहिए ।

१०. एव एते जीवाईया वेमाणियपज्जवसाणा नव दडगा भवंति ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरइ ।

॥ अट्ठावीसइमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ २८-१ ॥

[१०] इस प्रकार जीव से लेकर वैमानिक पर्यन्त ये नौ दण्डक होते हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन— समर्जन और समाचरण का विशेषार्थ समर्जन का विशेषार्थ है पापकर्मों का समर्जन अर्थात्—उपार्जन, और समाचरण का विशेषार्थ है पापकर्म के हेतुभूत पापक्रिया का आचरण या उसके विपाक का अनुभव । यहाँ प्रश्न का आशय यह है कि जीव ने पापक्रिया के समाचरण द्वारा किस गति मे पापकर्म का उपार्जन किया था ? अथवा समर्जन और समाचरण ये दोनो एकार्थक (पर्यायवाची) शब्द है ।[1]

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३९

आठ भंगों का स्पष्टीकरण—इन आठ भगो मे प्रथम भग तिर्यञ्चगति का ही है । दूसरा, तीसरा और चौथा, ये तीन भग द्विकसयोगी बनते है । यथा—तिर्यञ्च और नैरयिक, तिर्यञ्च और मनुष्य तथा तिर्यञ्च और देव । पाचवाँ, छठा और सातवाँ, ये तीन भग त्रिकसयोगी बनते है । यथा—तिर्यञ्च, नैरयिक और मनुष्य, तिर्यञ्च, नैरयिक और देव तथा तिर्यञ्च, मनुष्य और देव । आठवाँ भग—तिर्यञ्च, नैरयिक, मनुष्य और देव, इस प्रकार चतु.सयोगी बनता है ।[१]

तिर्यञ्चयोनि अधिक जीवो की आश्रयभूत होने से सभी जीवो की मातृरूपा है । इसलिए अन्य नारकादि सभी जीव कदाचित् तिर्यञ्च से आकर उत्पन्न हुए हो, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि 'वे सभी तिर्यञ्चयोनि मे थे ।' इसका आशय यह है कि किसी विवक्षित काल मे जो नैरयिक आदि थे, वे अल्पसख्यक होने से, मोक्ष चले जाने के कारण अथवा तिर्यञ्चगति मे प्रविष्ट हो जाने से उन विवक्षित नैरयिको की अपेक्षा नरकगति निर्लेप (खाली) हो गई हो, परन्तु तिर्यञ्चगति अनन्त होने से कदापि खाली नही हो सकती । अत उन तिर्यञ्चो मे से निकल कर उन विवक्षित नैरयिको के स्थान मे नैरयिकरूप से उत्पन्न हुए हो, उनकी अपेक्षा यह कहा जा सकता है कि उन सभी ने तिर्यञ्चगति मे (रहते) नरकगति आदि के हेतुभूत पापकर्मो का उपार्जन किया था । यह प्रथम भग है ।

अथवा विवक्षित समय मे जो मनुष्य और देव थे, वे निर्लेपरूप से वहाँ से निकल गए और उनके स्थानो मे तिर्यञ्चगति और नरकगति से आकर जो जीव उत्पन्न हो गए, उनकी अपेक्षा से दूसरा भग बनता है कि विवक्षित सभी जीव तिर्यञ्चयोनि और नैरयिको मे थे, जो जहाँ थे वही पर उन्होने पापकर्मो का उपार्जन किया ।

अथवा विवक्षित समय मे जो नैरयिक और देव थे, वे उसी प्रकार वहाँ से निर्लेपरूप से निकल गए और उनके स्थानो मे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति से आकर दूसरे जीव उत्पन्न हो गए, उनकी अपेक्षा यह तीसरा भग बनता है कि वे सभी तिर्यञ्चो और मनुष्यो मे थे, जो जहाँ थे वही पर उन्होने पापकर्म उपार्जित किये । इस प्रकार क्रमश आठो भगो के विषय मे समझ लेना चाहिए ।[२]

।। अट्ठाईसवां शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९३९

२ वही, पत्र ९३९

बीओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

अनन्तरोपपन्नक जीवों द्वारा कर्मसमर्जन

अनन्तरोपपन्नक चौवीस दण्डको में छव्वीसवे शतकानुसार पापकर्मसमर्जन-प्ररूपणा

१. अणतरोववन्नगा ण भते ! नेरइया पाव कम्म कहि समज्जिणिसु ? कहि समायरिसु ?

गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा । एवं एत्थ वि अट्ठ भगा ।

[१ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक नैरयिको ने किस गति मे पापकर्मो का समर्जन किया था, कहाँ आचरण किया था ।

[१ उ] गौतम ! वे सभी तिर्यञ्चयोनिको मे थे, इत्यादि पूर्वोक्त आठो भगो का यहाँ कथन कहना चाहिए ।

२. एव अणंतरोववन्नगाणं नेरइयाईण जस्स ज अत्थि लेस्साईय अणागारोवयोगपज्जवसाणं तं सव्वं एयाए भयणाए भाणियव्वं जाव वेमाणियाणं । नवर अणतरेसु जे परिहरियव्वा ते जहा बधिसते तहा इह पि ।

[२] अनन्तरोपपन्नक नैरयिको की अपेक्षा लेश्या आदि से लेकर यावत् अनाकारोपयोग-पर्यन्त भगो मे से जिसमे जो भग पाया जाता हो, वह सब विकल्प (भजना) से वैमानिक तक कहना चाहिए । परन्तु अनन्तरोपपन्नक नैरयिको के जो-जो बोल छोडने (परिहार करने) योग्य (मिश्रदृष्टि मनोयोग, वचनयोगादि) है, उन-उन बोलो को बन्धीशतक के अनुसार यहाँ भी छोड देना चाहिए ।

३. एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडओ ।

४. एवं जाव अतराइएणं निरवसेसं । एस वि नवदंडगसंगहिओ उद्देसओ भाणियव्वो ।

सेवं भते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। अट्ठावीसइमे सए : बीओ उद्देसओ समत्तो ।। २८-२ ।।

[३-४] इसी प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म से लेकर अन्तरायकर्म तक नौ दण्डकसहित यह सारा उद्देशक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—अनन्तरोपपन्नकों में ये बोल परिहरणीय—अनन्तरोपपन्नक नैरयिक मे सम्यग्-मिथ्यात्व, मनोयोग, वचनयोगादि कतिपय पद सभवित नही है, इसलिए जैसे बन्धीशतक मे उस विषय के प्रश्न नही किये गए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी नही करने चाहिए ।

शंका : समाधान—प्रथम भग में कहा गया है—सभी तिर्यञ्चयोनिक से आकर उत्पन्न हुए, किन्तु सिद्धान्तानुसार तिर्यञ्च तो आठवे देवलोक तक ही उत्पन्न हो सकते है, तब फिर तिर्यञ्च से निकले हुए आनतादि देवो मे कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ? तथा तिर्यञ्च से निकले हुए तीर्थंकरादि उत्तम पुरुष भी नही होते, ऐसी शका द्वितीय आदि भगो मे होती है। इसका समाधान वृत्तिकार ने यह किया है कि वृद्ध-आचार्यों की धारणानुसार ये भग बाहुल्य को लेकर समझने चाहिए।[1]

।। अट्ठाईसवां शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

१. भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९४०

तइयादि-एगारसम-पज्जंता उद्देसगा

तीसरे से लेकर ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

छब्बीसवें शतक के तृतीय से ग्यारहवें उद्देशकानुसार पापकर्मसमर्जन-प्ररूपणा

१. एवं एएण कमेण जहेव बंधिसते उद्देसगाण परिवाडी तहेव इह पि अट्ठसु भंगेसु नेयव्वा। नवरं जाणियव्वं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं जाव अचरिमुद्देसो। सव्वे वि एए एक्कारस उद्देसगा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।

॥ अट्ठावीसइमे सए : तइयाइ-एक्कारस-उद्देसगा समत्ता ॥ २८। ३-११ ॥

॥ अट्ठावीसइमं पावकम्म-समज्जण-सयं समत्तं ॥

[१] जिस प्रकार 'बन्धीशतक' में उद्देशकों की परिपाटी कही है, उसी क्रम से, उसी प्रकार यहाँ भी आठों ही भंगों में जाननी चाहिए। विशेष यह है कि जिसमें जो बोल सम्भव हों, उसमें वे ही बोल यावत् अचरम उद्देशक तक कहने चाहिए। इस प्रकार ये सब ग्यारह उद्देशक (पूर्ववत्) हुए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—ग्यारह उद्देशक तक बन्धीशतक का अतिदेश—बन्धीशतक में तीसरे से लेकर ग्यारहवें उद्देशक तक जिस क्रम से जो भी प्रश्नोत्तर अंकित हुए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी तीसरे से ग्यारहवें उद्देशक तक कहना चाहिए। इतना अवश्य विवेक करना चाहिए कि जिसमें जो बोल सम्भव हो, वही कहना चाहिए, अन्य नहीं।

॥ अट्ठाईसवाँ शतक : तीसरे से ग्यारहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

॥ अट्ठाईसवाँ शतक समाप्त ॥

एगूणतीसइमं सयं : कम्मपट्ठवण-सयं

उनतीसवाँ शतक : कर्मप्रस्थापनशतक

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

जीव और चौवीस दण्डकों मे समकाल-विषमकाल की अपेक्षा पापकर्मवेदन के प्रारम्भ और अन्त का निरूपण

१. [१] जीवा ण भंते ! पाव कम्मं कि समाय पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, समाय पट्ठविंसु विसमाय निट्ठविंसु, विसमायं पट्ठविंसु समाय निट्ठविंसु; विसमाय पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु. ?

गोयमा ! अत्थेगइया समाय पट्ठविंसु, समाय निट्ठविंसु; जाव अत्थेगतिया विसमायं पट्ठविंसु, विसमाय निट्ठविंसु ।

[१-१ प्र] भगवन् ! (१) जाव पापकर्म का वेदन एक साथ प्रारम्भ करते है और एक साथ ही समाप्त करते है ? (२) अथवा एक साथ प्रारम्भ करते हैं और भिन्न-भिन्न समय मे समाप्त करते है ? या (३) भिन्न-भिन्न समय मे प्रारम्भ करते है और एक साथ समाप्त करते है ? (४) अथवा भिन्न-भिन्न समय मे प्रारम्भ करत है और भिन्न-भिन्न समय मे समाप्त करते है ?

[१-१ उ] गौतम ! कितने ही जीव (पापकर्मवेदन) एक साथ करते है और एक साथ ही समाप्त करते है यावत् कितने ही जीव विभिन्न समय मे प्रारम्भ करते और विभिन्न समय मे समाप्त करते है ।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—अत्थेगइया समायं० ?

त चेव । गोयमा ! जीवा चउव्विहा पन्नत्ता, त जहा—अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा । तत्थ ण जे ते समाउया समोववन्नगा ते ण पाव कम्मं समायं पट्ठविंसु, समायं निट्ठविंसु । तत्थ ण जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समाय पट्ठविंसु, विसमायं निट्ठविंसु । तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं विसमाय पट्ठविंसु, समायं निट्ठविंसु । तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्म विसमायं पट्ठविंसु, विसमायं निट्ठविंसु । से तेणट्ठेणं गोयमा ! ०, तं चेव ।

[१-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यों कहा कि कितने ही जीव पापकर्मों का वेदन एक साथ प्रारम्भ करते हैं और एक साथ ही समाप्त करते है, इत्यादि ?

[१-२ उ] गौतम ! जीव चार प्रकार के कहे है। यथा—(१) कई जीव समान आयु वाले है और समान (एक साथ) उत्पन्न होते है, (२) कई जीव समान आयु वाले हैं, किन्तु विषम (भिन्न-भिन्न) समय मे उत्पन्न होते है, (३) कितने ही जीव विषम आयु वाले हैं और सम (एक साथ) उत्पन्न होते हैं और (४) कितने ही जीव विषम आयु वाले हैं और विषम (भिन्न-भिन्न) समय मे उत्पन्न होते हैं। इनमे से जो (१) समान आयु वाले और समान (एक साथ) उत्पन्न होते हैं, वे पापकर्म का वेदन (भोग) एक साथ प्रारम्भ करते है और एक साथ ही समाप्त करते हैं, (२) जो समान आयु वाले हैं, किन्तु विषम समय मे उत्पन्न होते है, वे पापकर्म का वेदन एक साथ प्रारम्भ करते हैं किन्तु भिन्न-भिन्न समय मे समाप्त करते हैं, (३) जो विषम आयु वाले हैं और समान समय मे उत्पन्न होते है, वे पापकर्म का भोग (वेदन) भिन्न-भिन्न समय मे प्रारम्भ करते है और एक साथ अन्त करते है और (४) जो विषम आयु वाले है और विषम (भिन्न) समय मे उत्पन्न होते है, वे पापकर्म का वेदन भी भिन्न-भिन्न समय मे प्रारम्भ करते है और अन्त भी विभिन्न समय मे करते है, इस कारण से हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार का कथन किया है।

२. सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावं कम्मं० ?

एव चेव।

[२ प्र] भगवन् ! सलेश्यी (लेश्या वाले) जीव पापकर्म का वेदन एक काल मे (एक साथ) करते है ? इत्यादि (पूर्वोक्त प्रकार से) प्रश्न।

[२ उ.] गौतम ! इसका समाधान पूर्ववत् समझना।

३. एवं सव्वट्ठाणेसु वि जाव अणागारोवउत्ता, एते सव्वे वि पया एयाए वत्तव्वयाए भाणियव्वा।

[३] इसी प्रकार सभी स्थानो मे अनाकारोपयुक्त पर्यन्त जानना चाहिए। इन सभी पदो मे यही वक्तव्यता कहनी चाहिए।

४. नेरइया ण भंते ! पाव कम्मं किं समायं पट्ठविसु, समाय निट्ठविंसु० पुच्छा।

गोयमा ! अत्थेगइया समाय पट्ठविसु०, एव जहेव जीवाण तहेव भाणियव्वं जाव अणागारोवउत्ता।

[४ प्र] भगवन् ! क्या नैरयिक पापकर्म भोगने का प्रारम्भ एक साथ (एक काल मे) करते है और उसका अन्त भी एक साथ करते हैं ?

[४ उ] गौतम ! कई नैरयिक एक साथ पापकर्म भोगने का प्रारम्भ करते हैं और एक साथ ही उसका अन्त करते हैं, इत्यादि सब (पूर्वोक्त चतुर्भंगी का) कथन सामान्य जीवो की वक्तव्यता के समान अनाकारोपयुक्त तक नैरयिको के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

५. एवं जाव वेमाणियाण। जस्स ज अस्थि तं एएणं चेव कमेणं भाणियव्वं।

[५] इसी प्रकार (नैरयिकों से लेकर) वैमानिकों तक जिसमें जो बोल पाये जाते हों, उन्हें इसी क्रम से कहना चाहिए।

६. जहा पावेण दंडओ, एएण कमेण अट्ठसु वि कम्मप्पगडीसु अट्ठ दंडगा भाणियव्वा जीवाईया वेमाणियपज्जवसाणा। एसो नवदंडगसंगहिओ पढमो उद्देसओ भाणियव्वो।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ एगूणतीसइमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ २९-१ ॥

[६] जिस प्रकार पापकर्म के सम्बन्ध में दण्डक कहा, इसी प्रकार इसी क्रम से सामान्य जीव से लेकर वैमानिकों तक आठों कर्म-प्रकृतियों के सम्बन्ध में आठ दण्डक कहने चाहिए।

इस रीति से नौ दण्डकसहित यह प्रथम उद्देशक कहना चाहिए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—पापकर्मवेदन के प्रारम्भ और अन्त की चौभंगी का स्पष्टीकरण—पापकर्म को भोगने के प्रारम्भ और अन्त के लिए प्रस्तुत शतक में कथित चतुर्भंगी, समकाल और विषयकाल की अपेक्षा से कही गई है। यह चतुर्भंगी सम और विषम (एक काल और विभिन्न काल) तथा सम (एक काल में) उत्पत्ति और विषम (विभिन्न काल में) उत्पत्ति वाले जीवों की अपेक्षा से घटित होती है।

शंका : समाधान प्रश्न होता है कि यह चतुर्भंगी आयुकर्म की अपेक्षा तो घटित हो सकती है, किन्तु पापकर्मवेदन की अपेक्षा कैसे घटित होगी, क्योंकि पापकर्म का आयुकर्म की अपेक्षा न तो प्रारम्भ होता है और न ही उसका अन्त होता है? इसका समाधान यह है कि यहाँ कर्मों का उदय और क्षय भव की अपेक्षा से विवक्षित है। इसी अपेक्षा से आयुकर्म की समानता (समकालिक कर्मवेदन) और विषमता तथा विवक्षित आयुष्यकर्म का क्षय होने पर भव में उत्पत्ति की समता और विषमता को लेकर पापकर्मवेदन के प्रारम्भ और अन्त का कथन किया है। अतएव पापकर्मवेदन से सम्बन्धित यह चौभंगी घटित हो जाती है।[1]

कठिन शब्दार्थ—समायं—एक साथ एक काल में, **पट्ठविंसु**—प्रस्थापित हुए—प्राथमिकरूप से वेदन करना प्रारम्भ किया, **निट्ठविंसु**—निष्ठा को प्राप्त किया, अन्त—समाप्त किया।[2]

॥ उनतीसवां शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९४०-९४१

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ. ३५९८

२ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९४०

बीओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

अनन्तरोपपन्नक नैरयिकादि के पापकर्मवेदन सम्बन्धी

अनन्तरोपपन्नक चौवीस दण्डको मे ग्यारह स्थानों की अपेक्षा समकाल-विषमकाल को लेकर पापकर्मवेदन आदि की प्ररूपणा

१. [१] अणतरोववन्नगा ण भते ! नेरतिया पाव कम्म कि समाय पट्ठविसु, समायं निट्ठविसु० पुच्छा ।

गोयमा ! अत्थेगइया समाय पट्ठविसु समाय निट्ठविसु, अत्थेगइया समाय पट्ठविसु विसमाय निट्ठविसु ।

[१-१ प्र] भगवन् ! क्या अनन्तरोपपन्नक नरयिक एक काल मे (एक साथ) पापकर्म वेदन करते है तथा एक साथ ही उसका अन्त करते है ?

[१-१ उ] गौतम ! कई (अनन्तरोपपन्नक नैरयिक) पापकर्म को एक साथ (समकाल मे) भोगते हैं और एक साथ अन्त करते है तथा कितने ही एक साथ पापकर्म को भोगते है, किन्तु उसका अन्त विभिन्न समय मे करते है ।

[२] से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ अत्थेगइया समाय पट्ठविसु० त चेव ।

गोयमा ! अणतरोववन्नगा नेरतिया दुविहा पन्नत्ता, त जहा—अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा । तत्थ ण जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समाय पट्ठविसु समायं निट्ठविसु । तत्थ ण जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते ण पाव कम्म समाय पट्ठविसु विसमायं निट्ठविसु । से तेणट्ठेण० त चेव ।

[१-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा क्यो कहते है कि कई एक साथ भोगते है ? इत्यादि प्रश्न ?

[१-२ उ] गौतम ! अनन्तरोपपन्नक नैरयिक दो प्रकार के हैं । यथा—कई समकाल के आयुष्य वाले और समकाल मे ही उत्पन्न होते है तथा कतिपय समकाल के आयुष्य वाले, किन्तु पृथक्-पृथक् काल के उत्पन्न हुए होते है । उनमे से जो समकाल के आयुष्य वाले होते है तथा एक साथ उत्पन्न होते है, वे एक काल मे (एक साथ) पापकर्म के वेदन का प्रारम्भ करते है तथा उसका अन्त भी एक काल मे (एक साथ) करते है और जो समकाल के आयुष्य वाले होते हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न समय मे उत्पन्न होते है, वे पापकर्म को भोगने का प्रारम्भ तो एक साथ (एक काल मे) करते है, किन्तु उसका अन्त पृथक-पृथक् काल मे करते है, इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है ।

२. सलेस्सा णं भंते ! प्रणंतरोववन्नगा नेरतिया पावं० ? एवं चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या लेश्या वाले (सलेश्यी) अनन्तरोपपन्नक नैरयिक पापकर्म को भोगने का प्रारम्भ एक काल मे करते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् समग्र प्रश्न ।

[२ उ] गौतम ! इस विषय मे सारा कथन पूर्ववत् समझना ।

३ एवं जाव प्रणागारोवयुत्ता ।

[३] इसी प्रकार की वक्तव्यता अनाकारोपयुक्त तक समझना चाहिए ।

४. एवं प्रसुरकुमारा वि, एव जाव वेमाणिया ।

[४] असुरकुमारो से लेकर वैमानिको तक भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

५. नवरं जं जस्स प्रत्थि तं तस्स भाणितव्व ।

[५] विशेष यह है कि जिसमे जो बोल पाया जाता हो, वही कहना चाहिए ।

६ एव नाणावरणिज्जेण वि दंडग्रो ।

[६] इसी प्रकार ज्ञानावरणीयकर्म के सम्बन्ध मे भी दण्डक कहना चाहिए ।

७. एव निरवसेस जाव अंतराइएण ।

सेव भंते ! सेव भते ! त्ति जाव विहरइ ।

।। एगूणतीसइमे सए : बीम्रो उद्देसम्रो समत्तो ।। २९-२।।

[७] और इसी प्रकार अन्तरायकर्म तक समग्र पाठ कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

विवेचन अनन्तरोपपन्नक, समोपपन्नक, समायुष्क और विषमोपपन्नक के विशेषार्थ – आयुष्य के उदय के प्रथम समयवर्ती (तुरत उत्पन्न हुए) जीव **'अनन्तरोपपन्नक'** कहलाते हैं । उनके आयुष्य का उदय समकाल मे ही होता है अन्यथा उनका अनन्तरोपपन्नकत्व ही नही रह सकता । मरण के पश्चात् परभव की उत्पत्ति की अपेक्षा **'समोपपन्नक'** कहलाते हैं तथा मरणकाल मे भूतपूर्व गति की अपेक्षा से भी वे जीव अनन्तरोपपन्नक होते है । इस प्रकार यह **प्रथम भग बनता है ।**

दूसरे भगवर्ती जीवो का समकाल मे आयु का उदय होने से वे समायुष्क कहलाते हैं तथा मरणसमय की विषमता (विभिन्न काल मे मृत्यु) के कारण वे **'विषमोपपन्नक'** कहलाते हैं । इस प्रकार यह दूसरा भग बनता है ।

ये अनन्तरोपपन्नक है, इसलिए इनमे विषमायु-सम्बन्धी तृतीय और चतुर्थ भग घटित नही होता ।[1]

।। उनतीसवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

१. (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९४१
   (ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भाग ७, पृ ३६००

तइयाइ-एक्कारसम-पज्जंता उद्देसगा

तीसरे से ग्यारहवें उद्देशक तक

छब्वीसवें शतक के तीसरे से ग्यारहवे उद्देशकानुसार सम-विषम-कर्मप्रारम्भ एवं कर्मान्त का निरूपण

१. एव एतेण गमएण जच्चेव बंधिसए उद्देसग-परिवाडी सच्चेव इह वि भाणियव्वा जाव अचरिमोत्ति। अणतर-उद्देसगाणं चउण्ह वि एक्का वत्तव्वया, सेसाण सत्तण्ह एक्का।

॥ एगूणतीसइमे सए : तइयाइ-एक्कारसम-पज्जता उद्देसगा समत्ता ॥ २९-३-११ ॥

॥ एगूणतीसइमं कम्म-पट्ठवणसय समत्तं ॥ २९ ॥

[१] बन्धीशतक (२६ वे शतक) मे उद्देशको की जो परिपाटी कही है, यहाँ भी इस पाठ से समग्र उद्देशको की वह परिपाटी यावत् अचरमोद्देशक पर्यन्त कहनी चाहिए। अनन्तर सम्बन्धी चार उद्देशको की एक वक्तव्यता और शेष सात उद्देशको की एक वक्तव्यता कहनी चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! इस इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—दो प्रकार की वक्तव्यताओ का अतिदेश—यहाँ दो प्रकार की वक्तव्यताओ का अतिदेश किया गया है। अनन्तरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ, अनन्तराहारक और अनन्तरपर्याप्तक, इन चार उद्देशको की वक्तव्यता एक समान है और वह बन्धीशतक अनन्तरसम्बन्धी चार उद्देशको के समान कहनी चाहिए। शेष जो सात उद्देशक है, उनकी वक्तव्यता भी समान है और वह २६वे शतक मे उक्त वक्तव्यतानुसार कहनी चाहिए।[1]

॥ उनतीसवाँ शतक तीसरे से ग्यारहवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

॥ उनतीसवाँ : कर्मप्रस्थापनशतक समाप्त ॥

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९४२

तीसइमं सयं : तीसवाँ शतक

प्राथमिक

- भगवतीसूत्र का यह तीसवाँ समवसरणशतक है। यहाँ समवसरण का अर्थ 'तीर्थकर भगवान् की धर्मसभा' नही, किन्तु कथचित् समानता के कारण विभिन्न परिणाम वाले जीवो का एकत्र अवतरण समवसरण है। वास्तव मे प्रस्तुत शतक मे विभिन्न मतो या दर्शनो के अर्थ मे समवसरण शब्द प्रयुक्त किया गया है।
- प्राचीनकाल मे भारतवर्ष मे विभिन्न मत, वाद, दर्शन, मान्यता या परम्पराएँ प्रचलित थी। परस्पर सहिष्णुता और समन्वयदृष्टि न होने के कारण विभिन्न दर्शन एव मत के अनुगामियो का सघर्ष हो जाता था। वह राग-द्वेषवर्द्धक या कषायवर्द्धक बन जाता था। उससे सत्य की तह मे पहुंचने की अपेक्षा विभिन्न मतवादी कलह, विवाद और ईर्ष्या की आग भडकाते रहते थे। श्रमण भगवान् महावीर अनेकान्तदृष्टि से अथवा सापेक्षदृष्टि से विभिन्न मतो और वादो मे निहित सत्य को ग्रहण करते थे। उनका उपदेश भी यही था कि प्रत्येक वस्तु को विभिन्न पहलुओ से जाचो-परखो और एकान्तवाद, हठाग्रह या पूर्वाग्रह छोडकर सत्य को पकडो। इससे रागद्वेष या कषाय का भी शमन होगा, आत्मिक शान्ति का प्रादुर्भाव होगा और समता की साधना मे तेजस्विता आएगी।
- इसी दृष्टिकोण से श्रमण भगवान् महावीर ने 'समवसरण' का प्रतिपादन इस शतक मे किया है।
- समवसरण के वैसे तो अनेक भेद हो सकते है, परन्तु भगवान् महावीर ने यहाँ मुख्यतया चार भेद किये है—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी।
- ऐसा प्रतीत होता है कि श्रमण भगवान् महावीर के युग मे जो-जो मत या वाद प्रचलित थे, उन सबका पूर्वोक्त चार प्रकारो मे समावेश किया गया है। यथा—आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म आदि के अस्तित्व को मानने वाले सभी दर्शन क्रियावादियो मे परिगणित किये जा सकते हैं, उसी प्रकार आत्मा को न मानने वाले चार्वाक या उसे क्षणिक मानने वाले बौद्ध आदि दर्शन अक्रियावादी कहे जा सकते हैं।
- सूत्रकृताग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के बारहवे समवसरण अध्ययन मे इन मतो का सक्षिप्त वर्णन है। आचाराग-सूत्र (अ १ उ १) की शीलाकाचार्यवृत्ति मे उनके भेद-प्रभेदो का वर्णन है। परन्तु उस पर से यह स्पष्ट नही जाना जा सकता कि उन सबकी क्या मान्यता थी ?
- प्राय: आगमो मे अनेक स्थलो पर इन चारो वादियो को एकान्तवादी होने से मिथ्यादृष्टि कहा है। क्रियावादी एकान्तरूप से जीवादि पदार्थो के अस्तित्व को ही मानते है, अक्रियावादी इनका अस्तित्व ही नही मानते, अज्ञानवादी अज्ञान को एव विनयवादी विनय को ही एकान्त

रूप से श्रेयस्कर मानते हैं, इसलिए मिथ्यादृष्टि हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रकरण मे क्रियावादी को सम्यग्दृष्टि माना है। अक्रियावादी, विनयवादी एव अज्ञानवादी दोनो ही प्रकार के माने गए हैं। किन्तु अज्ञानवादी एव विनयवादी प्राय मिथ्यादृष्टि है।

- इस शतक मे ग्यारह उद्देशक है। प्रथम उद्देशक मे समवसरण के क्रियावादी आदि चार भेद तथा पूर्वोक्त ग्यारह स्थानो से विशेषित चौवीस दण्डकवर्ती जीवो म क्रियावादित्व आदि की प्ररूपणा की गई है।
- इसके पश्चात् क्रियावादी आदि चारो ही प्रकार के जीवो के आयुष्यबन्ध का कथन किया गया है।
- तृतीय दण्डक मे क्रियावादी आदि औघिक तथा विशेषणयुक्त जीवो के भव्यत्व-अभव्यत्व का निर्णय किया गया है।
- द्वितीय उद्देशक के अनन्तरोपपन्नक नैरयिक आदि के क्रियावादित्व-अक्रियावादित्व की चर्चा की गई है। साथ ही इनके आयुष्यबन्ध तथा भव्याभव्यत्व की भी चर्चा पूर्ववत् की गई है।
- तृतीय उद्देशक मे परम्परोपपन्नक नैरयिक आदि के क्रियावादित्व-अक्रियावादित्व की चर्चा की गई है। साथ ही आयुष्यबन्ध तथा भव्याभव्यत्व की चर्चा भी पूर्ववत् की गई है।
- चौथे से ग्यारहवे उद्देशक मे छव्वीसवे शतक के अतिदेशपूर्वक क्रमश ८ उद्देशको की प्ररूपणा की गई है।

  क्रम इस प्रकार है—अनन्तरावगाढ, परम्परावगाढ, अनन्तराहारक, परम्पराहारक, अनन्तर-पर्याप्तक, परम्पर-पर्याप्तक, चरम और अचरम।
- कुल मिलाकर ग्यारह उद्देशको के द्वारा विभिन्न पहलुओ से क्रियावादी आदि का सागोपाग निरूपण किया गया है।

तीसइमं सयं : समवसरण-सयं

तीसवाँ शतक : समवसरण-शतक

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

समवसरण और उसके चार भेद

१ कति णं भंते ! समोसरणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि समोसरणा पन्नत्ता, तं जहा—किरियावादी अकिरियावादी अन्नाणियवादी वेणइयवादी ।

[१ प्र.] भगवन् ! समवसरण कितने कहे हैं ?

[१ उ.] गौतम ! समवसरण चार कहे हैं। यथा—१ क्रियावादी, २ अक्रियावादी, ३ अज्ञानवादी और ४ विनयवादी ।

विवेचन—समवसरण का स्वरूप—कथञ्चित् तुल्यता के कारण नाना परिणाम वाले जीव जिसमें (जिस विषय में) रहते हैं—समवसृत (जहाँ एकत्रित) होते हैं, उसे अर्थात्—भिन्न-भिन्न मतों या दर्शनों को समवसरण कहते हैं। अथवा परस्पर भिन्न क्रियावाद आदि मतों में, कथञ्चित् समानता होने से कहीं-कहीं वादियों का अवतरण समवसरण कहलाता है।[1]

समवसरण के चार भेद हैं—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी। इन मतों के सम्बन्ध में विस्तृत तथ्य प्राप्त नहीं होते।[2]

क्रियावादी आदि की पुरातन और प्रस्तुत व्याख्या—(१) क्रियावादी—कर्ता के बिना क्रिया सम्भव नहीं। इसलिए क्रिया का जो कर्ता—आत्मा है, उसके अस्तित्व को मानने वाले **क्रियावादी**

---

१ भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९४४

(१) समवसरन्ति नानापरिणामा जीवा कथञ्चित्तुल्यतया येषु मतेषु तानि समवसरणानि।

(२) समवसृतयो वाऽन्योऽन्यभिन्नेषु क्रियावादादिमतेषु कथञ्चित्तुल्यत्वेन क्वचित् केषाचित् वादिनामवतारा समवसरणानि ।

२ (क) श्रीमद् भगवतीसूत्र, चतुर्थखण्ड (गुजराती-अनुवाद), पृ. ३०२

(ख) आचारांगवृत्ति अ. १, उ. १, पत्र १६

है । अथवा क्रिया ही प्रधान है, ज्ञान की कोई आवश्यकता नही है, ऐसी क्रिया-प्राधान्य की मान्यता वाले **क्रियावादी** कहलाते है । तीसरी व्याख्या के अनुसार एकान्तरूप से जो जीव, अजीव आदि पदार्थों के अस्तित्व को मानते हैं, वे **क्रियावादी** है । इनके १८० भेद है । यथा—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, सवर, निर्जरा और मोक्ष, इन नौ पदो के स्व और पर के भेद से अठारह भेद होते हैं । इन १८ भेदो के नित्य और अनित्य रूप से ३६ भेद होते है । इनमे से प्रत्येक के काल, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा को अपेक्षा पाच-पाच भेद करने से १८० भेद होते है । यथा—जीव स्व-स्वरूप से काल की अपेक्षा नित्य भी है और अनित्य भी है । जीव पररूप से काल की अपेक्षा नित्य भी है और अनित्य भी है । इस प्रकार काल की अपेक्षा से ४ भेद होते है । इसी प्रकार नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा की अपेक्षा भी जीव के चार-चार भेद होते हैं । इस प्रकार जीव आदि नौ तत्त्वो के प्रत्येक के बीस-बीस भेद होने से कुल १८० भेद हुए ।

(२) **अक्रियावादी**—इसकी भी अनेक व्याख्याएँ है । यथा—(१) किसी भी अनवस्थित पदार्थ मे क्रिया नही होती । यदि पदार्थ मे क्रिया हो तो उसकी अनवस्थिति नही होगी । इस प्रकार पदार्थो को अनवस्थित मान कर उनमे क्रिया का अभाव मानने वाले **अक्रियावादी** है । (२) अथवा क्रिया की क्या आवश्यकता है ? केवल चित्त की शुद्धि चाहिए । ऐसी मान्यता वाले (बौद्ध आदि) अक्रियावादी कहलाते है । (३) अथवा जीवादि के अस्तित्व को न मानने वाले अक्रियावादी कहलाते हैं । इनके ८४ भेद है । यथा—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष, इन सात तत्त्वो के स्व और पर के भेद से चौदह भेद होते है । काल, यदृच्छा, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा, इन ६ की अपेक्षा पूर्वोक्त १४ भेदो का वर्णन करने से १४ × ६ = ८४ भेद होते है । जैसे कि—जीव स्वत काल से नही है, जीव परत काल से नही है । इस प्रकार काल की अपेक्षा जीव के दो भेद होते हैं, इसी प्रकार यदृच्छा, नियति आदि की अपेक्षा मे भी जीव के दो-दो भेद होने से कुल बारह भेद जीव के हुए । जीव के समान शेष ६ तत्त्वो के भी बारह-बारह भेद होते है । यो कुल १२ × ७ = ८४ भेद हुए ।

(३) **अज्ञानवादी**—जीवादि अतीन्द्रिय पदार्थो को जानने वाला कोई नही है और न ही उनके जानने से कुछ प्रयोजन सिद्ध होता है । इसके अतिरिक्त ज्ञानी और अज्ञानी—दोनो का समान अपराध होने पर ज्ञानी का दोष अधिक माना जाता है, अज्ञानी का कम । इसलिए अज्ञान ही श्रेयस्कर है । इस प्रकार की मान्यता वाले **अज्ञानवादी** कहलाते है । इनके ६७ भेद है । यथा—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, सवर, निर्जरा और मोक्ष, इन नौ तत्त्वो के सत्, असत्, सदसत्, अवक्तव्य, सद्-अवक्तव्य, असद्-अवक्तव्य और सद्-असद्-अवक्तव्य इन सात से गुणन करने पर ९ × ७ = ६३ भेद होते है । उत्पत्ति के सद्, असद्, सदसत् और अवक्तव्य की अपेक्षा से चार भेद होते हैं । जैसे कि—सत् जीव की उत्पत्ति होती है, यह कौन जानता है ? और इसके जानने से क्या लाभ है ? इत्यादि ।

(४) **विनयवादी**—स्वर्ग, अपवर्ग आदि श्रेय का कारण विनय है । इसलिए विनय ही श्रेष्ठ है । इस प्रकार विनय को ही एकान्तरूप से मानने वाले विनयवादी कहलाते हैं । इन विनयवादियो का कोई लिंग (वेष या चिह्न), आचार या शास्त्र नही होता । इसके बत्तीस भेद हैं । यथा—देव,

राजा, यति, ज्ञाति, स्थविर, अधम, माता और पिता, इन आठो का मन, वचन, काय और दान, इन चार प्रकार से विनय करना चाहिए। यो ८ को ४ से गुणा करने पर ३२ भेद हुए।[1]

चारो वादी मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्दृष्टि ?—प्राय शास्त्रो मे अनेक स्थलो पर इन चारो वादियो को मिथ्यादृष्टि कहा है।

क्रियावादी जीवादि पदार्थों के अस्तित्व को ही मानते हैं। इस प्रकार एकान्त अस्तित्व को मानने से इनके मत मे पररूप की अपेक्षा से नास्तित्व नही माना जाता। पररूप की अपेक्षा से वस्तु मे नास्तित्व न मानने से वस्तु मे स्वरूप के समान पररूप का भी अस्तित्व रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु मे सभी वस्तुओ का अस्तित्व रहने से एक ही वस्तु सर्वरूप हो जाएगी, जो कि प्रत्यक्ष-बाधित है। इस प्रकार क्रियावादियो का मत मिथ्यात्वपूर्ण है।

अक्रियावादी जीवादि पदार्थों का अस्तित्व नही मानते, इस कारण वे असद्भूत अर्थ का प्रतिपादन करते है। जीव के अस्तित्व का एकान्तरूप से निषेध करने के कारण वे भी मिथ्यादृष्टि है। जीव के अस्तित्व का निषेध करने से उनके मतानुसार निषेधकर्ता का भी अभाव सिद्ध होता है, जो प्रत्यक्ष-बाधित है। निषेधकर्ता का अभाव हो जाने मे सभी का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

अज्ञानवादी—अज्ञान को ही श्रेयस्कर मानते है। इसलिए वे भी मिथ्यादृष्टि है और उनका कथन स्ववचन-बाधित है। क्योकि 'अज्ञान ही श्रेयस्कर है' इस बात को वे बिना ज्ञान के कैसे जान सकते है और ज्ञान के अभाव मे वे अपने मत का समर्थन भी कैसे कर सकते हैं? इस प्रकार अज्ञान को श्रेयस्कर मानने पर भी उन्हे ज्ञान का आश्रय लेना ही पडता है।

विनयवादी -विनय से ही स्वर्ग और मोक्ष आदि कल्याण को पाने की इच्छा रखने वाले विनयवादी मिथ्यादृष्टि है, क्योकि ज्ञान और क्रिया दोनो से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, अकेले ज्ञान से या अकेली क्रिया से नही। ज्ञान को छोड कर एकान्तरूप से क्रिया के केवल एक अग का आश्रय लेने से वे सत्यमार्ग से दूर है। इस प्रकार से चारो वादी मिथ्यादृष्टि है। यह मत अन्य शास्त्रो मे प्रतिपादित है।

परन्तु प्रस्तुत शतक (तीसवे) मे उपर्युक्त क्रियावादी का ग्रहण नही किया गया है। यहाँ 'क्रियावादी' शब्द से सम्यग्दृष्टि का ग्रहण किया गया है, जो जीव-अजीव आदि का अस्तित्व मानने के साथ-साथ आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग, नरक, पुण्य-पाप आदि के अस्तित्व को दृढतापूर्वक मानते है। सर्वज्ञवचनो पर श्रद्धा रख कर चलते है।[2]

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९४४
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७ पृ ३३०७
(ग) **अत्थित्ति किरियवाई वयंति, नत्थित्तिऽकिरयवाईओ।**
अन्नाणिय अन्नाण, वेणइया विणयवायंति ॥ १ ॥ --भ अ वृ प ९४४

२ (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३६०८
(ख) एते च सर्वेऽप्यन्यत्र यद्यपि मिथ्यादृष्टयोऽभिहितास्तथाऽपीहाद्या सम्यग्दृष्टयो ग्राह्या, सम्यगस्तित्ववादिनामेव तेषा समाश्रयणात्।—भगवती अ वृ पत्र, ९४४
(ग) विशेष जानकारी के लिये देखिये—आचाराग वृत्ति अ १, उ १, पत्र १६

जीवों की ग्यारह स्थानो द्वारा क्रियावादिता आदि प्ररूपणा

२ जीवा ण भंते ! किं किरियावादी, अकिरियावादी, अन्नाणियवादी, वेणइयवादी ?

गोयमा ! जीवा किरियावादी वि, अकिरियावादी वि, अन्नाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

[२ प्र.] भगवन् ! जीव क्रियावादी है, अक्रियावादी है, अज्ञानवादी है अथवा विनयवादी हैं ?

[२ उ.] गौतम ! जीव क्रियावादी भी है, अक्रियावादी भी ह, अज्ञानवादी भी है और विनयवादी भी है।

३. सलेस्सा ण भते ! जीवा कि किरियावादी० पुच्छा।

गोयमा ! किरियावादी वि जाव वेणइयवादी वि।

[३ प्र.] भगवन् ! सलेश्य (लेश्यावाले) जीव क्रियावादी भी है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[३ उ.] गौतम ! सलेश्य जीव क्रियावादी भी है यावत् विनयवादी भी है।

४. एव जाव सुक्कलेस्सा।

[४] इस प्रकार (कृष्णलेश्या वाले से लेकर) शुक्ललेश्या वाले जीव पर्यन्त जानना।

५ अलेस्सा ण भते ! जीवा० पुच्छा।

गोयमा ! किरियावादी, नो अकिरियावादी, नो अन्नाणियवादी, नो वेणइयवादी।

[५ प्र.] भगवन् ! अलेश्य जीव क्रियावादी है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[५ उ.] गौतम ! वे क्रियावादी है, किन्तु अक्रियावादी, अज्ञानवादी या विनयवादी नही है।

६. कण्हपक्खिया ण भते ! जीवा कि किरियावादी० पुच्छा।

गोयमा ! नो किरियावादी, अकिरियावादी वि, अन्नाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

[६ प्र.] भगवन् ! कृष्णपाक्षिक जीव क्रियावादी है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[६ उ.] गौतम ! कृष्णपाक्षिक जीव क्रियावादी नही है, अपितु अक्रियावादी है, अज्ञानवादी भी हैं और विनयवादी भी हैं।

७. सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा।

[७] शुक्लपाक्षिक जीवो (का कथन) सलेश्य जीवो के समान जानना चाहिए।

८. सम्मद्दिट्ठी जहा अलेस्सा।

[८] सम्यग्दृष्टि जीव, अलेश्य जीव के समान है।

९. मिच्छादिट्ठी जहा कण्हपक्खिया।

[९] मिथ्यादृष्टि जीव, कृष्णपाक्षिक जीवो के समान है।

१० सम्मामिच्छद्दिट्ठी ण० पुच्छा।

गोयमा ! नो किरियावादी, नो अकिरियावादी, अन्नाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

[१० प्र] भगवन् ! सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि जीव क्रियावादी है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१० उ] गौतम ! वे न तो क्रियावादी हैं और न ही अक्रियावादी है, किन्तु वे अज्ञानवादो हैं और विनयवादी भी हैं।

११ णाणी जाव केवलनाणी जहा अलेस्सा ।

[११] ज्ञानी (से लेकर) यावत् केवलज्ञानी जीव, अलेश्य जीवो के तुल्य है।

१२. अण्णाणी जाव विभगनाणी जहा कण्हपक्खिया ।

[१२] अज्ञानी (से लेकर) यावत् विभगज्ञानी जीव, कृष्णपाक्षिक जीवो के समान हैं।

१३. आहारसन्नोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता जहा सलेस्सा ।

[१३] आहारसज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त जीव सलेश्य जीवो के समान है।

१४ नोसण्णोवउत्ता जहा अलेस्सा ।

[१४] नोसज्ञोपयुक्त जीवो का कथन अलेश्य जीवो के समान है।

१५ सवेयगा जाव नपुंसगवेयगा जहा सलेस्सा ।

[१५] सवेदी (से लेकर) नपुसकवेदा जीव तक सलेश्य जीवो के सदृश है।

१६. अवेयगा जहा अलेस्सा ।

[१६] अवेदी जीवो का कथन अलेश्य जीवो के तुल्य है।

१७. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा ।

[१७] सकषायी (से लेकर) यावत् लोभकषायी जीवो का कथन सलेश्य जीवो के समान है।

१८. अकसायी जहा अलेस्सा ।

[१८] अकषायी जीवो का कथन अलेश्य जीवो के सदृश है।

१९. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा ।

[१९] सयोगी (से लेकर) काययोगी पर्यन्त जीवो का कथन सलेश्य जीवो के समान है।

२०. अजोगी जहा अलेस्सा ।

[२०] अयोगी जीव, अलेश्य जीवो के समान है।

२१. सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता य जहा सलेस्सा ।

[२१] साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त जीव, सलेश्य जीवो के तुल्य हैं।

विवेचन—क्रियावादी आदि चारों मे से कौन क्या है ? क्रियावादी का अर्थ सम्यग्दृष्टि होने से यहाँ उन्हे अलेश्य जीवो के समान बताया है। अलेश्य जीव अयोगी (मन-वचन-काया के योगो से रहित) एव सिद्ध होता है। वे क्रियावाद के कारणभूत द्रव्य और पर्याय के यथार्थ ज्ञान से युक्त होने

से क्रियावादी है। यही कारण है कि सम्यग्दृष्टि के योग्य अलेश्य, सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी यावत् केवलज्ञानी, नोसंज्ञोपयुक्त, अवेदी, अकषायी और अयोगी को यहाँ क्रियावादी कहा है तथा मिथ्यादृष्टि के योग्य कृष्णपाक्षिक, मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी, यावत् विभंगज्ञानी आदि स्थानों का अक्रियावाद आदि तीन समवसरणो मे समावेश किया गया है। मिश्रदृष्टि साधारण परिणाम वाला होने से उसकी गणना न तो क्रियावादी (आस्तिक) मे होती है और न ही अक्रियावादी (नास्तिक) मे, किन्तु वे अज्ञानवादी और विनयवादी ही होते है। इनके अतिरिक्त शेष सबकी गणना (मिश्रदृष्टि वाले को छोड कर) तीनो समवसरणो मे होती है।[1]

चौबीस दण्डकों में ग्यारह स्थानो द्वारा क्रियावादादिसमवसरण-प्ररूपणा

२२. नेरइया ण भंते ! कि किरियावादी० पुच्छा।

गोयमा ! किरियावादी वि जाव वेणइयवादी वि।

[२२ प्र] भगवन् ! नैरयिक क्रियावादी है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[२२ उ] गौतम ! वे क्रियावादी भी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी भी होते हैं।

२३ सलेस्सा णं भंते ! नेरइया कि किरियावादी० ?

एव चेव।

[२३ प्र] भगवन् ! सलेश्य नैरयिक क्रियावादी होते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् समग्र प्रश्न।

[२३ उ] गौतम ! वे क्रियावादी भी यावत् विनयवादी भी हैं।

२४ एव जाव काउलेस्सा।

[२४] इसी प्रकार कापोतलेश्य नैरयिको तक पूर्ववत् जानना चाहिए।

२५. कण्हपक्खिया किरियाविवज्जिया।

[२५] कृष्णपाक्षिक नैरयिक क्रियावादी नही है।

२६. एव एएण कमेण जहेव जच्चेव जीवाण वत्तव्वया सच्चेव नेरइयाण वि जाव अणागारोवउत्ता, नवर ज अत्थि त भाणियव्वं, सेस न भण्णति।

[२६] इसी प्रकार और इसी क्रम से जिस प्रकार सामान्य जीवो के सम्बन्ध मे वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार और उसी क्रम से यहाँ भी अनाकारोपयुक्त तक वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि जिसके जो हो, वही कहना चाहिए, शेष (न हो उसे) नही कहना चाहिए।

२७. जहा नेरतिया एव जाव थणियकुमारा।

[२७] जिस प्रकार नैरयिको का कथन किया है, उसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कथन करना चाहिए।

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९४४
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७ पृ ३६०९

२८. पुढविकाइया णं भंते ! किं किरियावादी० पुच्छा।

गोयमा ! नो किरियावादी, अकिरियावादी वि अन्नाणियवादी वि, वेणइयवादी । एवं पुढविकाइयाणं जं अत्थि तत्थ सव्वत्थ वि एयाइं दो मज्झिल्लाइं समोसरणाइं जाव अणागारोवउत्त त्ति।

[२८ प्र] भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक क्रियावादी होते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[२८ उ] गौतम ! वे क्रियावादी नही है, वे अक्रियावादी भी हैं, अज्ञानवादी भी हैं, किन्तु वे विनयवादी नही हैं।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक आदि जीवो मे जो पद सभवित हो, उन सभी पदो मे (इन चारो मे से) जो दो मध्यम समवसरण (अक्रियावादी और अज्ञानवादी) है, ये ही अनाकारोपयुक्त पृथ्वीकायिक पर्यन्त होते हैं।

२९. एव जाव चउरिंदियाण, सव्वट्ठाणेसु एयाइं चेव मज्झिल्लगाइं दो समोसरणाइं। सम्मत्त-नाणेहि वि एयाणि चेव मज्झिल्लगाइं दो समोसरणाइं।

[२९] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो तक सभी पदो मे मध्य के दो समवसरण होते है। इनके सम्यक्त्व और ज्ञान मे भी ये दो मध्यम समवसरण जानने चाहिए।

३०. पचेंदियतिरिक्खजोणिया जहा जीवा, नवरं ज अत्थि तं भाणियव्वं।

[३०] पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो का कथन औघिक जीवो के समान है, किन्तु इनमे भी जिसके जो पद हो, वे कहने चाहिए।

३१. मणुस्सा जहा जीवा तहेव निरवसेसं।

[३१] मनुष्यो का समग्र कथन औघिक जीवो के सदृश है।

३२. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

[३२] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जीवो का कथन असुरकुमारो के समान जानना चाहिए।

विवेचन -स्पष्टीकरण (१) पृथ्वीकायिक आदि जीव मिथ्यादृष्टि होने से वे अक्रियावादी और अज्ञानवादी होते हैं। यद्यपि उनमे वचन (वाणी) का अभाव होने से वाद नही होता, तथापि उस-उस वाद के योग्य परिणाम होने से वे अक्रियावादी और अज्ञानवादी कहे गए है। उनमे विनय-वाद के योग्य परिणाम न होने से वे विनयवादी नही होते।

(२) पृथ्वीकायिकादि के योग्य सलेश्यत्व, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या और तेजोलेश्या तथा कृष्णपाक्षिकत्वादि जो स्थान हैं, उन सभी मे अक्रियावादी और अज्ञानवादी समवसरण होते हैं। इस प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए किन्तु यहाँ इतना समझना आवश्यक है कि क्रियावाद और विनयवाद विशिष्ट सम्यक्त्वादि परिणाम के सद्भाव मे होते है। इसलिए यद्यपि द्वीन्द्रिय आदि जीवों मे सास्वादनगुणस्थान की प्राप्ति के समय सम्यक्त्व और ज्ञान का अश होने से उनमे क्रियावादिता युक्तियुक्त है, तथापि वे क्रियावादी और विनयवादी नही कहलाते।

(३) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे अलेश्यत्व, अकषायत्व आदि की पृच्छा नही करनी चाहिए, क्योंकि ये स्थान इनमे नहीं होते। अन्य सब बाते स्पष्ट हैं।[1]

क्रियावादादि चतुर्विध समवसरणगत जीवों की ग्यारह स्थानों में आयुष्यबन्ध-प्ररूपणा

३३. [१] किरियावादी णं भंते ! जीवा किं नेरतियाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, देवाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! नो नेरतियाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति।

[३३-१ प्र.] भगवन् ! क्रियावादी जीव नारकायु बांधते है। तिर्यञ्चायु बांधते है, मनुष्यायु बांधते हैं अथवा देवायु बांधते है ?

[३३-१ उ.] गौतम ! क्रियावादी जीव नैरयिक और तिर्यञ्चयोनिक का आयुष्य नही बांधते, किन्तु मनुष्यायु और देवायु बांधते है।

[२] जति देवाउयं पकरेति किं भवणवासिदेवाउयं पकरेंति, जाव वेमाणियदेवाउयं पकरेंति ?

गोयमा ! भवणवासिदेवाउयं पकरेंति, नो वाणमंतरदेवाउयं पकरेंति, नो जोतिसियदेवाउयं पकरेंति, वेमाणियदेवाउयं पकरेति।

[३३-२ प्र.] भगवन् ! यदि क्रियावादी जीव देवायुष्य बांधते हैं तो क्या वे भवनवासी-देवायुष्य बांधते है, वाणव्यन्तर-देवायुष्य बांधते हैं, ज्योतिष्क-देवायुष्य बांधते हैं अथवा वैमानिक-देवायुष्य बांधते है ?

[३३-२ उ.] गौतम ! वे न तो भवनवासी-देवायुष्य बांधते है, न वाणव्यन्तर-देवायुष्य बांधते है और न ही ज्योतिष्क-देवायुष्य बांधते है, किन्तु वैमानिक-देवायुष्य बांधते हैं।

३४. अकिरियावाई णं भंते ! जीवा किं नेरतियाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउय० पुच्छा।

गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेंति, जाव देवाउयं पि पकरेंति।

[३४ प्र.] भगवन् ! अक्रियावादि जीव नैरयिकायुष्य बांधते है, तिर्यञ्चायुष्य बांधते है, मनुष्यायुष्य बांधते हैं, अथवा देवायुष्य बांधते है ?

[३४ उ.] गौतम ! वे नैरयिकायुष्य भी बांधते है, तिर्यञ्चायुष्य भी बांधते है, मनुष्यायुष्य भी बांधते है और देवायुष्य भी।

३५. एवं अन्नाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

[३५] इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी जीवो के आयुष्य-बन्ध के विषय मे भी समझना चाहिए।

---

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९४५
(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन), भा. ७, पृ. ३६०९

३६. सलेस्सा ण भंते ! जीवा किरियावादी किं नेरतियाउयं पकरेंति० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरइयाउय०, एव जहेव जीवा तहेव सलेस्सा वि चउहि वि समोसरणेहिं भाणियव्वा।

[३६ प्र] भगवन् ! क्या सलेश्य क्रियावादी जीव नैरयिकायुष्य बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[३६ उ] गौतम ! वे नैरयिकायुष्य नही बाधते इत्यादि सब औघिक जीव (के आयुष्यबन्ध-कथन) के समान सलेश्य मे चारो समवसरणो का (आयुष्यबन्ध) कथन करना चाहिए।

३७ कण्हलेस्सा ण भते ! जीवा किरियावादी कि नेरइयाउय पकरेंति० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरइयाउय पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउय पकरेंति, मणुस्साउय पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति।

[३७ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्यी क्रियावादी जीव, नैरयिक का आयुष्य बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[३७ उ] गौतम ! वे नैरयिकायुष्य, तिर्यञ्चायुष्य और देवायुष्य नही बाधते, किन्तु मनुष्यायुष्य बाधते है।

३८. अकिरिया-अन्नाणिय-वेणइयवादी चत्तारि वि आउयाइ पकरेंति।

[३८] कृष्णलेश्यी अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी जीव, नैरयिक आदि चारो प्रकार का आयुष्य बाधते है।

३९. एव नीललेस्सा काउलेस्सा वि।

[३९] इसी प्रकार नीललेश्यी और कापोतलेश्यी क्रियावादी, (अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी जीवो के आयुष्यबन्ध) के विषय मे भी जानना चाहिए।

४०. [१] तेउलेस्सा ण भते ! जीवा किरियावादी कि नेरइयाउयं पकरेंति० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरतियाउय पकरेति, नो तिरिक्खजोणि०, मणुस्साउय पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति।

[४०-१ प्र] भगवन् ! क्या तेजोलेश्यी क्रियावादी जीव नैरयिकायुष्य बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[४०-१ उ] गौतम ! वे नैरयिकायुष्य एव तिर्यञ्चायुष्य नही बाधते, किन्तु मनुष्यायुष्य बाधते है और देवायुष्य भी बाधते है।

[२] जइ देवाउय पकरेंति०।

तहेव।

[४०-२ प्र] भगवन् ! यदि वे (तेजोलेश्यी क्रियावादी जीव) देवायुष्य बाधते है तो क्या भवनवासी-देवायुष्य बाधते है, यावत् वैमानिक देवायुष्य बाधते है ?

[४०-२ उ] पूर्ववत् आयुष्यबन्ध करते है।

४१. तेउलेस्सा णं भंते ! जीवा अकिरियावादी किं नेरइयाउयं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो नेरतियाउय पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउय पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति ।

[४१ प्र.] भगवन् ! तेजोलेश्यी अक्रियावादी जीव नैरयिकायुष्य बाधते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[४१ उ.] गौतम ! वे नैरयिकायुष्य नही बाधते, किन्तु तिर्यञ्चायुष्य बाधते हैं, मनुष्यायुष्य और देवायुष्य भी बाधते है ।

४२. एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवादी वि ।

[४२] इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी के आयुष्य-बन्ध के विषय मे जानना चाहिए ।

४३. जहा तेउलेस्सा एवं पम्हलेस्सा वि, सुक्कलेस्सा वि नेयव्वा ।

[४३] जिस प्रकार तेजोलेश्यी के आयुष्य-बन्ध का कथन किया, उसी प्रकार पद्मलेश्यी और शुक्ललेश्यी के आयुष्यबन्ध के विषय मे जानना चाहिए ।

४४. अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं णेरतियाउय० पुच्छा ।

गोयमा ! नो नेरतियाउयं पकरेंति, नो तिरि०, नो मणु०, देवाउयं पकरेंति ।

[४४ प्र.] भगवन् ! अलेश्यी क्रियावादी जीव नैरयिकायुष्य बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[४४ उ.] गौतम ! नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, किसी का आयुष्य नही बाधते ।

४५. कण्हपक्खिया णं भते ! जीवा अकिरियावाई किं नेरतियाउयं० पुच्छा ।

गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेंति, एवं चउव्विहं पि ।

[४५ प्र.] भगवन् ! कृष्णपाक्षिक अक्रियावादी जीव नैरयिकायुष्य बाधते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[४५ उ.] गौतम ! वे नैरयिक, तिर्यञ्च आदि चारो प्रकार का आयुष्य बाधते हैं ।

४६. एव अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि ।

[४६] इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक अज्ञानवादी और विनयवादी जीवो के आयुष्यबन्ध के विषय मे जानना चाहिए ।

४७. सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा ।

[४७] शुक्लपाक्षिक जीव सलेश्यी जीवो के समान आयुष्यबन्ध करते हैं ।

४८. सम्मद्दिट्ठी णं भंते ! जीवा किरियावाई किं नेरइयाउयं० पुच्छा ।

गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउय, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति ।

[४८ प्र.] भगवन् ! क्या सम्यग्दृष्टि क्रियावादी जीव नैरयिकायुष्यबन्ध करते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[४८ उ.] गौतम ! वे नैरयिकायुष्य एवं तिर्यञ्चायुष्य नहीं बाधते, किन्तु मनुष्य और देव का आयुष्य बाधते।

४९. मिच्छद्दिट्ठी जहा कण्हपक्खिया।

[४९] मिथ्यादृष्टि क्रियावादी जीव का आयुष्यबन्ध कृष्णपाक्षिक के समान है।

५०. सम्मामिच्छद्दिट्ठी णं भंते ! जीवा अण्णाणियवादी किं नेरइयाउय० ?

जहा अलेस्सा।

[५० प्र.] भगवन् ! सम्यग्मिथ्यादृष्टि अज्ञानवादी जीव नैरयिकायुष्य बाधते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[५० उ.] गौतम ! अलेश्यी जीव के समान जानना।

५१. एवं वेणइयवादी वि।

[५१] इसी प्रकार विनयवादी जीवों का आयुष्यबन्ध जानना चाहिए।

५२. णाणी, आभिणिबोहियनाणी य सुयनाणी य ओहिनाणी य जहा सम्मद्दिट्ठी।

[५२] ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी के आयुष्यबन्ध का कथन सम्यग्दृष्टि के समान है।

५३. [१] मणपज्जवनाणी ण भंते ! ० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरतियाउय पकरेंति, नो तिरिक्ख०, नो मणुस्स०, देवाउय पकरेंति।

[५३-१ प्र.] भगवन् ! मन पर्यवज्ञानी नैरयिकायुष्य बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[५३-१ उ.] गौतम ! वे नैरयिक, तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुष्य नहीं बाधते, किन्तु देव का आयुष्य बाधते है।

[२] जवि देवाउय पकरेंति किं भवणवासि० पुच्छा।

गोयमा ! नो भवणवासिदेवाउय पकरेंति, नो वाणमतर०, नो जोतिसिय०, वेमाणिय-देवाउय०।

[५३-२ प्र.] भगवन् ! यदि वे देवायुष्य बाधते है, तो क्या भवनवासी देवायुष्य बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[५३-२ उ.] गौतम ! वे भवनवासी, वाणव्यन्तर अथवा ज्योतिष्क का देवायुष्य नही बाधते, किन्तु वैमानिकदेव का आयुष्य बाधते है।

५४. केवलनाणी जहा अलेस्सा।

[५४] केवलज्ञानी के विषय मे अलेश्यी के समान वक्तव्यता जाननी चाहिए।

५५. अन्नाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया।

[५५] अज्ञानी से लेकर विभंगज्ञानी तक का आयुष्यबन्ध कृष्णपाक्षिक के समान समझना चाहिए।

५६. सन्नासु चउसु वि जहा सलेस्सा।

[५६] आहारादि चारों संज्ञाओं वाले जीवों का आयुष्यबन्ध सलेश्य जीवों के समान है।

५७. नोसन्नोवउत्ता जहा मणपज्जवनाणी।

[५७] नोसंज्ञोपयुक्त जीवों का आयुष्यबन्ध मनःपर्यवज्ञानी के सदृश है।

५८. सवेयगा जाव नपुंसगवेयगा जहा सलेस्सा।

[५८] सवेदी से लेकर नपुंसकवेदी तक (आयुष्यबन्ध) सलेश्य जीवों के समान है।

५९. अवेयगा जहा अलेस्सा।

[५९] अवेदी जीवों का आयुष्यबन्ध अलेश्य जीवों के समान है।

६०. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा।

[६०] सकषायी से लेकर लोभकषायी तक का सलेश्य जीवों के समान आयुष्यबन्ध जानना।

६१. अकसायी जहा अलेस्सा।

[६१] अकषायी जीवों के विषय में अलेश्य के समान जानना।

६२. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा।

[६२] सयोगी से लेकर काययोगी तक सलेश्य जीवों के समान आयुष्यबन्ध समझना चाहिए।

६३. अजोगी जहा अलेस्सा।

[६३] अयोगी जीवों के विषयों में अलेश्य के समान कहना चाहिए।

६४. सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य जहा सलेस्सा।

[६४] साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त के विषय में सलेश्य जीवों के समान जानना चाहिए।

विवेचन—क्रियावादी जीवों के आयुष्यबन्ध का विवरण, प्रस्तुत ३३-१ सू. में जो यह कहा गया है कि औघिक क्रियावादी जीव नारक और तिर्यञ्च का आयुष्य नहीं बांधते, किन्तु मनुष्य और देव का आयुष्य बांधते हैं, उसका आशय यह है कि जो नैरयिक और देव क्रियावादी हैं, वे मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं तथा जो मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यञ्च क्रियावादी हैं, वे देव का आयुष्य बांधते हैं।

कृष्णलेश्यी क्रियावादी जीव का आयुष्यबन्ध—इनके विषय मे जो यह कहा गया है कि कृष्णलेश्यी क्रियावादी जीव नैरयिक, तिर्यञ्च और देव का आयुष्य बन्ध नही करते, किन्तु मनुष्य का आयुष्य बाधते हैं, वह कथन नैरयिक और असुरकुमारादि की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योंकि जो कृष्णलेश्यी सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च हैं, वे तो मनुष्य का आयुष्य बाधते ही नही हैं, वे केवल वैमानिक देव का ही आयुष्य बाधते है।

अलेश्यी आदि जीव आयुष्य ही नहीं बाधते अलेश्यी, अकषायी, अयोगी और केवलज्ञानी आदि जीव जन्म-मरण से मुक्त, सिद्ध होते है। अत वे किसी प्रकार का आयुष्य नही बाधते है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का कथन अलेश्यो के समान कहा गया है, उसका आशय यह है कि अलेश्यी जीव, जो सिद्ध है, वे तो कृतकृत्य होने से एव कर्मो का समूल नाश करने के कारण आयुष्य-बन्ध नही करते तथा अयोगी जीव भी उसी भव मे मुक्त हो जाते है, इसलिए वे भी कोई आयुष्य नही बाधते। किन्तु सम्यगमिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि-अवस्था मे तथाविध स्वभाव-विशेष से किसी प्रकार का आयुष्यबन्ध नही करते।[1]

चौवीस दण्डकवर्ती क्रियावादी आदि जीवो की ग्यारह स्थानों में आयुष्यबन्ध-प्ररूपणा

६५. किरियावाई ण भंते ! नेरइया किं नेरइयाउय० पुच्छा।

गोयमा ! नेरइयाउय०, नो तिरिक्ख०, मणुस्साउय पकरेंति, नो देवाउय पकरेंति।

[६५ प्र.] भगवन् ! क्या क्रियावादी नैरयिक जीव नैरयिकायुष्य बाधते है? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[६५ उ] गौतम ! वे नारक, तिर्यञ्च और देव का आयुष्य नही बाधते, किन्तु मनुष्य का आयुष्य बाधते है।

६६ अकिरियावाई ण भंते ! नेरइया० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरतियाउयं, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउय पि पकरेंति, नो देवाउय पकरेंति।

[६६ प्र] भगवन् ! अक्रियावादी नैरयिक जीव नैरयिक का आयुष्य बाधते है। इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[६६ उ] गौतम ! वे नैरयिक और देव का आयुष्य नही बाधते, किन्तु तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुष्य बाधते है।

६७. एव अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

[६७] इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी नैरयिक के आयुष्यबन्ध के विषय मे समझना चाहिए।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९४५

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३६१६

६८. सलेस्सा ण भंते ! नेरतिया किरियावादी किं नेरइयाउय० ?

एवं सव्वे वि नेरइया जे किरियावादी ते मणुस्साउयं एगं पकरेंति, जे अकिरियावादी अण्णाणियवादी वेणइयवादी ते सव्वट्ठाणेसु वि नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउय पि पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति; नवरं सम्मामिच्छत्त उवरिल्लेहिं दोहि वि समोसरणेहिं न किंचि वि पकरेंति जहेव जीवपदे ।

[६८ प्र] भगवन् ! क्या सलेश्य क्रियावादी नैरयिक, नैरयिकायुष्य बाधते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[६८ उ.] गौतम ! सभी नैरयिक, जो क्रियावादी हैं, वे एकमात्र मनुष्यायुष्य ही बाधते हैं तथा जो अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी नैरयिक हैं, वे सभी स्थानो मे नैरयिक और देव का आयुष्य नही बाधते, किन्तु तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुष्य बाधते हैं । विशेष यह है कि सम्यग्-मिथ्यादृष्टि अज्ञानवादी और विनयवादी इन दो समवसरणो मे जीवपद के समान किसी भी प्रकार के आयुष्य का बन्ध नही करते ।

६९. एवं जाव थणियकुमारा जहेव नेरतिया ।

[६९] इसी प्रकार स्तनितकुमारो तक के आयुष्यबन्ध का कथन नैरयिको के समान जानना चाहिए ।

७०. अकिरियावाई ण भते ! पुढविकाइया० पुच्छा ।

गोयमा ! नो नेरइयाउय पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं०, मणुस्साउय०, नो देवाउयं पकरेंति ।

[७० प्र] भगवन् ! अक्रियावादी पृथ्वीकायिक जीव नैरयिक का आयुष्य बाधते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[७० उ] गौतम ! वे भी नैरयिक और देव का आयुष्यबन्ध नही करते, किन्तु तिर्यञ्च और मनुष्य का आयुष्यबन्ध करते हैं ।

७१. एव अन्नाणियवादी वि ।

[७१] इसी प्रकार अज्ञानवादी (पृथ्वीकायिक) जीवो का आयुष्यबन्ध समझना चाहिए ।

७२ सलेस्सा णं भंते ! ० ।

एवं जं जं पय अत्थि पुढविकाइयाण तहिं तहिं मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु एवं चेव दुविहं आउयं पकरेंति, नवर तेउलेस्साए न किं पि पकरेंति ।

[७२ प्र] भगवन् ! सलेश्य अक्रियावादी पृथ्वीकायिक जीव नैरयिक का आयुष्य बाधते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[७२ उ] गौतम ! जो-जो पद पृथ्वीकायिक जीवो के होते हैं, उन-उन में अक्रियावादी और

अज्ञानवादी, इन दो समवसरणो मे इसी प्रकार (पूर्वकथनानुसार) मनुष्य और तिर्यञ्च, दो प्रकार का आयुष्य बांधते हैं। किन्तु तेजोलेश्या मे तो किसी भी प्रकार का आयुष्यबन्ध नही होता।

७३. [१] एवं आउक्काइयाण वि, वणस्सतिकाइयाण वि।

[७३-१] इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवो के आयुष्य-बन्ध के विषय में जानना चाहिए।

[२] तेउकाइया०, वाउकाइया०, सव्वट्ठाणेसु मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु नो नेरइयाउयं पक०, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, नो मणुयाउय पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति।

[७३-२] तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव, सभी स्थानो मे अक्रियावादी और अज्ञानवादी, इन दो मध्यम समवसरणो मे, नैरयिक, मनुष्य और देव का आयुष्य नही बाधते। एकमात्र तिर्यञ्च का आयुष्य बाधते हैं।

७४. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं जहा पुढविकाइयाण, नवरं सम्मत्तनाणेसु न एक्कं पि आउयं पकरेंति।

[७४] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो का आयुष्यबन्ध पृथ्वीकायिक जीवो के तुल्य है। परन्तु सम्यक्त्व और ज्ञान मे वे किसी भी आयुष्य का बन्ध नही करते।

७५. किरियावाई ण भंते ! पचेंदियतिरिक्खजोणिया किं नेरइयाउय पकरेंति० पुच्छा।

गोयमा ! जहा मणपज्जवनाणी।

[७५ प्र] भगवन् ! क्या क्रियावादी पचेन्द्रियतिर्यञ्च नैरयिक का आयुष्य बाधते हैं? इत्यादि पूर्ववत् पृच्छा।

[७५ उ] गौतम ! इनका आयुष्यबन्ध मन पर्यवज्ञानी के समान है।

७६. अकिरियावादी अन्नाणियवादी वेणइयवादी य चउव्विहं पि पकरेंति।

[७६] अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी (तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीव) चारो प्रकार का आयुष्य बाधते है।

७७. जहा ओहिया तहा सलेस्सा वि।

[७७] सलेश्य (पचेन्द्रियतिर्यञ्च) जीवो का निरूपण औघिक जीव के सदृश है।

७८. कण्हलेस्सा णं भंते ! किरियावादी पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं नेरइयाउय० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरतियाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं०, नो मणुस्साउय०, नो देवाउयं पकरेंति।

[७८ प्र] भगवन् ! क्या कृष्णलेश्यी क्रियावादी पचेन्द्रियतिर्यञ्च नैरयिक का आयुष्य बाधते हैं? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[७८ उ.] गौतम ! वे नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव किसी का भी आयुष्य नही बाधते।

७९. अकिरियावाई अन्नाणियवाई वेणइयवाई चउव्विहं पि पकरेंति ।

[७९] अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी (कृष्णलेश्यी) चारो प्रकार का आयुष्यबन्ध करते हैं।

८०. जहा कण्हलेस्सा एवं नीललेस्सा वि, काउलेस्सा वि ।

[८०] नीललेश्यी और कापोतलेश्यी का आयुष्यबन्ध भी कृष्णलेश्यी के समान है।

८१. तेउलेस्सा जहा सलेस्सा, नवरं अकिरियावादी अन्नाणियवादी वेणइयवादी य नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति ।

[८१] तेजोलेश्यी का आयुष्यबन्ध सलेश्य के समान है। परन्तु अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी जीव नैरयिक का आयुष्य नही बाधते, वे तिर्यञ्च, मनुष्य और देव का आयुष्य बाधते हैं।

८२. एवं पम्हलेस्सा वि, सुक्कलेस्सा वि भाणियव्वा ।

[८२] इसी प्रकार पद्मलेश्यी और शुक्ललेश्यी जीवो के आयुष्यबन्ध के विषय मे कहना चाहिए।

८३. कण्हपक्खिया तिहिं समोसरणेहिं चउव्विहं पि आउयं पकरेंति ।

[८३] कृष्णपाक्षिक अक्रियावादी अज्ञानवादी और विनयवादी (इन तीनो समवसरणो के) जीव चारो ही प्रकार का आयुष्यबन्ध करते हैं।

८४. सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा ।

[८४] शुक्लपाक्षिको का कथन सलेश्य के समान है।

८५. सम्मद्दिट्ठी जहा मणपज्जवनाणी तहेव वेमाणियाउयं पकरेंति ।

[८५] सम्यग्दृष्टि जीव मन पर्यवज्ञानी के सदृश वैमानिक देवो का आयुष्यबन्ध करते है।

८६ मिच्छद्दिट्ठी जहा कण्हपक्खिया ।

[८६] मिथ्यादृष्टि का आयुष्यबन्ध कृष्णपाक्षिक के समान है।

८७. सम्मामिच्छद्दिट्ठी ण एक्कं पि पकरेंति जहेव नेरतिया ।

[८७] सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक भी प्रकार का आयुष्यबन्ध नही करते। उनमे नैरयिको के समान दो समवसरण होते हैं।

८८. नाणी जाव ओहिनाणी जहा सम्मद्दिट्ठी ।

[८८] ज्ञानी से लेकर अवधिज्ञानी तक के जीवो का आयुष्यबन्ध सम्यग्दृष्टि जीवो के समान जानना।

८९. अन्नाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया ।

[८९] अज्ञानी से लेकर विभगज्ञानी तक के जीवो का आयुष्यबन्ध कृष्णपाक्षिको के समान है।

९०. सेसा जाव अणागारोवउत्ता सव्वे जहा सलेस्सा तहेव भाणियव्वा ।

[९०] शेष सभी अनाकारोपयुक्त पर्यन्त जीवो का आयुष्यबन्ध सलेश्य जीवो के समान कहना चाहिए ।

९१. जहा पंचेंदियतिरिक्खजोणियाण वत्तव्वया भणिया एवं मणुस्साण वि भाणियव्वा, नवरं मणपज्जवनाणी नोसन्नोवउत्ता य जहा सम्मद्दिट्ठी तिरिक्खजोणिया तहेव भाणियव्वा ।

[९१] जिस प्रकार पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार मनुष्यो (के आयुष्यबन्ध) की वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि मन पर्यवज्ञानी और नोसज्ञोपयुक्त मनुष्यो का आयुष्यबन्ध-कथन सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चयोनिक के समान है ।

९२. अलेस्सा, केवलनाणी, अवेदका, अकसायी, अजोगी य, एए न एग पि आउय पकरेंति जहा ओहिया जीवा, सेसं तहेव ।

[९२] अलेश्यी, केवलज्ञानी, अवेदी, अकषायी और अयोगी, ये औघिक जीवो के समान किसी भी प्रकार का आयुष्यबन्ध नही करते । शेष सब पूर्ववत् है ।

९३ वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा ।

[९३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जीवो का (आयुष्यबन्ध) कथन असुरकुमारो के समान जानना चाहिए ।

विवेचन—क्रियावादी आदि नैरयिको का आयुष्यबन्ध—नारकभव के स्वभाव के कारण क्रियावादी नैरयिक नरकायु और देवायु का बन्ध नही करते तथा क्रियावादी होने के कारण वे तिर्यञ्चायु भी नही बाधते । वे एकमात्र मनुष्यायु का बन्ध करते है । अक्रियावादी आदि तीनो समवसरणो के नैरयिक जीव सभी स्थानो म तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु का बन्ध करते हैं । सम्यग्-मिथ्यादृष्टि नैरयिक, अज्ञानवादी और विनयवादी ही होते हैं । वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुण-स्थान मे रहते हुए किसी भी प्रकार का आयुष्य नही बाधते, क्योकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान का स्वभाव ही ऐसा है ।

पृथ्वीकायिको का तेजोलेश्या मे आयुष्यबन्ध क्यों नहीं ?—पृथ्वीकायिक जीवो मे अपर्याप्त अवस्था मे इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्व ही तेजोलेश्या होती है और वे इन्द्रियपर्याप्ति पूरी होने पर ही परभव का आयुष्य बाधते है । अतएव तेजोलेश्या के अभाव मे ही उनके आयुष्य का बन्ध होता है, तेजोलेश्या के रहते नही । इसीलिए कहा गया है – **'तेउलेस्साए न किं पि पकरेंति ।'**

द्वीन्द्रियादि जीवों मे सम्यक्त्व और ज्ञान के रहते आयुष्यबन्ध क्यो नहीं ?— द्वीन्द्रिय आदि जीवो मे सास्वादन-सम्यक्त्व होने से उनमे सम्यक्त्व और ज्ञान तो होता है, किन्तु उनका काल अत्यल्प होने से उतने समय में आयुष्य का बन्ध सभव नही है । इसीलिए कहा गया है इनमे सम्यक्त्व और ज्ञान के रहते एक भी प्रकार का आयुष्यबन्ध नही होता ।

सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियतिर्यञ्च कब और कौन-सा आयुष्यबन्ध करते हैं ?—जब सम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियतिर्यञ्च कृष्ण आदि अशुभ लेश्या के परिणाम वाले होते है, तब किसी भी प्रकार के

आयुष्य का बन्ध नही करते। जब वे तेजोलेश्यादिरूप शुभ परिणाम वाले होते हैं, तब एकमात्र वैमानिकदेव का आयुष्य बाधते है। इसीलिए कहा गया है कि **'सम्मदिट्ठी मणपज्जवनाणी तहेव वेमाणियाउय पकरेंति।'**

तेजोलेश्यी जीवो का आयुष्यबन्ध—तेजोलेश्या वाले जीव के आयुष्य का बन्ध सलेश्य जीवो के समान बताया है। इसका आशय यह है कि क्रियावादी केवल वैमानिक का आयुष्य बाधते हैं। शेष तीन समवसरण वाले जीव चारो प्रकार का आयुष्य बाधते हैं, क्योकि सलेश्य जीव मे इसी प्रकार के आयुष्य का बन्ध कहा है।[1]

क्रियावादी आदि चारो में जीव और चौबीस दण्डकों की ग्यारह स्थानों द्वारा भव्याभव्यत्व-प्ररूपणा

९४. किरियावादी ण भते ! जीवा किं भवसिद्धीया, अभवसिद्धीया ?

गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

[९४ प्र] भगवन् ! क्रियावादी जीव भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक है ?

[९४ उ] गौतम ! वे अभवसिद्धिक नही, भवसिद्धिक है।

९५. अकिरियावादी णं भते ! जीवा किं भवसिद्धीया० पुच्छा।

गोयमा ! भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

[९५ प्र] भगवन् ! अक्रियावादी जीव भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक हैं ?

[९५ उ] गौतम ! वे भवसिद्धिक भी है और अभवसिद्धिक भी।

९६ एव अन्नाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

[९६] इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी जीवो के विषय मे भी समझना चाहिए।

९७ सलेस्सा ण भते ! जीवा किरियावादी किं भव० पुच्छा।

गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

[९७ प्र.] भगवन् ! सलेश्य क्रियावादी जीव भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक है ?

[९७ उ] गौतम ! वे भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नही है।

९८ सलेस्सा ण भंते ! जीवा अकिरियावादी किं भव० पुच्छा

गोयमा ! भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

[९८ प्र] भगवन् ! सलेश्य अक्रियावादी जीव भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक है ?

[९८ उ] गौतम ! वे भवसिद्धिक भी है और अभवसिद्धिक भी हैं।

९९. एव अन्नाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

[९९] इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी भी (सलेश्यी के समान) जानना।

---

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९४७

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३६२२

१००. जहा सलेस्सा, एव जाव सुक्कलेस्सा ।

[१००] कृष्णलेश्यी से लेकर शुक्ललेश्यी पर्यन्त सलेश्य के समान जानना ।

१०१. अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं भव० पुच्छा ।

गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया ।

[१०१ प्र] भगवन् ! अलेश्यी क्रियावादी जीव भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक है ?

[१०१ उ] गौतम ! वे भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नही ।

१०२. एव एएणं अभिलावेण कण्हपक्खिया तिसु वि समोसरणेसु भयणाए ।

[१०२] इस अभिलाप से कृष्णपाक्षिक तीनो समवसरणो (अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी) मे भजना (विकल्प) से भवसिद्धिक हैं ।

१०३. सुक्कपक्खिया चतुसु वि समोसरणेसु भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया ।

[१०३] शुक्लपाक्षिक जीव चारो समवसरणो मे भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नही है ।

१०४. सम्मद्दिट्ठी जहा अलेस्सा ।

[१०४] सम्यग्दृष्टि अलेश्यी जीवो के समान है ।

१०५ मिच्छद्दिट्ठी जहा कण्हपक्खिया ।

[१०५] मिथ्यादृष्टि जीव कृष्णपाक्षिक के सदृश है ।

१०६. सम्मामिच्छद्दिट्ठी दोसु वि समोसरणेसु जहा अलेस्सा ।

[१०६] सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव अज्ञानवादी और विनयवादी, इन दोनो समवसरणो मे अलेश्यी जीवो के समान भवसिद्धिक है ।

१०७. नाणी जाव केवलनाणी भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया ।

[१०७] ज्ञानी से लेकर केवलज्ञानी तक भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नही ।

१०८. अन्नाणी जाव विभगनाणी जहा कण्हपक्खिया ।

[१०८] अज्ञानी से लेकर विभगज्ञानी तक कृष्णपाक्षिको के सदृश हैं ।

१०९. सण्णासु चउसु वि जहा सलेस्सा ।

[१०९] चारो सज्ञाओ से युक्त जीवो का कथन सलेश्य जीवो के समान है ।

११०. नोसण्णोवउत्ता जहा सम्मद्दिट्ठी ।

[११०] नोसज्ञोपयुक्त जीवो का कथन सम्यग्दृष्टि के समान है ।

१११. सवेयगा जाव नपु गवेयगा जहा सलेस्सा ।

[१११] सवेदी से लेकर नपुंसकवेदी जीवो तक का कथन सलेश्य जीवो के सदृश है ।

११२. अवेयगा जहा सम्मद्दिट्ठी ।

[११२] अवेदी जीवो का कथन सम्यग्दृष्टि के समान है ।

११३. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा ।

[११३] सकषायी यावत् लोभकषायी, सलेश्य जीवो के समान जानना ।

११४. अकसायी जहा सम्मद्दिट्ठी ।

[११४] अकषायी जीव सम्यग्दृष्टि के समान जानना ।

११५. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा ।

[११५] सयोगी यावत् काययोगी जीव सलेश्यो के समान है ।

११६. अजोगी जहा सम्मद्दिट्ठी ।

[११६] अयोगी जीव सम्यग्दृष्टि के सदृश है ।

११७. सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता जहा सलेस्सा ।

[११७] साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त जीव सलेश्य जीवो के सदृश जानना ।

११८. एव नेरतिया वि भाणियव्वा, नवरं नायव्वं ज अत्थि ।

[११८] इसी प्रकार नैरयिको के विषय मे कहना चाहिए, किन्तु उनमे जो बोल पाये जाते हो, वह कहने चाहिए ।

११९. एव असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा ।

[११९] इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक के विषय मे जानना चाहिए ।

१२०. पुढविकाइया सव्वट्ठाणेसु वि मज्झिल्लेसु दोसु वि समोसरणेसु भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि ।

[१२०] पृथ्वीकायिक जीव सभी स्थानो मे मध्य के दोनो समवसरणो (अक्रियावादी और अज्ञानवादी) मे भवसिद्धिक भी होते हैं और अभवसिद्धिक भी होते है ।

१२१. एवं जाव वणस्सतिकाइय त्ति ।

[१२१] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए ।

१२२. बेइदिय-तेइदिय-चतुरिदिया एव चेव, नवरं सम्मत्ते, ओहिए नाणे, आभिणिबोहिए-नाणे, सुयनाणे, एएसु चेव दोसु मज्झिमेसु समोसरणेसु भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया, सेसं तं चेव ।

[१२२] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए । विशेष यह है कि सम्यक्त्व, औघिक ज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान, इनके मध्य

के दोनों समवसरणो (अक्रियावादी एव अज्ञानवादी) मे भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नही हैं। शेष सब पूर्ववत् जानना।

१२३. पंचेंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया, नवरं जं अत्थि।

[१२३] पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव नैरयिको के सदृश जानना, किन्तु उनमे जो बोल पाये जाते हो, (वे सब कहने चाहिए)।

१२४. मणुस्सा जहा ओहिया जीवा।

[१२४] मनुष्यो का कथन औघिक जीवो के समान है।

१२५. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ तीसइमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३०-१ ॥

[१२५] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको का निरूपण असुरकुमारो के समान जानना।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—भवसिद्धिक एवं अभवसिद्धिक का निरूपण— प्रस्तुत ३२ सूत्रो (९४ से १२५ तक) मे क्रियावादी आदि चारो तथा लेश्या आदि ११ स्थानो मे चौवीस दण्डकवर्ती जीवो मे भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक की चर्चा की गई है। सभी सूत्र स्पष्ट हैं। भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक का अर्थ भव्य और अभव्य है।

॥ तीसवाँ शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

बीओ उद्देशक : द्वितीय उद्देशक

(अनन्तरोपपन्नक क्रियावादी आदि सम्बन्धी)

अनन्तरोपपन्न चौवीस दण्डकवर्ती जीवों में ग्यारह स्थानों द्वारा क्रियावादादि-प्ररूपणा

१. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं किरियावादी० पुच्छा ।

गोयमा ! किरियावाई वि जाव वेणइयवाई वि ।

[१ प्र] भगवन् ! क्या अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! वे क्रियावादी भी है, यावत् विनयवादी भी हैं ।

२. सलेस्सा णं भते ! अणंतरोववन्नगा नेरतिया किं किरियावादी० ?

एवं चेव ।

[२ प्र] भगवन् ! क्या सलेश्य अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२ उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए ।

३. एवं जहेव पढमुद्देसे नेरइयाण वत्तव्वया तहेव इह वि भाणियव्वा, नवर जं जस्स अत्थि अणंतरोववन्नगाणं नेरइयाणं त तस्स भाणियव्वं ।

[३] जिस प्रकार प्रथम उद्देशक मे नैरयिको की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार यहाँ भी कहनी चाहिए । विशेष यह है कि अनन्तरोपपन्न नैरयिको मे मे जिसमे जो बोल सम्भव हो, वही कहने चाहिए ।

४ एवं सव्वजीवाणं जाव वेमाणियाण, नवर अणंतरोववन्नगाण जहिं ज अत्थि तहिं तं भाणियव्व ।

[४] सर्व जीवो की, यावत् वैमानिको की वक्तव्यता इसी प्रकार कहनी चाहिए, किन्तु अनन्तरोपपन्नक जीवो मे जहाँ जो सम्भव हो, वहाँ वह कहना चाहिए ।

विवेचन -अनन्तरोपपन्नक नैरयिकादि की चर्चा—प्रस्तुत चार सूत्रो में अनन्तरोपपन्नक नैरयिकादि चौवीस दण्डकीय जीवो मे ग्यारह स्थानो की अपेक्षा से क्रियावादी आदि का निरूपण किया गया है ।

तत्काल उत्पन्न हुआ जीव **अनन्तरोपपन्नक** कहलाता है ।

५. किरियावाई णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति० पुच्छा ।

गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरि०, नो मणु०, नो देवाउयं पकरेंति ।

[५ प्र.] भगवन् ! क्या क्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक, नैरयिक का आयुष्य बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[५ उ.] गौतम ! वे नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव का आयुष्य नहीं बांधते।

६. एवं अकिरियावाई वि, अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

[६] इसी प्रकार अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक के विषय में समझना चाहिए।

७. सलेस्सा णं भंते ! किरियावाई अणंतरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, जाव नो देवाउयं पकरेंति।

[७ प्र.] भगवन् ! क्या सलेश्य क्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक नारकायुष्य बांधते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[७ उ.] गौतम ! वे नैरयिकायुष्य यावत् देवायुष्य नहीं बांधते हैं।

८. एवं जाव वेमाणिया।

[८] इसी प्रकार (असुरकुमारादि से लेकर) वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

९. एवं सव्वट्ठाणेसु वि अणंतरोववन्नगा नेरइया न किंचि वि आउयं पकरेंति जाव अणागारोवउत्त त्ति।

[९] इसी प्रकार सभी स्थानों में अनन्तरोपपन्नक नैरयिक, यावत् अनाकारोपयुक्त जीव किसी भी प्रकार का आयुष्यबन्ध नहीं करते हैं।

१०. एवं जाव वेमाणिया, नवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं।

[१०] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए, किन्तु जिसमें जो बोल सम्भव हो, वह उसमें कहना चाहिए।

विवेचन अनन्तरोपपन्नक नैरयिकादि चौवीस दण्डकों का आयुष्यबन्ध—प्रस्तुत प्रकरण आयुष्यबन्ध का है। अनन्तरोपपन्नक किसी भी विशेषण से युक्त हो, उसमें किसी भी प्रकार का आयुष्य नहीं बंधता है।

क्रियावादी आदि चारों में अनन्तरोपपन्नक चौवीस दण्डकों की ग्यारह स्थानों द्वारा भव्याभव्यत्व-प्ररूपणा

११. किरियावाई णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धीया अभवसिद्धीया ?

गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

[११ प्र.] भगवन् ! क्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?

[११ उ.] गौतम ! वे भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नहीं हैं।

१२. अकिरियावाई णं० पुच्छा।

गोयमा ! भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

[१२ प्र.] भगवन् ! अक्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?

[१२ उ.] गौतम ! वे भवसिद्धिक भी है और अभवसिद्धिक भी हैं।

१३. एवं अन्नाणियवाई वि, वेणइयवाई वि।

[१३] इसी प्रकार अज्ञानवादी और विनयवादी भी समझने चाहिए।

१४. सलेस्सा णं भंते ! किरियावाई अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धीया, अभवसिद्धीया ?

[१४ प्र] भगवन् ! सलेश्य क्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक भवसिद्धिक हैं अथवा अभवसिद्धिक हैं ?

[१४ उ] गौतम ! वे भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नही है।

१५. एवं एएण अभिलावेणं जहेव ओहिए उद्देसए नेरइयाणं वत्तव्वया भणिया तहेव इह वि भाणियव्वा जाव अणागारोवउत्त त्ति।

[१५] इसी प्रकार इस अभिलाप से जिस प्रकार औघिक उद्देशक मे नैरयिको की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ भी अनाकारपयुक्त तक कहनी चाहिए।

१६. एवं जाव वेमाणियाण, नवरं जं जस्स अत्थि त तस्स भाणितव्वं। इमं से लक्खणं—जे किरियावादी सुक्कपक्खिया सम्मामिच्छद्दिट्ठी य एए सव्वे भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया। सेसा सव्वे भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। तीसइमे सए : बीओ उद्देसओ समत्तो ।। ३०-२ ।।

[१६] इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए, किन्तु जिसमे जो बोल हो उसके सम्बन्ध मे वह कहना चाहिए। उनका लक्षण यह है कि क्रियावादी, शुक्लपाक्षिक और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि, ये सब भवसिद्धिक हैं, अभवसिद्धिक नही। शेष सब भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—अनन्तरोपपन्नको की भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक चर्चा : निष्कर्ष—अनन्तरोपपन्नको मे नैरयिको से वैमानिको तक जो क्रियावादी हो, शुक्लपाक्षिक हो, सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो, वे सब भवसिद्धिक है, इनके अतिरिक्त शेष सब दोनो प्रकार के है।

।। तीसवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

तइओ उद्देसओ : तृतीय उद्देशक

परम्परोपपन्नक नैरयिकादि-सम्बन्धी

परम्परोपपन्नक चौवीस दण्डकीय जीवों में ग्यारह स्थानों के द्वारा क्रियावादादिनिरूपण

१. परंपरोववन्नगा णं भंते नेरइया किरियावादी० ? एवं जहेव ओहिओ उद्देसओ तहेव परंपरोववन्नएसु वि नेरइयाईओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं, तहेव तियदंडगसंगहिओ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ।

।। तीसइमे सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ।। ३०-३ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! परम्परोपपन्नक नैरयिक क्रियावादी है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[१ उ.] गौतम ! औधिक उद्देशकानुसार परम्परोपपन्नक नैरयिक आदि (नारक से वैमानिक तक) है और उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त समग्र उद्देशक तीन दण्डक सहित कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन औधिक उद्देशक का अतिदेश—प्रस्तुत उद्देशक मे जिन जीवो को उत्पन्न हुए एक समय से अधिक काल हो गया है, ऐसे परम्परोपपन्नक जीवो मे क्रियावादित्वादि के निरूपण के लिए औधिक उद्देशक का अतिदेश किया गया है।

तीन दण्डक : तीन पाठ—(१) क्रियावादित्व आदि की प्ररूपणा एकदण्डक, (२) उनके आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा करना दूसरा दण्डक और (३) भवसिद्धिकत्व-अभवसिद्धिकत्व की प्ररूपणा करना तृतीय दण्डक है।[1]

।। तीसवाँ शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१. (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९४८

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भाग ७, पृ ३६३२

चउत्थाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा

चतुर्थ से लेकर ग्यारहवें उद्देशक तक

छब्बीसवें शतक के क्रम से चौथे से ग्यारहवें उद्देशक तक की प्ररूपणा

१. एवं एएणं कमेणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी सच्चेव इह वि जाव अचरिमो उद्देसो, नवरं अणंतरा चत्तारि वि एक्कगमगा। परंपरा चत्तारि वि एक्कगमएणं। एवं चरिमा वि, अचरिमा वि एवं चेव, नवरं अलेस्सो केवली अजोगी य भण्णति। सेसं तहेव।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

एते एक्कारस उद्देसगा।

॥ तीसइमे सए : चउत्थाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥ ३०। ४-११ ॥

॥ तीसइमं समवसरणसयं समत्तं ॥ ३० ॥

[१] इसी प्रकार और इसी क्रम से बन्धीशतक में उद्देशकों की जो परिपाटी है, वही परिपाटी यहाँ भी अचरम उद्देशक पर्यन्त समझनी चाहिए। विशेष यह है कि 'अनन्तर' शब्द से विशेषित चार उद्देशक एक गम (समान पाठ) वाले हैं। 'परम्पर' शब्द से विशेषित चार उद्देशक एक गम वाले हैं। इसी प्रकार 'चरम' और 'अचरम' विशेषणयुक्त उद्देशकों के विषय में भी समझना चाहिए, किन्तु अलेश्यी, केवली और अयोगी का कथन यहाँ (अचरम उद्देशक में) नहीं करना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् है।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

इस प्रकार ये ग्यारह उद्देशक हुए।

विवेचन—जो जीव अचरम हैं, वे अलेश्यी, अयोगी या केवलज्ञानी नहीं हो सकते, इसलिए अचरम उद्देशक में इनका कथन नहीं करना चाहिए।[1]

॥ तीसवां शतक : चौथे से ग्यारहवें उद्देशक तक समाप्त ॥

॥ तीसवाँ समवसरणशतक सम्पूर्ण ॥

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९४८

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ. ३६९३

एगतीसइमं उववायसयं, बत्तीसइमं उव्वट्टणासयं

इकतीसवाँ उपपातशतक और बत्तीसवाँ उद्वर्त्तनशतक

प्राथमिक

- भगवतीसूत्र के ये इकतीसवे और वत्तीसवे शतक एक दूसरे से सबद्ध है।
- इकतीसवे शतक का नाम उपपातशतक है और वत्तीसवे शतक का नाम उद्वर्त्तनशतक है।
- ये दोनो शतक जीवो के जन्म-मरण से सम्बन्धित है। उपपात का अर्थ है—उत्पत्ति या जन्म और उद्वर्त्तन का अर्थ है—मरण या उक्तभव (या शरीर) से निकलना।
- ससार मे प्राणियो के लिए उत्पत्ति भी दु खदायी है और मृत्यु या उदवर्त्तना भी दु.खदायी है। जिसकी उत्पत्ति होगी, उस सासारिक जीव की उद्वर्त्तना (मृत्यु) निश्चित है, अवश्यम्भावी है। परन्तु सामान्य प्राणी अथवा अज्ञजन इस दृष्टि से ओझल कर देते है। वे जन्म को तो महत्त्वपूर्ण और मरण को दु.खद मानते है।
- भगवान् महावीर ने तो दोनो को अपने प्रवचन मे दु खदायी कहा है- -

  "जम्म दुक्ख जरा दुक्ख रोगा या मरणाणि य।
  अहो दुक्खो हु ससारे, तत्थ किस्संति जतवो ।।"

  अर्थात्—जन्म, जरा, रोग और मरण ये सब दु खमय है। यह ससार ही दु खरूप है, किन्तु अज्ञानी प्राणी इसमे मोहवश फँसकर क्लेश पाते है।

- ये दोनो शतक साधक की आँखो को खोल देने वाले है। इकतीसवे शतक मे बताया गया है कि जीव किस-किस गति और योनि से आकर वर्तमान भव मे उत्पन्न होता है? एक समय मे कितने जीवो का और किस-किस प्रकार से उत्पाद होता है? लेश्या आदि अमुक विशेषणो से युक्त जीव कहाँ से, कितनी सख्या मे और कैसे-कैसे उत्पन्न होते है? इत्यादि तथ्य इकतीसवे शतक मे प्रकट किए है।
- बत्तीसवे शतक मे इकतीसवे शतक के क्रम से ही उद्वर्त्तन (मरण) की चर्चा की गई है कि अमुक जीव अपने वर्तमान भव से मर कर तुरत कहाँ, किस योनि-गति मे और कैसे जाता है? इत्यादि।
- दोनो ही शतको मे क्षुद्रयुग्म के माध्यम से चर्चा-विचारणा की गई है।
- दोनो शतको मे से इकतीसवे तथा बत्तीसवे मे प्रत्येक मे २८-२८ उद्देशक है, जिनकी परिगणना शास्त्रकार ने की है।

एगतीसइमं सयं-उववायसयं

इकतीसवाँ शतक—उपपातशतक

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

क्षुद्रयुग्म-सम्बन्धो

क्षुद्रयुग्म : नाम और प्रकार

१. रायगिहे जाव एवं वयासी—

[१] राजगृह नगर मे गौतमस्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—

२. [१] **कति ण भंते खुड्डा जुम्मा पन्नत्ता ?**

गोयमा ! चत्तारि खुड्डा जुम्मा पन्नत्ता, त जहा—कडजुम्मे, तेयोए, दावरजुम्मे, कलियोए ।

[२-१ प्र] भगवन् ! क्षुद्रयुग्म कितने कहे है ?

[२-१ उ] गौतम ! क्षुद्रयुग्म चार कहे है । यथा—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज ।

[२] **से केणट्ठेणं भते ! एवं वुच्चइ—चत्तारि खुड्डा जुम्मा पन्नत्ता, तं जहा कडजुम्मे जाव कलियोगे ?**

गोयमा ! जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए से त्तं खुड्डागकडजुम्मे । जे णं रासी चउक्कएण अवहारेण अवहीरमाणे तिपज्जवसिए से त्तं खुड्डागतेयोगे । जे ण रासी चउक्कएण अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए से त्तं खुड्डागदावरजुम्मे । जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए से त्तं खुड्डागकलियोगे । से तेणट्ठेणं जाव कलियोगे ।

[२-२ प्र] भगवन् ! यह क्यो कहा जाता है कि क्षुद्रयुग्म चार हैं, यथा—कृतयुग्म यावत् कल्योज ?

[२-२ उ] गौतम ! जिस राशि मे से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त मे चार रहे, उसे क्षुद्रकृतयुग्म कहते हैं । जिस राशि मे चार-चार का अपहार करते हुए अन्त मे तीन शेष रहे, उसे क्षुद्रत्र्योज कहते है । जिस राशि मे से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त मे दो शेष रहे, उसे क्षुद्रद्वापरयुग्म कहते हैं और जिस राशि मे से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त मे एक ही शेष रहे, उसे क्षुद्रकल्योज कहते हैं । इस कारण से हे गौतम ! यावत् कल्योज कहा है ।

विवेचन—क्षुद्रयुग्म : स्वरूप और प्रकार—लघुसख्या (अल्पसख्या) वाली राशि-विशेष को क्षुद्रयुग्म कहते हैं। इनमे से चार, आठ, बारह आदि सख्या वाली राशि को 'क्षुद्रकृतयुग्म' कहते हैं। तीन, सात, ग्यारह आदि सख्या वाली राशि को 'क्षुद्रत्र्योज' कहते है। दो, छह, दस आदि सख्या वाली राशि को 'क्षुद्रद्वापरयुग्म' कहते है और एक, पाच, नौ आदि सख्या वाली राशि को 'क्षुद्रकल्योज' कहते हैं।[1]

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म नैरयिकों के उपपात के सम्बन्ध में विविध प्ररूपणा

३. खुड्डागकडजुम्मनेरइया ण भंते ! कओ उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरिक्ख० पुच्छा।

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जति, एव नेरतियाणं उववातो जहा वक्कंतीए तहा भाणितव्वो।

[३ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकृतयुग्म-राशिपरिमाण नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से आकर उत्पन्न होते है ? अथवा तिर्यञ्चयोनिको से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३ उ] गौतम ! वे नैरयिको से आकर उत्पन्न नही होते, (किन्तु पचेन्द्रियतिर्यञ्च और गर्भज मनुष्यो मे आकर उत्पन्न होते हैं।) इत्यादि प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद मे कथित नैरयिको के उपपात के अनुसार यहाँ कहना चाहिए।

४ ते णं भंते ! जीवा एगसमएण केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, सोलस वा, सखेज्जा वा, असखेज्जा वा उववज्जंति।

[४ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

[४ उ] गौतम ! वे चार, आठ, बारह, सोलह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है।

५. ते णं भंते ! जीवा कहं उववज्जति ?

गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे अज्झवसाण० एवं जहा पचवीसतिमे सते अट्ठमुद्देसए नेरइयाणं वत्तव्वया तहेव इह वि भाणियव्वा (स० २५ उ० ८ सु० २-८) जाव आयप्पयोगेण उववज्जति, नो परप्पयोगेण उववज्जति।

[५ प्र] भगवन् ! वे जीव किस प्रकार उत्पन्न होते है ?

[५ उ] गौतम ! जिस प्रकार कोई कूदने वाला, कूदता-कूदता अपने पूर्वस्थान को छोड कर आगे के स्थान को प्राप्त करता है, इसी प्रकार नैरयिक भी पूर्ववर्ती भव को छोड कर अध्यवसायरूप कारण से आगामी भव को प्राप्त करते है, इत्यादि पच्चीसवे शतक के आठवे

---

१ (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९५०

(ख) श्रीमद्‌भगवतीसूत्रम् खण्ड ४ (गुजराती-अनुवाद) पृ ३११

उद्देशक (सू. २ से ८ तक) मे उक्त नैरयिक-सम्बन्धी वक्तव्यता के समान यहाँ भी कहना चाहिए कि यावत् वे आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते है, परप्रयोग से उत्पन्न नही होते है।

६ रतणप्पभपुढविखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भते ! कम्रो उववज्जंति ?

एवं जहा श्रोहियनेरइयाण वत्तव्वया सच्चेव रयणप्पभाए वि भाणियव्वा जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति ।

[६ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[६ उ] गौतम ! औघिक नैरयिको की जो वक्तव्यता कही है, वही रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के लिए भी कि वे परप्रयोग से उत्पन्न नही होते, यहाँ तक कहना चाहिए ।

७. एव सक्करप्पभाए वि ।

८. एवं जाव अहेसत्तमाए । एवं उववाओ जहा वक्कंतीए ।

असण्णी खलु पढम दोच्च च सरीसवा ततिय पक्खी ।० गाहा (पण्णवणासुत्त सु० ६४७ - ४८, गा० १८३—८४) । एवं उववातेयव्वा । सेस तहेव ।

[७-८] इसी प्रकार शर्कराप्रभा से लेकर अध सप्तमपृथ्वी नक जानना चाहिए । प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार यहाँ भी उपपात जानना चाहिए ।

असज्ञी जीव प्रथम नरक तक, सरीसृप (भुजपरिसर्प) द्वितीय नरक तक और पक्षी तृतीय नरक तक उत्पन्न होते है, इत्यादि (प्रज्ञापनासूत्र सू ६४७-४८, गाथा-१८३-८४ के अनुसार) उपपात जानना चाहिए । शेष पूर्ववत् समझना ।

९. खुड्डातेयोगनेरतिया णं भते ! कम्रो उववज्जंति ? किं नेरइएहिंतो ?०

उववातो जहा वक्कतीए ।

[९ प्र] भगवन् ! क्षुद्रत्र्योज-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[९ उ] इनका उपपात भी प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार जानना चाहिए ।

१०. ते णं भते ! जीवा एगसमएणं केवतिया उववज्जति ?

गोयमा ! तिन्नि वा, सत्त वा, एक्कारस वा, पन्नरस वा, संखेज्जा वा, असखेज्जा वा उववज्जति । सेस जहा कडजुम्मस्स ।

[१० प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

[१० उ] गौतम ! वे एक समय मे तीन, सात, ग्यारह, पन्द्रह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं । शेप सभी कृतयुग्म नैरयिक के समान जानना चाहिए ।

११. एवं जाव अहेसत्तमाए ।

[११] इसी प्रकार अध.सप्तमपृथ्वी तक समझना चाहिए ।

१२. खुड्डागदावरजुम्मनेरतिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

एवं जहेव खुड्डागकडजुम्मे, नवरं परिमाणं दो वा, छ वा, दस वा, चोद्दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा। सेसं तं चेव जाव अहेसत्तमाए।

[१२ प्र] भगवन् ! क्षुद्रद्वापरयुग्म-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१२ उ] गौतम ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि के अनुसार इनका उत्पाद जानना चाहिए। किन्तु ये परिमाण मे—दो, छह, दस, चौदह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत् अध सप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना।

१३. खुड्डागकलियोगनेरतिया ण भंते ! कतो उववज्जंति० ?

एवं जहेव खुड्डागकडजुम्मे, नवर परिमाणं एक्को वा, पंच वा, नव वा, तेरस वा, सखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। सेस तं चेव।

[१३ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकल्योज-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१३ उ] गौतम ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि के अनुसार इनकी उत्पत्ति जाननी चाहिए। किन्तु ये परिमाण मे - एक, पाच, नौ, तेरह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत्।

१४. एव जाव अहेसत्तमाए।

सेवं भंते ! सेव भंते ! जाव विहरति।

॥ इकतीसइमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३१-१ ॥

[१४] इसी प्रकार अध सप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हे।

॥ इकतीसवां शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

बिइओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

चतुर्विधक्षुद्रयुग्म-कृष्णलेश्यी नैरयिकों के उपपात को लेकर विविध प्ररूपणा

१. कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?०

एवं चेव जहा ओहियगमो जाव नो परप्पयोगेण उववज्जंति, नवर उववातो जहा वक्कंतीए धूमप्पभपुढविनेरइयाणं। सेसं तं चेव।

[१ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! औधिकगम के अनुसार समझना चाहिए यावत् वे परप्रयोग से उत्पन्न नही होते। विशेष यह है कि धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको का उपपात प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार कहना चाहिए। शेष सब कथन (प्रश्न और उत्तर) पूर्ववत् जानना चाहिए।

२. धूमप्पभपुढविकण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भते ! कओ उववज्जंति ?

एवं चेव निरवसेसं।

[२ प्र.] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२ उ] गौतम ! इनके विषय मे पूर्ववत् जानना।

३. एव तमाए वि, अहेसत्तमाए वि, नवर उववातो सव्वत्थ जहा वक्कतीए।

[३] इसी प्रकार तम प्रभा और अध सप्तमपृथ्वी पर्यन्त कहना चाहिए। किन्तु उपपात सर्वत्र (सभी स्थानो मे प्रज्ञापनासूत्र के छठे) व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार जानना चाहिए।

४. कण्हलेस्सखुड्डागतेयोगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जति ?०

एवं चेव, नवरं तिन्नि वा, सत्त वा, एक्कारस वा, पण्णरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा। सेसं तं चेव।

[४ प्र] भगवन् ! क्षुद्रत्र्योज-राशिप्रमाण धूमप्रभापृथ्वी के कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[४ उ.] गौतम ! पूर्ववत् समझना चाहिए। विशेष यह है कि ये तीन, सात, ग्यारह, पन्द्रह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत् है।

५. एवं जाव अहेसत्तमाए वि।

[५] इसी प्रकार यावत् अध सप्तमपृथ्वी तक जानना चाहिए।

६. कण्हलेस्सखुड्डागदावरजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ! ०

एवं चेव, नवरं दो वा, छ वा, दस वा, चोद्दस वा । सेसं तं चेव ।

[६ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्यी क्षुद्रद्वापरयुग्म-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[५ उ] गौतम ! इसी प्रकार (पूर्ववत्) समझ ना। किन्तु दो, छह, दस या चौदह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत्।

७. एव धूमप्पभाए वि जाव अहेसत्तमाए ।

[७] इसी प्रकार धूमप्रभा से अध.सप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

८. कण्हलेस्सखुड्डागकलियोगनेरइया ण भंते ! कओ उववज्जंति ? ०

एवं चेव, नवरं एक्को वा, पंच वा, नव वा, तेरस वा, सखेज्जा वा, असखेज्जा वा । सेसं तं चेव ।

[८ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकल्योज-राशिपरिमाण कृष्णलेश्या वाले नैरयिक कहा से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[८ उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना। किन्तु परिमाण मे वे एक, पाच, नौ, तेरह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है। शेष पूर्ववत्।

९. एव धूमप्पभाए वि, तमाए वि, अहेसत्तमाए वि ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ इक्कतीसइमे सए : बितिओ उद्देसओ समत्तो ॥ ३१-२॥

[९] इसी प्रकार धूमप्रभा, तम.प्रभा और अध.सप्तमपृथ्वी पर्यन्त समझना।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—कृष्णलेश्यी नैरयिको के विषय मे—प्रस्तुत प्रकरण मे कृष्णलेश्या वाले नैरयिको के सम्बन्ध मे विविध पहलुओ से उत्पत्ति का कथन किया है। यह लेश्या पाचवी, छठी और सातवी नरकपृथ्वी के नैरयिको मे होती है। यहाँ सामान्यदण्डक तथा नरकत्रय-सम्बन्धी तीन दण्डक, यो कुल चार दण्डक होते हैं। इनका उपपात (उत्पाद) प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार है। इनमे असज्ञी, सरीसृप, पक्षी और सिंह (आदि सभी चतुष्पदो) को छोड कर अन्य तिर्यञ्च-पचेन्द्रिय और गर्भज उत्पन्न होते हैं।[1]

॥ इकतीसवां शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ ३६४२
(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९५०

तइओ उद्देसओ : तृतीय उद्देशक

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म-विशिष्ट नीललेश्यी नैरयिकों सम्बन्धी प्ररूपणा

१ नीललेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया ण भंते ! कओ उववज्जंति ?०

एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मा, नवरं उववातो जो वालुयप्पभाए। सेसं तं चेव।

[१ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकृतयुग्म-राशि-प्रमाण नीललेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्यी क्षुद्रकृतयुग्म नैरयिक के समान। किन्तु इनका उपपात बालुकाप्रभापृथ्वी के समान है। शेष पूर्ववत्।

२. वालुयप्पभपुढविनीललेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया० ?

एव चेव।

[२ प्र] भगवन् ! नीललेश्या वाले क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण बालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२ उ] गौतम ! पूर्ववत् जानना।

३. एव पंकप्पभाए वि, एवं धूमप्पभाए वि।

[३] इसी प्रकार पकप्रभा और धूमप्रभा वाले क्षुद्रकृतयुग्म नीललेश्यी के विषय मे समझना।

४. एव चउसु वि जुम्मेसु, नवर परिमाण जाणियव्व, परिमाणं जहा कण्हलेस्सउद्देसए। सेस तहेव।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

।। इक्कतीसइमे सए ततिओ उद्देसओ समत्तो ।। ३१-३ ।।

[४] इसी प्रकार चारो युग्मो के विषय मे समझना। परन्तु विशेष यह है कि जिस प्रकार कृष्णलेश्या के उद्देशक मे परिमाण बताया है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना। शेष सब पूर्वकथितानुसार।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—नीललेश्यी नैरयिक सम्बन्धी—इस तृतीय उद्देशक मे नीललेश्या वाले नैरयिको की प्ररूपणा की गई है। नीललेश्या तृतीय, चतुर्थ और पचम नरकपृथ्वी मे होती है। इसलिए एक सामान्य दण्डक तथा तीन नरक-सम्बन्धी तीन दण्डक, यो चार दण्डक कहे हैं। यहाँ नीललेश्या का प्रकरण है। नीललेश्या बालुकाप्रभा मे होती है, इस अपेक्षा से इसमे जिन जीवो की उत्पत्ति होती है, उन्ही की उत्पत्ति जाननी चाहिए। इसमे असज्ञी और सरीसृप के सिवाय शेष तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य उत्पन्न होते है।[1]

।। इकतीसवाँ शतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

---

१. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९५०

चउत्थो उद्देशक : चतुर्थ उद्देशक

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म कपोतलेश्यी नैरयिकों को लेकर विविध प्ररूपणा

१. काउलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरतिया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ?०

एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्म०, नवरं उववातो जो रयणप्पभाए। सेसं तं चेव।

[१ प्र.] भगवन् ! कापोतलेश्या वाले क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमित नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! इनका उपपात कृष्णलेश्या वाले क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण नैरयिको के समान जानना। विशेष यह है कि इनका उपपात रत्नप्रभा मे होता है। शेष पूर्ववत्।

२ रयणप्पभपुढविकाउलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरतिया णं भंते ! कम्रो उववज्जति ?०

एवं चेव।

[२ प्र] भगवन् ! कापोतलेश्या वाले क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२ उ] गौतम ! इस सम्बन्ध मे पूर्ववत् जानना।

३. एव सक्करप्पभाए वि, एवं वालुयप्पभाए वि।

[३] इसी प्रकार शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा मे भी निरूपण करना चाहिए।

४. एवं चउसु वि जुम्मेसु, नवर परिमाणं जाणियव्व, परिमाण जहा कण्हलेस्सउद्देसए। सेस एवं चेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ इक्कतीसइमे सए : चउत्थो उद्देसम्रो समत्तो। ३१-४ ॥

[४] इसी प्रकार चारो युग्मो का निरूपण करना चाहिए। किन्तु विशेष यह है कि इन सबका परिमाण जानना चाहिए। परिमाण कृष्णलेश्या वाले उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार हैं', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—कापोतलेश्या-सम्बन्धी नैरयिकोत्पत्ति—इस चतुर्थ उद्देशक मे कापोतलेश्या वाले नैरयिको की उत्पत्ति का निरूपण है। कापोतलेश्या प्रथम, द्वितीय और तृतीय नरक मे होती है। इसलिए एक सामान्यदण्डक और इन तीनो के तीन अन्य दण्डक, यो इस उद्देशक मे चार दण्डक हैं। सामान्यदण्डक में रत्नप्रभापृथ्वी के समान उपपात जानना चाहिए।[1]

॥ इकतीसवाँ शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

---

१. भगवती म वृत्ति, पत्र ९५०

पंचमो उद्देसओ : पंचम उद्देशक

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म-भवसिद्धिक नैरयिकों की उपपात-सम्बन्धी विविध प्ररूपणा

१. भवसिद्धीयखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ? किं नेरइए० ?

एवं जहेव ओहिओ गमओ तहेव निरवसेसं जाव नो परप्पयोगेण उववज्जंति ।

[१ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमित भवसिद्धिक नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिकों से ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ.] गौतम ! इनका सारा कथन औधिक गमक के समान जानना चाहिए यावत् ये परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते ।

२. रयणप्पभपुढविभवसिद्धीयखुड्डागकडजुम्मनेरतिया णं० ?

एवं चेव निरवसेसं ।

[२ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमित भवसिद्धिक नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२ उ.] गौतम ! इनका समग्र कथन पूर्ववत् जानना ।

३. एवं जाव अहेसत्तमाए ।

[३] इसी प्रकार अध सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए ।

४. एवं भवसिद्धीयखुड्डातेयोगनेरइया वि, एवं जाव कलियोगो त्ति, नवरं परिमाणं जाणियव्वं, परिमाण पुव्वभणियं जहा पढमुद्देसए ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। इक्कतीसइमे सए : पंचमो उद्देसओ समत्तो ।। ३१-५ ।।

[४] इसी प्रकार भवसिद्धिक क्षुद्रत्र्योज-राशिप्रमाण नैरयिक के विषय में भी तथा कल्योज पर्यन्त जानना चाहिए । किन्तु इनका परिमाण जान लेना चाहिए । परिमाण पूर्वकथित प्रथम उद्देशक के अनुसार जानना ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। इकतीसवां शतक : पंचम उद्देशक समाप्त ।।

छट्ठो उद्देसओ : छठा उद्देशक

कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक नारकों की उपपात-सम्बन्धी प्ररूपणा

१. कण्हलेस्सभवसिद्धीयखुड्डाकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?०

एवं जहेव ओहिओ कण्हलेस्सउद्देसओ तहेव निरवसेसं । चउसु वि जुम्मेसु भाणियव्वो जाव—

[१ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक क्षुद्रकृतयुग्म-प्रमाण नरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! जिस प्रकार औघिक कृष्णलेश्या के उद्देशक मे कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ सब कथन करना चाहिए। चारो युग्मो मे इसका कथन करना चाहिए।

२. अहेसत्तमपुढविकण्हलेस्सखुड्डाकलियोगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?०

तहेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ इक्कतीसइमे सए : छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥ ३१-६ ॥

[२ प्र.] भगवन् ! अध सप्तमपृथ्वी के कृष्णलेश्यी क्षुद्रकल्योज-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२ उ.] पूर्ववत् कथन करना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ इकतीसवाँ शतक : छठा उद्देशक समाप्त ॥

सत्तमो उद्देसओ : सप्तम उद्देशक

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म-नीललेश्यी भवसिद्धिक नैरयिकों की उपपात-सम्बन्धी प्ररूपणा

१ नीललेस्सभवसिद्धीय० चउसु वि जुम्मेसु तहेव भाणियव्वा जहा ओहियनीललेस्सउद्देसए।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति।

॥ इक्कतीसइमे सए : सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३१-७ ॥

[१] नीललेश्या वाले भवसिद्धिक नैरयिक के चारो युग्मो का कथन औघिक नीललेश्या-सम्बन्धी उद्देशक के अनुसार समझना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ इकतीसवां शतक : सातवां उद्देशक समाप्त ॥

अट्ठमो उद्देसओ : आठवाँ उद्देशक

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म-कापोतलेश्यी भवसिद्धिक नैरयिकों की उपपात-सम्बन्धी प्ररूपणा

१. काउलेस्सभवसिद्धीय० चउसु वि जुम्मेसु तहेव उववातेयव्वा जहेव ओहिए काउलेस्सउद्देसए।

सेव भंते! सेव भंते! जाव विहरति।

॥ इक्कतीसइमे सए : अट्ठमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३१-८ ॥

[१] कापोतलेश्यी भवसिद्धिक नैरयिक के चारों ही युग्मों का कथन औघिक नीललेश्या-सम्बन्धी उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ इकतीसवाँ शतक : आठवाँ उद्देशक समाप्त ॥

नवमाइ-बारसम-पज्जंता उद्देसगा

नौवें से बारहवें उद्देशक तक

भव्यनैरयिकों के समान अभव्यनैरयिकों सम्बन्धी वक्तव्यता

१. जहा भवसिद्धीएहिं चत्तारि उद्देसगा भणिया एवं अभवसिद्धीएहिं वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा जाव काउलेस्सउद्देसओ त्ति।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ इक्कतीसइमे सए : नवमाइ-बारसम-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥

[१] जिस प्रकार भवसिद्धिक-सम्बन्धी चार उद्देशक कहे, उसी प्रकार अभवसिद्धिक-सम्बन्धी चारों उद्देशक कापोतलेश्या-सम्बन्धी उद्देशकों तक कहने चाहिए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ इकतीसवाँ शतक : नौवें से बारहवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ॥

तेरसमाइ-सोलसम-पज्जंता उद्देसगा

तेरहवें से सोलहवें उद्देशक पर्यन्त

लेश्यायुक्त सम्यग्दृष्टि नारकों की वक्तव्यता के चार उद्देशक

१. एवं सम्मदिट्ठीहि वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, नवर सम्मद्दिट्ठी पढम-बितिएसु दोसु वि उद्देसएसु ग्रहेसत्तमपुढवीए न उववातेयव्वो। सेस तं चेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। इक्कतीसइमे सए : तेरसमाइ-सोलसमपज्जता उद्देसगा समत्ता ।।

[१] इसी प्रकार लेश्या सहित सम्यग्दृष्टि के चार उद्देशक कहने चाहिए। विशेष यह है कि सम्यग्दृष्टि का प्रथम ग्रौर द्वितीय, इन दो उद्देशको मे कथन है।

पहले ग्रौर दूसरे उद्देशक मे ग्रध सप्तमनरकपृथ्वी मे सम्यग्दृष्टि का उपपात नही कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

।। इकतीसवां शतक : तेरहवें से सोलहवे उद्देशक तक समाप्त ।।

सत्तरसमाइ-वीसइम-पज्जंता उद्देसगा

सत्रहवें से लेकर बीसवें उद्देशक तक

मिथ्यादृष्टि नारक सम्बन्धी चार उद्देशक

१. मिच्छादिट्ठीहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहा भवसिद्धीयाण।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! ०।

।। इक्कतीसइमे सए : सत्तरसमाइ-वीसइम-पज्जता उद्देसगा समत्ता ।।

[१] मिथ्यादृष्टि के भी भवसिद्धिको के समान चार उद्देशक कहने चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

।। इकतीसवां शतक . सत्रहवें से बीसवें उद्देशक तक समाप्त ।।

एगवीसमाइ-चउव्वीसइम-पज्जंता उद्देसगा

इक्कीसवें से चौवीसवें उद्देशक-पर्यन्त

कृष्णपाक्षिक नारक-सम्बन्धी

१. एवं कण्हपक्खिएहि वि लेस्सासंजुत्ता चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहेव भवसिद्धीएहिं। सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ इक्कतीसइमे सए : एगवीसमाइ-चउव्वीसइमपज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥

[१] इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक के लेश्याओं सहित चार उद्देशक भवसिद्धिकों के उद्देशकों के समान कहने चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ इकतीसवाँ शतक : इक्कीसवें से चौवीसवें उद्देशक तक समाप्त ॥

पंचवीसइमाइ-अट्ठावीसइम-पज्जंता उद्देसगा

पच्चीसवे से लेकर अट्ठाईसवे उद्देशक तक

शुक्लपाक्षिक नैरयिक सम्बन्धी चार उद्देशको का अतिदेश

१. सुक्कपक्खिएहिं एव चेव चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा जाव— वालुयप्पभपुढविकाउलेस्स-सुक्कपक्खिखुड्डाकलियोगनेरतिया ण भते ! कतो उववज्जति ?०

तहेव जाव नो परप्पयोगेण उववज्जति ।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ।

सव्वे वि एए अट्ठावीस उद्देसगा ।

॥ इक्कतीसइमे सए : पचवीसइमाइ-अट्ठावीसइम-पज्जता उद्देसगा समत्ता ॥ ३१-२८ ॥

॥ इक्कतीसइमे उववायसय समत्त ॥ ३१ ॥

[१] इसी प्रकार शुक्लपाक्षिक के भी लेश्या-सहित चार उद्देशक कहने चाहिए । यावत्

[प्र] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के कापोतलेश्या वाले शुक्लपाक्षिक क्षुद्रकल्योज-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[उ] गौतम ! पूर्वकथनवत् समझना चाहिए । यावत् वे परप्रयोग से उत्पन्न नही होते ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे ।

ये सब मिला कर अट्ठाईस उद्देशक हुए ।

विवेचन – निष्कर्ष –नौवें से लेकर अट्ठाईसवे उद्देशक तक चार-चार उद्देशको का सम्मिलित निरूपण किया गया है ।

॥ इकतीसवाँ शतक पच्चीसवे से अट्ठाईसवे उद्देशक तक समाप्त ॥

॥ इकतीसवाँ : उपपातशतक सम्पूर्ण ।

❖❖

बत्तीसइमं सयं : उव्वट्टणा-सयं

बत्तीसवाँ : उद्वर्त्तना-शतक

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म-नैरयिको के उद्वर्त्तन को लेकर विविध प्ररूपणा

१. खुड्डाकडजुम्मनेरइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति ? किं तिरिक्खजोणिएसु उवव० ?

उव्वट्टणा जहा वक्कंतीए ।

[१ प्र] भगवन् ! क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से उद्वर्तित होकर (निकल—मर कर) तुरन्त कहाँ जाते है और कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं या तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते हैं अथवा मनुष्यो मे या देवो मे उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! इनका उद्वर्त्तन प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिक पद के अनुसार जानना ।

२. ते णं भंते ! जीवा एगसमएण केवतिया उव्वट्टंति ?

गोयमा ! चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, सोलस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, उव्वट्टंति ।

[२ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उद्वर्तित होते (मरते) है ?

[२ उ] गौतम ! (वे एक समय मे) चार, आठ, बारह, सोलह, सख्यात या असख्यात उद्वर्तित होते है ।

३. ते णं भंते ! जीवा कहं उव्वट्टंति ?

गोयमा ! से जहानामए पवए०, एव तहेव (स० २५ उ० ८ सु० २-८) । एवं सो चेव गमओ जाव आयप्पयोगेण उव्वट्टंति, नो परप्पयोगेणं उव्वट्टंति ।

[३ प्र] भगवन् ! वे जीव किस प्रकार उद्वर्तित होते हैं ?

[३ उ] गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला इत्यादि सब कथन पूर्ववत् (श. २५ उ ८ सू. २-८) जानना, यावत् वे आत्मप्रयोग से उद्वर्तित होते हैं, परप्रयोग से उद्वर्तित नही होते है ।

४. रयणप्पभापुढविखुड्डाकड० ?

एवं रयणप्पभाए वि ।

[४ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से उद्वर्तित होकर तुरन्त कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[४ उ.] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक की उद्वर्त्तना के समान इनकी उद्वर्त्तना आदि जानना ।

५. एवं जाव अहेसत्तमाए ।

[५] इसी प्रकार (शर्कराप्रभा के नैरयिक से लेकर) अध सप्तमपृथ्वी तक उद्वर्त्तना जानना ।

६. एवं खुड्डातेयोग-खुड्डादावरजुम्म-खुड्डाकलियोग०, नवर परिमाण जाणियव्व । सेसं त चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। बत्तीसइमे सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ।। ३१-१ ।।

[६] इस प्रकार क्षुद्रत्र्योज, क्षुद्रद्वापरयुग्म और क्षुद्रकल्योज के विषय मे भी जानना चाहिए । परन्तु इनका परिमाण पूर्ववत् अपना-अपना पृथक्-पृथक् कहना चाहिए । शेष सब पूर्ववत् है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। बत्तीसवां शतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

बीइयाइ-अट्ठावीसइम-पज्जंता उद्देसगा

द्वितीय से लेकर अट्ठाईसवें उद्देशक तक

चतुर्विध क्षुद्रयुग्म-कृष्णलेश्यी नैरयिकों की उद्वर्त्तना-सम्बन्धी प्ररूपणा

१. **कण्हलेस्सखुड्डाकडजुम्मनेरइया० ?**

एव एएणं कमेणं जहेव उववायसए (स० ३१) अट्ठावीस उद्देसगा भणिया तहेव उव्वट्टणासए वि अट्ठावीस उद्देसगा भाणियव्वा निरवसेसा, नवर 'उव्वट्टंति' त्ति अभिलाओ भाणियव्वो। सेसं त चेव।

सेव भते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।

बत्तीसइमे सए . बीइयाइ-अट्ठावीसइम-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ।। ३२-२-२८ ।।

।। बत्तीसइम उव्वट्टणासयं समत्तं ।। ३२ ।।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले क्षुद्रकृतयुग्म-राशिप्रमाण नैरयिक कहाँ से निकल कर (उद्वर्तित होकर) तुरन्त कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] इसी प्रकार उपपातशतक के अट्ठाईस उद्देशको के समान उद्वर्त्तनाशतक के भी अट्ठाईस उद्देशक जानना चाहिए। विशेष यह है कि 'उत्पन्न होते हैं' के स्थान पर 'उद्वर्तित होते है' कहना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—उत्पत्ति के समान उद्वर्त्तना के अट्ठाईस उद्देशक—इकतीसवे शतक में नारको की उत्पत्ति की प्ररूपणा की थी, उसी प्रकार यहाँ उनकी उद्वर्त्तना अट्ठाईस उद्देशको मे क्रमश. कहनी चाहिए।[1]

प्रथम उद्देशक मे कहा गया है—'**उव्वट्टणा जहा वक्कंतीए।**' प्रज्ञापनासूत्र के व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार नैरयिको की उद्वर्त्तना कहनी चाहिए। वहाँ सक्षेप मे कहा गया है—'**नरगाओ उव्वट्टा गब्भे पज्जत्त-संखजीवीसु**' अर्थात् नरक से निकल कर जीव पर्याप्त सख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्य और तिर्यञ्च मे उत्पन्न होते हैं ?[2]

।। बत्तीसवाँ शतक : दूसरे से लेकर अट्ठाईसवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ।।

।। बत्तीसवाँ : उद्वर्त्तनाशतक समाप्त ।।

---

१ वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा ३, पृ ११११३

२ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९५१

(ख) प्रज्ञापनासूत्र (पण्णवणासुत्त) भा १, सू ६६६-६७ पृ. १७८-७९ (महावीर जैन विद्यालय द्वारा प्रकाशित)

तेत्तीसइमं सयं : बारस एगिंदियसयाणि

तेतीसवाँ शतक : बारह अवान्तर एकेन्द्रियशतक

प्राथमिक

- यह भगवतीसूत्र का तेतीसवाँ शतक है। इसका नाम एकेन्द्रियशतक है। इस शतक के अन्तर्गत बारह अवान्तर शतक हैं।

- इसका एकेन्द्रियशतक नाम रखने का कारण यह है कि इसमे एकेन्द्रियो के समस्त भेद-प्रभेद तथा अनन्तरोपपन्नक-परम्परोपपन्नक, अनन्तरावगाढ-परम्परावगाढ, अनन्तराहारक-परम्पराहारक, अनन्तरपर्याप्तिक-परम्परपर्याप्तिक, चरम-अचरम इत्यादि विशेषणो से युक्त एकेन्द्रियजीव मे कर्मप्रकृतियो की सत्ता, बन्ध, वेदन आदि का विश्लेषण युक्तिपूर्वक किया गया है।

- साथ ही इसके अन्य अवान्तरशतको मे कृष्णलेश्याविशिष्ट, नीललेश्याविशिष्ट, कापोतलेश्याविशिष्ट, भवसिद्धिक-अभवसिद्धिकताविशिष्ट तथा भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक भेद-प्रभेद युक्त एकेन्द्रियो की कृष्ण-नीलादिलेश्याविशिष्ट तथा अनन्तरोपपन्नक-परम्परोपपन्नक आदि से युक्त कृष्णलेश्यादिविशिष्ट एकेन्द्रियजीवो की सागोपाग प्ररूपणा की है।

- इस प्रकार बारह एकेन्द्रिय अवान्तरशतको मे भिन्न-भिन्न पहलुओ से कर्मबन्धादि का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है।

- यह सारा प्रतिपादन उन लोगो की आँखो को खोल देने वाला है, जो यह मानते है कि 'पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति मे जीव (आत्मा) नही है। ये जड है। इनमे अव्यक्त चेतना होती है।[1] सभी भावेन्द्रियाँ होती है, जिनसे इन्हे सुख-दुःख का वेदन होना है, जिनसे राग-द्वेष कषाय, लेश्या आदि का जत्था बढता जाता है। इन्हे जड माना जाए तो इनके कर्मबन्धादि क्यो हो और क्यो ये जन्म-मरण करे ? बाहर से अपरिग्रही, अहिंसक, ब्रह्मचारी आदि दिखाई देने वाले एकेन्द्रिय जीवोमे वर्तमान युग के विश्लेषण के अनुसार यह सिद्ध हो गया है कि ये परिग्रह, हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य आदि से मुक्त नही हैं। इनमे क्रोधादिकषाय, आहारादिसंज्ञा इत्यादि होते हैं। न तो ये सम्यक्त्वी होते हैं और न ही सम्यग्ज्ञान से युक्त या हिंसादि से विरत होते हैं। यही प्ररूपणा शास्त्रकारो ने इस शतक मे की है।

---

1 अन्तःप्रज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विता, शारीरजैः कर्मदोषैः यान्ति स्थावरता नराः। मनुस्मृति।

तेत्तीसइमं सयं : बारस एगिंदियसयाणि

तेतीसवाँ शतक : बारह एकेन्द्रियशतक

पढमे एगिंदियसए : पढमो उद्देसओ

प्रथम एकेन्द्रियशतक : प्रथम उद्देशक

एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेदों का निरूपण

१ कतिविधा ण भते ! एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविहा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा पुढविकाइया जाव वणस्सतिकाइया ।

[१ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ.] गौतम ! एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे है । यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक ।

२. पुढविकाइया ण भते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता तं जहा - सुहुमपुढविकायिया य, बायरपुढविकाइया य ।

[२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे है, यथा—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक ।

३. सुहुमपुढविकाइया ण भते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, त जहा - पज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया य, अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइया य ।

[३ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[३ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे हैं । यथा—पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक ।

४. बायरपुढविकाइया णं भते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

एव चेव ।

[४ प्र.] भगवन् ! बादरपृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[४ उ.] गौतम ! वे भी पूर्ववत् दो प्रकार के हैं ।

५. एवं आउकाइया वि चउक्कएणं भेएणं णेयव्वा ।

[५] इसी प्रकार अप्कायिक जीवो के चार भेद जानने चाहिए ।

६. एवं जाव वणस्सतिकाइया।

[६] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीव पर्यन्त जानना।

विवेचन—एकेन्द्रिय जीवो का परिवार—प्रस्तुत ६ सूत्रो (१ से ६ तक) मे एकेन्द्रिय जीवो के मुख्य ५ भेद बताकर, फिर पृथ्वीकायिक आदि पाचो के प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चार-चार भेद बताए है। इस प्रकार पाचो प्रकार के एकेन्द्रिय जीवो के कुल ५×४=२० भेद हुए।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति, इन पाचो एकेन्द्रिय जीवो मे जीवत्व (आत्मा) की सिद्धि आगम, वृत्ति एव जीवविज्ञान से सिद्ध है।

एकेन्द्रिय जीवों की कर्मप्रकृतियाँ, उनके बन्ध और वेदन का निरूपण

७. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयाण भंते! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अतराइयं।

[७ प्र] भगवन्! अपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही है?

[७ उ.] गौतम! उनके आठ कर्मप्रकृतियाँ कही है, यथा- ज्ञानावरणीय यावत् अन्तरायकर्म।

८. पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयाणं भंते! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ, त जहा—नाणावरणिज्ज जाव अंतराइयं।

[८ प्र] भगवन्! पर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं?

[८ उ.] गौतम! उनके आठ कर्म-प्रकृतियाँ कही हैं, यथा—ज्ञानावरणीय यावत अन्तरायकर्म।

९. अपज्जत्ताबायरपुढविकायियाणं भंते! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ?

एवं चेव।

[९ प्र] भगवन्! पर्याप्तबादरपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं?

[९ उ.] गौतम! उनके भी पूर्ववत् आठ कर्मप्रकृतियाँ हैं।

१०. पज्जत्ताबायरपुढविकायियाणं भंते! कति कम्मप्पगडीओ०?

एव चेव।

[१० प्र] भगवन्! पर्याप्तबादरपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं?

[१० उ] गौतम! उनके भी पूर्ववत् आठ कर्मप्रकृतियाँ हैं।

११. एवं एएणं कमेणं जाव बायरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाण ति।

[११] इसी प्रकार इसी क्रम से (अपर्याप्तसूक्ष्मअप्कायिक से लेकर) यावत् पर्याप्तबादर वनस्पतिकायिक जीवो की कर्मप्रकृतियो का कथन करना चाहिए।

१२. अपज्जत्तासुहुमपुढविकायिया णं भंते! कति कम्मप्पगडीओ बंधंति?

गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि । सत्त बंधमाणा आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बंधंति । अट्ठ बंधमाणा पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ बंधंति ।

[१२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बांधते हैं ?

[१२ उ] गौतम ! वे सात कर्मप्रकृतियाँ भी बाधते हैं और आठ भी बाधते हैं। सात बाधते हुए आयुकर्म को छोडकर शेष सात कर्मप्रकृतियाँ बाधते है तथा आठ बाधते हुए सम्पूर्ण आठ कर्म-प्रकृतियाँ बांधते हैं।

१३. पज्जत्तासुहुमपुढविकायिया ण भंते ! कति कम्म० ?

एवं चेव ।

[१३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक कितनी कर्मप्रकृतिया बाधते हैं ?

[१३ उ] गौतम ! (ये भी) पूर्ववत् (सात या आठ कर्मप्रकृतियाँ बाधते हैं।)

१४. एवं सव्वे जाव—पज्जत्ताबायरवणस्सतिकायिया णं भंते! कति कम्मप्पगडीओ बधंति ?

एवं चेव ।

[१४ प्र] भगवन् ! इसी प्रकार शेष सभी (भेद-प्रभेद सहित एकेन्द्रिय जीव) पर्याप्त-बादरवनस्पतिकायिक जीव पर्यन्त कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधते है ?

[१४ उ.] गौतम ! (ये सभी पर्याप्तबादरवनस्पतिकायिक पर्यन्त) पूर्ववत् (सात या आठ कर्मप्रकृतियाँ बाधते है।)

१५. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेंति ?

गोयमा ! चोद्दस कम्मप्पगडीओ वेदेंति, त जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं, सोतिंदियवज्झं चक्खिदियवज्झं घाणिंदियवज्झं जिब्भिंदियवज्झं इत्थिवेदवज्झं पुरिसवेदवज्झं ।

[१५ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियो को वेदते (भोगते) है।

[१५ उ.] गौतम ! वे चौदह कर्मप्रकृतिया वेदते (भोगते) है, यथा—(१-८) ज्ञानावरणीय यावत् अन्तरायकर्म, (९) श्रोत्रेन्द्रियवध्य (श्रोत्रेन्द्रियावरण), (१०) चक्षुरिन्द्रियावरण, (११) घ्राणेन्द्रियावरण, (१२) जिह्वेन्द्रियावरण, (१३) स्त्रीवेदावरण और (१४) पुरुषवेदावरण।

१६. एवं चउक्काएण भेएण जाव—पज्जत्ताबायरवणस्सतिकाइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेंति ?

एव चेव चोद्दस ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ तेत्तीसइमे सए : पढमे एगिंदियसए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३३-१ । १ ॥

[१६ प्र] इसी प्रकार (सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त) इन चारो भेदो सहित, यावत्—हे भगवन् ! पर्याप्तबादरवनस्पतिकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतिया वेदते हैं ?

[१६ उ.] गौतम ! पूर्ववत् चौदह कर्मप्रकृतियाँ वेदते है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—एकेन्द्रिय मे कर्मप्रकृतियो की सत्ता, बन्ध और वेदन—सभी प्रकार के एकेन्द्रिय जीवो मे आठ कर्मप्रकृतियाँ सत्ता मे रहती हैं । वे सात या आठ कर्मप्रकृतियाँ बाधते हैं तथा चौदह कर्मप्रकृतियाँ वेदते (भोगते) हैं । १४ मे से ८ तो मूल कर्मप्रकृतियाँ है, ६ उत्तरप्रकृतियाँ है—चार इन्द्रियो के क्रमश चार आवरण तथा स्त्रीवेदावरण एव पुरुषवेदावरण । श्रोत्रेन्द्रियावरण आदि ४ मतिज्ञानावरणीय के प्रकार हैं तथा स्त्रीवेदावरण एव पुरुषवेदावरण मोहनीयकर्म के प्रकार हैं ।

चौदह कर्मप्रकृतियो का वेदन क्यो और कैसे ?—समस्त प्रकार के एकेन्द्रिय जीव १४ कर्म-प्रकृतियो का वेदन करते हैं, उनमे से आठ तो प्रसिद्ध है । शेष ६ उनके विशेषभूत है । आशय यह है कि एकेन्द्रिय जीवो को सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय और नपु सकवेद प्राप्त होता है, उनको शेष चार इन्द्रियाँ उपलब्ध नही होती, उनका ज्ञान भी आवृत रहता है तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेद भी उन्हे प्राप्त नही होते ।

सोइंदियवज्झं आदि का विशेषार्थ—जिसका श्रोत्रेन्द्रिय वध्य—हननीय हो, वह श्रोत्रेन्द्रिय-वध्य है, इसी प्रकार अन्य इन्द्रियो के साथ तथा वेद के साथ 'वध्य' शब्द लगा है, उसका भावार्थ है—श्रोत्रेन्द्रिय आदि मतिज्ञान विशेष आवृत होते है, उन्हे प्राप्त नही है ।[1]

।। तेतीसवाँ शतक : प्रथम एकेन्द्रियशतक : प्रथम उद्देशक सम्पूर्ण ।।

१ (क) श्रीमद्भगवतीसूत्रम् खण्ड ४ (गुजराती अनुवाद), पृ. ३१८

(ख) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९५४

पढमे एगिंदियसए : बीओ उद्देसओ

प्रथम एकेन्द्रिय शतक : द्वितीय उद्देशक

अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय के भेद-प्रभेद, उनमें कर्मप्रकृतियाँ, उनके बन्ध और वेदन का निरूपण

१. कतिविधा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सइकाइया ।

[१ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक (तत्कालोत्पन्न) एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ.] गौतम ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के कहे हैं, यथा—पृथ्वी-कायिक यावत् वनस्पतिकायिक ।

२. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! पुढविकाइया कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविकाइया य बादरपुढविकाइया य ।

[२ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[२ उ.] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सूक्ष्मअनन्तरोपपन्नक पृथ्वीकायिक और बादरअनन्तरोपपन्नक पृथ्वीकायिक ।

३. एवं दुपएणं भेएणं जाव वणस्सइकाइया ।

[३] इसी प्रकार (प्रत्येक एकेन्द्रिय के) दो-दो भेद वनस्पतिकायिक पर्यन्त समझना ।

४. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं ।

[४ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं ?

[४ उ.] गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं, यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तरायकर्म ।

५. अणंतरोववन्नगबादरपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं ।

[५ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नकबादरपृथ्वीकायिक के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं ?

[५ उ.] गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियाँ कही है, यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय-कर्म ।

६. एवं जाव अणंतरोववन्नगबादरवणस्सइकाइयाणं ति ।

[६] इसी प्रकार अनन्तरोपपन्नकबादरवनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना ।

७. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविकाइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ बंधंति ?

गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बंधति ।

[७ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधते हैं ?

[७ उ] गौतम ! वे आयुकर्म को छोड कर शेष सात कर्मप्रकृतियाँ बाधते है ।

८. एवं जाव अणंतरोववन्नगबायरवणस्सइकाइय त्ति ।

[८] इसी प्रकार यावत् अनन्तरोपपन्नकबादरवनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना ।

९. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविकाइया ण भते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेंति ?

गोयमा ! चोद्दस कम्मप्पगडीओ वेदेंति, त जहा—नाणावरणिज्ज जाव पुरिसवेदवज्झं ।

[९ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नकसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ वेदते है ?

[९ उ] गौतम ! वे (पूर्वोक्त) चौदह कर्मप्रकृतियाँ वेदते है, यथा—पूर्वोक्त प्रकार से ज्ञानावरणीय यावत् पुरुषवेदवध्य (पुरुषवेदावरण) वेदते हैं ।

१०. एव जाव अणंतरोववन्नगबायरवणस्सइकाइय त्ति ।

सेवं भंते ! सेवं भते ! त्ति० ।

।। तेत्तीसइमे सए : पढमे एगिंदियसए : बिइओ उद्देसओ समत्तो ।। ३३ । १ । २ ।।

[१०] इसी प्रकार यावत् अनन्तरोपपन्नकबादरवनस्पतिकायिक-पर्यन्त कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवो के सम्बन्ध मे यत्किंचित्—प्रस्तुत उद्देशक मे अनन्तरोपपन्नक जीवो के पाच भेद तथा उनके प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद करके उनमे कर्मप्रकृतियो तथा उनके बन्ध और वेदन का निरूपण किया गया है। प्रथम उद्देशक से इस द्वितीय उद्देशक मे यही अन्तर है कि वहाँ सामान्य एकेन्द्रिय जीवो के सम्बन्ध मे निरूपण है, जबकि इसमे अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवो का है। प्रथम उद्देशक मे पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय के प्रत्येक के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त, यो चार-चार भेद किये है, जबकि यहाँ अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय मे पर्याप्त और अपर्याप्त का अभाव होने से सिर्फ दो भेद किये हैं। ये सभी अपर्याप्त ही होते हैं। कर्मबन्ध आयुष्य को छोड कर सात प्रकृतियो का होता है। शेष सब प्ररूपण पूर्ववत् ही है।[1]

।। तेतीसवाँ शतक . प्रथम एकेन्द्रियशतक : द्वितीय उद्देशक सम्पूर्ण ।।

१. (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९५४

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३६६५

पढमे एगिंदियसए : तइओ उद्देसओ

प्रथम एकेन्द्रियशतक : तृतीय उद्देशक

परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेद, उनमें कर्मप्रकृतियाँ, उनका बंध और वेदन

१. कतिविधा णं भंते ! परंपरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता ? गोयमा ! पचविहा परपरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता, त जहा—पुढविकाइया० । एव चउक्कम्रो भेदो जहा ओहिउद्देसए ।

[१ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१ उ] गौतम ! परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे गए है, यथा—पृथ्वीकायिक इत्यादि और औघिक उद्देशक के अनुसार इनके चार-चार भेद कहने चाहिए।

२. परपरोववन्नगअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयाणं भते ! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ। एव एतेण अभिलावेणं जहा ओहिउद्देसए तहेव निरवसेस भाणियव्व जाव चोद्दस वेदेंति ।

सेवं भते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। तेतीसइमे सए पढमे एगिंदियसए ततिओ उद्देसओ समत्तो ।। ३३-१-३ ।।

[२ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नकअपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही गई है ?

[२ उ] गौतम ! इस अभिलाप से औघिक (प्रथम) उद्देशक के अनुसार यावत् चौदह कर्म-प्रकृतियाँ वेदते हैं, (यहाँ तक) समग्र पाठ पूर्ववत् (इसी प्रकार) कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन— प्रथम उद्देशक का अतिदेश- इस परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय उद्देशक मे समग्र वक्तव्यता प्रथम (औघिक) उद्देशक के अनुसार प्रतिपादित की गई है। तत्काल उत्पन्न हुए जीव को 'अनन्तरोपपन्नक' और जिसको उत्पन्न हुए दो-तीन आदि समय हो चुके हैं, उसे परम्परोपपन्नक कहते हैं। परम्परोपपन्नक मे पृथ्वीकायिक आदि प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव के प्रथम उद्देशक मे कहे अनुसार चार-चार भेद होते हैं।[१]

।। तेतीसवाँ शतक : प्रथम एकेन्द्रियशतक : तृतीय उद्देशक सम्पूर्ण ।।

---

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा ३ (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) १११६-१११७

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ ३६६५

पढमे एगिंदियसए : चउत्थाइ-एक्कारस पज्जंता उद्देसगा

प्रथम एकेन्द्रियशतक : चौथे से लेकर ग्यारहवें उद्देशकपर्यन्त

१. अणंतरोगाढा जहा अणतरोववन्नगा ।। ३३-१-४ ।।

[१] अनन्तरावगाढ एकेन्द्रिय के सम्बन्ध मे अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के समान कहना चाहिए ।।३३।१।४।।

२ परपरोगाढा जहा परपरोववन्नगा ।। ३३-१-५ ।।

[२] परम्परावगाढ एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के समान जानना चाहिए ।।३३।१।५।।

३. अणंतराहारगा जहा अणतरोववन्नगा ।। ३३-१-६ ।।

[३] अनन्ताहारक एकेन्द्रिय का कथन अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए ।।३३।१।६।।

४. परंपराहारगा जहा परंपरोववन्नगा ।। ३३-१-७ ।।

[४] परम्पराहारक एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार समझना चाहिए ।।३४।१।७।।

५. अणंतरपज्जत्तगा जहा अणतरोववन्नगा ।। ३३-१-८ ।।

[५] अनन्तरपर्याप्तक एकेन्द्रिय की वक्तव्यता अनन्तरोपपन्नक के समान जाननी चाहिए। ३३।१।८।।

६. परंपरपज्जत्तगा जहा परंपरोववन्नगा ।। ३३-१-९ ।।

[६] परम्परपर्याप्तक एकेन्द्रिय की वक्तव्यता परम्परोपपन्नक के समान जाननी चाहिए। ३३।१।९।।

७ चरिमा वि जहा परंपरोववन्नगा ।। ३३-१-१० ।।

[७] चरम एकेन्द्रिय का कथन परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए। ३३।१।१०।।

८. एवं अचरिमा वि एव एते एक्कारस उद्देसगा।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरति ।। ३३-१-११ ।।

।। तेतीसइमे सए : चउत्थाइ-एगारस पज्जंता उद्देसगा समत्ता ।।

।। तेतीसइमे सए : पढमं एगिंदियसयं समत्तं ।। ३३-१ ।।

[८] इसी प्रकार अचरम एकेन्द्रिय-सम्बन्धी वक्तव्यता भी जान लेनी चाहिए।

ये सभी ग्यारह उद्देशक हुए ॥३३।१-११॥

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—अतिदेशपूर्वक आठ उद्देशक—चतुर्थ उद्देशक से लेकर ग्यारहवें उद्देशक तक आठ उद्देशको मे प्रतिपाद्य विषय का अतिदेश चौथे से नौवे उद्देशक तक अनन्तरविशिष्ट एकेन्द्रिय का अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अनुसार और परम्परविशिष्ट एकेन्द्रिय का परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार तथा चरम और अचरम एकेन्द्रिय का अतिदेश परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार किया गया है।[1]

॥ तेतीसवां शतक : प्रथम एकेन्द्रियशतक : चौथे से ग्यारहवें तक के उद्देशक सम्पूर्ण ॥

॥ तेतीसवां शतक : प्रथम एकेन्द्रियशतक समाप्त ॥

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), भा. ३, पृ. ११.१७-१११८

बिईए एगिंदियसए : पढमे उद्देसओ

द्वितीय एकेन्द्रियशतक : प्रथम उद्देशक

कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय-भेद-प्रभेद : उनकी कर्मप्रकृतियाँ, उनके बंध और वेदन की प्ररूपणा

१. कतिविधा णं भंते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सतिकाइया ।

[१ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे गए है, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त ।

२. कण्हलेस्सा णं भंते ! पुढविकाइया कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, त जहा—सुहुमपुढविकाइया य बादरपुढविकाइया य ।

[२ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक ।

३. कण्हलेस्सा णं भंते ! सुहुमपुढविकायिया कतिविहा पन्नत्ता ?

एव एएणं अभिलावेणं चउक्कओ भेदो जहेव ओहिउद्देसए ।

[३ प्र] भगवन् ! (कृष्णलेश्यी) सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[३ उ] गौतम ! जिस प्रकार ओघिक उद्देशक मे प्रत्येक एकेन्द्रिय के चार-चार भेद कहे हैं उसी अभिलाप (पाठ) के अनुसार यहाँ भी पूर्ववत् प्रत्येक एकेन्द्रिय के चार-चार भेद कहने चाहिए ।

४. कण्हलेस्सअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयाण भंते ! कति कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ ?

एव एएण अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसए तहेव पन्नत्ताओ ।

[४ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी अपर्याप्तक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं ?

[४ उ] गौतम ! ओघिक उद्देशक के अनुसार इसी अभिलाप (पाठ) से कर्मप्रकृतियाँ कहनी चाहिए ।

५. तहेव बंधति ।

[५] उसी प्रकार वे (कर्मप्रकृतियाँ) बांधते हैं ।

६. तहेव वेदेंति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ तेतीसइमे सए : बिइए एगिंदिय-सए : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३३ ।२। १ ॥

[६] उसी प्रकार वे (कर्मप्रकृतियाँ) वेदते हैं ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय के लिए औधिक उद्देशक का अतिदेश—प्रस्तुत प्रकरण मे कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवो के भेद-प्रभेद, उनमे पाई जाने वाली कर्मप्रकृतियाँ तथा उनके बन्ध और वेदन के समग्र कथन का प्रथम अवान्तरशतक के प्रथम (औधिक) उद्देशक के अनुसार अतिदेश किया गया है ।[1]

॥ तेतीसवां शतक : दूसरा अवान्तर एकेन्द्रियशतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

१. वियाहपण्णत्तिसुत्तं, भा ३, पृ. ११११

बिइए एगिंदियसए : बिइओ उद्देसओ

द्वितीय एकेन्द्रियशतक : द्वितीय उद्देशक

अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय भेद-प्रभेद, उनकी कर्मप्रकृतियाँ, बंध तथा वेदन की प्ररूपणा

१ कतिविधा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविहा अणतरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया०। एवं एएणं अभिलावेणं तहेव दुपओ भेदो जाव वणस्सइकाइय त्ति।

[१ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नककृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ.] गौतम ! अनन्तरोपपन्नककृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव (पूर्ववत्) पाच प्रकार के कहे हैं। इस अभिलाप से पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त (पूर्ववत् प्रत्येक के) दो-दो भेद होते हैं।

२. अणंतरोववन्नगकण्हलेस्ससुहुमपुढविकाइयाण भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ?

एव एएणं अभिलावेणं जहा ओहिओ अणंतरोववन्नगाणं उद्देसओ तहेव जाव वेदेंति।

सेवं भंते ! सेव भते ! त्ति०।

॥ तेतीसइमे सए : बिइए एगिंदियसए : बिइओ उद्देसओ समत्तो ॥ ३३-२-२ ॥

[२ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्म-प्रकृतियाँ कही हैं ?

[२ उ] गौतम ! पूर्वोक्त अभिलाप से औधिक अनन्तरोपपन्नक के अनुसार 'वेदते है', तक समग्र कथन करना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—औधिक अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के अनुसार—यहाँ कृष्णलेश्याविशिष्ट अनन्तरोप-पन्नक एकेन्द्रिय के मूल पाच भेद तथा आठ कर्मप्रकृतियाँ, बन्ध तथा वेदन का निरूपण किया गया हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि यहाँ पृथ्वीकायिक आदि पाचो के चार भेद के बदले केवल दो भेद ही होते है—सूक्ष्म और बादर।

॥ तेतीसवाँ शतक : द्वितीय एकेन्द्रियशतक : द्वितीय उद्देशक सम्पूर्ण ॥

बिइए एगिंदियसए : तइओ उद्देसओ

द्वितीय एकेन्द्रिय-शतक : तृतीय उद्देशक

परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियजीवों के भेद-प्रभेद, कर्मप्रकृतियाँ, बंध और वेदन की प्ररूपणा

१. कतिविधा णं भंते ! परंपरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा० एगिंदिया पन्नता, तं जहा—पुढविकाइया०, एवं एएणं अभिलावेण चउक्कओ भेदो जाव वणस्सइकाइय त्ति ।

[१ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ.] गौतम ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे है । यथा—पृथ्वीकायिक इत्यादि । इस प्रकार इसी अभिलाप से (पृथ्वीकायादि प्रत्येक के) वनस्पतिकायिक-पर्यन्त चार-चार भेद कहने चाहिए ।

२. परपरोववन्नगकण्हलेस्सअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ?

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ परंपरोववन्नगउद्देसओ तहेव जाव वेदेंति ।

।। तेतीसइमे सए : बिइए एगिंदियसए : तइओ उद्देसओ समत्तो ।।३३-२-३।।

[२ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नककृष्णलेश्यीअपर्याप्तसूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं ?

[२ उ.] गौतम ! औघिक परम्परोपपन्नक उद्देशक के अनुसार (कर्मप्रकृतियो से लेकर) 'वेदते हैं' तक समग्र कथन कहना चाहिए ।

विवेचन—निष्कर्ष—कृष्णलेश्याविशिष्ट परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवो के भेद-प्रभेद, कर्मप्रकृतिया, बन्ध और वेदन का समग्र कथन औघिक परम्परोपपन्नक के समान है ।

।। तेतीसवां शतक : द्वितीय एकेन्द्रियशतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

बेइए एगिंदियसए : चउत्थाइ-एक्कारसम-पज्जंता उद्देसगा

द्वितीय एकेन्द्रियशतक : चौथे से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

परम्परोपपन्नक कृष्ण. एके. के चौथे से ग्यारहवें शतक तक की वक्तव्यता

१. एवं एएणं अभिलावेण जहेव ओहिए एगिंदियसए एक्कारस उद्देसगा भणिया तहेव कण्हलेस्ससते वि भाणियव्वा जाव अचरिमकण्हलेस्सा एगिंदिया ।

।। तेतीसइमे सए : बिइए एगिंदियसए : चउत्थाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ।।

[१] औघिक एकेन्द्रियशतक मे जिस प्रकार ग्यारह उद्देशक कहे, उसी प्रकार इस अभिलाप से यावत् अचरम और चरम कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय पर्यन्त कृष्णलेश्यीशतक मे भी कहने चाहिए ।

।। तेतीसवां शतक : द्वितीय एकेन्द्रियशतक : चौथे से ग्यारहवें पर्यन्त उद्देशक समाप्त ।।

तइए एगिंदियसए पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा

तृतीय एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें पर्यन्त उद्देशक

द्वितीय एकेन्द्रियशतकानुसार तृतीय नीललेश्यी एकेन्द्रियशतक-वक्तव्यता

१. जहा कण्हलेस्सेहिं एवं नीललेस्सेहि वि सयं भाणितव्वं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। तेतीसइमे : ततिए एगिंदियसए पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ।।

।। तेतीसइमे सए : ततियं एगिंदियसयं समत्तं ।। ३३-३।।

[१] जैसे कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियविषयक शतक कहा, वैसे ही नीललेश्यी एकेन्द्रिय जीवो के विषय मे भी समग्र शतक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। तेतीसवां शतक : तृतीय एकेन्द्रिय शतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक-पर्यन्त समाप्त ।।

।। तेतीसवां शतक : तृतीय एकेन्द्रियशतक सम्पूर्ण ।। ३३-३ ।। ✤✤

चउत्थे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा

चतुर्थ एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें पर्यन्त उद्देशक

द्वितीय एकेन्द्रियशतकानुसार कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय-वक्तव्यता-निर्देश

१. एव काउलेस्सेहि वि सयं भाणियव्वं, नवरं 'काउलेस्स' त्ति अभिलावो

।। चउत्थे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ।। ४-१-११ ।।

।। तेतीसइमे सए : चउत्थं एगिंदियसयं समत्तं ।। ३३-४ ।।

[१] कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय के विषय मे भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) शतक कहना चाहिए, किन्तु **'कापोतलेश्या'**, ऐसा पाठ कहना चाहिए।

।। तेतीसवां शतक : चतुर्थ एकेन्द्रिय शतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त सम्पूर्ण ।।

।। तेतीसवां शतक : चतुर्थ एकेन्द्रियशतक समाप्त ।। ३३।४ ।।

पंचमे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा

पांचवां एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

प्रथम एकेन्द्रियशतकानुसार भवसिद्धिक-एकेन्द्रिय-वक्तव्यता-निर्देश

१. कतिविहा णं भंते ! भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सति-काइया। भेदो चउक्कओ जाव वणस्सइकाइय त्ति।

[१ प्र] भगवन् ! भवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ.] गौतम ! भवसिद्धिक एकेन्द्रिय पाच प्रकार के कहे हैं, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। इनके चार-चार भेद (आदि समस्त वक्तव्यता) वनस्पतिकायिक पर्यन्त पूर्ववत् कहनी चाहिए।

२. भवसिद्धीयअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ ?

एवं एतेणं अभिलावेणं जहेव पढमिल्लं एगिंदियसयं तहेव भवसिद्धीयसयं पि भाणियव्वं। उद्देसगपरिवाडी तहेव जाव अचरिम त्ति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ पंचमे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥ ५।१-११ ॥

॥ तेतीसइमे सए : पंचमं एगिंदियसयं समत्तं ॥ ३३-५ ॥

[२ प्र] भगवन् ! भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं ?

[२ उ.] गौतम ! प्रथम एकेन्द्रियशतक के समान भवसिद्धिकशतक भी कहना चाहिए। उद्देशको की परिपाटी भी उसी प्रकार (पूर्ववत्) अचरम उद्देशक पर्यन्त कहनी चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

॥ पांचवां एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त सम्पूर्ण ॥

॥ तेतीसवां शतक : पंचम एकेन्द्रियशतक समाप्त ॥

छट्ठे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा

छठा एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें पर्यन्त उद्देशक

प्रथम एकेन्द्रियशतकानुसार : कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक-एकेन्द्रिय-वक्तव्यता-निर्देश

१. कतिविहा ण भंते ! कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता, पुढविकाइया जाव वणस्सइ-काइया ।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्यावान् भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे गए है, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक ।

२. कण्हलेस्सभवसिद्धीयपुढविकाइया णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सुहुमपुढविकाइया य, बायरपुढविकाइया य ।

[२ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे है ?

[२ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे है, यथा—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादर-पृथ्वीकायिक ।

३ कण्हलेस्सभवसिद्धीयसुहुमपुढविकायिया ण भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक सूक्ष्मपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे है ?

[३ उ] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे है, यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

४. एव बायरा वि ।

[४] इसी प्रकार बादरपृथ्वीकायिको के भी दो भेद है ।

५ एवं एतेणं अभिलावेणं तहेव चउक्कओ भेदो भाणियव्वो ।

[५] इसी अभिलाप से उसी प्रकार प्रत्येक के चार-चार भेद कहने चाहिए ।

६. कण्हलेस्सभवसिद्धीयअपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ ? एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसए तहेव जाव वेदेंति त्ति ।

[६ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक-अपर्याप्त-सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं ?

[६ उ] गौतम ! इसी अभिलाप से औघिक उद्देशक के समान 'वेदते हैं', यहाँ तक कहना चाहिए।

७. कतिविधा णं भंते अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा जाव वणस्सतिकाइया।

[७ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[७ उ.] गौतम ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय पाच प्रकार के कहे हैं, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक।

८. अणंतरोववन्नगकण्हलेस्सभवसिद्धीयपुढविकाइया णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पन्नत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविकाइया य, बायरपुढविकाइया य।

[८ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक-पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के कहे हैं ?

[८ उ.] गौतम ! वे दो प्रकार के कहे है, यथा- सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादर-पृथ्वीकायिक।

९. एवं दुपओ भेदो।

[९] इसी प्रकार अप्कायिक आदि के भी दो-दो भेद कहने चाहिए।

१०. अणंतरोववन्नगकण्हलेस्सभवसिद्धीयसुहुमपुढविकाइयाण भंते ! कति कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ।

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ अणंतरोववन्नो उद्देसओ तहेव जाव वेदेंति।

[१० प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक सूक्ष्मपृथ्वीकायिको के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं ?

[१० उ] गौतम ! यहाँ भी इसी अभिलाप से अनन्तरोपपन्नक क औघिक उद्देशक के अनुसार, यावत् 'वेदते हैं' यहाँ तक कहना चाहिए।

११. एवं एतेणं अभिलावेणं एक्कारस वि उद्देसगा तहेव भाणियव्वा जहा ओहियसए जाव अचरिमो त्ति।

॥ छट्ठे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥ ६।१-११ ॥

॥ तेतीसइमे सए : छट्ठं एगिंदियसतं समत्तं ॥ ३३-६ ॥

[११] इसी प्रकार इसी अभिलाप से, औघिक शतक के अनुसार, पूर्ववत् ग्यारह ही उद्देशक 'अचरमउद्देशक' पर्यन्त कहने चाहिए।

॥ छठा एकेन्द्रियशतक : एक से लेकर ग्यारह उद्देशक-पर्यन्त समाप्त ॥

॥ तेतीसवाँ शतक : छठा एकेन्द्रियशतक सम्पूर्ण ॥

सत्तमे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा

सप्तम एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

छठे एकेन्द्रियशतकानुसार : नीललेश्यी-भवसिद्धिक-एकेन्द्रिय-कथन-निर्देश

१. जहा कण्हलेस्सभवसिद्धिए सयं भणिय एवं नीललेस्सभवसिद्धीएहि वि सयं भाणियव्वं ।

॥ सत्तमे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥ ७।१-११ ॥

॥ तेतीसइमे सय · सत्तमं एगिंदियसतं समत्तं ॥ ३३-७ ॥

[१] जिस प्रकार कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक कहा, उसी प्रकार नीललेश्यी भवसिद्धिक-एकेन्द्रिय जीवों का शतक भी कहना चाहिए ।

॥ सप्तम एकेन्द्रियशतक . पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक समाप्त ॥

॥ तेतीसवाँ शतक : सप्तम एकेन्द्रियशतक सम्पूर्ण ॥

अट्ठमे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा

आठवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक-पर्यन्त

छठे एकेन्द्रियशतकानुसार : कापोतलेश्यी-भवसिद्धिक-एकेन्द्रिय-वक्तव्यता-निर्देश

१. एवं काउलेस्सभवसिद्धीएहि वि सयं ।

॥ अट्ठमे एगिंदियसए : पढमाइ-एक्कारस-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥ ८।१-११ ॥

॥ तेतीसइमे सए : अट्ठमं एगिंदियसयं समत्तं ॥ ३३-८ ॥

[१] कापोतलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों का शतक भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) कहना चाहिए ।

॥ आठवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ॥

॥ तेतीसवाँ शतक : अष्टम एकेन्द्रियशतक समाप्त ॥

नवमे एगिंदियसए : पढमाइ-नवमा-पज्जंता उद्देसगा

नौवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवे उद्देशक तक

पचम एकेन्द्रियशतक के नौ उद्देशकानुसार : अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय-वक्तव्यता-निर्देश

१. कतिविधा णं भते ! अभवसिद्धीया एगिदिया पन्नत्ता ? गोयमा !

पचविहा अभवसिद्धीया० पन्नत्ता, त जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सतिकायिया ।

[१ प्र] भगवन् ! अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

[१ उ] गौतम ! अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय पाच प्रकार के कहे गए है, यथा—पृथ्वीकायिक (से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक ।

२. एव जहेव भवसिद्धीयसय, नवर नव उद्देसगा, चरिम-अचरिमउद्देसकवज्ज । सेस तहेव ।

।। नवमे एगिदियसए . पढमाइ-नवम-पज्जता उद्देसगा समत्ता ।। ९।१-११ ।।

तेतीसइमे सए : नवम एगिदियसय समत्त ।। ३३-९ ।।

[२] जिस प्रकार भवसिद्धिकशतक कहा, उसी प्रकार अभवसिद्धिकशतक भी कहना चाहिए, किन्तु 'चरम' और 'अचरम' इन दो उद्देशको को छोडकर इनके शेष नौ उद्देशक कहने चाहिए । शेष सब पूर्ववत् है ।

।। नवम एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवे उद्देशक-पर्यन्त समाप्त ।।

।। तेतीसवाँ शतक : नौवाँ एकेन्द्रियशतक सम्पूर्ण ।।

दसमे एगिंदियसए : पढमाइ-नवम-पज्जंता उद्देसगा

दसवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवें उद्देशक-पर्यन्त

छठे एकेन्द्रियशतकानुसार : कृष्णलेश्यी-अभवसिद्धिक-एकेन्द्रिय-वक्तव्यता-निर्देश

१. एवं कण्हलेस्सअभवसिद्धीयसयं पि ।

।। दसमे एगिदियसए : पढमाइ-नवम-पज्जता उद्देसगा समत्ता ।। १०।१-९ ।।

।। तेतीसइमे सए : दसम एगिदियसय समत्त ।। ३३-१० ।।

[१] इसी प्रकार (पूर्ववत) कृष्णलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक भी कहना चाहिए ।

।। दसवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवें उद्देशक तक समाप्त ।।

।। तेतीसवाँ शतक दसवाँ एकेन्द्रियशतक सम्पूर्ण ।।

एक्कारसमे एगिंदियसए : पढमाइ-नवम-पज्जंता उद्देसगा

ग्यारहवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवें पर्यन्त उद्देशक

सप्तम एकेन्द्रियशतकानुसार : नीललेश्यी-अभवसिद्धिक-एकेन्द्रियशतक-निर्देश

१. नीललेस्सअभवसिद्धीयएगिंदियएहिं वि सय ।

।। तेतीसइमे सए : एक्कारसमे एगिंदियसए पढमाइ-नवम-पज्जता उद्देसगा समत्ता ।।३३।११।१-९ ।।

[१] इसी प्रकार नीललेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक भी जानना चाहिए।

।। ग्यारहवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवें उद्देशक तक समाप्त ।।

।। तेतीसवाँ शतक : ग्यारहवाँ एकेन्द्रियशतक सम्पूर्ण ।।

बारसमे एगिंदियसए : पढमाइ-नवम-पज्जंता उद्देसगा

बारहवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवें उद्देशक पर्यन्त

अष्टम एकेन्द्रियशतकानुसार : कापोतलेश्यी अभवसिद्धिक-एकेन्द्रियशतक-निर्देश

१. काउलेस्सअभवसिद्धीएहिं वि सयं ।

[१] कापोतलेश्यी अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय का शतक भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

२. एवं चत्तारि [९—१२] वि अभवसिद्धीयसताणि, नव नव उद्देसगा भवति ।

[२] इस प्रकार (नौवें से बारहवे तक) चार अभवसिद्धिक (अवान्तर-) शतक हैं। इनमे प्रत्येक के नौ-नौ उद्देशक है।

३. एवं एयाणि बारस एगिंदियसयाणि भवंति ।

।। तेतीसइमे सए : बारसमे एगिंदियसए : पढमाइ-नवम-पज्जंता उद्देसगा समत्ता ।। ३३।१२।१-९।।

[३] इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवो के (कुल मिला कर) ये बारह शतक होते हैं।

।। बारहवाँ एकेन्द्रियशतक : पहले से नौवें उद्देशक तक समाप्त ।।

।। तेतीसवाँ शतक : बारहवाँ एकेन्द्रियशतक सम्पूर्ण ।।

।। तेतीसवाँ शतक समाप्त ।।

चोत्तीसइमं सयं : बारस एगिंदिय-सेढि-सयाइं

चौत्तीसवाँ शतक : बारह एकेन्द्रिय-श्रेणी शतक

प्राथमिक

- यह भगवतीसूत्र का चौतीसवाँ श्रेणीशतक या एकेन्द्रिय श्रेणीशतक है। इसके भी पूर्व शतक के समान बारह अवान्तर शतक हैं।

- इस शतक मे एकेन्द्रियजीव से ही सम्बन्धित चर्चा की गई है। किन्तु पृथ्वीकायिक (भेद-प्रभेद सहित) से लेकर वनस्पतिकायिक तक के समस्त एकेन्द्रिय जीवो का जब मरण होता है तब उन्हे जिस गति-योनि मे जाना होता है, वहाँ वे एक समय की विग्रहगति से जाते हैं अथवा दो, तीन या चार समय की विग्रहगति से ? इत्यादि चर्चा मुख्य रूप से पूवशतक मे उक्त विभिन्न विशेषणो से युक्त एकेन्द्रिय को लेकर की गई है। साथ ही एक, दो, तीन या चार समय की विग्रहगति से ही वे क्यो उत्पन्न होते हैं ? इसका भी विश्लेषण किया गया है।

- ऋज्वायता, एकतोवक्रा आदि सात श्रेणियो का प्रतिपादन किया गया है। ये आकाशप्रदेश मे पहले से निश्चित या अकित नही है। जीव अपनी स्वाभाविक गति से अनुश्रेणी, विश्रेणी आदि से जाता है, तब सात श्रेणियो मे से जिस श्रेणी मे जाता है, उसी के अनुसार उसकी विग्रहगति का समयमान निश्चित किया जाता है।

- इसी प्रकार एक दिशा के चरमान्त से दूसरी दिशा के चरमान्त मे तथा उसी दिशा के अमुक क्षेत्र मे कौन-सा एकेन्द्रिय कितने समय की विग्रहगति से जाता है ? इसका भी परिमाण बताया है।

- सातो श्रेणियो का स्वरूप भी वृत्तिकार ने स्पष्ट किया है।

- अधिकाश दार्शनिक तो एकेन्द्रिय जीवो के जन्म मरण को ही नही मानते। जो मानते हैं, उनमे से कई कहते है कि एकेन्द्रिय मरकर एकेन्द्रिय ही बनता है अथवा शरीर नष्ट होने के साथ ही वह सदा के लिए मर जाता है, फिर जन्मता नही। इस प्रकार की असगत धारणाओ का निराकरण भी तथा मरणोत्तरदशा एव भावी गति-योनि मे उत्पत्ति होने से पूर्व की ऋज्वायता आदि सात श्रेणियो से गमन भी बता दिया है।

- निष्कर्ष यह है कि मरने के बाद एकेन्द्रिय जीव भी अधिक से अधिक चार समय मे स्वगन्तव्य स्थान मे पहुँच जाता है। मरण के पश्चात् इतनी तीव्रगति से वह जाता है।

चोत्तीसइमं सयं : बारस एगिंदिय-सेढि-सयाइं

चौतीसवाँ शतक : बारह एकेन्द्रिय-श्रेणी शतक

एकेन्द्रिय जीवों के भेद-प्रभेद का निरूपण

१. कतिविहा ण भंते ! एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा—पुढविकाइया जाव वणस्सतिकाइया । एवमेते वि चउक्कएणं भेएणं भाणियव्वा जाव वणस्सइकाइया ।

[१ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे गए है ?

[१ उ] गौतम ! एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे गए हैं, यथा— पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक ।

इस प्रकार इनके भी प्रत्येक के चार-चार भेद वनस्पतिकायिक-पर्यन्त कहने चाहिए ।

विवेचन — एकेन्द्रिय भेद-प्रभेद की पुनरुक्ति क्यो ? —यहाँ इस शतक मे एकेन्द्रिय जीवो की श्रेणी के विषय मे निरूपण करने के लिए एकेन्द्रिय भेद-प्रभेदो का पुन कथन किया गया है ।

एकेन्द्रियों की विग्रहगति का विविध दिशाओं की अपेक्षा समय-निरूपण

२ **[१] अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए, से ण भंते ! कतिसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा ?**

गोयमा ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।

[२-१ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमान्त मे मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिमी चरमान्त मे अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वी-कायिक-रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, तो हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[२-१ उ] गौतम वह ! एक समय की, दो समय की अथवा तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ एगसमइएण वा दुसमइएण वा जाव उववज्जेज्जा ?

एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तं जहा —उज्जुयायता सेढी १, एगओवंका २, दुहतोवका ३, एगतोखहा ४, दुहओखहा ५, चक्कवाला ६, अद्धचक्कवाला ७ । उज्जुयायताए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा, एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा दुहतोवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा । से तेणट्ठेणं गोयमा । जाव उववज्जेज्जा । १ ।

[२-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि वह एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

[२-२ उ] हे गौतम ! मैने सात श्रेणियाँ कही है, यथा– (१) ऋज्वायता, (२) एकतोवक्रा, (३) उभयतोवक्रा, (४) एकत: खा, (५) उभयत खा, (६) चक्रवाल और (७) अर्द्धचक्रवाल ।

जो पृथ्वीकायिक जीव ऋज्वायता श्रेणी से उत्पन्न होता है, वह एक समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है, जो एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है, वह दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है, जो उभयतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है, वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

इस कारण से हे गौतम ! यह कहा जाता है कि वह एक, दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।। १ ।।

३. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते पज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से ण भंते ! कतिसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा, सेस त चेव जाव से तेणट्ठेण जाव विग्गहेणं उववज्जेज्जा । २ ।

[३ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमान्त मे मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिमदिशा के चरमान्त मे पर्याप्त सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-रूप से उत्पन्न होने योग्य है, तो हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[३ उ] गौतम ! वह एक समय, दो समय अथवा तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है, इत्यादि शेष सब पूर्ववत्, इस कारण तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है, यहाँ तक कहना चाहिए । ।। २ ।।

४ एव अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइओ पुरत्थिमिल्ले चरिमते समोहणावेत्ता पच्चत्थिमिल्ले चरिमते बायरपुढविकाइएसु अपज्जत्तएसु उववातेयव्वो ।। ३ ।।

[४] इसी प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव का पूर्वदिशा के चरमान्त मे मरणसमुद्घात से मृत्यु प्राप्त कर पश्चिमदिशा के चरमान्त मे बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायिक-रूप से उपपात कहना चाहिए ।। ३ ।।

५ ताहे तेसु चेव पज्जत्तएसु ।। ४ ।।

[५] और वही (पूर्ववत्) पर्याप्त-रूप से उपपात कहना चाहिए ।। ४ ।।

६. एवं आउकाइएसु वि चत्तारि आलावगा सुहुमेहिं अपज्जत्तएहिं १, ताहे पज्जत्तएहिं २, बादरेहिं अपज्जत्तएहिं ३, ताहे पज्जत्तएहिं उववातेयव्वो ४ ।

[६] इसी प्रकार अप्कायिक जीव के भी चार आलापक कहने चाहिए, यथा– (१) सूक्ष्म-

अपर्याप्तक का, (२) उन्ही (सूक्ष्म) के पर्याप्तक का, (३) बादर-अपर्याप्तक का तथा (४) उन्ही (बादर) के पर्याप्तक का उपपात कहना चाहिए ।

७. एवं चेव सुहुमतेउकाइएहि वि अपज्जत्तएहिं १, ताहे पज्जत्तएहिं उववातेयव्वो २ ।

[७] इसी प्रकार सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक और उसी के पर्याप्तक का उपपात कहना चाहिए ।

८. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए मणुस्सखेत्ते अपज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ? कतिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

सेसं तं चेव ३ ।

[८ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव, जो इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमान्त मे मरणसमुद्घात करके मनुष्य-क्षेत्र मे अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है, तो हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[८ उ.] गौतम ! (इस सम्बन्ध मे) सब वक्तव्यता पूर्ववत् कहनी चाहिए ।

९. एव पज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए उववातेयव्वो ४ ।

[९] इसी प्रकार पर्याप्त बादरतेजस्कायिक रूप से उपपात का कथन करना चाहिए ।

१०. वाउकाइए सुहुम-बायरेसु जहा आउकाइएसु उववातिओ तहा उववातेयव्वो ४ ।

[१०] जिस प्रकार सूक्ष्म और बादर अप्कायिक का उपपात कहा, उसी प्रकार सूक्ष्म और बादर वायुकायिक का उपपात कहना चाहिए ।

११ एवं वणस्सतिकाइएसु वि ४, = २० ।

[११] इसी प्रकार (सूक्ष्म और बादर) वनस्पतिकायिक जीवो के उपपात के विषय मे भी कहना चाहिए ।। २० ।।

१२. पज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए० ?

एवं पज्जत्तसुहुमपुढविकाइओ वि पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहणावेत्ता एएण चेव कमेणं एएसु चेव वीससु ठाणेसु उववातेयव्वो जाव बायरवणस्सतिकाइएसु पज्जत्तएसु ति । ४० ।

[१२ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ?

[१२ उ] गौतम ! पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव भी रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमान्त मे मरणसमुद्घात से मर कर क्रमशः इन बीस स्थानो मे बादर पर्याप्त वनस्पतिकायिक तक, उपपात कहना चाहिए ।। = ४०।।

१३. एवं अपज्जत्तबायरपुढविकाइओ वि । ६० ।

[१३] इसी प्रकार अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक का उपपात भी कहना चाहिए । ।। = ६०।।

१४. एवं पज्जत्तबायरपुढविकाइश्रो वि । ८० ।

[१४] इसी प्रकार पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक के उपपात का कथन जानना चाहिए ।

॥ =८० ॥

१५. एवं श्राउकाइश्रो वि चउसु वि गमएसु पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए एयाए चेव वत्तव्वयाए एएसु चेव वीसाए ठाणेसु उववातेयव्वो । १६० ।

[१५] इसी प्रकार अप्कायिक जीवो के चार गमको द्वारा पूर्व-चरमान्त मे मरणसमुद्घात-पूर्वक मरकर इन्ही पूर्वोक्त बीस स्थानो मे पूर्ववत् वक्तव्यता से उपपात का कथन करना चाहिए ।

॥ =१६० ॥

१६. सुहुमतेउकाइश्रो वि श्रपज्जत्तश्रो पज्जत्तश्रो य एएसु चेव वीसाए ठाणेसु उववातेयव्वो ४०=२०० ।

[१६] अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवो का भी इन्ही बीस स्थानो मे पूर्वोक्तरूप से उपपात कहना चाहिए ॥ =+४०=२०० ॥

१७ श्रपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! मणुस्सखेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते श्रपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा ?

सेस तहेव जाव से तेणट्ठेणं । १=२०१ ।

[१७ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीव, जो मनुष्यक्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिम-चरमान्त मे अपर्याप्त पृथ्वीकायिक-रूप से उत्पन्न होने योग्य है, हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[१७ उ.] गौतम ! पूर्ववत् समग्र वक्तव्यता इस कारण से वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है, यहां तक कहनी चाहिए ॥ +१=२०१ ॥

१८. एवं पुढविकाइएसु चउव्विहेसु वि उववातेयव्वो । ३=२०४ ।

[१८] इसी प्रकार चारो प्रकार के पृथ्वीकायिक जीवो मे भी पूर्ववत् उपपात कहना चाहिए ।

॥ +३+२०४ ॥

१९. एवं श्राउकाइएसु चउव्विहेसु वि । ४=२०८ ।

[१९] चार प्रकार के अप्कायिको मे भी इसी प्रकार उपपात कहना चाहिए ॥ +४=२०८॥

२०. तेउकाइएसु सुहुमेसु श्रपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य एवं चेव उववातेयव्वो । २=२१० ।

[२०] सूक्ष्मतेजस्कायिक जीव के पर्याप्तक और अपर्याप्तक मे भी इसी प्रकार उपपात कहना चाहिए । २०८+२=२१० ॥

२१. श्रपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! मणुस्सखेत्ते समोहइए, समोहणित्ता जे भविए मणुस्सखेत्ते श्रपज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! कतिसम० ?

सेसं तं चेव । १=२११ ।

[२१ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीव, जो मनुष्यक्षेत्र में मरणसमुद्घात करके मनुष्यक्षेत्र मे अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य है, तो हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[२१ उ.] गौतम ! (इसका उपपात) पूर्ववत् कहना चाहिए ।। + १=२११ ।

२२. एवं पज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए वि उ वाएयव्वो । १=२१२ ।

[२२] इसी प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिक रूप से उपपात का भी कथन करना चाहिए । ।। +१=२१२ ।।

२३. बाउकाइयत्ताए य, वणस्सइकाइयत्ताए य जहा पुढविकाइएसु तहेव चउक्कएणं भेएणं उववाएयव्वो । ८=२२० ।

[२३] जिस प्रकार (चार प्रकार के) पृथ्वीकायिक जीवो के उपपात के विषय मे कहा, उसी प्रकार चार भेदों मे, वायुकायिक रूप से तथा वनस्पतिकायिक रूप से उपपात का कथन करना चाहिए । +८=२२० ।।

२४. एव पज्जत्तबायरतेउकाइग्रो वि समयखेत्ते समोहणावेत्ता एएसु चेव बीसाए ठाणेसु उववातेयव्वो जहेव अपज्जत्तश्रो उववातिश्रो । २० ।

[२४] इसी प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिक का भी समय (मनुष्य-) क्षेत्र मे समुद्घात करके इन्ही (पूर्वोक्त) बीस स्थानो मे उपपात का कथन करना चाहिए ।। २० ।।

२५. एव सव्वत्थ वि बायरतेउकाइया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य समयखेत्ते उववातेयव्वा, समोहणावेयव्वा वि=२४० ।

[२५] जिस प्रकार अपर्याप्त का उपपात कहा है, उसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक के मनुष्यक्षेत्र मे समुद्घात और उपपात का कथन करना चाहिए । =२४० ।।

२६. वाउकाइया, वणस्सइकाइया य जहा पुढविकाइया तहेव चउक्कएणं भेएणं उववातेयव्वा जाव ।

पज्जत्तबायरवणस्सइकाइए ण भते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणेत्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए० पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते पज्जत्तबायरवणस्सइ काइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसम० ?

सेसं तहेव जाव से तेणट्ठेणं० । ८०+८०=४०० ।

[२६] पृथ्वीकायिक-उपपात के समान चार-चार भेद से वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवो का उपपात कहना चाहिए, यावत्—

[प्र.] भगवन् ! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वी-चरमान्त मे

मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिम-चरमान्त मे बादर वनस्पतिकायिक रूप मे उत्पन्न होने योग्य हो तो, हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[उ.] पूर्ववत् सब कथन 'इस कारण से ऐसा कहा जाता है', तक करना चाहिए। २४०+८०+८०=४०० ।

२७. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समोहणित्ता जे भविए इमोसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुम-पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइसमइएण० ?

सेसं तहेव निरवसेसं ।

[२७ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिम-चरमान्त मे समुद्घात करके रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वी-चरमान्त मे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-रूप से उत्पन्न हो तो कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[२७ उ.] गौतम ! पूर्ववत् समस्त कथन करना चाहिए।

२८. एवं जहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमते सव्वपदेसु वि समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववातिया, जे य समयखेत्ते समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमते समयखेत्ते य उववातिया, एवं एएणं चेव कमेणं पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य समोहया पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववातेयव्वा तेणेव गमएणं । ४००=८०० ।

[२८] जिस प्रकार पूर्वी-चरमान्त के सभी पदो मे समुद्घात करके पश्चिम चरमान्त मे और मनुष्यक्षेत्र मे और जिनका मनुष्यक्षेत्र मे समुद्घातपूर्वक पश्चिम-चरमान्त मे और मनुष्यक्षेत्र मे उपपात कहा, उसी प्रकार उसी क्रम से पश्चिम-चरमान्त मे मनुष्यक्षेत्र मे समुद्घातपूर्वक पूर्वीय-चरमान्त मे और मनुष्यक्षेत्र के उसी गमक से उपपात होता है। +४००=८०० ।।

२९ एवं एतेण गमएणं दाहिणिल्ले चरिमंते समोहयाणं समयखेत्ते य, उत्तरिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाओ । ४००=१२०० ।

[२९] और इसी गमक से दक्षिण के चरमान्त मे समुद्घात करके मनुष्यक्षेत्र मे और उत्तर के चरमान्त मे तथा मनुष्यक्षेत्र मे उपपात कहना चाहिए। +४००=१२०० ।।

३०. एव चेव उत्तरिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य समोहया, दाहिणिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववातेयव्वा तेणेव गमएणं । ४००=१६०० ।

[३०] इसी प्रकार उत्तरी-चरमान्त मे और मनुष्यक्षेत्र मे समुद्घात करके दक्षिणी-चरमान्त मे और मनुष्यक्षेत्र मे उपपात कहना चाहिए। +४००=१६०० ।

३१ अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुम-पुढविकाइयत्ताए उवव० ?

एव जहेव रयणप्पभाए जाव से तेणट्ठेणं ।

[३१ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव शर्कराप्रभापृथ्वी के पूर्वी-चरमान्त मे मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभापृथ्वी के पश्चिम-चरमान्त मे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य हो तो वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

[३१ उ.] गौतम ! (पूर्वोक्त) रत्नप्रभापृथ्वी-सम्बन्धी कथनानुसार 'इस कारण से ऐसा कहा है', यहाँ तक कहना चाहिए।

३२. एवं एएणं कमेणं जाव पज्जत्तएसु सुहुमतेउकाइएसु।

[३२] इसी क्रम से पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

३३. [१] अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसमइ० पुच्छा।

गोयमा ! दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा।

[३३-१ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव शर्कराप्रभापृथ्वी के पूर्व चरमान्त मे मरणसमुद्घात करके, मनुष्यक्षेत्र के अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक-रूप से उत्पन्न होने योग्य हो, तो वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[३३-१ उ] गौतम ! वह दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

[२] से केणट्ठेणं० ?

एव खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तंजहा उज्जुयायता जाव अद्धचक्कवाला। एगतोवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा, दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा, से तेणट्ठेणं०।

[३३-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि वह दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[३३-२ उ.] गौतम ! मैंने सात श्रेणियाँ कही है यथा—ऋज्वायता से लेकर अर्द्धचक्रवाल पर्यन्त। जो एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है, वह दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है और जो उभयतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है, वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है। इस कारण से मैंने पूर्वोक्त बात कही है।

३४. एवं पज्जत्तएसु वि बायरतेउकाइएसु। सेसं जहा रयणप्पभाए।

[३४] इस प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिक-रूप से (उत्पन्न होने योग्य का उपपात कहना चाहिए) शेष सब कथन रत्नप्रभापृथ्वी के समान कहना चाहिए।

३५. जे वि बायरतेउकाइया अपज्जत्तगा य पज्जत्तगा य समयखेत्ते समोहया, समोहणित्ता दोच्चाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते पुढविकाइएसु चउव्विहेसु, आउकाइएसु चउव्विहेसु,

तेउकाइएसु दुविहेसु, वाउकाइएसु चउव्विहेसु, वणस्सतिकाइएसु चउव्विधेसु उववज्जंति ते वि एवं चेव दुसमइएण वा विग्गहेण उववातेयव्वा ।

[३५] जो बादरतेजस्कायिक अपर्याप्त और पर्याप्त जीव मनुष्यक्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभापृथ्वी के पश्चिम चरमान्त मे, चारो प्रकार के पृथ्वीकायिक जीवो मे, चारो प्रकार के अप्कायिक जीवो मे, दो प्रकार के तेजस्कायिक जीवो मे और चार प्रकार के वायुकायिक जीवो मे तथा चार प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवो मे उत्पन्न होते हैं, उनका भी दो या तीन समय की विग्रहगति से उपपात कहना चाहिए ।

३६. बायरतेउकाइया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य जाहे तेसु चेव उववज्जति ताहे जहेव रयणप्पभाए तहेव एगसमइय-दुसमइय-तिसमइया विग्गहा भाणियव्वा, सेसं जहेव रयणप्पभाए तहेव निरवसेसं ।

[३६] जब पर्याप्त और अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीव उन्ही मे उत्पन्न होते है, तब उनके सम्बन्ध मे रत्नप्रभापृथ्वी-सम्बन्धी कथन के अनुसार एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगति कहनी चाहिए । शेष सब कथन रत्नप्रभापृथ्वी-सम्बन्धी कथन के अनुसार जानना चाहिए ।

३७ जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया भणिया एव जाव अहेसत्तमाए भाणियव्वा ।

[३७] जिस प्रकार शर्कराप्रभा-सम्बन्धी वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार अध सप्तमपृथ्वी-पर्यन्त कहनी चाहिए ।

विवेचन—विग्रहगति एव श्रेणी का लक्षण—एक स्थान मे मरण करके दूसरे स्थान पर जाते हुए जीव की जो गति होती है, उसे विग्रहगति कहते हैं । वह श्रेणी के अनुसार होती है । जिससे जीव और पुद्गलो की गति होती है, ऐसी आकाश-प्रदेश की पक्ति को श्रेणी कहते हैं । जीव और पुद्गल एक स्थान से दूसरे स्थान पर श्रेणी के अनुसार ही जा सकते हैं । वे श्रेणियां सात है, जिनका उल्लेख मूलपाठ मे किया गया है । वे इस प्रकार हैं—

१. ऋज्वायता—जिस श्रेणी के द्वारा जीव ऊर्ध्वलोक आदि से अधोलोक आदि मे सीधे चले जाते हैं, उसे 'ऋज्वायताश्रेणी' कहते हैं । इस श्रेणी के अनुसार जाने वाला जीव एक ही समय मे गन्तव्य स्थान पर पहुंच जाता है ।

२. एकतोवक्रा—जिस श्रेणी से जीव सीधा जाकर एक ओर वक्रगति पाये, अर्थात् मोड खाए या दूसरी श्रेणी मे प्रवेश करे उसे 'एकतोवक्राश्रेणी' कहते हैं । इस श्रेणी मे जाने वाले जीव को दो समय लगते हैं ।

३. उभयतोवक्रा—जिस श्रेणी से जाता हुआ जीव दो बार वक्रगति करे, अर्थात् दो बार दूसरी श्रेणी को प्राप्त करे, उसे 'उभयतोवक्रा श्रेणी' कहते हैं । इस श्रेणी से जाने मे जीव को तीन समय लगते हं । यह श्रेणी आग्नेयी (पूर्व-दक्षिण) दिशा से अधोलोक की वायव्यी (उत्तर-पश्चिम) दिशा मे उत्पन्न होने वाले जीव की होती है । पहले समय मे वह आग्नेयीदिशा से तिर्छा पश्चिम की ओर दक्षिणदिशा के कोण अर्थात् नैऋत्य दिशा की ओर जाता है । फिर दूसरे समय मे वहाँ से तिर्छा होकर उत्तर-पश्चिम कोण अर्थात् वायव्यीदिशा की ओर जाता है । तदनन्तर तीसरे समय में नीचे

वायव्यीदिशा की ओर जाता है। तीन समय की यह विग्रहगति त्रसनाडी अथवा उससे बाहर के भाग मे होती है।

४. एकतःखा—'ख' आकाश को कहते है। इस श्रेणी के एक ओर त्रसनाडी के बाहर का आकाश आया हुआ है, इसलिए इसे 'एकत खा श्रेणी' कहते है। आशय यह है कि जिस श्रेणी से जीव या पुद्गल त्रसनाडी के बाये पक्ष से त्रसनाडी मे प्रवेश करे और फिर त्रसनाडी से जाकर उसके बायी ओर वाले भाग मे उत्पन्न हो, उसे 'एकत खा श्रेणी' कहते है। इस श्रेणी मे एक, दो, तीन या चार समय की वक्रगति होने पर भी क्षेत्र की अपेक्षा उसे पृथक् कहा है।

५ उभयतःखा—त्रसनाडी से बाहर मे बाये पक्ष मे प्रवेश करके त्रसनाडी से जाते हुए जिस श्रेणी से दाहिने पक्ष मे उत्पन्न होते हैं, उसे 'उभयत खा (दोनो ओर आकाश वाली) श्रेणी' कहते है।

६. चक्रवाल—जिस श्रेणी के माध्यम से परमाणु आदि गोल चक्कर लगा कर उत्पन्न होते है, उसे 'चक्रवाल' कहते हैं।

७. अर्द्धचक्रवाल जिस श्रेणी से आधा चक्कर लगा कर उत्पन्न होते है, उसे 'अर्द्धचक्रवाल श्रेणी' कहते है।

बादर तेजस्कायिक की उत्पत्ति--बादर तेजस्काय मनुष्यक्षेत्र मे ही सभव है, उसके बाहर उसकी उत्पत्ति नही होती। इसलिए उसके प्रश्नोत्तरो मे 'मनुष्यक्षेत्र' (समयक्षेत्र) कहा है।

रत्नाप्रभा आदि पृथ्वियो के सोलह सौ गमक पृथ्वीकायिक आदि प्रत्येक एकेन्द्रिय के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार-चार भेद होने से ५×४=२० भेद होते है। इनमे प्रत्येक जीव-स्थान मे बीस-बीस गमक होते है। इस प्रकार पूर्व दिशा के चरमान्त की अपेक्षा २०×२०=४०० गम होते है। इस दृष्टि से चारो दिशाओ के चरमान्त की अपेक्षा रत्नप्रभापृथ्वी के १६०० गम हुए। इसी प्रकार प्रत्येक नरकपृथ्वी के सोलह-सौ, सोलह-सौ गम होते हैं।

शर्कराप्रभा-सम्बन्धी विग्रहगति शर्कराप्रभा के पूर्वीय-चरमान्त से मनुष्यक्षेत्र मे उत्पन्न होने वाले जीव की समश्रेणी नही होती। इसलिए उसमे एक समय की विग्रहगति नही होती, अपितु दो या तीन समय की होती है।

बादर तेजस्काय के दो भेद क्यों ?—रत्नप्रभा के पश्चिम-चरमान्त मे बादर तेजस्काय न होने से सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त, ये दो भेद ही कहे है। बादर तेजस्कायिक के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो भेद मनुष्यक्षेत्र की अपेक्षा से कहे है।[1]

३८. [१] अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! अहेलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

---

१ (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९५६-९५७

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३६८९-९०

(ग) 'अनुश्रेणि गति'--तत्त्वार्थ सूत्र अ २,

[३८-१ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अधोलोक क्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोक की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-रूप से उत्पन्न होने योग्य है तो हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[३८-१ उ.] गौतम ! वह तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं अहेलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए एगपयरम्मि अणुसेढि उववज्जित्तए से णं तिसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा, जे भविए विसेढि उववज्जित्तए से ण चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा। से तेणट्ठेण जाव उववज्जेज्जा।

[३८-२ प्र] भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है कि वह जीव तीन या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[३८-२ उ] गौतम ! जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अधोलोकक्षेत्रीय त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर क्षेत्र मे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के रूप मे एक प्रतर मे अनुश्रेणी (समश्रेणी) मे उत्पन्न होने योग्य है, वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है और जो विश्रेणी मे उत्पन्न होने योग्य है, वह चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा है कि यावत् वह तीन या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

३९. एवं पज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए वि।

[३९] इसी प्रकार जो पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-रूप से उत्पन्न होता है, उसके विषय मे भी समझना चाहिए।

४० जाव पज्जत्तसुहुमतेउकाइयत्ताए।

[४०] इसी भाति जो पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक-रूप से उत्पन्न होता है, उसके विषय मे भी जानना चाहिए।

४१. [१] अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! अहेलोग जाव समोहणित्ता जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

[४१-१ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अधोलोकक्षेत्रीय त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके मनुष्यक्षेत्र मे अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक-रूप से उत्पन्न होने योग्य हो तो भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[४१-१ उ] गौतम ! वह दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, त जहा—उज्जुआयता जाव अद्धचक्कवाला। एगतोवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा, दुहतोवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा, से तेणट्ठेण० ।

[४१-२ प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है, कि वह दो या तीन समय की ? इत्यादि प्रश्न ।

[४१-२ उ] गौतम ! मैंने सात श्रेणियां कही हैं, यथा—ऋज्वायता यावत् अर्द्धचक्रवाल । यदि वह जीव एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है, तो दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है, यदि वह उभयतोवक्राश्रेणी से उत्पन्न होता है, तो तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है । इसी कारण हे गौतम ! पूर्वोक्त कथन किया गया है ।

४२. एवं पज्जत्तएसु वि, बायरतेउकाइएसु वि उववातेयव्वो । वाउकाइय-वणस्सति-काइयत्ताए चउक्काएण भेएण जहा आउकाइयत्ताए तहेव उववातेयव्वो ।

[४२] इसी प्रकार पर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव मे भी उपपात जानना चाहिए ।

जिस प्रकार अप्कायिक-रूप मे उत्पन्न होने की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार वायुकायिक और वनस्पतिकायिक रूप मे भी चार-चार भेद से उत्पन्न होने की वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

४३ एवं जहा अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयस्स गमओ भणिओ एवं पज्जत्तसुहुमपुढविकाइयस्स वि भाणियव्वो, तहेव वीसाए ठाणेसु उववातेयव्वो ।

[४३] जिस प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का गमन कहा है, उसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक का गमक भी कहना चाहिए और उसी प्रकार (पूर्वोक्त) बीस स्थानो मे उपपात कहना चाहिए ।

४४. अहेलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहयओ एवं बायरपुढविकाइयस्स वि अपज्जत्तगस्स पज्जत्तगस्स य भाणियव्वं ।

[४४] जिस प्रकार अधोलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके यावत् विग्रहगति मे उपपात कहा है, उसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक के उपपात का भी कथन करना चाहिए ।

४५. एव आउकाइयस्स चउव्विहस्स वि भाणियव्वं ।

[४५] चारो प्रकार के अप्कायिक जीवो का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए ।

४६. सुहुमतेउकाइयस्स दुविहस्स वि एवं चेव ।

[४६] पर्याप्त और अपर्याप्त सूक्ष्मतेजस्कायिक जीव के उपपात का कथन भी इसी प्रकार है ।

४७. [१] अपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहते, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा ।

[४७-१ प्र.] भगवन् ! यदि अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव मनुष्यक्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोकक्षेत्र की त्रसनाडी से बाहर के क्षेत्र मे अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-रूप से उत्पन्न होने योग्य है, तो हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[४७-१ उ] गौतम ! वह दो समय या तीन समय (अथवा चार समय) की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

अट्ठो तहेव सत्त सेढीओ ।

[४७-२ प्र.] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया है कि वह दो या तीन (या चार) समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[४७-२ उ] इसका कथन पूर्वोक्त प्रकार से सप्तश्रेणी तक समझना चाहिए ।

४८. एवं जाव अपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते पज्जत्तसुहुमतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! ०

सेसं तं चेव ।

[४८ प्र] भगवन् ! इसी प्रकार यावत् जो अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव मनुष्यक्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे पर्याप्त सूक्ष्मतेजस्कायिक-रूप मे उत्पन्न हो तो वह कितने समय की विग्रहगति से ?

[४८ उ] गौतम ! इसका कथन भी पूर्वोक्त प्रकार से ही जानना चाहिए ।

४९. [१] अपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा ।

[४९-१ प्र.] भगवन् ! यदि अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव मनुष्यक्षेत्र मे मरणसमुद्घात करके मनुष्यक्षेत्र मे अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक-रूप मे उत्पन्न होने योग्य है तो भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[४९-१ उ] गौतम ! वह एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

[२] से केणट्ठेणं० ?

अट्ठो जहेव रयणप्पभाए तहेव सत्त सेढीओ ।

[४९-२ प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि यावत् वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[४९-२ उ.] गौतम ! जैसे रत्नप्रभापृथ्वी मे सप्तश्रेणीरूप हेतु कहा, वही हेतु यहाँ जानना चाहिए।

५०. एवं पज्जत्तबादरतेउकाइयत्ताए वि।

[५०] इसी प्रकार पर्याप्त बादरतेजस्कायिक-रूप मे उपपात का भी कथन करना चाहिए।

५१. वाउकाइएसु, वणस्सतिकाइएसु य जहा पुढविकाइएसु उववातिम्रो तहे वचउक्कएणं भेएणं उववाएयव्वो।

[५१] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक का चारो भेदो सहित उपपात कहा, उसी प्रकार वायुकायिक और वनस्पतिकायिक का भी चार-चार भेद सहित उपपात कहना चाहिए।

५२. एवं पज्जत्तबायरतेउकाइम्रो वि एएसु चेव ठाणेसु उववातेयव्वो।

[५२] इसी प्रकार पर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव का उपपात भी इन्ही स्थानो में जानना चाहिए।

५३. वाउकाइय-वणस्सतिकाइयाणं जहेव पुढविकाइयत्ते उववातिम्रो तहेव भाणियव्वो।

[५३] जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीव के रूप मे उपपात का कथन किया, उसी प्रकार वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवो के उपपात का कथन करना चाहिए।

५४. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! उड्ढलोकखेत्त० जे भविए अहेलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिस० ?

एव उड्ढलोगखेत्तनालीए वि बाहिरिल्ले खेत्ते समोहयाणं अहेलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते उववज्जंताण सो चेव गमम्रो निरवसेसो भाणियव्वो जाव बायरवणस्सतिकाइम्रो पज्जत्तम्रो बादरवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु उववातिम्रो।

[५४ प्र.] भगवन् ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव ऊर्ध्वलोकक्षेत्रीय त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे मरणसमुद्‌घात करके, अधोलोकक्षेत्रीय त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिकरूप से उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[५४ उ.] गौतम ! ऊर्ध्वलोकक्षेत्रीय त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे मरणसमुद्‌घात करके अधोलोकक्षेत्रीय त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र मे उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिकादि के लिए भी वही समग्र पूर्वोक्त गमक पर्याप्त बादरवनस्पतिकायिक जीव का पर्याप्त बादरवनस्पतिकायिकरूप में उपपात तक कथन यहाँ करना चाहिए।

५५. [१] अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए ण भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।

[५५-१ प्र.] भगवन् ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव, लोक के पूर्वी-चरमान्त मे मरणसमुद्घात करके लोक के पूर्वी-चरमान्त मे अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, तो वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[५५-१ उ] गौतम ! वह एक, दो, तीन या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

[२] **से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—एगसमइएण वा जाव उववज्जेज्जा ?**

एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—उज्जुआयता जाव अद्धचक्कवाला । उज्जुआयताए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेण उववज्जेज्जा; एगतोवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा; दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे जे भविए एगयरंसि अणुसेढि उववज्जित्तए से णं तिसमइएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा, जे भविए विसेढि उववज्जित्तए से णं चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा; से तेणट्ठेणं जाव उववज्जेज्जा ।

[५५-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वह एक समय की यावत् चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[५५-२ उ] गौतम ! मैने सात श्रेणियाँ बताई है, यथा—ऋज्वायता यावत् अर्द्धचक्रवाला । यदि ऋज्वायता श्रेणी से उत्पन्न होता है तो एक समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है। यदि एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है तो दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है । यदि उभयतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है तो जो एक प्रतर में अनुश्रेणी (समश्रेणी) से उत्पन्न होने योग्य है, वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है और यदि वह विश्रेणी से उत्पन्न होने योग्य है तो वह चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है । इसी कारण हे गौतम ! पूर्वोक्त कथन किया गया है कि वह एक समय की यावत् चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

५६. एवं अपज्जत्तओ सुहुमपुढविकाइओ लोगस्स पुरस्थिमिल्ले चरिमंते समोहओ लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चेव चरिमंते अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुमपुढविकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुमआउकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुमतेउक्काइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुमवाउकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य बायरवाउकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुमवणस्सतिकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य बारससु वि ठाणेसु एएणं चेव कमेणं भाणियव्वो ।

[५६] इसी प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव का लोक के पूर्वी-चरमान्त मे (मरण) समुद्घात करके लोक के पूर्वी-चरमान्त मे ही अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो मे, अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मअप्कायिक जीवो मे, अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मतेजस्कायिक जीवो मे, अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मवायुकायिक जीवो मे, अपर्याप्त और पर्याप्त बादरवायुकायिक जीवों में तथा अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीवो मे, इस प्रकार इन अपर्याप्त और पर्याप्त-रूप बारह ही स्थानो मे इसी क्रम से उपपात कहना चाहिए ।

५७. सुहुमपुढविकाइश्रो पज्जत्तश्रो एवं चेव निरवसेसो बारससु वि ठाणेसु उववातेयव्वो ।

[५७] पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव के उपपात का कथन भी इसी प्रकार पूर्वोक्त बारह स्थानो मे करना चाहिए ।

५८. एवं एएणं गमएणं जाव सुहुमवणस्सइकाइश्रो पज्जत्तश्रो सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव भाणितव्वो ।

[५८] इसी प्रकार इस गमक (पाठ) से पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक तक पर्याप्त सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक जीवो मे उपपात का कथन करना चाहिए ।

५०. [१] श्रपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए ण भते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स दाहिणिल्ले चरिमते श्रपज्जत्तसुहुमपुढविकाइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

गोयमा दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जिज्जा ।

[५९-१ प्र] भगवन् ! जो श्रपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव लोक के पूर्वी-चरमान्त मे समुद्घात करके लोक के दक्षिण-चरमान्त मे श्रपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[५९-१ उ] गौतम ! वह दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

[२] **से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति० ?**

एव खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीश्रो पन्नत्ताश्रो, त जहा—उज्जुश्रायता जाव श्रद्धचक्कवाला । एगतोवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएण विग्गहेण उववज्जेज्जा; दुहतोवकाए सेढीए उववज्जमाणे जे भविए एगपयरसि श्रणुसेढि उववज्जित्तए से ण तिसमइएण विग्गहेण उववज्जेज्जा, जे भविए विसेढि उववज्जित्तए से ण चउसमइएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा; से तेणट्ठेण गोयमा ! ० ।

[५९-२ प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि वह दो समय यावत् चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[५९-२ उ] गौतम ! मैंने सात श्रेणियां बताई हैं, यथा—ऋज्वायता यावत् श्रर्द्धचक्रवाला । यदि वह जीव एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है तो दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है । यदि वह उभयतोवक्रा श्रेणी से एक प्रतर मे श्रनुश्रेणी (समश्रेणी) से उत्पन्न होने योग्य है, तो तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है श्रौर यदि वह विश्रेणी से उत्पन्न होने योग्य है तो चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है । हे गौतम ! इसी कारण मैंने कहा कि वह दो, तीन या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ।

६०. एवं एएणं गमएणं पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहश्रो दाहिणिल्ले चरिमंते उववातेयव्वो । जाव सुहुमवणस्सतिकाइश्रो पज्जत्तश्रो सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव, सव्वेसि दुसमइश्रो तिसमइश्रो, चउसमइश्रो विग्गहो भाणियव्वो ।

[६०] इसी प्रकार इसी गमक से पूर्वी-चरमान्त में समुद्घात करके दक्षिण-चरमान्त में यावत् पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीवो मे भी उपपात का कथन करना चाहिए। इन सभी मे यथायोग्य दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति कहनी चाहिए।

६१. [१] अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए ण भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कतिसमइएण विग्गहेण उववज्जेज्जा ?

गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

[६१-१ प्र] भगवन् ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव, लोक के पूर्वी-चरमान्त मे समुद्घात करके लोक के पश्चिम-चरमान्त मे अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[६१-१ उ] गौतम ! वह एक, दो, तीन अथवा चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

[२] से केणट्ठेणं० ?

एवं जहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमते समोहया पुरत्थिमिल्ले चेव चरिमते उववातिता तहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमते समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमते उववातेयव्वा सव्वे।

[६१-२ प्र] भगवन् ! किस कारण से कहते हैं कि वह यावत् चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[६१-२ उ.] गौतम ! पूर्ववत्, जैसे पूर्वी-चरमान्त मे समुद्घात करके पूर्वी-चरमान्त मे ही उपपात का कथन किया, वैसे ही पूर्वी-चरमान्त मे समुद्घात करके पश्चिम-चरमान्त मे सभी के उपपात का कथन करना चाहिए।

६२. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए ण भते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स उत्तरिल्ले चरिमते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते !० ?

एवं जहा पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहओ दाहिणिल्ले चरिमंते उववातिओ तहा पुरत्थिमिल्ले० समोहओ उत्तरिल्ले चरिमंते उववातेयव्वो।

[६२ प्र] भगवन् ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव, लोक के पूर्वी-चरमान्त मे समुद्घात करके लोक के उत्तर-चरमान्त मे अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव मे उत्पन्न होने योग्य है तो वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[६२ उ.] गौतम ! जिस प्रकार पूर्वी-चरमान्त मे समुद्घात करके दक्षिण-चरमान्त मे

उपपात का कथन किया, उसी प्रकार पूर्वी-चरमान्त मे समुद्घात करके उत्तर-चरमान्त मे उपपात का कथन करना चाहिए।

६३. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! लोगस्स दाहिणिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स दाहिणिल्ले चेव चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए० ।

एवं जहा पुरत्थिमिल्ले समोहओ पुरत्थिमिल्ले चेव उववातिओ तहा दाहिणिल्ले समोहओ दाहिणिल्ले चेव उववातेयव्वो । तहेव निरवसेस जाव सुहुमवणस्सतिकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु चेव पज्जत्तएसु दाहिणिल्ले चरिमते उववातिओ ।

[६३ प्र] भगवन् ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव लोक के दक्षिण-चरमान्त मे समुद्घात करके लोक के दक्षिण-चरमान्त मे ही अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-रूप मे उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[६३ उ] गौतम ! जिस प्रकार पूर्वी-चरमान्त से समुद्घात करके पूर्वी-चरमान्त मे ही उपपात का कथन किया, उसी प्रकार दक्षिण-चरमान्त मे समुदघात करके दक्षिण-चरमान्त मे ही उत्पन्न होने योग्य का उपपात कहना चाहिए। इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक का, पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिको में दक्षिण-चरमान्त तक उपपात कहना चाहिए।

६४. एवं दाहिणिल्ले समोहयओ पच्चत्थिमिल्ले चरिमते उववातेयव्वो, नवर दुसमइय-तिसमइय-चउसमइओ विग्गहो । सेसं तहेव ।

[६४] इसी प्रकार दक्षिण-चरमान्त मे समुद्घात करके पश्चिम-चरमान्त मे उपपात का कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि इनमे दो, तीन या चार समय की विग्रहगति होती है। शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

६५ एवं दाहिणिल्ले समोहयओ उत्तरिल्ले उववातेयव्वो जहेव सट्ठाणे तहेव एगसमइय-दुसमइय-तिसमइय-चउसमइयविग्गहो ।

[६५] जिस प्रकार स्वस्थान मे उपपात का कथन किया, उसी प्रकार दक्षिण-चरमान्त मे समुद्घात करके उत्तर-चरमान्त मे उपपात का तथा एक, दो, तीन या चार समय की विग्रहगति का कथन करना चाहिए।

६६. पुरत्थिमिल्ले जहा पच्चत्थिमिल्ले तहेव दुसमइय-तिसमइय-चउसमइय० ।

[६६] पश्चिम-चरमान्त मे उपपात के समान पूर्वीय-चरमान्त मे भी दो, तीन या चार समय की विग्रहगति से उपपात का कथन करना चाहिए।

६७. पच्चत्थिमिल्ले चरिमते समोहताणं पच्चत्थिमिल्ले चेव चरिमते उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे। उत्तरिल्ले उववज्जमाणाणं एगसमइओ विग्गहो नत्थि, सेसं तहेव । पुरत्थिमिल्ले जहा सट्ठाणे। दाहिणिल्ले एगसमइओ विग्गहो नत्थि, सेसं तं चेव ।

[६७] पश्चिम-चरमान्त मे समुद्घात करके पश्चिम चरमान्त मे ही उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक के लिए स्वस्थान मे उपपात के अनुसार कथन करना चाहिए। उत्तर-चरमान्त मे उत्पन्न होने वाले जीव के एक समय की विग्रहगति नही होती। शेष सब पूर्ववत्। पूर्वी-चरमान्त मे उपपात का कथन स्वस्थान में उपपात के समान है। दक्षिण-चरमान्त मे उपपात मे एक समय की विग्रहगति नही होती। शेष सब पूर्ववत् है।

६८. उत्तरिल्ले समोहयाणं उत्तरिल्ले चेव उववज्जमाणाण जहा सट्ठाणे। उत्तरिल्ले समोहयाणं पुरत्थिमिल्ले उववज्जमाणाणं एव चेव, नवर एगसमइओ विग्गहो नत्थि। उत्तरिल्ले समोहताणं दाहिणिल्ले उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे। उत्तरिल्ले समोहयाण पच्चत्थिमिल्ले उववज्जमाणाणं एगसमइओ विग्गहो नत्थि, सेस तहेव जाव सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव।

[६८] उत्तर-चरमान्त मे समुदघात करके उत्तर-चरमान्त मे उत्पन्न होने वाले जीव का कथन स्वस्थान में उपपात के समान जानना चाहिए। इसी प्रकार उत्तर-चरमान्त मे समुद्घात करके पूर्वी चरमान्त मे उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिकादि जीवो के उपपात का कथन समझना किन्तु इनमे एक समय की विग्रहगति नही होती। उत्तर-चरमान्त मे समुद्घात करके दक्षिण-चरमान्त मे उत्पन्न होने वाले जीवो का कथन भी स्वस्थान के समान है। उत्तर-चरमान्त मे समुद्घात करके पश्चिम-चरमान्त मे उत्पन्न होने वाले जीवो के एक समय की विग्रहगति नही होती। शेष पूर्ववत् यावत् पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीवो मे उपपात का कथन जानना चाहिए।

विवेचन—तीन या चार समय की विग्रहगति क्यो और कहाँ—जब कोई स्थावर अधोलोक क्षेत्र की नाडी के बाहर पूर्वादि दिशा मे मरकर प्रथम समय मे त्रसनाडी मे प्रवेश करता है, दूसरे समय मे ऊपर जाता है और तत्पश्चात् एक प्रतर मे पूर्व या पश्चिम मे उसकी उत्पत्ति होती है, तब अनुश्रेणी मे जाकर तीसरे समय मे उत्पन्न होता है। इस प्रकार तीन समय की विग्रहगनि होती है।

जब कोई जीव त्रसनाडी के बाहर वायव्यादि विदिशा मे मृत्यु को प्राप्त होता है, तब एक समय मे पश्चिम या उत्तर दिशा मे जाता है, दूसरे समय मे त्रसनाडी मे प्रवेश करता है, तीसरे समय मे ऊँचा जाता है और चौथे समय मे अनुश्रेणी मे जाकर पूर्वादि दिशा मे उत्पन्न होता है। यहाँ चार समय की विग्रहगति होती है।

दो या तीन समय की विग्रहगति कब और क्यो—जब अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव ऊर्ध्वलोक की त्रसनाडी के बाहर उत्पन्न होता है, तब दो या तीन समय की विग्रहगति होती है। इसका कारण यह है कि बादरतेजस्काय मनुष्यक्षेत्र मे ही होता है। इसलिए एक समय मे मनुष्यक्षेत्र से ऊपर जाता है तथा दूसरे समय मे त्रसनाडी से बाहर रहे हुए उत्पत्तिस्थान को प्राप्त होता है। इस प्रकार यह दो समय की विग्रहगति होती है। अथवा एक समय मे मनुष्यक्षेत्र से ऊपर जाता है दूसरे समय में त्रसनाडी से बाहर पूर्वादि दिशा मे जाता है और तीसरे समय विदिशा मे रहे हुए उत्पत्तिस्थान को प्राप्त होता है।

लोक के चरमान्त मे बादर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वनस्पतिकायिक जीव

नही होते, किन्तु सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि पांचो होते हैं तथा बादर वायुकाय भी होता है। इन छह के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद मे बारह भेद होते हैं।

लोक के पूर्वी-चरमान्त से पूर्व-चरमान्त मे ही उत्पन्न होने वाले जीव की एक समय से लेकर चार समय तक की विग्रहगति होती है, क्योकि उसमे अनुश्रेणी और विश्रेणी दोनो गतियाँ होती है। पूर्व-चरमान्त से दक्षिण-चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीव की दो, तीन या चार समय की ही विग्रहगति होती है। वहाँ अनुश्रेणी न होने से एक समय की विग्रहगति नही होती। अतएव विश्रेणीगमन मे दो आदि समय की विग्रहगति का कथन किया गया है।[1]

एकेन्द्रिय जीवों में स्थान-कर्मप्रकृतिबन्ध-वेदन, उपपात, समुद्घातादि की अपेक्षा प्ररूपणा

६९. कहि णं भंते ! बायरपुढविकाइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं अट्ठसु पुढवीसु जहा ठाणपए जाव सुहुमवणस्सइकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसमणाणत्ता सव्वलोगपरियावन्ना पण्णत्ता समणाउसो !

[६९ प्र] भगवन् ! पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जोवो के स्थान कहाँ कहे है ?

[६९ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा आठ पृथ्वियाँ हैं, इत्यादि सब कथन प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय स्थानपद के अनुसार यावत् पर्याप्त और अपर्याप्त सभी सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव एक ही प्रकार के है। इनमे कुछ भी विशेषता या भिन्नता नही है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे (सूक्ष्म) सर्व लोक मे व्याप्त है।

७०. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं। एवं चउक्कएणं भेएण जहेव एगिंदियसएसु (स० ३३—१-१ सु० ७-११) जाव बायरवणस्सइकाइयाण पज्जत्तगाणं।

[७० प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही है ?

[७० उ] गौतम ! आठ कर्मप्रकृतियाँ कही है, यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। इस प्रकार प्रत्येक के चार-चार भेद से एकेन्द्रिय शतक के (३३ श १-१,७-११ सू. के) अनुसार पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिए।

७१. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइया ण भंते ! कति कम्मपगडीओ बंधति ?

गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि जहा एगिंदियसएसु (स० ३३-१-१ सु० १२-१४) जाव पज्जत्तबायरवणस्सइकाइया।

[७१ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधते हैं ?

[७१ उ.] गौतम ! वे सात या आठ कर्मप्रकृतियाँ बाधते हैं। यहाँ भी एकेन्द्रियशतक के अनुसार पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक तक का कथन करना चाहिए।

१. (क) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९६०-९६१

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ. ३७०५-३७०६

७२. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइया णं भंते ! कति कम्मपगडीओ वेएंति ?

गोयमा ! चोद्दस कम्मपगडीओ वेएंति, तं जहा—नाणावरणिज्जं० जहा एगिंदियसएसु (स० ३३—१-१ सु० १५) जाव पुरिसवेयवज्जं ।

[७२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव कितनी कर्मप्रकृतियों का वेदन करते हैं ?

[७२ उ.] गौतम ! वे चौदह कर्मप्रकृतियों का वेदन करते है, यथा—ज्ञानावरणीय आदि । शेष सब वर्णन एकेन्द्रियशतक के अनुसार पुरुषवेदवर्ज्य कर्मप्रकृति पर्यन्त कहना चाहिए ।

७३. एव जाव बादरवणस्सइकाइयाण पज्जत्तगाणं ।

[७३] इसी प्रकार पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए ।

७४. एगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जति ? कि नेरइएहिंतो० ?

जहा वक्कतीए पुढविकाइयाण उववाओ ।

[७४ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[७४ उ] गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद मे उक्त पृथ्वीकायिक जीव के उपपात के समान इनका भी उपपात कहना चाहिए ।

७५. एगिंदियाण भंते ! कति समुग्घाया पन्नत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि समुग्घाया पन्नत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए जाव वेउव्वियसमुग्घाए ।

[७५ प्र] भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवो के कितने समुद्घात कहे है ?

[७५ उ] गौतम ! उनके चार समुद्घात कहे ह यथा—वेदनासमुद्घात यावत् वैक्रिय-समुद्घात ।

७६. [१] एगिंदिया णं भंते ! किं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति, तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति, वेमायट्ठितीया तुल्लविसेसाहिय कम्मं पकरेंति, वेमायट्ठितीया वेमायविसेसाहिय कम्म पकरेंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहिय कम्म पकरेंति, अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति, अत्थेगइया वेमायट्ठितीया तुल्लविसेसाहिय कम्म पकरेंति, अत्थेगइया वेमायट्ठितीया वेमायविसेसाहिय कम्म पकरेंति ।

[७६-१ प्र] भगवन् ! १ तुल्य (समान) स्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव तुल्य और विशेषाधिककर्म का बन्ध करते है ? २ अथवा तुल्य स्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव भिन्न-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है ? ३ अथवा भिन्न-भिन्न स्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव तुल्य-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है ? या ४. भिन्न-भिन्न स्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव भिन्न-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं ?

[७६-१ उ] गौतम ! तुल्य स्थिति वाले कई एकेन्द्रिय जीव तुल्य और विशेषाधिक कर्म-बन्ध करते है, तुल्य स्थिति वाले कतिपय एकेन्द्रिय जीव भिन्न-भिन्न विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं, कई भिन्न-भिन्न स्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव तुल्य-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं और कई भिन्न-भिन्न स्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव भिन्न-भिन्न विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया जाव वेमायविसेसाहिय कम्मं पकरेंति ?

गोयमा ! एगिंदिया चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहा—अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा। तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्म पकरेंति, तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते ण तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहिय कम्मं पकरेंति, तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा ते णं वेमायट्ठितीया तुल्लविसेसाहिय कम्मं पकरेंति, तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं वेमायट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति। से तेणट्ठेण गोयमा ! जाव वेमायविसेसाहिय कम्म पकरेंति।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति जाव विहरइ।

॥ चोतीसइमं सय : पढमे अवांतरसए, पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३४।१।१ ॥

[७६-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा गया कि कई तुल्यस्थिति वाले यावत् भिन्न-भिन्न विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं ?

[७६-२ उ] गौतम ! एकेन्द्रिय जीव चार प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) कई जीव समान आयु वाले और साथ उत्पन्न हुए होते है, (२) कई जीव समान आयु वाले और विषम उत्पन्न हुए होते हैं, (३) कई विषम आयु वाले और साथ उत्पन्न हुए होते है तथा (४) कितने ही जीव विषम आयु वाले और विषम उत्पन्न हुए होते है। इनमे से जो समान आयु और समान उत्पत्ति वाले हैं, वे तुल्य स्थिति वाले तथा तुल्य एव विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है। जो समान आयु और विषम उत्पत्ति वाले हैं वे तुल्य स्थिति वाले विमात्रा विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है। जो जीव विषम आयु और समान उत्पत्ति वाले है, वे विमात्रा स्थिति वाले तुल्य-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है और जो विषम आयु और विषम उत्पत्ति वाले है, वे विमात्रा स्थिति वाले, विमात्रा-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है। इस कारण से यह कहा गया है कि यावत् विमात्रा-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—स्वस्थान, अविशेष और नानात्व- बादर पृथ्वीकायादि जीव जिस स्थान पर रहता है, वह उसका 'स्वस्थान' कहलाता है। जहाँ पर्याप्तक-अपर्याप्तक के भेद की विवक्षा न हो, वह अविशेष कहलाता है। जिनमे परस्पर नानात्व=अन्तर न हो, उन्हे अनानात्व कहते हैं।

वैक्रियसमुद्घात—एकेन्द्रिय मे जो वैक्रियसमुद्घात कहा है, वह वायुकाय की अपेक्षा से है।

स्थिति और उत्पत्ति की भंगचतुष्टयी—स्थिति और उत्पत्ति की अपेक्षा एकेन्द्रिय के ४ भग कहे है और इन्ही ४ भगो की अपेक्षा चार प्रकार का कर्मबन्ध कहा है।[1]

॥ चौतीसवाँ शतक : प्रथम अवान्तरशतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९६१

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३७११

पढमे एगिंदियसए : बिइओ उद्देसओ

पहला एकेन्द्रियशतक : द्वितीय उद्देशक

अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय के प्रकारों की तथा अन्य प्ररूपणा

१. कतिविधा णं भंते ! अणतरोववन्नगा एगिदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविहा अणंतरोववन्नणा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा—पुढविकाइया०, दुयाभेदो जहा एगिंदियसतेसु जाव बायरवणस्सइकाइया ।

[१ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ] गौतम ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय पाच प्रकार के कहे हैं, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। फिर प्रत्येक के दो-दो भेद एकेन्द्रिय शतक के अनुसार वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहने चाहिए।

२. कहि णं भते ! अणंतरोववन्नगाणं बायरपुढविकाइयाण ठाणा पन्नत्ता ?

गोयया ! सट्ठाणेणं अट्ठसु पुढवीसु, तं जहा—रयणप्पभा जहा ठाणपए जाव दीवेसु समुद्देसु, एत्थ णं अणंतरोववन्नगाणं बायरपुढविकाइयाणं ठाणा पन्नत्ता, उववातेण सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविकाइया ण एगविहा अविसेसमणाणत्ता सव्वलोगपरियावन्ना पन्नत्ता समणाउसो ! ।

[२ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक बादर पृथ्वीकायिक जीवो के स्थान कहाँ कहे हे ?

[२ उ] गौतम ! वे स्वस्थान की अपेक्षा आठ पृथ्वियो मे हे, यथा—रत्नप्रभा इत्यादि। प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय स्थानपद के अनुसार—यावत् द्वीपो मे तथा समुद्रो मे अनन्तरोपपन्नक बादर पृथ्वीकायिक जोवो के स्थान कहे हे। उपपात और समुद्घात की अपेक्षा वे समस्त लोक मे हें। स्वस्थान की अपेक्षा वे लोक के असख्यातवे भाग मे रहे हुए हे। अनन्तरोपपन्नक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक सभी जीव एक प्रकार के हे तथा विशेषता और भिन्नता रहित हे तथा हे आयुष्मन् श्रमण ! वे सर्वलोक मे व्याप्त हैं।

३. एव एतेणं कमेणं सव्वे एगिदिया भाणियव्वा। सट्ठाणाइं सव्वेसिं जहा ठाणपए। एतेसिं पज्जत्तगाण बायराणं उववाय-समुग्घाय-सट्ठाणाणि जहा तेसिं चेव अपज्जत्तगाणं बायराण, सुहुमाणं सव्वेसिं जहा पुढविकाइयाण भणिया तहेव भाणियव्वा जाव वणस्सइकाइय त्ति ।

[३] इसी क्रम से सभी एकेन्द्रिय-सम्बन्धी कथन करना चाहिए। उन सभी के स्वस्थान प्रज्ञापनासूत्र के दूसरे स्थानपद के अनुसार हे। इन पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय जीवो के उपपात, समुद्घात और स्वस्थान के अनुसार अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय जीव के भी उपपातादि जानने चाहिए तथा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के उपपात, समुद्घात और स्वस्थान के अनुसार सभी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव यावत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

४. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ ?

गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पन्नत्ताओ, एवं जहा एगिंदियसतेसु अणंतरोववन्नगउद्देसए (स० ३३-१-२ सु० ४-६) तहेव पन्नत्ताओ, तहेव (स० ३३-१-२ सु० ७-८) बंधंति, तहेव (स० ३१-१-२ सु० ९) वेदेंति जाव अणंतरोववन्नगा बायरवणस्सतिकाइया।

[४ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं ?

[४ उ.] गौतम ! उनके आठ कर्मप्रकृतियाँ कही हैं, इत्यादि एकेन्द्रियशतक मे उक्त अनन्तरोपपन्नक उद्देशक के समान उसी प्रकार बाधते है और वेदते है, यहाँ तक इसी प्रकार अनन्तरोपपन्नक बादर वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

५. अणतरोववन्नगएगिंदिया ण भंते ! कओ उववज्जंति ?

जहेव ओहिए उद्देसओ भणिओ।

[५ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[५ उ.] गौतम ! यह भी औधिक उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए।

६. अणतरोववन्नगएगिंदियाण भंते ! कति समुग्घाया पन्नत्ता ?

गोयमा ! दोन्नि समुग्घाया पन्नत्ता, त जहा—वेयणासमुग्घाए य कसायसमुग्घाए य।

[६ प्र.] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों के कितने समुद्घात कहे हैं ?

[६ उ.] गौतम ! उनके दो समुद्घात कहे है, यथा—वेदनासमुद्घात और कषाय-समुद्घात।

७. [१] अणंतरोववन्नगएगिंदिया णं भंते ! किं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति० पुच्छा तहेव।

गोयमा ! अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति, अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहिय कम्म पकरेंति।

[७-१ प्र.] भगवन् ! क्या तुल्यस्थिति वाले अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव परस्पर तुल्य, विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[७-१ उ.] गौतम ! कई तुल्यस्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव तुल्य-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं और कई तुल्यस्थिति वाले एकेन्द्रिय जीव विमात्र-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं।

[२] से केणट्ठेण जाव वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

गोयमा ! अणंतरोववन्नगा एगिंदिया दुविहा पन्नत्ता, त जहा—अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा। तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहिय कम्म पकरेंति। तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति। से तेणट्ठेणं जाव वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। चोत्तीसइमे सए : पढमे अवांतरसए : बिइओ उद्देसओ समत्तो ।।३४।१।२।।

[७-२ प्र] भगवन् ! ऐसा क्यो कहा गया कि यावत् भिन्न-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं ?

[७-२ उ] गौतम ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे है, यथा कई जीव समान आयु और समान उत्पत्ति वाले होते है, जबकि कई जीव समान आयु और विषम उत्पत्ति वाले होते हैं। इनमे से जो समान आयु और समान उत्पत्ति वाले है, वे तुल्यस्थिति वाले परस्पर तुल्य-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है और जो समान आयु और विषम उत्पत्ति वाले है, वे तुल्य स्थिति वाले विमात्र-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया कि यावत् विमात्र-विशेषाधिक कर्मबन्ध करते हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—पहले उद्देशक मे उत्पत्ति और स्थिति की अपेक्षा ४ भग कहे थे। उनमे से विषम स्थिति सम्बन्धी अन्तिम दो भग अनन्तरोपपन्नक जीव मे नही पाए जाते, क्योकि अनन्तरोपपन्नक मे विषम स्थिति का अभाव है।[1]

।। चौतीसवाँ शतक : प्रथम अवान्तरशतक : द्वितीय उद्देशक सम्पूर्ण ।।

१. (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९५६
   (ख) भगवती. (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३७१५

पढमे एगिंदियसए : तइओ उद्देसओ

प्रथम एकेन्द्रियशतक : तृतीय उद्देशक

१. कतिविधा णं भंते ! परंपरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा—पुढविकाइया० भेदो चउक्कग्रो जाव वणस्सइकाइय त्ति ।

[१ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ] गौतम ! परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे हैं, यथा—पृथ्वी-कायिक इत्यादि । उनके चार-चार भेद वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहने चाहिए ।

२. परपरोववन्नगग्रपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमते समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव पच्चत्थिमिल्ले चरिमते ग्रपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए० ?

एवं एएण ग्रभिलावेण जहेव पढमो उद्देसग्रो जाव लोगचरिमंतो त्ति ।

[२ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक ग्रपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्व-चरमान्त मे मरणसमुद्‌घात करके रत्नप्रभापृथ्वी के यावत् पश्चिम-चरमान्त मे ग्रपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न हो तो वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[२ उ] गौतम ! इस ग्रभिलाप से प्रथम उद्देशक के ग्रनुसार यावत् लोक के चरमान्त पर्यन्त कहना ।

३ कहि णं भते ! परपरोववन्नगपज्जत्तगबायरपुढविकाइयाण ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं ग्रट्ठसु वि पुढवीसु । एवं एएणं ग्रभिलावेण जहा पढमे उद्देसए जाव तुल्लट्ठितीय त्ति ।

सेवं भते ! सेव भते ! त्ति० ।

।। चोतीसइमे सए : पढमे ग्रवातरसए : तइग्रो उद्देसग्रो समत्तो ।। ३४।१।३ ।।

[३ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवो के स्थान कहाँ हैं ?

[३ उ] गौतम ! स्वस्थान की ग्रपेक्षा वे ग्राठ पृथ्वियो मे है । इस प्रकार इस ग्रभिलाप के ग्रनुसार प्रथम उद्देशक मे उक्त कथनानुसार यावत् तुल्य-स्थिति तक कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

।। चौतोसवाँ शतक · प्रथम ग्रवान्तरशतक : तृतीय उद्देशक समाप्त ।।

पढमे एगिंदियसए : चउत्थाइ-एक्कारसमपज्जंता उद्देसगा

प्रथम एकेन्द्रियशतक : चौथे से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

चौथे से ग्यारहवें उद्देशक तक प्ररूपणा

१. एवं सेसा वि अट्ठ उद्देसगा जाव अचरिमो त्ति । नवरं अणंतरा० अणंतरसरिसा, परंपरा० परंपरसरिसा । चरिमा य, अचरिमा य एवं चेव ।

एवं एते एक्कारस उद्देसगा ।

॥ पढमं एगिंदियसेढिसयं समत्तं ॥ ३४-१ ॥

[१] इसी प्रकार शेष आठ उद्देशक भी यावत् 'अचरम' तक जानने चाहिए । विशेष यह है कि अनन्तर-उद्देशक अनन्तर के समान और परम्पर-उद्देशक परम्पर के समान कहना चाहिए ।

चरम और अचरम सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार है ।

इस प्रकार ये ग्यारह उद्देशक हुए ।

॥ प्रथम एकेन्द्रियशतक : चार से ग्यारह उद्देशक पर्यन्त समाप्त ॥

॥ चौंतीसवां शतक : प्रथम एकेन्द्रियश्रेणीशतक सम्पूर्ण ॥

बिइए एगिंदियसेढिसए : पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

द्वितीय एकेन्द्रिय श्रेणीशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय : प्रकार तथा अन्य प्ररूपणा

१. कतिविधा ण भते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविहा कण्हलेस्सा एगिदिया पन्नत्ता, भेदो चउक्कग्रो जहा कण्हलेस्सएगिंदियसए जाव वणस्सइकाइय त्ति ।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे है ?

[१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय पाच प्रकार के कहे गये हैं। उनके चार-चार भेद एकेन्द्रियशतक के अनुसार वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानने चाहिए ।

२. कण्हलेस्सग्रपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए ण भते ! इमीसे रतणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले० ?

एव एएण ग्रभिलावेण जहेव ग्रोहिउद्देसग्रो जाव लोगचरिमते त्ति । सव्वत्थ कण्हलेस्सेसु चेव उववातेयव्वो ।

[२ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्व-चरमान्त मे समुद्घात करके पश्चिमी-चरमान्त मे उत्पन्न हो तो वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[२ उ] गौतम ! औघिक उद्देशक के अनुसार लोक के चरमान्त तक सर्वत्र कृष्ण-लेश्या वालो मे उपपात कहना चाहिए ।

३. कहि ण भंते ! कण्हलेस्सग्रपज्जत्तबायरपुढविकाइयाणं ठाणा पन्नत्ता ?

एवं एएण ग्रभिलावेण जहा ग्रोहिउद्देसग्रो जाव तुल्लट्ठितीय त्ति ।

सेव भते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। चोत्तीसइमे सए : बिइए ग्रवांतरसए . पढमो उद्देसग्रो समत्तो ।। ३४।२।१ ।।

[३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी अपर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक जीवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[३ उ] गौतम ! औघिक उद्देशक के इस अभिलाप के अनुसार 'तुल्यस्थिति वाले' पर्यन्त कहना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। पहले से ग्यारह उद्देशक तक समाप्त ।।

।। चौतीसवाँ शतक : द्वितीय अवान्तरशतक सम्पूर्ण ।।

तइयाइपंचमसयपज्जंता सया : पढमाइ-एक्कारस्स-पज्जंता उद्देसगा

तीसरे से पांचवां एकेन्द्रिय-श्रेणी-शतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

१. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव पढम सेढिसयं तहेव एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा ।

इसी प्रकार जैसा प्रथम श्रेणीशतक कहा है, उसी प्रकार यहाँ ग्यारह उद्देशक कहने चाहिए।

[१] **एवं नीललेस्सेहि वि सयं ।**

[१] इसी प्रकार नीललेश्या वाले एकेन्द्रिय जीव के विषय मे तृतीय अवान्तरशतक है।

[२] **काउलेस्सेहि वि सयं एवं चेव ।**

[२] कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय के लिए भी इसी प्रकार चतुर्थ शतक है।

[३] **भवसिद्धियएगिंदियेहिं सयं ।**

।। चोत्तीसइमे सए : तइयाइ-पचमपज्जंता सया समत्ता ।। ३४ । ३-५ ।।

[३] तथा भवसिद्धिक-एकेन्द्रिय विषयक पचम शतक भी समझना चाहिए।

।। प्रत्यक के ग्यारह उद्देशक समाप्त ।।

।। चौतीसवाँ शतक : तृतीय से पचम अवान्तर शतक समाप्त ।।

छट्ठे एगिंदियसए : पढमाइएक्कारसपज्जंता उद्देसगा

छठा एकेन्द्रियशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय-प्ररूपणा

१. कतिविधा णं भंते ! कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पन्नत्ता ।
जहेव ओोहिउद्देसओो ।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ?

[१ उ] गौतम ! ओधिक उद्देशकानुसार जानना चाहिए ।

२. कतिविधा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता ?
जहेव अणंतरोववण्णाउद्देसओ ओोहिओ तहेव ।

[२ प्र] भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक भवसिद्धिक-कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[२ उ] गौतम ! अनन्तरोपपन्नक-सम्बन्धी औधिक उद्देशक के अनुसार जानना ।

३. कतिविहा णं भंते ! परपरोववन्नकण्हलेस्सभवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता ?

गोयमा ! पचविहा परपरोववन्नकण्हलेस्सभवसिद्धिया एगिंदिया पन्नत्ता । भेदो चउक्कओो जाव वणस्सतिकाइय त्ति ।

[३ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक कितने प्रकार के कहे हैं ?

[३ उ.] गौतम ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव पाच प्रकार के कहे हैं । यहाँ प्रत्येक के ओधिक चार-चार भेद वनस्पतिकायिक पर्यन्त समझने चाहिए ।

४. परपरोववन्नकण्हलेस्सभवसिद्धीयअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए० ?

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओोहिया उद्देसओो जाव लोयचरमंते त्ति ! सव्वत्थ कण्हलेस्सेसु भवसिद्धिएसु उववातेयव्वो ।

[४ प्र] भगवन् ! जो परम्परोपपन्नक-कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव, इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वी-चरमान्त मे मरणसमुद्घात करके पश्चिमी-चरमान्त मे उत्पन्न हो तो वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

[४ उ.] गौतम ! पूर्ववत् जानना । इस अभिलाप से औधिक उद्देशक के अनुसार लोक के चरमान्त तक यहाँ सर्वत्र कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक में उपपात कहना चाहिए ।

५. कहि णं भंते ! परंपरोववन्नकण्हलेस्सभवसिद्धियपज्जत्तबायरपुढविकाइयाणं ठाणा पन्नत्ता ? एव एएण अभिलावेणं जहेव ओहिओ उद्देसओ जाव तुल्लट्ठितीय त्ति ।

[५ प्र] भगवन् ! परम्परोपपन्नक कृष्णलेश्यीभवसिद्धिक पर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक जीवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[५ उ] **गौतम !** इसी प्रकार इस अभिलाप से औधिक उद्देशक यावत् तुल्यस्थिति-पर्यन्त जानना चाहिए ।

६. एवं एएण अभिलावेण कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि तहेव ।

।। एक्कारसउद्देसगसजुत्तं छट्ठं सत समत्त ।। ३४-६ ।।

[६] इसी प्रकार इस अभिलाप से कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक एकेन्द्रियो के सम्बन्ध मे भी (ग्यारह उद्देशक सहित छठा शतक) कहना चाहिए ।

।। चौतीसवां शतक छठा अवान्तरशतक समाप्त ।।

सत्तमाइ बारसमसयपज्जंतेसु उद्देसगा

सातवें से बारहवें शतक तक : १-११ उद्देशक

१. नीललेस्सभवसिद्धियएगिंदिएसु सय ।

[१] नीललेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवो के सम्बन्ध मे (सातवाँ) शतक कहना चाहिए ।

१. एवं काउलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि सय ।

[२] इसी प्रकार कापोतलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव-सम्बन्धी (आठवाँ) शतक कहना चाहिए ।

३. जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सयाणि एवं अभवसिद्धीएहि वि चत्तारि सयाणि भाणियव्वाणि, नवरं चरिम-अचरिमवज्जा नवउद्देसगा भाणियव्वा । सेसं तं चेव ।

एवं एयाइ बारस एगिंदियसेढिसयाइ ।

सेवं भते ! सेव ! भते ! त्ति जाव विहरइ ।

।। चउतीसइमे सए एगिंदियसेढिसयाइं समत्ताइं ।। ३४-१-१२ ।।

।। चउत्तीसइमे एगिंदियसेढिसयं समत्त ।। ३४ ।।

[३] भवसिद्धिक जीव के चार शतको के अनुसार अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव के भी चार शतक कहने चाहिए । विशेष यह है कि चरम और अचरम को छोडकर इनमे नौ उद्देशक ही कहने चाहिए । शेष पूर्ववत् जानना । इस प्रकार ये बारह एकेन्द्रिय-श्रेणी-शतक कहे है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन—इसमे ऋज्वायता आदि श्रेणियो की मुख्यता होने से इस शतक का नाम 'श्रेणी-शतक' प्रसिद्ध हो गया ।

।। चौतीसवाँ शतक : सातवें से बारहवें अवान्तर शतक तक समाप्त ।।

।। चौतीसवाँ एकेन्द्रियश्रेणी-शतक सम्पूर्ण ।।

पंचतीसइमसयाओ चत्तालीसइमसय पज्जंता सया

पेंतीसवें से लेकर चालीसवें शतक पर्यन्त

छह महायुग्मशतक

प्राथमिक

- ये भगवतीसूत्र के छह महायुग्म शतक हैं--पेंतीसवाँ, छत्तीसवाँ, सैंतीसवाँ ,अड़तीसवाँ, उनचालीसवाँ और चालीसवाँ।
- इनमे एकेन्द्रिय से लेकर सज्ञी-पचेन्द्रिय तक के महायुग्मो की उत्पत्ति (कहाँ से ?), आयु, गति, आगति, परिमाण, अपहार, अवगाहना, कर्मप्रकृतिबन्धक-अबन्धक, वेदक-अवेदक, उदयवान्-अनुदयवान्, उदीरक-अनुदीरक, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान-अज्ञान, योग, उपयोग, वर्णादि चार, श्वासोच्छ्‌वास, आहारक-अनाहारक, विरत-अविरत, क्रियायुक्त—क्रियारहित आदि पदो का १६ प्रकार के महायुग्मो की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।
- पेंतीसवाँ एकेन्द्रिय महायुग्म शतक है, जिसमे १६ महायुग्म और उनके स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। इनकी जघन्य और उत्कृष्ट सख्या का भी निरूपण किया गया है। इस प्रकार पेंतीसवे शतक के १२ अवान्तर शतको मे से प्रत्येक के ग्यारह उद्देशको सहित विविध पहलुओ से एकेन्द्रिय जीवो का सागोपाग वर्णन किया गया है।

  इसमे पूर्वशतकद्वय के समान अनन्तर-परम्पर, भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक, चरम-अचरम तथा लेश्यादि विशेषणो से युक्त एकेन्द्रिय के माध्यम से भी प्ररूपणा की गई है।
- छत्तीसवे शतक के अन्तर्गत १२ अवान्तरशतको मे भी प्रत्येक के ग्यारह-ग्यारह उद्देशको मे एकेन्द्रिय जीवो के विषय मे प्ररूपणाक्रम के समान द्वीन्द्रिय जीवो की भी विविध पहलुओ से चर्चा की गई है।
- सैंतीसवे शतक मे भी १२ अवान्तरशतको और प्रत्येक के ११-११ उद्देशको मे अतिदेशपूर्वक त्रीन्द्रिय-महायुग्मो की प्ररूपणा है।
- अड़तीसवे शतक मे पूर्ववत् चतुरिन्द्रियमहायुग्मो की प्ररूपणा है।
- उनचालीसवे शतक मे भी पूर्वशतकानुसार अवगाहना और स्थिति को छोड़कर शेष सब कथन प्राय द्वीन्द्रिय शतक के समान असज्ञीपचेन्द्रिय महायुग्म के विषय मे प्ररूपणा की है।
- चालीसवे शतक मे इक्कीस अवान्तर शतको मे सज्ञी-पचेन्द्रिय के षोडश महायुग्मो के माध्यम से उनकी उत्पत्ति आदि का सागोपाग वर्णन है।
- सक्षेप मे समस्त जीवो की विविधताओ और विशेषताओ का सूक्ष्म विवेचन है।

पंचतीसइमं सयं : बारस एगिंदिय-महाजुम्म-सयाणि

पैंतीसवाँ शतक : बारह एकेन्द्रिय-महायुग्मशतक

पढमे एगिंदियमहाजुम्मसए : पढमो उद्देसओ

प्रथम एकेन्द्रिय-महायुग्मशतक : प्रथम उद्देशक

१. [१] कति णं भंते ! महाजुम्मा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सोलस महाजुम्मा पन्नत्ता, तं जहा—कडजुम्मकडजुम्मे १, कडजुम्मतेयोगे २, कडजुम्मदावरजुम्मे ३, कडजुम्मकलियोगे ४, तेयोगकडजुम्मे ५, तेयोगतेयोए ६, तेग्रोयदावरजुम्मे ७, तेयोगकलियोए ८, दावरजुम्मकडजुम्मे ९, दावरजुम्मतेग्रोए १०, दावरजुम्मदावरजुम्मे ११, दावरजुम्मकलियोगे १२, कलिग्रोगकडजुम्मे १३, कलियोगतेग्रोये १४, कलियोगदावरजुम्मे १५, कलियोगकलिग्रोगे १६।

[१-१ प्र] भगवन् ! महायुग्म कितने बताए गए है ?

[१-१ उ] गौतम ! सोलह महायुग्म कहे गए हैं, यथा—(१) कृतयुग्मकृतयुग्म, (२) कृतयुग्मत्र्योज, (३) कृतयुग्मद्वापरयुग्म, (४) कृतयुग्मकल्योज, (५) त्र्योजकृतयुग्म, (६) त्र्योजत्र्योज, (७) त्र्योजद्वापरयुग्म, (८) त्र्योजकल्योज, (९) द्वापरयुग्मकृतयुग्म, (१०) द्वापरयुग्मत्र्योज, (११) द्वापरयुग्मद्वापरयुग्म, (१२) द्वापरयुग्मकल्योज, (१३) कल्योजकृतयुग्म, (१४) कल्योजत्र्योज, (१५) कल्योजद्वापरयुग्म और (१६) कल्योजकल्योज।

[२] से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—सोलस महाजुम्मा पन्नत्ता, त जहा—कडजुम्मकडजुम्मे जाव कलियोगकलियोगे ?

गोयमा ! जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से त्तं कडजुम्मकडजुम्मे १। जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से त्तं कडजुम्मतेयोए २। जे णं रासी चउक्कएण अवहारेण अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से त्तं कडजुम्मदावरजुम्मे ३। जे ण रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से त्तं कडजुम्मकलियोगे ४। जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेयोगा, से त्त तेयोगकडजुम्मे ५। जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेयोगा से त्तं तेयोयतेयोगे ६। जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेयोगा, से त्तं तेग्रोयदावरजुम्मे ७। जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अव-

हीरमाणे एगपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेयोया, से त्तं तेयोयकलियोए ८ । जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे ण तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, से त्तं दावरजुम्मकडजुम्मे ९ । जे णं रासी चउक्कएण अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, से त्त दावरजुम्मतेयोए १० । जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, से त्तं दावरजुम्मदावरजुम्मे ११ । जे ण रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे ण तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा से त्तं दावरजुम्मकलियोए १२ । जे ण रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोगा, से त्त कलियोगकडजुम्मे १३ । जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेण अवहीरमाण तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोया, से त्तं कलियोयतेयोए १४ । जे ण रासी चउक्कएण अवहारेण अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोगा, से त्त कलियोगदावरजुम्मे १५ । जे ण रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे ण तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोगा, से त्तं कलियोयकलियोए १६ । से तणट्ठेणं जाव कलियोगकलियोगे ।

[१-२ प्र] भगवन् ! क्या कारण है कि महायुग्म सोलह कहे गए है, यथा - कृतयुग्मकृतयुग्म से लेकर कल्योजकल्योज तक ?

[१-२ उ] गौतम ! (१) जिस राशि में चार सख्या का अपहार करते हुए चार शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय भी कृतयुग्म (चार) हो तो वह राशि कृतयुग्मकृतयुग्म कहलाती है, (२) जिस राशि मे से चार सख्या का अपहार करते हुए तीन शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय कृतयुग्म हो तो वह राशि कृतयुग्मत्र्योज कहलाती है। (३) जिस राशि मे से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए दो शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय कृतयुग्म हो तो वह राशि कृतयुग्मद्वापरयुग्म कहलाती है, (४) जिस राशि मे से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए एक शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय कृतयुग्म हो तो वह राशि कृतयुग्म-कल्योज कहलाती है, (५) जिस राशि मे से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए चार शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय त्र्योज हो तो वह राशि त्र्योजकृतयुग्म कहलाती है, (६) जिस राशि मे से चार के अपहार से अपहृत करते हुए तीन शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय भी त्र्योज (तीन) हो तो वह राशि त्र्योजत्र्योज कहलाती है। (७) जिस राशि मे से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए दो बचे और उस राशि के अपहारसमय त्र्योज हो तो वह राशि त्र्योज-द्वापरयुग्म कहलाती है, (८) जिस राशि मे से चार से अपहृत करते हुए एक बचे और उस राशि के अपहारसमय त्र्योज हो तो वह राशि त्र्योजकल्योज कहलाती है, (९) जिस राशि में से चार सख्या से अपहृत करते हुए चार शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय द्वापरयुग्म (दो) हो तो वह राशि द्वापरयुग्मकृतयुग्म कहलाती है, (१०) जिस राशि मे से चार सख्या से अपहृत करते हुए तीन शेष रहे और उस राशि के अपहारसमय द्वापरयुग्म हो तो वह राशि द्वापरयुग्मत्र्योज कहलाती है। (११) जिस राशि मे से चार सख्या से अपहृत करते हुए दो बचे और उस राशि के अपहारसमय द्वापरयुग्म हो तो वह राशि द्वापरयुग्मद्वापरयुग्म कहलाती है। (१२) जिस राशि मे से चार सख्या के

अपहार से अपहृत करते हुए एक शेष रहे और उस राशि के अपहार-समय द्वापरयुग्म हो, तो वह राशि द्वापरयुग्मकल्योज कहलाती है, (१३) जिस राशि मे से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए चार शेष रहे और उस राशि का अपहार-समय कल्योज (एक) हो तो वह राशि कल्योज-कृतयुग्म कहलाती है, (१४) जिस राशि मे से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए तीन शेष रहे और उस राशि का अपहार-समय कल्योज हो तो वह राशि कल्योजत्र्योज कहलाती है। (१५) जिस राशि मे से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए दो बचे और उस राशि का अपहार समय कल्योज हो तो वह राशि कल्योजद्वापरयुग्म कहलाती है, और (१६) जिस राशि में से चार सख्या के अपहार से अपहृत करते हुए एक शेष रहे और उस राशि का अपहार-समय कल्योज हो तो वह राशि कल्योजकल्योज कहलाती है। इसी कारण से हे गौतम! (कृतयुग्मकृतयुग्म से लेकर) कल्योजकल्योज तक कहा गया है।

विवेचन—महायुग्म : स्वरूप प्रकार और जघन्य सख्या—'युग्म' राशिविशेष को कहते है और वे युग्म क्षुल्लक (छोटे) भी होते है और महान् (बडे) भी होते है। क्षुल्लकयुग्मो का वर्णन पहले किया जा चुका है। उनसे इनका अन्तर बताने हेतु इस शतक मे 'महायुग्म' का वर्णन प्रारम्भ किया जाता है। महायुग्म सोलह है, जिनका नाम और सक्षिप्त स्वरूप मूलपाठ मे ही बता दिया गया है। उदाहरणार्थ सर्वप्रथम महायुग्म का नाम 'कृतयुग्मकृतयुग्म' है। यह राशि कृतयुग्मकृतयुग्म इसलिए कहलाती है कि जिस राशि मे से प्रतिसमय चार-चार के अपहार से अपहृत करते हुए अन्त मे चार शेष रहे और अपहार-समय भी चार हो, क्योकि जिस द्रव्य मे से अपहरण किया जाता है, वह द्रव्य भी कृतयुग्म है और अपहरण के समय भी कृतयुग्म (चार) है। अत ऐसी राशि कृतयुग्मकृतयुग्म कहलाती है। इसी प्रकार अन्य राशियो का स्वरूप भी शब्दार्थ से जान लेना चाहिए। यथा—१६ की सख्या जघन्य कृतयुग्मकृतयुग्म-राशिरूप है, क्योकि उसमे से चार सख्या से अपहार करते हुए अन्त मे चार शेष रहते है और अपहारसमय भी चार होते है। कृतयुग्मत्र्योज इस प्रकार है—जघन्य १९ की सख्या मे से प्रतिसमय चार का अपहार करते हुए अन्त मे तीन शेष रहते है और अपहार-समय चार शेष होते है। इस प्रकार अपहरण किये जाने वाले द्रव्य की अपेक्षा वह राशि त्र्योज है और अपहार-समय की अपेक्षा 'कृतयुग्म' है। अतएव इस राशि को कृतयुग्मत्र्योज कहा जाता है। यहाँ सर्वत्र अपहारक समय की अपेक्षा पहला पद है और अपहार किये जाने वाले द्रव्य की अपेक्षा दूसरा पद है। इन सोलह महायुग्मो की जघन्य सख्या इस प्रकार है—(१) सोलह आदि, (२) उन्नीस आदि, (३) अठारह आदि, (४) सत्रह आदि, (५) बारह आदि, (६) पन्द्रह आदि, (७) चौदह आदि, (८) तेरह आदि, (९) आठ आदि, (१०) ग्यारह आदि, (११) दस आदि, (१२) नौ आदि, (१३) चार आदि, (१४) सात आदि, (१५) छह आदि और (१६) पाच आदि।[1]

कृतयुग्म-कृतयुग्म-राशियुक्त एकेन्द्रियमहायुग्मों मे उपपातादि बत्तीस द्वारों की प्ररूपणा

२. कडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति? किं नेरइय०?

जहा उप्पलुद्देसए (स० ११ उ० १ सु० ५) तहा उववातो।

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९६५-९६६

[२ प्र] भगवन् ! कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[२ उ.] गौतम ! जिस प्रकार (भ शतक ११, उ. १, सू ५) उत्पलोद्देशक मे उपपात कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी उपपात कहना चाहिए ।

३. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! सोलस वा, सखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जति ।

[३ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[३ उ] गौतम ! वे एक समय मे सोलह, सख्यात, असख्यात या अनन्त उत्पन्न होते है ।

४ ते णं भते ! जीवा समए समए० पुच्छा ।

गोयमा ! ते णं अणंता समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा अणतार्हि ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीर्हि अवहीरति, नो चेव ण अवहिया सिया ।

[४ प्र] भगवन् ! वे अनन्त जीव समय-समय मे एक-एक अपहृत किये जाएँ तो कितने काल मे अपहृत (रिक्त) होते है ?

[४ उ] गौतम ! यदि वे अनन्त जीव समय-समय मे अपहृत किये जाएँ और ऐसा करते हुए अनन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी बीत जाएँ तो भी वे अपहृत (रिक्त – खाली) नही हो पाते । (किन्तु ऐसा किसी ने किया नही) ।

५. उच्चत्तं जहा उप्पलुद्देसए (स० ११ उ० १ सु० ८) ।

[५] इनकी ऊँचाई उत्पलोद्देशक (श ११, उ १, सू. ८) के अनुसार जानना चाहिए ।

६ ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बधगा, अबधगा ?

गोयमा ! बंधगा, नो अबंधगा ।

[६ प्र] भगवन् ! वे एकेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म के बन्धक हैं या अबन्धक हैं ?

[६ उ] गौतम ! वे जीव ज्ञानावरणीयकर्म के बन्धक है, अबन्धक नही हैं ।

७ एवं सव्वेसि आउयवज्जाण, आउयस्स बंधगा वा, अबंधगा वा ।

[७] इसी प्रकार वे जीव आयुष्यकर्म को छोड कर शेष सभी कर्मों के बन्धक हैं । आयुष्यकर्म के वे बन्धक भी हैं और अबन्धक भी है ।

८. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स० पुच्छा ।

गोयमा ! वेदगा, नो अवेदगा ।

[८ प्र] भगवन् ! वे जीव ज्ञानावरणीयकर्म के वेदक हैं या अवेदक हैं ?

[८ उ] गौतम ! वे ज्ञानावरणीयकर्म के वेदक है, अवेदक नही हैं ।

९. एवं सव्वेसि ।

[९] इसी प्रकार सभी कर्मों के विषय मे जानना चाहिए ।

१०. ते णं भंते ! जीवा किं सातावेदगा० पुच्छा।

गोयमा ! सातावेयगा वा असातावेयगा वा। एवं उप्पलुद्देसगपरिवाडी (स० ११ उ० १ सु० १२-१३)—सव्वेसिं कम्माणं उदई, नो अणुदई। छण्हं कम्माणं उदीरगा, नो अणुदीरगा। वेयणिज्जा-ऽऽउयाणं उदीरगा वा, अणुदीरगा वा।

[१० प्र.] भगवन् ! वे जीव साता के वेदक हैं अथवा असाता के वेदक है ?

[१० उ.] गौतम ! वे सातावेदक भी होते है, अथवा असातावेदक भी एव उत्पलोद्देशक (श. ११, उ ११, सू. १२-१३) की परिपाटी के अनुसार वे सभी कर्मों के उदय वाले हैं, अनुदयी नही। वे छह कर्मों के उदीरक है, अनुदीरक नही तथा वेदनीय और आयुष्यकर्म के उदीरक भी है और अनुदीरक भी हैं।

११. ते ण भते जीवा किं कण्ह० पुच्छा।

गोयमा ! कण्हलेस्सा वा नीललेस्सा वा काउलेस्सा वा तेउलेस्सा वा। नो सम्मद्दिट्ठी, मिच्छ-द्दिट्ठी, नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी। नो नाणी, अन्नाणी; नियम दुअन्नाणी, तं जहा—मतिअन्नाणी य, सुय-अन्नाणी य। नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी। सागारोवउत्ता वा, अणागारोवउत्ता वा।

[११ प्र.] भगवन् ! वे एकेन्द्रिय जीव क्या कृष्णलेश्या वाले होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[११ उ.] गौतम ! वे जीव कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी, कापोतलेश्यी अथवा तेजोलेश्यी होते है। ये सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते, मिथ्यादृष्टि होते है। वे ज्ञानी नही, अज्ञानी होते हैं। वे नियमत. दो अज्ञान वाल होते है, यथा—मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी। वे मनोयोगी और वचनयोगी नही होते, केवल काययोगी होते है। वे साकारोपयोग वाले भी होते हैं और अनाकारोपयोग वाले भी होते है।

१२. तेसि ण भंते ! जीवाण सरीरगा कतिवण्णा० ?

जहा उप्पलुद्देसए (स० ११ उ० १ सु० १९-३०) सव्वत्थ पुच्छा। गोयमा ! जहा उप्पलुद्देसए। ऊसासगा वा, नीसासगा वा, नो ऊसासगनीसासगा। आहारगा वा, अणाहारगा वा। नो विरया, अविरया, नो विरयाविरया। सकिरिया, नो अकिरिया। सत्तविहबंधगा वा, अट्ठविह-बंधगा वा। आहारसन्नोवउत्ता वा जाव परिग्गहसन्नोवउत्ता वा। कोहकसाई वा जाव लोभकसाई वा। नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा। इत्थिवेदबंधगा वा, पुरिसवेदबंधगा वा, नपुंसगवेदबंधगा वा। नो सण्णी, असण्णी। सइंदिया, नो अणिंदिया।

[१२ प्र.] भगवन् ! उन एकेन्द्रिय जीवों के शरीर कितने वर्ण के होते है ? इत्यादि समग्र प्रश्न (श ११, उ. १) उत्पलोद्देशक (सू १९ से ३० तक) के अनुसार।

[१२ उ.] गौतम ! उत्पलोद्देशक के अनुसार, उनके शरीर पाच वर्ण, पाच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले होते है। वे उच्छ्वास वाले या नि श्वास वाले अथवा नो- उच्छ्वास-नि श्वास वाले होते हैं। वे आहारक या अनाहारक होते है। वे विरत (सर्वविरत) और विरताविरत (देश-विरत) नही होते, किन्तु अविरत होते है। वे क्रियायुक्त होते है, क्रियारहित नही। वे सात या आठ कमप्रकृतियो के बन्धक होते हैं। वे आहारसज्ञा यावत् परिग्रहसज्ञा वाले होते है। वे क्रोधकषायी

यावत् लोभकषायी होते है। वे स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी नही होते, किन्तु नपु सकवेदी होते है। वे स्त्रीवेद-बन्धक पुरुषवेद-बन्धक या नपु सकवेद-बन्धक होते है। वे सज्ञी नही होते, असज्ञी होते हैं। वे सइन्द्रिय होते हैं, अनिन्द्रिय नही होते है।

१३. ते णं भते! 'कडजुम्मकडजुम्मएगिदिय' त्ति कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा! जहन्नेणं एक्क समयं, उक्कोसेण अणंत काल¹ -- अणतो वणस्सइकालो। संवेहो न भण्णइ आहारो जहा उप्पलुद्देसए (स० ११ उ० १ सु० ४०), नवर निव्वाघाएण छद्दिसि, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पचदिसिं। सेस तहेव। ठिती जहन्नेणं एक्क समय, (अतोमुहुत्तं), उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइ। समुग्घाया आइल्ला चत्तारि, मारणंतियसमुग्घाएण समोहया वि मरति, असमोहया वि मरति। उव्वट्टणा जहा उप्पलुद्देसए (स० ११ उ० १ सु० ४४)।

[१३ प्र] भगवन्! वे कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव काल की अपेक्षा कितने काल तक होते है?

[१३ उ] गौतम! वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल अनन्त (उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीरूप) वनस्पतिकाल-पर्यन्त होते है। यहा सवेध का कथन नही किया जाता। इनका आहार उत्पलोद्देशक (श ११, उ १, सू ४०) के अनुसार जानना, किन्तु वे व्याघातरहित छह दिशा से और व्याघात हो तो कदाचित् तीन, चार या पाच दिशा से आहार लेते हैं। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की होती है। इनमे आदि (पहले) के चार समुद्घात पाये जाते हैं। ये मारणान्तिक समुद्घात मे समवहत अथवा असमवहत होकर मरते हैं। इनकी उद्वर्त्तना उत्पलोद्देशक के अनुसार जाननी चाहिए।

१४. अह भते! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता कडजुम्मकडजुम्मएगिदियत्ताए उववन्नपुव्वा ?

हता गोयमा! असई अदुवा अणंतखुत्तो।

[१४ प्र.] भगवन्! समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्व क्या कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रियरूप से पहले उत्पन्न हुए है?

[१४ उ.] हा, गौतम! वे अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके है।

विवेचन—कृतयुग्म-कृतयुग्म-एकेन्द्रिय जीवों के विषय मे कुछ स्पष्टीकरण— जिन एकेन्द्रिय जीवो मे से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त मे चार बच और अपहार-समय भी चार हो वे कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय कहलाते हैं। यहाँ प्राय ग्यारहवे शतक के प्रथम उत्पलोद्देशक का अतिदेश किया गया है।

एकेन्द्रिय जीवो मे सवेध असम्भव क्यो?—उत्पलोद्देशक मे उत्पल यानी कमल के जीव की उत्पत्ति विवक्षित हो और वह पृथ्वीकायादि दूसरी काय मे जाए और फिर उत्पल मे आकर उत्पन्न हो तब उसका सवेध सभावित होता है, किन्तु प्रस्तुत मे कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि रूप एकेन्द्रिय का प्रकरण है और एकेन्द्रिय तो अनन्त उत्पन्न होते हैं। उनमे से निकल कर वे विजातीयकाय मे उत्पन्न हो और

१. **अधिकपाठ**—किसी किसी प्रति मे यहाँ इतना पाठ अधिक है—'**अणता ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ** .. ।'

पुन. एकेन्द्रिय में उत्पन्न हो तब उनका संवेध हो सकता है किन्तु वहाँ से उनका निकलना असम्भव होने से संवेध नही हो सकता। यहाँ जो सोलह कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप उत्पाद कहा है, वह त्रसकाय से आकर उत्पन्न होने वाले जीव की अपेक्षा से है, वह वास्तविक उत्पाद नही है, क्योकि एकेन्द्रिय मे प्रतिसमय अनन्त जीवो का उत्पाद होता है। इसलिए यहाँ एकेन्द्रिय की अपेक्षा से संवेध असम्भावित होने से उसका निषेध किया गया है।[1]

कृतयुग्म-त्र्योज-एकेन्द्रिय से लेकर कल्योज-कल्योज-एकेन्द्रिय तक का उत्पादादि निरूपण

१५. कडजुम्मतेयोयएगिंदिया ण भंते ! कओ उववज्जंति० ?

उववातो तहेव ।

[१५ प्र] भगवन् ! कृतयुग्म-त्र्योजराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहा से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१५ उ.] गौतम ! उनका उपपात पूर्ववत् कहना चाहिए ।

१६ ते णं भंते ! जीवा एगसमए० पुच्छा ।

गोयमा ! एक्कूणवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति । सेसं जहा कडजुम्मकडजुम्माण (सु० ४-१४) जाव अणंतखुत्तो ।

[१६ प्र] भगवन् ! वे जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[१६ उ] गौतम ! वे एक समय मे उन्नीस, सख्यात असख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत् कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप के पाठ (सू ४ से १४ तक) के अनुसार पहले अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

१७. कडजुम्मदावरजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उववातो तहेव ।

[१७ प्र] भगवन् ! कृतयुग्म-द्वापरयुग्मरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१७ उ] गौतम ! इनका उपपात पूर्ववत् जानना चाहिए ।

१८. ते ण भंते ! एगसमएण० पुच्छा ।

गोयमा ! अट्ठारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणता वा उववज्जंति । सेसं तहेव (सु० ४—१४) जाव अणंतखुत्तो ।

[१८ प्र.] भगवन् ! वे (पूर्वोक्त एकेन्द्रिय) जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

[१८ उ] गौतम ! वे एक समय मे अठारह, सख्यात, असख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं। शेष सब पूर्ववत् (सू ४ से १४ तक ,कृतयुग्मएकेन्द्रिय के अनुसार) यावत् अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, यहा तक कहना चाहिए ।

१९. कडजुम्मकलियोगएगिंदिया ण भंते ! कओ उवव० ?

---

१ भगवती अ वृत्ति, पत्र ९६७

उववातो तहेव। परिमाणं सत्तरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा अणंता वा। सेसं तहेव (सु० ४-१४) जाव अणंतखुत्तो।

[१९ प्र] भगवन्! कृतयुग्म-कल्योजरूप एकेन्द्रिय कहाँ से आकर उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[१९ उ.] गौतम! इनका उपपात पूर्ववत् समझना चाहिए। इनका परिमाण है— सत्रह, सख्यात, असख्यात या अनन्त। शेष (सू ४ से १४ तक के अनुसार) पूर्ववत् यावत् अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, यहाँ तक कहना चाहिए।

२०. **तेयोगकडजुम्मएगिंदिया ण भंते! कओ उववज्जति?**

उववातो तहेव। परिमाणं– बारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति। सेसं तहेव (सु० ४-१४) जाव अणंतखुत्तो।

[२० प्र] भगवन्! त्र्योज-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[२० उ] गौतम! इनका उपपात भी पूर्ववत् जानना। इनके प्रतिसमय उत्पाद का परिमाण है—बारह, सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त। शेष (सू ४ से १४ तक के अनुसार) पूर्ववत् अनन्त बार उत्पन्न हुए है, यहाँ तक कहना चाहिए।

२१. **तेयोयतेयोयएगिंदिया णं भंते! कतो उववज्जति?**

उववातो तहेव। परिमाणं पन्नरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा। सेसं तहेव (सु० ४-१४) जाव अणंतखुत्तो।

[२१ प्र] भगवन्! त्र्योज-त्र्योजराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है? इत्यादि प्रश्न।

[२१ उ.] गौतम! इनका उपपात भी पूर्ववत् है। इनके प्रतिसमय उत्पाद का परिमाण है- पन्द्रह, सख्यात, असख्यात या अनन्त। शेष सब (सू ४ से १४ के अनुसार) पूर्ववत् अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं यहाँ तक जानना चाहिए।

२२. **एवं एएसु सोलससु महाजुम्मेसु एक्को गमओ, नवरं परिमाणे नाणत्तं—तेयोयदावरजुम्मेसु परिमाणं चोद्दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति। तेयोगकलियोगेसु तेरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जति। दावरजुम्मकडजुम्मेसु अट्ठ वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति। दावरजुम्मतेयोगेसु एक्कारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जति। दावरजुम्मदावरजुम्मेसु दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जति। दावरजुम्मकलियोगेसु नव वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जति। कलियोगकडजुम्मेसु चत्तारि वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जति। कलियोगतेयोगेसु सत्त वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति। कलियोगदावरजुम्मेसु छ वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जति।**

[२२] इस प्रकार इन सोलह महायुग्मो का एक ही प्रकार का कथन (गमक) समझना चाहिए। किन्तु इनके परिमाण मे भिन्नता है। जैसे कि -त्र्योजद्वापरयुग्म का प्रतिसमय उत्पाद का परिमाण चौदह, सख्यात, असख्यात या अनन्त है। त्र्योजकल्योज का प्रतिसमय उत्पाद-परिमाण है—तेरह, सख्यात, असख्यात या अनन्त। द्वापरयुग्मकृतयुग्म का उत्पाद-परिमाण आठ, सख्यात, असख्यात या अनन्त है। द्वापरयुग्मत्र्योज का प्रतिसमय उत्पाद-परिमाण ग्यारह, सख्यात, असख्यात या अनन्त है। द्वापरयुग्मद्वापरयुग्म मे प्रतिसमय मे दस, सख्यात, असख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं। द्वापरयुग्मकल्योज मे प्रतिसमय उत्पाद-परिमाण नौ, सख्यात, असख्यात या अनन्त है। कल्योजकृतयुग्म मे प्रतिसमय उत्पाद-परिमाण चार, सख्यात, असख्यत या अनन्त है। कल्योजत्र्योज मे प्रतिसमय उत्पत्ति-परिमाण सात, सख्यात, असख्यात या अनन्त है और कल्योजद्वापरयुग्म मे प्रतिसमय मे उत्पाद का परिमाण छह, सख्यात, असख्यात या अनन्त है।

२३. कलियोगकलियोगएगिंदिया णं भते ! कओ उववज्जंति ?

उववातो तहेव। परिमाण पच वा, सखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणता वा उववज्जंति सेस तहेव (सु० ४-१४) जाव अणतखुत्तो।

सेवं भते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। पणतीसइमे सए : पढमे एगिंदिय-महाजुम्मसए : पढमो उद्देसओ समत्तो ।। ३५।१।१ ।।

[२३ प्र] भगवन् ! कल्योज-कल्योजराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२३ उ] गौतम ! इनका उपपात भी पूर्ववत् कहना चाहिए। इनका प्रतिसमय उत्पाद का परिमाण पाच सख्यात, असख्यात या अनन्त है। शेष सब पूर्ववत् (सू ४ से १४ तक के अनुसार) अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके है, यहाँ तक कहना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—निष्कर्ष—इस प्रकरण मे कृतयुग्म-त्र्योजरूप एकेन्द्रिय से लेकर कल्योज-कल्योज एकेन्द्रिय तक के जीवो के उत्पाद आदि का कथन पूर्वोक्त कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय के (सू ४ से १४ तक के अनुसार) अतिदेशपूर्वक किया गया है। किन्तु इन सोलह ही महायुग्मो के प्रतिसमयोत्पत्ति के जघन्य परिमाण मे अन्तर है, जिसे मूलपाठ में स्पष्ट कर दिया गया है।[1]

।। पंतीसवाँ शतक : प्रथम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त, भा. ३, (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ ११४५-४६

पढमे एगिंदियमहाजुम्मसए : बिइओ उद्देसगो

प्रथम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : द्वितीय उद्देशक

१. पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

गोयमा ! तहेव ।

[१ प्र.] भगवन् ! प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए ।

२. एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव सोलसखुत्तो बितियो वि भाणियव्वो । तहेव सव्वं । नवरं इमाणि दस नाणत्ताणि—ओगाहणा जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं । आउयकम्मस्स नो बंधगा, अबंधगा । आउयस्स नो उदीरगा, अणुदीरगा । नो उस्सासगा, नो निस्सासगा, नो उस्सासनिस्सासगा । सत्तविहबंधगा, नो अट्ठविहबंधगा ।

[२] इसी प्रकार जैसे प्रथम उद्देशक में (उत्पाद-परिमाण) कहा है, वैसे द्वितीय उद्देशक में भी उत्पाद-परिमाण सोलह बार कहना चाहिए । अन्य सब कथन पूर्ववत् ही है । किन्तु इन दस बातों में भिन्नता (नानात्व) है, यथा—(१) अवगाहना—जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग है और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है । (२-३) आयुष्यकर्म के बन्धक नहीं, अबन्धक होते हैं । (४-५) आयुष्यकर्म के ये उदीरक नहीं, अनुदीरक होते हैं । (६-७-८) ये उच्छ्वास, निःश्वास तथा उच्छ्वास-निःश्वास से युक्त नहीं होते और (९-१०) ये सात प्रकार के कर्मों के बन्धक होते हैं, अष्टविधकर्मों के बन्धक नहीं होते ।

३. ते णं भंते ! 'पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति कालतो केवचिरं० ?

गोयमा ! एक्कं समयं ।

[३ प्र.] भगवन् ! वे प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव काल की अपेक्षा कितने काल तक होते हैं ।

[३ उ.] गौतम ! वे एक समय तक होते हैं ।

४. एवं ठिती वि । समुग्घाया आइल्ला दोन्नि । समोहया न पुच्छिज्जंति । उव्वट्टणा न पुच्छिज्जइ । सेसं तहेव सव्वं निरवसेसं सोलससु वि गमएसु जाव अणंतखुत्तो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ पढमे एगिंदिय-महाजुम्मसए : बिइओ उद्देसओ समत्तो ॥ ३५।१।२ ॥

[४] उनकी स्थिति भी इतनी ही (इसी प्रकार) है। उनमे आदि (पहले) के दो समुद्घात होते है। उनमे समवहत एव उद्वर्त्तना नही होने से, इन दोनो की पृच्छा नही करनी चाहिए। शेष सब बाते सोलह ही महायुग्मो मे अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, यहाँ तक उसी प्रकार (प्रथम उद्देशक के अनुसार) कहनी चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—स्वरूप और भिन्नताएँ—एकेन्द्रियरूप मे उत्पन्न हुए, जिनको अभी एक समय ही हुआ है और जो कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप हैं, ऐसे एकेन्द्रिय को **'प्रथमसमयकृतयुग्मकृतयुग्म-एकेन्द्रिय'** कहते हैं। ये जीव प्रथमसमयोत्पन्न है, इसलिए इनमे जो बाते सम्भव नही, उन बातो का अभाव होने से प्रथम-उद्देशक-कथित दस बातो से इनमे भिन्नता है।[1]

।। पंतीसवां शतक : प्रथम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

१. भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९६८

पढमे एगिंदियमहाजुम्मसए : तइयाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

प्रथम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : तीसरे से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

१. अपढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया ण भंते ! कओ उववज्जंति ?

एसो जहा पढमुद्देसो सोलसहि वि जुम्मेसु तहेव नेयव्वो जाव कलियोगकलियोगत्ताए जाव अणंतखुत्तो ।।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।। ३५।१।३ ।।

[१ प्र] भगवन् ! अप्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रथम उद्देशक मे कहा है, उसी प्रकार इस उद्देशक में भी सोलह महायुग्मो के पाठ द्वारा यावत् अनन्त बार उत्पन्न हुए है, यहाँ तक कहना चाहिए ।।१-३ ।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है०' इत्यादि पूर्ववत् ।

२. चरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कतो उववज्जति ?

एव जहेव पढमसमयउद्देसओ, नवरं देवा न उववज्जंति, तेउलेस्सा न पुच्छिज्जति । सेसं तहेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।। ३५।१।४ ।।

[२ प्र] भगवन् ! चरमसमयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[२ उ] गौतम ! जिस प्रकार प्रथमसमय उद्देशक कहा है, उसी प्रकार यह उद्देशक भी कहना चाहिए । किन्तु इनमे देव उत्पन्न नही होते तथा तेजोलेश्या के विषय मे प्रश्न नही करना चाहिए । शेष सब बाते पूर्ववत् है ।।१-४।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है० २', इत्यादि पूर्ववत् ।

३. अचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया ण भते ! कओ उववज्जंति ?

जहा अपढमसमयउद्देसओ तहेव भाणियव्वो निरवसेसं ।

सेवं भते ! सेवं भंते ! ० ।। ३५।१।५ ।।

[३ प्र] भगवन् ! अचरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[३ उ] गौतम ! इस उद्देशक का समग्र कथन अप्रथमसमय उद्देशक (तीन) के अनुसार कहना चाहिए ।।१-५।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है० २', इत्यादि पूर्ववत् ।

४. पढमपढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ?

जहा पढमसमयउद्देसम्रो तहेव निरवसेसं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ ।। ३५।१।६ ।।

[४ प्र.] भगवन् ! प्रथमप्रथमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[४ उ.] गौतम ! प्रथमसमय के उद्देशक के अनुसार समग्र कथन करना चाहिए ।।१-६।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

५. पढम-अपढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ?

जहा पढमसमयउद्देसो तहेव भाणियव्वो ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।। ३५।१।७ ।।

[५ प्र.] भगवन् ! प्रथम-अप्रथमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[५ उ.] गौतम ! इसका समग्र कथन प्रथमसमय के उद्देशकानुसार करना चाहिए ।।१-७।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है० २', यों कह कर श्री गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

६. पढम-चरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कम्रो उववज्जति ?

जहा चरिमुद्देसम्रो तहेव निरवसेसं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।। ३५।१।८ ।।

[६ प्र.] भगवन् ! प्रथम-चरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[६ उ.] गौतम ! इनका समस्त निरूपण चरमउद्देशक के अनुसार जानना चाहिए ।।१-८।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है० २', यों कह कर श्री गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

७. पढम-अचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया ण भंते ! कतो उववज्जंति ?

जहा बीम्रो उद्देसम्रो तहेव निरवसेसं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ ।। ३५।१।९ ।।

[७ प्र.] भगवन् ! प्रथम-अचरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[७ उ.] गौतम ! इनका समस्त निरूपण दूसरे उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए ।।१-९।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

८. चरिम-चरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कम्रो उववज्जति ?

जहा चउत्थो उद्देसम्रो तहेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।। ३५।१।१० ।।

[८ प्र.] भगवन् ! चरम-चरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[८ उ.] गौतम ! इनका समग्र निरूपण चौथे उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए ।।१-१०।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है'०, इत्यादि पूर्ववत् ।

९ चरिम-अचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया ण भंते ! कओ उववज्जंति ?

जहा पढमसमयउद्देसओ तहेव निरवसेस ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! जाव विहरइ ।। ३५।१।११ ।।

एव एए एक्कारस उद्देसगा । पढमो ततियो पचमओ य सरिसगमगा, सेसा अट्ठ सरिसगमगा, नवरं चउत्थे[1] अट्ठमे दसमे य देवा न उववज्जंति, तेउलेसा नत्थि ।

।। पचतीसइमे सए : पढमं एगिंदियमहाजुम्मसयं समत्त ।। ३५-१ ।।

[९ प्र.] भगवन् ! चरम-अचरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[९ उ.] गौतम ! इनका समस्त कथन प्रथमसमयउद्देशक के अनुसार करना चाहिए ।।१-११।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि कथन पूर्ववत् ।

इस प्रकार ये ग्यारह उद्देशक हैं । इनमे से पहले, तीसरे और पाचवे उद्देशक के पाठ एक-समान है । शेष आठ उद्देशक एकसमान पाठ वाले है । किन्तु चौथे, (छठे), आठवे और दसवे उद्देशक मे देवो का उपपात तथा तेजोलेश्या का कथन नही करना चाहिए ।

विवेचन—निष्कर्ष और आशय—प्रस्तुत प्रकरण मे अप्रथमसमय से लेकर चरम-अचरम-समय तक कुल दस उद्देशक कहे गए है । प्रथम उद्देशक का निरूपण पहले किया जा चुका है । ये ग्यारह उद्देशक कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय के है, परन्तु विभिन्न विशेषणो से युक्त है यथा—(१) प्रथमसमय, (२) अप्रथमसमय, (३) चरमसमय, (४) अचरमसमय, (५) प्रथम-प्रथमसमय, (६) प्रथम-अप्रथम-समय, (७) प्रथम-चरम-समय, (८) प्रथम-अचरम-समय, (९) चरम-चरम-समय, (१०) चरम-अचरम-समय । यहाँ अप्रथम-समय से चरम-अचरम-समय तक (तीसरे से ग्यारहवे उद्देशक तक) का निरूपण किया गया है ।

अप्रथमसमय०—जिनको उत्पन्न हुए द्वितीयादि समय हो गए है और जो सख्या मे कृतयुग्म-कृतयुग्म है, ऐसे एकेन्द्रिय जीवो को **'अप्रथमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय'** कहा गया है । इनका कथन सामान्य एकेन्द्रियो के समान है, इसी कारण यहाँ प्रथम उद्देशक का अतिदेश किया गया है ।

चरमसमय०—चरमसमय शब्द यहाँ एकेन्द्रियो के मरणसमय के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है । उस (चरम) समय मे रहे हुए कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रियो का कथन प्रथमसमय के एकेन्द्रियोद्देशक के समान है, उनमे जो दस बोलो की भिन्नता बताई गई है, वह यहाँ भी समझनी चाहिए । इनमे एक विशेषता यह है कि इनमे देव आकर उत्पन्न नही होते । इसलिए इस उद्देशकान्तार्गत इनमे तेजोलेश्या का कथन नही करना चाहिए । एकेन्द्रियो मे तेजोलेश्या तभी पाई जाती है जब उनमे देव उत्पन्न होते है ।

१. अधिकपाठ—यहाँ 'चउत्थे' क बाद 'छट्ठे' अधिकपाठ मिलता है । —स.

अचरमसमय०—जिन एकेन्द्रिय जीवो का 'चरमसमय' नही है, वे 'अचरमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्म-एकेन्द्रिय' कहे गए हैं।

प्रथम-प्रथमसमय०—जो एकेन्द्रिय जीव प्रथमसमयोत्पन्न हो और कृतयुग्म-कृतयुग्मत्व के अनुभव के प्रथमसमय मे वर्त्तमान हो, वे प्रथम-प्रथमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय कहलाते हैं।

प्रथम-अप्रथमसमय०—प्रथमसमयोत्पन्न होते हुए भी जिन एकेन्द्रिय जीवो ने कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि का पूर्वभव में अनुभव किया हुआ हो, वे एकेन्द्रिय जीव (जिनका सप्तम उद्देशक मे वर्णन है), प्रथम-अप्रथमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय कहलाते हैं। यहाँ उत्पत्ति के प्रथमसमय मे एकेन्द्रियत्व मे वर्त्तमान तथा पूर्वभव मे कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिसख्या का अनुभव किया हुआ होने से इन्हे प्रथम-अप्रथम-समयवर्ती कहा गया है।

प्रथम-चरम-समय०—कृतयुग्म-कृतयुग्मसख्या के अनुभव के प्रथम-समयवर्ती और चरम-समय अर्थात् मरणसमयवर्ती होने से इन्हे 'प्रथम-चरमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय' कहा गया है, जिनका कथन आठवे उद्देशक मे किया गया है।

प्रथम-अचरमसमय०—कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि के अनुभव के प्रथमसमय मे वर्त्तमान तथा अचरम अर्थात् एकेन्द्रियोत्पत्ति के प्रथमसमयवर्ती एकेन्द्रिय जीवो को 'प्रथम-अचरमसमय-कृतयुग्म कृतयुग्मएकेन्द्रिय' कहा गया है, क्योकि इनमे चरमत्व का निषेध है। यदि ऐसा न हो तो द्वितीय उद्देशक मे कही हुई अवगाहना आदि की सदृशता इनमे घटित नही हो सकती। इसलिए नौवे उद्देशक मे 'प्रथम-अचरमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय' का कथन किया गया है।

चरम-चरमसमय०—जो कृतयुग्म-कृतयुग्मसख्या के अनुभव के चरम अर्थात् अन्तिम समय मे वर्त्तमान हो तथा जो चरमसमय, अर्थात् मरणसमयवर्ती हो, उन एकेन्द्रिय जीवो को 'चरम-चरमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय' कहा गया है, जिनका कथन दसवे उद्देशक मे किया गया है।

चरम-अचरमसमय०—कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि के अनुभव के चरम अर्थात् अन्तिम-समय मे वर्त्तमान और अचरमसमय अर्थात् एकेन्द्रियोत्पत्ति के प्रथमसमयवर्ती जो एकेन्द्रिय हैं, उन्हे 'चरम-अचरमसमय-कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय' कहते है, जिनका कथन ग्यारहवे उद्देशक मे किया गया है।

साराश—प्रथम, तृतीय और पचम इन तीन उद्देशको का कथन समान है, क्योकि इनमे अवगाहना आदि की भिन्नता का कथन नही है। शेष आठ उद्देशको का कथन एक समान है, उनमे अवगाहना आदि दस बोलो की भिन्नता है। किन्तु चौथे, (छठे), आठवे और दसवे उद्देशक मे देवोत्पत्ति और तेजोलेश्या की सभावना न होने से उनका कथन नही करना चाहिए।[1]

॥ पंतीसवें शतक मे प्रथम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक के तीसरे से ग्यारहवां उद्देशक संपूर्ण ॥

॥ प्रथम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ॥

१. भगवती (हिन्दी विवेचन) भा ७, पृ ३७४५-४६

बिइए एगिंदियमहाजुम्मसए :
पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

द्वितीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

१. कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिदिया णं भंते ! कम्रो उववज्जति ?

गोयमा ! उववातो तहेव । एवं जहा ओहिउद्देसए (स० ३५-१ उ० १), नवरं इमं नाणत्तं—

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी-कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! इनका उपपात (श ३५।१ के उ १) औघिक उद्देशक के अनुसार समझना चाहिए । किन्तु इन बातो में भिन्नता है ।

२. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?

हंता, कण्हलेस्सा ।

[२ प्र.] भगवन् ! क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं ?

[२ उ] हाँ, गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले है ।

३. ते णं भंते ! 'कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति कालम्रो केवचिर होंति ?

गोयमा ! जहन्नेण एक्क समयं, उक्कोसेण अतोमुहुत्त ।

[३ प्र] भगवन् ! वे कृष्णलेश्यी कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव काल की अपेक्षा कितने काल तक होते हैं ?

[३ उ.] गौतम ! वे जघन्य एकसमय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक होते है ।

४. एवं ठिती वि ।

[४] उनकी स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए ।

५ सेसं तहेव—जाव अणंतखुत्तो ।

[५] शेष सब बाते पूर्ववत् यावत् अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, यहाँ तक कहनी चाहिए ।

६. एवं सोलस वि जुम्मा भाणियव्वा ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ॥३५।२।१॥

[६] इसी प्रकार क्रमश सोलह महायुग्मो सम्बन्धी कथन पूर्ववत् करना चाहिए । ३५।२।१॥

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

७. पढमसमयकण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

जहा पढमसमयउद्देसओ, नवरं—

[७ प्र] भगवन् ! प्रथमसमय-कृष्णलेश्यी कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[७ उ] गौतम ! इसका समग्र कथन प्रथमसमयउद्देशक (अवान्तर शतक १ उ. २) के समान जानना। विशेष यह है—

८. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?

हंता, कण्हलेस्सा। सेसं तहेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ३५।२।२ ॥

[८ प्र.] भगवन् ! वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं ?

[८ उ] हाँ, गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले है। शेष समग्र कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥ ३५।२।२॥

९. एव जहा ओहियसते एक्कारस उद्देसगा भणिया तहा कण्हलेस्ससए वि एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा। पढमो, ततिओ, पंचमो य सरिसगमा। सेसा अट्ठ वि सरिसगमा. नवरं० चउत्थ[1]-अट्ठम-दसमेसु उववातो नत्थि देवस्स।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ३५।२।३-११।

॥ पंचतीसइमे सते : बितियं एगिंदियमहाजुम्मसयं समत्तं ॥ ३५-२ ॥

[९] औघिकशतक के ग्यारह उद्देशको के समान कृष्णलेश्याविशिष्ट (एकेन्द्रिय) शतक के भी ग्यारह उद्देशक कहने चाहिए। प्रथम, तृतीय और पचम उद्देशक के पाठ एक समान हैं। शेष आठ उद्देशको के पाठ सदृश है। किन्तु इनमे से चौथे, (छठे), आठवे और दसवे उद्देशक मे देवो की उत्पत्ति का कथन नहीं करना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥ ३५।२।३—११ ॥

॥ द्वितीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक समाप्त ॥

॥ पैंतीसवाँ शतक : द्वितीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ॥

---

१ यहाँ भी 'चउत्थ' के पश्चात् 'छट्ठ' पाठ अधिक मिलता है। –स.

तइए एगिंदियमहाजुम्मसए :

पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

तृतीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

कृष्णलेश्याविशिष्टशतक के अतिदेशपूर्वक नीललेश्याशतक-प्ररूपणा

१. एवं नीललेस्सेहि वि कण्हलेस्ससयसरिसं, एक्कारस उद्देसगा तहेव ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! ० ॥३५।३।१-११ ॥

॥ पचतीसइमे सए : ततिय एगिदियमहाजुम्मसयं समत्तं ॥ ३५-३ ॥

[१] नीललेश्या वाले एकेन्द्रियो का शतक भी कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रियो के शतक के समान कहना चाहिए । इसके भी ग्यारह उद्देशको का कथन उसी प्रकार है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

॥ तृतीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक समाप्त ॥

॥ पंतीसवां शतक : तृतीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतक सम्पूर्ण ॥

चउत्थे एगिंदियमहाजुम्मसए :

पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

चतुर्थ एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

द्वितीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार चतुर्थ एकेन्द्रियमहायुग्मशतक का निर्देश

१ एव काउलेस्सेहि वि सय कण्हलेस्ससयसरिस ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ३५।४।१-११ ॥

॥ पचतीसइमे सए । चउत्थ एगिदियमहाजुम्मसयं समत्तं ॥ ३५-४ ॥

[१] इसी प्रकार कापोतलेश्या-सम्बन्धी शतक भी कृष्णलेश्याविशिष्ट शतक के समान जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं । ३५।४।१-११ ॥

॥ चतुर्थ एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक समाप्त ॥

॥ पंतीसवां शतक : चतुर्थ एकेन्द्रियमहायुग्मशतक सम्पूर्ण ॥ ❖

पंचमे एगिंदियमहाजुम्मसए :
पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

पंचम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

प्रथम एकेन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार पंचम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक का निर्देश

१. भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कतो उववज्जंति ?

जहा ओहियसयं तहेव, नवरं एक्कारससु वि उद्देसएसु ।

अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मएगिंदियत्ताए उववन्नपुव्वा ?

गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । सेसं तहेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।। ३५।५।१-११ ।।

।। पचतीसइमे सए : पचमं एगिंदियमहाजुम्मसयं समत्तं ।। ३५।५ ।।

[१ प्र] भगवन् ! भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! इनका समग्र कथन औघिकशतक के समान जानना चाहिए । इनके ग्यारह ही उद्देशको मे विशेष बात यह है—

[प्र] भगवन् ! सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म विशिष्ट एकेन्द्रिय के रूप मे पहले उत्पन्न हुए है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

इसके अतिरिक्त शेष सब कथन पूर्वोक्त औघिकशतकवत् समझना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरण करने लगे । ३५।५।१-११ ।।

।। पंचम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ।।

।। पैंतीसवाँ शतक : पंचम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ।।

छट्ठे एगिंदियमहाजुम्मसए :
पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

छठा एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

द्वितीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार छट्ठे एकेन्द्रियमहायुग्मशतक का कथननिर्देश

१ कण्हलेस्सभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

एवं कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि सयं बितियसयकण्हलेस्ससरिसं भाणियव्वं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥३५-६।१-११॥

॥ पंचतीसइमे सए : छट्ठे एगिंदियमहाजुम्मसयं समत्तं ॥ ३५-६ ॥

[१ प्र.] भगवन् ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ.] गौतम ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों से सम्बन्धित समग्र शतक का कथन कृष्णलेश्या-सम्बन्धी द्वितीय शतक के समान करना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३५।६।१-११॥

॥ छठा एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ॥

॥ पंतीसवाँ शतक : छठा एकेन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ॥

सत्तमे एगिंदियमहाजुम्मसए :
पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

सप्तम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

द्वितीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार सप्तम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक-निरूपण

१. एवं नीललेस्सभवसिद्धियएगिंदियेहि वि सयं ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ३५।७।१-११ ॥

॥ पंचतीसइमे सए : सत्तमं एगिंदियमहाजुम्मसयं समत्तं ॥ ३५-७ ॥

[१] इसी प्रकार नीललेश्या वाले भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मएकेन्द्रिय शतक का कथन भी नीललेश्या-सम्बन्धी तृतीय शतक के समान जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३५।७।१-११॥

॥ सप्तम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ॥

॥ पंतीसवाँ शतक : सप्तम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ॥

अट्ठमे एगिंदियमहाजुम्मसए :
पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

अष्टम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

द्वितीय एकेन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार अष्टम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक-प्ररूपणा

१. एवं काउलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि तहेव एक्कारसउद्देसगसंजुत्तं सयं।

२. एवं एयाणि चत्तारि भवसिद्धिएसु सयाणि, चउसु वि सएसु 'सव्वपाणा जाव उववन्नपुव्वा ?'

नो इणट्ठे समट्ठे।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ३५।८।१-११ ॥

॥ पंचतीसइमे सए : अट्ठमं एगिंदियमहाजुम्मसतं समत्तं ॥ ३५-८ ॥

[१-२] इसी प्रकार कापोतलेश्यीभवसिद्धिक (कृतयुग्म-कृतयुग्मरूप) एकेन्द्रियो के भी ग्यारह उद्देशको सहित यह शतक पूर्वोक्त कापोतलेश्या-सम्बन्धी चतुर्थ शतक के समान जानना चाहिए। इस प्रकार ये चार (पाचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ) शतक भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीव के हैं। इन चारो शतको मे—

[प्र] क्या सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्व पहले उत्पन्न हुए हैं ?

[उ.] यह अर्थ समर्थ नही है।

इतना विशेष जानना चाहिए।

॥ अष्टम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ॥

॥ पंतीसवां शतक : अष्टम एकेन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ॥

नवमाइबारसमपज्जंतेसु एगिंदियमहाजुम्मसएसु पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

नौवें से बारहवां शतक : सबमें पहले से ग्यारह उद्देशक पर्यन्त

पंचम से अष्ट अवान्तरशतकवत् नौवें से बारहवें तक अभवसिद्धिकशतकचतुष्टय-निर्देश

१. जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सयाइ भणियाइं एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि सयाणि लेसासजुत्ताणि भाणियव्वाणि।

सव्वपाणा० ?

तहेव, नो इणट्ठे समट्ठे।

एव एयाइं बारस एगिंदियमहाजुम्मसयाइ भवति।

सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

।। पंचतीसइमे सए : नवमाइ-बारसम-पज्जंताइ सयाइं समत्ताइ ।।

।। पचतीसइम सय समत्त ।। ३५ ।।

[१] जिस प्रकार भवसिद्धिक-सम्बन्धी चार शतक कहे, उसी प्रकार अभवसिद्धिक-एकेन्द्रिय के लेश्या-सहित चार शतक कहने चाहिए। (इन चारो शतको मे भी)--

[प्र.] भगवन् ! सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्व पहले उत्पन्न हुए हैं ?

[उ] पूर्ववत्। यह अर्थ समर्थ नही है। (इतना विशेष जानना चाहिए।)

इस प्रकार ये बारह एकेन्द्रियमहायुग्मशतक है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।।३५।९-१२।१-११।।

।। पंतीसवां शतक नौवें से बारहवें अवान्तरशतक तक सम्पूर्ण ।।

।। पंतीसवां शतक समाप्त ।। ३५ ।।

छत्तीसइमं सयं : बारस बेइंदियमहाजुम्मसयाइं

छत्तीसवाँ शतक : द्वादश द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

सोलह द्वीन्द्रियमहायुग्मशतकों में उपपात आदि बत्तीस द्वारों की प्ररूपणा

१. कडजुम्मकडजुम्मबेंदिया णं भंते ! कश्रो उववज्जंति० ?

उववातो जहा वक्कंतीए। परिमाणं सोलस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, उववज्जंति। अवहारो जहा उप्पलुद्देसए (स० ११ उ० १ सु० ७)। ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण बारस जोयणाइं। एवं जहा एगिंदियमहाजुम्माण पढमुद्देसए तहेव; नवरं तिन्नि लेस्साओ; देवा न उववज्जति; सम्मद्दिट्ठी वा, मिच्छद्दिट्ठी वा, नो सम्मामिच्छादिट्ठी; नाणी वा, अन्नाणी वा; नो मणयोगी, वइयोगी वा, कायजोगी वा।

[१ प्र] भगवन् ! कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिप्रमाण द्वीन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न।

[१ उ] गौतम ! इनका उपपात (उत्पत्ति) प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार जानना। परिमाण—एक समय मे सोलह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है। इनका अपहार (ग्यारहवे शतक के प्रथम) उत्पलोद्देशक (के सूत्र ७) के अनुसार जानना। इनकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट बारह योजन की है। एकेन्द्रियमहायुग्मराशि के प्रथम उद्देशक के समान समझना। विशेष यह है कि इनमे तीन लेश्याएँ होती है। इनमे देवो से आकर उत्पन्न नही होते। ये सम्यग्दृष्टि भी होते है, मिथ्यादृष्टि भी, किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते। ये ज्ञानी अथवा अज्ञानी होते हैं। ये मनोयोगी नही होते, वचनयोगी और काययोगी होते हैं।

२. ते णं भंते ! कडजुम्मकडजुम्मबेंदिया कालतो केवचिरं होंति ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समय, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं।

[२ प्र] भगवन् ! वे कृतयुग्म-कृतयुग्म द्वीन्द्रिय जीव काल की अपेक्षा कितने काल तक होते हैं ?

[२ उ] गौतम ! वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक होते हैं।

३. ठिती जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं। आहारो नियमं छद्दिसिं। तिन्नि समुग्घाया। सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।

[३] उनकी स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की होती है। वे नियमतः

छह दिशा का आहार लेते हैं। उनमे (पहले के) तीन समुद्घात होते हैं। शेष पूर्ववत् पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, यहाँ तक जानना।

४. एवं सोलससु वि जुम्मेसु।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ पढमे बेंदियमहाजुम्मसते : पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ ३६-१-१ ॥

[४] इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीवो के सोलह महायुग्मो मे कहना चाहिए।[1]

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ छत्तीसवां शतक : प्रथम अवान्तरशतक : प्रथम उद्देशक सम्पूर्ण ॥

---

१ द्वीन्द्रिय जीवो के १६ महायुग्मो को ३२ द्वारो द्वारा प्ररूपित किया गया है। ३२ द्वारों के लिए देखिए—भगवतीसूत्र शतक ११ का द्वितीयसूत्र। —वियाहपण्णत्तिसुत्त भा ३ (मू. पा. टि.), पृ ११५५

पढमे बेइंदियमहाजुम्मसए : बिइओ उद्देसओ

प्रथम द्वीन्द्रिय शतक : द्वितीय उद्देशक

एकेन्द्रिय महायुग्मशतक के अतिदेशपूर्वक प्रथमसमय-द्वीन्द्रियमहायुग्मवक्तव्यता

१. पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मबेंदिया ण भंते ! कतो उववज्जंति ?

एवं जहा एगिंदियमहाजुम्माण पढमसमयउद्देसए दस नाणत्ताइं ताइं चेव दस इह वि। एक्कारसमं इमं नाणत्तं—नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी। सेसं जहा एगिंदियाणं चेव पढमुद्देसए।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ छतीसइमे सए : पढम बेइंदियमहाजुम्मसए : बिइओ उद्देसओ समत्तो ॥ ३६-१।२ ॥

[१ प्र] भगवन् ! प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिप्रमाण द्वीन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार एकेन्द्रियमहायुग्मो का प्रथमसमय-सम्बन्धी उद्देशक कहा गया है, उसी प्रकार इनके विषय मे भी जानना। वहाँ दस बातों का अन्तर बताया है, यहाँ भी उन दस बातो का अन्तर समझना। ग्यारहवी विशेषता यह है कि ये मनयोगी और वचनयोगी नही होते, सिर्फ काययोगी होते हैं। शेष सब बाते एकेन्द्रियमहायुग्मो के प्रथम उद्देशक के समान जानना।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—निष्कर्ष—प्रस्तुत द्वितीय उद्देशक मे प्रथमसमयोत्पन्न द्वीन्द्रियमहायुग्म-सम्बन्धी बत्तीस द्वारो की प्ररूपणा एकेन्द्रियमहायुग्म के प्रथमसमय-सम्बन्धी उद्देशक के अतिदेशपूर्वक की गई है। एकेन्द्रिमहायुग्मो मे उक्त १० बातो का अन्तर इनमे भी है। ग्यारहवी विशेषता है—ये मात्र काययोगी होते हैं।

॥ छत्तीसवें शतक मे प्रथम द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

पढमे बेइंदियमहाजुम्मसए :

तइयाइएक्कारसमपज्जंता उद्देसगा

प्रथम द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक : तीसरे से ग्यारहवे उद्देशक पर्यन्त

कुछ विशेषताओं के साथ तीसरे से ग्यारहवे उद्देशक-पर्यन्त प्ररूपणा

१ एव एए वि जहा एगिदियमहाजुम्मेसु एक्कारस उद्देसगा तहेव भाणियव्वा, नवरं चउत्थ[1]-अट्ठम-दसमेसु सम्मत्त-नाणाणि न भण्णति। जहेव एगिदिएसु, पढमो ततिओ पचमो य एक्कगमा, सेसा अट्ठ एक्कगमा।

।। छत्तीसइमे सए : पढम-बेइंदियमहाजुम्मसए तइयाइएक्कारसमपज्जता उद्देसगा समत्ता ।।

।। ३६।१।३-११ ।।

।। पढमं बेदियमहाजुम्मसय ।। ३६-१ ।।

[१] एकेन्द्रियमहायुग्म-सम्बन्धी ग्यारह उद्देशको के समान यहाँ भी कहना चाहिए। किन्तु यहाँ चौथे, (छठे)[1] आठवे और दसवे उद्देशको मे सम्यक्त्व और ज्ञान का कथन नही होता। एकेन्द्रिय के समान प्रथम, तृतीय और पचम, इन तीन उद्देशको के एकसरीखे पाठ हैं, शेष आठ उद्देशक एक समान हैं।

।। छत्तीसवें शतक मे प्रथम द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक के तीसरे से ग्यारहवें उद्देशक तक सम्पूर्ण ।।

।। प्रथम द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ।।

---

१ यहाँ किसी प्रति मे 'चउत्थ' शब्द के बाद 'छट्ठ' शब्द मिलता है। इस दृष्टि से चौथे, छठे, आठवे और दसवें उद्देशको मे सम्यक्त्व और ज्ञान नही होता, ऐसा अर्थ किया गया है। —स

बिइए बेइंदियमहाजुम्मसए :

पढमाइएक्कारसपज्जंता उद्देसगा

द्वितीय द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक

१. कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मबेंदिया णं भंते ! कतो उववज्जंति ?

एवं चेव । कण्हलेस्सेसु वि एक्कारस उद्देसगसंजुत्तं सयं, नवरं लेसा, संचिट्ठणा[1] जहा एगिदियकण्हलेस्साणं ।

॥ छत्तीसइमे सए बिइए बेइंदियमहाजुम्मसए पढमाइ-एक्कारस-पज्जता उद्देसगा समत्ता ॥

॥ बितिय बेंदियसयं समत्तं ॥ ३६-२ ॥

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिप्रमाण द्वीन्द्रिय से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! इस विषय मे पूर्ववत् जानना चाहिए । कृष्णलेश्यी जीवो का भी शतक ग्यारह उद्देशक-युक्त जानना चाहिए । विशेष यह है कि इनकी लेश्या और सचिट्ठणा (कायस्थिति) स्थिति (भवस्थिति), कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवो के समान होती है ।

विवेचन—प्रस्तुत ग्यारह उद्देशको मे कृष्णलेश्याविशिष्ट द्वीन्द्रियमहायुग्म जीवो के सम्बन्ध मे लेश्या, कायस्थिति आदि के अतिरिक्त शेष सर्वकथन एकेन्द्रियजीवो के समान बताया गया है ।

॥ छत्तीसवाँ शतक : द्वितीय द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक के ग्यारह उद्देशक सम्पूर्ण ॥

॥ द्वितीय द्वीन्द्रियशतक समाप्त ॥

---

१ किसी किसी प्रति मे 'सचिट्ठणा' के आगे 'ठिई' शब्द मिलता है । वहाँ 'स्थिति' से भवस्थिति अर्थ समझना चाहिए । —स

तइए बेइंदियमहाजुम्मसए :

पढमाइएक्कारसपज्जंता उद्देसगा

तृतीय द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

द्वितीय द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक के अनुसार नीललेश्यी द्वीन्द्रियशतकनिर्देश

१. एवं नीललेस्सेहि वि सयं ।

[।। ३६-३-१-११ ।।]

।। छत्तीसइमे सए : ततियं सतं समत्त ।। ३६-३ ।।

[१] इसी प्रकार नीललेश्यी द्वीन्द्रिय जीवों का ग्यारह उद्देशक-सहित शतक है ।

।। छत्तीसवाँ शतक : तृतीय द्वीन्द्रियशतक समाप्त ।।

चउत्थे बेइंदियमहाजुम्मसए :

पढमाइएक्कारसपज्जंता उद्देसगा

चतुर्थ द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

द्वितीय द्वीन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार कापोतलेश्यी द्वीन्द्रियशतकनिर्देश

१. एवं काउलेस्सेहि वि सयं ।

[।। ३६-४-१-११ ।।]

।। छत्तीसइमे सए : चउत्थं सतं समत्तं ।। ३६-४ ।।

[१] इसी प्रकार कापोतलेश्यी द्वीन्द्रिय जीवों का (ग्यारह उद्देशक-सहित) शतक है ।

।। छत्तीसवाँ शतक : चतुर्थ द्वीन्द्रियशतक समाप्त ।।

पंचमाइअट्ठमपज्जंतेसु बेइंदियमहाजुम्मसएसुं

पढमाइएक्कारसपज्जता उद्देसगा

पाँचवें से आठवें द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक पर्यन्त : पहले से ग्यारहवें उद्देशक तक

पाँचवें से आठवें शतक तक एकेन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार निर्देश

१. भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मबेइंदिया ण भंते ! ० ?

एवं भवसिद्धियसया वि चत्तारि तेणेव पुव्वगमएण नेतव्वा, नवरं 'सव्वपाणा० ।

णो इणट्ठे समट्ठे ।' सेसं जहेव ओहियसयाणि चत्तारि ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

[।। ३६-५-८ ।।]

।। छत्तीसतिमे सए : अट्ठमं सयं समत्तं ।। ३६-८ ।।

[१ प्र.] भगवन् ! भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिप्रमाण द्वीन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ.] गौतम ! पूर्वोक्त पाठ के अनुसार भवसिद्धिक महायुग्मद्वीन्द्रिय जीवो के चार शतक जानने चाहिए । विशेष यह है कि—

[प्रश्न] सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यावत् अनन्त बार उत्पन्न हुए ?

[उत्तर] यह बात शक्य नही है ।

शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए । ये चार औघिकशतक हुए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। छत्तीसवाँ शतक : पाचवें से आठवें शतक पर्यन्त सम्पूर्ण ।।

नवमाइबारसमपज्जंतेसु बेइंदियमहाजुम्मसएसु पढमाइएक्कारसपज्जंता उद्देसगा

नौवें से बारहवें द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक के पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

नौवें से बारहवें द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक तक पूर्वशतकानुसार निर्देश

१. जहा भवसिद्धियसया चत्तारि एवं अभवसिद्धियसया वि चत्तारि भाणियव्वा, नवरं सम्मत्त-नाणाणि सव्वेहिं नत्थि। सेसं तं चेव।

[१] जिस प्रकार भवसिद्धिक (द्वीन्द्रिय जीवो) के चार शतक कहे, उसी प्रकार अभवसिद्धिक (द्वीन्द्रिय जीवो) के भी चार शतक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इन सबमे सम्यक्त्व और ज्ञान नही होते हैं। शेष सब पूर्ववत् ही है।

२. एवं एयाणि बारस बेंदियमहाजुम्मसयाणि भवंति।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।

॥ बेंदियमहाजुम्मसया समत्ता ॥ ३६-१२ ॥

॥ छत्तीसतिमं सयं समत्तं ॥ ३६ ॥

[२] इस प्रकार ये बारह द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक होते है।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

॥ छत्तीसवाँ शतक : बारह द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ॥

॥ छत्तीसवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

सत्ततीसइमं सयं :

बारस तेइंदियमहाजुम्मसयाइं

संतीसवाँ शतक : बारह त्रीन्द्रियमहायुग्मशतक

द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक के अतिदेशपूर्वक बारह त्रीन्द्रियमहायुग्मशतक

१. कडजुम्मकडजुम्मतेंदिया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति० ?

एवं तेइंदिएसु वि बारस सया कायव्वा बेंदियसयसरिसा, नवरं श्रोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं; ठिती जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एकूणवन्न- रातिंदियाइं। सेसं तहेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति०।

।। सत्ततीसइमे सए : तेइंदियमहाजुम्मसया समत्ता ।। ३७-१-१२ ।।

।। सत्ततीसइमं सतं समत्तं ।। ३७ ।।

[१ प्र] भगवन् ! कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले त्रीन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! द्वीन्द्रियशतक के समान त्रीन्द्रिय जीवो के भी बारह शतक करने चाहिए। विशेष यह है कि इनकी (त्रीन्द्रिय की) अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट तीन गाऊ (गव्यूति) की है तथा स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट उनपचास (४९) अहोरात्रि की है। शेष सब कथन पूर्ववत् है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—द्वीन्द्रियशतक का अतिदेश—कृतयुग्म-कृतयुग्मविशिष्ट त्रीन्द्रिय जीवो की अव- गाहना और स्थिति को छोड कर, उत्पत्ति आदि का शेष समग्र कथन द्वीन्द्रियशतक के अतिदेशपूर्वक किया गया है।

।। संतीसवाँ शतक : द्वादश त्रीन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ।।

।। संतीसवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

अट्ठतीसइमं सयं :

बारस चउरिंदियमहाजुम्मसयाइं

अड़तीसवाँ शतक : द्वादश चतुरिन्द्रियमहायुग्मशतक

द्वीन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार द्वादश चतुरिन्द्रियमहायुग्मशतक-निरूपण

१. चउरिंदिएहि वि एव चेव बारस सया कायव्वा, नवरं ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभाग, उक्कोसेण चत्तारि गाउयाइं; ठिती जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा। सेसं जहा बेंदियाणं।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति०।

।। अट्ठतीसइमे सए : बारस चउरिंदियमहाजुम्मसया समत्ता ।। ३८।१-१२ ।।

।। अट्ठतीसइमं सयं समत्तं ।। ३८ ।।

[१] इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवो के बारह शतक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इनकी अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट चार गाऊ की है तथा स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट छह महीने की है। शेष सब कथन द्वीन्द्रिय जीवो के शतक के समान है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—द्वीन्द्रियमहायुग्मशतकानुसार वक्तव्यता—इन बारह चतुरिन्द्रियमहायुग्मशतको की समग्र वक्तव्यता भी अवगाहना और स्थिति के अतिरिक्त द्वीन्द्रियमहायुग्मशतक के अनुसार बताई गई है।

।। अड़तीसवाँ शतक : द्वादश चतुरिन्द्रियमहायुग्मशतक समाप्त ।।

।। अड़तीसवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

❖❖

एगूणयालीसइमं सयं :

बारस असन्निपंचिंदियमहाजुम्मसयाइं

उनचालीसवाँ शतक : द्वादश असंज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक

द्वीन्द्रिय-महायुग्म-शतकानुसार द्वादश असंज्ञीपंचेन्द्रिय महायुग्मशतक-निरूपण

१. कडजुम्मकडजुम्मप्रसन्निपचेंदिया ण भते ! कम्रो उववज्जति ?०

जहा बेंदियाणं तहेव असन्नीसु वि बारस सया कायव्वा, नवरं ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं; सचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समय, उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहत्तं; ठिती जहन्नेण एक्कं समय, उक्कोसेण पुव्वकोडी। सेस जहा बेंदियाणं।

सेवं भते ! सेवं भंते ! त्ति०।

॥ असण्णिपंचेंदियमहाजुम्मसया समत्ता ॥ ३९-१-१२ ॥

॥ एगूणयालीसइमं सयं समत्तं ॥ ३९ ॥

[१ प्र] भगवन् ! कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिप्रमाण असज्ञीपचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! द्वीन्द्रियशतक के समान असज्ञीपचेन्द्रिय जीवो के भी बारह शतक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इनकी अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है तथा कायस्थिति (सचिट्ठणा) जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व की है एव भवस्थिति (स्थिति) जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है। शेष पूर्ववत् द्वीन्द्रिय जीवो के समान है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—द्वीन्द्रियशतक के समान—अवगाहना, कायस्थिति और भवस्थिति के सिवाय असज्ञीपचेन्द्रियमहायुग्म के १२ शतको का शेष समग्र कथन द्वीन्द्रियशतक के समान प्रस्तुत शतक मे बताया गया है।

॥ उनचालीसवाँ शतक : द्वादश असंज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक सम्पूर्ण ॥

॥ उनचालीसवाँ शतक समाप्त ॥ ३९ ॥

चत्तालीसइमं सयं :

एक्कवीसं सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसयाइं

चालीसवाँ शतक : इक्कीस संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक

पढमे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : पढमो उद्देसओ

प्रथम संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : प्रथम उद्देशक

संज्ञीपंचेन्द्रिय के उपपातादि की प्ररूपणा

१. कडजुम्मकडजुम्मसन्निपचेंदिया णं भते ! कम्रो उववज्जति ? ०

उववातो चउसु वि गतीसु । सखेज्जवासाउय-असखेज्जवासाउय-पज्जत्त-अपज्जत्तएसु य । न कतो वि पडिसेहो जाव अणुत्तरविमाण त्ति । परिमाण, अवहारो, ओगाहणा य जहा असण्णिपचेंदियाणं । वेयणिज्जवज्जाण सत्तण्हं पगडीण बधगा वा अबधगा वा वेयणिज्जस्स बधगा, नो अबंधगा । मोहणिज्जस्स वेयगा वा, अवेयगा वा । सेसाण सत्तण्ह वि वेयगा, नो अवेयगा । सायावेयगा वा असायावेयगा वा । मोहणिज्जस्स उदई वा, अणुदई वा; सेसाण सत्तण्ह वि उदई, नो अणुदई । नामस्स गोयस्स य उदीरगा, नो अणुदीरगा; सेसाणं छण्ह वि उदीरगा वा, अणुदीरगा वा । कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा । सम्मद्दिट्ठी वा, मिच्छादिट्ठी वा, सम्मामिच्छद्दिट्ठी वा । णाणी वा अण्णाणी वा । मणजोगी वा, वइजोगी वा, कायजोगी वा । उवयोगो, वन्नमाई, उस्सासगा, आहारगा य जहा एगिंदियाणं । विरया वा अविरया वा, विरयाविरया वा । सकिरिया, नो अकिरिया ।

[१ प्र] भगवन् ! कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि रूप सज्ञी पचेन्द्रिय जीव कहा से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! इनका उपपात चारो गतियो से होता है । ये सख्यात वर्ष और असख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो से आते हैं । यावत् अनुत्तरविमान तक किसी भी गति से आने का निषेध नही है । इनका परिमाण, अपहार और अवगाहना असज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के समान है । ये जीव वेदनीयकर्म को छोड कर शेष सात कर्मप्रकृतियो के बन्धक अथवा अबन्धक होते हैं । वेदनीयकर्म के तो बन्धक ही होते हैं, अबन्धक नही । मोहनीयकर्म के वेदक या अवेदक होते हैं । शेष सात कर्मप्रकृतियो के वेदक होते है, अवेदक नही । वे सातावेदक अथवा असातावेदक होते है । मोहनीयकर्म के उदयी अथवा अनुदयी होते हैं । शेष सात कर्मप्रकृतियो के उदयी होते हैं, अनुदयी नही । नाम और गोत्र कर्म के वे उदीरक होते है, अनुदीरक नही । शेष छह कर्मप्रकृतियो के उदीरक या अनुदीरक होते हैं । वे कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होते हैं । वे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्-मिथ्यादृष्टि होते हैं । ज्ञानी अथवा अज्ञानी होते है । वे मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी होते हैं । उनमे उपयोग, वर्णादि चार, उच्छ्वास-निश्वास और आहारक (-अनाहारक) का कथन

एकेन्द्रिय जीवों के समान है। वे विरत, अविरत या विरताविरत होते है। वे सक्रिय (क्रिया वाले) होते हैं, अक्रिय (क्रियारहित) नही।

२. ते णं भंते ! जीवा किं सत्तविहबंधगा, अट्ठविहबंधगा, छव्विहबंधगा, एगविहबंधगा ?

गोयमा ! सत्तविहबंधगा वा जाव एगविहबधगा वा।

[२ प्र] भगवन् ! वे जीव सप्तविध-(कर्म-) बन्धक, अष्टविधकर्मबन्धक, षड्विधकर्म-बन्धक या एकविधकर्मबन्धक होते हैं ?

[२ उ] गौतम ! वे सप्तविधकर्मबन्धक भी होते हैं, यावत् एकविधकर्मबन्धक भी होते है।

३. ते णं भंते ! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसन्नोवउत्ता, नोसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! आहारसन्नोवउत्ता वा जाव नोसन्नोवउत्ता वा।

[३ प्र] भगवन् ! वे जीव क्या आहारसज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त होते है अथवा वे नोसज्ञोपयुक्त होते है ?

[३ उ] गौतम ! आहारसज्ञोपयुक्त यावत् नोसज्ञोपयुक्त होते है।

४. सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा। कोहकसाई वा जाव लोभकसाई वा, अकसायी वा। इत्थिवेयगा वा, पुरिसवेयगा वा, नपुंसगवेयगा वा, अवेयगा वा। इत्थिवेयबंधगा वा, पुरिसवेयबंधगा वा, नपुंसगवेयबधगा वा, अबधगा वा। सण्णी, नो असण्णी। सइंदिया, नो अणिंदिया। संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समय, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्त सातिरेगं। आहारो तहेव जाव नियम छद्दिसिं। ठिती जहन्नेण एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइ। छ समुग्घाता आदिल्लगा। मारणंतिय-समुग्घातेण समोहया वि मरति, असमोहया वि मरति। उव्वट्टणा जहेव उववातो, न कत्थइ पडिसेहो जाव अणुत्तरविमाण त्ति।

[४] इसी प्रकार सर्वत्र प्रश्नोत्तर की योजना करनी चाहिए। (यथा—) वे क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी होते है। वे स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुसकवेदक या अवेदक होते है। वे स्त्री-वेद-बन्धक, पुरुषवेद-बन्धक, नपुसकवेद-बन्धक या अबन्धक होते हैं। वे सज्ञी होते है, असज्ञी नही। इनका सचिट्ठणाकाल (सस्थितिकाल) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट सातिरेक सागरोपम-शत-पृथक्त्व होता है। इनका आहार पूर्ववत् यावत् नियम से छह दिशा का होता है। इनकी स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। इनमे प्रथम के छह समुद्घात पाये जाते हैं। ये मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होकर भी मरते है और असमवहत भी मरते है। इनकी उद्वर्त्तना का कथन उपपात के समान है। किसी भी विषय मे निषेध अनुत्तरविमान तक नही है।

५. अह भंते ! सव्वपाणा० ?

जाव अणंतखुत्तो।

[५ प्र.] भगवन् ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ, पहले (इससे पूर्व) उत्पन्न हुए हैं ?

[५ उ.] गौतम ! वे इससे पूर्व अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं।

६. एवं सोलससु वि जुम्मेसु भाणियव्व जाव अणंतखुत्तो, नवरं परिमाणं जहा बेइंदियाणं, सेस तहेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४०।१।१ ॥

[६] इसी प्रकार सोलह युग्मो मे अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके है, यहाँ तक कहना चाहिए। इनका परिमाण द्वीन्द्रिय जीवो के समान है। शेष सब पूर्ववत् है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥४०।१।१॥

७. पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मसन्निपचेंदिया णं भते ! कतो उववज्जंति ? ०

उववातो, परिमाण, अवहारो[1] जहा एतेसिं चेव पढमे उद्देसए। ओगाहणा, बधो, वेदो, वेयणा, उदयी, उदीरगा य जहा बेंदियाण पढमसमइयाणं तहेव। कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा। सेस जहा बेंदियाणं पढमसमइयाणं जाव अणंतखुत्तो, नवरं इत्थिवेदगा वा, पुरिसवेदगा वा, नपुंसगवेदगा वा; सण्णिणो, नो असण्णिणो। सेस तहेव। एव सोलससु वि जुम्मेसु परिमाण तहेव सव्वं।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४०।१।२ ॥

[७ प्र.] भगवन् ! प्रथम समय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त सज्ञीपचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न।

[७ उ.] गौतम ! इनका उपपात, परिमाण, अपहार (आहार) प्रथम उद्देशक के अनुसार जानना। इनकी अवगाहना, बन्ध, वेद, वेदना, उदयी और उदीरक द्वीन्द्रिय जीवो के समान समझना। ये कृष्णलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी होते हैं। शेष प्रथमसमयोत्पन्न द्वीन्द्रिय के समान इससे पूर्व अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, यहाँ तक जानना। वे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी या नपुसकवेदी होते हैं। वे सज्ञी होते हैं, असज्ञी नही। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार सोलह ही युग्मो मे परिमाण आदि की वक्तव्यता पूर्ववत् जाननी चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है' ०, इत्यादि पूर्ववत् ॥४०।१।२॥

८. एवं एत्थ वि एक्कारस उद्देसगा तहेव। पढमो, ततिओ, पचमो य सरिसगमा। सेसा अट्ठ वि सरिसगमा। चउत्थ-अट्ठम-दसमेसु नत्थि विसेसो कोयि वि।

सेवं भंते ! भंते ! त्ति० ॥ ४०-१।३-११ ॥

॥ चत्तालीसइमे सते पढमं सन्निपचेंदियमहाजुम्मसयं समत्तं ॥ ४०-१ ॥

---

१. पाठान्तर—'आहारो'

[८] यहाँ (इस प्रथम अवान्तर शतक मे) भी ग्यारह उद्देशक पूर्ववत् हैं। प्रथम, तृतीय और पंचम उद्देशक एक समान है और शेष आठ उद्देशक एक समान है तथा चौथे, (छठे), आठवे और दसवे उद्देशक मे कोई विशेष बात नही है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ॥४०।१।३-११॥

विवेचन—विशिष्टसंज्ञीपंचेन्द्रिय जीवो के विषय मे—उपशान्तमोहादि जीव वेदनीय के अतिरिक्त ७ कर्मों के अबन्धक होते है। शेष जीव यथासम्भव बन्धक होते है। केवली अवस्था से पूर्व सभी सज्ञी जीव सज्ञीपचेन्द्रिय कहलाते है और वहाँ तक वे अवश्य ही वेदनीय कर्म के बन्धक ही होते है, अबन्धक नही। इनमे से सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान तक सज्ञीपचेन्द्रिय मोहनीयकर्म के वेदक होते है तथा उपशान्तमोहादि जीव अवेदक होते है। उपशान्तमोहादि जो सज्ञीपचेन्द्रिय होते है, वे मोहनीय के अतिरिक्त सात कर्मप्रकृतियो के वेदक होते है, अवेदक नही। यद्यपि केवलज्ञानी चार अघाती कर्मप्रकृतियो के वेदक होते है, परन्तु वे इन्द्रियो के उपयोग-रहित होने से पचेन्द्रिय और सज्ञी नही कहलाते, वे अनिन्द्रिय और नोसज्ञी-नोअसज्ञी कहलाते है।

सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान तक जीव मोहनीयकर्म के उदय वाले होते है और उपशान्त-मोहादिविशिष्ट जीव अनुदय वाले होते है। वेदकत्व और उदय, इन दोनो मे अन्तर यह है कि अनुक्रम से और उदीरणाकरणी के द्वारा उदय मे आए हुए (फलोन्मुख) कर्म का अनुभव करना वेदकत्व है और केवल अनुक्रम से उदय मे आए हुए कर्म का अनुभव करना उदय है।

अकषयाय अर्थात् क्षीणमोहगुणस्थान तक सभी सज्ञीपचेन्द्रिय नामकर्म और गोत्रकर्म के उदीरक होते है और शेष छह कर्मप्रकृतियो के यथासम्भव उदीरक और अनुदीरक होते है। उदीरणा का क्रम इस प्रकार है—छठे प्रमत्त गुणस्थान तक सामान्य रूप से सभी जीव आठो कर्मों के उदीरक होते है। जब आयुष्य आवलिका मात्र शेष रह जाता है, तब वे आयु के अतिरिक्त सात कर्मों के उदीरक होते है। अप्रमत्त आदि चार गुणस्थानवर्ती जीव वेदनीय और आयु के अतिरिक्त छह कर्मो के उदीरक होते है। जब सूक्ष्मसम्पराय आवलिकामात्र शेष रह जाता है तब मोहनीय, वेदनीय और आयु के अतिरिक्त पाच कर्मो के उदीरक होते है। उपशान्तमोहगुणस्थानवर्ती जीव इन्ही पाच कर्मों के उदीरक होते है। क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती जीव का काल आवलिकामात्र शेष रहता है, तब वे नामकर्म और गोत्रकर्म के उदीरक होते है। सयोगीगुणस्थानवर्ती जीव भी इसी प्रकार उदीरक होते है और अयोगीगुणस्थानवर्ती जीव अनुदीरक होते है।

कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले सज्ञीपचेन्द्रिय जीवो का अवस्थितिकाल जघन्य एक समय का है, क्योकि एक समय के बाद सख्यान्तर होना सभव है और उत्कृष्ट सातिरेक-सागरोपम-शत-पृथक्त्व है, क्योकि इसके बाद सज्ञीपचेन्द्रिय नही होते।

सज्ञीपचेन्द्रियो में पहले के छह समुद्घात होते है। सातवां केवलीसमुद्घात तो केवलज्ञानियो मे होता है और वे अनिन्द्रिय होते है।[1]

॥ चालीसवां शतक : प्रथम अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

१. (क) भगवती. अ वृत्ति, पत्र ९७०

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३७६७-३७६८

बिइए सन्निपंचेंदियमहाजुम्मसए : पढमाइ-एक्कारसपज्जंता उद्देसगा

द्वितीय संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : पहले से ग्यारहवें उद्देशक पर्यन्त

कृष्णलेश्याविशिष्ट संज्ञीपंचेन्द्रियों के उपपातादि की प्ररूपणा

१. कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मसन्निपचेंदिया णं भते ! कओ उववज्जंति ?

तहेव जहा पढमुद्देसओ सन्नोणं, नवर बंधो, वेओ, उदई, उदीरणा, लेस्सा, बंधगा, सण्णा, कसाय, वेदबधगा य एयाणि जहा बेदियाणं कण्हलेस्साण । वेदो तिविहो, अवेयगा नत्थि । संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइ । एवं ठिती वि, नवर ठितीए 'अतोमुहुत्तमब्भहियाइ' न भण्णंति । सेसं जहा एएसि चेव पढमे उद्देसए जाव अणंतखुत्तो । एव सोलससु वि जुम्मेसु ।

सेव भते ! सेवं भते ! त्ति० ।। ४०-२।१।।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी कृतयुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त सज्ञीपचेन्द्रिय कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! सज्ञी के प्रथम उद्देशक के अनुसार इनकी वक्तव्यता जाननी चाहिए । विशेष यह है कि बन्ध, वेद, उदय, उदोरणा, लेश्या, बन्धक, सज्ञा, कषाय और वेदबधक, इन सभी का कथन द्वीन्द्रियजीव-सम्बन्धी कथन के समान है । कृष्णलेश्यी सज्ञी के तीनो वेद होते है, वे अवेदी नही होते । उनकी सचिट्ठणा जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की होती है और उनकी स्थिति भी इसी प्रकार होती है । स्थिति मे अन्तर्मुहूर्त अधिक नही कहना चाहिए । शेष प्रथम उद्देशक के अनुसार पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए है, यहाँ तक कहना चाहिए । इसी प्रकार सोलह युग्मो का कथन समझ लेना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।।४०।२।१।।

२. पढमसमयकण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मसन्निपचेंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?०

जहा सन्निपचेंदियपढमसमयउद्देसए तहेव निरवसेस । नवरं ते ण भते ! जीवा कण्हलेस्सा ? हंता, कण्हलेस्सा । सेस तं चेव । एव सोलससु वि जुम्मेसु ।

सेवं भते ! सेवं भंते ! त्ति० ।।४०।२।२।।

[२ प्र] भगवन् ! प्रथमसमयोत्पन्न कृष्णलेश्यायुक्त कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव कहा से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[२ उ.] गौतम ! इनकी वक्तव्यता प्रथमसमयोत्पन्न सज्ञीपचेन्द्रियो के उद्देशक के अनुसार जाननी चाहिए । विशेष यह है कि—

[प्र] भगवन् ! क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले है ?

[उ] हाँ, गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले है । शेष पूर्ववत् ।

इसी प्रकार सोलह ही युग्मो मे कहना चाहिए ।

'हे भगवन ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

३ एवं एए वि एक्कारस उद्देसगा कण्हलेस्ससए । पढम-ततिय-पंचमा सरिसगमा । सेसा अट्ठ वि सरिसगमा ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४०।२।३-११ ॥

॥ चत्तालीसइमे सए : बितिय सयं समत्तं ॥ ४०-२ ॥

[३] इस प्रकार इस कृष्णलेश्याशतक मे ग्यारह उद्देशक है । प्रथम, तृतीय और पचम, ये तीनो उद्देशक एक समान है । शेष आठ उद्देशक एक समान है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ॥४०।२।३-११॥

विवेचन—स्पष्टीकरण—यहाँ कृष्णलेश्यीकृतयुग्म-कृतयुग्म सज्ञीपचेन्द्रिय सातवी नरकपृथ्वी के नैरयिक की उत्कृष्ट स्थिति और पूर्वभव के अन्तिम परिणाम की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त मिलाकर अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम होता है ।[1]

॥ चालीसवां शतक · द्वितीय अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

१ (क) भगवती अ वृत्ति, पत्र ९७०

(ख) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ ३७७०

तइए सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

तृतीय संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

नीललेश्यी संज्ञीपंचेन्द्रिय की वक्तव्यता

१. एवं नीललेस्सेसु वि सय। नवरं संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं; एवं ठिती वि। एवं तिसु उद्देसएसु। सेसं तं चेव।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति० ॥४०।३।१-११॥

॥ चत्तालीसइमे सते ततियं सयं समत्तं ॥४०-३॥

[१] नीललेश्या वाले संज्ञी की वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझनी चाहिए। विशेष यह है कि इसका संचिट्ठणाकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम है। स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए। इसी प्रकार पहले, तीसरे, पांचवें इन तीन उद्देशकों के विषय में जानना चाहिए। शेष पूर्ववत्।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत्।

विवेचन—नीललेश्याविशिष्ट संज्ञी पंचेन्द्रिय की आयु—पांचवीं नरकपृथ्वी के ऊपर के प्रतर में पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम का उत्कृष्ट आयुष्य है और वहाँ तक नील-लेश्या है। यहाँ पूर्वभव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त को पल्योपम के असंख्यातवें भाग में ही समाविष्ट कर दिया है, इस कारण उस अन्तर्मुहूर्त का कथन नहीं किया गया है।[1]

॥ चालीसवाँ शतक : तृतीय अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

१ (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९७५

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ. ३७७१

चउत्थे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

चतुर्थ संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

कापोतलेश्यी संज्ञीपंचेन्द्रिय की वक्तव्यता

१. एवं काउलेस्ससयं पि, नवरं संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेण तिन्निसागरोवमाइं पलियोवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं; एवं ठिती वि । एवं तिसु वि उद्देसएसु । सेसं तं चेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४०।४।१-११ ॥

॥ चत्तालीसइमे सते चउत्थं सयं ॥ ४०-४ ॥

[१] इसी प्रकार कापोतलेश्याशतक के विषय मे समझ लेना चाहिए । विशेष—सचिट्ठणाकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक तीन सागरोपम है । स्थिति भी इसी प्रकार है तथा इसी प्रकार तीनो उद्देशक जानना । शेष पूर्ववत् ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

विवेचन तृतीय नरकपृथ्वी के ऊपर प्रतर मे रहने वाले नारक की स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक तीन सागरोपम की है और वही तक कापोतलेश्या है । इसलिए पूर्वोक्त स्थिति ही युक्तियुक्त है ।

॥ चालीसवाँ शतक : चतुर्थ अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

पंचमे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

पंचम संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

तेजोलेश्यी संज्ञीपंचेन्द्रिय की वक्तव्यता

१. एव तेउलेस्सेसु वि सय । नवरं सचिट्ठणा जहन्नेणं एक्क समय, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइ पलियोवमस्स असखेज्जइभागमब्भहियाइ, एव ठिती वि, नवरं नोसण्णोवउत्ता वा । एवं तिसु वि गम-(? उद्देस) एसु । सेस त चेव ।

सेव भंते ! सेवं भते ! त्ति० ॥ ४०।५।१-११ ॥

॥ चत्तालीसइमे सते पचमं सयं ॥ ४०-५ ॥

[१] तेजोलेश्याविशिष्ट (सज्ञी पचेन्द्रिय) का शतक भी इसी प्रकार है । विशेष यह है कि सचिट्ठणाकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक दो सागरोपम है । स्थिति भी इसी प्रकार है । किन्तु यहाँ नोसज्ञोपयुक्त भी होते है । इसी प्रकार तीनो उद्देशको के विषय मे समझना चाहिए । शेष पूर्ववत् ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

विवेचन—यहाँ तेजोलेश्याविशिष्ट जीवो की जो उत्कृष्ट स्थिति कही है, वह ईशान देवलोक के देवो की उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा है ।

॥ चालीसवाँ शतक : पंचम अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

छट्ठे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

छठा संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

पद्मलेश्यी संज्ञीपंचेन्द्रिय की वक्तव्यता

१ जहा तेउलेसासयं तहा पम्हलेसासयं पि। नवरं संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं; एवं ठिती वि, नवरं अंतोमुहुत्तं न भण्णइ। सेसं तं चेव। एवं एएसु पंचसु सएसु जहा कण्हलेसासए गमओ तहा नेयव्वो जाव अणंतखुत्तो।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०॥ ४०।६।१-११॥

॥ चत्तालीसइमे सते : छट्ठं सयं समत्तं ॥ ४०-६॥

[१] तेजोलेश्याशतक के समान पद्मलेश्याशतक है। विशेष संचिट्ठणाकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है। स्थिति भी इतनी ही है, किन्तु इसमे अन्तर्मुहूर्त अधिक नही कहना चाहिए।

शेष पूर्ववत्। इस प्रकार इन पाचो शतको मे कृष्णलेश्याशतक के समान गमक पहले अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, यहाँ तक जानना चाहिए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत्।

विवेचन—पद्मलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति ब्रह्मलोक के देवो की उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा पूर्वभव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त-सहित दस सागरोपम कही है।

॥ चालीसवाँ शतक : छठा अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

सत्तमे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

सप्तम संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

१. सुक्कलेस्ससयं जहा ओहियसयं, नवरं संचिट्ठणा ठिती य जहा कण्हलेस्ससते। सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति० ॥४०।७।१-११॥

॥ चत्तालीसइमे सए : सत्तमं सयं समत्तं ॥ ४०-७ ॥

[१] शुक्ललेश्याशतक भी औघिक शतक के समान है। इनका सचिट्ठणाकाल और स्थिति कृष्णलेश्याशतक के समान है। शेष पूर्ववत्, पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए है, यहाँ तक कहना चाहिए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत्।

विवेचन—शुक्ललेश्यी की स्थिति पूर्वभव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त-सहित अनुत्तरदेवो की उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति की अपेक्षा समझनी चाहिए।

॥ चालीसवाँ शतक : सातवाँ अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

अट्ठमे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

अष्टम संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

भवसिद्धिक संज्ञीपचेन्द्रियमहायुग्मशतकवक्तव्यता-निर्देश

१. भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपचेंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति? ०

जहा पढमं सन्निसयं तहा नेयव्वं भवसिद्धियाभिलावेण, नवरं 'सव्वपाणा०? णो तिणट्ठे समट्ठे।' सेसं तं चेव।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति० । ४०।८।१-११ ॥

॥ चत्तालीसइमे सए : अट्ठमं सयं ॥ ४०-८ ॥

[१ प्र] भगवन्! कृतयुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त भवसिद्धिकसंज्ञीपचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

[१ उ] गौतम! प्रथम संज्ञीशतक के अनुसार भवसिद्धिक के आलापक से यह शतक जानना चाहिए। विशेष मे—

[प्र] भगवन्! क्या सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ पहले उत्पन्न हुए हैं?

[उ] गौतम! यह अर्थ समर्थ नही है।

शेष पूर्ववत् जानना।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत्।

॥ चालीसवाँ शतक : अष्टम अवान्तरशतक सम्पूर्ण ॥

नवमाइचोद्दसमपज्जंता सया : पत्तेयं एक्कारस उद्देसगा

नौवें से चौदहवें शतक पर्यन्त : प्रत्येक के ग्यारह उद्देशक

१. कण्हलेस्सभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचेंदिया णं भंते ! कओ उववज्जति? ०

एवं एएणं अभिलावेण जहा ओहियकण्हलेस्ससय ।

सेवं भंते ! सेवं भते ! त्ति० ।। ४०।९।१-११।।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त सज्ञीपचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि समग्र प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! कृष्णलेश्यी ओघिकशतक के अनुसार इसी अभिलाप से यह शतक कहना ।

'भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

२. एव नीललेस्सभवसिद्धिएहि वि सत ।

सेवं भते ! सेव भते ! ० ।। ४०।१०।१-११।।

[२] नीललेश्यीभवसिद्धिकशतक भी इसी प्रकार जानना ।

'भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

३. एव जहा ओहियाणि अन्निपचेंदियाणं सत्त सयाणि भणियाणि एवं भवसिद्धिएहि वि सत्त सयाणि कायव्वाणि, नवर सत्तसु वि सएसु 'सव्वपाणा जाव णो इणट्ठे समट्ठे ।' सेस त चेव ।

सेव भते ! सेव भते ! ० ।

।। भवसिद्धियसया समत्ता ।। ४०-८-१४।।

।। चत्तालीसइमे सते चोद्दसम सय समत्तं ।। ४०-१४ ।।

[३] सज्ञीपचेन्द्रिय जीवो के सात औघिकशतक कहे हैं, उसी प्रकार भवसिद्धिक सम्बन्धी सातो शतक कहने चाहिए । विशेष यह है—

[प्र.] सातो शतको मे क्या इससे पूर्व सर्व प्राण, यावत् सर्व सत्त्व उत्पन्न हुए है ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है । शेष पूर्ववत् ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

विवेचन—प्रस्तुत मे कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक आदि नौवे से चौदहवे शतक तक का औघिक अतिदेश पूर्वक कथन किया गया है ।

।। चालीसवां शतक : नौवें से चौदहवें अवान्तरशतक तक सम्पूर्ण ।।

पन्नरसमे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

पन्द्रहवाँ संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

१. अभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचेंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?०

उववातो तहेव अणुत्तरविमाणवज्जो । परिमाणं, अवहारो, उच्चत्तं, बंधो, वेदो, वेयणं, उदयो, उदीरणा य जहा कण्हलेस्ससते कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा । नो सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी नो सम्मामिच्छादिट्ठी । नो नाणी, अन्नाणी । एवं जहा कण्हलेस्ससए, नवरं नो विरया, अविरया, नो विरयाविरया । संचिट्ठणा, ठिती य जहा ओहिउद्देसए । समुग्घाया आइल्लगा पंच । उव्वट्टणा तहेव अणुत्तरविमाणवज्ज । 'सव्वपाणा० ? णो इणट्ठे समट्ठे ।' सेस जहा कण्हलेस्ससए जाव अणंतखुत्तो ।

[१ प्र] भगवन् ! अभवसिद्धिक-कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि-संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! अनुत्तरविमानो को छोड कर शेष सभी स्थानो मे पूर्ववत् उपपात जानना चाहिए। इनका परिमाण, अपहार, ऊँचाई, बन्ध, वेद, वेदन, उदय और उदीरणा कृष्णलेश्या-शतक के समान है। वे कृष्णलेश्यी से लेकर यावत् शुक्ललेश्यी होते है । वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नही होते, केवल मिथ्यादृष्टि होते है। वे ज्ञानी नही, अज्ञानी हैं। इसी प्रकार सब कृष्णलेश्याशतक के समान है। विशेष यह है कि वे विरत और विरताविरत नहीं होते, मात्र अविरत होते हैं। इनका संचिट्ठणाकाल और स्थिति औधिक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए। इनमे प्रथम के पाच समुद्घात पाये जाते हैं। उद्वर्त्तना अनुत्तरविमानो को छोडकर पूर्ववत् जानना चाहिए। तथा—

[प्र] क्या सभी प्राण यावत् सत्त्व पहले इनमे उत्पन्न हुए हैं ?

[उ] यह अर्थ समर्थ नही। शेष कृष्णलेश्याशतक के समान पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, यहाँ तक कहना चाहिए।

२. एवं सोलससु वि जुम्मेसु ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ॥ ४०-१५-१ ॥

[२] इसी प्रकार सोलह ही युग्मो के विषय मे जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ॥४०।१५।१॥

३. पढमसमयअभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचेंदिया णं भंते ! कओ उववज्जति ?०

जहा सन्नीण पढमसमयुद्देसए तहेव, नवर सम्मत्तं, सम्मामिच्छत्तं, नाणं च सव्वत्थ नत्थि। सेस तहेव।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४०।१५।२ ॥

[३ प्र] भगवन् ! प्रथमसमयोत्पन्न अभवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त सज्ञीपचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[३ उ.] गौतम ! प्रथमसमय के सज्ञी-उद्देशक के अनुसार सर्वत्र जानना चाहिए, विशेष—सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और ज्ञान सर्वत्र नही होता। शेष पूर्ववत्।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४०।१५।२ ॥

४. एव एत्थ वि एक्कारस उद्देसगा कायव्वा, पढम-ततिय-पंचमा एक्कगमा। सेसा अट्ठ वि एक्कगमा।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४०।१५।३-११॥

॥ चत्तालीसइमे सते : पन्नरसमं सयं समत्तं ॥ ४०-१५ ॥

[४] इस प्रकार इस शतक मे भी ग्यारह उद्देशक होते हैं। इनमे से प्रथम, तृतीय एव पचम, ये तीनो उद्देशक समान पाठ वाले हैं तथा शेष आठ उद्देशक भी एक समान हैं।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४०।१५।३-११ ॥

॥ चालीसवाँ शतक : पन्द्रहवाँ अवान्तरशतक समाप्त ॥

सोलसमे सन्निपंचिंदियमहाजुम्मसए : एक्कारस उद्देसगा

सोलहवाँ संज्ञीपंचेन्द्रियमहायुग्मशतक : ग्यारह उद्देशक

१. कण्हलेसप्रभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मसन्निपंचेंदिया णं भंते ! कतो उववज्जंति ?०

जहा एएसिं चेव श्रोहियसत तहा कण्हलेस्ससय पि, नवर 'ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ? हंता, कण्हलेस्सा ।' ठिती, सचिट्ठणा य जहा कण्हलेस्ससए । सेस तं चेव ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ।। ४०।१६।१-११ ।।

।। चत्तालीसइमे सते : सोलसमं सतं समत्त ।। ४०-१६ ।।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी-प्रभवसिद्धिक-कृतयुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त सज्ञीपचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! जिस प्रकार इनका श्रोघिक शतक है, उसी प्रकार कृष्णलेश्या-शतक जानना चाहिए । विशेष—

[प्र] भगवन् ! वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं ?

[उ] 'हाँ, गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले है ।' इनकी स्थिति और सचिट्ठणाकाल कृष्णलेश्या-शतक मे उक्त कथन के समान है । शेष पूर्ववत् है ।

'भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।।४०।१६।१-११।।

।। चालीसवाँ शतक : सोलहवाँ प्रवान्तरशतक समाप्त ।।

सत्तरसमाइएक्कवीसइमपज्जंताइं सयाइं : पत्तेयं एक्कारस उद्देसगा

सत्रहवें से इक्कीसवें शतक पर्यन्त : प्रत्येक के ग्यारह उद्देशक

१. एवं छहि वि लेसाहिं छ सया कायव्वा जहा कण्हलेस्ससय, नवरं सचिट्ठणा, ठिती य जहेव ओहिएसु तहेव भाणियव्वा; नवरं सुक्कलेसाए उक्कोसेणं एक्कत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं; ठिती एव चेव, नवरं अंतोमुहुत्तो नत्थि, जहन्नगं तहेव; सव्वत्थ सम्मत्त नाणाणि नत्थि। विरती, विरयाविरई, अणुत्तरविमाणोववत्ती, एयाणि नत्थि।

सव्वपाणा० ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

सेव भंते ! सेवं भते ! त्ति०।

[१] जिस प्रकार कृष्णलेश्या-सम्बन्धी शतक कहा, उसी प्रकार छहो लेश्या-सम्बन्धी छह शतक कहने चाहिए। विशेष—सचिट्ठणाकाल और स्थिति का कथन औघिक शतक के समान है, किन्तु शुक्ललेश्यी का उत्कृष्ट सचिट्ठणाकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक इकतीस सागरोपम होता है और स्थिति भी पूर्वोक्त ही होती है, किन्तु उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त अधिक नही कहना चाहिए। इनमे सर्वत्र सम्यक्त्व और ज्ञान नही होता तथा इनमे विरति, विरताविरति तथा अनुत्तरविमानोत्पत्ति नही होती। इसके पश्चात्—

[प्र.] भगवन् ! सभी प्राण यावत् सत्त्व यहाँ पहले उत्पन्न हुए हैं।

[उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

'हे भगवन् ! यह इस प्रकार है,' इत्यादि पूर्ववत्।

२. एवं एताणि सत्त (४०-१५-२१) अभवसिद्धीयमहाजुम्मसयाणि भवति।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥४०।१७-२१॥

[२] इस प्रकार ये सात अभवसिद्धिकमहायुग्म (४०।१५-२१) शतक होते हैं ॥४०।१७-२१।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

३. एव एयाणि एक्कवीसं सन्निमहाजुम्मसयाणि।

[३] इस प्रकार ये इक्कीस (अवान्तर) महायुग्मशतक सज्ञीपचेन्द्रिय के हुए।

४. सव्वाणि वि एक्कासीति महाजुम्मसताणि।

॥ अवांतर महाजुम्मसता समत्ता ॥

॥ चत्तालीसतिमं सय समत्त ॥ ४० ॥

[४.] सभी मिला कर महायुग्म-सम्बन्धी ८१ शतक सम्पूर्ण हुए।

विवेचन—शुक्ललेश्यी अभव्य की स्थिति—अभव्य संज्ञी पंचेन्द्रिय की शुक्ललेश्या की स्थिति अन्तर्मुहूर्त-अधिक इकतीस सागरोपम की कही है, वह पूर्वभव के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त-सहित नौवें ग्रैवेयक की ३१ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति की अपेक्षा जाननी चाहिए, क्योंकि अभव्य जीव उत्कृष्ट नौवें ग्रैवेयक तक जाता है तथा वहाँ शुक्ललेश्या होती है।

८१ महायुग्मशतक—पैंतीसवें से उनचालीसवें शतक तक प्रत्येक के १२-१२ अवान्तर शतक है तथा इस चालीसवें शतक के कुल ८१ अवान्तरशतक हैं, इस प्रकार कुल शतक ६०+२१=८१ हुए।

।। चालीसवाँ शतक : अवान्तरमहायुग्मशतक समाप्त ।।

।। चालीसवाँ शतक सम्पूर्ण ।।

एगचत्तालीसइमं सयं-रासीजुम्मसयं

इकतालीसवाँ शतक : राशियुग्मशतक

- भगवतीसूत्र का यह इकतालीसवाँ शतक है। इसका नाम राशियुग्मशतक है। युग्म का अर्थ यहाँ युगल है, अर्थात् युगलरूपराशि। इसके भी पूर्ववत् कृतयुग्मादि चार भेद कहे है।

- इस शतक मे राशियुग्म—कृतयुग्मादि-विशिष्ट, कृष्णादि षट्लेश्या-विशिष्ट तथा कृष्णादि लेश्या-युक्त भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, कृष्णपाक्षिक-शुक्लपाक्षिक चौबीस दण्डकवर्ती जीवो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे विविध पहलुओ से विचार किया गया है।

- जैनदर्शन अथवा तीर्थकरोपदिष्ट सिद्धान्त का चरम लक्ष्य मनुष्य को, विशेषत साधक को जन्म-मरण मे तथा सर्वदु खो से सदा के लिए मुक्ति पाने की प्रेरणा रही है। इसी दृष्टिकोण से शास्त्रकार ने इस शतक का प्रतिपादन किया है। जब तक व्यक्ति जन्म-मरण से मुक्त नही होता, तब तक वह अनेकानेक दु खो, सकटो, चिन्ताओ, भय-आशका, सज्ञा, कषाय, अज्ञान, मिथ्या-दृष्टित्व आदि अनेक विकारो मे घिरा रहता है। उसे प्राय यह भाव ही नही रहता कि मैं कहा से आया हूँ, कैसे और क्यो आया हूँ, यहाँ से मर कर कहाँ जाऊँगा? ये और ऐसे प्रश्न उसके मन-मस्तिष्क मे उद्भूत ही नही होते हैं। कई मत या दर्शन उसे बहका भी देते है कि मनुष्य मर कर दूसरा कुछ हो ही नही सकता, वह मनुष्य ही बनता है। अथवा यहाँ शरीर भस्म होने के बाद कही जाना-आना नही है, पुनर्जन्म नही है, अथवा मनुष्य कभी सिद्ध, बुद्ध मुक्त हो ही नही सकता, वह अधिक से अधिक स्वर्ग जा सकता है, स्वर्गीय सुख ही उसके लिए अन्तिम लक्ष्य है, इत्यादि।

- ये और ऐसी ही भ्रान्त धारणाओ का निराकरण करने हेतु शास्त्रकार इस शतक मे निम्नोक्त प्रश्न उठा कर यथोचित समाधान करते हैं—(१) ये जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है?, (२) एक समय मे कितनी सख्या मे उत्पन्न होते हैं?, (३) सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर?, (४) किस प्रकार से उत्पन्न होते है?, (५) वे आत्म-यश से उत्पन्न होते हैं या आत्म अयश से?, (६) वे अपना जीवन-निर्वाह आत्म-यश से करते है या आत्म-अयश से?, (७) आत्म-यश से या आत्म-अयश से जीवन-निर्वाह करने वाले सलेश्यी होते है या अलेश्यी?, (८) वे क्रियायुक्त होते हैं या क्रियारहित? और (९) वे एक भव करके जन्म-मरण से मुक्त हो जाते है अथवा मुक्त नही हो पाते? इन प्रश्नो का समाधान ही जन्म-मरण से मुक्ति पाने की ओर अगुलिनिर्देश करता है।

- कुल मिला कर १९६ उद्देशको मे विविध पहलुओ से आत्मलक्षी चर्चा है।

एगचत्तालीसइमं सयं : रासीजुम्मसयं

इकतालीसवाँ शतक : राशियुग्मशतक

पढमो उद्देसओ : प्रथम उद्देशक

राशियुग्म : भेद और स्वरूप

१ [१] **कति णं भंते ! रासीजुम्मा पन्नत्ता ?**

गोयमा ! चत्तारि रासीजुम्मा पन्नत्ता, तंजहा—कडजुम्मे जाव कलियोगे।

[१-१ प्र.] भगवन् ! राशियुग्म कितने कहे गए हैं ?

[१-१ उ.] गौतम ! राशियुग्म चार कहे हैं, यथा—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज।

[२] **से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—चत्तारि रासीजुम्मा पन्नत्ता, तंजहा जाव कलियोगे ?**

गोयमा ! जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेण अवहीरमाणे चउपज्जवसिए से त्तं रासीजुम्म-कडजुम्मे, एवं जाव जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं० एगपज्जवसिए से त्तं रासीजुम्मकलियोगे, सेतेणट्ठेणं जाव कलियोगे।

[१-२ प्र.] भगवन् ! राशियुग्म चार कहे हैं, यथा—कृतयुग्म यावत् कल्योज, ऐसा किस कारण से कहते है ?

[१-२ उ.] गौतम ! जिस राशि मे चार-चार का अपहार करते हुए अन्त मे ४ शेष रहे, उस राशियुग्म को कृतयुग्म कहते हैं, यावत् जिस राशि मे से चार-चार अपहार करते हुए अन्त मे एक शेष रहे, उस राशियुग्म को 'कल्योज' कहते है। इसी कारण से हे गौतम ! यावत् कल्योज कहलाता है, (यह कहा गया है।)

विवेचन—राशियुग्म-कृतयुग्म क्या और क्यों ?—'युग्म' शब्द युगल (दो) का पर्यायवाची भी है। अतः उसके साथ 'राशि' विशेषण लगाया गया है। जो राशियुग्म हो और कृतयुग्म-परिमाण हो, उसे राशियुग्म-कृतयुग्म कहते हैं।[1]

राशियुग्म-कृतयुग्मराशि वाले चौबीस दण्डकों में उपपातादि वक्तव्यता

२ **रासीजुम्मकडजुम्मनेरतिया णं भंते ! कतो उववज्जंति ?**

उववातो जहा वक्कंतीए।

[२ प्र.] भगवन् ! राशियुग्म-कृतयुग्मरूप नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[२ उ.] इनका उपपात (उत्पत्ति) प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार जानना चाहिए।

---

१. (क) भगवती अ. वृत्ति, पत्र ९७८

(ख) भगवती (हिन्दी-विवेचन) भा. ७, पृ. ३७९०

३. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, सोलस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति ।

[३ प्र] भगवन् ! वे (पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट) जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

[३ उ.] गौतम ! वे एक समय मे चार, आठ, बारह, सोलह, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते है ।

४. ते णं भंते ! जीवा किं संतरं उववज्जंति, निरंतरं उववज्जति ?

गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरतर पि उववज्जंति । संतर उववज्जमाणा जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जे समये अंतरं कट्टु उववज्जति, निरतरं उववज्जमाणा जहन्नेणं दो समया, उक्कोसेणं असंखेज्जा समया अणुसमय अविरहियं निरतरं उववज्जति ।

[४ प्र] भगवन् ! वे जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर ?

[४ उ] गौतम ! वे जीव सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी। जो सान्तर उत्पन्न होते हैं, वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यात समय का अन्तर करके उत्पन्न होते हैं। जो निरन्तर उत्पन्न होते हैं, वे जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असख्यात समय तक निरन्तर प्रतिसमय अविरहितरूप से उत्पन्न होते हैं।

५. [१] ते णं भंते ! जीवा जं समय कडजुम्मा त समयं तेयोगा, ज समय तेयोगा तं समयं कडजुम्मा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[५-१ प्र.] भगवन् ! वे जीव जिस समय कृतयुग्मराशिरूप होते हैं, क्या उसी समय त्र्योज-राशिरूप होते हैं और जिस समय त्र्योजराशियुक्त होते है, उसी समय कृतयुग्मराशिरूप होते हैं ?

[५-१ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही ।

[२] जं समयं कडजुम्मा त समय दावरजुम्मा, ज समय दावरजुम्मा त समयं कडजुम्मा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[५-२ प्र] भगवन् ! जिस समय वे जीव कृतयुग्मरूप होते हैं, क्या उस समय द्वापरयुग्मरूप होते हैं तथा जिस समय वे द्वापरयुग्मरूप होते हैं, उसी समय कृतयुग्मरूप होते हैं ?

[५-२ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[३] जं समयं कडजुम्मा त समय कलियोगा, जं समयं कलियोगा तं समयं कडजुम्मा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[५-३ प्र] भगवन् ! जिस समय वे कृतयुग्म होते हैं, क्या उस समय कल्योज होते है तथा जिस समय कल्योज होते हैं, उस समय कृतयुग्मराशि होते हैं ?

[५-३ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है ।

६. ते णं भंते ! जीवा कहं उववज्जंति ?

गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे एवं जहा उववायसए (स० २५ उ० ८ सु० २-८) जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जति।

[६ प्र] भगवन् ! वे जीव (तथाकथित नारक) कैसे उत्पन्न होते हैं ?

[६ उ.] गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला (कूदता हुआ अपने पूर्वस्थान को छोड कर आगे के स्थान को प्राप्त करता है, इसी प्रकार) इत्यादि उपपातशतक (श० २५, उ० ८, सू० २-८ मे उक्त उपपात-कथन) के अनुसार वे आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से नही, यहाँ तक कहना चाहिए।

७. [१] ते ण भते ! जीवा किं आयजसेण उववज्जंति, आयअजसेणं उववज्जंति ?

गोयमा ! नो आयजसेण उववज्जति, आयअजसेण उववज्जति।

[७-१ प्र.] भगवन् ! वे जीव आत्म-यश (आत्म-सयम) से उत्पन्न होते हैं अथवा आत्म-अयश (आत्म-असयम) से उत्पन्न होते है ?

[७-१ उ] गौतम ! वे आत्म-यश से उत्पन्न नही होते है किन्तु आत्म-अयश से उत्पन्न होते हैं।

[२] जति आयअजसेणं उववज्जति कि आयजसं उवजीवंति, आयअजसं उवजीवंति ?

गोयमा ! नो आयजसं उवजीवंति, आयअजसं उवजीवति।

[७-२ प्र] भगवन् ! यदि वे जीव आत्म-अयश से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे आत्म-यश से जीवननिर्वाह करते हैं अथवा आत्म-अयश से जीवननिर्वाह करते हैं ?

[७-२ उ] गौतम ! वे आत्म-यश से जीवननिर्वाह नही करते, किन्तु आत्म-अयश से करते हैं।

[३] जति आयअजसं उवजीवंति किं सलेस्सा, अलेस्सा ?

गोयमा ! सलेस्सा, नो अलेस्सा।

[७-३ प्र] भगवन् ! यदि वे आत्म-अयश से अपना जीवननिर्वाह करते है, तो वे सलेश्यी होते हैं अथवा अलेश्यी होते है ?

[७-३ उ] गौतम ! वे सलेश्यी होते है, अलेश्यी नही होते है।

[४] जति सलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया ?

गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया।

[७-४ प्र.] भगवन् ! यदि वे सलेश्यी होते है तो सक्रिय (क्रियासहित) होते हैं या अक्रिय (क्रियारहित) होते हैं ?

[७-४ उ] गौतम ! वे सक्रिय होते हैं, अक्रिय नही होते हैं।

[५] जति सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

[७-५ प्र] भगवन् ! यदि वे सक्रिय होते है तो क्या उसी भव को ग्रहण करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो जाते है यावत् सर्वदु:खो का अन्त कर देते है ?

[७-५ उ] गौतम ! उनके लिए यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नही है।

८. रासीजुम्मकडजुम्मग्रसुरकुमारा ण भते ! कम्रो उववज्जति ?

जहेव नेरतिया तहेव निरवसेस ।

[८ प्र.] भगवन् ! राशियुग्म-कृतयुग्मराशिरूप असुरकुमार (आदि) कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ।

[८ उ] जिस प्रकार नैरयिकों के विषय मे कथन किया है, उसी प्रकार यहा सभी कथन करना चाहिए ।

९. एवं जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिया, नवर वणस्सतिकाइया जाव असखेज्जा व अणंता वा उववज्जंति । सेसं एव चेव ।

[९] पचेन्द्रियतिर्यञ्च तक सारी वक्तव्यता इसी प्रकार कहनी चाहिए, विशेष—वनस्पतिकायिक जीव यावत् असख्यात या अनन्त उत्पन्न होते है, (यह कहना चाहिए ।) शेष सब पूर्वोक्त कथन के समान है ।

१०. [१] मणुस्सा वि एवं चेव जाव नो आयजसेणं उववज्जंति, आयग्रजसेणं उववज्जंति ।

[१०-१] मनुष्यो से सम्बन्धित कथन भी इसी प्रकार वे आत्म-यश से उत्पन्न नही होते, किन्तु आत्म-अयश से उत्पन्न होते है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

[२] जति आयग्रजसेणं उववज्जति कि आयजस उवजीवति आयग्रजसं उवजीवंति ?

गोयमा ! आयजस पि उवजीवति, आयग्रजसं पि उवजीवति ।

[१०-२ प्र] भगवन् ! यदि वे (मनुष्य) आत्म-अयश से उत्पन्न होते है तो क्या आत्म-यश से जीवन-निर्वाह करते है या आत्म-अयश से जीवन निर्वाह करते है ।

[१०-२ उ] गौतम ! आत्म-यश से भी और आत्म-अयश से भी जीवन निर्वाह करते हैं ।

[३] जति आयजसं उवजीवति किं सलेस्सा, अलेस्सा ?

गोयमा ! सलेस्सा वि, अलेस्सा वि ।

[१०-३ प्र.] भगवन् ! यदि वे आत्मयश से जीवन-निर्वाह करते है तो सलेश्यी होते है या अलेश्यी होते है ?

[१०-३ उ] गौतम ! वे सलेश्यी भी होते हैं और अलेश्यी भी होते है ।

[४] जति अलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया ?

गोयमा ! नो सकिरिया, अकिरिया ?

[१०-४ प्र.] भगवन् ! यदि वे अलेश्यी होते है तो सक्रिय होते है या अक्रिय होते हैं ?

[१०-४ उ.] गौतम ! वे सक्रिय नही होते, किन्तु अक्रिय (क्रियारहित) होते हैं ।

[५] जति अकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अंतं करेंति ?

हंता, सिज्झति जाव अंतं करेंति।

[१०-५ प्र] भगवन् ! यदि वे अक्रिय होते है तो क्या उसी भव को ग्रहण करके सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सर्व दु.खो का अन्त करते हैं ?

[१०-५ उ] हाँ, गौतम ! वे उसी भव मे सिद्ध यावत् सर्वदु खो का अन्त करते हैं।

[६] जदि सलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया ?

गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया।

[१०-६ प्र.] भगवन् ! यदि वे (तथाकथिक मनुष्य) सलेश्यी है तो सक्रिय होते हैं या अक्रिय होते हैं ?

[१०-६ उ] गौतम ! वे सक्रिय होते हैं अक्रिय नही।

[७] जदि सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अंतं करेंति ?

गोयमा ? अत्थेगइया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अंत करेंति, अत्थेगइया नो तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अत करेंति।

[१०-७ प्र] भगवन् ! वे सक्रिय होते है तो क्या उसी भव को ग्रहण करके सिद्ध होते है यावत् सब दु:खो का अन्त करते है ?

[१०-७ उ.] गौतम ! कितने ही (मनुष्य) इसी भव मे सिद्ध होते है यावत् सर्व दु.खो का अन्त कर देते है और कितने ही उसी भव मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त नही होते, यावत् सर्व दु.खो का अन्त नही कर पाते।

[८] जति आयअजस उवजीवंति किं सलेस्सा, अलेस्सा ?

गोयमा ! सलेस्सा, नो अलेस्सा।

[१०-८ प्र] भगवन् ! यदि वे आत्म-अयश से जीवन निर्वाह करते है तो वे सलेश्यी होते है या अलेश्यी होते है ?

[१०-८ उ.] गौतम ! वे सलेश्यी होते है अलेश्यी नही होते है।

[९] जदि सलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया ?

गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया।

[१०-९ प्र] भगवन् ! यदि वे सलेश्यी होते हैं तो सक्रिय होते है अथवा अक्रिय होते है ?

[१०-९ उ] गौतम ! वे सक्रिय होते है, अक्रिय नही होते है।

[१०] जदि सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति ?

नो इणट्ठे समट्ठे।

[१०-१० प्र] भगवन् ! यदि वे सक्रिय होते है तो क्या उसी भव को ग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दु खो का अन्त कर देते है ?

[१०-१० उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नही है।

११. वाणमंतर-जोतिसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। एगचत्तालीसइमे सए : रासीजुम्मसते पढमो उद्देसओ ।। ४१-१ ।।

[११] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक-सम्बन्धी (पूर्वोक्त) कथन नैरयिक-सम्बन्धी कथन के समान है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है।

विवेचन—विविध पहलुओ से जीवो की उत्पत्ति-सम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत १० सूत्रो (सू २ से ११ तक) मे राशियुग्म-कृतयुग्मरूप जीवो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे निम्नोक्त पहलुओ से विचार किया गया है—(१) ये जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? (२) कितनी सख्या में उत्पन्न होते है ? (३) सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर ? (४) किस प्रकार से उत्पन्न होते हैं ? (५) आत्म-यश से उत्पन्न होते हैं अथवा आत्म-अयश से ? (६) आत्म-यश से जीवन चलाते है या आत्म-अयश से ? (७) आत्म-यश या आत्म-अयश से जीवन चलाने वाले सलेश्यी होते हैं या अलेश्यी ? (८) सक्रिय होते हैं या अक्रिय ? (९) एक भव करके जन्म-मरण का अन्त कर देते हैं अथवा नही कर पाते ।[1]

आत्म-यश तथा आत्म-अयश का भावार्थ—यश का हेतु सयम है। इसलिए यहाँ कारण मे कार्य का उपचार करके 'सयम' के अर्थ मे 'यश' शब्द का प्रयोग किया गया है। अत: 'यश' का अर्थ यहाँ सयम है और अयश का अर्थ है–असयम। सभी जीवो को उत्पत्ति आत्म-अयश से अर्थात् आत्म-असयम से होती है, क्योकि उत्पति मे सभी जीव अविरत (असयमी) होते है।[2]

।। इकतालीसवाँ शतक : राशियुग्मशतक मे प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

---

१. वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठ-टिप्पण-युक्त) भा ३, पृ. ११७४

२. भगवती अ वृत्ति, पत्र ९७८-९७९

बिइओ उद्देसओ : द्वितीय उद्देशक

राशियुग्म-त्र्योजराशिवाले चौवीस दण्डकों में उपपातादि-वक्तव्यता

१. रासीजुम्मतयोयनेरयिया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ?

एवं चेव उद्देसम्रो भाणियव्वो, नवर परिमाण तिन्नि वा, सत्त वा, एक्कारस वा, पन्नरस वा, सखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति । सतरं तहेव ।

[१ प्र] भगवन् ! राशियुग्म-त्र्योजराशि-परिमित नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! पूर्ववत् इस उद्देशक का कथन करना चाहिए । इनका परिमाण—ये तीन, सात, ग्यारह, पन्द्रह सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं । सान्तर पूर्ववत् ।

२ [१] ते ण भते ! जीवा ज समय तेयोया तं समयं कडजुम्मा जं समय कडजुम्मा त समय तेयोया ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२ प्र] भगवन् ! वे जीव जिस समय त्र्योजराशि होते है, क्या उस समय कृतयुग्मराशि होते है, तथा जिस समय कृतयुग्मराशि होते हैं, क्या उस समय त्र्योजराशि होते है ।

[२-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] जं समयं तेयोया तं समयं दावरजुम्मा, ज समयं दावरजुम्मा त समयं तेयोया ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२-२ प्र.] भगवन् ! जिस समय वे जीव त्र्योजराशि होते हैं, क्या उस समय द्वापरयुग्मराशि होते हैं तथा जिस समय वे द्वापरयुग्मराशि होते हैं, क्या उस समय वे त्र्योजराशि होते हैं ?

[२-२ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[३] एव कलियोगेण वि सम ।

[३-३] कल्योजराशि के साथ कृतयुग्मादिराशि-सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार जाननी चाहिए ।

३. सेसं तं चेव जाव वेमाणिया, नवरं उववातो सव्वेसिं जहा वक्कंतीए ।

सेव भंते ! सेवं भते ! त्ति० ।

॥ इकचत्तालीसइमे सए : बिइम्रो उद्देसम्रो समत्तो ॥ ४१।१।२ ॥

[३] शेष सब कथन पूर्ववत् यावत् वैमानिक दण्डक-पर्यन्त जानना चाहिए किन्तु सभी का उपपात प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार समझना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—राशियुग्म-त्र्योजराशिविशिष्ट जीवों की उत्पत्ति आदि सम्बन्धी प्रस्तुत ३ सूत्रों में राशियुग्म-त्र्योजराशियुक्त जीवों के उपपात आदि के सम्बन्ध में विभिन्न पहलुओं से पूर्व उद्देशक के अतिदेशपूर्वक कथन किया गया है ।

।। इकतालीसवाँ शतक : द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

तइओ उद्देसओ : तृतीय उद्देशक

राशियुग्म-द्वापरयुग्मराशिवाले चौबीस दण्डकों में उपपातादि-प्ररूपणा

१. रासीजुम्मदावरजुम्मनेरतिया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ?

एवं चेव उद्देसमो, नवरं परिमाणं दो वा, छ वा, दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति ।[1]

[१ प्र] भगवन् ! राशियुग्म-द्वापरयुग्मराशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! यह उद्देशक भी पूर्ववत् जानना चाहिए, किन्तु इनका परिमाण—ये दो, छह, दस, सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं । (सवेध भी जानना चाहिए ।)

२. [१] ते णं भंते ! जीवा जं समयं दावरजुम्मा तं समयं कडजुम्मा, जं समयं कडजुम्मा त समयं दावरजुम्मा ?

णो इणट्ठे समट्ठे ।

[२-१ प्र] भगवन् ! वे जीव जिस समय द्वापरयुग्म होते है, क्या उस समय कृतयुग्म होते है, अथवा जिस समय कृतयुग्म होते हैं, क्या उस समय द्वापरयुग्म होते है ?

[२-१ उ.] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

[२] एवं तयोएण वि समं ।

[२-२] इसी प्रकार त्र्योजराशि के साथ भी कृतयुग्मादि सम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए ।)

[३] एवं कलियोगेण वि समं ।

[२-३] कल्योजराशि के साथ भी कृतयुग्मादि-सम्बन्धी वक्तव्यता इसी प्रकार है ।

३. सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

॥ इकचत्तालीसइमे सए : तइओ उद्देसओ समत्तो ॥ ४१-३ ॥

[३] शेष सब कथन प्रथम उद्देशक के अनुसार, वैमानिक पर्यन्त करना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरने लगे ।

विवेचन—राशियुग्म-द्वापरयुग्मराशि वाले जीवो की उत्पत्ति-सम्बन्धी—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे राशियुग्म-द्वापरयुग्मराशि वाले नैरयिकादि के उपपात, परिमाण आदि की वक्तव्यता कही गई है ।

॥ इकतालीसवाँ शतक : तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

---

१. अधिक पाठ—यहाँ 'सवेहो' अधिक पाठ है ।

चउत्थो उद्देसओ : चतुर्थ उद्देसक

राशियुग्म-कल्योजराशिरूप चौबीस दण्डकों में उपपातादि प्ररूपणा

१. रासीजुम्मकलियोगनेरयिया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ? ०

एवं चेव, नवरं परिमाणं एक्को वा, पंच वा, नव वा, तेरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा० ।

[१ प्र] भगवन् ! राशियुग्म-कल्योजराशि नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] गौतम ! सब कथन पूर्ववत् है। विशेष इनका परिमाण- ये एक, पाच, नौ, तेरह सख्यात या असख्यात उत्पन्न होते हैं।

२. [१] ते ण भंते ! जीवा जं समयं कलियोगा त समय कडजुम्मा, ज समयं कडजुम्मा त समय कलियोगा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

[२-१ प्र.] भगवन् ! वे जीव जिस समय कल्योज होते है, क्या उस समय कृतयुग्म होते है अथवा जिस समय कृतयुग्म होते है, क्या उस समय कल्योज होते है ?

[२-१ उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है।

[२] एवं तेयोयेण वि समं ।

[२-२] इसी प्रकार त्र्योज के साथ कृतयुग्मादि-सम्बन्धी कथन भी जानना चाहिए।

[३] एवं दावरजुम्मेण वि समं ।

[२-३] द्वापरयुग्म के साथ कृतयुग्मादि-सम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

३. सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया ।

सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। इकचत्तालीसइमे सए : चउत्थो उद्देसम्रो समत्तो ।।

[३] शेष सब वर्णन प्रथम उद्देशक के समान वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

विवेचन—राशियुग्म-कल्योजराशिरूप जीवों की उत्पत्ति आदि का कथन—प्रस्तुत ३ सूत्रो में राशियुग्म एव कल्योजरूप जीवो का उत्पत्ति-सम्बन्धी अतिदेशपूर्वक कथन किया गया है।

।। इकतालीसवां शतक : चतुर्थ उद्देशक समाप्त ।।

पंचमाइअट्ठमउद्देसगपज्जंता उद्देसगा

पाँचवें से आठवें उद्देशक पर्यन्त

कृष्णलेश्यावाले राशियुग्म में कृतयुग्मादिरूप चोबोस दण्डकों में उपपातादि-प्ररूपणा

१. कण्हलेस्सरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया ण भंते ! कतो उववज्जंति ? ०

उववातो जहा धूमप्पभाए। सेसं जहा पढमुद्देसए।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले राशियुग्म-कृतयुग्मराशिरूप नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ.] इनका उपपात धूमप्रभापृथ्वी (के नैरयिक) के समान है। शेष सब कथन प्रथम उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

२. असुरकुमाराण तहेव, एव जाव वाणमतराण।

[२] असुरकुमारो के विषय मे भी इसी प्रकार वाणव्यन्तर पर्यन्त कहना चाहिए।

३. मणुस्साण वि जहेव नेरइयाण। आय [? अ] जस उवजीवंति। अलेस्सा, अकिरिया, तेणेव भवग्गहणेण सिज्झति एव न भाणियव्व। सेस जहा पढमुद्देसए।

सेव भते ! सेव भते ! त्ति० ॥ ४१-५ ॥

[३] मनुष्यो के विषय मे भी नैरयिको के समान कथन करना चाहिए। वे आत्म-(अ)यशपूर्वक जीवन-निर्वाह करते है। (इनके विषय मे) अलेश्यी, अक्रिय तथा उसी भव मे सिद्ध होने का कथन नही करना चाहिए। शेष सब प्रथमोद्देशक के समान है।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ॥४१-५॥

४. कण्हलेस्सतेयोएहि वि एव चेव उद्देसओ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ॥ ४१-६ ॥

[४] कृष्णलेश्या वाले राशियुग्म मे त्र्योजराशि नैरयिक का उद्देशक भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) है ॥४१-६॥

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत्।

५. कण्हलेस्सदावरजुम्मेहि वि एवं चेव उद्देसओ।

सेवं भंते ! सेव भंते ! त्ति० ॥ ४१-७ ॥

[५] कृष्णलेश्या वाले द्वापरयुग्मराशि नैरयिक का उद्देशक भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) है ॥४१-७॥

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यों कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

६. कण्हलेस्सकलिओएहि वि एवं चेव उद्देसओ । परिमाणं संवेहो य जहा ओहिएसु उद्देसएसु ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४१-८ ॥

॥ इकचत्तालीसइमे सए : पंचमाइ अट्ठम-उद्देसगपज्जंता उद्देसगा समत्ता ॥ ४१ । ५-८ ॥

[६] कृष्णलेश्या वाले कल्योजराशि नैरयिक का उद्देशक भी इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना । किन्तु इनका परिमाण और संवेध औघिक उद्देशक के अनुसार समझना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

विवेचन—प्रस्तुत पंचम उद्देशक से अष्टम उद्देशक पर्यन्त कृष्णलेश्यी राशियुग्म वाले कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योजराशि रूप जीवों के उपपात आदि का कथन प्रथमोद्देशक के अतिदेश-पूर्वक किया गया है ।

॥ इकतालीसवां शतक : पंचम से अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

नवमाइअट्ठावीसइमपज्जंता उद्देसगा

नौवें से अट्ठाईसवें उद्देशक पर्यन्त

१. जहा कण्हलेस्सेहिं एवं नीललेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा निरवसेसा, नवरं नेरइयाण उववातो जहा वालुयप्पभाए। सेसं तं चेव।

सेवं भंते! सेवं भते! त्ति०। ४१। ९-१२।।

[१] कृष्णलेश्या वाले जीवो के अनुसार नीललेश्यायुक्त जीवो के भी पूर्ण चार उद्देशक कहने चाहिए। विशेष मे, नैरयिको के उपपात का कथन वालुकाप्रभा के समान जानना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् है।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।।४१।९-१२।।

२. काउलेस्सेहि वि एव चेव चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, नवर नेरइयाणं उववातो जहा रयणप्पभाए। सेसं तं चेव।

सेवं भते! सेव भंते! त्ति०।। ४१। १३-१६।।

[२] इसी प्रकार कापोतलेश्या-सम्बन्धी भी चार उद्देशक कहने चाहिए। विशेष नैरयिको का उपपात रत्नप्रभापृथ्वी के समान जानना चाहिए। शेष पूर्ववत्।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।।४१।१३-१६।।

३. तेउलेस्सरासीजुम्मकडजुम्मअसुरकुमारा णं भंते! कतो उववज्जति?

एव चेव, नवरं जेसु तेउलेस्सा अत्थि तेसु भाणियव्व। एवं एए वि कण्हलेस्ससरिसा चत्तारि उद्देसगा कायव्वा।

सेवं भंते! सेवं भते! त्ति०।। ४१। १७-२०।।

[३ प्र] भगवन्! तेजोलेश्या वाले राशियुग्म-कृतयुग्मरूप असुरकुमार कहाँ से आकर उत्पन्न होते है?

[३ उ] गौतम! इसी प्रकार (पूर्ववत्) जानना, किन्तु जिनमे तेजोलेश्या पाई जाती हो उन्ही के जानना। इस प्रकार ये भी कृष्णलेश्या-सम्बन्धी चार उद्देशक कहना चाहिए।

'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।।४१।१७-२०।।

४. एवं पम्हलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं वेमाणियाण य एतेसिं पम्हलेस्सा, सेसाणं नत्थि।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति०।। ४१। २१-२४।।

[४] इसी प्रकार पद्मलेश्या के भी चार उद्देशक जानने चाहिए। पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और वैमानिकदेव, इनमे पद्मलेश्या होती है, शेष मे नही होती ।।४१।२१-२४ ।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

५. जहा पम्हलेस्साए एवं सुक्कलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, नवरं मणुस्साणं गमग्रो जहा ग्रोहिउद्देसएसु । सेसं तं चेव ।

[५] पद्मलेश्या के अनुसार शुक्ललेश्या के भी चार उद्देशक जानने चाहिए। विशेष यह है कि मनुष्यो के लिए ग्रोघिक उद्देशक के अनुसार पाठ जानना चाहिए। शेष सब पूर्ववत् ।

६. एवं एए छसु लेस्सासु चउवीस उद्देसगा । ग्रोहिया चत्तारि । सव्वेए ग्रट्ठावीसं उद्देसगा भवंति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।। ४१ । २५-२८ ।।

।। इकचत्तालीसइमे सए : नवमाइग्रट्ठावीसइमपज्जंता उद्देसगा समत्ता ।।

[६] इस प्रकार इन छह लेश्याग्रो-सम्बन्धी चौबीस उद्देशक होते हैं तथा चार ग्रोघिक उद्देशक हैं। ये सभी मिलकर ग्रट्ठाईस उद्देशक होते है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् । ।। ४१ ।२५-२८ ।।

।। इकतालीसवाँ शतक : नौवें से ग्रट्ठाईसवें उद्देशक तक समाप्त ।।

एगूणतीसइमाइछप्पन्नइमपज्जंता उद्देसगा

उनतीसवें से छप्पनवें उद्देशक पर्यन्त

प्रथम के अट्ठाईस उद्देशकों के अतिदेशपूर्वक भवसिद्धिकसम्बन्धी अट्ठाईस उद्देशक

१. भवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया ण भंते ! कम्रो उववज्जंति ?

जहा ग्रोहिया पढमगा चत्तारि उद्देसगा तहेव निरवसेसं एए चत्तारि उद्देसगा ?

सेवं भंते ! सेवं भते ! त्ति० । ४१।२९-३२ ॥

[१ प्र.] भगवन् ! भवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मराशि नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ.] गौतम ! पहले के चार औघिक उद्देशको के अनुसार (इनके विषय मे भी) सम्पूर्ण चारो उद्देशक जानने चाहिए।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है' इत्यादि पूर्ववत् ॥४१।२९-३२ ॥

२. कण्हलेस्सभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कम्रो उववज्जति ?०

जहा कण्हलेसाए चत्तारि उद्देसगा तहा इमे वि भवसिद्धियकण्हलेस्सेहि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा ॥ ४१।३३-३६ ॥

[२ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

[२ उ] गौतम ! जिस प्रकार कृष्णलेश्या-सम्बन्धी चार उद्देशक कहे हैं, उसी प्रकार भवसिद्धिक कृष्णलेश्यी जीवो के भी चार उद्देशक कहने चाहिए ॥४१।३३-३६॥

३. एवं नीललेस्सभवसिद्धिएहि वि चत्तारि ॥ ४१।३७-४० ॥

[३] इसी प्रकार नीललेश्यी भवसिद्धिक जीवो के भी चार उद्देशक कहने चाहिए ॥४१।३७-४०॥

४. एवं काउलेस्सेहि चत्तारि उद्देसगा ॥ ४१।४१-४४ ॥

[४] इसी प्रकार कापोतलेश्या वाले भवसिद्धिक जीवो के भी चार उद्देशक कहने चाहिए ॥४१।४१-४४ ॥

५. तेउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ग्रोहियसरिसा ॥ ४१।४५-४८ ॥

[५] तेजोलेश्यायुक्त भवसिद्धिक जीवो के भी औघिक के सदृश चार उद्देशक समझने चाहिए ॥४१।४५-४८॥

६. पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ॥४१।४९-५२ ॥

[६] पद्मलेश्या वाले भवसिद्धिक जीवो के भी चार उद्देशक जानने चाहिए॥४१।४९-५२॥

७. सुक्कलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा ॥ ४१।५३-५६ ॥

[७] शुक्ललेश्या-विशिष्ट भवसिद्धिक जीवों के भी औघिक के सदृश चार उद्देशक कहने चाहिए ॥४१।५३-५६॥

८. एवं एए वि भवसिद्धिएहि अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४१ । २९-५६ ॥

॥ इकचत्तालीसइमे सए : एगुणतीसइमाइछप्पनइमपज्जता उद्देसगा समत्ता ॥

[८] इस प्रकार भवसिद्धिकजीव-सम्बन्धी अट्ठाईस उद्देशक होते है ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

विवेचन—भवसिद्धिक-सम्बन्धी अट्ठाईस उद्देशक—उद्देशक २९ से लेकर ५६ तक भवसिद्धिक-जीव-सम्बन्धी २८ उद्देशक इस प्रकार है—(१) भवसिद्धिक सामान्य के ४ उद्देशक, (२) कृष्णलेश्यादि ६ लेश्याओ से युक्त भवसिद्धिक के प्रत्येक के चार-चार उद्देशक के हिसाब से ६×४=२४ उद्देशक होते हैं । इस प्रकार ४+२४=२८ उद्देशक होते हैं ।

॥ इकतालीसवाँ शतक : उनतीसवें से छप्पनवें उद्देशक पर्यन्त समाप्त ॥

सत्तावण्णइमाइचुलसीइमपज्जंता उद्देसगा

सत्तावनवें से लेकर चौरासीवें उद्देशक पर्यन्त

प्रथम अट्ठाईस उद्देशकों के अनुसार अभवसिद्धिकसम्बन्धी अट्ठाईस उद्देशक-निरूपण

१. अभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जति ?

जहा पढमो उद्देसगो, नवरं मणुस्सा नेरइया य सरिसा भाणियव्वा । सेसं तहेव ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

[१ प्र] भगवन् ! अभवसिद्धिक-राशियुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! प्रथम उद्देशक के समान इस उद्देशक का कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि मनुष्यों और नैरयिकों की वक्तव्यता समान जाननी चाहिए । शेष पूर्ववत् ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है', इत्यादि पूर्ववत् ।

२. एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा ।। ४१।५७-६० ।।

[२] इसी प्रकार चार युग्मों (कृतयुग्म से कल्योज तक) के चार उद्देशक कहने चाहिए ।।४१।५७-६०।।

३. कण्हलेस्सअभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जति ?०

एवं चेव चत्तारि उद्देसगा ।। ४१।६१-६४ ।।

[३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी-अभवसिद्धिक-राशियुग्म-कृतयुग्मराशिरूप नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ।

[३ उ] इनके भी पूर्ववत् चार उद्देशक कहने चाहिए ।।४१।६१-६४।।

४. एवं नीललेस्सअभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा ।। ४१।६५-६८ ।।

[४] इसी प्रकार नीललेश्या वाले अभवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक जानने चाहिए ।।४१।६५-६८।।

५. एवं काउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ।। ४१।६९-७२ ।।

[५] इसी प्रकार कापोतलेश्यायुक्त अभवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक होते हैं ।।४१।६९-७२।।

६. एवं तेउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ।। ४१।७३-७६ ।।

[६] तेजोलेश्यी अभवसिद्धिक जीवों के भी इसी प्रकार चार उद्देशक कहने चाहिए ।।४१।७३-७६।।

७. पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ।। ४१।७७-८० ।।

[७] पद्मलेश्यी अभवसिद्धिक-सम्बन्धी भी चार उद्देशक होते हैं ।।४१।७७-८०।।

८. सुक्कलेस्सअभवसिद्धिएहिं वि चत्तारि उद्देसगा ।। ४१।८१-८४ ।।

[८] शुक्ललेश्यायुक्त अभवसिद्धिक जीवो के भी चार उद्देशक होते है ।।४१।८१-८४।।

९. एव एएसु अट्ठावीसाए (५७-८४) वि अभवसिद्धियउद्देसएसु मणुस्सा नेरइयगमेणं नेतंव्वा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। इकचत्तालीसइमे सए : सत्तावण्णइमाइचुलसीइमपज्जंता उद्देसगा समत्ता ।। ४२।५७-८४ ।।

[९] इस प्रकार इन अट्ठाईस (५७ से ८४ तक) अभवसिद्धिक उद्देशको मे मनुष्यो-सम्बन्धी कथन नैरयिको के आलापक के समान जानना चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। इकतालीसवाँ शतक : सत्तावन से चौरासी उद्देशक पर्यन्त सम्पूर्ण ।।

पंचासीइमाइबारसुत्तरसयतमपज्जंता उद्देसगा

पचासीवें से एकसौ बारहवें उद्देशक पर्यन्त

सम्यग्दृष्टिसम्बन्धी पूर्वोक्तानुसार अट्ठाईस उद्देशक

१. सम्मद्दिट्ठिरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जति ?०
एवं जहा पढमो उद्देसओ ।

[१ प्र.] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि-राशियुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

[१ उ] प्रथम उद्देशक के समान यह उद्देशक जानना चाहिए ।

२. एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा भवसिद्धियसरिसा कायव्वा ।
सेव भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ॥ ४१।८५-८८ ॥

[२] इसी प्रकार चारो युग्मो मे भवसिद्धिक के समान चार उद्देशक कहने चाहिए ।
'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' इत्यादि पूर्ववत् ॥४१।८५-८८॥

३. कण्हलेस्ससम्मद्दिट्ठिरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?०
एए वि कण्हलेस्ससरिसा चत्तारि उद्देसगा कायव्वा ॥ ४१। ८९-९२ ॥

[३ प्र] भगवन् ! कृष्णलेश्यी सम्यग्दृष्टि राशियुग्म-कृतयुग्मराशि नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[३ उ.] यहाँ भी कृष्णलेश्या-सम्बन्धी (चार उद्देशको) के समान चार उद्देशक कहने चाहिए ॥ ४१।८९-९२ ॥

४. एवं सम्मद्दिट्ठीसु वि भवसिद्धियसरिसा अट्ठावीस उद्देसगा कायव्वा ॥ ४१।९३-११२ ॥
सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति जाव विहरइ ।

॥ इकचत्तालीसइमे सए : पचासीइमाइबारसुत्तरसयतमपज्जता उद्देसगा समत्ता ॥४१।८५-११२ ॥

[४] इस प्रकार (नीललेश्यादि पचविध) सम्यग्दृष्टि जीवो के भी भवसिद्धिक जीवो के समान (प्रत्येक लेश्या सम्बन्धी चार-चार उद्देशक होने से इनके २० उद्देशक मिलने से कुल) अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए ॥४१।९३-११२॥

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते है ।

विवेचन - सम्यग्दृष्टि-राशियुग्म-कृतयुग्मादि नैरयिक के २८ उद्देशक—ये २८ उद्देशक इस प्रकार है—(१) सम्यग्दृष्टि राशियुग्म मे कृतयुग्म आदि चार युग्मो के चार उद्देशक, (२) कृष्ण-लेश्यायुक्त सम्यग्दृष्टि-राशियुग्म-कृतयुग्मादि चारो युग्मो के चार उद्देशक तथा (३) शेष नीललेश्यादि पाँच लेश्याओ से युक्त राशियुग्म-कृतयुग्मादि चतुष्टयरूप सम्यग्दृष्टि जीवो के ५×४=२० उद्देशक, यो कुल ४+४+२०=२८ उद्देशक होते है ।

॥ इकतालीसवाँ शतक : पच्चासी से एकसौ बारह उद्देशक पर्यन्त समाप्त ॥

तेरसुत्तरसयतमाइचत्तालीसुत्तरसयतमपज्जंता उद्देसगा

एकसौ तेरह से एकसौ चालीस उद्देशक पर्यन्त

मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अट्ठाईस उद्देशकों का निर्देश

१. मिच्छद्दिट्ठिरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कम्रो उववज्जति ।

एवं एत्थ वि मिच्छाविट्ठिप्रभिलावेणं प्रभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीस उद्देसका कायव्वा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। इकचत्तालीसइमे सए : तेरसुत्तरसयतमाइचत्तालीसुत्तरसयतमपज्जंता उद्देसगा समत्ता ।।

।। ४१।११३-१४० ।।

[१ प्र] भगवन् ! मिथ्यादृष्टि-राशियुग्म-कृतयुग्मराशियुक्त नैरयिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] मिथ्यादृष्टि के अभिलाप से यहाँ भी अभवसिद्धिक उद्देशको के समान अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए ।।४१।११३-१४०।।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। इकतालीसवाँ शतक : एकसौ तेरह से एकसौ चालीस उद्देशक पर्यन्त समाप्त ।।

एगचालीसुत्तरसयतमाइअडसट्ठिउत्तरसयतमपज्जंता उद्देसगा

एकसौ इकतालीस से एकसौ अड़सठ उद्देशक पर्यन्त

कृष्णपाक्षिक की अपेक्षा पूर्ववत् अट्ठाईस उद्देशकों का निर्देश

१. कण्हपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया ण भंते ! कम्रो उववज्जंति ?

एव एत्थ वि प्रभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीस उद्देसगा कायव्वा ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति० ।

।। इकचत्तालीसइमे सए : एगचत्तालीसुत्तरसयतमाइप्रडसट्ठिउत्तरसयतमपज्जंता उद्देसगा समत्ता ।।

।। ४१।१४१-१६८ ।।

[१ प्र] भगवन् ! कृष्णपाक्षिक-राशियुग्म-कृतयुग्मराशिविशिष्ट नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?

[१ उ] गौतम ! यहाँ भी अभवसिद्धिक-उद्देशको के समान अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए ।

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है', यो कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।

।। इकतालीसवाँ शतक : एकसौ इकतालीस से एकसौ अड़सठ उद्देशक पर्यन्त सम्पूर्ण ।।

एगूणसत्तरिउत्तरसयतमाइछन्नउइ-
उत्तरसयतमपज्जंता उद्देसगा

एकसौ उनहत्तर से एकसौ छियानवे उद्देशक पर्यन्त

शुक्लपाक्षिक के आश्रित पूर्ववत् अट्ठाईस उद्देशकों का निर्देश

१. सुक्कपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कम्रो उववज्जंति ?

एवं एत्थ वि भवसिद्धियसरिसा श्रट्ठावीस उद्देसगा भवंति ।

[१ प्र] भगवन् ! शुक्लपाक्षिक-राशियुग्म-कृतयुग्मराशि-विशिष्ट नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

[१ उ] गौतम ! यहाँ भी भवसिद्धिक उद्देशको के समान अट्ठाईस उद्देशक होते हैं ।

२. एव एए सव्वे वि छण्णउयं उद्देसगसय भवति रासीजुम्मसत । जाव —

सुक्कलेस्ससुक्कपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मकलियोगवेमाणिया जाव—जति सकिरिया तेणेव भवग्गहणेण सिज्झति जाव अंतं करेंति ?

नो इणट्ठे समट्ठे ।

'सेव भंते ! सेवं भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो श्रायाहिणपयाहिणं करेति, तिक्खुत्तो श्रायाहिणपयाहिण करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एव वयासि—एवमेयं भंते !, तहमेय भंते !, श्रवितहमेतं भंते !, श्रसदिद्धमेय भंते !, इच्छियमेय भंते !, पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छियपडिच्छियमेय भंते !, सच्चे णं एसमट्ठे जं ण तुब्भे वदह, त्ति कट्टु 'श्रपुव्ववयणा'[1] खलु श्ररहंता भगवंतो' समणं भगव महावीर वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा श्रप्पाणं भावेमाणे विहरति ।

[२] इस प्रकार यह (४१ वाँ) राशियुग्मशतक इन सबको मिला कर १९६ (एक सौ छियानवे) उद्देशको का है यावत्—

[प्र] भगवन् ! शुक्ललेश्या वाले शुक्लपाक्षिक राशियुग्म-कृतयुग्म-कल्योजराशिविशिष्ट वैमानिक यावत् यदि सक्रिय है तो क्या उस भव को ग्रहण करके सिद्ध हो जाते हैं यावत् सब दुःखो का अन्त कर देते हैं ?

[उ] गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही, (यहाँ तक जानना चाहिए ।)

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, भगवन् ! यह इसी प्रकार है,' यो कहकर भगवान् गौतम-स्वामी, श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण (दाहिनी ओर से) प्रदक्षिणा करते है, यो

१- पाठान्तर—'अपूइवयणा,' अर्थ होता है—पवित्र वचन वाले ।

तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वे उन्हे वन्दन-नमस्कार करते है। तत्पश्चात् इस प्रकार बोलते है-- 'भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह इसी प्रकार है, भगवन्! यह अवितथ-सत्य है, भगवन्! यह असदिग्ध है, भते! यह इच्छित (इष्ट) है, भते! यह प्रतीच्छित-- विशेषरूप से इच्छित (स्वीकृत) है, भते! यह इच्छित-प्रतीच्छित है, भगवन्! यह अर्थ सत्य है, जैसा आप कहते है, क्योकि अरिहन्त भगवन्त अपूर्व (अथवा पवित्र) वचन वाले होते है, यो कह कर वे श्रमण भगवान् महावीर को पुन वन्दन-नमस्कार करते हैं। तत्पश्चात् तप और सयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते है।

विवेचन-- अपुव्ववयणा : भावार्थ -अरिहन्त भगवन्तो की वाणी अपूर्व होती है।

॥ इकतालीसवाँ शतक : एकसौ उनहत्तर से एकसौ छियानवे उद्देशक पर्यन्त समाप्त ॥

॥ इकतालीसवाँ राशियुग्मशतक सम्पूर्ण ॥

उवसंहारो : उपसंहार

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र के शतक, उद्देशक और पदों का परिमाण-निरूपण

१. सव्वाए भगवतीए अट्ठतीस सय सयाण १३८। उद्देसगाणं १९२५॥

[१] सम्पूर्ण भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) सूत्र के कुल १३८ शतक हैं और १९२५ (एक हजार नौ सौ पच्चीस) उद्देशक हैं।

२. चुलसीतिसयसहस्सा पयाण पवरवरणाण-दसीहिं।
भावाभावमणंता पण्णत्ता एत्थमंगम्मि ॥१॥

[२] प्रवर (सर्वश्रेष्ठ) ज्ञान और दर्शन के धारक महापुरुषो ने इस अगसूत्र में ८४ लाख पद कहे हैं तथा विधि-निषेधरूप भाव तो अनन्त (अपरिमित) कहे हैं ॥१॥

अन्तिम मंगल : श्रीसंघ-जयवाद

३. तव-नियम-विणयवेलो जयति सया नाणविमलविपुलजलो।
हेउसयविउलवेगो संघसमुद्दो गुणविसालो ॥२॥

[३] गुणो से विशाल संघरूपी समुद्र सदैव विजयी होता है, जो ज्ञानरूपी विमल और विपुल जल से परिपूर्ण है, जिसकी तप, नियम और विनयरूपी वेला है और जो सैकडो हेतुओ-रूप प्रबल वेग वाला है ॥२॥

पुस्तक लिपिकार द्वारा किया गया नमस्कार

[नमो गोयमादीणं गणहराणं।
नमो भगवतीए विवाहपन्नत्तीए।
नमो दुवालसगस्स गणिपिडगस्स ॥१॥

[गौतम आदि गणधरो को नमस्कार हो। भगवती व्याख्याप्रज्ञप्ति को नमस्कार हो तथा द्वादशाग-गणिपिटक को नमस्कार हो ॥१॥]

कुमुयसुसंठियचलणा, अमलियकोरेंटबिटसंकासा।
सुयदेवया भगवती मम मतितिमिरं पणासेउ ॥२॥]

कच्छप के समान सस्थित चरण वाली तथा अम्लान (नही मुर्झाई हुई) कोरट की कली के समान, भगवती श्रुतदेवी मेरे मति-(बुद्धि के अथवा मति-अज्ञानरूपी) अन्धकार को विनष्ट करे ॥२॥

भगवती व्याख्याप्रज्ञप्ति की उद्देश-विधि

पण्णत्तीए आदिमाणं अट्ठण्ह सयाण दो दो उद्देसया उद्दिसिज्जंति, णवरं चउत्थसए पढमदिवसे अट्ठ, बितियदिवसे दो उद्देसगा उद्दिसिज्जति [१—८]।

व्याख्याप्रज्ञप्ति के प्रारम्भ के आठ शतको के दो-दो उद्देशको का उद्देश (उपदेश या वाचना) एक-एक दिन मे दिया जाता है, किन्तु चतुर्थ शतक के आठ उद्देशको का उद्देश पहले दिन किया जाता है, जबकि दूसरे दिन दो उद्देशो का किया जाता है। (१-८)

नवमाओ सयाओ आरद्ध जावतियं ठाइ तावइयं उद्दिसिज्जइ; उक्कोसेणं सयं पि एगदिवसेणं उद्दिसिज्जइ, मज्झिमेणं दोहिं दिवसेहिं सयं, जहन्नेण तिहिं दिवसेहिं सतं। एवं जाव वीसइमं सतं। णवरं गोसालो एगदिवसेण उद्दिसिज्जइ; जति ठियो एगेण चेव आयंबिलेणं अणुण्णव्वइ, अह ण ठियो आयंबिलछट्ठेणं अणुण्णव्वति [९-२०]।

नौवे शतक से लेकर आगे यावत् बीसवे शतक तक जितना-जितना शिष्य की बुद्धि मे स्थिर हो सके, उतना-उतना एक दिन मे उपदिष्ट किया जाता है। उत्कृष्टत. एक दिन मे एक शतक का भी उद्देश (वाचन) दिया जा सकता है, मध्यम दो दिन मे और जघन्य तीन दिन मे एक शतक का पाठ दिया जा सकता है। किन्तु ऐसा बीसवे शतक तक किया जा सकता है। विशेष यह है कि इनमे से पन्द्रहवे गोशालकशतक का एक ही दिन मे वाचन करना चाहिए। यदि शेष रह जाए तो दूसरे दिन आयबिल करके वाचन करना चाहिए। फिर भी शेष रह जाए तो तीसरे दिन आयम्बिल का छट्ठ (बेला) करके वाचन करना चाहिए। [९-२०]

एक्कवीस-बावीस-तेवीसतिमाइ सयाइ एक्केक्कदिवसेणं उद्दिसिज्जति [२१-२३]।

इक्कीसवे, बाईसवे और तेईसवे शतक का एक-एक दिन मे उद्देश करना चाहिए [२१-२३]।

चउवीसतिमं चउहिं दिवसेहिं– छ छ उद्देसगा [२४]।

चौबीसवे शतक के छह-छह उद्देशको का प्रतिदिन पाठ करके चार दिनो मे पूर्ण करना चाहिए [२४]।

पंचवीसतिमं दोहिं दिवसेहिं – छ छ उद्देसगा [२५]।

पच्चीसवे शतक के प्रतिदिन छह-छह उद्देशक बाच कर दो दिनो मे पूर्ण करना चाहिए [२५]।

गमियाणं आदिमाइं सत्त सयाइं एक्केक्कदिवसेण उद्दिसिज्जंति [२६-३२]।[1]

एगिंदियसताइ बारस एगेण दिवसेण [३३]।

सेढिसयाइं बारस एगेणं० [३४]।

एगिंदियमहाजुम्मसताइं बारस एगेणं० [३५]।

एक समान पाठ वाले बन्धीशतक आदि सात (२६ से ३२वे) शतक (आठ शतक– २६ से ३३ तक) का पाठवाचन एक दिन मे, बारह एकेन्द्रियशतको का वाचन एक दिन मे (३३), बारह श्रेणी-शतकों का वाचन एक दिन मे (३४) तथा एकेन्द्रिय के बारह महायुग्मशतको का वाचन एक ही दिन में करना चाहिए। [३५]

---

१. पाठान्तर—'बंधिसयाइं अट्ठसयाइ एगेणं दिवसेणं ।'

एवं बेंदियाणं बारस [३६], तेंदियाणं बारस [३७], चउरिंदियाणं बारस [३८], असन्निपंचेंदियाण बारस [३९], सन्निपंचेंदियमहाजुम्मसयाइं इक्कवीसं [४०], एगदिवसेणं उद्दिसिज्जंति ।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय के बारह (३६), त्रीन्द्रिय के बारह (३७), चतुरिन्द्रिय के बारह (३८), असंज्ञीपंचेन्द्रिय के बारह (३९) शतको का तथा इक्कीस संज्ञीपचेन्द्रियमहायुग्म शतको (४०) का वाचन एक-एक दिन मे करना चाहिए।

रासीजुम्मसयं एगदिवसेणं उद्दिसिज्जइ । [४१]

इकतालीसवे राशियुग्मशतक की वाचना भी एक दिन मे दी जानी चाहिए [४१]।

वियसियअरविंदकरा नासियतिमिरा सुयाहिया देवी ।
मज्झं पि देउ मेह बुहविबुहणमंसिया णिच्चं ॥१॥

जिसके हाथ मे विकसित कमल है, जिसने अज्ञानान्धकार का नाश किया है, जिसको बुध (पण्डित) और विबुधो (देवो) ने सदा नमस्कार किया है, ऐसी श्रुताधिष्ठात्री देवी मुझे भी बुद्धि (मेधा) प्रदान करे ॥ १ ॥

सुयदेवयाए णमिमो जीए पसाएण सिक्खियं नाणं ।
अण्णं पवयणदेवी संतिकरी तं नमसामि ॥२॥

जिसकी कृपा से ज्ञान सीखा है, उस श्रुतदेवता को प्रणाम करता हूँ तथा शान्ति करने वाली उस प्रवचनदेवी को नमस्कार करता हू ॥ २ ॥

सुयदेवा य जक्खो कुंभधरो बंभसंति वेरोट्टा ।
विज्जा य अंतहुंडी देउ अविग्घं लिहंतस्स ॥१॥

॥ समत्ता य भगवती ॥

॥ वियाह-पण्णत्तिसुत्तं समत्तं ॥

श्रुतदेवता, कुम्भधर यक्ष, ब्रह्मशान्ति, वैरोटयादेवी, विद्या और अन्तहुंडी, लेखक के लिए अविघ्न (निर्विघ्नता) प्रदान करे॥ ३ ॥

विवेचन—उपसंहार-गत विषय—(१) शतकादि का परिमाण—सर्वप्रथम सू. १ और २ मे भगवतीसूत्र के शतक, उद्देशक, पद और भावो को सख्या बताई है।

शतको के प्रारम्भ मे अंकित संग्रहणीगाथाओ के अनुसार तो भगवतीसूत्र के कुल उद्देशको की सख्या १९२३ ही होती है, किन्तु यहाँ इस गाथा मे १९२५ बताई है। २०वे शतक के १२ उद्देशक गिने जाते हैं, किन्तु प्रस्तुत वाचना मे पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय इन तीनो का एक सम्मिलित (छठा) उद्देशक ही उपलब्ध होने से दस ही उद्देशक होते है । इस प्रकार दो उद्देशक कम हो जाने से गणनानुसार उद्देशक की सख्या १९२३ होती है।

शतको का परिमाण इस प्रकार है—पहले से लेकर बत्तीसवे शतक तक किसी भी शतक में अवान्तर शतक नही है। तेतीसवे शतक से लेकर उनतालीसवे शतक तक सात शतको में प्रत्येक मे

बारह-बारह अवान्तर शतक हैं। इस प्रकार ये कुल १२×७=८४ शतक हुए। चालीसवे शतक मे २१ अवान्तर शतक हैं। इकतालीसवे शतक मे अवान्तर-शतक नही है। इन सभी शतको को मिलाने से सभी ३२+८४+२१+१=१३८ शतक होते हैं।

समग्र भगवतीसूत्र मे पदों को सख्या ८४ लाख बताई है। इस सम्बन्ध मे वृत्तिकार का मन्तव्य यह है कि पदो की यह गणना किस प्रकार से की गई है, इस विषय मे कुछ नही कहा जा सकता। पदो की गणना विशिष्ट-सम्प्रदाय-परम्परागम्य प्रतीत होती है।

(२) संघ का जयवाद—इसके पश्चात् दूसरी गाथा (सूत्र ३) मे सघ को समुद्र की उपमा देकर उसका जयवाद किया गया है।

(३) लिपिकार द्वारा नमस्कारमगल—इसके पश्चात् लिपिकार द्वारा गौतमगणधरादि, भगवतीसूत्र एव द्वादशाग गणिपिटक को नमस्कारमगल किया गया है।

(४) व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र की उद्देशविधि—तदनन्तर व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र की उद्देश-(वाचना) विधि का सक्षेप से निरूपण है।

(५) श्रुतदेवी को स्तुति और प्रार्थना—फिर अन्तिम तीन गाथाओ द्वारा श्रुतदेवी (जिनवाणी) आदि देवियो की नमस्कारपूर्वक स्तुति करते हुए ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति की उनसे प्रार्थना की गई है।[1]

॥ भगवती व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र सम्पूर्ण ॥

१ (क) वियाहपण्णत्तिसुत्त (मूलपाठटिप्पण) भा २, पृ. ११८३-८७

(ख) भगवती. अ. वृत्ति, पत्र ९७९-९८०

(ग) भगवती. (हिन्दी-विवेचन) भा ७, पृ. ३८०५

परिशिष्ट-१

व्यक्तिनामानुक्रमणिका

[सूचना—पहला अंक शतक का सूचक है, दूसरा उद्देशक का और तीसरा सूत्रसंख्या का। उदाहरणतः अग्गिभूति (अग्निभूति गणधर) तीसरा शतक, प्रथम उद्देशक और सूत्र संख्या ३। जहाँ उद्देशक नहीं है, वहाँ शून्य दिया गया है।]

विशिष्टस्थान-नामानुक्रमणिका

[विशेष—पहला अंक शतक का सूचक है, दूसरा अंक उद्देशक का सूचन करता है और तीसरा अंक सूत्र संख्या के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा—अच्छ (जनपदविशेष) १५।०।८७ अर्थात् शतक १५, उद्देशक ०, सूत्र ८७। जहाँ उद्देशक नहीं है, वहाँ शून्य का अंक उद्देशक के स्थान पर रख दिया गया है।]

परिशिष्ट-३

भगवतीनिर्दिष्ट शास्त्र-नामानुक्रमणिका

[विशेष—पहला अंक शतक का सूचक है और दूसरा अंक उद्देशक का सूचन करता है तथा तीसरा अंक सूत्र संख्या के लिए प्रयुक्त हुआ है। जहां उद्देशक नहीं है, वहां उद्देशक के स्थान पर शून्य का अंक रख दिया गया है।]

परिशिष्ट-४

कतिपय विशिष्ट शब्दसूची

अद्धमागहा (भाषा) ५।४।२४
इक्खाग (इक्ष्वाकुवश) २०।८।१६
उग्ग (उग्रकुल—वंश) २०।८।१६
कच्चायण (गोत्र) २।१।१२, १४, १८, २३, २।१।३४-३७
कोरव्व (वश) २०।८।१६
गोतम (गोत्र) ३।१।३
नाय (वश) २०।८।१६
भोग (वश) २०।८।१६
महासिलाकटय (सग्राम) ७।९।५, ६, १०, ११, १२, १५।०।८८
रहमुसल (सग्राम) ७।९।१४-१७, २०(६), २०(७), २०(११), २०(१२)
राइण्ण (वश) २०।८।१६ ।

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पनि निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सभाहि सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते मज्झण्हे, अडढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देशक २

उपर्युक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात-तारापतन—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलो के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय. ऋतु-स्वभाव मे ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्लपक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे-थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिकशरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहां से यह वस्तुएं उठाई न जाएं तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते है।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश. सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि— मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै. शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिकशरीर सम्बन्धी कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

श्री आगम प्रकाशन-समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बेंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खींवराजजी चोरडिया मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी, सागरमलजी सचेती, मद्रास
४ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटगी
५ श्री आर प्रसन्नचन्दजी बोकडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९. श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी चेसती, दुर्ग

संरक्षक

१ श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
४ श्री शा० जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागा-टोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचन्दजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११ श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचन्दजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचन्दजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचन्दजी लोढ़ा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४. श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपड़ा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जबरचन्दजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी मेहता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री दवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२ श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम
५ श्री भवरलालजी चोपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री बी. गजराजजी बोकडिया, सेलम

८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी कांठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११. श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५. श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७. श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३०. श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१. श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२. श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७. श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९. श्री मागीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४०. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१. श्री ओकचदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३. श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५. श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, बेंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, बेंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया कला
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बेंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी कांकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्द ·· भूरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी बाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरडिया, भैरूदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, बेंगलोर
९५ श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचन्दजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१. श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३. सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९. श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरू दा
१११ श्री मांगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी बोकडिया, मेडतासिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकवरबाई धर्मपत्नी श्री चादमलजी लोढा, बम्बई
११७ श्री मांगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बेंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, बगडीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८. श्री टी. पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं., बेंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड